दीघनिकाय

राहुल सांकृत्यायन

जगदीश काश्यप

भारतीय बौद्ध शिक्षा परिषद्
बुद्ध विहार, लखनऊ

सुत्तपिटकका

दीघ-निकाय

अनुवादक

भिक्षु राहुल सांकृत्यायन

भिक्षु जगदीश काश्यप (एम्० ए०)

प्रकाशक

भारतीय बौद्ध शिक्षा परिषद

बुद्ध विहार, लखनऊ

द्वितीय संस्करण २०००

बुद्धाब्द २५२३

१६७६ ई०

मूल्य ५० रु०

प्रकाशक
स्थविर ग० प्रज्ञानन्द
महामन्त्री
भारतीय बौद्ध शिक्षा परिषद
बुद्ध विहार, रिसालदार पार्क
लखनऊ—२२६००१

मुद्रक
लखनऊ पब्लिशिंग हाउस
३७, कैन्टूनमेन्ट रोड, लखनऊ

समर्पण

करुणामय विद्यामूर्त्ति गुरुवर **श्रीधर्मानन्द**

नायक महास्थविरपादके करकमलोंमें

शिष्यद्वयकी सादर भेंट ।

द्वितीय संस्करण के प्रकाशकीय निवेदन

भगवान बुद्ध के उपदेश मूल रूप में पालि भाषा में हैं। उनके उपदेश अन्तर्गत इस पालि साहित्य को त्रिपिटक कहा जाता है। त्रिपिटक एवं दूसरे तत्कालीन ऐतिहासिक लेख भी पालि भाषा में ही मिलते हैं। दूसरे शब्दों में कहा जाय तो यह ग्रन्थ समुदाय मगध एवं अवध की तत्कालीन राष्ट्रभाषा में है। यह साहित्य सिंहल, बर्मा एवं स्याम की लिपियों में ही नहीं, बल्कि रोमन अक्षरों में भी आज से लगभग एक शताब्दी पूर्व छपकर उपलब्ध हो चुका था। अंग्रेजी में ही नहीं जर्मन और फ्रेन्च आदि योरोपीय भाषाओं में तथा भारत की बंगला में भी इनके अनुवाद छप चुके हैं।

भारत के लिये विशेषकर हिन्दी भाषा-भाषियों के लिये यह गौरव की बात नहीं है कि इतना बड़ा, विशाल और गौरवपूर्ण साहित्य उनकी अपनी आज की राष्ट्रभाषा में न मिले।

कई बार इसके छपने-छपवाने की योजनायें देश के विभिन्न भागों में चलीं। भारतीय महाबोधि सभा, सारनाथ के द्वारा अधिकांश अनुवाद हिन्दी में प्रकाशित भी हुआ था। लेकिन उनका पुनः मुद्रण न होने के कारण आज वे भी उपलब्ध नहीं हैं।

बुद्ध वर्ष २६०० के अवसर पर "विश्व संस्कृति एवं सभ्यता को बौद्ध धर्म की देन" विषय पर २७, २८ और २६ मार्च, १६७७ को विज्ञान भवन, नई दिल्ली में हुई अन्तर्राष्ट्रीय बौद्ध गोष्ठी के अवसर पर हमने यह निश्चय किया था कि यथासम्भव शीघ्र हम सम्पूर्ण त्रिपिटक को हिन्दी भाषा में प्रकाशित करेंगे। इस योजना के अन्तर्गत सर्वप्रथम उन ग्रन्थों का प्रकाशन प्रारम्भ किया, जिनका एक बार प्रकाशन हो चुका है परन्तु उपलब्ध नहीं हैं। इनके पश्चात् उन ग्रन्थों का अनुवाद प्रकाशित करेंगे, जो अब तक अनूदित भी नहीं हुये हैं।

महापण्डित राहुल सांकृत्यायन द्वारा सन् १६३६ में प्रस्तुत दीघनिकाय का अनुवाद भारतीय महाबोधि सभा के प्रधानमंत्री, स्वर्गीय देवप्रिय वलिसिंह ने १६३७ में प्रकाशित किया था। लेकिन उनकी सारी प्रतियां बिक जाने से यह पिछले २० वर्षों से बौद्ध साहित्य के प्रेमी सज्जनों के लिये उपलब्ध नहीं था। अतः हिन्दी पाठकों के सम्मुख त्रिपिटक ग्रन्थों में से दीघनिकाय का यह अनुवाद पुनः उपस्थित करते हुए हमें प्रसन्नता हो रही है।

कागज एवं मुद्रण सामग्री के इस दुरुह समय में उत्तर प्रदेश शासन के सांस्कृतिक कार्यों के निदेशालय की आर्थिक सहायता से हम इसे पाठकों के हाथों में इतने कम मूल्य में देने में समर्थ हुए हैं। अतः हम उनकी इस आर्थिक सहायता के लिये कृतज्ञ हैं।

हिन्दी के पाठक, भगवान बुद्ध की वाणी को हिन्दी भाषा-भाषी जनता के दैनिक पठन-पाठन का विषय बनाने में हमारा हाथ बटायेंगे—यही आशा है।

सुन्दर एवं शीघ्र मुद्रण द्वारा लखनऊ पब्लिशिंग हाउस, लखनऊ ने हमारी सहायता की है अतः उन्हें भी हम हृदय से धन्यवाद देते हैं।

स्थविर ग० प्रज्ञानन्द
महामन्त्री
भारतीय बौद्ध शिक्षा परिषद
लखनऊ

१८ दिसम्बर, १६७६

प्रकाशकीय निवेदन

आज हम महाबोधि-ग्रन्थमालाके इस चतुर्थ पुष्प दीर्घ-निकायको पाठकोंके सन्मुख उपस्थित करते हैं। हमें यह कहते दुःख होता है, कि आर्थिक कठिनाइयोंके कारण संयुक्तनिकाय (हिन्दी अनुवाद) के तैयार होते हुये भी हम इस समय उसे प्रकाशित करनेमें असमर्थ हैं। हम अपने इन दाताओंके बहुत कृतज्ञ हैं, जिन्होंने इस शुभकार्यमें धन दे हमारी सहायता की है--

सेठ युगलकिशोर बिड़ला	५००)
U. Thwin, Rangoon	१००)
डाक्टर पेडामल, अमृतसर	१००)
Quah Ee Sin, Rangoon	१००)

१९-२-३७

विनम्र
(ब्रह्मचारी) देवप्रिय
प्रधानमंत्री,
महाबोधि सभा
सारनाथ (बनारस)

प्राक्कथन

दी घ नि का य त्रिपिटकके सुत्त(=सूत्र) पिटकके पाँच निकायोंमेंसे पहिला है। म ज्झि म नि का य का नंबर यद्यपि इसके बाद आता है; किन्तु, उपयोगिताका ख्याल कर उसे पहिले प्रकाशित किया गया। बुद्धचर्या और विनय पिटक की भूमिकाओंमें संक्षेपसे बतलाया जा चुका है, कि कैसे बुद्धनिर्वाणके ढाईसौ वर्षोंके भीतर ही बौद्धधर्ममें १८ निकाय (=सम्प्रदाय) हो गये। इन सभी निकायोंके अपने अपने पिटक थे, या यों कहिये, वेदकी भिन्न भिन्न शाखाओंमें जैसे पाठभेद तथा कुछ न्यूनाधिक मंत्र मिलते हैं, वैसे ही इन निकायोंके पिटकोंमें भी कितने ही पाठभेद और कितने ही सुत्तोंकी कमी बेशी थी। किन्तु, उन अठारह निकायोंमेंसे एक स्थ वि र(=थेर) वाद ही रह गया है, जिसका पिटक पाली भाषामें है; और जिसके एक ग्रंथका अनुवाद हम आज पाठकोंके सामने रख रहे हैं। बाकी नि का य लुप्त हो गये, और उनके वही ग्रंथ बच रहे हैं, जो चीनी या तिब्बती भाषामें अनुवादित हो चुके थे।

नि का यके लिये दूसरा प्रतिशब्द आ ग म है। पालीमें भी आगम शब्द अज्ञात नहीं है, तो भी अधिकतर निकाय शब्दहीका प्रयोग होता है, किन्तु, संस्कृत पिटकमें आगम ही प्रचलित शब्द था। चीनी भाषामें यही अपभ्रष्ट हो अ गों न् कहा जाता है। चीनी दीर्घागममें ३० सूत्र हैं, किन्तु, पालीमें चौंतीस।

तुलनाके लिये देखिये*—		अन्यत्र भी
१—ब्रह्मजालT	दी० २१	Nanjio's 554
२—सामञ्ञफल	दी० २७	N. 593
३—अम्बट्ठ	दी० २०	N. 592
४—सोणदंड	दी० २२	
५—कुटदन्त	दी० २३	
६—महालि		
७—जालिय		
८—कस्सपसीहनाद	दी० २५	
९—पोट्ठपाद	दी० २८	
१०—सुभ		
११—केवट्ट	दी० २४	
१२—लोहिच्च	दी० २९	
१३—तेविज्ज	दी० २६	

* **दी=दीर्घागम, म=मध्यमागम। दी=दीर्घागम** (Nanjio's 545), **म=मध्यमागम** (Nanjio's 342) T=**तिब्बतीय अनुवाद स्कन्ग्युर (के, चि)।**

१४—महापदान	दी० १	
१५—महानिदान	दी० १३	N. 542: 97 and 553
१६—महापरिनिव्वाण	दी० २	N. 552
१७—महासुदस्सन	म० ६८	
१८—जनवसभ	दी० ४	
१९—महागोविंद	दी० ३	
२०—महासमय T	दी० १९	
२१—सक्कपञ्ह	दी० १४	N. 542: 134
२२—महासतिपट्ठान	म० ९८	
२३—पायासिराजञ्ञ	दी० ७	N. 542: 71
२४—पाथिक	दी० १५	
२५—उदुम्बरिकसीहनाद	दी० ८	N. 542: 104
२६—चक्कवत्तिसीहनाद	दी० ६	N. 542: 70
२७—अग्गञ्ञ	दी० ५	N. 542: 154
२८—सम्पसादनिय	दी० १८	
२९—पासादिक	दी० १७	
३०—लक्खण	म० ५९	
३१—सिगालोवाद	दी० १६	N. 543: 135; 555, 595
३२—आटानाटिय T		
३३—संगीति	दी० ९	
३४—दसुत्तर	दी० १०	N. 548

इसे देखनेसे मालूम होगा कि पालीके ३४ सुत्तोंमें २७ चीनी दीर्घागममें मिलते हैं, शेष सातमें ३ मध्यमागममें मिलते हैं, और ४ का पता नहीं लगा है। इन सूत्रोंका अनुवादकाल इस प्रकार है—

		काल (ई०)	अनुवादक
१५—महानिदान	(N. 553)	१४६	अन्-शि-काऊ
३१—सिगाल	(N. 555)	(?) ,,	,,
३४—दसुत्तर	(N. 548)	,,	,,
१—ब्रह्मजाल	(N. 554)	२४० (?)	गा-खि-एन्
३—अम्बट्ठ	(N. 592)	,,	,,
१६—महापरिनिब्बाण	(N. 552)	३०० (?)	पो-फा-चु (२९०-३०६ ई०)
३१—सिगालोवाद	(N. 595)	,,	धर्मरक्ष
२—सामञ्ञ	(N. 593)	,,	,,
दीर्घागम	(N. 545)	४१२-१३	बुद्धयश
मध्यमागम	(N. 542)	३९७-९८	गौतम संघदेव

इस प्रकार दीर्घागमके तीन सूत्रोंका अनुवाद १४६ ई० के आसपास हुआ था।

अनुवादोंमें यह नहीं बतलाया गया है, कि यह किस संप्रदायसे संबन्ध रखते हैं, किन्तु हम दीर्घागमके अनुवादक बुद्धयश (४०३-१३ ई०) को धर्मगुप्तिक विनय ग्रन्थों (N. 1117, 1155) का

भी अनुवाद करते देखते हैं; इससे ख्याल होता है, शायद यह धर्मगुप्तिकसंप्रदायका दीर्घागम हो। कुछ सूत्रोंके मिलानेसे मालूम होता है, कि संस्कृत और पाली सूत्रोंमें बहुत अन्तर नहीं था।

× × ×

हम दोनोंने अलग अलग सूत्रोंके अनुवाद किये हैं। यद्यपि एक बार फिर एक दूसरेके अनुवादको देख लिया गया है, तोभी कहीं कहीं भाषाकी विषमता रह गई है।

धम्मपद, मज्झिमनिकाय, विनयपिटक और दीघनिकायके हिन्दी अनुवादोंको पाठकोंके सामने रखा जा चुका। हमारे पूर्व संकल्पके अनुसार संयुत्त निकाय तथा उदान-सुत्तनिपात-मिलिन्दपञ्ह दो जिल्द और बाकी रहते हैं; जिनके कि अनुवाद तैयार हैं। यदि हिन्दी-प्रेमी और पाठक, प्रकाशक को आर्थिक सहायता दे प्रोत्साहित करेंगे, तो वह दोनों भाग भी समयपर निकल जायेंगे। भदन्त आनन्दके जातक-हिन्दी अनुवादका प्रथम भाग भी प्रेसमें है। हमें यह प्रसन्नता हो रही है, कि बौद्धधर्मके मौलिक साहित्यके संबंधमें हिन्दी अपने अनुरूप स्थानको लेने जा रही है।

१७-७-३५ }

राहुल सांकृत्यायन
जगदीश काश्यप

सुत्त (=सूत्र) विषय-सूची

१—सीलक्खन्ध वग्ग

पृष्ठ

१—(१) ब्रह्मजाल-सुत्त १

१—साधारण बातें २

(१) आरम्भिक शील २

(२) मध्यम शील ३

(३) महाशील ४

२—असाधारण बातें ५

(बासठ दार्शनिक मत)

(१) आदिके सम्बन्धकी १८ धारणायें ५

१—शाश्वतवाद ६

२—नित्यता-अनित्यतावाद ७

३—सान्त-अनन्तवाद ८

४—अमराविक्षेपवाद ९

५—अकारणवाद १०

(२) अन्तके सम्बन्धकी ४४ धारणायें ११

६—मरणान्तर होशवाला आत्मा ११

७—मरणान्तर बेहोश आत्मा १२

८—मरणान्तर न होश न बेहोश आत्मा १२

९—आत्माका उच्छेद १२

१०—इसी जन्ममें निर्वाण १३

२—(२) सामञ्ञफल-सुत्त १६

१—छै तीर्थंकरोंका मत १९

(१) पूर्ण काश्यपका मत (अक्रियवाद) १९

(२) मक्खलि गोसालका मत (दैववाद) २०

(३) अजित केश कम्बलका मत (जडवाद) २०

पृष्ठ

(४) प्रकुध कात्यायनका मत (अकृततावाद) २१

(५) निगण्ठ नाथपुत्तका मत (चातुर्याम संवर) २१

(६) संजय वेलट्ठिपुत्तका मत (अनिश्चितता वाद) २२

२—भिक्षु होनेका प्रत्यक्ष फल २२

१—शील २४

(१) आरम्भिक शील २४

(२) मध्यम शील २४

(३) महाशील २६

(४) इन्द्रियोंका संयम २७

(५) स्मृति सम्प्रजन्य २७

(६) सन्तोष २७

२—समाधि २८

(१) प्रथम ध्यान २८

(२) द्वितीय ध्यान २९

(३) तृतीय ध्यान २९

(४) चतुर्थ ध्यान २९

३—प्रज्ञा ३०

(१) ज्ञान ३०

(२) मनोमय शरीरका निर्माण ३०

(३) ऋद्धियाँ ३०

(४) दिव्यश्रोत्र ३१

(५) परचित्तज्ञान ३१

(६) पूर्वजन्मोंका स्मरण ३१

(७) दिव्य चक्षु ३१

(८) दुःख क्षय ३२

३—(३) अम्बट्ठ-सुत्त ३४

१—अम्बट्ठका शाक्यों पर आक्षेप ३५

	पृष्ठ
२—शाक्योंकी उत्पत्ति	३६
३—जात पाँतका खण्डन	३८
४—विद्या और आचरण	३९
५—विद्याचरणके चार विघ्न	४०
४—(४) सोणदण्ड-सुत्त	४४
१—ब्राह्मण बनाने वाले धर्म	४५
२—शील	४७
३—प्रज्ञा	४७
५—(५) कुटदन्त-सुत्त	४८
१—बुद्धकी प्रशंसा	४९
२—अहिंसामय यज्ञ (महाविजितजातक)	५०
(१) बहुत सामग्री का यज्ञ	५०
१—राजयुद्ध	५०
२—होम यज्ञ	५१
(२) अल्पसामग्रीका यज्ञ	५३
१—दानयज्ञ	५४
२—त्रिशरण यज्ञ	५४
३—शिक्षापद यज्ञ	५४
४—शीलयज्ञ	५४
५—समाधि यज्ञ	५५
६—प्रज्ञा यज्ञ	५५
६—(६) महालि-सुत्त	५६
१—भिक्षु बननेका प्रयोजन (सुनक्खत्तकथा)	५७
(१) समाधिके चमत्कार नहीं	५७
(२) निर्वाण साक्षात्कारके लिये	५७
(३) आत्मवाद नहीं	५८
(४) निर्वाण साक्षात्कारके उपाय	५८
१—शील	५८
२—समाधि	५८
३—प्रज्ञा	५८
७—(७) जालिय-सुत्त	५९
१—जीव और शरीरका भेद अभेद-कथन अयुक्त	५९
१—शीलसे	५९
२—समाधिसे	५९
३—प्रज्ञासे	५९
८—(८) कस्सपसीहनाद-सुत्त	६१
१—सभी तपस्यायें निन्द्य नहीं	६१
२—सच्ची धर्मचर्य्यामें सहमत	६१
३—झूठी शारीरिक तपस्यायें	६२
४—सच्ची तपस्यायें	६३
(१) शीलसम्पत्ति	६४
(२) चित्त सम्पत्ति	६४
(३) प्रज्ञासम्पत्ति	६४
५—बुद्ध का सिंहनाद	६५
९—(९) पोट्ठपाद-सुत्त	६७
१—व्यर्थकी कथायें	६७
२—संज्ञानिरोध संप्रज्ञात समापत्ति	६८
(१) शीलसम्पत्ति	६८
(२) समाधि सम्पत्ति	६८
३—संज्ञा और आत्मा	७०
(१) अव्याकृत (=अनिर्वचनीय)	७१
(२) आत्मवाद	७२
(३) तीन प्रकारके शरीर	७३
(४) वर्तमान शरीर ही सत्य	७४
१०—(१०) सुभ-सुत्त	७६
१—धर्मके तीन स्कन्ध	७७
(१) शील स्कन्ध	७७
(२) समाधि स्कन्ध	७७
(३) प्रज्ञा स्कन्ध	७७
११—(११) केवट्ट-सुत्त	७८
१—ऋद्धियोंका दिखाना निषिद्ध	७८
२—तीन ऋद्धि प्रातिहार्य	७८
३—चारों भूतोंका निरोध कहाँपर	७९
(१) सारे देवता अनभिज्ञ	७९
(२) अनभिज्ञ ब्रह्माकी आत्म वंचना	८०
(३) बुद्ध ही जानकार	८०
१२—(१२) लोहिच्च-सुत्त	८२
१—धर्मोंपर आक्षेप	८२
२—सभीपर आक्षेप ठीक नहीं	८३

	पृष्ठ
३—झूठे गुरु	८४
४—सच्चे गुरु	८५
(१) शील	८५
(२) समाधि	८५
(३) प्रज्ञा	८५
१३–(१३) तेविज्ज-सुत्त	८६
ब्रह्माकी सलोकताका मार्ग	८६
१—ब्राह्मण और वेदरचयिता ऋषि अनभिज्ञ	८७
२—बुद्धका बतलाया मार्ग	९०
(१) मैत्री भावना	९१
(२) करुणा भावना	९१
(३) मुदिता भावना	९१
(४) उपेक्षा भावना	९१
२—महावग्ग	९३
१४–(१) महापदान-सुत्त	९५
१—विपश्यी आदि छ बुद्धोंकी जाति गोत्र आदि	९५
२—विपश्यी बुद्धकी जीवनी	९७
(१) जाति गोत्र आदि	९७
(२) गर्भमें आनेके लक्षण	९८
(३) बत्तीस शरीर लक्षण	९९
(४) गृहत्यागके चार पूर्वलक्षण	१०१
१—वृद्ध	१०१
२—रोगी	१०२
३—मृत	१०२
४—संन्यास	१०३
(५) संन्यास	१०३
(६) बुद्धत्वप्राप्ति	१०३
(७) धर्मचक्रप्रवर्तन	१०५
(८) शिष्यों द्वारा धर्म प्रचार	१०८
(९) देवता साक्षी	१०९
१५–(२) महानिदान-सुत्त	११०
अनातमवाद	११०
१—प्रतीत्य समुत्पाद	११०
२—नाना आत्मवाद	११३
३—अनात्मवाद	११३
४—प्रज्ञाविमुक्त	११५
५—उभयतो भाग विमुक्त	११६
१६–(३) महापरिनिब्बाण-सुत्त	११७
१—वज्जियों के विरुद्ध अजात शत्रु	११७
२—हानिसे बचनेके सात उपाय	११८
३—बुद्धकी अन्तिम यात्रा	१२२
(१) बुद्धके प्रतिसारिपुत्रका उद्गार	१२२
(२) पाटलिपुत्रका निर्माण	१२४
(३) धर्म-आदर्श	१२६
(४) अम्बपाली गणिकाका भोजन	१२७
(५) सख्त बीमारी	१२९
(६) निर्वाणकी तैयारी	१३१
(७) महाप्रदेश (कसौटी)	१३५
(८) चुन्दका अन्तिम भोजन	१३६
४—जीवनकी अन्तिम घड़ियाँ	१४०
(१) चार दर्शनीय स्थान	१४१
(२) स्त्रियों के प्रति भिक्षुओं का वर्ताव	१४१
(३) चक्रवर्ती की दाह क्रिया	१४२
(४) आनन्द के गुण	१४२
(५) चक्रवर्ती के चार गुण	१४३
(६) महासुदर्शन जातक	१४३
(७) सुभद्रकी प्रव्रज्या	१४४
(८) अन्तिम उपदेश	१४६
५—निर्वाण	१४७
६—महाकाश्यप को दर्शन	१४९
७—दाहक्रिया	१५०
८—स्तूपनिर्माण	१५०
१७–(४) महासुदस्सन-सुत्त	१५२
१—कुशावती राजधानी	१५२
२—चक्रवर्ती के सातरत्न	१५३
३—चार ऋद्धियाँ	१५५
४—धर्म प्रासाद (महल)	१५६

पृष्ठ

५—राजा ध्यान में रत १५७
६—राजाका ऐश्वर्य १५७
७—सुभद्रादेवी का दर्शनार्थ आना १५८
८—राजाकी मृत्यु १५८
९—बुद्ध ही महासुदर्शन राजा १५९

१८—(५) जनवसभ-सुत्त १६०

१—सभी देशों के मृतभक्तोंकी गतिका प्रकाश १६०
२—मगधके भक्तों की गतिका प्रकाश क्यों नहीं १६०
३—जनवसभ (बिम्बिसार) देवताका संलाप १६१
४—शक्रद्वारा बुद्ध धर्मकी प्रशंसा १६२
५—सनत्कुमार ब्रह्मा द्वारा बुद्ध धर्मकी प्रशंसा १६३
६—मगध के भक्तों की सुगति १६५

१९—(६) महागोविन्द-सुत्त १६७

१—शक्रद्वारा बुद्धकी प्रशंसा १६७
२—बुद्धके आठ गुण १६७
३—ब्रह्मा सनत्कुमार द्वारा बुद्ध धर्मकी प्रशंसा १६८
४—महागोविन्दजातक १६९
(१) महागोविन्दकी दक्षता १७०
(२) जम्बुद्वीपका सात राज्योंमें विभाग १७०
(३) ब्रह्माका दर्शन १७२
(४) महागोविन्दका सन्यास १७३
(५) बुद्ध-धर्मकी महिमा १७६

२०—(७) महासमय-सुत्त १७७

१—बुद्धके दर्शनार्थ देवताओंका आगमन १७७
२—देवताओंके नाम गाँव आदि १७८
३—मारका भी सदलबल पहुँचना १८०

२१—(८) सक्कपञ्ह-सुत्त १८१

१—इन्द्रशाल गुहामें शक्र १८१

पृष्ठ

२—पंचशिखका गान १८१
३—तिम्बरुकी कन्यापर पंचशिख आसक्त १८२
४—बुद्ध धर्मकी महिमा १८३
५—शक्रके छै प्रश्न १८५

२२—(९) महासतिपट्टान सुत्त १९०

१—कायानुपश्यना १९०
२—वेदनानुपश्यना १९२
३—चित्तानुपश्यना १९३
४—धर्मानुपश्यना १९३

२३—(१०) पायासिराजञ्ञ-सुत्त १९९

परलोकवादका खण्डन मण्डन १९९
१—मरनेके साथ जीवन उच्छिन्न १९९
(१) मरे नहीं लौटते २००
(२) धर्मात्मा आस्तिकोंको भी मरनेकी अनिच्छा २०३
(३) मृत शरीरसे जीवके जानेका चिन्ह नहीं २०४
२—मत-त्यागमें लोकलाजका भय २०७
३—सत्कार रहित यज्ञका कम फल २१०

३—पाथिकवग्ग २१३

२४—(१) पाथिक-सुत्त २१५

१—सुनक्खत्तका बौद्धधर्म-त्याग २१५
२—अचेल कोरखत्तियकी मृत्यु २१६
३—अचेल कोर मट्टककी सात-प्रतिज्ञायें २१८
४—अचेल पाथिक-पुत्रकी पराजय २१९
५—ईश्वर निर्माणवादका खण्डन २२३
६—शुभविमोक्ष २२४

२५—(२) उदुम्बरिक सीहनाद-सुत्त २२६

१—न्यग्रोधद्वारा बुद्धकी निन्दा २२६
२—अशुद्ध तपस्या २२७
३—शुद्ध तपस्या २२९
४—वास्तविक तपस्या—चार भावनायें २२९
५—न्यग्रोधका पश्चात्ताप २३१
६—बुद्ध धर्म से लाभ इसी शरीर में २३२

पृष्ठ

२६—(३) चक्कवत्ति सीहनाद-सुत्त २३३
१—स्वावलम्बी बनो २३३
२—मनुष्य क्रमशः अवनतिकी ओर २३३
(१) चक्रवर्त्तिव्रत २३४
(२) व्रतके त्यागसे लोगोंमें असन्तोष और निर्धनता २३५
(३) निर्धनता सभी पापोंकी जननी २३५
(४) पापोंसे आयु और वर्णका ह्रास २३६
(५) पशुवत् व्यवहार और नरसंहार २३७
३—मनुष्य क्रमशः उन्नतिकी ओर २३८
(१) पुण्य कर्मसे आयु और वर्णकी वृद्धि २३८
(२) मैत्रेय बुद्धका जन्म २३८
४—भिक्षुओं के कर्तव्य २३९

२७—(४) अग्गञ्ज-सुत्त २४०
१—वर्णव्यवस्थाका खंडन २४०
२—मनुष्य जाति की प्रगति २४१
(१) प्रलय के बाद सृष्टि २४१
(२) सत्त्वों (=मनुष्यों)का आरम्भिक आहार २४२
(३) स्त्री पुरुषका भेद २४३
(४) वैयक्तिकसम्पत्तिका आरंभ २४३
३—चारों वर्णोंका निर्माण २४४
(१) राजा(क्षत्रिय)की उत्पत्ति २४४
(२) ब्राह्मणकी उत्पत्ति २४४
(३) वैश्यकी उत्पत्ति २४५
(४) शूद्रकी उत्पत्ति २४५
(५) श्रमणकी उत्पत्ति २४५
४—जन्म नहीं कर्म प्रधान है २४५

२८—(५) सम्पसादनिय-सुत्त २४६
१—परम ज्ञानमें बुद्ध तीन कालमें अनुपम २४६
२—बुद्धके उपदेशोंकी विशेषतायें २४७
३—बुद्धमें अभिमान शून्यता २५१

पृष्ठ

२९—(६) पासादिक-सुत्त २५२
१—तीर्थंकर महावीरके मरने पर अनुयायियों में विवाद २५२
२—विवाद के लक्षण २५३
(१) अयोग्य गुरु २५३
(२) अयोग्य धर्म २५३
३—अयोग्य गुरु और धर्म २५३
(१) अधन्य शिष्य २५३
(२) धन्य शिष्य २५३
(३) गुरु की शोचनीय मृत्यु २५३
(४) गुरु की अशोचनीय मृत्यु २५४
(५) अपूर्ण संन्यास २५४
(६) पूर्ण संन्यास २५४
४—बुद्धके उपदिष्ट धर्म २५५
५—बुद्ध वचनकी कसौटी २५५
६—बुद्धधर्मचित्तकी शुद्धिके लिये २५६
७—अनुचित और उचित आराम पसन्दी २५६
(१) अनुचित २५६
(२) उचित २५६
(३) उचितका फल २५७
८—भिक्षु धर्मपर आरूढ़ २५७
९—बुद्धकालवादी यथार्थवादी २५७
(१) कालवादी २५७
(२) यथार्थवादी २५८
१०—अव्याकृत और व्याकृत बातें २५८
(१) अव्याकृत २५८
(२) व्याकृत २५८
११—पूर्वान्त और अपरान्त दर्शन २५८
(१) पूर्वान्त दर्शन २५८
(२) अपरान्त दर्शन २५९
१२—स्मृति प्रस्थान २५९

३०—(७) लक्खण-सुत्त २६०
१—बत्तीस महापुरुषलक्षण २६०
२—किस कर्मविपाकसे कौन लक्षण २६१
(१) कायिक सदाचार २६१

	पृष्ठ
(२) प्रियकारिता	२६१
३—जीवहिंसाका त्याग	२६२
४—सुन्दर भोजन का दान	२६२
५—मेल कराना	२६३
६—अर्थधर्मका उपदेश	२६३
७—सत्कारपूर्वकशिक्षण	२६३
८—हितकी जिज्ञासा	२६४
९—अक्रोध और वस्त्रदान	२६४
१०—मेल करना	२६५
११—योग्य अयोग्य पुरुषका ख्याल	२६५
१२—परहिताकांक्षा	२६६
१३—पीड़ा न देना	२६६
१४—प्रियदृष्टि	२६६
१५—सुकार्यमें अगुआपन	२६७
१६—सत्यवादिता	२६७
१७—झगळा मिटाना	२६८
१८—मधुरभाषिता	२६८
१९—भावपूर्ण वचन	२६९
२०—सच्ची जीविका	२६९
३१—(८) सिगालोवाद-सुत्त	*२७१*
गृहस्थके कर्तव्य	२७१
१—चार कर्मक्लेश	२७१
२—चार स्थानोंसे पाप	२७२
३—छ सम्पत्तिके नाशके कारण	२७२
४—मित्र और अमित्र	२७३
(क) मित्ररूपमें अमित्र	२७३
(१) परधनहारक	२७३
(२) बातूनी	२७३
(३) खुशामदी	२७३
(४) नाशमें सहायक	२७४
(ख) वास्तविक मित्र	२७४
(१) उपकारी	२७४
(२) समान सुखदुःखी	२७४
(३) हितवादी	२७४
(४) अनुकम्पक	२७४
५—छै दिशाओं की पूजा	२७५
३२—(९) आटानाटिय-सुत्त	*२७७*
१—आटानाटिय (भूतों-यक्षोंसे) रक्षा	२७७
(१) सातों बुद्धोंको नमस्कार	२७७
(२) चारों महाराजोंका वर्णन	२७८
१—धृतराष्ट्र	२७८
२—विरूढक	२७८
३—विरूपाक्ष	२७८
४—वैश्रवण	२७९
(३) रक्षा न मानने वाले यक्षोंको दंड	२७९
(४) प्रबल यक्षोंका नामस्मरण	२८०
२—आटानाटिय रक्षा की पुनरावृत्ति	२८०
३३—(१०) संगीति परियाय-सुत्त	*२८१*
१—पावाके नवीन संस्थागार में बुद्ध	२८१
२—गुरु के मरने पर जैनों में विवाद	२८२
३—बौद्ध मन्तव्यों की सूची	२८२
३४—(११) दसुत्तर-सुत्त	*३०२*
१—बौद्ध मन्तव्यों की सूची	३०२

सुत्त(=सूत्र)-अनुक्रमणी

नाम	पृष्ठ
अग्गञ्ञ (२७)	२४०
अपदान। महा—(१४)	९५
अम्बट्ठ (३)	३४
आटानाटिय (३२)	२७७
उदुम्बरिक-सीहनाद (२५)	२२६
कस्सप-सीहनाद (८)	६१
कुटदन्त (५)	५०
केवट्ट (११)	७८
गोविन्द। महा—(१९)	१६७
चक्कवत्ति-सीहनाद (२६)	२३३
जनवसभ (१८)	१६०
जालिय (७)	५९
तेविज्ज (१३)	८६
दसुत्तर (३४)	३०२
निदान। महा—(१५)	११०
परिनिब्बाण। महा—(१६)	११७
पाथिक (२४)	२१५
पायासि राजञ्ञ (२३)	१९९
पासादिक (२९)	२५२
पोट्ठपाद (९)	६७
ब्रह्मजाल (१)	१
महागोविन्द (१९)	१६७
महानिदान (१५)	११०
महापदान (१४)	९५
महापरिनिब्बाण (१६)	११७
महालि (६)	५६
महासतिपट्ठान (२२)	१९०
महासमय (२०)	१७७
महासीहनाद (८)	६१
महासुदस्सन (१७)	१५२
लक्खण (३०)	२६०
लोहिच्च (१२)	८२
सक्कपञ्ह (२१)	१८१
संगीति (३३)	२८१
सतिपट्ठान। महा—(२२)	१९०
समय। महा—(२०)	१७७
सम्पसादनिय (२८)	२४६
सामञ्ञफल (२)	१६
सिगालोवाद (३१)	२७१
सीहनाद। उदुम्बरिक-(२५)	२२६
सीहनाद। चक्कवत्ति-(२६)	२३३
सीहनाद। महा-(८)	६१
सुदस्सन। महा-(१७)	५१२
सुभ (१०)	७६
सोणदंड (४)	४४

ग्रन्थ-विषय-सूची

विषय		पृष्ठ
१—प्राक्कथन	..	७
२—सुत्त-सूची	..	११
३—सुत्त-अनुक्रमणी	..	१७
४—मान-चित्र	..	१५
५—ग्रन्थानुवाद	..	१-३१४
६—उपमा-अनुक्रमणी	..	३१५
७—नाम-अनुक्रमणी	..	३१७
८—शब्द-अनुक्रमणी	..	३३२

१–सीलक्खन्ध-वग्ग

नमो तस्स भगवतो अरहतो सम्मासम्बुद्धस्स ।

दीघ-निकाय

१–ब्रह्मजाल-सुत्त (१।१।१)

१––बुद्धमें साधारण बातें––आरंभिक शील, मध्यम शील, महाशील। २––बुद्धमें असाधारण बातें––बासठ दार्शनिक मत––(१) आदिके सम्बन्धकी १८ धारणायें; (२) अन्तके सम्बन्धकी ४४ धारणायें।

ऐसा मैंने सुना—एक समय भगवान् पाँच सौ भिक्षुओं के बळे संघके साथ राजगृह और नालन्दाके बीच लम्बे रास्तेपर जा रहे थे।

सुप्रिय परिव्राजक भी अपने शिष्य ब्रह्मदत्त माणवकके साथ० जा रहा था। उस समय सुप्रिय० अनेक प्रकारसे बुद्ध, धर्म और संघकी निन्दा कर रहा था। किन्तु सुप्रियका शिष्य ब्रह्मदत्त ० अनेक प्रकारसे बुद्ध, धर्म और संघकी प्रशंसा कर रहा था। इस प्रकार वे आचार्य और शिष्य दोनों परस्पर अत्यन्त विरुद्ध पक्षका प्रतिपादन करते भगवान् और भिक्षु-संघके पीछे-पीछे जा रहे थे।

तब भगवान् भिक्षु-संघके साथ रात-भरके लिए अम्बलट्ठिका (नामक बाग)के राजकीय भवनमें टिक गये।

सुप्रिय भी अपने शिष्य ब्रह्मदत्तके साथ० (उसी) भवनमें टिक गया। वहाँ भी सुप्रिय अनेक प्रकारसे बुद्ध, धर्म और संघकी निन्दा कर रहा था और ब्रह्मदत्त० प्रशंसा। इस प्रकार वे आचार्य और शिष्य दोनों परस्पर विरोधी पक्षका प्रतिपादन कर रहे थे।

रात ढल जानेके बाद पौ फटनेके समय उठकर बैठकमें इकट्ठे हो बैठे बहुतसे भिक्षुओंमें ऐसी बात चली—"आवुस ! यह ब्रळा आश्चर्य और अद्भुत है कि सर्वज्ञ, सर्वद्रष्टा, अर्हत् और सम्यक् सम्बुद्ध भगवान् (सभी) जीवोंके (चित्तके) नाना अभिप्रायको ठीक-ठीक जान लेते हैं। यही सुप्रिय अनेक प्रकारसे बुद्ध, धर्म और संघकी निन्दा कर रहा है, और उसका शिष्य ब्रह्मदत्त प्रशंसा ।०"

तब भगवान् उन भिक्षुओंके वार्तालापको जान बैठकमें गये, और बिछे हुए आसनपर बैठ गये।

बैठकर भगवान्ने भिक्षुओंको सम्बोधित किया—"भिक्षुओ ! अभी क्या बात चल रही थी; किस बातमें लगे थे ?"

इतना कहनेपर उन भिक्षुओंने भगवान्से यह कहा—"भन्ते(=स्वामिन्) ! रातके ढल जानेके बाद पौ फटनेके समय उठकर बैठकमें इकट्ठे बैठे हम लोगोंमें यह बात चली—आवुस ! यह बळा आश्चर्य और अद्भुत है कि सर्ववित्, सर्वद्रष्टा, अर्हत्, सम्यक् सम्बुद्ध भगवान् (सभी) जीवोंके (चित्तके) नाना अभिप्रायको ठीक-ठीक जान लेते हैं। यही सुप्रिय० निन्दा कर रहा है और ब्रह्मदत्त प्रशंसा ०। इस तरह ये पीछे-पीछे आ रहे हैं। भन्ते ! हम लोगोंकी बात यही थी कि भगवान् पधारे।"

(भगवान् बोले—) "भिक्षुओ ! यदि कोई मेरी निन्दा करे, या धर्मकी निन्दा करे, या संघकी निन्दा करे, तो तुम लोगोंको न (उससे) वैर, न असन्तोष और न चित्तमें कोप करना चाहिए।

"भिक्षुओ ! यदि कोई मेरी, धर्मकी या संघकी निन्दा करे, और तुम (उससे) कुपित या खिन्न हो जाओगे, तो इसमें तुम्हारी ही हानि है।

"भिक्षुओ ! यदि कोई मेरी, धर्मकी या संघकी निन्दा करे, तो क्या तुम लोग (झट) कुपित और खिन्न हो जाओगे, और इसकी जाँच भी न करोगे कि उन लोगोंके कहनेमें क्या सच बात है और क्या झूठ ?"

"भन्ते ! ऐसा नहीं ।"

"भिक्षुओ ! यदि कोई० निन्दा करे, तो तुम लोगोंको सच और झूठ बातका पूरा पता लगाना चाहिए—क्या यह ठीक नहीं है, यह असत्य है, यह बात हम लोगोंमें नहीं है, यह बात हम लोगोंमें बिलकुल नहीं है ?

"भिक्षुओ ! और यदि कोई मेरी, धर्मकी या संघकी प्रशंसा करे, तो तुम लोगोंको न आनन्दित, न प्रसन्न और न हर्षोत्फुल्ल हो जाना चाहिए।०यदि तुम लोग आनन्दित, प्रसन्न और हर्षोत्फुल्ल हो जाओगे, तो उसमें तुम्हारी ही हानि है ।

"भिक्षुओ ! यदि कोई प्रशंसा ० करे, तो तुम लोगोंको सच और झूठ बातका पूरा पता लगाना चाहिए—क्या यह बात ठीक है, यह बात सत्य है, यह बात हम लोगोंमें है और यथार्थमें है ।

१—बुद्ध में साधारण बातें

(१) आरम्भिक शील

"भिक्षुओ ! यह शील तो बहुत छोटा और गौण है, जिसके कारण अनाळी लोग (=पृथग् जन) मेरी प्रशंसा करते हैं। भिक्षुओ ! वह छोटा और गौण शील कौनसा है, जिसके कारण अनाळी मेरी प्रशंसा करते हैं ?—(वे ये हैं)—श्रमण गौ त म जीवहिंसा (=प्राणातिपात)को छोळ हिंसासे विरत रहता है। वह दंड और शस्त्रको त्यागकर लज्जावान, दयालु और सब जीवोंका हित चाहनेवाला है ।

"भिक्षुओ ! अथवा अनाळी मेरी प्रशंसा इस प्रकार करते हैं—श्रमण गौतम चोरी (=अदत्तादान) को छोळकर चोरीसे विरत रहता है। वह किसीसे दी-गई चीजको ही स्वीकार करता है (=दत्तादायी), किसीसे दी गई चीज़हीकी अभिलाषा करता है (=दत्ताभिलाषी), और इस तरह पवित्र आत्मावाला, होकर विहार करता है।

"भिक्षुओ ! अथवा अनाळी मेरी प्रशंसा इस प्रकार करते हैं—व्यभिचार छोळकर श्रमण गौतम निकृष्ट स्त्री-संभोगसे सर्वथा विरत रहता है।

"भिक्षुओ ! अथवा०—मिथ्या-भाषणको छोळ श्रमण गौतम मिथ्या-भाषणसे सदा विरत रहता है। वह सत्यवादी, सत्यव्रत, दृढ़वक्ता, विश्वास-पात्र और जैसी कहनी वैसी करनीवाला है।

"भिक्षुओ ! अथवा०—चुगली करना छोळ श्रमण गौतम चुगली करनेसे विरत रहता है । फूट डालनेके लिए न इधरकी बात उधर कहता है और न उधरकी बात इधर; बल्कि फूटे हुए लोगोंको मिलानेवाला, मिले हुए लोगोंके मेलको और भी दृढ़ करनेवाला, एकता-प्रिय, एकता-रत, एकतासे प्रसन्न होनेवाला और एकता स्थापित करनेके लिये कहनेवाला है।

"भिक्षुओ ! अथवा०—कठोर भाषणको छोळ श्रमण गौतम कठोर भाषणसे विरत रहता है। वह निर्दोष, मधुर, प्रेमपूर्ण, जँचनेवाला, शिष्ट और बहुजनप्रिय भाषण करनेवाला है ।

"भिक्षुओ ! अथवा०—निरर्थक बातूनीपनको छोळ श्रमण गौतम निरर्थक बातूनीपनसे विरत रहता है। वह समयोचित बोलनेवाला, यथार्थवक्ता, आवश्यकोचित वक्ता, धर्म और विनयकी बात बोलनेवाला तथा सारयुक्त बात कहनेवाला है ।

"भिक्षुओ ! अथवा०—श्रमण गौतम किसी बीज या प्राणीके नाश करनेसे विरत रहता है, एकाहारी है, और बेवक्तके खानेसे, नृत्य, गीत, वाद्य और अश्लील हाव-भावके दर्शनसे विरत रहता है। माला, गन्ध, विलेपन, उबटन तथा अपनेको सजने-धजनेसे श्रमण गौतम विरत रहता है। श्रमण गौतम ऊँची और बहुत ठाट-बाटकी शय्यासे विरत रहता है। ० कच्चे अन्नके ग्रहणसे विरत रहता है। ० कच्चे माँसके ग्रहणसे विरत रहता है। ० स्त्री और कुमारीके ग्रहणसे विरत रहता है। ० दास और दासीके ग्रहणसे विरत रहता है। बकरी या भेळके ग्रहणसे विरत रहता है। ०कुत्ता और सूअरके ग्रहणसे विरत रहता है। ० हाथी, गाय, घोळा और खच्चरके ग्रहणसे०।० खेत तथा माल असबाबके ग्रहणसे०।० दूतके काम करनेसे ०।० खरीद-बिक्रीके काम करनेसे ०।० तराजू, पैला और बटखरेमें ठगवनीजी करनेसे ०। दलाली, ठगी और झूठा सोना-चाँदी बनाना (=निकति)के कुटिल कामसे, हाथ-पैर काटने, बध करने, बाँधने, लूटने-पीटने और डाका डालनेके कामसे विरत रहता है।

"भिक्षुओ ! अनाळी तथागतकी प्रशंसा इसी प्रकार करते हैं।

(२) *मध्यम शील*

"भिक्षुओ ! अथवा अनाळी मेरी प्रशंसा इस प्रकार करते हैं—जिस प्रकार कितने श्रमण और ब्राह्मण (गृहस्थोंके द्वारा) श्रद्धापूर्वक दिये गये भोजनको खाकर इस प्रकारके सभी बीज और सभी प्राणीके नाशमें लगे रहते हैं, जैसे—मूलबीज (=जिनका उगना मूलसे होता हैं), स्कन्धबीज (=जिनका प्ररोह गाँठसे होता है, जैसे—ईख), फलबीज और पाँचवाँ अग्रबीज (=ऊपरसे उगता पौधा)। उस प्रकार श्रमण गौतम बीज और प्राणीका नाश नहीं करता।

"भिक्षुओ ! अथवा०—जिस प्रकार कितने श्रमण और ब्राह्मण० इस प्रकारके जोळने और बटोरनेमें लगे रहते हैं, जैसे—अन्न, पान, वस्त्र, वाहन, शय्या, गन्ध तथा और भी वैसी ही दूसरी चीज़ोंका इकट्ठा करना, उस प्रकार श्रमण गौतम जोळने और बटोरनेमें नहीं लगा रहता।

"भिक्षुओ ! अथवा०—जिस प्रकार कितने श्रमण और ब्राह्मण ० इस प्रकारके अनुचित दर्शनमें लगे रहते हैं, जैसे—नृत्य, गीत, बाजा, नाटक, लीला, ताली, ताल देना, घळापर तबला बजाना, गीत-मण्डली, लोहेकी गोलीका खेल, बाँसका खेल, धोपन,[1] हस्ति-युद्ध, अश्व-युद्ध, महिष-युद्ध, वृषभ-युद्ध, बकरोंका युद्ध, भेळोंका युद्ध, मुर्गोका लळाना, बत्तकका लळाना, लाठीका खेल, मुष्टि-युद्ध, कुश्ती, मार-पीटका खेल, सेना, लळाईकी चालें इत्यादि उस प्रकार श्रमण गौतम अनुचित दर्शनमें नहीं लगा रहता है।

"भिक्षुओ ! अथवा०—जिस प्रकार कितने श्रमण और ब्राह्मण ० जूआ आदि खेलोंके नशेमें लगे रहते हैं, जैसे—[2]अष्टपद, दशपद, आकाश, परिहारपथ, सन्निक, खलिक, घटिक, शलाक-हस्त, अक्ष, पंगचिर, वंकक, मोक्खचिक, चिलिंगुलिक, पत्ताल्हक, रथकी दौळ, तीर चलानेकी बाजी, बुझौअल, और नकल, उस प्रकार श्रमण गौतम जूआ आदि खेलोंके नशेमें नहीं पळता है।

"भिक्षुओ ! अथवा०—जिस प्रकार कितने श्रमण और ब्राह्मण ० इस तरहकी ऊँची और ठाट-बाटकी शय्यापर सोते हैं, जैसे—दीर्घ आसन, पलंग, बळे बळे रोयेंवाला आसन, चित्रित आसन, उजला कम्बल, फूलदार बिछावन, रजाई, गद्दा, सिंह-व्याघ्र आदिके चित्रवाला आसन, झालरदार आसन, काम किया हुआ आसन, लम्बी दरी, हाथीका साज, घोळेका साज, रथका साज, कदलिमृगके खालका बना आसन, चँदवादार आसन, दोनों ओर तकिया रखा हुआ (आसन) इत्यादि; उस प्रकार श्रमण गौतम ऊँची और ठाट-बाटकी शय्यापर नहीं सोता।

---

[1] **उस समयके खेल।**

[2] **उस समयके जूये।**

"भिक्षुओ ! अथवा०—जिस प्रकार कितने श्रमण और ब्राह्मण ० इस प्रकार अपनेको सजने-धजनेमें लगे रहते हैं, जैसे—उबटन लगवाना, शरीरको मलवाना, दूसरेके हाथ नहाना, शरीर दबवाना, दर्पण, अंजन, माला, लेप, मुख-चूर्ण(=पाउडर), मुख-लेपन, हाथके आभूषण, शिखामें कुछ बाँधना; छळी, तलवार, छाता, सुन्दर जूता, टोपी, मणि, चँवर, लम्बे-लम्बे झालरवाले साफ उजले कपळे इत्यादि, उस प्रकार श्रमण गौतम अपनेको सजने-धजनेमें नहीं लगा रहता।

"भिक्षुओ ! अथवा०—जिस प्रकार कितने श्रमण और ब्राह्मण० इस प्रकारकी व्यर्थकी (=तिरश्चीन) कथामें लगे रहते हैं, जैसे—राजकथा, चोर, महामंत्री, सेना, भय, युद्ध, अन्न, पान, वस्त्र, शय्या, माला, गन्ध, जाति, रथ, ग्राम, निगम, नगर, जनपद, स्त्री, सूर, चौरस्ता (=विशिखा), पनघट, और भूत-प्रेतकी कथायें, संसारकी विविध घटनाएँ, सामुद्रिक घटनाएँ, तथा इसी तरहकी इधर-उधरकी जनश्रुतियाँ; उस प्रकार श्रमण गौतम तिरश्चीन कथाओंमें नहीं लगता।

"भिक्षुओ ! अथवा०—जिस प्रकार कितने श्रमण और ब्राह्मण० इस प्रकारकी लळाई-झगळोंकी बातोंमें लगे रहते हैं, जैसे—तुम इस मत (=धर्मविनय) को नहीं जानते, मैं० जानता हूँ, तुम० क्या जानोगे ? तुमने इसे ठीक नहीं समझा है; मैं इसे ठीक-ठीक समझता हूँ; मैं धर्मानुकूल कहता हूँ; तुम धर्म-विरुद्ध कहते हो; जो पहले कहना चाहिए था, उसे तुमने पीछे कह दिया, और जो पीछे कहना चाहिए था, उसे पहले कह दिया; बात कट गई; तुमपर दोषारोपण किया गया; तुम पकळ लिये गये; इस आपत्तिसे छूटनेकी कोशिश करो; यदि सको, तो उत्तर दो इत्यादि; इस प्रकार श्रमण गौतम लळाई-झगळेकी बातमें नहीं रहता।

"भिक्षुओ ! अथवा०—जिस प्रकार कितने श्रमण और ब्राह्मण० (इधर-उधर) जैसे—राजा, महामन्त्री, क्षत्रिय, ब्राह्मणों, गृहस्थों, कुमारोंके दूतका काम करते फिरते हैं, वहाँ जाओ, यहाँ आओ, यह लाओ, यह वहाँ ले जाओ इत्यादि; उस प्रकार श्रमण गौतम दूतका काम नहीं करता।

"भिक्षुओ ! अथवा०—जिस प्रकार कितने श्रमण और ब्राह्मण० पाखंडी और वंचक, बातूनी, जोतिषके पेशावाले, जादू-मन्त्र दिखानेवाले और लाभसे लाभकी खोज करते हैं, वैसा श्रमण गौतम नहीं है।

(३) *महाशील*

जिस प्रकार कितने श्रमण और ब्राह्मण श्रद्धापूर्वक दिये गये भोजनको खाकर इस प्रकारकी हीन (=नीच) विद्यासे जीवन बिताते हैं, जैसे—अंगविद्या, उत्पाद०, स्वप्न०, लक्षण०, मूषिक-विष० अग्नि-हवन, दर्वी-होम, तुष-होम, कण-होम, तण्डुल-होम, घृत-होम, तैल-होम, मुखमें घी लेकर कुल्लेसे होम, रुधिर-होम, वास्तुविद्या, क्षेत्रविद्या, शिव०, भूत०, भूरि०, सर्प०, विष०, बिच्छूके झाळ-फूँककी विद्या, मूषिक विद्या, पक्षि०, शरपरित्राण (मन्त्र जाप, जिससे लळाईमें बाण शरीरपर न गिरे), और मृगचक्र; उस प्रकार श्रमण गौतम इस प्रकारकी हीन विद्यासे निन्दित जीवन नहीं बिताता।

"भिक्षुओ ! अथवा०—जिस प्रकार कितने श्रमण और ब्राह्मण० इस प्रकारकी हीन विद्यासे निन्दित जीवन बिताते हैं, जैसे—मणि-लक्षण, वस्त्र०, दण्ड०, असि०, वाण, धनुष०, आयुध०, स्त्री०, पुरुष०, कुमार०, कुमारी०, दास०, दासी०, हस्ति०, अश्व०, भैंस०, वृषभ०, गाय०, अज०, मेष०, मुर्गा०, बत्तक०, गोह०, कर्णिका०, कच्छप० और मृगलक्षण; उस प्रकार श्रमण गौतम इस प्रकारकी हीन विद्यासे निन्दित जीवन नहीं बिताता।

"भिक्षुओ ! अथवा०—जिस प्रकार० निन्दित जीवन बिताते हैं, जैसे—राजा बाहर निकल जायेगा नहीं निकल जायेगा, यहाँका राजा बाहर निकल जायगा, बाहरका राजा यहाँ आवेगा,

यहाँके राजाकी जीत होगी और बाहरके राजाकी हार, यहाँके राजाकी हार होगी और बाहरके राजाकी जीत, इसकी जीत होगी और उसकी हार; श्रमण गौतम इस प्रकारकी हीन विद्यासे निन्दित जीवन नहीं बिताता।

"भिक्षुओ! अथवा०—निन्दित जीवन बिताते हैं, जैसे—चन्द्र-ग्रहण होगा, सूर्य-ग्रहण, नक्षत्र-ग्रहण, चन्द्रमा और सूर्य अपने-अपने मार्ग ही पर रहेंगे, चन्द्रमा और सूर्य अपने मार्गसे दूसरे मार्गपर चले जायेंगे, नक्षत्र अपने मार्गपर रहेगा,० मार्गसे हट जायगा, उल्कापात होगा, दिशा दाह होगा, भूकम्प होगा, सूखा बादल गरजेगा, चन्द्रमा, सूर्य और नक्षत्रोंका उदय, अस्त, सदोष होगा और शुद्ध होना होगा, चन्द्र-ग्रहणका यह फल होगा,० चन्द्रमा, सूर्य और नक्षत्रके उदय, अस्त सदोष या निर्दोष होनेसे यह फल होगा; उस प्रकार श्रमण गौतम इस प्रकारकी हीन विद्यासे निन्दित जीवन नहीं बिताता।

"भिक्षुओ! अथवा०—निन्दित जीवन बिताते हैं, जैसे—अच्छी वृष्टि होगी, बुरी०, सस्ती-होगी, महँगी पळेगी, कुशल होगा, भय होगा, रोग होगा, आरोग्य होगा, हस्तरेखा-विद्या, गणना, कविता-पाठ इत्यादि; उस प्रकार श्रमण गौतम० नहीं०।

"भिक्षुओ! अथवा०—निन्दित जीवन बिताते हैं, जैसे—सगाई, विवाह, विवाहके लिए उचित नक्षत्र बताना, तलाक देनेके लिए उचित नक्षत्र बताना, उधार या ऋणमें दिये गये रुपयोंके वसूल करनेके लिए उचित नक्षत्र बताना, उधार या ऋण देनेके लिए उचित नक्षत्र बताना, सजना-धजना, नष्ट करना, गर्भपुष्टि करना, मन्त्रबलसे जीभको बाँध देना,० ठुड्डीको बाँध देना,० दूसरेके हाथको उलट देना,० दूसरेके कानको बहरा बना देना,० दर्पणपर देवता बुलाकर प्रश्न पूछना, कुमारीके शरीरपर और देव-वाहिनीके शरीरपर देवता बुलाकर प्रश्न पूछनाँ, सूर्य-पूजा, महाब्रह्म-पूजा, मन्त्रके बल मुँहसे अग्नि निकालना; उस प्रकार श्रमण गौतम० नहीं०।

"भिक्षुओ! अथवा० निन्दित जीवन बिताते हैं, जैसे—मिन्नत मानना, मिन्नत पुराना, मन्त्रका अभ्यास करना, मन्त्रबलसे पुरुषको नपुंसक और नपुंसकको पुरुष बनाना, इन्द्रजाल, बलिकर्म, आचमन; स्नान-कार्य, अग्नि-होम, दवा देकर वमन, विरेचन, ऊर्ध्वविरेचन, शिरोविरेचन कराना, कानमें डालने के लिए तेल तैयार कराना, आँखके लिये०, नाकमें तेल देकर छिंकवाना, अंजन तैयार करना, छुरी-काँटाकी चिकित्सा करना, वैद्यकर्म; उस प्रकार श्रमण गौतम० नहीं०।

"भिक्षुओ! यह शील तो बहुत छोटे और गौण हैं, जिसके कारण अनाळी मेरी प्रशंसा करते हैं।

२—बुद्धमें असाधारण बातें

बासठ दार्शनिक मत

"भिक्षुओ! (इनके अतिरिक्त) और दूसरे धर्म हैं, जो गम्भीर, दुर्ज्ञेय, दुरनुबोध, शान्त, सुन्दर, अतर्कावचर (=जो तर्कसे नहीं जाने जा सकते), निपुण और पंडितोंके समझने योग्य हैं, जिन्हें तथागत स्वयं जानकर और साक्षात्कर कहते हैं, (और) जिन्हें तथागतके यथार्थ गुणको ठीक-ठीक कहने वाले कहते हैं।

(१) आदिके सम्बन्धकी १८ धारणायें

"भिक्षुओ! वे ० धर्म कौन से हैं?

"भिक्षुओ! कितने ही श्रमण और ब्राह्मण हैं, जो १८ कारणोंसे पूर्वान्त-कल्पिक=आदिम-छोरवाले मतको माननेवाले और पूर्वान्तके आधारपर अनेक (केवल) व्यहवहारके शब्दोंका प्रयोग करते हैं। वे० किस कारण और किस प्रमाणके बल पर० पूर्वान्तके आधारपर अनेक व्यवहारके शब्दोंका प्रयोग करते हैं।

"भिक्षुओ ! कितने ही श्रमण और ब्राह्मण नित्यवादी (=शाश्वतवादी) हैं, जो चार कारणोंसे आत्मा और लोक दोनोंको नित्य मानते हैं ? वे० किस कारण और किस प्रमाणके बल पर ० आत्मा और लोकको नित्य मानते हैं ?

१—शाश्वत-वाद—(१) "भिक्षुओ ! कोई भिक्षु संयम, वीर्य, अध्यवसाय, अप्रमाद और स्थिर-चित्तसे उस प्रकार चित्तसमाधिको प्राप्त करता है, जिस समाधिप्राप्त चित्तमें अनेक प्रकारके—जैसे एक सौ० हजार० लाख, अनेक लाख पूर्वजन्मोंकी स्मृति हो जाती है—मैं इस नामका, इस गोत्रका, इस रंगका, इस आहारका, इस प्रकारके सुखों और दु:खोंका अनुभव करनेवाला और इतनी आयु तक जीनेवाला था। सो मैं वहाँ मरकर वहाँ उत्पन्न हुआ । वहाँ भी मैं इस नामका० था । सो मैं वहाँ मरकर यहाँ उत्पन्न हुआ।

"इस प्रकार वह अपने पूर्वजन्मके सभी आकार प्रकारका स्मरण करता है। वह (इसीके बलपर) कहता है—आत्मा और लोक नित्य, अपरिणामी, कूटस्थ और अचल हैं। प्राणी चलते, फिरते, उत्पन्न होते और मर जाते हैं, (किन्तु) अस्तित्व नित्य है।

"सो कैसे ? मैं भी ० उस प्रकारकी चित्तसमाधिको प्राप्त करता हूँ, जिस समाहित चित्तमें अनेक प्रकारके० पूर्वजन्मोंकी स्मृति हो जाती है। अतः ऐसा जान पळता है, मानो आत्मा और लोक नित्य० हैं।

"भिक्षुओ ! यह पहला कारण है, जिस प्रमाणके आधार पर कितने श्रमण और ब्राह्मण शाश्वतवादी हो, आत्मा और लोकको नित्य बताते हैं।

"(२) दूसरे, वे किस कारण और किस प्रमाणके आधार पर ० आत्मा और लोकको शाश्वत मानतें हैं?

"भिक्षुओ ! कोई श्रमण या ब्राह्मण० उस प्रकारकी चित्तसमाधिको प्राप्त करता है, जिस समाहित चित्तमें अनेक प्रकारके पूर्वजन्मोंको जैसे—एक संवर्त-विवर्त (कल्प) ०, दस संवर्त—मैं इस नामका० था०, स्मरण करता है, सो मैं वहाँ मरकर यहाँ उत्पन्न हुआ।

"इस प्रकार वह अपने पूर्व जन्मके सभी आकार-प्रकारोको स्मरण करता है। अतः वह (इसी के बलपर) कहता है—आत्मा और लोक दोनों नित्य हैं। प्राणी ० मर जाते हैं; किन्तु अस्तित्व नित्य है। सो कैसे ? मैं भी ० उस प्रकारकी चित्तसमाधिको प्राप्त करता हूँ, जिस समाहित चित्तमें अनेक प्रकार के पूर्व जन्मोंकी स्मृति हो जाती है०। अतः ऐसा जान पळता है, मानो आत्मा और लोक नित्य है।

"भिक्षुओ ! यह दूसरा कारण है०।

(३) "तीसरे, वे किस कारण ० आत्मा और लोकको नित्य मानते हैं ?

"भिक्षुओ ! कोई श्रमण या ब्राह्मण० उस चित्तसमाधिको प्राप्त करता है, जिस समाहित चित्त में अनेक प्रकारके पूर्व जन्मोंको स्मरण करता है, जैसे—दस संवर्त-विवर्त, बीस०, तीस०, चालीस संवर्त-विवर्त —मैं इस नामका० था०, सो मैं वहाँ मरकर यहाँ उत्पन्न हुआ। अतः वह (इसीके बलपर) कहता है —आत्मा और लोक दोनों नित्य हैं। प्राणी० मर जाते हैं; किन्तु अस्तित्व नित्य है।

"सो कैसे ? मैं भी ० उस चित्त-समाधिको प्राप्त करता हूँ, जिस समाहित चित्तमें अनेक प्रकारके पूर्वजन्मोंकी स्मृति हो जाती है०। अतः ऐसा जान पळता है, मानो आत्मा और लोक नित्य ० हैं।

"भिक्षुओ यह तीसरा कारण है०।

(४) "चौथे, वे किस कारण० आत्मा और लोकको नित्य मानते हैं ?

"भिक्षुओ ! कोई श्रमण या ब्राह्मण तर्क करनेवाला है। वह अपने तर्कसे विचारकर ऐसा मानता

है—आत्मा और लोक नित्य० हैं। प्राणी० मर जाते हैं; किन्तु अस्तित्व नित्य है।

"भिक्षुओ ! यह चौथा कारण है०।

"भिक्षुओ ! इन्हीं चार कारणोंसे शाश्वतवादी श्रमण और ब्राह्मण आत्मा और लोकको नित्य मानते हैं। जो कोई ० आत्मा और लोकको नित्य मानते हैं, उनके यही चार कारण हैं। इनको छोळ और कोई कारण नहीं है।

"तथागत उन सभी कारणोंको जानते हैं, उन कारणोंके प्रमाण और प्रकारको जानते हैं, और अधिक भी जानते हैं; जानकर भी "मैं जानता हूँ" ऐसा अभिमान नहीं करते। अभिमान न करते हुए स्वयं मुक्तिको जान लेते हैं। वेदनाओंकी उत्पत्ति (=समुदय), अन्त, रस (=आस्वाद), दोष और निराकरणको ठीक-ठीक जानकर तथागत अनासक्त होकर मुक्त रहते हैं। भिक्षुओ ! वे धर्म गम्भीर, दुर्ज्ञेय, दुरनुबोध, शान्त, उत्तम, अतर्कावचर, निपुण और पंडितोंके समझने योग्य हैं, जिन्हें तथागत स्वयं जानकर और साक्षातकर कहते हैं, जिसे कि तथागतके यथार्थ गुणको कहने वाले कहते हैं।

(इति) प्रथम भाणवार ॥१॥

२–नित्यता-अनित्यता-वाद (५)—"भिक्षुओ ! कितने श्रमण और ब्राह्मण हैं, जो अंशतः नित्य और अंशतः अनित्य माननेवाले हैं। वे चार कारणोंसे आत्मा और लोकको अंशतः नित्य और अंशतः अनित्य मानते हैं। वे० किस कारण और किस प्रमाणके बलपर० आत्मा और लोकको अंशतः नित्य और अंशतः अनित्य मानते हैं ?

"भिक्षुओ ! बहुत वर्षोंके बीतनेपर एक समय आता है, जब इस लोकका प्रलय (=संवर्त) हो जाता है। प्रलय हो जानेके बाद आ भा स्व र ब्रह्मलोकके रहनेवाले वहाँ मनोमय, प्रीतिभक्ष (=समाधिज प्रीतिमें रत रहनेवाले) प्रभावान्, अन्तरिक्षचर, मनोरम वस्त्र और आभरणसे युक्त बहुत दीर्घ काल तक रहते हैं।

"भिक्षुओ ! बहुत वर्षोंके बीतनेपर एक समय आता है, जब उस लोकका प्रलय हो जाता है। ० प्रलय हो जानेके बाद सूना (=शून्य) ब्रह्मविमान उत्पन्न होता है। तब कोई प्राणी आयु या पुण्यके क्षय होनेसे आभास्वर ब्रह्मलोकसे गिरकर ब्रह्मविमानमें उत्पन्न होता है। वह वहाँ मनोमय ०। वहाँ वह अकेले बहुत दिनों तक रहकर ऊब जाता है, और उसे भय होने लगता है—अहो ! यहाँ दूसरे भी प्राणी आवें !

"तब (कुछ समय बाद) दूसरे भी आयु और पुण्यके क्षय होनेसे आभास्वर ब्रह्मलोकसे गिरकर ब्रह्मविमानमें उत्पन्न होते हैं। वे उस (पहले) सत्वके साथी होते हैं। वे भी वहाँ मनोमय०।

"वहाँ जो सत्त्व पहले उत्पन्न होता है, उसके मनमें ऐसा होता है —मैं ब्रह्मा, महाब्रह्मा, अभिभू, अजित, सर्वद्रष्टा, वशवर्ती, ईश्वर, कर्ता, निर्माता, श्रेष्ठ, महायशस्वी, वशी और हुए और होनेवाले (प्राणियों) का पिता हूँ; ये प्राणी मेरे ही द्वारा निर्मित हुए हैं। सो कैसे ? मेरे ही मनमें पहले ऐसा हुआ था—अहो ! दूसरे भी जीव यहाँ आवें। फिर मेरी ही इच्छासे ये सत्व यहाँ उत्पन्न हुए हैं।

"जो प्राणी पीछे उत्पन्न हुए थे, उनके मनमें भी ऐसा हुआ—यह ब्रह्मा, महाब्रह्मा० है। हम सभी इसी ब्रह्मा द्वारा निर्मित किये गये हैं। सो किस हेतु? इनको हम लोगोंने पहले ही उत्पन्न देखा, हम लोग तो इनके पीछे उत्पन्न हुए। अतः जो (हम लोगों से) पहले ही उत्पन्न हुआ, वह हम लोगोंसे दीर्घ आयु का, अधिक गुणपूर्ण और अधिक यशस्वी है, और जो (हम सब) प्राणी उसके पीछे हुए वे अल्प आयुके, अल्पगुणों से युक्त और अल्प यशवाले हैं।

"भिक्षुओ ! तब कोई प्राणी वहाँसे च्युत होकर यहाँ उत्पन्न होता है। यहाँ आकर वह घरसे बे-घर हो साधु हो जाता है। वह ० उस चित्तसमाधिको प्राप्त करता है, जिस समाहित चित्तमें वह अपने

पहले जन्मको स्मरण करता है, उससे पहलेको नहीं,० । वह ऐसा कहता है—जो ब्रह्मा, महाब्रह्मा है०, जिसके द्वारा हम लोग निर्मित किये गये हैं, वह नित्य, ध्रुव, शाश्वत, अपरिणामधर्मा और अचल है , और ब्रह्मासे निर्मित किये गये हम लोग अनित्य, अध्रुव, अशाश्वत, परिणामी और मरणशील हैं।

"भिक्षुओ ! यह पहला कारण है, जिसके प्रमाणके बलपर वे० आत्मा और लोकको अंशतः नित्य और अंशतः अनित्य मानते० हैं ।

(६) "दूसरे ० ? क्री डा प्र दू षि क नामके कुछ देव हैं। वे बहुत काल तक रमण=क्रीडामें लगे रहते हैं। उससे उनकी स्मृति क्षीण हो जाती है। स्मृतिके क्षीण हो जानेसे वे उस शरीरसे च्युत हो जाते हैं, और यहाँ उत्पन्न होते हैं। यहाँ आकर साधु हो जाते हैं।० साधु हो० उस चित्तसमाधिको प्राप्त करते हैं, जिस समाहित चित्तमें अपने पहले जन्मको स्मरण करते हैं, उसके पहलेको वह ऐसा कहते हैं—जो **क्रीडाप्रदूषिक** देव नहीं होते हैं, वे बहुत काल तक रमण-क्रीडामें लगे होकर नहीं विहार करते। ० इससे उनकी स्मृति क्षीण नहीं होती। स्मृतिके क्षीण न होनेके कारण वे उस शरीरसे च्युत नहीं होते, वे नित्य, ध्रुव रहते हैं; और जो हम लोग क्रीडा-प्रदूषिक देव हैं, सो बहुत काल तक रमण-क्रीडामें लगे होकर विहार करते रहे, जिससे हम लोगोंकी स्मृति क्षीण हो गई। स्मृतिके क्षीण होनेसे हम लोग उस शरीरसे च्युत हो गये। अतः हम लोग अनित्य, अध्रुव मरणशील हैं।

"भिक्षुओ ! यह दूसरा कारण है, जिसके प्रमाणके बलपर वे० आत्मा और लोकको अंशतः नित्य और अंशतः अनित्य० मानते हैं।

"(७) तीसरे ०? भिक्षुओ ! **म नः प्र दू षि क** नामके कुछ देव हैं। वे बहुत काल तक परस्पर एक दूसरेको क्रोधसे देखते हैं। उससे वे एक दूसरेके प्रति द्वेष करने लगते हैं। एक दूसरेके प्रति बहुत काल तक द्वेष करते हुए शरीर और चित्तसे क्लान्त हो जाते हैं, अतः वे देव उस शरीरसे च्युत हो जाते हैं।

"भिक्षुओ ! तब कोई प्राणी उस शरीरसे च्युत होकर यहाँ (=इस लोकमें) उत्पन्न होते हैं। यहाँ आकर० साधु हो जाते हैं।० साधु हो० उस समाधिको प्राप्त करते हैं, जिस समाहित चित्तमें अपने पहले जन्मको स्मरण करते हैं, उसके पहलेका नहीं। (तब) वह ऐसा कहते हैं—जो मनःप्रदूषिक देव नहीं होते, वे बहुत काल तक एक दूसरेको क्रोधकी दृष्टिसे नहीं देखते रहते, जिससे उनमें परस्पर द्वेष भी नहीं उत्पन्न होता।० द्वेष नहीं करनेसे वे शरीर और चित्तसे क्लान्त भी नहीं होते। अतः वे उस शरीरसे च्युत भी नहीं होते। वे नित्य, ध्रुव० हैं।

और जो हम लोग मनःप्रदूषिक देव थे, सो० क्रोध०, द्वेष करते रहे, (और) ० मन तथा शरीरसे थक गये। अतः हम लोग उस शरीरसे च्युत हो गये। हम लोग अनित्य, अध्रुव० हैं।

"भिक्षुओ ! यह तीसरा कारण० है ।

"(८) चौथे ०? भिक्षुओ ! कितने श्रमण और ब्राह्मण तर्क करनेवाले हैं? वे तर्क और न्यायसे ऐसा कहते हैं—जो यह चक्षु, श्रोत्र, नासिका, जिह्वा और शरीर है, वह अनित्य, अध्रुव० है, और (जो) यह चित्त, मन या विज्ञान है (वह) नित्य, ध्रुव ० है ।

"भिक्षुओ । यह चौथा कारण है ० ।

"भिक्षुओ ! ये ही श्रमण और ब्राह्मण अंशतः नित्य और अंशतः अनित्य० मानते हैं०। वे सभी इन्हीं चार कारणोंसे ऐसा मानते हैं; इनके अतिरिक्त कोई दूसरा कारण नहीं है।

"भिक्षुओ ! तथागत उन सभी कारणोंको जानते हैं०।

३—सान्त-अनन्त-वाद—(९) "भिक्षुओ ! कितने श्रमण और ब्राह्मण चार कारणोंसे अन्तानन्त-वादी हैं, जो लोकको सान्त और अनन्त मानते हैं। वे० किस कारण० ऐसा मानते हैं?

"भिक्षुओ ! कोई श्रमण या ब्राह्मण० उस चित्तसमाधिको प्राप्त करता है, जिस समाहित चित्तमें 'लोक सान्त है' ऐसा भान होता है। वह ऐसा कहता है—यह लोक सान्त और परिछिन्न है। सो कैसे ? मुझे समाहित चित्तमें 'लोक सान्त है', ऐसा भान होता है, इसीसे मैं समझता हूँ कि लोक सान्त और परिछिन्न है।

"भिक्षुओ ! यह पहला कारण है कि जिससे वे० लोकको सान्त और अनन्त मानते हैं।

"(१०) दूसरे० ? भिक्षुओ ! कोई श्रमण या बाह्मण० समाहित चित्तमें 'लोक अनन्त है' ऐसा भान होता है। वह ऐसा कहता है—यह लोक अनन्त है, इसका अन्त कहीं नहीं है। जो० ऐसा कहते हैं कि यह लोक सान्त और परिच्छिन्न है, वे मिथ्या कहनेवाले हैं। (यथार्थमें) यह लोक अनन्त है, इसका अन्त कहीं नहीं है। सो कैसे ? मुझे समाहित चित्तमें 'लोक अनन्त है' ऐसा भान होता है, अतः मैं समझता हूँ कि यह लोक अनन्त है०।

"भिक्षुओ ! यह दूसरा कारण है कि जिससे वे० लोकको सान्त और अनन्त मानते हैं।

"(११) तीसरे ०? भिक्षुओ ! कोई श्रमण या ब्राह्मण० समाहित चित्तमें 'यह लोक ऊपरसे नीचे सान्त और दिशाओंकी ओर अनन्त है', ऐसा भान होता है। वह ऐसा कहता है—यह लोक सान्त और अनन्त दोनों है। जो लोकको सान्त वताते हैं और जो अनन्त, दोनों मिथ्या कहनेवाले हैं। (यथार्थमें) यह लोक सान्त और अनन्त दोनों है। सो कैसे ? मुझे समाहित चित्तमें ० ऐसा भान होता हूँ, जिससे मैं समझता हूँ कि यह लोक सान्त और अनन्त दोनों है।

"भिक्षुओ ! यह तीसरा कारण है कि जिससे वे ० लोकको सान्त और अनन्त मानते हैं।

"(१२) चौथे ०? भिक्षुओ ! कोई श्रमण या ब्राह्मण तर्क करनेवाला होता है। वह अपने तर्कसे ऐसा समझता है कि 'यह लोक न सान्त है और न अनन्त।' जो ० लोकको सान्त, या अनन्त, (=सान्तानन्त) मानते हैं, सभी मिथ्या कहनेवाले हैं। (यथार्थ में) यह लोक न सान्त और न अनन्त है।

"भिक्षुओ ! यह चौथा कारण है कि जिससे वे० लोकको सान्त और अनन्त मानते हैं।

"भिक्षुओ ! इन्हीं चार कारणोंसे कितने श्रमण अ न्ता न न्त वा दी हैं; लोकको सान्त और अनन्त वताते हैं। वे सभी इन्हीं चार कारणोंसे ऐसा कहते हैं। इन्हें छोळ और कोई दूसरा कारण नहीं है।

"भिक्षुओ ! उन कारणोंको तथागत जानते हैं ०।

"भिक्षुओ ! कुछ श्रमण और ब्राह्मण अ म रा वि क्षे प *वादी हैं, जो चार कारणोंसे प्रश्नोंके पूछे जानेपर उत्तर देनेमें घबळा जाते हैं ? वे क्यों घवळा जाते हैं ?

४–अमराविक्षेप-वाद—(१३) "भिक्षुओ ! कोई श्रमण या ब्राह्मण ठीकसे नहीं जानता कि यह अच्छा है और यह बुरा। उसके मनमें ऐसा होता है—मैं ठीकसे नहीं जानता हूँ कि यह अच्छा है और यह बुरा। तव मैं ठीकसे बिना जाने कह दूँ—'यह अच्छा है' और 'यह बुरा', यदि 'यह अच्छा है' या 'यह वुरा है' तो यह असत्य ही होगा। जो मेरा असत्य-भाषण होगा, सो मेरा घातक (=नाशका कारण) होगा, और जो घातक होगा, वह अन्तराय (=मुक्तिमार्गमें विघ्नकारक) होगा। अतः वह असत्य-भाषणके भय और घृणासे न यह कहता है कि 'यह अच्छा है' और न यह कि 'यह बुरा'।

"प्रश्नोंके पूछे जानेपर कोई स्थिर बातें नहीं करता—यह भी मैंने नहीं कहा, वह भी नहीं कहा,

---

***अमराविक्षेप नामक छोटी-छोटी मछलियाँ बळी चंचल होती हैं। जिस तरह बहुत प्रयत्न करनेपर भी वे हाथमें नहीं आती हैं, उसी तरह इनके सिद्धान्तमें भी कोई स्थिरता नहीं।**

अन्यथा भी नहीं, ऐसा नहीं है—यह भी नहीं, ऐसा नहीं नहीं है—यह भी नहीं कहा । भिक्षुओ ! यह पहला कारण है जिससे कितने अमराविक्षेपवादी श्रमण या ब्राह्मण प्रश्नोंके पूछे जानेपर कोई स्थिर बात नहीं कहते ।

"(१४) दूसरे० ? भिक्षुओ ! जब कोई श्रमण या ब्राह्मण ठीकसे नहीं जानता, कि यह अच्छा है और यह बुरा । उसके मनमें ऐसा होता है—मैं ठीकसे नहीं जानता हूँ कि यह अच्छा है और यह बुरा तब यदि मैं बिना ठीकसे जाने कह दूँ ० तो यह मेरा लोभ, राग, द्वेष और क्रोध ही होगा। लोभ, राग० मेरा उपादान (=संसारकी ओर आसक्ति) होगा । जो मेरा उपादान होगा, वह मेरा घात होगा, और घात मुक्तिके मार्गमें विघ्नकर होगा । अतः वह उपादानके भयसे और घृणासे यह भी नहीं कहता कि यह अच्छा है, और यह भी नहीं कहता कि यह बुरा है । प्रश्नोंके पूछे जानेपर कोई स्थिर बात नहीं कहता—मैं यह भी नहीं कहता, वह भी नहीं ०।

"भिक्षुओ ! यह दूसरा कारण है कि जिससे वे० कोई स्थिर बात नहीं कहते ।

"(१५) तीसरे० ? भिक्षुओ ! कोई श्रमण या ब्राह्मण यह ठीकसे नहीं जानता कि यह अच्छा है और यह बुरा । उसके मनमें ऐसा होता है –० यदि मैं बिना ठीकसे जाने कह दूँ ०, और जो श्रमण और ब्राह्मण पण्डित, निपुण, बळे शास्त्रार्थ करनेवाले, कुशाग्रबुद्धि तथा दूसरेके सिद्धान्तोंको अपनी प्रज्ञासे काटनेवाले हैं, वे यदि मुझसे पूछें, तर्क करें, या बातें करें, और मैं उसका उत्तर न दे सकूँ तो यह मेरा विघात (=दुर्भाव) होगा । जो मेरा विघात होगा, वह मेरी मुक्तिके मार्गमें बाधक होगा । अतः, वह पूछे जानेके भय और घृणासे न तो यह कहता है कि यह अच्छा है और न यह कि यह बुरा है । प्रश्नोंके पूछे जानेपर कोई स्थिर बातें नहीं करता—मैं यह भी नहीं कहता, वह भी नहीं ०।

"भिक्षुओ ! यह तीसरा कारण है, जिससे वे० कोई स्थिर बात नहीं कहते ।

"(१६) चौथे ०? भिक्षुओ ! कोई श्रमण या ब्राह्मण मन्द और महामूढ़ होता है। वह अपनी मन्दता और महामूढ़ताके कारण प्रश्नोंके पूछे जानेपर कोई स्थिर बात नहीं कहता । यदि मुझे इस तरह पूछे—'क्या परलोक है ?' और यदि मैं समझूँ कि परलोक है, तो कहूँ कि 'परलोक है' । मैं ऐसा भी नहीं कहता , वैसा भी नहीं० । यदि मुझे पूछे, 'क्या परलोक नहीं है'० । परलोक है, नहीं है, और न है, न नहीं है । औपपातिक (=अयोनिज) सत्व (=ऐसे प्राणी जो बिना माता पिताके संयोगके उत्पन्न हुए हों) हैं, नहीं-हैं, हैं-भी-और-नहीं-भी, और-न-हैं-न-नहीं हैं । सुकृत और दुष्कृत कर्मोंके विपाक (=फल) हैं, नहीं-हैं, हैं-भी-और-नहीं-भी, और-न-हैं, न-नहीं हैं । तथागत मरनेके बाद रहते हैं, नहीं रहते हैं० । ऐसा भी मैं नहीं कहता, वैसा भी नहीं ० ।

"भिक्षुओ ! यह चौथा कारण है जिससे वे० कोई स्थिर बातें नहीं कहते ।

"भिक्षुओ ! ० वे सभी इन्हीं चार कारणोंसे ऐसा मानते हैं; इनके अतिरिक्त कोई दूसरा कारण नहीं है । भिक्षुओ ! तथागत उन सभी कारणोंको जानते हैं० ।

५—अकारण-वाद—(१७) "भिक्षुओ ! कितने श्रमण और ब्राह्मण अ का र ण वा दी (=बिना किसी कारणके सभी चीज़ें उत्पन्न होती हैं, ऐसा माननेवाले) हैं । दो कारणोंसे आत्मा और लोकको अकारण उत्पन्न मानते हैं । वे किस कारण और किस प्रमाणके आधार पर० ऐसा मानते हैं ? भिक्षुओ ! 'अ सं ज्ञि स त्व' (=जो संज्ञासे रहित हैं) नामके कुछ देव हैं । संज्ञाके उत्पन्न होनेसे वे देव उस शरीरसे च्युत हो जाते हैं । तब, उस शरीरसे च्युत होकर यहाँ (इस लोकमें) उत्पन्न होते हैं । यहाँ० साधु हो जाते हैं ।० साधु होकर० समाहित चित्तमें संज्ञाके उत्पन्न होनेको स्मरण करते हैं, उसके पहलेको नहीं । वह ऐसा कहते हैं—आत्मा और लोक अकारण उत्पन्न हुए हैं । सो कैसे ? मैं पहले नहीं था, मैं नहीं होकर भी उत्पन्न हो गया ।

"भिक्षुओ ! यह पहला कारण है, जिससे कितने श्रमण और ब्राह्मण 'अकारणवादी' हो आत्मा और लोकको अकारण उत्पन्न बतलाते हैं।

"(१८) दूसरे० ? भिक्षुओ ! कोई श्रमण या ब्राह्मण तार्किक होता है। वह स्वयं तर्क करके ऐसा समझता है—आत्मा और लोक अकारण उत्पन्न होते हैं।

"भिक्षुओ ! यह दूसरा कारण है, जिससे कितने श्रमण और ब्राह्मण 'अकारणवादी'० हैं।

"भिक्षुओ ! इन्हीं दो कारणोंसे वें० अकारणवादी० हैं, इनके अतिरिक्त कोई दूसरा कारण नहीं है। भिक्षुओ ! तथागत उन सभी कारणोंको जानते हैं ०।

"भिक्षुओ ! वे श्रमण और ब्राह्मण इन्हीं १८ कारणोंसे पूर्वान्तकल्पिक, पूर्वछोरके मतको माननेवाले और पूर्वान्तके आधारपर अनेक (केवल) व्यवहारके शब्दोंका प्रयोग करते हैं। इनके अतिरिक्त कोई दूसरा कारण नहीं है।

"भिक्षुओ ! उन दृष्टि-स्थानों (=सिद्धान्तों)के प्रकार, विचार, गति और भविष्य क्या हैं, (वह सब) तथागतको विदित है। तथागत उसे और उससे भी अधिक जानते हैं। जानते हुए ऐसा अभिमान नहीं करते––'मैं इतना जानता हूँ'। अभिमान नहीं करते हुए वे निर्वृति (=मुक्ति)को जान लेते हैं। वेदनाओंके समुदय (=उत्पत्तिस्थान), उपशम, आस्वाद, दोष और निःसरण (=दूर करना)को यथार्थतः जानकर तथागत उपादान (=लोकासक्ति)से मुक्त होते हैं।

"भिक्षुओ ! ये धर्म गम्भीर, दुर्ज्ञेय, दुरनुबोध, शान्त, सुन्दर, तर्कसे परे, निपुण और पण्डितोंके जानने योग्य हैं, जिसे तथागत स्वयं जानकर और साक्षात्‌कर उपदेश देते हैं; जिन्हें कि तथागतके यथार्थ गुणोंको कहनेवाले कहते हैं।

(२) अन्तके सम्बन्धकी ४४ धारणायें

"भिक्षुओ ! कितनेही श्रमण और ब्राह्मण हैं, जो ४४ कारणोंसे अपरान्तकल्पिक, अपरान्त मत माननेवाले और अपरान्तके आधारपर अनेक (केवल) व्यवहारके शब्दोंका प्रयोग करते हैं। वे० किस कारण और किस प्रमाणके बलपर० अपरान्तके आधारपर अनेक व्यवहारके शब्दोंका प्रयोग करते हैं?

६–मरणान्तर होशवाला आत्मा––(१९–३४) "भिक्षुओ ! कितने श्रमण और ब्राह्मण 'मरनेके बाद आत्मा[1] संज्ञी रहता है', ऐसा मानते हैं। वे १६ कारणोंसे ऐसा मानते हैं। वे० सोलह कारणोंसे ऐसा क्यों मानते हैं? 'मरनेके बाद आत्मा रूपवान्, रोगरहित और आत्म-प्रतीति (संज्ञा=प्रतीति)के साथ रहता है। अरूपवान् और रूपवान् आत्मा होता है, न रूपवान्, न अरूपवान् आत्मा होता है; आत्मा सान्त होता है, आत्मा अनन्त होता है, आत्मा सान्त और अनन्त होता है, आत्मा न सान्त और न अनन्त होता है, आत्मा एकात्मसंज्ञी होता है, आत्मा नानात्मसंज्ञी होता है, आत्मा परिमित-संज्ञावाला होता है, आत्मा अपरिमितसंज्ञावाला होता है, आत्मा बिल्कुल शुद्ध होता है, आत्मा बिल्कुल दुःखी होता है, आत्मा सुखी और दुःखी होता है, आत्मा सुख दुःखसे रहित होता है, आत्मा अरोग और संज्ञी होता है।

"भिक्षुओ ! इन्हीं १६ कारणोंसे वे० ऐसा कहते हैं। इनके अतिरिक्त और कोई दूसरा कारण नहीं है।

"भिक्षुओ ! तथागत उन कारणोंको जानते हैं ०।

(इति) द्वितीय भाणवार ॥२॥

---

[1] **"मैं"के ख्याल (=संज्ञा)के साथ।**

७—मरणान्तर बेहोश आत्मा—(३५–४२) "भिक्षुओ ! कितने श्रमण और ब्राह्मण आठ कारणोंसे 'मरनेके बाद आत्मा असंज्ञी रहता है', ऐसा मानते हैं। वे० ऐसा क्यों मानते हैं ? वे कहते हैं—मरनेके बाद आत्मा असंज्ञी, रूपवान् और अरोग रहता है—अरूपवान्०, रूपवान् और अरूपवान्.० न रूपवान् और न अरूपवान्०, सान्त०, अनन्त०, सान्त और अनन्त०, न सान्त और न अनन्त०।

"भिक्षुओ ! इन्हीं आठ कारणोंसे वे० 'मरनेके बाद आत्मा असंज्ञी रहता है', ऐसा मानते हैं। वे० सभी इन्हीं आठ कारणोंसे० इनके अतिरिक्त कोई दूसरा कारण नहीं है।

"भिक्षुओ ! तथागत इन कारणोंको जानते हैं।

८—मरणान्तर न-होशवाला न-बेहोश आत्मा—(४३–५०) "भिक्षुओ ! कितने श्रमण और ब्राह्मण आठ कारणोंसे 'मरनेके बाद आत्मा नैवसंज्ञी, नैवअसंज्ञी रहता है', ऐसा मानते हैं। वे० ऐसा क्यों मानते हैं ?

"भिक्षुओ ! मरनेके बाद आत्मा रूपवान्, अरोग और नैवसंज्ञी नैवासंज्ञी रहता है। वे ऐसा कहते हैं—अरूपवान् ०।

"भिक्षुओ ! इन्हीं आठ कारणोंसे वे० 'मरने के बाद आत्मा नैवसंज्ञी नैवअसंज्ञी रहता है', ऐसा मानते हैं। वे० सभी इन्हीं आठ कारणोंसे०, इनके अतिरिक्त कोई दूसरा कारण नहीं है।

"भिक्षुओ ! तथागत इन कारणोंको जानते हैं०।

९—आत्माका उच्छेद—(५१–५७) "भिक्षुओ ! कितने श्रमण और ब्राह्मण सात कारणोंसे 'सत्व (=आत्मा) का उच्छेद, विनाश और लोप हो जाता है' ऐसा मानते हैं। वे० ऐसा क्यों मानते हैं ? भिक्षुओ ! कोई श्रमण या ब्राह्मण ऐसा मानते हैं—यथार्थमें यह आत्मा रूपी=चार महाभूतोंसे बना है, और माता पिताके संयोगसे उत्पन्न होता है, इसलिए शरीरके नष्ट होते ही आत्मा भी उच्छिन्न, विनष्ट और लुप्त हो जाता है। क्योंकि यह आत्मा बिल्कुल समुच्छिन्न हो जाता है, इसलिए वे सत्व (=जीव) का उच्छेद, विनाश और लोप बताते हैं।

"(जब) उन्हें दूसरे कहते—जिसके विषयमें तुम कहते हो, वह आत्मा है; (उसके विषयमें) मैं ऐसा नहीं कहता हूँ कि नहीं है; किन्तु यह आत्मा इस तरहसे बिल्कुल उच्छिन्न नहीं हो जाता। दूसरा आत्मा है, जो दिव्य, रूपी, का मा व च र लोकमें रहनेवाला (जहाँ आत्मा सुखोपभोग करता है), और भोजन खाकर रहनेवाला है। उसको तुम न तो जानते हो और न देखते हो। उसको मैं जानता और देखता हूँ। वह सत् आत्मा शरीरके नष्ट होनेपर उच्छिन्न और विनष्ट हो जाता है, मरनेके बाद नहीं रहता। इस तरह आत्मा समुच्छिन्न हो जाता है। इस तरह कितने सत्वोंका वह उच्छेद, विनाश और लोप बतलाते हैं।

"उनसे दूसरे कहते हैं—जिसके विषयमें तुम कहते हो, वह आत्मा है, (उसके विषयमें) 'यह नहीं है', ऐसा मैं नहीं कहता; किन्तु यह उस तरह बिल्कुल उच्छिन्न नहीं हो जाता। दूसरा आत्मा है, जो दिव्य, रूपी मनोमय, अंग-प्रत्यंगसे युक्त और अहीनेन्द्रिय है। उसे तुम नहीं जानते०, मैं जानता० हूँ। वह सत् आत्मा शरीरके नष्ट होनेपर उच्छिन्न० हो जाता है०। ० आत्मा समुच्छिन्न हो जाता है। इसलिये वह कितने सत्वोंका उच्छेद, विनाश और लोप बताते हैं।

"उन्हें दूसरे कहते हैं—० वह आत्मा है०; किन्तु उस तरह० नहीं ०। दूसरा आत्मा है, जो सभी तरहसे रूप और संज्ञासे भिन्न, प्रतिहिंसाकी संज्ञाओंके अस्त हो जानेसे नानात्म (=नाना शरीरकी) संज्ञाओंको मनमें न करनेसे अनन्त आकाशकी तरह अनन्त आकाश शरीरवाला है। उसे तुम नहीं जानते०, मैं जानता० हूँ। वह आत्मा० उच्छिन्न हो जाता है, अतः कितने इस प्रकार सत्वका उच्छेद० बताते हैं।

"उनसे दूसरे कहते हैं—०। दूसरा आत्मा है, जो सभी तरहसे अनन्त आकाश-शरीरको अतिक्रमण (=लाँघ) कर अनन्त विज्ञान-शरीरवाला है।

"उन्हें दूसरे कहते हैं—०। दूसरा आत्मा है, जो सभी तरहसे विज्ञान-आयतनको अतिक्रमणकर कुछ नहीं ऐसा अकिंचन (=शून्य) शरीरवाला रहता है।०

"उन्हें दूसरे कहते हैं—०। दूसरा आत्मा है, जो सभी तरहसे आकिंचन्य-आयतनको अतिक्रमण कर शान्त और प्रणीत नैवसंज्ञा-न-असंज्ञा है।०

"भिक्षुओ ! वे श्रमण और ब्राह्मण इन्हीं सात कारणोंसे उच्छेदवादी हो, जो (वस्तु) अभी है, उसका उच्छेद, विनाश और लोप बताते हैं। इनके अतिरिक्त और कोई दूसरा कारण नहीं है।

"भिक्षुओ ! तथागत उनको जानते हैं।०

१०—इसी जन्ममें निर्वाण—(५८–६२) "भिक्षुओ ! कितने श्रमण और ब्राह्मण पाँच कारणोंसे दृष्टधर्मनिर्वाणवादी (=इसी संसारमें देखते-देखते निर्वाण हो जाता है, ऐसा माननेवाले) हैं, जो ऐसा बतलाते हैं कि प्राणीका इसी संसारमें देखते-देखते निर्वाण हो जाता है। वे० ऐसा क्यों मानते हैं ?

"भिक्षुओ ! कोई श्रमण या ब्राह्मण ऐसा मत माननेवाला होता है—चूँकि यह आत्मा पाँच काम-गुणों (=भोगों) में लगकर सांसारिक भोग भोगता है, इसलिए यह इसी संसारमें आँखोंके सामने ही निर्वाण पा लेता है। अतः कितने ऐसा बतलाते हैं कि सत्व इसी संसारमें देखते-देखते निर्वाण पा लेता है।

"उनसे दूसरे कहते हैं— ०। यह आत्मा इस तरह देखते-देखते संसार हीमें निर्वाण नहीं प्राप्त कर लेता। सो कैसे ? सांसारिक काम-भोग अनित्य, दुःख और चलायमान हैं। उनके परिवर्तन होते रहनेसे शोक, रोना पीटना, दुःख=दौर्मनस्य और बळी परेशानी होती है।

"अतः यह आत्मा कामोंसे पृथक् रह, बुरी बातोंको छोळ, सवितर्क, सविचार विवेकज प्रीति-सुखवाले प्रथम ध्यानको प्राप्तकर विहार करता है। इसलिए यह आत्मा इसी संसारमें आँखोंके सामने ही निर्वाण प्राप्त कर लेता है०।

"उनसे दूसरे कहते हैं—०। आत्मा इस प्रकार ० निर्वाण नहीं पाता। सो कैसे ? जो वितर्क और विचार करनेसे बळा स्थूल (=उदार) मालूम होता है, वह आत्मा वितर्क और विचारके शान्त हो जानेसे भीतरी प्रसन्नता (=आध्यात्म सम्प्रसाद), एकाग्रचित्त हो, वितर्क-विचार-रहित समाधिज प्रीति-सुखवाले दूसरे ध्यानको प्राप्त हो विहार करता है।

"इतनेसे यह आत्मा संसारहीमें आँखोंके सामने निर्वाण प्राप्त कर लेता है।०

"उनसे दूसरे कहते हैं—०। सो कैसे ? जो प्रीति पा चित्तका आनन्दसे भर जाना है, उसीसे स्थूल प्रतीत होता है। क्योंकि यह आत्मा प्रीति और विरागसे उपेक्षायुक्त (=अनासक्त) होकर विहार करता है, तथा ज्ञानयुक्त पण्डितोंसे वर्णित सभी सुखको शरीरसे अनुभव करता है, अतः उपेक्षायुक्त स्मृतिमान् और सुखविहारी तीसरे ध्यानको प्राप्त करता है।

"इतनेसे ० निर्वाण प्राप्त कर लेता है।

"उनसे दूसरे कहते हैं—०। जो वहाँ इतनेसे चित्तका सुखोपभोग स्थूल प्रतीत होता है, यह आत्मा सुख और दुःखके नष्ट होनेसे, सौमनस्य और दौर्मनस्यके पहले ही अस्त होनेसे, न सुख न दुःखवाले, उपेक्षा और स्मृतिसे परिशुद्ध चौथे ध्यानको प्राप्तकर विहार करता है।०

"इतनेसे० निर्वाण"०।

"भिक्षुओ ! इन्हीं पाँच कारणोंसे वे० 'इसी संसारमें आँखोंके सामने निर्वाण प्राप्त होता है,' ऐसा मानते हैं। इनके अतिरिक्त कोई दूसरा कारण नहीं है।

"भिक्षुओ ! तथागत उन कारणोंको जानते हैं ०।

"भिक्षुओ ! श्रमण और ब्राह्मण इन्हीं ४४ कारणोंसे अपरान्तकल्पिक मत माननेवाले और

अपरान्तके आधारपर अनेक व्यवहारके शब्दोंका प्रयोग करते हैं। इनके अतिरिक्त और कोई दूसरा कारण नहीं है।

"भिक्षुओ ! ये श्रमण और ब्राह्मण इन्हीं ६२ कारणोंसे पूर्वान्तकल्पिक और अपरान्तकल्पिक, पूर्वान्त और अपरान्त मत माननेवाले तथा पूर्वान्त और अपरान्तके आधारपर अनेक व्यवहारके शब्दोंका प्रयोग करते हैं। इनके अतिरिक्त और दूसरा कोई कारण नहीं है।

"तथागत उन सभी कारणोंको जानते हैं, उन कारणोंके प्रमाण और प्रकारको जानते हैं, और उससे अधिक भी जानते हैं; जानकर भी 'मैं जानता हूँ', ऐसा अभिमान नहीं करते।

"वेदनाओंकी निवृत्ति, उत्पत्ति (=समुदय), अन्त, आस्वाद, दोष और लिप्तताको ठीक-ठीक जानकर तथागत अनासक्त होकर मुक्त रहते हैं। भिक्षुओ ! ये धर्म गम्भीर, दुर्ज्ञेय, दुरनुबोध, शान्त, उत्तम, तर्कसे परे, निपुण और पण्डितोंके समझनेके योग्य हैं, जिन्हें तथागत स्वयं जानकर और साक्षात्-कर कहते हैं, जिसे तथागतके यथार्थ गुणको कहनेवाले कहते हैं।

"भिक्षुओ ! जो श्रमण और ब्राह्मण चार कारणोंसे नित्यतावादी हैं तथा आत्मा और लोकको नित्य कहते हैं, वह उन सांसारिक वेदनाओंको भोगनेवाले तथा तृष्णासे चकित उन अज्ञ श्रमणों और ब्राह्मणोंकी चंचलता मात्र है।

"भिक्षुओ ! जो ० चार कारणोंसे अंशतः नित्यतावादी और अंशतः अनित्यतावादी हैं, जो ० चार कारणोंसे आत्मा और लोकको अन्तानन्तिक (=सान्त भी और अनन्त भी) मानते हैं; जो चार कारणोंसे प्रश्नोंके पूछे जानेपर कोई स्थिर बात नहीं कहते; जो अकारणवादी हो दो कारणोंसे आत्मा और लोकको अकारण उत्पन्न मानते हैं; जो ० इन अट्ठारह कारणोंसे ० पूर्वान्तके आधारपर नाना प्रकारके व्यवहारके शब्दोंका प्रयोग करते हैं।

जो० सोलह कारणोंसे मरनेके बाद आत्मा संज्ञावाला रहता है, ऐसा मानते; जो ० आठ कारणोंसे 'मरनेके बाद आत्मा संज्ञावाला नहीं रहता', ऐसा मानते हैं, जो ० आठ कारणोंसे० आत्मा न तो संज्ञावाला और न नहीं-संज्ञावाला रहता है, ऐसा मानते हैं; जो सात कारणोंसे उच्छेदवादी ० हैं; जो पाँच कारणोंसे दृष्टधर्मनिर्वाणवादी ० हैं; जो० इन ४४ कारणोंसे ० अपरान्तके आधारपर नाना प्रकारके व्यवहारके शब्दोंका प्रयोग करते हैं।

"जो ० इन ६२ कारणोंसे पूर्वान्तकल्पिक और अपरान्तकल्पिक ० पूर्वान्त और अपरान्तके आधार पर नाना प्रकारके व्यवहारके शब्दोंका प्रयोग करते हैं, वह सभी उन सांसारिक वेदनाओंको भोगनेवाले तथा तृष्णासे चकित उन अज्ञ श्रमणों और ब्राह्मणोंकी चंचलता मात्र है।

"भिक्षुओ ! जो श्रमण और ब्राह्मण ० चार कारणोंसे आत्मा और लोकको नित्य मानते हैं वह स्पर्शके होनेसे। ०............। जो ० ६२ कारणोंसे पूर्वान्तकल्पिक और अपरान्तकल्पिक० हैं, वह स्पर्शके ही होनेसे।

"भिक्षुओ ! जो श्रमण और ब्राह्मण ० चार कारणोंसे आत्मा और लोकको नित्य मानते हैं, उन्हें स्पर्शके बिनाही वेदना होती है, ऐसी बात नहीं है ०। ....।

"भिक्षुओ ! जो श्रमण और ब्राह्मण ० चार कारणोंसे पूर्वान्तकल्पिक और अपरान्तकल्पिक० हैं, वे सभी छै स्पर्शायतनों (=विषयों)से स्पर्श करके वेदनाको अनुभव करते हैं। उनकी वेदनाके कारण तृष्णा, तृष्णा ० से उपादान, उपादान० से भव, भव० से जन्म और जन्म०से जरा, मरण, शोक, रोना-पीटना, दुःख, दौर्मनस्य और परेशानी होती है। भिक्षुओ ! जब भिक्षु छै स्पर्शायतनोंके समुदय, अस्त होने, आस्वाद, दोष और विरागको यथार्थतः जान लेता है, तब वह इनसे ऊपरकी बातोंको भी जान लेता है।

"भिक्षुओ ! ० वे सभी इन्हीं ६२ कारणोंके जालमें फँसकर वहीं बंधे रहते हैं। भिक्षुओ ! **जैसे**

कोई दक्ष मल्लाह, या मल्लाहका लळका छोटे-छोटे छेदवाले जालसे सारे जलाशयको हींडे; उसके मनमें ऐसा हो—इस जलाशयमें जो अच्छी-अच्छी मछलियाँ हैं; सभी जालमें फँसकर वझ गई हैं, उसी तरहसे०।

"भिक्षुओं ! भव-तृष्णा (=जन्मके लोभ) के उच्छिन्न हो जानेपर भी तथागतका शरीर रहता है। जब तक उनका शरीर रहता है, तभी तक उन्हें मनुष्य और देवता देख सकते हैं। शरीर-पात हो जाने के बाद उनके जीवन-प्रवाहके निरुद्ध हो जानेसे उन्हें देव और मनुष्य नहीं देख सकते। भिक्षुओ ! जैसे किसी आमके गुच्छेकी ढेंपके टूट जानेपर उस ढेंपसे लगे सभी आम नीचे आ गिरते हैं, उसी तरह भव-तृष्णाके छिन्न हो जानेपर तथागतका शरीर होता है।०"

भगवान्के इतना कहनेपर आयुष्मान आनन्दने भगवान्से यह कहा—"भन्ते ! आश्चर्य है, अद्भुत है। भन्ते ! आपके इस उपदेशका नाम क्या हो।"

"आनन्द ! तो तुम इस धर्म-उपदेशको 'अर्थजाल' भी कह सकते हो, धर्मजाल भी०, ब्र ह्म जा ल भी०, दृष्टिजाल भी०, तथा अलौकिक संग्रामविजय भी कह सकते हो।"

भगवान्ने यह कहा। उन भिक्षुओंने भी अनुकूल मनसे भगवान्के कथनका अभिनन्दन किया। भगवान्के इस प्रकार विस्तारपूर्वक कहनेपर दस हजार ब्रह्मांड काँप उठे।

२—सामञ्ञफल-सुत्त (१।२)

१—१२—भिक्षु होनेका प्रत्यक्ष फल छै तीर्थंकरोंके मत—शील (=सदाचार), समाधि, प्रज्ञा।

ऐसा मैंने सुना—एक समय भगवान् [1]राजगृहमें [2]जीवक कौमार-भृत्यके आम्रवनमें, साढ़े बारहसौ भिक्षुओंके महाभिक्षुसंघके साथ विहार करते थे।

उस समय पूर्णमासीके उपोसथके दिन चातुर्मासकी कौमुदी (=आश्विन पूर्णिमा)से पूर्ण पूर्णिमाकी रातको, राजा मागध [3]अजातशत्रु वैदेहीपुत्र, राजामात्योंसे घिरा, उत्तम प्रासादके ऊपर बैठा हुआ था। तब राजा ० अजातशत्रु ० ने उस दिन उपोसथ (=पूर्णिमा)को उदान कहा—

---

[1] अ. क. "यह बुद्धके समय और चक्रवर्तीके समय नगर होता है, बाकी समय शून्य भूतोंका डेरा रहता है।"

[2] अ. क. "...जीवकने एक समय भगवान्‌को...विरेचन देकर शिविके दुशालेको देकर, वस्त्र(-दान)के अनुमोदनके अन्तमें स्रोतआपत्तिफलको पा सोचा—'मुझे दिनमें दो तीन बार बुद्धकी सेवामें जाना है, तथा यह वेणुवन अति दूर है, और मेरा आम्रवन समीपतर है, क्यों न मैं यहाँ भगवान्‌के लिये विहार बनवाऊँ'। (तब) उसने उस आम्रवनमें रात्रि-स्थान, दिन-स्थान, गुफा(=लयन), कुटी, मंडप आदि तैयार करा, भगवान्‌के अनुरूप गंध-कुटी बनवा, आम्रवनको अठारह हाथ ऊँची ताँबेके पत्रके रंगके प्राकारसे घिरवाकर, चीवर-भोजन दानके साथ बुद्धसहित भिक्षु-संघके उद्देश्यसे दान-जल छोळकर, विहार अर्पित किया।"

[3] अ. क. "इसके पेटमें होते देवीको....दोहद(=सधौर) उत्पन्न हुआ।...राजाने...वैद्यको बुलाकर सुनहली छुरीसे (अपनी) बाँह चिरवा सुवर्णके प्यालेमें लोहू ले पानीमें मिला, पिला दिया। ज्योतिषियोंने सुनकर कहा—'यह गर्भ राजाका शत्रु होगा, इसके द्वारा राजा मारा जायेगा।' देवीने सुनकर...गर्भ गिरानेके लिये बागमें जाकर पेट मँडवाया, किंतु गर्भ न गिरा।...। जन्मके समय भी...रक्षक लोग बालकको हटा ले गये। तब दूसरे समय होशियार होनेपर देवीको दिखलाया। उसको पुत्र-स्नेह उत्पन्न हुआ; इससे वह मार न सकी। राजाने भी क्रमशः उसे युवराज-पद दिया।...राज्य दे दिया। उसने...देवदत्तसे कहा। तब उसने उससे कहा—'...थोळेही दिनोंमें राजा तुम्हारे किये अपराधको सोच स्वयं राजा बनेगा।...। चुपकेसे मरवा डालो।'

'किन्तु भन्ते! मेरा पिता है न? शस्त्र-बध्य नहीं है।'

'भूखा रखकर मार दो।' उसने पिताको तापन-गेहमें डलवा दिया। तापनगेह कहते हैं, (लोह-) कर्म करनेके लिये (बने) धूम-घरको। और कह दिया—मेरी माताको छोळकर दूसरेको मत देखने

"अहो ! कैसी रमणीय चाँदनी रात है ! कैसी सुन्दर चाँदनी रात है ! ! कैसी दर्शनीय चाँदनी रात है ! ! ! कैसी प्रासादिक चाँदनी रात है ! ! ! कैसी लक्षणीय चाँदनी रात है ! ! ! किस श्रमण या ब्राह्मणका सत्संग करें, जिसका सत्संग हमारे चित्तको प्रसन्न करे।"

ऐसा कहनेपर एक राज-मन्त्रीने मगधराज, अ जा त श त्रु वैदेहिपुत्रसे यह कहा—"महाराज ! यह पू र्ण का श्य प संघ-स्वामी=गण-अध्यक्ष, गणाचार्य, ज्ञानी, यशस्वी, तीर्थङ्कर (=मतस्थापक) बहुत लोगोंसे सम्मानित, अनुभवी, चिरकालका साधु, वयोवृद्ध है। महाराज उसी पू र्ण का श्य प से धर्मचर्चा करें,

---

देना। देवी सुनहले कटोरे (=सरक)में भोजन रख, उत्संगमें (छिपा) प्रवेश करती थी। राजा उसे खाकर निर्वाह करता था। उसने ... वह हाल सुन—'मेरी माताको उत्संग (=ओंइछा) बाँध मत जाने दो।' तब जूळेमें डालकर ... तब सुवर्ण पादुकामें ...। तब देवी गंधोदकसे स्नान किये शरीरपर चार मधुर (रस) मलकर, कपळा पहिनकर जाने लगी। राजा उसके शरीरको चाटकर निर्वाह करता था।...। 'अबसे मेरी माताका जाना रोक दो।' देवी दर्वाजेके पास खळी हो बोली—'स्वामि बिंबिसार ! बचपनमें मुझे इसे मारने नहीं दिया, अपने शत्रुको अपनेही पाला। यह अब अन्तिम दर्शन है। इसके बाद अब तुम्हें न देखने पाऊँगी। यदि मेरा (कोई) दोष हो, तो क्षमा करना' (कह) रोती काँदती लौट गई।

उसके बादसे राजाको आहार नहीं मिला। राजा (स्रोतआपित्त)-मार्गफल (की भावना)के सुखसे टहलते हुए निर्वाह करता था।...। 'मेरे पिताके पैरोंको छुरेसे फाळकर नून-तेलसे लेपकर खैरके अंगारमें चिटचिटाते हुए पकाओ—(कह) नापितको भेजा।... पका दिया। राजा मर गया। उसी दिन राजा (अजातशत्रु)को पुत्र उत्पन्न हुआ। पुत्रके जन्म और पिताके मरणके दो लेख (=पत्र)एक साथही निवेदन करनेके लिये आये। अमात्योंने पहिले पुत्र-जन्मके ... लेखको ही राजाके हाथमें रक्खा। उसी क्षण पुत्र-स्नेह राजाको उत्पन्न हो, सकल शरीरको व्याप्तकर, अस्थि-मज्जा तकमें समा गया। उस समय उसने पिताके गुणको जाना—'मेरे पैदा होनेपर भी मेरे पिताको ऐसाही स्नेह उत्पन्न हुआ होगा'। 'जाओ भणे ! मेरे पिताको मुक्त करो, मुक्त करो' बोला। 'किसको मुक्त कराते हो देव !' (कहकर) दूसरा लेख हाथमें रख दिया। वह उस समाचारको सुनकर रोते हुए माताके पास जाकर बोला—'अम्मा ! मेरे पिताका मेरे ऊपर स्नेह था ?' उसने कहा—'बाल (=अज्ञ) पुत्र ! क्या कहता है ? बचपनमें तेरी अँगुलीमें फोळा हुआ था। तब रोते-रोते तुझे न समझा सकनेके कारण, कचहरी (=विनिश्चयशाला=अदालत) में बैठे, तेरे पिताके पास ले गये। पिताने तेरी अँगुली मुंहमें रक्खी। फोळा मुखमें ही फूट गया। तब तेरे स्नेहसे उस खून मिली पीबको न थूककर, घोंट गये। इस प्रकारका तेरे पिताका स्नेह था।' उसने रो काँदकर पिताकी शरीर-क्रिया की।...

देवदत्तने सारिपुत्र मौद्गल्यायनके परिषद् लेकर चले जानेपर मुंहसे गर्म खून फेंक, नवमास बीमार पळा रहकर, खिन्न हो (पूछा)—'आजकल शास्ता कहाँ है ?'

'जेतवनमें' कहनेपर 'मुझे खाटपर ले चलकर शास्ताका दर्शन कराओ' कहकर ले जाये जाते हुए दर्शनके अयोग्य काम करनेसे, जेतवन पुष्करिणीके समीप ही वह ... फटी पृथ्वीमें धँसकर नर्कमें जा स्थित हुआ।...। यह (अजातशत्रु) कोसल-राजाकी पुत्रीका पुत्र था, विदेह-राजकी (का) नहीं। वैदेही पंडिताको कहते हैं, जैसे 'वैदेहिका गृहपत्नी', 'आर्य आनन्दको वैदेह मुनि'।... वेद = ज्ञान..., उससे ईहन (=प्रयत्न) करती है = वैदेही ...।

पू र्ण का श्य प के साथ थोळी ही धर्म-चर्चा करनेसे चित्त प्रसन्न हो जायेगा। उसके ऐसा कहनेपर मगधराज अजातशत्रु, वैदेहिपुत्र चुप रहा।

दूसरे मन्त्रीने मगधराज ० से यह कहा—"महाराज! यह म क्ख लि गो सा ल संघ-स्वामी ०। उसके ऐसा कहनेपर मगधराज ० चुप रहा।

दूसरे मन्त्रीने भी मगधराज ०से यह कहा—"महाराज! यह अ जि त के श क म्ब ल संघ-स्वामी ०। उसके ऐसा कहनेपर ०।

दूसरे मन्त्रीने भी ०—"महाराज! यह प्र कु ध का त्या य न संघ-स्वामी ०। उसके ऐसा कहनेपर मगधराज ० चुप रहा।

दूसरे मन्त्रीने भी मगधराज ०—"महाराज! यह स ञ्ज य बे ल ट्ठि पु त्त संघवाला ०। उसके ऐसा कहनेपर मगधराज ०।

दूसरे मन्त्रीने भी मगधराज ०—"महाराज! यह निगण्ठ नाथपुत्त (नातपुत्त, नाटपुत्त) संघ-स्वामी ०। उसके ऐसा कहनेपर मगधराज ०।

उस समय जी व क कौमारभृत्य राजा मागध वैदेहिपुत्र अजातशत्रुके पास ही चुपचाप बैठा था। तब राजा ० अजातशत्रुने जीवक कौमारभृत्यसे यह कहा— "सौम्य जीवक! तुम बिलकुल चुपचाप क्यों हो?"

"देव! ये भगवान् अर्हत् सम्यक् सम्बुद्ध मेरे आमके बगीचेमें साढ़े बारह सौ भिक्षुओंके बळे संघके साथ विहार कर रहे हैं। उन भगवान् गौतमका ऐसा मंगल यश फैला हुआ है—'वह भगवान् अर्हत्, सम्यक् सम्बुद्ध (=परम ज्ञानी), विद्या और आचरणसे युक्त, सुगत (=सुन्दरगतिको प्राप्त), लोकविद्, पुरुषोंको दमन करने (=सन्मार्ग पर लाने)के लिये अनुपम चाबुक सवार, देव-मनुष्योंके शास्ता (=उपदेशक), बुद्ध (=ज्ञानी) भगवान् हैं'। महाराज! आप उनके पास चलें और धर्म-चर्चा करें। उन भगवान्के साथ धर्मालाप करनेसे कदाचित् आपका चित्त प्रसन्न हो जायेगा।"

"तो सौम्य जीवक! हाथियोंकी सवारीको तैयार कराओ।"

तब जीवक कौमारभृत्यने राजा मागध वैदेहिपुत्र अजातशत्रुको "देव! जैसी आज्ञा।" कह पाँच सौ हाथी और राजाके अपने हाथीको सजवाकर मगधराज० को सूचना दी—"देव! सवारीके लिये हाथी तैयार हैं, अब देवकी जैसी इच्छा हो करें।"

तब राजा० अजातशत्रु पाँच सौ हाथियोंपर अपनी रानियोंको बिठला स्वयं राजहाथीपर सवार हो मशालोंकी रोशनीके साथ रा ज गृ ह से बळे राजकीय ठाट बाटसे निकला; और, जहाँ जीवक कौमारभृत्यका आमका बगीचा था उधर चला। तब उस आमके बगीचेके निकट पहुँचनेपर ० अजातशत्रुको भय, घबराहट और रोमाञ्च होने लगा। मगधराज ० डरकर घबराकर और रोमाञ्चित होकर जीवक कौमारभृत्यसे बोला—"सौम्य जीवक! कहीं तुम मुझे धोखा तो नहीं दे रहे हो? कहीं तुम मुझे दगा तो नहीं दे रहे हो? कहीं तुम मुझे शत्रुओंके हाथ तो नहीं दे रहे हो? बारह सौ पचास भिक्षुओंके बळे संघके (यहाँ रहनेपर भी) भला कैसे, थूकने, खांसने तकका या किसी दूसरे प्रकारका शब्द न होगा?"

"महाराज! आप मत डरें, आपको मैं धोखा नहीं दे रहा हूँ, न आपको दगा दे रहा हूँ, न आपको शत्रुओंके हाथमें दे रहा हूँ। आगे चलें महाराज! आगे चलें। यह मंडपमें दीये जल रहे हैं।"

तब ० अजातशत्रु जितनी भूमि हाथीद्वारा जाने योग्य थी उतनी हाथीसे जा, हाथीनागसे उतर पैदलही उस मंडपका जहाँ द्वार था वहाँ गया। जाकर जीवक कौमारभृत्यसे यह बोला—

"सौम्य जीवक! भगवान् कहाँ हैं?"

"महाराज ! भगवान् यहाँ हैं। महाराज ! भगवान् यहाँ भिक्षुसंघको सामने किये बीच वाले खम्भेके सहारे पूर्व दिशाकी ओर मुँह करके बैठे हैं।"

तब ० अजातशत्रु जहाँ भगवान् थे वहाँ गया। जाकर एक ओर खळा हो गया। एक ओर खळा होकर अजातशत्रुने निर्मल जलाशयकी तरह बिल्कुल चुपचाप, शान्त, भिक्षुसंघको देख यह उदान (=प्रीति वाक्य) कहा—"मेरा कुमार उ द य भ द्र भी इसी शान्तिसे युक्त होवे, जिस शान्तिसे इस समय यह भिक्षुसंघ विराज रहा है।"

"महाराज ! प्रेमपूर्वक आओ।"

"भन्ते ! मेरा कुमार उदयभद्र मेरा वळा प्रिय है, मेरा कुमार उदयभद्र भी इसी शान्तिसे युक्त होवे, जिस शान्तिसें युक्त हो इस समय यह भिक्षुसंघ विराज रहा है।

तब राजा अजातशत्रु ०। भगवान्‌को अभिवादन करके और भिक्षु संघको हाथ जोळ, एक ओर बैठ गया। एक ओर बैठकर मगधराज ० ने भगवान्‌से कहा—"भन्ते ! मैं आपसे कुछ पूछना चाहता हूँ, सो भगवान् कृपा करके प्रश्न पूंछनेकी अनुमति दें।"

"महाराज ! जो चाहो पूछो।"

"जैसे भन्ते ! यह भिन्न भिन्न शिल्प-स्थान (=विद्या, कला) हैं, जैसे कि हस्ति-आरोहण (=हाथीकी सवारी), अश्वारोहण, रथिक, धनुर्ग्राह, चेलक (=युद्धध्वज-धारण), चलक (=व्यूह-रचन), पिंडदायिक (=पिंड बाँटनेवाले), उग्र राजपुत्र (=वीर राजपुत्र), महानाग (=हाथीसे युद्ध करनेवाले)-शूर, चर्म (=ढाल)-योधी, दासपुत्र, आलारिक (=बावर्ची), कल्पक (=हजाम), नहापक (=नहलानेवाले), सूद (=पाचक), मालाकार, रजक, पेशकार (=रंगरेज), नलकार, कुंभकार, गणक, मुद्रिक (=हाथसे गिननेवाले), और जो दूसरे भी इस प्रकारके भिन्न भिन्न शिल्प हैं; (इनके) शिल्पफलसे (लोग) इसी शरीरमें प्रत्यक्ष जीविका करते हैं, उससे अपनेको सुखी करते हैं, तृप्त करते हैं। पुत्र स्त्रीको सुखी करते हैं, तृप्त करते हैं। मित्र अमात्योंको०। ऊपर लेजानेवाला, स्वर्गको लेजानेवाला, सुख-विपाक-वाला, स्वर्गमार्गीय, श्रमण ब्राह्मणोंके लिये दान, स्थापित करते हैं। क्या भन्ते ! उसी प्रकार श्रामण्य (=भिक्षुपनका) फल भी इसी जन्ममें प्रत्यक्ष (फलदायक) बतलाया जा सकता है ?"

"महाराज ! इस प्रश्नको दूसरे श्रमण ब्राह्मणको भी पूछ (उत्तर) जाना है ?"

"भन्ते ! जाना है ०।"

"यदि तुम्हें भारी न हो, तो कहो महाराज ! कैसे उन्होंने उत्तर दिया था ?"

"भन्ते ! मुझे भारी नहीं है, जब कि भगवान् या भगवान्‌के समान कोई बैठा हो।"

"तो महाराज ! कहो।"

१—छै तीर्थंकरोंके मत

(१) पूर्ण काश्यपका मत (अक्रियवाद)—"एक बार मैं भन्ते ! जहाँ पूर्ण काश्यप थे, वहाँ गया। जाकर पूर्ण काश्यपके साथ मैंने संमोदन किया ... एक ओर बैठकर ... यह पूछा—'हे काश्यप ! यह भिन्न भिन्न शिल्प-स्थान हैं ०। ऐसा पूछनेपर भन्ते ! पूर्ण काश्यपने मुझसे कहा—'महाराज ! करते कराते, छेदन करते, छेदन कराते, पकाते पकवाते, शोक करते, परेशान होते, परेशान कराते, चलते चलाते, प्राण मारते, बिना दिया लेते, सेंध काटते, गाँव लूटते, चोरी करते, बटमारी करते, परस्त्रीगमन करते, झूठ बोलते भी, पाप नहीं किया जाता। छुरेसे तेज चक्रद्वारा जो इस पृथिवी के प्राणियोंका (कोई) एक माँसका खलियान, एक माँसका पुंज बना दे; तो इसके कारण उसको पाप नहीं, पापका आगम नहीं होगा। यदि घात करते कराते, काटते-कटाते, पकाते-पकवाते, गंगाके दक्षिण तीर पर भी जाये; तो भी इसके कारण उसको पाप नहीं, पापका आगम नहीं होगा। दान देते, दान

दिलाते, यज्ञ करते, यज्ञ कराते यदि गंगाके उत्तर तीर भी जाये, तो इसके कारण उसको पुण्य नहीं, पुण्यका आगम नहीं होगा। दान दम संयमसे, सत्य बोलनेसे न पुण्य है, न पुण्यका आगम है।' इस प्रकार भन्ते! पूर्ण ० ने मेरे सांदृष्टिक (=प्रत्यक्ष) श्रामण्य-फल पूछने पर **अक्रिया** वर्णन किया। **जैसे** कि भन्ते! पूछे आम, जवाब दे कटहल; पूछे कटहल, जवाब दे आम; ऐसेही भन्ते! पूर्ण काश्यपने मेरे सांदृष्टिक श्रामण्य-फल पूछनेपर अक्रिया (=अक्रिय-वाद) उत्तर दिया।"

"कैसे मुझ जैसा (कोई राजा) अपने राज्यमें बसनेवाले किसी श्रमण या ब्राह्मणको देशसे निकाल दे? भन्ते सो मैंने **पूरणकस्सप**के कहे हुयेका न तो अभिनन्दन किया और न निन्दा की। न बळाई, न निन्दा करके खिन्न हो, कोई खिन्न बात भी न कहकर, उस (उसकी कही हुई) बातको न स्वीकार कर, और न उसका ख्याल कर, आसनसे उठकर चल दिया।

(२) मक्खलि गोसालका मत (दैववाद)—

"भन्ते! एक दिन मैं जहाँ म क्ख लि गो सा ल था वहाँ गया, जाकर मक्खलि गोसालके साथ कुशल समाचार ०। एक ओर बैठकर मक्खलि गोसालसे मैंने यह कहा, 'हे गोसाल! जिस तरह ये जो दूसरे शिल्प हैं, जैसे ०। और भी जो दूसरे ० आँखोंके सामने फल देनेवाले हैं, वे उनसे अपने सुख० पुण्य कमाते हैं। हे गोसाल! उसी तरह क्या श्रमणभावके पालन करते ०?'

"ऐसा कहनेपर भन्ते! **मक्खलि गोसाल**ने यह उत्तर दिया—'महाराज! सत्वोंके क्लेशका हेतु नहीं है=प्रत्यय नहीं है। बिना हेतुके और बिना प्रत्ययके ही सत्व क्लेश पाते हैं। सत्वोंकी शुद्धिका कोई हेतु नहीं है, कोई प्रत्यय नहीं है। बिना हेतुके और बिना प्रत्ययके सत्व शुद्ध होते हैं। अपने कुछ नहीं कर सकते हैं, पराये भी कुछ नहीं कर सकते हैं, (कोई) पुरुष भी कुछ नहीं कर सकता है, बल नहीं है, वीर्य नहीं है, पुरुषका कोई पराक्रम नहीं है। सभी सत्व, सभी प्राणी, सभी भूत, और सभी जीव अपने वशमें नहीं हैं, निर्बल, निर्वीर्य, भाग्य और संयोगके फेरसे छै जातियों (में उत्पन्न हो) सुख और दुःख भोगते हैं। वे प्रमुख योनियाँ चौदह लाख छियासठ सौ हैं। पाँच सौ पाँच कर्म, तीन अर्ध कर्म (=केवल मनसे शरीरसे नहीं), बासठ प्रतिपदायें (=मार्ग), बासठ अन्तरकल्प, छै अभिजातियाँ, आठ पुरुष-भूमियाँ, उन्नीस सौ आजीवक, उनचास सौ परिव्राजक, उनचास सौ नाग-आवास, बीस सौ इन्द्रियाँ, तीस सौ नरक, छत्तीस रजोधातु, सात संज्ञी (=होशवाले) गर्भ, सात असंज्ञी गर्भ, सात निर्ग्रन्थ गर्भ, सात देव, सात मनुष्य, सात पिशाच, सात स्वर, सात सौ सात गाँठ, सात सौ सात प्रपात, सात सौ सात स्वप्न, और अस्सी लाख छोटे-बळे कल्प हैं, जिन्हें मूर्ख और पण्डित जानकर और अनुगमनकर दुःखोंका अन्त कर सकते हैं। वहाँ यह नहीं है—इस शील या व्रत या तप, ब्रह्मचर्यसे मैं अपरिपक्व कर्मको परिपक्व करूँगा। परिपक्व कर्मको भोगकर अन्त करूँगा। सुख दुःख द्रोण(=नाप)से तुले हुये हैं, संसारमें घटना-बढ़ना उत्कर्ष-अपकर्ष नहीं होता। **जैसे** कि सूतकी गोली फेंकनेपर उछलती हुई गिरती है, वैसे ही मूर्ख और पंडित दौळकर=आवागमनमें पळकर, दुःखका अन्त करेंगे।

"'भन्ते! प्रत्यक्ष श्रामण्यफलके पूछे जानेपर, मक्खलि गोसालने इस तरह संसारकी शुद्धिका उपाय बताया। भन्ते! **जैसे** आमके पूछनेपर कटहल कहे और कटहलके पूछनेपर आम कहे। भन्ते! इसी तरह प्रत्यक्ष श्रामण्य-फलके पूछे जानेपर ०। भन्ते! तब मेरे मनमें यह हुआ, 'कैसे मुझ जैसा ०। भन्ते! सो मैंने मक्खलि गोसालके ०। ० उठकर चल दिया।

(३) अजित केशकम्बलका मत (जडवाद, उच्छेदवाद)—"भन्ते! एक दिन मैं जहाँ अ जि त के श क म्ब ल था वहाँ ०। एक ओर बैठकर ० यह कहा—"हे अजित! जिस तरह ०। हे अजित! उसी तरह क्या श्रमणभावके पालन करते ०?'

"ऐसा कहनेपर भन्ते ! अजित केशकम्बलने यह उत्तर दिया—'महराज ! न दान है, न यज्ञ है न होम है, न पुण्य या पापका अच्छा बुरा फल होता है, न यह लोक है न परलोक है, न माता है, न पिता है, न अयोनिज (=औपपातिक, देव) सत्व हैं, और न इस लोकमें वैसे ज्ञानी और समर्थ श्रमण या ब्राह्मण हैं जो इस लोक और परलोकको स्वयं जानकर और साक्षात्कर (कुछ) कहेंगे। मनुष्य चार महाभूतोंसे मिलकर बना है। मनुष्य जब मरता है तब पृथ्वी, महापृथ्वीमें लीन हो जाती है, जल ०, तेज ०, वायु ० और इन्द्रियाँ आकाशमें लीन हो जाती हैं। मनुष्य लोग मरे हुयेको खाटपर रखकर ले जाते हैं, उसकी निन्दा प्रशंसा करते हैं। हड्डियाँ कबूतरकी तरह उजली हो (बिखर) जाती हैं, और सब कुछ भस्म हो जाता है। मूर्ख लोग जो दान देते हैं, उसका कोई फल नहीं होता। आस्तिकवाद (=आत्मा है) झूठा है। मूर्ख और पण्डित सभी शरीरके नष्ट होते ही उच्छेदको प्राप्त हो जाते हैं। मरनेके बाद कोई नहीं रहता। भन्ते ! प्रत्यक्ष श्रामण्यफलके पूछे ० अजित केशकम्बलने उच्छेदवादका विस्तार किया। भन्ते ! **जैसे** आमके पूछने ०। भन्ते ! इसी तरह प्रत्यक्ष श्रामण्यफलके ० उच्छेदवादका विस्तार किया। भन्ते ! तब मेरे मनमें यह हुआ—'कैसे मुझ जैसा ०। भन्ते ! सो मैंने अजित केशकम्बलके०।० उठकर चल दिया।

(४) **प्रक्रुध कात्यायनका मत (अकृततावाद)**—"भन्ते ! एक दिन मैं जहाँ प्र क्रु ध का त्या य न ०। श्रमणभावके पालन करने० ?

"ऐसा कहनेपर भन्ते ! प्रक्रुध कात्यायनने यह उत्तर दिया—'महाराज ! यह सात काय (=समूह) अकृत=अकृतविध=अ-निर्मित=निर्माण-रहित, अबध्य=कूटस्थ, स्तम्भवत् (अचल) हैं। यह चल नहीं होते, विकारको प्राप्त नहीं होते; न एक दूसरेको हानि पहुँचाते हैं; न एक दूसरेके सुख, दुख, या सुख-दुःखके लिये पर्याप्त हैं। कौनसे सात? पृथिवी-काय, आप-काय, तेज-काय, वायु-काय, सुख, दुख, और जीवन यह सात। यह सात काय अकृत ० सुख-दुःखके योग्य नहीं हैं। यहाँ न हन्ता (=मारनेवाला) है, न घातयिता (=हनन करानेवाला), न सुननेवाला, न सुनानेवाला, न जाननेवाला न जतलानेवाला। जो तीक्ष्ण शस्त्रसे शीश भी काटे (तोभी) कोई किसीको प्राणसे नहीं मारता। सातों कायोंसे अलग, विवर (=खाली जगह)में शस्त्र (=हथियार) गिरता है।'

"इस प्रकार भन्ते ! ० प्रत्यक्ष श्रामण्यफलके पूछे ० प्रक्रुध कात्यायनने दूसरी ही इधर उधर-की बातें बनाईं। भन्ते ! **जैसे** आमके पूछने ०। भन्ते ! इसी तरह ० बातें बनाई। भन्ते ! तब मेरे मनमें यह हुआ—'कैसे मुझ जैसा ०। भन्ते ! सो मैंने ०। ० उठकर चल दिया।

(५) **निगण्ठ नाथपुत्तका मत—(चातुर्याम संवर)**—"भन्ते ! एक दिन मैं जहाँ नि ग ण्ठ ना थ पु त्त ०।—श्रामण्यके पालन करने० ?

"ऐसा कहनेपर भन्ते! नि ग ण्ठ ना थ पु त्तने यह उत्तर दिया—'महाराज ! निगण्ठ चार (प्रकार-के) संवरोंसे संवृत (=आच्छादित, संयत) रहता है। महाराज ! निगण्ठ चार संवरोंसे कैसे संवृत रहता है? महाराज ! (१) निगण्ठ (=निर्ग्रंथ) जलके व्यवहारका वारण करता है (जिसमें जलके जीव न मारे जावें)। (२) सभी पापोंका वारण करता है, (३) सभी पापोंके वारण करनेसे धुतपाप (=पापरहित) होता है, (४) सभी पापोंके वारण करनेमें लगा रहता है। महाराज ! निगण्ठ इस प्रकार चार संवरोंसे संवृत रहता है। महाराज ! क्योंकि निगण्ठ इन चार प्रकारके संवरोंसे संवृत रहता है, इसीलिये वह निर्ग्रन्थ, गतात्मा (=अनिच्छुक), यतात्मा (=संयमी) और स्थितात्मा कहलाता है।"

"भन्ते ! प्रत्यक्ष श्रामण्य फलके पूछे० निगण्ठ नाथपुत्तने चार संवरोंका वर्णन किया। भन्ते ! **जैसे** आमके पूछने०। भन्ते ! इसी तरह० चार संवरोंका वर्णन किया। भन्ते ! तब मेरे मनमें यह हुआ 'कैसे मुझ जैसा०। भन्ते ! सो मैंने०। ० उठकर चल दिया।

(६) संजय बेलट्ठिपुत्तका मत (अनिश्चिततावाद)

"भन्ते ! एक दिन मैं जहाँ स ञ्ज य बे ल ट्ठि पु त्त० ।—श्रामण्यके पालन करने० ?

"ऐसा कहनेपर भन्ते ! सञ्जय बेलट्ठिपुत्तने यह उत्तर दिया—"महाराज ! यदि आप पूछें, 'क्या परलोक है ? और यदि मैं समझूँ कि परलोक है, तो आपको बतलाऊँ कि परलोक है। मैं ऐसा भी नहीं कहता, मैं वैसा भी नहीं कहता, मैं दूसरी तरहसे भी नहीं कहता, मैं यह भी नहीं कहता कि 'यह नहीं है' मैं यह भी नहीं कहता कि 'यह नहीं नहीं है।' परलोक नहीं है ०। परलोक है भी और नहीं भी ०, परलोक न है और न नहीं है ०। अयोनिज (=औपपातिक) प्राणी हैं०, अयोनिज प्राणी नहीं हैं, हैं भी और नहीं भी, न हैं और न नहीं हैं ०। अच्छे बुरे कामके फल हैं, नहीं हैं, हैं भी और नहीं भी, न हैं और न नहीं हैं ? ०। तथागत मरनेके बाद होते हैं नहीं होते हैं ० ?' यदि मुझे ऐसा पूछें, और मैं ऐसा समझूँ कि मरनेके बाद तथागत न रहते हैं और न नहीं रहते हैं, तो मैं ऐसा आपको कहूँ। मैं ऐसा भी नहीं कहता, मैं वैसा भी नहीं कहता ०।'

"भन्ते ! प्रत्यक्ष श्रामण्य फलके पूछे ० संजय बेलट्ठिपुत्तने कोई निश्चित बात नहीं कही। भन्ते ! जैसे आमके पूछने ०। भन्ते ! इसी तरह ० कोई निश्चित बात नहीं कही। भन्ते ! तब मेरे मनमें यह हुआ, 'कैसे मुझ जैसा ०। भन्ते ! सो मैंने ०। ० उठकर चल दिया।

२—भिक्षु होनेका प्रत्यक्ष फल

१—शील

"भन्ते ! सो मैं भगवान्से पूछता हूँ, 'जिस तरह ये दूसरे शिल्प हैं, जैसे, हस्त्यारोह, अश्वारोह०। और भी जो दूसरे ० आँखोंके सामने फल देनेवाले हैं, वे उनसे अपने सुख ० करके पुण्य कमाते हैं। उसी तरह क्या श्रमणभावके पालन करने ० ?"

"हाँ महाराज ! तो मैं आपसे ही पूछता हूँ, जैसा आप समझें वैसा ही उत्तर दें। महाराज ! तो आप क्या समझते हैं ? आपका एक नौकर हो जो आपके सारे कामोंको करता हो, आपके कहनेके पहले ही वह आपके सारे कामोंको कर चुकता हो, आपके सोने या बैठनेके बाद ही स्वयं सोता या बैठता हो, आपकी आज्ञा सुननेके लिये सदा तैयार रहता हो, प्रिय आचरण करने वाला, प्रिय बोलने वाला, और आपकी आज्ञाओंको सुननेके लिये सदा आपके मुँहकी ओर ताकता रहता हो। उस (नौकर)के मनमें यह हो—'पुण्यकी गति और पुण्यका फल बळा अद्भुत और आश्चर्यमय है। यह मगधराज अ जा त श त्रु वैदेहिपुत्र भी मनुष्य ही हैं और मैं भी मनुष्य ही हूँ। यह मगधराज० पाँच प्रकारके भोगों (=कामगुणों) का भोग करते हैं, जैसे मानों कोई देव हों, और मैं उनका नौकर हूँ, जो उनके सारे कामोंको करता हूँ, उनके कहनेके पहले ही उनके सारे कामोंको कर डालता हूँ ०। तो मैं भी पुण्य करूँ, शिर और दाढ़ी मुँळवा, काषाय वस्त्र धारण कर, घरसे बेघर हो प्रब्रजित हो जाऊँ।'

"वह उसके बाद शिर और दाढ़ी मुंळा, काषाय वस्त्र धारणकर, घरसे बेघर बन, प्रब्रजित हो जावे। वह इस प्रकार प्रब्रजित हो शरीरसे संयम, बचनसे संयम और मनसे संयम करके विहार करे, तथा खाना कपळा मात्रसे संतुष्ट और प्रसन्न रहे। तब आपसे दूसरे लोग आकर कहें—'महाराज ! क्या आप जानते हैं कि जो आपका नौकर ० था, वह शिर और दाढ़ी मुंळा, काषाय वस्त्र धारणकर घरसे बेघर बन प्रब्रजित हो गया है। वह इस प्रकार प्रब्रजित हो शरीरसे ० प्रसन्न रहता है।' तब क्या आपऐसा कहेंगे—'मेरा वह पुरुष लौट आवे और फिर भी मेरा नौकर ० होवे।"

"भन्ते ! हम ऐसा नहीं कह सकते। बल्कि हम ही उसका अभिवादन करेंगे, उसकी सेवा करेंगे, उसको आसन देंगे और उसे चीवर, पिण्डपात, शयन-आसन और दवा-पथ्य देनेके लिये निमन्त्रण देंगे। उसकी सभी तरहसे देख-भाल भी करेंगे।"

"तो महाराज ! क्या समझते हैं, श्रमणभाव (=साधु होना) के पालन करनेका (यह) फल यहीं आँखोंके सामने मिल रहा है या नहीं ?"

"भन्ते ! हाँ ऐसा होनेपर तो श्रमणभावके पालन करने का फल यहीं आँखोंके सामने मिल रहा है।"

"महाराज ! यह तो श्रमणभावके पालन करनेका पहला ही फल मैंने बतलाया जो कि यहीं आँखोंके सामने मिल जाता है।"

"भन्ते ! इसी तरह क्या और दूसरा भी श्रमणभावका ० आँखोंके सामने मिल जानेवाला फल दिखा सकते हैं ?"

"(दिखा) सकता हूँ महाराज ! तो महाराज ! आप ही से पूँछता हूँ, जैसा आप समझें वैसा उत्तर दें। तो क्या समझते हैं महाराज ! आपका कोई आदमी कृषक, गृहपति, काम-काज करनेवाला और धन-धान्य बटोरनेवाला हो। उसके मनमें ऐसा हो—'पुण्यकी गति और पुण्यका फल बळा आश्चर्य-कारक और अद्‌भुत है। यह मगधराज ०—मनुष्य हूँ। यह मगधराज ० पाँच भोगोंसे ० जैसे कोई देव और मैं कृषक ०। सो मैं भी पुण्य करूँ। शिर और दाढ़ी ० प्रव्रजित हो जाऊँ।

"सो दूसरे समय अल्प या अधिक (अपनी) भोगकी सामग्रियोंको छोळ, अल्प या अधिक परिवार और जातिके बन्धनको तोळ, शिर और दाढ़ी मुंळा ० प्रव्रजित हो जावे। वह इस प्रकार प्रव्रजित हो शरीरसे संयम। ०। और आपके दूसरे पुरुष आकर आपको यह कहें—'महाराज ! क्या आप जानते हैं ! जो आपका पुरुष कृषक ० वह शिर दाढ़ी ०। वह इस प्रकार प्रव्रजित हो शरीरसे ०। तो आप क्या कहेंगे—'वह मेरा आदमी आवे और फिर भी कृषक ० होवे ?"

"नहीं भन्ते ! बल्कि हम ही उसका ०। तब महाराज ! क्या समझते हैं, श्रमण भावके पालन करने ० मिल रहा है या नहीं ?"

"भन्ते ! हाँ, ऐसा होनेपर तो ०।"

"महाराज ! यह दूसरा श्रमणभाव ०।"

"भन्ते ! इसी तरह क्या दूसरा भी ० ?"

"(दिखा) सकता हूँ महाराज ! तो महाराज ! सुनें, अच्छी तरह ध्यान दें, मैं कहता हूँ।"

"हाँ भन्ते !" कह ० अजातशत्रुने भगवान्‌को उत्तर दिया।

भगवान्‌ने कहा—"महाराज ! जब संसारमें तथागत अर्हत्, सम्यक् सम्बुद्ध, विद्या-आचरणसे युक्त, सुगत (=अच्छी गतिवाले), लोकविद्, अनुत्तर (=अलौकिक), पुरुषोंको दमन करने (=सन्मार्ग पर लाने) के लिये अनुपम चाबुक सवार, देव मनुष्योंके शास्ता, (और) बुद्ध (=ज्ञानी) उत्पन्न होते हैं, वह देवताओंके साथ, मारके साथ, ब्रह्माके साथ, श्रमण, ब्राह्मण, प्रजाओंके साथ तथा देवताओं और मनुष्योंके साथ, इस लोकको स्वयं जाने, साक्षात् किये (धर्म) को उपदेश करते हैं। वह आदि-कल्याण, मध्यकल्याण, अन्त्यकल्याण धर्मका उपदेश करते हैं। सार्थक, स्पष्ट, बिलकुल पूर्ण (और) शुद्ध ब्रह्मचर्यको बतलाते हैं। उस धर्मको गृहपति या गृहपतिका पुत्र, या किसी दूसरे कुलमें उत्पन्न हुआ पुरुष सुनता है। वह उस धर्मको सुनकर तथागतके प्रति श्रद्धालु हो जाता है। वह श्रद्धालु होकर ऐसा विचारता है—गृहस्थका जीवन बाधा और रागसे युक्त है और प्रव्रज्या बिल्कुल स्वच्छन्द खुला हुआ स्थान है। घरमें रहनेवाला पूरे तौरसे, एकदम परिशुद्ध और खरादे शंखसे निर्मल (इस) ब्रह्मचर्यका पालन नहीं कर सकता। इसलिये क्यों न मैं शिर और दाढ़ी ० प्रव्रजित हो जाऊँ। वह दूसरे समय अल्प या अधिक भोगकी सामग्रियों ० जातिके बन्धनको तोळ ० प्रव्रजित हो जाता है।

(१) शील

१—आरम्भिक शील

"वह प्रव्रजित हो प्रातिमोक्षके नियमोंका ठीक ठीक पालन करते हुए विहार करता है, आचार-गोचरके सहित हो, छोटेसे भी पापसे डरनेवाला काय और वचन कर्मसे संयुक्त, शुद्ध जीविका करते, शीलसम्पन्न, इन्द्रिय-संयमी, भोजनकी मात्रा जाननेवाला, स्मृतिमान्, सावधान और संतुष्ट रहता है।

"महाराज! भिक्षु कैसे शीलसम्पन्न होता है? (१) महाराज! भिक्षु हिंसाको छोळ हिंसासे विरत होता है, दण्डको छोळ, शस्त्रको छोळ, लज्जा (पाप कर्म्मों)से मुक्त, दयासम्पन्न, सभी प्राणियोंके हितकी कामनासे युक्त हो विहार करता है। यह भी शील है। (२) चोरीको छोळ चोरीसे विरत रहता है, किसीकी कुछ दी गई वस्तुहीको ग्रहण करता है, किसीकी कुछ दी गई वस्तुहीकी अभिलाषा करता है। इस प्रकार वह पवित्रात्मा होकर विहार करता है। यह भी शील है। (३) अब्रह्मचर्यको छोळ ब्रह्मचारी रहता है, मैथुन कर्मसे विरत और दूर रहता है। यह भी शील है। (४) मिथ्याभाषणको छोळ, मिथ्याभाषणसे विरत रहता है, सत्यवादी, सत्यसन्ध, स्थिर, विश्वसनीय और यथार्थवक्ता होता है। यह भी शील है। (५) चुगली खाना छोळ, चुगली खानेसे विरत रहता है, लोगोंमें लळाई लगानेके लिये यहाँसे सुनकर वहाँ नहीं कहता है और वहाँसे सुनकर यहाँ नहीं कहता। वह फूटे हुए लोगोंका मिलानेवाला, मिले हुए लोगोंमें और भी अधिक मेल करानेवाला, मेल चाहनेवाला, मेल(के काम)में लगा हुआ, (और) मेलमें प्रसन्न होनेवाला, मेल करनेकी बातका बोलनेवाला होता है। यह भी शील है। (६) कठोर बचनको छोळ कठोर बचनसे विरत रहता है। जो बात निर्दोष, कर्णप्रिय, प्रेमयुक्त, मनमें लगनेवाली, सभ्य, तथा लोगोंको प्रिय है, उसी प्रकारकी बातोंका कहनेवाला होता है। यह भी शील है। (७) व्यर्थके बकवादको छोळ व्यर्थके बकवादसे विरत रहता है। समयोचित बात बोलनेवाला, ठीक बात बोलनेवाला, सार्थक बात बोलनेवाला, धर्मकी बात बोलनेवाला, विनयकी बात बोलनेवाला, जँचनेवाली बात बोलनेवाला होता है। समय और अवस्थाके अनुकूल विभागकर सार्थक बात बोलनेवाला होता है। यह भी शील है। (८) बीजों और जीवोंके नाश करनेको छोळ बीजों और जीवोंके नाश करनेसे विरत रहता है ०। (९) दिनमें एक बार ही भोजन करनेवाला होता है,- विकाल (=मध्याह्नके बाद) भोजनसे विरत रहता है। (१०) नृत्य, गीत, बाजा, और बुरे प्रदर्शनसे विरत रहता है। (११) ऊँची और सजी-धजी शय्यासे विरत रहता है। (१२) सोने चाँदीके छूनेसे विरत रहता है। (१३) कच्चा अन्न ०। (१४) कच्चा मांस ०। (१५) स्त्री और कुमारीके स्वीकार करने ०। (१६) दासी और दासके ०। (१७) भेळ बकरी ०। (१८) मुर्गी, सूअर ०। (१९) हाथी, गाय, घोळा, घोळी ०। (२०) खेत, माल असबाबके स्वीकार०। (२१) दूतके काम करने ०। (२२) क्रय-विक्रय ०। (२३) नाप-तराजू, बटखरोंमें ठगबनीजी करने ०। (२४) घूस लेने, ठगने, और नकली सोना चाँदी बनाने ०। (२५) हाथ पैर काटने, मारने, बाँधने, लूटने और डाँका डालनेसे विरत होता है ०। यह भी शील है।

२—मध्यम शील

"महाराज! अथवा अनाळी मेरी प्रशंसा इस प्रकार करते हैं—जिस प्रकार कितने श्रमण और ब्राह्मण (गृहस्थोंके द्वारा) श्रद्धापूर्वक दिये गये भोजनको खाकर इस प्रकारके सभी बीजों और सभी प्राणियोंके नाशमें लगे रहते हैं, जैसे—मूलबीज (=जिनका उगना मूलसे होता है), स्कन्धबीज (जिनका प्ररोह गाँठसे होता है, जैसे—ईख), फलबीज और पाँचवाँ अग्रबीज (उगता पौधा), उस प्रकार श्रमण गौतम बीजों और प्राणियोंका नाश नहीं करता।

"महाराज! अथवा०—जिस प्रकार कितने श्रमण और ब्राह्मण०इस प्रकारके जोळने और

बटोरनेमें लगे रहते हैं, जैसे—अन्न, पान, वस्त्र, वाहन, शय्या, गन्ध तथा और भी वैसी ही दूसरी चीज़ोंका इकट्ठा करना, उस प्रकार श्रमण गौतम जोळने और बटोरनेमें नहीं लगा रहता।

"महाराज ! अथवा०—जिस प्रकार कितने श्रमण और ब्राह्मण ० इस प्रकारके अनुचित दर्शनमें लगे रहते हैं, जैसे—नृत्य, गीत, बाजा, नाटक, लीला, ताली, ताल देना, घळापर तबला बजाना, गीत-मण्डली, लोहेकी गोलीका खेल, बाँसका खेल, धोपन*, हस्ति-युद्ध, अश्व-युद्ध, महिष-युद्ध, वृषभ-युद्ध, बकरोंका युद्ध, भेळोंका युद्ध, मुर्गोंका लळाना, बत्तकका लळाना, लाठीका खेल, मुष्टि-युद्ध, कुश्ती, मारपीटका खेल, सेना, लळाईकी चालें इत्यादि उस प्रकार श्रमण गौतम अनुचित दर्शनमें नहीं लगता।

"महाराज ! अथवा०—जिस प्रकार कितने श्रमण और ब्राह्मण० जूआ आदि खेलोंके नशेमें लगे रहते हैं, जैसे—†अष्टपद, दशपद, आकाश, परिहारपथ, सन्निक, खलिक, घटिक, सलाक-हस्त, अक्ष, पंगचिर, वंकक, मोक्खचिक, चिलिंगुलिक, पत्ताल्हक, रथकी दौळ, तीर चलानेकी बाजी, बुझौअल, और नकल; उस प्रकार श्रमण गौतम जूआ आदि खेलोंके नशेमें नहीं पळता।

"महाराज ! अथवा०—जिस प्रकार कितने श्रमण और ब्राह्मण० इस तरहकी ऊँची और ठाट-बाटकी शय्यापर सोते हैं, जैसे—दीर्घ-आसन, पलंग, बळे बळे रोयेंवाला आसन, चित्रित आसन, उजला कम्बल, फूलदार बिछावन, रजाई, गद्दा, सिंह-व्याघ्र आदिके चित्रवाला आसन, झालरदार आसन, काम किया हुआ आसन, लम्बी दरी, हाथीका साज, घोळेका साज, रथका साज, कदलिमृगके खालका बना आसन, चँदवादार आसन, दोनों ओर तकिया रखा हुआ (आसन) इत्यादि, उस प्रकार श्रमण गौतम ऊँची और ठाट-बाटकी शय्यापर नहीं सोता।

"महाराज ! अथवा०—जिस प्रकार कितने श्रमण और ब्राह्मण ० इस प्रकार अपनेको सजने-धजनेमें लगे रहते हैं, जैसे—उबटन लगवाना, शरीरको मलवाना, दूसरेके हाथ नहाना, शरीर दबवाना, ऐना, अंजन, माला, लेप, मुख-चूर्ण (=पाउडर), मुख-लेपन, हाथके आभूषण, शिखाका आभूषण छळी, तलवार, छाता, सुन्दर जूता, टोपी, मणि, चँवर, लम्बे-लम्बे झालरवाले साफ उजले कपळे इत्यादि, उस प्रकार श्रमण गौतम अपनेको सजने-धजनेमें नहीं लगा रहता।

"महाराज ! अथवा०—जिस प्रकार कितने श्रमण और ब्राह्मण० इस प्रकारकी व्यर्थकी (=तिरश्चीन) कथामें लगे रहते हैं, जैसे—राजकथा, चोर, महामंत्री, सेना, भय, युद्ध, अन्न, पान, वस्त्र, शय्या, माला, गन्ध, जाति, रथ, ग्राम, निगम, नग़र, जनपद, स्त्री, शूर, चौरस्ता (=विशिखा), पनघट, और भूत-प्रेतकी कथायें, संसारकी विविध घटनाएँ, सामुद्रिक घटनाएँ, तथा इसी तरहकी इधर-उधरकी जनश्रुतियाँ; उस प्रकार श्रमण गौतम तिरश्चीन कथाओंमें नहीं लगता।

"महाराज ! अथवा०—जिस प्रकार कितने श्रमण और ब्राह्मण ० इस प्रकारकी लळाई-झगळोंकी बातोंमें लगे रहते हैं, जैसे—तुम इस मत (=धर्म विनय)को नहीं जानते, मैं० जानता हूँ, तुम०क्या जानोगे? तुमने इसे ठीक नहीं समझा है; मैं इसे ठीक-ठीक समझता हूँ; मैं धर्मानुकूल कहता हूँ; तुम धर्म-विरुद्ध कहते हो; जो पहले कहना चाहिए था, उसे तुमने पीछे कह दिया, और जो पीछे कहना चाहिए था, उसे पहले कह दिया; बात कट गई; तुमपर दोषारोपण हो गया; तुम पकळ लिये गये; इस आपत्तिसे छूटनेकी कोशिश करो; यदि सको, तो उत्तर दो इत्यादि; उस प्रकार श्रमण गौतम लळाई-झगळोंकी बातमें नहीं रहता।

"महाराज ! अथवा०—जिस प्रकार कितने श्रमण और ब्राह्मण० राजाका, महामन्त्रीका,

---

*उस समयके खेल।

†उस समयके जूये।

क्षत्रियका, ब्राह्मणोंका, गृहस्थोंका, कुमारोंका (इधर उधर) दूतका काम—वहाँ जाओ, यहाँ आओ, यह लाओ, यह वहाँ ले जाओ इत्यादि; करते फिरते हैं, उस प्रकार श्रमण गौतम दूतका काम नहीं करता !

"महाराज ! अथवा ० —जिस प्रकार कितने श्रमण और ब्राह्मण० पाखंडी और वंचक, बातूनी, जोतिषके पेशावाले, जादू-मन्तर दिखानेवाले और लाभसे लाभकी खोज करते हैं; वैसा श्रमण गौतम नहीं है।

३—महाशील

जिस प्रकार कितने श्रमण और ब्राह्मण श्रद्धापूर्वक दिये गये भोजनको खाकर इस प्रकारकी हीन (=नीच) विद्यासे जीवन बिताते हैं, जैसे—अंगविद्या, उत्पाद०, स्वप्न०, लक्षण०, मूषिक-विष-विद्या, अग्निहवन, दर्वी-होम, तुष-होम, कण-होम, तण्डुल-होम, घृत-होम, तैल-होम, मुखमें घी लेकर कुल्लेसे होम, रुधिर-होम, वास्तुविद्या, क्षेत्रविद्या, शिव०, भूत०, भूरि०, सर्प०, विष०, बिच्छूके झाळ-फूंककी विद्या, मूषिक विद्या, पक्षि०, शरपरित्राण (=मन्त्र जाप, जिससे लळाईमें वाण शरीरपर न गिरे), और मृगचक्र; उस प्रकार श्रमण गौतम इस प्रकारकी हीन विद्यासे निन्दित जीवन नहीं बिताता।

"महाराज ! अथवा०—जिस प्रकार कितने श्रमण और ब्राह्मण० इस प्रकारकी हीन विद्यासे निन्दित जीवन बिताते हैं, जैसे—मणि-लक्षण, वस्त्र०, दण्ड०, असि०, वाण०, धनुष०, आयुध०, स्त्री०, पुरुष०, कुमार०, कुमारी०, दास०, दासी०, हस्ति०, अश्व०, भैंस०, वृषभ०, गाय०, अज०, मेष०, मुर्गा०, बत्तक०, गोह०, कर्णिका०, कच्छप० और मृग-लक्षण; उस प्रकार श्रमण गौतम इस प्रकारकी हीन विद्यासे निन्दित जीवन नहीं बिताता।

"महाराज ! अथवा०—इस प्रकार० निन्दित जीवन बिताते हैं, जैसे—राजा बाहर निकल जायेगा, नहीं निकल जायेगा, यहाँका राजा बाहर जायगा, बाहरका राजा यहाँ आवेगा, यहाँके राजाकी जीत होगी और बाहरके राजाकी हार, यहाँके राजाकी हार होगी और बाहरके राजाकी जीत, इसकी जीत होगी और उसकी हार ; उस प्रकार श्रमण गौतम इस प्रकारकी हीन विद्यासे निन्दित जीवन नहीं बिताता।

"महाराज ! अथवा०—निन्दित जीवन बिताते हैं, जैसे—चन्द्र-ग्रहण होगा, सूर्य-ग्रहण, नक्षत्र-ग्रहण, चन्द्रमा और सूर्य अपने-अपने मार्ग ही पर रहेंगे, चन्द्रमा और सूर्य अपने मार्गसे दूसरे मार्गपर चले जायेंगे, नक्षत्र अपने मार्गपर रहेगा, नक्षत्र अपने मार्गसे हट जायगा, उल्कापात होगा, दिशा डाह होगा, भूकम्प होगा, सूखा बादल गरजेगा, चन्द्रमा, सूर्य और नक्षत्रोंका उदय, अस्त, सदोष होगा और शुद्ध होना होगा, चन्द्र-ग्रहणका यह फल होगा०, चन्द्रमा, सूर्य और नक्षत्रके उदय, अस्त सदोष या निर्दोष होनेसे यह फल होगा; उस प्रकार श्रमण गौतम इस प्रकारकी हीन विद्यासे निन्दित जीवन नहीं बिताता।

"महाराज ! अथवा०—निन्दित जीवन बिताते हैं, जैसे—अच्छी वृष्टि होगी, बुरी वृष्टि होगी, सस्ती-होगी, महँगी पळेगी, कुशल होगा, भय होगा, रोग होगा, आरोग्य होगा, हस्तरेखा-विद्या, गणना, कविता-पाठ इत्यादि; उस प्रकार श्रमण गौतम० नहीं० ।

"महाराज ! अथवा ०—निन्दित जीवन बिताते हैं, जैसे—सगाई, विवाह, विवाहके लिए उचित नक्षत्र बताना, तलाक देनेके लिए उचित नक्षत्र बताना, उधार या ऋणमें दिये गये रुपयोंके वसूल करनेके लिए उचित नक्षत्र बताना, उधार या ऋण देनेके लिए उचित नक्षत्र बताना, सजना-धजना, नष्ट करना, गर्भपुष्टि करना, मन्त्रबलसे जीभको बाँध देना,० ठुड्डीको बाँध देना,० दूसरेके हाथको उलट देना,०

दूसरेके कानको बहरा बना देना, दर्पणपर देवता बुलाकर प्रश्न पूछना, कुमारीके शरीरपर और देववाहिनीके शरीरपर देवता बुलाकर प्रश्न पूछना, सूर्य-पूजा, महाब्रह्म-पूजा, मन्त्रके बल मुँहसे अग्नि निकालना; उस प्रकार श्रमण गौतम० नहीं०।

"महाराज! अथवा० निन्दित जीवन बिताते हैं, जैसे––मिन्नत मानना, मिन्नत पुराना, मन्त्रका अभ्यास करना, मन्त्रबलसे पुरुषको नपुंसक और नपुंसकको पुरुष बनाना, इन्द्रजाल, बलिकर्म, आचमन, स्नान-कार्य, अग्नि-होम, दवा देकर वमन, विरेचन, ऊर्ध्वविरेचन, शिरोविरेचन कराना, कानमें डालने के लिए तेल तैयार कराना, आँखके लिये०, नाकमें तेल देकर छिंकवाना, अंजन तैयार करना, छुरी-काँटाकी चिकित्सा करना, वैद्यकर्म; उस प्रकार श्रमण गौतम० नहीं०।

"महाराज! यह शील तो बहुत छोटे और गौण हैं, जिसके कारण अनाळी मेरी प्रशंसा करते हैं।

"महाराज! वह भिक्षु इस प्रकार शीलसम्पन्न हो इस शील-संवरके कारण कहींसे भय नहीं देखता है। जैसे महाराज! कोई मूर्धाभिषिक्त (=sovereign) क्षत्रिय राजा, सभी शत्रुओंको जीतकर कहींसे किसी शत्रुसे भय नहीं खाता, उसी तरह महाराज! भिक्षु इस प्रकार शीलसम्पन्न हो कहींसे ०। वह इस शीलके पालन करनेसे अपने भीतर निर्दोष सुखको अनुभव करता है। महाराज! भिक्षु इस तरह शीलसम्पन्न होता है।

४—इन्द्रियोंका संवर (=संयम)

"महाराज! कैसे भिक्षु अपने इन्द्रियोंको वशमें रखता है? महाराज! भिक्षु आँखसे रूपको देखकर न उसके आकारको ग्रहण करता है और न आसक्त होता है। जिस चक्षु इन्द्रियका संयम नहीं रखनेसे (मनमें) दौर्मनस्य बुराइयाँ और पाप चले आते हैं; उसकी रक्षा (=संवर)के लिये यत्न करता है। चक्षु इन्द्रियकी रक्षा करता है, चक्षु इन्द्रियको संवृत करता है। कानसे शब्द सुनकर ०। नाकसे गन्ध सूँघकर ०। जिह्वासे रसका आस्वादन करके ०। शरीरसे स्पर्श करके०। मनसे धर्मोंको जान करके ०। वह इस प्रकारके आ र्य सं व र से युक्त हो अपने भीतर परम सुखको प्राप्त करता है। महाराज! इस प्रकार भिक्षु अपनी इन्द्रियोंको वशमें रखता है।

५—स्मृति, सम्प्रजन्य

"महाराज! कैसे भिक्षु स्मृति और संप्रजन्य (=सावधानी)से युक्त होता है? महाराज! भिक्षु जाने और आनेमें सावधान रहता है। देखने और भालनेमें ०। मोळने और पसारनेमें ०। संघाटी, पात्र और चीवरके धारण करनेमें ०। खाने, पीने, चलने और सोनेमें ०। पाखाना, पेशाब करनेमें ०। चलते, खळा रहते, बैठते, सोते, जागते, बोलते और चुप रहते०। महाराज! इस तरह भिक्षु स्मृति और संप्रजन्यसे युक्त होता है।

६—सन्तोष

"महाराज! कैसे भिक्षु संतुष्ट रहता है? महाराज! भिक्षु इस प्रकार शरीर ढकनेभर चीवरसे और पेटभर भिक्षासे संतुष्ट रहता है––वह जहाँ जहाँ जाता है अपना सब कुछ लेकर जाता है। जिस तरह महाराज! पक्षी जहाँ जहाँ उळता है, अपने पंखोंको लिये ही उळता है, उसी प्रकार महाराज! भिक्षु संतुष्ट रहता है, शरीर ढकनेभर ०—लेकर जाता है। महाराज! वह भिक्षु इस प्रकार संतुष्ट रहता है।

"वह इस प्रकार उत्तम शीलों (=आर्यशीलस्कंध), उत्तम इन्द्रियसंवर, उत्तम स्मृति-संप्रजन्य, और उत्तम संतोषसे युक्त हो (ऐसे) एकान्तमें वास करता है; जैसे कि जंगलमें वृक्षके नीचे, पर्वत, कन्दरा, गिरिगुहा, श्मशान, जंगलका रास्ता, खुले स्थान, पुआलका ढेर। पिण्डपातसे लौटनेके बाद भोजन

करनेके उपरान्त, आसन मार, शरीरको सीधाकर, चारों ओरसे स्मृतिमान् हो बाहरकी ओरसे ध्यानको खींच भीतरकी ओर फेरकर विहार करता है। (ऐसे) ध्यान (-अभ्यास)से वह (अपने) चित्तको शुद्ध करता है। हिंसाके भावको छोळ, अहिंसक चित्तवाला होकर विहार करता है। सभी जीवोंके प्रति दयाका भाव (लेकर) अपने चित्तको हिंसाके भावसे शुद्ध करता है। आलस्यको छोळ बिना आलस्य-वाला होकर विहार करता है। प्रकाशयुक्त संज्ञा (=ख्याल)से युक्त सावधान हो अपने चित्तको आलस्य-से शुद्ध करता है। अपनी चंचलता और शंकाओंको छोळ शान्त भावसे रहता है। अपने भीतरकी शान्तिसे-संयुक्तचित्तवाला हो, चंचलताओं और शंकाओंसे अपने चित्तको शुद्ध करता है। संदेहोंको छोळ संदेहोंसे रहित होकर विहार करता है। भले कामोंमें संदहोंसे चित्तको शुद्ध करता है।

"**जैसे** महाराज! (कोई) पुरुष **ऋण** लेकर अपना काम चलावे। (जब) उसका काम पूरा हो जावे, वह (पुरुष) अपने (लिये हुए) पुराने ऋणको समूल चुका दे। स्त्रीको पोसनेके लिये उसके पास कुछ (धन) बच भी जावे। उसके मनमें ऐसा होवे—मैंने पहले ऋंण लेकर अपना काम चलाया। मेरा काम पूरा हो गया। सो मैंने पुराने ऋणको समूल चुका दिया। स्त्रीको पोसनेके लिये भी मेरे पास कुछ (धन) बच गया है। और इससे वह प्रसन्न और आनन्दित होवे।

"**जैसे** महाराज! कोई पुरुष **रोगी**=दुःखी और बहुत बीमार हो। उसे भात अच्छा नहीं लगे, और न् शरीरमें बल मालूम दे। वह (पुरुष) कुछ दिनोंके बाद उस बीमारीसे उठे, उसे भात भी अच्छा लगे और शरीरमें बल भी मालूम दे। उसके (मनमें) ऐसा हो—'मैं पहले रोगी ० था। सो मैं बीमारीसे ० बल भी मालूम होता है।' और इससे वह प्रसन्न ०।

"**जैसे** महाराज! कोई पुरुष **जेलमें** बन्द हो। वह कुछ दिनोंके बाद सकुशल, बिना हानिके जेलसे छूटे, और उसके धनका कोई नुकसान न हो। उसके मनमें ऐसा हो—'मैं पहले जेलमें ० था। सो मैं ० जेलसे छूट गया ०।' और इससे वह प्रसन्न ०।

"**जैसे** महाराज! कोई पुरुष **दास** हो, न-अपने-अधीन, पराधीन हो, अपनी इच्छाके अनुसार जहाँ कहीं नहीं जा सकनेवाला हो। दूसरे समय वह दासतासे मुक्त हो जावे, स्वतन्त्र, अपराधीन, यथेच्छ-गामी हो, जहाँ चाहे जावे। उसके मनमें ऐसा होवे—'मैं पहले दास था ०। सो मैं अब ० जहाँ चाहूँ वहाँ जा सकता हूँ'। इस प्रकार वह प्रसन्न और आनन्दित होवे।

"**जैसे** महाराज! कोई धनी और सुखी मनुष्य किसी **कान्तार** (=मरुभूमि)के लम्बे मार्गमें जा रहा हो, जहाँ भोजनकी सामग्रियाँ नहीं मिलती हों और जहाँ (चोर, डाकू, बाघ आदिका) भय भी हो। सो कुछ समयके बाद उस कान्तारको पार कर जावे, (और) सकुशल भयरहित और क्षेमयुक्त गाँवके पास पहुँच जावे। उसके मनमें ऐसा होवे—'मैं पहले० कान्तार०। सो मैं अब० पहुँच गया' इस प्रकार वह प्रसन्न और आनन्दित होवे।

"महाराज! **जैसे** ऋण, रोग, जेल, दासता, और कान्तारके रास्तेमें जाना, वैसेही भिक्षुका अपनेमें वर्तमान पाँच नी व र णों (=काम, व्यापाद, स्त्यानमृद्ध, औद्धत्य, विचिकित्सा) को देखता है। जैसे महाराज, ऋणसे मुक्त होना, नीरोग होना, जेलसे छूटना, और स्वतंत्र होना, कान्तार पार होना है, वैसे ही महाराज! भिक्षुका इन पाँच नीवरणोंको अपनेमें नष्ट हो गया देखना है।

२—*समाधि*

१—प्रथम ध्यान—इन नीवरणोंको अपनेमें नष्ट देख, प्रमोद (आनन्द)उत्पन्न होता है। प्रमुदित होनेसे प्रीति उत्पन्न होती है, प्रीतिके उत्पन्न होनेसे शरीर शान्त होता है। शरीरके शान्त रहनेसे उसे सुख होता है। सुखके उत्पन्न होनेसे चित्त समाहित (=एकाग्र) होता है। वह कामों (=सांसारिक भोगोंकी इच्छा)को छोळ, पापोंको छोळ स-वितर्क, स-विचार, और विवेकसे उत्पन्न प्रीति सुखवाले प्रथम

ध्यानको प्राप्त करके विहार करता है। वह इस शरीरको विवेकसे उत्पन्न प्रीति-सुखसे सींचता है, भिगोता है, पूर्ण करता है, और चारों ओर व्याप्त करता है। उसके शरीरका कोई भी भाग विवेकसे उत्पन्न उस प्रीति-सुखसें अव्याप्त नहीं रहता।

"**जैसे** महाराज! **नाई** या नाईका शागिर्द (=अन्तेवासी, लळका) काँसेके थालमें स्नान-चूर्णको डाल पानीसे थोळा थोळा सींचे। वह स्नानचूर्णकी पिण्डी तेलसे अनुगत, बाहर भीतर तेलसे व्याप्त हो (किन्तु तेल) न चुवे। इसी तरह महाराज! इस शरीरको विवेकसे उत्पन्न प्रीतिसुखसे ०। उसके शरीरका कोई भाग ० नहीं रहता है।

"महाराज! जो भिक्षु भोगोंको छोळ, पापोंको छोळ सवितर्क, सविचार, और विवेकसे उत्पन्न प्रीतिसुख वाले प्रथम ध्यानको प्राप्त हो विहार करता है। वह इसी शरीरको विवेकसे उत्पन्न प्रीतिसुख-से ०। उसके शरीरका कोई भाग ० नहीं रहता है।—महाराज! यह भी प्रत्यक्ष श्रामण्य-फल (=श्रमण भावका-फल) है, पहले जो प्रत्यक्ष श्रामण्य फल कहे गये हैं, उनसे भी वढ़कर = प्रशस्ततर हैं।

२—द्वितीय ध्यान—"और फिर महाराज! भिक्षु वितर्क और विचारके शान्त हो जानेसे भीतरी प्रसाद, चित्तकी एकाग्रतासे युक्त किन्तु वितर्क और विचारसे रहित समाधिसे उत्पन्न प्रीतिसुख-वाले दूसरे ध्यानको प्राप्त होकर विहार करता है। वह इसी शरीरको समाधिसे उत्पन्न प्रीतिसुखसे ०। उसके शरीरका कोई भाग ०।

"**जैसे** महाराज! कोई **जलाशय** गम्भीर, और भीतरमें पानीके सोतेवाला हो। न उसके पूर्व दिशामें जलके आनेका कोई रास्ता हो, न दक्षिण ०, न पश्चिम ०, न उत्तर ०। समय समयपर वर्षाकी धारा भी उस (जलाशयमें) आकर न गिरे। और उस जलाशय (के भीतरसे) शीतल जलधारा फूटकर उस जलाशयको शीतल जलसे भरे, ०। और उस जलाशयका कोई भी भाग शीतल जलधारासे रहित न हो। इसी तरहसे महाराज! इसी शरीरको समाधिसे उत्पन्न ०। उसके शरीरका कोई भाग ०।— यह भी महाराज प्रत्यक्ष श्रामण्यफल पहले कहे गये ० से भी बढ़कर ० है।

३—तृतीय ध्यान—"और फिर महाराज! भिक्षु प्रीति और विरागसे भी उपेक्षायुक्त (=अन्य-मनस्क) हो स्मृति और संप्रजन्यसे युक्त हो विहार करता है। और शरीरसे आर्यों (=पण्डितों)के कहे हुए सभी सुखोंका अनुभव करता है; और उपेक्षाके साथ, स्मृतिमान् और सुखविहारवाले तीसरे ध्यान को प्राप्त होकर विहार करता है। वह इसी शरीरको प्रीतिरहित सुखसे सीचता ०। इसके शरीरका कोई भी भाग प्रीतिरहित सुखसे अव्याप्त नहीं होता।

"**जैसे** महाराज! **उत्पलसमुदाय** पद्मसमुदाय, या पुण्डरीकसमुदायमें कोई कोई नील कमल (= उत्पल), रक्तकमल, या श्वेतकमल जलमें उत्पन्न हुये जलहीमें बढ़े, जलहीमें रहनेवाले, और जलहीके भीतर पुष्ट होनवाले, जलसे चोटी तक शीत जलसे व्याप्त ०। उनका कोई भी भाग शीत जलसे अव्याप्त नहीं रहता। इसी तरह महाराज! भिक्षु इस शरीरको प्रीतिरहित सुखसे ०। उसके शरीरका कोई भी भाग ०। महाराज! यह भी प्रत्यक्ष श्रामण्य फल ०।

४—चतुर्थ ध्यान—"और फिर महाराज! भिक्षु सुखको छोळ, दुःखको छोळ पहले ही सौमनस्य और दौर्मनस्यके अस्त हो जानसे न-दुःख और न-सुखवाले, तथा स्मृति और उपेक्षासे शुद्ध चौथे ध्यानको प्राप्तकर विहार करता है। सो इसी शरीरको अपने शुद्ध चित्तसे निर्मल बनाकर बैठता है। उसके शरीरका कोई भाग शुद्ध और निर्मल चित्तसे अव्याप्त नहीं होता। **जैसे** महाराज! कोई पुरुष उजले **कपळे से शिर तक ढाँक**कर, पहनकर बैठे, (और) उसके शरीरका कोई भाग उस उजले कपळेसे बे-ढँका न हो। इसी तरह महाराज! भिक्षु इसी शरीरको ० — अव्याप्त नहीं होता। यह भी महाराज! प्रत्यक्ष श्रामण्यफल ०।

३—प्रज्ञा

१—ज्ञान द र्श न—"वह इस प्रकार एकाग्र, शुद्ध, निर्मल, निष्पाप, क्लेशोंसे रहित, मृदु, मनोरम, और निश्चल चित्त पानेके बाद सच्चे ज्ञानके प्रत्यक्ष करनेके लिये अपने चित्तको नवाता है। वह इस प्रकार जानता है—'यह मेरा शरीर, भौतिक (=रूपी) चार महाभूतों (=पृथ्वी, जल, तेज और वायु से बना, माता और पिताके संयोगसे उत्पन्न, भात दालसे बर्द्धित, अनित्य, छेदन, भेदन, मर्दन, और नाशन योग्य (है)। यह मेरा वि ज्ञा न (=मन) इसमें लग जाता है और बँध जाता है। जैसे महाराज! श्वेत अच्छी जातिवाला, अठपहलू, अच्छा काम किया हुआ, स्वच्छ, प्रसन्न, निर्मल, और सभी गुणोंसे युक्त हीरा (हो); और उसमें नीला, पीला, लाल, उजला, या पांडु रंगका धागा पिरोया हो। उसे आँखवाला (कोई) पुरुष हाथमें लेकर देखे—'यह श्वेत ० हीरा पांडु रंगका धागा पिरोया है। इसी तरह महाराज! भिक्षु एकाग्र, शुद्ध ०—चित्तको लगाता है। वह ऐसा जानता है,—'यह मेरा शरीर भौतिक ० नाशनयोग्य है। और मेरा यह विज्ञान यहाँ लग गया है, फँस गया है। यह भी महाराज प्रत्यक्ष श्रामण्य-फल० बढ़कर है।

२—म नो म य श री र का नि र्मा ण—"वह इस प्रकारके एकाग्र, शुद्ध ० चित्त पानेके बाद मनोमय शरीरके निर्माण करनेके लिये अपने चित्तको लगाता है। वह इस शरीरसे अलग एक दूसरे भौतिक, मनोमय, सभी अङ्गप्रत्यङ्गोंसे युक्त, अच्छी पुष्ट इन्द्रियोंवाले शरीरका निर्माण करता है।

जैसे महाराज! कोई पुरुष **मूँजसे** सरकंडेको निकाल ले। उसके मनमें ऐसा हो, 'यह मूँज है (और) यह सरकंडा। मूँज दूसरी है और सरकंडा दूसरा है। मूँजहीसे सरकंडा निकाला गया है।'

"**जैसे** महाराज! (कोई) पुरुष **तलवारको म्यानसे निकाले**। उसके मनमें ऐसा हो—'यह तलवार है और यह म्यान। तलवार दूसरी है और म्यान दूसरा। तलवार म्यान हीसे निकाली गई है।

"या, **जैसे** महाराज! कोई (सँपेरा) अपने **पिटारेसे साँपको निकाले**। उसके मनमें ऐसा हो—'यह साँप है यह पिटारा ०।' इसी तरहसे महाराज! भिक्षु इस प्रकार एकाग्र, शुद्ध ० चित्त पाकर मनोमय शरीरके निर्माणके लिये अपने चित्तको लगाता है। सो इस शरीरसे दूसरा ०। यह भी महाराज! प्रत्यक्ष श्रामण्य-फल ०।

३—ऋ द्धि याँ—"वह इस प्रकारके एकाग्र, शुद्ध ० चित्तको पाकर अनेक प्रकारकी ऋद्धियोंकी प्राप्तिके लिये चित्तको लगाता है। वह अनेक प्रकारकी ऋद्धियोंको प्राप्त करता है—एक होकर बहुत होता है, बहुत होकर एक होता है, प्रगट होता है, अन्तर्धान होता है, दीवारके आरपार, प्राकारके आरपार और पर्वतके आरपार बिना टकराये चला जाता है, मानो आकाशमें (जा रहा हो)। पृथिवीमें जलमें जैसा गोते लगाता है, जलके तलपर भी पृथिवीके तलपर जैसा चलता है। आकाशमें भी पलथी मारे हुये उळता है, मानो पक्षी (उळ रहा हो); महा-तेजस्वी सूरज और चाँदको भी हाथसे छूता है, और मलता है; ब्रह्मलोक तक अपने शरीरसे वशमें किये रहता है।

"**जैसे** महाराज! (कोई) चतुर कुम्हार, या कुम्हारका लळका अच्छी तरहसे तैयार की गई मिट्टी से जो बर्तन चाहे वही बनाले और फिर बिगाळ दे।

"**जैसे** महाराज! (कोई) चतुर (हाथीके) दाँतका काम करने वाला (=**दन्तकार**) ० अच्छी तरह सोधे गये दाँत से ०।

"**जैसे** महाराज! कोई चतुर **सुवर्णकार** (=सोनार) ० अच्छी तरहसे सोधे गये सोनेसे ०।—इसी तरह महाराज! भिक्षु इस प्रकार एकाग्र शुद्ध ० चित्त कर ऋद्धिकी प्राप्तिके लिए अपने चित्तको लगाता है। वह अनेक प्रकारकी ऋद्धियोंको प्राप्त कर लेता है—एक होकर बहुत ०।

"यह भी महाराज प्रत्यक्ष श्रामण्य-फल ०।

४—दि व्य श्रो त्र—"वह इस प्रकार एकाग्र शुद्ध ० चित्तको पाकर दिव्य श्रोत्रधातुके पानेके लिये अपने चित्तको लगाता है; और वह अपने अलौकिक शुद्ध दिव्य, श्रोत्र (=कान)से दोनों (प्रकारके) शब्द सुनता है, देवताओंके भी और मनुष्योंके भी, दूरके भी और निकटके भी। **जैसे** महाराज! कोई पुरुष रास्तेमें जा रहा हो, वह सुने भेरीके शब्द, मृदङ्गके शब्द, शंख और प्रणवके **शब्द**। उसके मनमें ऐसा हो, (यह) भेरीका शब्द है, मृदङ्गका शब्द है, शंख और प्रणवका शब्द है। इसी तरहसे महाराज! भिक्षु इस प्रकार एकाग्र शुद्ध ० चित्तको पा दिव्य श्रोत्रधातुके लिये अपने चित्तको लगाता है। वह, शुद्ध दिव्य० दूरके भी और निकटके भी। महाराज! यह भी प्रत्यक्ष श्रामण्य-फल०।

५—प र चि त्त ज्ञा न—"वह इस प्रकार एकाग्र, शुद्ध० चित्तको पाकर दूसरेके चित्तकी बातोंको जाननेके लिये अपना चित्त लगाता है। वह दूसरे सत्वोंके, दूसरे लोंगोके चित्तको अपने चित्तसे जान लेता है—रागसहित चित्तको रागसहित जान लेता है, वैराग्यसहित चित्त०, द्वेषसहित चित्त०, द्वेपसे रहित चित्त०, मोहसहित चित्त०, मोहसे रहित०, संकीर्ण चित्त०, विक्षिप्त चित्त०, उदार चित्त०, अनुदार चित्त०, सांसारिक (=साधारण) चित्त०, अलौकिक (=असाधारण) चित्त, एकाग्र चित्त ०, न-एकाग्र ०, विमुक्त चित्त ०, अ-मुक्त (=बद्ध) चित्त ० (को वैसाही जान लेता है);

"**जै से** महाराज! स्त्री या पुरुष, या लळका, या जवान, अपनेको सज धजकर **दर्पण** या शुद्ध, निर्मल, स्वच्छ जलके पात्रमें अपने मुखको देखते हुये अपने मुखके मैलेपन या स्वच्छताको ज्योंका त्यों जान ले, उसी तरह महाराज! भिक्षु इस प्रकार एकाग्र, शुद्ध ० चित्तको पाकर दूसरेके चित्त ०। वह दूसरे सत्वों और दूसरे लोगोंके चित्त ०।—यह भी महाराज! प्रत्यक्ष श्रामण्य-फल ०।

६—पूर्वजन्मोंका स्मरण—"वह इस प्रकार एकाग्र ० चित्तको पाकर पूर्व जन्मोंकी बातोंको स्मरण करनेके लिये अपने चित्तको लगाता है। सो नाना पूर्व जन्मोंकी बातोंको स्मरण करता है। जैसे, एक जाति, दो ०, तीन ०, चार ०, पाँच ०, दस ०, बीस ०, तीस ०, चालीस ०, पचास ०, सौ ०, हजार ०, लाख ०, अनेक संवर्त (=प्रलय) कल्पों, अनेक विवर्त (=सृष्टि) कल्पों, अनेक संवर्त-विवर्त कल्पों (को जानता है)—'(मैं) वहाँ था, इस नाम वाला, इस गोत्र वाला, इस रंगका, इस आहार (भोजन)को खाने वाला इतनी आयु वाला था। मैंने इस प्रकारके सुख और दुःखका अनुभव किया। सो (मैं) वहाँसे मरकर वहाँ उत्पन्न हुआ, इस नाम वाला ०। सो (मैं) वहाँ मरकर यहाँ उत्पन्न हुआ" इस तरह आकार प्रकारके साथ वह अनेक पूर्व जन्मोंको स्मरण करता है।

"**जैसे** महाराज! (कोई) पुरुष अपने **गाँवसे दूसरे गाँवको जावे**; वह फिर भी उस गाँवसे अपने गाँवमें लौट आवे। उसके मनमें ऐसा हो—'मैं अपने गाँवसे अमुक गाँवमें गया, वहाँ ऐसे खळा रहा, ऐसे बैठा, ऐसे बोला, ऐसे चुप रहा। उस गाँवसे भी अमुक गाँवमें गया, वहाँ भी ऐसे खळा ०—सो मैं उस गाँवसे अपने गाँवमें लौट आया। इसी तरह महाराज! भिक्षु इस प्रकार एकाग्र ० अनेक पूर्व जन्मोंको ०—जैसे, एक जन्म ०। मैं वहाँ था, इस नाम वाला ०। इस तरह आकार प्रकारके साथ ०। यह भी महाराज! प्रत्यक्ष श्रामण्य-फल ०।

७—दिव्य चक्षु—"वह इस प्रकार एकाग्र ० चित्तको पाकर प्राणियोंके जन्म मरण (के विषय) में जाननेके लिये अपने चित्तको लगाता है। वह शुद्ध और अलौकिक दिव्य चक्षुसे मरते उत्पन्न होते; हीन अवस्थामें आये, अच्छी अवस्थामें आये; अच्छे वर्ण (=रंग) वाले, बुरे वर्ण वाले; अच्छी गतिको प्राप्त, बुरी गतिको प्राप्त, अपने अपने कर्मके अनुसार अवस्थाको प्राप्त, प्राणियोंको जान लेता है—ये प्राणी शरीरसे दुराचरण, वचनसे दुराचरण, और मनसे दुराचरण करते हुये, साधुपुरुषोंकी निन्दा करते थे, मिथ्या दृष्टि (=बुरे सिद्धान्त) रखते थे, बुरी धारणा (= मिथ्यादृष्टि)के काम करते थे। (अब) वह मरनेके बाद नरक, और दुर्गतिको प्राप्त हुये हैं। और यह (दूसरे)

प्राणी शरीर, वचन और मनसे सदाचार करते, साधुजनोंकी प्रशंसा करते, ठीक धारणा (= सम्यक् दृष्टि) वाले, सम्यक् दृष्टिके अनुकूल आचरण करते थे; सो अब अच्छी गति और स्वर्गको प्राप्त हुये हैं।—इस तरह शुद्ध अलौकिक दिव्य चक्षुसे ० जान लेता है।

"**जैसे** महाराज ! **चौरस्तेके बीचमें प्रासाद** (=महल) हो। वहाँ आँखवाला (कोई) मनुष्य खळा हो मनुष्योंको घरमें घुसते भी और बाहर आते भी एक सळकसे दूसरी सळकमें घूमते, चौरस्तेके बीचमें पास बैठे भी देखे। उसके मनमें ऐसा होवे —'यह मनुष्य घरमें घुसते हैं, यह बाहर निकल रहे हैं; यह एक सळकसे दूसरी सळकमें घूम रहे हैं, यह चौरस्तेके बीचमें बैठे हैं।' इसी तरह महाराज ! भिक्षु इस प्रकार एकाग्र,० चित्तको पाकर प्राणियोंके जन्म मरण जानने ०। वह० दिव्य चक्षुसे प्राणियोंको मरते जीते ० जान लेता है —'यह प्राणी शरीर० दुर्गति०। ये प्राणी० सुगति०। इस प्रकार० दिव्य चक्षुसे प्राणियोंको जन्म लेते ० जान लेता है। यह भी महाराज ! प्रत्यक्ष०।

८—**दुःख-क्षय-ज्ञान**—"वह इस प्रकार एकाग्र ० चित्तको पाकर आस्रवों (=चित्तमलों)के क्षयके (विषयमें) जाननेके लिये ०। वह 'यह दुःख है' इसको भली भांति जान लेता है, 'यह दुःख-समुदय (=दुःखका कारण) है ०', 'यह दुख-निरोध (=दुःखका नाश) है' ०, 'यह दुःखोंसे बचनेका मार्ग है'० जान लेता है। 'यह आस्रव है' ०, 'यह आस्रवोंका समुदय है' ०, 'यह आस्रवोंका निरोध है' ०, 'यह आस्रवोंके निरोधका मार्ग है' ०। ऐसा जानने और देखनेसे कामास्रव[1]से उसका चित्त मुक्त हो जाता है, भवआस्रवसे ०, अविद्या-आस्रवसे ०। 'जन्म खतम हो गया, ब्रह्मचर्य पूरा हो गया, करना था सो कर लिया, अब यहाँके लिये करनेको नहीं रहा'—ऐसा जान लेता है।

"**जैसे** महाराज ! पहाळ के ऊपर स्वच्छ, प्रसन्न और **निर्मल जलाशय** (हो)। वहाँ आँख-वाला (कोई) मनुष्य किनारेपर खळा होकर, सीप, घोंघा, और जलजन्तु, तैरती खळी मछलियाँ, देखे। उसके मनमें ऐसा हो—'यह जलाशय स्वच्छ, प्रसन्न और निर्मल है। इसमें ये सीप ०' उसी तरह महा-राज ! भिक्षु इस प्रकार एकाग्र० चित्तको पाकर आस्रवोंके क्षयके लिये०। वह 'यह दुःख है' ० ०। 'यह आस्रव है' ० ० जान लेता है। जानने और देखनेसे कामास्रवसे भी उसका चित्त मुक्त हो जाता है, भवआस्रव ०, अविद्यआस्रव ०। 'मैं मुक्त हो गया, मैं मुक्त हो गया'—ज्ञान होता है। आवागमन क्षीण०। यह भी महाराज ! प्रत्यक्ष ०।

"महाराज ! इस प्रत्यक्ष श्रामण्य-फलसे बढ़कर कोई दूसरा प्रत्यक्ष श्रामण्य-फल नहीं है।"

(भगवान्‌के) ऐसा कहनेपर मगधराज ० अजातशत्रुने भगवान्‌से कहा—

"आश्चर्य भन्ते ! अद्भुत भन्ते ! जैसे उलटेको सीधा करदे, जैसे ढँकेको खोल दे, जैसे मार्ग भूलेको मार्ग बता दे, जैसे अन्धकारमें तेलका दीपक दिखादे; जिसमें कि आँखवाले रूपको देखें; उसी तरहसे भन्ते ! भगवान्‌ने अनेक प्रकारसे धर्मको प्रकाशित किया। भन्ते ! यह मैं भगवान्‌की शरणमें जाता हूँ, धर्मकी और भिक्षु-संघकी भी। आजसे याबज्जीवन भगवान् मुझे अपनी शरणमें आया उपासक स्वीकार करें। भन्ते ! मैंने एक बळा भारी अपराध किया है जो अपनी मूर्खता, मूढ़ता और पापोंके कारण राज्यके लिये अपने धार्मिक धर्मराज पिताकी हत्या की। सो भन्ते ! भविष्यमें सँभलकर रहनेके लिये मुझ अपराधी पापीको क्षमा करें।"

"तो महाराज ! अपनी मूर्खता, मूढ़ता और पापोंसे जो तुमने अपने धार्मिक धर्मराज पिताकी हत्या कर दी, सो बळा भारी अपराध और पाप किया। (किंतु) चूंकि महाराज ! तुम

---

[1]भोगों (=कामके)के भोगनेकी इच्छा, जन्मनेकी इच्छा, और अविद्या यही तीनों चित्तमल उक्त तीन आस्रव हैं।

अपने पापको स्वीकारकर भविष्यमें सँभलकर रहनेकी प्रतिज्ञा करते हो, इसलिये मैं तुमको क्षमा करता हूँ। आर्यधर्ममें यह बृद्धि (की बात) ही समझी जाती है, यदि कोई अपने पापको समझकर और स्वीकार करके भविष्यमें उस पापको न करने और धर्माचरण करनेकी प्रतिज्ञा करता है।"

(भगवान्‌के) ऐसा कहनेपर राजा मागध वैदेहीपुत्र, अजातशत्रुने भगवान्‌से कहा—"भन्ते! तो मैं अब जाता हूँ, मुझे बहुत कृत्य हैं, बहुत करणीय हैं।"

"महाराज! जिसका तुम समय समझते हो।"

तब राजा ० अजातशत्रु भगवान्‌के कहे हुयेका अभिनन्दन और अनुमोदन कर आसनसे उठ भगवान्‌की वन्दना और प्रदक्षिणाकर चला गया।

तब भगवान्‌ने राजा ० अजातशत्रुके जानेके बाद ही भिक्षुओंको संबोधित किया—"भिक्षुओ! इस राजाका संस्कार अच्छा नहीं रहा, यह राजा अभागा है। यदि भिक्षुओ! यह राजा अपने धार्मिक धर्मराज पिताकी हत्या न करता, तो आज इसे इसी आसनपर बैठे बैठे विरज (=मल रहित), निर्मल धर्मचक्षु (=धर्मज्ञान) उत्पन्न हो जाता।"

भगवान्‌ने यह कहा, भिक्षुओंने भगवान्‌के भाषणका बळी प्रसन्नतासे अभिनन्दन किया।

३—अम्बट्ठ-सुत्त (१।३)

१—अम्बष्टका शाक्योंपर आक्षेप। २—शाक्योंकी उत्पत्ति। ३—जात-पाँतका खंडन।
४—विद्या और आचरण। ५—विद्याचरण के चार विघ्न।

ऐसा मैंने सुना—एक समय भगवान् पाँच सौ भिक्षुओंके महान् भिक्षु-संघके साथ को स ल (देश) में विचरते जहाँ इ च्छा नं ग ल नामक ब्राह्मण-ग्राम था, वहाँ पहुँचे । वहाँ भगवान् इच्छानंगलके इच्छानंगल-वनखण्डमें विहरते थे ।

उस समय पौ ष्क र सा ति ब्राह्मण, कोसलराज, प्रसेनजित-द्वारा प्रदत्त, राजभोग्य राज-दायज्ज ब्रह्म-देय, जनाकीर्ण, तृणकाष्ठ-उदकधान्यसम्पन्न उ क्क ट्ठा का स्वामी था।

पौष्करसाति ब्राह्मणने सुना—'शाक्य-कुलसे प्रव्रजित शाक्य-पुत्र श्रमण गौतम० कोसल-देशमें चारिका करते, इच्छानंगलमें ० विहार कर रहे हैं। उन भगवान् गौतमका ऐसा मंगल-कीर्ति शब्द फैला हुआ है। वह भगवान् अर्हत् सम्यक् संबुद्ध, विद्या-आचरण-सम्पन्न, सुगत, लोकविद्, अनुपम पुरुष-दम्य-सारथी, देव-मनुष्योंके शास्ता, बुद्ध भगवान् हैं। वह देव-मार सहित इस लोक, श्रमण-ब्राह्मण-देव-मनुष्य-सहित प्रजाको स्वयं जानकर, साक्षात् कर, समझाते हैं। वह आदि-कल्याण, मध्य-कल्याण पर्यवसान-कल्याण वाले धर्मका उपदेश करते हैं। अर्थ-सहित=व्यंजन-सहित, केवल परिपूर्ण परिशुद्ध ब्रह्मचर्यको प्रकाशित करते हैं। इस प्रकारके अर्हतोंका दर्शन अच्छा होता है। उस समय पौष्करसाति ब्राह्मणका **अम्बष्ट** नामक माणवक अध्यायक, मंत्र-धर, निघण्टु, केटुभ (=कल्प), अक्षर-प्रभेद, शिक्षा (=निरुक्त) सहित तीनों वेद, पाँचवें इतिहासका पारङ्गत, पद-ज्ञ (=कवि), वैयाकरण, लोकायत (शास्त्र) तथा महापुरुष-लक्षण (=सामुद्रिक शास्त्र) में निपुण, अपनी पंडिताई, प्रवचनमें—'जो मैं जानता हूँ, सो तू जानता है, जो तू जनता है वह मैं जानता हूँ' (—कहकर आचार्यद्वारा) स्वीकृत किया गया था ।

तब पौष्करसाति ब्राह्मणने अम्बष्ट माणवकको सम्बोधित किया—

"तात ! अम्बष्ट ! ० इच्छानंगलमें विहार करते हैं ०, इस प्रकारके अर्हतोंका दर्शन अच्छा होता है। आओ तात ! अम्बष्ट ! जहाँ श्रमण गौतम हैं, वहाँ जाओ। जाकर श्रमण गौतमको जानो, कि आप गौतमका (कीर्त्ति) शब्द यथार्थ फैला हुआ है, या अ-यथार्थ ? क्या ० वैसे हैं या नहीं, जिसमें कि हम आप गौतमको जानें ।

"कैसे भो ! मैं आप गौतमको जानूँगा—कि आप गौतम ० वैसे हैं या नहीं ?"

"तात ! अम्बष्ट ! हमारे मंत्रोंमें बत्तीस महापुरुष-लक्षण आये हैं। जिनसे युक्त महापुरुष-की दो ही गति होती है, तीसरी नहीं। यदि वह घरमें रहता है, ० चक्रवर्ती राजा होता है। यदि घर से बेघर हो प्रव्रजित होता है,......अर्हत् सम्यक् संबुद्ध होता है। तात ! अम्बष्ट ! मैं मंत्रोंका दाता हूँ, तू मंत्रोंका प्रतिग्रहीता है।"

पौष्कर-साति ब्राह्मणसे "हाँ, भो !" कह अम्बष्ट माणवक, आसनसे उठ, अभिवादनकर, प्रदक्षिणाकर, घोळीके रथपर चढ़, बहुतसे माणवकोंके साथ जिधर इच्छानंगल वन-खण्ड था, उधर

चला। जितनी रथकी भूमि थी, उतना रथसे जाकर, यानसे उतर, पैदल ही आराममें प्रविष्ट हुआ। उस समय बहुतसे भिक्षु खुली जगहमें टहल रहे थे। तब अम्बष्ट माणवक जहाँ वह भिक्षु थे वहाँ गया, जाकर उन भिक्षुओंसे बोला—

"भो! आप गौतम इस समय कहाँ विहार कर रहे हैं? हम आप गौतमके दर्शनके लिये यहाँ आये हैं।

तब उन भिक्षुओंको यह हुआ—'यह कुलीन प्रसिद्ध अम्बट्ठ (=अम्बष्ट) माणवक, अभिज्ञात (=प्रख्यात) पौष्करसाति ब्राह्मणका शिष्य है। इस प्रकारके कुल-पुत्रोंके साथ कथा-संलाप भगवान्‌को भारी नहीं होता।' और अम्बट्ठ माणवकसे कहा—

"अम्बट्ठ! यह बन्द दर्वाजेवाला विहार (=कोठरी) है, चुपचाप धीरेसे वहाँ जाओ और बरांडे (=अलिन्दे)में प्रवेशकर खांसकर, जंजीरको खटखटाओ, बिलाईको हिलाओ। भगवान् तुम्हारे लिये द्वार खोल देंगे।"

१—अम्बष्टका शाक्योंपर आक्षेप

तब अम्बट्ठ माणवकने जहाँ वह बंद दर्वाजेवाला विहार था, चुपचाप धीरेसे वहाँ जा ० बिलाईको हिलाया। भगवान्‌ने द्वार खोल दिया। अम्बष्ट माणवकने भीतर प्रवेश किया। (दूसरे) माणवकोंने भी प्रवेशकर भगवान्‌के साथ ...संमोदन किया... (और) वह एक ओर बैठ गये। (उस समय) अम्बट्ठ माणवक (स्वयं) बैठे हुये भी, भगवान्‌के टहलते वक्त कुछ पूछ रहा था; स्वयं खळे हुये भी बैठे हुये भगवान्‌से कुछ पूछ रहा था।

तब भगवान्‌ने अम्बष्ट माणवकसे यह कहा—

"अम्बष्ट! क्या वृद्ध=महल्लक आचार्य-प्राचार्य ब्राह्मणोंके साथ कथा-संलाप, ऐसे ही होता है, जैसा कि तू चलते खळे बैठे हुये मेरे साथ ...कर रहा है?"

"नहीं हे गौतम! चलते ब्राह्मणोंके साथ चलते हुये, खळे ब्राह्मणोंके साथ खळे हुये, बैठे ब्राह्मणोंके साथ बैठे हुये बात करनी चाहिये। सोये ब्राह्मणके साथ सोये बात कर सकते हैं। किन्तु हे गौतम! जो मुंडक, श्रमण, इभ्य (=नीच) काले, ब्रह्मा (=बन्धु)के पैरकी संतान हैं, उनके साथ ऐसे ही कथा-संलाप होता है, जैसा कि (मेरा) आप गौतमके साथ।"

"अम्बट्ठ! याचक (=अर्थी)की भाँति तेरा यहाँ आना हुआ है। (मनुष्य) जिस अर्थके लिये आवे, उसी अर्थको (उसे) मनमें करना चाहिये। अम्बष्ट! (जान पळता है) तूने (गुरुकुलमें) नहीं वास किया है; वास करे बिना ही क्या (गुरुकुल-) वासका अभिमान करता है?"

तब अम्बष्ट माणवकने भगवान्‌के (गुरुकुल-) अ-वास कहनेसे कुपित, असंतुष्ट हो, भगवान्‌को ही खुन्साते (=खुन्सेन्तो) भगवान्‌को ही निन्दते, भगवान्‌को ही ताना देते—'श्रमण गौतम दुष्ट है' (सोच) यह कहा—"हे गौतम! शाक्य-जाति चंड है। हे गौतम शाक्य-जाति क्षुद्र (=लघुक) है। हे गौतम! शाक्य-जाति बकवादी (=रभस) है। नीच (=इभ्य) समान होनेसे शाक्य, ब्राह्मणोंका सत्कार नहीं करते, ब्राह्मणोंका गौरव नहीं करते, ० नहीं मानते, ० नहीं पूजते; ० नहीं (=खातिर) करते। हे गौतम! सो यह अयोग्य है, जो कि नीच, नीच-समान शाक्य, ब्राह्मणोंका सत्कार नहीं करते ०।"

इस प्रकार अम्बट्ठने शाक्योंपर इभ्य (=नीच) कह यह प्रथम आक्षेप किया।

"अम्बट्ठ! शाक्योंने तेरा क्या कसूर किया है?"

"हे गौतम! एक समय मैं (अपने) आचार्य ब्राह्मण पौष्करसातिके किसी कामसे कपिलवस्तु गया और जहाँ शाक्योंका **संस्थागार** (=प्रजातन्त्र-भवन) था, वहाँ पहुँचा। उस समय बहुतसे शाक्य तथा शाक्य-कुमार संस्थागारमें ऊँचे ऊँचे आसनोंपर, एक दूसरेको अंगुली गळाते हँस रहे

थे, खेल रहे थे; मुझे ही मानों हँस रहे थे। (उनमेंसे) किसीने मुझे आसनपर बैठनेको नहीं कहा। सो हे गौतम! अच्छन्न=अयुक्त है, जो यह इभ्य तथा इभ्य-समान शाक्य ब्राह्मणोंका सत्कार नहीं करते ०।"

इस प्रकार अम्बट्ठ माणवकने शाक्योंपर दूसरा आक्षेप किया।

"लटुकिका (=गौरय्या) चिळिया भी अम्बट्ठ अपने घोंसलेपर स्वच्छन्द-आलाप करती है। कपिलवस्तु शाक्योंका अपना (घर) है, अम्बट्ठ! इस थोळी बातसे तुम्हें अमर्ष न करना चाहिये।"

"हे गौतम! चार वर्ण हैं—क्षत्रिय, ब्राह्मण, वैश्य और शूद्र। इनमें हे गौतम! क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र यह तीनों वर्ण, ब्राह्मणके ही सेवक हैं। गौतम! सो यह ० अयुक्त है ०।"

इस प्रकार अम्बट्ठ माणवकने इभ्य कह, शाक्योंपर तीसरी बार आक्षेप किया।

तब भगवान्‌को यह हुआ—यह अम्बट्ठ माणवक बहुत बढ़ बढ़कर शाक्योंपर इभ्य कह आक्षेप कर रहा है, क्यों न मैं (इससे) गोत्र पूछूँ। तब भगवान्‌ने अम्बट्ठ माणवकसे कहा—"किस गोत्रके हो, अम्बट्ठ!"

"काष्ण्यायन हूँ, हे गौतम!"

२—शाक्योंकी उत्पत्ति

"अम्बट्ठ! तुम्हारे पुराने नाम गोत्रके अनुसार, शाक्य आर्य(=स्वामि)-पुत्र होते हैं। तुम शाक्योंके दासी-पुत्र हो। अम्बष्ट! शाक्य, राजा इ क्ष्वा कु (=ओक्काक)को पितामह कह धारण करते (=मानते) हैं। पूर्वकालमें अम्बट्ठ! राजा इक्ष्वाकुने अपनी प्रिया मनापा रानीके पुत्रको राज्य देनेकी इच्छासे, ओ क्का मु ख (=उल्कामुख), क र ण्डु, ह त्थि नि क, और सि नी सू र (नामक) चार बळे लळकोंको राज्यसे निर्वासित कर दिया। वह निर्वासित हो, हिमालयके पास सरोवरके किनारे (एक) बळे शाक (=सागौन)-वनमें वास करने लगे। (गोरी) जातिके बिगळनेके डरसे उन्होंने अपनी बहिनोंके साथ संवास (=संभोग) किया। तब अम्बट्ठ! राजा इक्ष्वाकुने अपने अमात्यों और दरबारियोंसे पूछा—'कहाँ हैं भो! इस समय कुमार?'

'देव! हिमवान्‌के पास सरोवरके किनारे महाशाकवन (=साक-संड) है, वहीं इस वक्त कुमार रहते हैं। वह जातिके बिगळनेके डरसे अपनी बहिनोंके साथ संवास करते हैं।'

"तब अम्बट्ठ! राजा इक्ष्वाकुने उदान कहा—'अहो! कुमार! शाक्य (=समर्थ) हैं रे!! महाशाक्य हैं रे कुमार!' तबसे अम्बट्ठ! व ह शाक्यके नामहीसे प्रसिद्ध हुए, वही (इक्ष्वाकु) उनका पूर्वपुरुष था। अम्बट्ठ! राजा इक्ष्वाकुकी दि शा नामकी दासी थी। उससे कृ ष्ण (=कण्ह) नामक पुत्र पैदा हुआ। पैदा होतेही कृष्णने कहा—'अम्मा! धोओ मुझे, अम्मा! नहलाओ मुझे, इस गंदगी (=अशुचि)से मुक्त करो, मैं तुम्हारे काम आऊँगा।' अम्बट्ठ! जैसे आजकल मनुष्य पिशाचोंको देखकर 'पिशाच' कहते हैं, वैसेही उस समय पिशाचोंको, कृष्ण कहते थे। उन्होंने कहा—इसने पैदा होते ही बात की, (अतः यह) 'कृष्ण पैदा हुआ', 'पिशाच पैदा हुआ'। उसी (कृष्ण)से (उत्पन्न वंश) आगे काष्ण्यायन प्रसिद्ध हुआ। वही काष्ण्यायनोंका पूर्व-पुरुष था। इस प्रकार अम्बष्ट! तुम्हारे माता-पिताओंके गोत्रको ख्याल करनेसे, शाक्य आर्य-पुत्र होते हैं, तुम शाक्योंके दासी-पुत्र हो।"

ऐसा कहनेपर उन माणवकोंने भगवान्‌से कहा—

"आप गौतम! अम्बष्ट माणवकको कळे दासी-पुत्र-वचनसे मत लजावें। हे गौतम! अम्बष्ट माणवक सुजात है, कुल-पुत्र है ० बहुश्रुत ०, सुवक्ता ०, पंडित है। अम्बष्ट माणवक इस बातमें आप गौतमके साथ वाद कर सकता है।"

तब भगवान्‌ने उन माणवकोंसे कहा—

"यदि तुम माणवकोंको होता है—'अम्बष्ट माणवक दुर्जात है, ० अ-कुलपुत्र है, ० अल्पश्रुत ०,० दुर्वक्ता ०, दुष्प्रज्ञ (=अ-पंडित)०। अम्बष्ट माणवक श्रमण गौतमके साथ इस विषयमें वाद नहीं कर सकता। तो अम्बष्ट माणचक बैठे, तुम्हीं इस विषयमें मेरे साथ वाद करो। यदि तुम माणवकोंको ऐसा है—अम्बष्ट माणवक सुजात है ०।०। तो तुम लोग ठहरो, अम्बष्ट माणवकको मेरे साथ वाद करने दो।"

"हे गौतम ! अम्बष्ट माणवक सुजात है, ०। अम्बष्ट माणवक इस विषयमें आप गौतमके साथ वाद कर सकता है। हम लोग चुप रहते हैं। अम्बष्ट माणवक ही आप गौतमके साथ वाद करेगा।"

तब भगवान्‌ने अम्बष्ट माणवकसे कहा—

"अम्बष्ट ! यहाँ तुमपर धर्म-सम्बन्धी प्रश्न आता है, न इच्छा होते हुए भी उत्तर देना होगा, यदि नहीं उत्तर दोगे, या इधर उधर करोगे, या चुप होगे, या चले जाओगे; तो यहीं तुम्हारा शिर सात टुकळे हो जायगा। तो अम्बष्ट ! क्या तुमने बृद्ध=महल्लक ब्राह्मणों आचार्य-प्राचार्यों श्रमणोंसे सुना है (कि) कबसे काष्ण्र्यायन हैं, और उनका पूर्व-पुरुष कौन था ?"

ऐसा पूछनेपर अम्बष्ट माणवक चुप हो गया।

दूसरी बार भी भगवान्‌ने अम्बष्ट माणवकसे यह पूछा—०।

तब भगवान्‌ने अम्बष्ट माणवकसे कहा—

"अम्बष्ट ! उत्तर दो, यह तुम्हारा चुप रहनेका समय नहीं। जो कोई तथागतसे तीन बार अपने धर्म-सम्बन्धी प्रश्न पूछे जानेपर भी उत्तर नहीं देगा, उसका शिर यहीं सात टुकळे हो जायगा।"

उस समय **वज्रपाणि** यक्ष बळे भारी आदीप्त=संप्रज्वलित=चमकते लोह-खंड (=अयः-कूट)को लेकर, अम्बष्ट माणवकके ऊपर आकाशमें खळा था—'यदि यह अम्बष्ट माणवक तथागतसे तीन बार अपने धर्म-सम्बन्धी प्रश्न पूछे जानेपर भी उत्तर नहीं देगा; (तो) यहीं इसके शिरको सात टुकळे करूँगा।' उस वज्रपाणि यक्षको (या तो) भगवान् देखते थे, या अम्बष्ट माणवक। तब उसे देख अम्बष्ट माणवक भयभीत, उद्विग्न, रोमांचित हो, भगवान्‌से त्राण=लयन=शरण चाहता, बैठकर भगवान्‌से बोला—

"क्या आप गौतमने कहा, फिरसे आप गौतम कहें तो ?"

"तो क्या मानते हो, अम्बष्ट ! क्या तुमने सुना है ० ?"

"ऐसा ही है हे गौतम ! जैसा कि आपने कहा। तबसे ही काष्ण्र्यायन हुए, और वही काष्ण्र्यायनों-का पूर्व-पुरुष था।"

ऐसा कहनेपर (दूसरे) माणवक उन्नाद=उच्चशब्द=महा-शब्द (=कोलाहल) करने लगे—

"अम्बष्ट माणवक दुर्जात है। अ-कुलपुत्र है। अम्बष्ट माणवक शाक्योंका दासी-पुत्र है। शाक्य, अम्बष्ट माणवकके आर्य (=स्वामि)-पुत्र होते हैं। सत्यवादी श्रमण गौतमको हम अश्रद्धेय बनाना चाहते थे।"

तब भगवान्‌ने देखा—'यह माणवक, अम्बष्ट माणवकको दासी-पुत्र कहकर बहुत अधिक लजाते हैं, क्यों न मैं (इसे) छुळाऊँ।' तब भगवान्‌ने माणवकोंसे कहा—

"माणवको ! तुम अम्बष्ट माणवकको दासी-पुत्र कहकर बहुत अधिक मत लजवाओ। वह **कृष्ण** महान् ऋषि थे। उन्होंने दक्षिण-देशमें जाकर ब्रह्ममंत्र पढ़कर, राजा इक्ष्वाकुके पास जा (उसकी) **क्षुद्र-रूपी** कन्याको माँगा। तब राजा इक्ष्वाकुने—'अरे यह मेरी दासीका पुत्र होकर क्षुद्र-रूपी कन्याको माँगता है' (सोच), कुपित हो असन्तुष्ट हो, वाण चढ़ाया। लेकिन उस वाणको न वह छोळ सकता था, न समेट सकता था। तब अमात्य और पार्षद (=दर्बारी) कृष्ण ऋषिके पास जाकर बोले—

'भदन्त ! राजाका मंगल हो, भदन्त ! राजाका मंगल (=स्वस्ति) हो।'

'राजाका मंगल होगा, यदि राजा नीचेकी ओर वाण(=क्षुरप्र)को छोळेगा। (लेकिन) जितना राजाका राज्य है, उतनी पृथ्वी फट जायगी।'

'भदन्त! राजाका मंगल हो, जनपद(=देश)का मंगल हो।'

'राजाका मंगल होगा, जनपदका भी मंगल होगा; यदि राजा ऊपरकी ओर वाण छोळेगा; (लेकिन) जहाँ तक राजाका राज्य है, सात वर्ष तक वहाँ वर्षा न होगी।'

'भदन्त! राजाका मंगल हो, जनपदका मंगल हो, दैव वर्षा करे।'

'० दैव भी वर्षा करेगा, यदि राजा ज्येष्ठ कुमारपर वाण छोळे। कुमार स्वस्ति पूर्वक (रहेगा किन्तु) गंजा हो जायेगा।'

"तब माणवको! अमात्योंने इक्ष्वाकुसे कहा—'...ज्येष्ठ कुमारपर वाण छोळें, कुमार स्वस्ति-सहित (किन्तु) गंजा हो जायेगा। राजा इक्ष्वाकुने ज्येष्ठ कुमारपर वाण छोळ दिया...। उस ब्रह्मदण्डसे भयभीत, उद्विग्न, रोमांचित, तर्जित राजा इक्ष्वाकुने ऋषिको कन्या प्रदान की। माणवको! अम्बष्ट माणवकको दासी-पुत्र कह, तुम मत बहुत अधिक लजवाओ। वह कृष्ण महान् ऋषि थे।"

२—जात-पाँतका खंडन

तब भगवान्‌ने अम्बष्ट माणवकको सम्बोधित किया—

"तो...अम्बष्ट! यदि (एक) क्षत्रिय-कुमार ब्राह्मण-कन्याके साथ सहवास करे, उनके सहवाससे पुत्र उत्पन्न हो। जो क्षत्रिय-कुमारसे ब्राह्मण-कन्यामें पुत्र उत्पन्न होगा, क्या वह ब्राह्मणोंमें आसन और पानी पायेगा?" "पायेगा हे गौतम!"

"क्या ब्राह्मण श्राद्ध, स्थालि-पाक, यज्ञ या पाहुनाईमें उसे (साथ) खिलायेंगे?"

"खिलायेंगे हे गौतम!"

"क्या ब्राह्मण उसे मंत्र (=वेद) बँचायेंगे?" "बँचायेंगे हे गौतम!"

"उसे (ब्राह्मणी) स्त्री (पाने)में रुकावट होगी, या नहीं?"

"नहीं रुकावट होगी।"

"क्या क्षत्रिय! उसे क्षत्रिय-अभिषेकसे अभिषिक्त करेंगे?"

"नहीं, हे गौतम!...क्योंकि माताकी ओरसे हे गौतम! वह ठीक नहीं है।"

"तो...अम्बष्ट! यदि एक ब्राह्मण-कुमार क्षत्रिय-कन्याके साथ सहवास करे, और उनके सहवाससे पुत्र उत्पन्न हो। जो वह ब्राह्मण-कुमारसे क्षत्रिय-कन्यामें पुत्र उत्पन्न हुआ है, क्या वह ब्राह्मणोंमें आसन पानी पायेगा?"

"पायेगा हे गौतम!"

"क्या ब्राह्मण श्राद्ध, स्थालिपाक, यज्ञ या पाहुनाईमें उसे (साथ) खिलायेंगे?"

"खिलायेंगे हे गौतम!"

"ब्राह्मण उसे मंत्र बँचायेंगे, या नहीं?"

"बँचायेंगे हे गौतम!"

"क्या उसे (ब्राह्मण-)स्त्री(पाने)में रुकावट होगी?"

"रुकावट न होगी हे गौतम!"

"क्या उसे क्षत्रिय क्षत्रिय-अभिषेकसे अभिषिक्त करेंगे?"

"नहीं, हे गौतम!"

"सो किस हेतु?"

"(क्योंकि) हे गौतम! पिताकी ओरसे वह ठीक नहीं है।"

"इस प्रकार अम्बष्ट ! स्त्रीकी ओरसे भी, पुरुषकी ओरसे भी क्षत्रिय ही श्रेष्ठ है, ब्राह्मण हीन है। तो . . . अम्बष्ट यदि ब्राह्मण किसी ब्राह्मणको छुरेसे मुंडित करा, घोळेके चाबुकसे मारकर, राष्ट्र या नगरसे निर्वासित कर दें। क्या वह ब्राह्मणोंमें आसन, पानी पायेगा ?"

"नहीं, हे गौतम !"

"क्या ब्राह्मण श्राद्ध स्थालिपाक, यज्ञ, पाहुनाईमें उसे खिलायेंगे ?"

"नहीं, हे गौतम !"

"ब्राह्मण उसे मंत्र बँचायेंगे या नहीं ?"

"नहीं, हे गौतम !"

"उसे (ब्राह्मण-)स्त्री (पाने)में रुकावट होगी या नहीं ?"

"रुकावट होगी, हे गौतम !"

"तो . . . अम्बष्ट ! यदि क्षत्रिय (एक पुरुषको) किसी कारणसे छुरेसे मुंडित करा, घोळेके चाबुकसे मारकर, राष्ट्र या नगरसे निर्वासित कर दें। क्या वह ब्राह्मणोंमें आसन पानी पायेगा ?"

"पायेगा हे गौतम !"

"क्या ब्राह्मण ० उसे खिलायेंगे ?" "खिलायेंगे हे गौतम !"

"क्या ब्राह्मण उसे मंत्र बँचायेंगे ?"

"बँचायेंगे हे गौतम !"

"उसे स्त्रीमें रुकावट होगी, या नहीं ?"

"रुकावट नहीं होगी हे गौतम !"

"अम्बट्ठ ! क्षत्रिय बहुतही निहीन (=नीच) हो गया रहता है, जबकि उसको क्षत्रिय किसी कारणसे मुंडित कर ०। इस प्रकार अम्बष्ट ! जब वह क्षत्रियोंमें परम नीचताको प्राप्त है, तब भी क्षत्रिय ही श्रेष्ठ है, ब्राह्मण हीन है। ब्रह्मा सनत्कुमारने भी अम्बष्ट ! यह गाथा कही है—

४—विद्या और आचरण

'गोत्र लेकर चलनेवाले जनोंमें क्षत्रिय श्रेष्ठ है।

'जो विद्या और आचरणसे युक्त है, वह देवमनुष्योंमें श्रेष्ठ है ॥१॥"

"सो अम्बष्ट ! यह गाथा ब्रह्मा सनत्कुमारने उचित ही गायी (=सुगीता) है, अनुचित नहीं गायी है,—सुभाषित है, दुर्भाषित नहीं है; सार्थक है, निरर्थक नहीं है; मैं भी सहमत हूँ, मैं भी अम्बष्ट कहता हूँ—'गोत्र लेकर ०।"

"क्या है, हे गौतम ! चरण, और क्या है विद्या ?"

"अम्बष्ट ! अनुपम विद्या-आचरण-सम्पदाको जातिवाद नहीं कहते, नहीं गोत्र-वाद कहते, नहीं मान-वाद—'मेरे तू योग्य है', 'मेरे तू योग्य नहीं है' कहते हैं। जहाँ अम्बष्ट ! आवाह-विवाह होता है..., वहीं यह जातिवाद..., गोत्रवाद . . ., मानवाद, 'मेरे तू योग्य है', 'मेरे तू योग्य नहीं है' कहा जाता है। अम्बट्ठ ! जो कोई जातिवादमें बँधे हैं, गोत्रवादमें बँधे हैं, (अभि-) मान-वादमें बँधे हैं, आवाह-विवाहमें बँधे हैं, वह अनुपम विद्या-चरण-सम्पदासे दूर हैं। अम्बष्ट ! जाति-वाद-बन्धन, गोत्र-वाद-बन्धन, मान-वाद-बन्धन, आवाह-विवाह-बन्धन छोळकर, अनुपम विद्या-चरण-सम्पदाका साक्षात्कार किया जाता है।

"क्या है, हे गौतम ! चरण, और क्या है विद्या ?"

"अम्बष्ट ! संसारमें तथागत उत्पन्न होते हैं ०[1]।०। इसी प्रकार भिक्षु शरीरके चीवर-पेटके

---

[1] देखो सामञ्ञफल सुत्त पृष्ठ २३-२७।

खानेसे सन्तुष्ट होता है। ०। इस तरह अम्बष्ट! भिक्षु शील-सम्पन्न होता है ०[1]।

[2]वह प्रीति-सुखवाले प्रथम ध्यानको प्राप्त हो विहरता है। यह भी उसके चरणमें होता। ० द्वितीय ध्यान ०। ० तृतीय ध्यान ०। ० चतुर्थ ध्यानको प्राप्त हो विहरता है, यह भी उसके चरणमें होता है। अम्बष्ट! यह चरण है। ० सच्चे ज्ञानके प्रत्यक्ष करनेके लिए, (अपने) चित्तको नवाता है, झुकाता है। सो इस प्रकार एकाग्र चित्त ०[3]। इस तरह आकार-प्रकार के साथ अनेक पूर्व-(जन्म-)निवासोंको जानता है। यह भी अम्बष्ट! उसकी विद्यामें है। ० विशुद्ध अलौकिक दिव्यचक्षुसे ०[4] प्राणियोंको देखता है। यह भी अम्बष्ट! उसकी विद्यामें है। ०[5] 'जन्म खतम हो गया, ब्रह्मचर्य पूरा हो गया, करना था सो कर लिया, अब यहाँ (करने)के लिये कुछ नहीं रहा'—यह भी जानता है। यह भी उसकी विद्यामें है। यह अम्बष्ट! विद्या है। अम्बष्ट! ऐसा भिक्षु विद्या-सम्पन्न कहा जाता है। इसी प्रकार चरण-सम्पन्न; इस प्रकार विद्या-चरण-सम्पन्न होता है। इस विद्या-सम्पदा, तथा चरण-सम्पदासे बढ़कर दूसरी विद्या-सम्पदा या चरण-सम्पदा नहीं है।

५—विद्याचरणके चार विघ्न

"अम्बष्ट! इस अनुपम विद्या-चरण-सम्पदाके चार विघ्न होते हैं। कौनसे चार? (१) कोई श्रमण या ब्राह्मण अम्बष्ट! इस अनुपम विद्या-चरण सम्पदाको पूरा न करके, बहुतसा विविध झोरी-मंत्रा (=वाणप्रस्थीक सामान) लेकर—'फल मूलाहारी होऊँ' (सोच) वन-वासके लिय जाता है। वह विद्या-चरणसे भिन्न वस्तुका सेवन करता है। इस अनुपम विद्या-चरण-सम्पदाका यह प्रथम विघ्न है। (२) और फिर अम्बष्ट! जब कोई श्रमण या ब्राह्मण इस अनुपम विद्या-चरण-सम्पदाको पूरा न करके, फलाहारिता को भी पूरा न करके, कुदाल ले 'कन्द-मूल फलाहारी होऊँ' (सोच) विद्या-चरणसे भिन्न वस्तुको सेवन करता है। ० यह द्वितीय विघ्न है। (३) और फिर अम्बष्ट! ० फलाहारिताको न पूरा करके, गाँवके पास या निगम (=कस्बा)के पास अग्निशाला बना अग्नि-परिचण (=होम आदि) करता रहता है ०। ० यह तृतीय विघ्न है। (४) और फिर अम्बष्ट! ० अग्नि-परिचर्याको भी न पूरा करके, चौरस्तेपर चार द्वारोंवाला आगार बनाकर रहता है, कि यहाँ चारों दिशाओंसे जो श्रमण या ब्राह्मण आयेगा, उसका मैं यथाशक्ति=यथाबल सत्कार करूँगा। अनुपम विद्या-चरण-सम्पदाके अम्बष्ट! यह चार विघ्न हैं।

"तो... अम्बष्ट! क्या आचार्य-सहित तुम इस अनुपम विद्याचरण-सम्पदाका उपदेश करते हो?"

"नहीं हे गौतम! कहाँ आचार्य-सहित मैं और कहाँ अनुपम विद्या-चरण-सम्पदा! हे गौतम! आचार्य-सहित मैं अनुपम विद्या-चरण-सम्पदासे दूर हूँ।"

"तो... अम्बष्ट! इस अनुपम विद्या-चरण-सम्पदाको पूरा न कर, झोली आदि (=खारी-विविध) लेकर 'फलाहारी होऊँ' (सोच), क्या तुम आचार्य-सहित वनवासके लिये वनमें प्रवेश करते हो?

"नहीं हे गौतम!"

"०।०। चौरस्तेपर चार द्वारोंवाला आगार बनाकर रहते हो, कि जो यहाँ चारों दिशाओंसे श्रमण या ब्राह्मण आयेगा, उसका यथाशक्ति सत्कार करूँगा?" "नहीं हे गौतम!"

"इस प्रकार अम्बष्ट! आचार्य-सहित तुम इस अनुपम विद्या-चरण-सम्पदासे भी हीन हो, और यह जो अनुपम विद्या-चरण-सम्पदाके चार विघ्न (=अपाय-मुख) हैं, उनसे भी हीन। तुमने अम्बष्ट! क्यों आचार्य ब्राह्मण पौष्कर-सातिसे सीखकर यह वाणी कही—'कहाँ इब्भ, (=नीचा, इभ्य) काले,

---

[1] देखो सामञ्ञफल सुत्त पृष्ठ २७-२८। [2] पृष्ठ २९-३०। [3] पृष्ठ ३१। [4] पृ. ३१-३२। [5] पृ. ३२।

पैरसे उत्पन्न मुंडक श्रमण हैं, और कहाँ त्रैविद्य (=त्रिवेदी) ब्राह्मणोंका साक्षात्कार'? स्वयं अपायिक (=दुर्गतिगामी) भी, (विद्या-चरण) न पूरा करते (हुए भी), अम्बष्ट! अपने आचार्य ब्राह्मण पौष्करसातिका यह दोष देखो। अम्बष्ट! पौष्करसाति ब्राह्मण राजा प्रसेनजित् कोसलका दिया खाता है। राजा प्रसेनजित् कोसल उसको दर्शन भी नहीं देता। जब उसके साथ मंत्रणा भी करनी होती है, तो कपळेकी आळसे मंत्रणा करता है। अम्बष्ट! जिसकी धार्मिक दी हुई भिक्षाको (पौष्करसाति) ग्रहण करता है, वह राजा प्रसेनजित् कोसल उसे दर्शन भी नहीं देता!! देखो अम्बष्ट! अपने आचार्य ब्राह्मण पौष्करसातिका यह दोष।...। तो क्या मानते हो अम्बष्ट! राजा प्रसेनजित् कोसल हाथीपर बैठा, या रथके ऊपर खळा उग्रोंके साथ या राजन्योंके साथ कोई सलाह करे, और उस स्थानसे हटकर एक ओर खळा हो जाय। तब (कोई) शूद्र या शूद्र-दास आजाय, वह उस स्थानपर खळा हो, उसी सलाहको करे—जिसे कि राजा प्रसेनजित् कोसलने की थी, तो वह राज-कथनको कहता है, राजमंत्रणाको मंत्रित करता है, इतनेसे क्या वह राजा या राज-अमात्य हो जाता है?"

"नहीं हे गौतम!"

"इसी प्रकार हे अम्बष्ट! जो वह ब्राह्मणोंके पूर्वज ऋषि मंत्र-कर्ता, मंत्र-प्रवक्ता (थे), जिनके कि पुराने गीत, प्रोक्त, समीहित (=चिन्तित) मंत्रपद(=वेद)को ब्राह्मण आजकल अनुगान, अनुभाषण करते हैं; भाषितको अनुभाषित, वाचितको अनुवाचित करते हैं; जैसे कि—अ ट्ट क, वा म क, वा म दे व, वि श्वा मि त्र, य म द ग्नि, अं गि रा, भ र द्वा ज, व शि ष्ट, क श्य प, भृ गु। 'उनके मंत्रोंको आचार्य-सहित मैं अध्ययन करता हूँ', क्या इतनेसे तुम ऋषि या ऋषित्वके मार्गपर आरूढ़ कहे जाओगे? यह संभव नहीं।

"तो क्या अम्बष्ट! तुमने वृद्ध=महल्लक ब्राह्मणों, आचार्यों-प्राचार्योंको कहते सुना है कि जो वह ब्राह्मणोंके पूर्वज ऋषि ० अट्टक ० (थे); क्या वह ऐसे सुस्नात, सुविलिप्त (=अंगराग लगाये), केश मोंछ सँवारे मणिकुण्डल आभरण पहिने, स्वच्छ (=श्वेत) वस्त्र-धारी, पाँच काम-भोगोंमें लिप्त, युक्त, घिरे रहते थे; जैसे कि आज आचार्य-सहित तुम?"

"नहीं, हे गौतम!"

"क्या वह ऐसा शालिका भात, शुद्ध मांसका तीवन (=उपसेचन), कालिमारहित सूप, अनेक प्रकारकी तरकारी (=व्यंजन) भोजन करते थे, जैसे कि आज आचार्य-सहित तुम?"

"नहीं, हे गौतम!"

"क्या वह ऐसी (साळी) वेष्टित कमनीयगात्रा स्त्रियोंके साथ रमते थे, जैसे कि आज आचार्य-सहित तुम?"

"क्या वह ऐसी कटे बालोंवाली घोळियोंके रथपर लम्बे डंडेवाले कोळोंसे वाहनोंको पीटते गमन करते थे, जैसे कि ० तुम?"

"नहीं, हे गौतम!"

"क्या वह ऐसे खाँईं खोदे, परिघ (=काष्ट-प्राकार) उठाये, नगर-रक्षिकाओंमें (=नगरूपकारिकासु) दीर्घ-आयु-पुरुषोंसे रक्षा करवाते थे, जैसे कि ० तुम?"

"नहीं, हे गौतम!"

"इस प्रकार अम्बष्ट! न आचार्य-सहित तुम ऋषि हो, न ऋषित्वके मार्गपर आरूढ़। अम्बष्ट! मेरे विषयमें जो तुम्हें संशय=विमति हो वह प्रश्न करो, मैं उसे उत्तरसे दूर करूँगा।"

यह कह भगवान् विहारसे निकल, चंक्रम (=टहलने)के स्थानपर खळे हुए। अम्बष्ट माणवक भी विहारसे निकल चंक्रमपर खळा हुआ। तब अम्बष्ट माणवक भगवान्के पीछे पीछे टहलता भगवान्के

शरीरमें ३२ महापुरुष-लक्षणोंको ढूँढ़ता था। अम्बष्ट माणवकने दोको छोळ बत्तीस महापुरुष-लक्षणों-मेंसे अधिकांश भगवान्‌के शरीरमें देख लिये। ०।

तब अम्बष्ट माणवकको ऐसा हुआ—'श्रमण गौतम बत्तीस महापुरुष-लक्षणोंसे समन्वित, परिपूर्ण है' और भगवान्‌से बोला—"हन्त! हे गौतम! अब हम जायेंगे, हम बहुत कृत्यवाले बहुत काम-वाले हैं।"

"अम्बष्ट! जिसका तुम काल समझते हो।"

तब अम्बष्ट माणवक वडवा (=घोळी)-रथपर चढ़कर चला गया।

उस समय पौष्कर-साति ब्राह्मण, बळे भारी ब्राह्मण-गणके साथ, उक्कट्ठासे निकलकर, अपने आराम (=बगीचे) में, अम्बष्ट माणवककी ही प्रतीक्षा करते बैठा था। तब अम्बष्ट माणवक जहाँ अपना आराम था वहाँ गया। जितना यान (=रथ) का रास्ता था, उतना यानसे जाकर, यानसे उतरकर पैदल ही जहाँ पौष्कर-साति ब्राह्मण था, वहाँ गया। जाकर ब्राह्मण पौष्कर-सातिको अभिवादनकर एक ओर बैठे गया। एक ओर बैठे अम्बष्ट माणवकसे पौष्कर-साति ब्राह्मणने कहा—

"क्या तात! अम्बष्ट! उन भगवान् गौतमको देखा?"

"भो! हमने उन भगवान् गौतमको देखा।"

"क्या तात! अम्बष्ट! उन भगवान् गौतमका यथार्थ यश फैला हुआ है, या अयथार्थ? क्या आप गौतम वैसे ही हैं, या दूसरे?"

"भो! यथार्थमें उन भगवान् गौतमके लिये शब्द (=यश) फैला हुआ है। आप गौतम वैसेही हैं, अन्यथा नहीं। आप गौतम बत्तीस महापुरुष-लक्षणोंसे समन्वित परिपूर्ण हैं।"

"तात! अम्बष्ट! क्या श्रमण गौतमके साथ तुम्हारा कुछ कथा-संलाप हुआ?"

"भो! मेरा श्रमण गौतमके साथ कथा-संलाप हुआ।"

"तात! अम्बष्ट! श्रमण गौतमके साथ क्या कथा-संलाप हुआ?"

तब अम्बष्ट माणवकने जितना भगवान्‌के साथ कथा-संलाप हुआ था, सब पौष्कर-साति ब्राह्मणसे कह दिया। ऐसा कहनेपर ब्राह्मण पौष्कर-साति०ने अम्बष्ट माणवकसे कहा—

"अहो! हमारा पंडितवा-पन!! अहो! हमारा बहुश्रुतवा-पन!! अहोवत! रे!! हमारा त्रैविद्यक-पन! इस प्रकारके नीच कामसे पुरुष, काया छोळ मरनेके बाद, अपाय=दुर्गति=विनिपात=निरय (=नरक) में ही उत्पन्न होता है, जो अम्बट्ठ! उन आप गौतमसे इस प्रकार चिढ़ाते हुए तुमने बात की। और आप गौतम हम (ब्राह्मणों) के लिये भी ऐसे खोल खोलकर बोले। अहोवत! रे!! हमारा त्रैविद्यकपन!!! ..." (यह कह पौष्कर-सातिने) कुपित, असंतुष्ट हो, अम्बष्ट माणवकको पैदलही वहाँसे हटाया, और उसी वक्त भगवान्‌के दर्शनार्थ जानेको (तैयार) हुआ। तब उन ब्राह्मणोंने पौष्करसाति ब्राह्मणसे यह कहा—

"भो! श्रमण गौतमके दर्शनार्थ जानेको आज बहुत विकाल है। दूसरे दिन आप पौष्कर-साति श्रमण गौतमके दर्शनार्थ जावें।"

इस प्रकार पौष्कर-साति ब्राह्मण अपने घरमें उत्तम खाद्य भोज्य तैयार करा, यानोंपर रखवा, मशाल (=उल्का) की रोशनीमें उक्कट्ठासे निकल, जहाँ इच्छानंगल वन-खण्ड था, वहाँ गया। जितनी यानकी भूमि थी, उतनी यानसे जाकर, यानसे उतर पैदलही जहाँ भगवान् थे वहाँ पहुँचा। जाकर भगवान्‌के साथ... सम्मोदनकर... (कुशल-प्रश्न पूछ) एक ओर बैठ गया। एक ओर बैठे पौष्कर-साति ब्राह्मणने भगवान्‌से कहा—

"हे गौतम! क्या हमारा अन्तेवासी अम्बष्ट माणवक यहाँ आया था?"

"ब्राह्मण! तेरा अन्तेवासी अम्बष्ट माणवक यहाँ आया था।"

"हे गौतम! अम्बष्ट माणवकके साथ क्या कुछ कथा-संलाप हुआ?"

"ब्राह्मण! अम्बष्ट माणवकके साथ मेरा कुछ कथा-संलाप हुआ।"

"हे गौतम! अम्बष्ट माणवकके साथ क्या कथा-संलाप हुआ?"

तब भगवान्ने, अम्बष्ट माणवकके साथ जितना कथा-संलाप हुआ था, (वह) सब पौष्करसाति ब्राह्मणसे कह दिया। ऐसा कहनेपर पौष्कर-साति ब्राह्मणने भगवान्से कहा—

"बालक है, हे गौतम! अम्बष्ट माणवक। क्षमा करें, हे गौतम! अम्बष्ट माणवकको।"

"सुखी होवे, ब्राह्मण! अम्बष्ट माणवक।"

तब पौष्कर-साति ब्राह्मण भगवान्के शरीरमें ३२ महापुरुष-लक्षणोंको ढूँढ़ने लगा ०[1]। पौष्कर-साति ब्राह्मणको हुआ—'श्रमण गौतम बत्तीस महापुरुष-लक्षणोंसे समन्वित, परिपूर्ण है', और भगवान्से बोला—

"भिक्षुसंघ सहित आप गौतम आजका भोजन स्वीकार करें।"

भगवान्ने मौनसे स्वीकार किया।

तब पौष्करसाति ब्राह्मणने भगवान्की स्वीकृति जान, भगवान्से कालनिवेदन किया— "(भोजनका) काल है, हे गौतम! भात तैयार है।" तब भगवान् पहिनकर पात्र-चीवर ले, जहाँ ब्राह्मण पौष्कर-सातिके परोसनेका स्थान था, वहाँ गये। जाकर बिछे आसनपर बैठ गये। तब पौष्कर-साति ब्राह्मणने भगवान्को अपने हाथसे उत्तम खाद्यभोज्यसे संतर्पित=संप्रवारित किया; और माणवकोंने भिक्षु-संघको। पौष्कर-साति ब्राह्मण भागवान्के भोजनकर, पात्रसे हाथ हटा लेनेपर, एक दूसरे नीचे आसनको ले, एक ओर बैठ गया। एक ओर बैठे हुए, पौष्कर-साति ब्राह्मणको भगवान्ने आनुपूर्वी-कथा कही ०[1] जैसे कि दानकी कथा, शील-कथा, स्वर्ग-कथा; भोगोंके दुष्परिणाम, अपकार, मलिन-करण; और निष्कामता (=भोग-त्याग)के माहात्म्यको प्रकाशित किया। जब भगवान्ने पौष्करसाति ब्राह्मणको उपयुक्त-चित्त, मृदु-चित्त, आवरणरहित-चित्त, उद्गत-चित्त=प्रसन्न-चित्त जाना, तो जो बुद्धोंका खींचने वाला धर्म उपदेश है—दुःख, कारण, विनाश, मार्ग—उसे प्रकाशित किया; जैसे शुद्ध, निर्मल वस्त्रको अच्छी तरह रंग पकळता है, वैसेही पौष्कर-साति ब्राह्मणको उसी आसनपर विरज विमल धर्म-चक्षु—'जो कुछ उत्पन्न होनेवाला (=समुदय-धर्म) है, वह नाशवान् (=निरोध-धर्म) है'—उत्पन्न हुआ।

तब पौष्कर-साति ब्राह्मणने दृष्ट-धर्म ० हो भगवान्से कहा—

"आश्चर्य! हे गौतम!! अद्भुत हे गौतम!!! ०[2] (अपने) पुत्र-सहित भार्या-सहित, परिषद्-सहित, अमात्य-सहित, मैं भगवान् गौतमकी शरण जाता हूँ, धर्म और भिक्षु-संघकी भी। आजसे आप गौतम मुझे अंजलिबद्ध शरणागत उपासक धारण करें। जैसे उक्कट्ठामें आप गौतम दूसरे उपासक-कुलोंमें आते हैं, वैसेही पुष्कर-साति-कुलमें भी आवें। वहाँपर माणवक (=तरुण ब्राह्मण) या माणविका जाकर भगवान् गौतमको अभिवादन करेंगे, आसन या जल देंगे। या (आपके प्रति) चित्तको प्रसन्न करेंगे। वह उनके लिये चिरकाल तक हित-सुखके लिये होगा।"

"सुन्दर (=कल्याण) कहा, ब्राह्मण!"

---

[1] पृष्ठ ४२। [2] पृष्ठ ३२।

४—सोणदण्ड-सुत्त (१।४)

१—ब्राह्मण बनानेवाले धर्म (जात-पांत-खंडन)। २—शील। ३—प्रज्ञा।

ऐसा मैंने सुना—एक समय पाँचसौ भिक्षुओंके महाभिक्षु-संघके साथ भगवान् **अंग** (देश)में विचरते, जहाँ **चम्पा** है, वहाँ पहुँचे। वहाँ चम्पामें भगवान् **गर्गरा** (गग्गरा) पुष्करिणीके तीरपर विहार करते थे।

उस समय **सोणदण्ड** (=स्वर्णदण्ड) ब्राह्मण, मगधराज श्रेणिक **बिम्बिसार**-द्वारा दत्त, जनाकीर्ण, तृण-काष्ठ-उदक-धान्य-सहित राज-भोग्य राज-दाय, ब्रह्मदेय, चम्पाका स्वामी था।

चम्पा-निवासी ब्राह्मण गृहस्थोंने सुना—शाक्यकुलसे प्रव्रजित० श्रमण गौतम चम्पामें गर्गरा पुष्करिणीके तीर विहार कर रहे हैं। उन भगवान् गौतमका ऐसा मंगल-कीर्ति-शब्द फैला हुआ है—०[1]। इस प्रकारके अर्हतोंका दर्शन अच्छा होता है। तब चम्पा-वासी ब्राह्मण-गृहस्थ चम्पासे निकलकर झुंडके झुंड जिधर गर्गरा पुष्करिणी है, उधर जाने लगे। उस समय सोणदण्ड ब्राह्मण, दिनके शयनके लिये (अपने) प्रासादपर गया हुआ था। सोणदण्ड ब्राह्मणने चम्पा-निवासी ब्राह्मण-गृहस्थोंको ० जिधर गर्गरा पुष्करिणी है, उधर ० जाते देखा। देखकर क्षत्ता (=प्राइवेट सेक्रेटरी)को सम्बोधित किया—०[1]०।

उस समय चम्पामें नाना देशोंके पाँच-सौ ब्राह्मण किसी कामसे वास करते थे। उन ब्राह्मणोंने सुना—सोणदण्ड ब्राह्मण श्रमण गौतमके दर्शनार्थ जायेगा। तब वह ब्राह्मण जहाँ सोणदण्ड ब्राह्मण था, वहाँ गये। जाकर सोणदण्ड ब्राह्मणसे बोले—०[2]०।

तब सोणदण्ड ब्राह्मण महान् ब्राह्मण-गणके साथ, जहाँ गर्गरा पुष्करिणी थी, वहाँ गया। तब वनखंडकी आळमें जानेपर, सोणदण्ड ब्राह्मणके चित्तमें वितर्क उत्पन्न हुआ—'यदि मैं ही श्रमण गौतमसे प्रश्न पूछूँ, तब यदि श्रमण गौतम मुझे ऐसा कहें—ब्राह्मण! यह प्रश्न इस तरह नहीं पूछना चाहिये, ब्राह्मण! इस प्रकारसे, यह प्रश्न पूछा जाना चाहिये। तब यह परिषद् मेरा तिरस्कार करेगी—अज्ञ (=बाल)=अव्यक्त है, सोणदण्ड ब्राह्मण; श्रमण गौतमसे ठीकसे (=योनिसो) प्रश्न भी नहीं पूछ सकता। जिसका यह परिषद् तिरस्कार करेगी, उसका यश भी क्षीण होगा। जिसका यश क्षीण होगा, उसके भोग भी क्षीण होंगे। यशसे ही भोग मिलते हैं। और यदि मुझसे श्रमण गौतम प्रश्न पूछें, यदि मैं प्रश्नके उत्तर द्वारा उनका चित्त सन्तुष्ट न कर सकूँ। तब मुझे, यदि श्रमण गौतम ऐसा कहें—ब्राह्मण! इस प्रश्नका ऐसे उत्तर नहीं देना चाहिये; ब्राह्मण! इस प्रश्नका उत्तर इस प्रकार देना चाहिये। तो यह परिषद् मेरा तिरस्कार करेगी ०। मैं यदि इतना समीप आकर भी श्रमण गौतमको बिना देखे ही लौट जाऊँ, तो इससे भी यह परिषद् मेरा तिरस्कार करेगी—बाल=अव्यक्त है, सोणदण्ड ब्राह्मण, मानी है, भयभीत है; श्रमण गौतमके दर्शनार्थ जानेमें समर्थ नहीं हुआ। इतना समीप आकर भी श्रमण गौतमको बिना देखे ही, कैसे लौट गया? जिसका यह परिषद् तिरस्कार करेगी ०।"

तब सोणदण्ड ब्राह्मण जहाँ भगवान् थे, वहाँ गया, जाकर भगवान्के साथ ० संमोदन कर ०

---

[1] देखो पृष्ठ ४८। [2] पृष्ठ ४९।

एक ओर बैठ गया। चम्पा-निवासी ब्राह्मण-गृहपति भी—कोई कोई भगवान्‌को अभिवादनकर एक ओर बैठ गये, कोई-कोई संमोदनकर ०, कोई-कोई जिधर भगवान् थे, उधर हाथ जोळकर ०, कोई-कोई नाम गोत्र सुनाकर ०, कोई-कोई चुपचाप एक ओर बैठ गये।

वहाँ भी सोणदण्ड ब्राह्मणके (चित्तमें) बहुतसा वितर्क उठ रहा था—'यदि मैं ही श्रमण गौतमसे प्रश्न पूछूँ ०। अहोवत ! यदि श्रमण गौतम (मेरी) अपनी त्रै वि द्य क पंडिताईमें प्रश्न पूछता, तो मैं प्रश्नका उत्तर देकर उसके चित्तको संतुष्ट करता।'

१—ब्राह्मण बनानेवाले धर्म

तब सोणदण्ड ब्राह्मणके चित्तके वितर्कको भगवान्‌ने (अपने) चित्तसे जानकर सोचा—यह सोणदण्ड ब्राह्मण अपने चित्तसे मारा जा रहा है। क्यों न मैं सोणदण्ड ब्राह्मणको (उसकी) अपनी त्रैविद्यक पंडिताईमें ही प्रश्न पूछूँ। तब भगवान्‌ने सोणदण्ड ब्राह्मणसे कहा—

"ब्राह्मण ! ब्राह्मण लोग कितने अंगों (=गुणों)से युक्त (पुरुष)को ब्राह्मण कहते हैं, और वह 'मैं ब्राह्मण हूँ' कहते हुए सच कहता है, झूठ बोलनेवाला नहीं होता ?"

तब सोणदण्ड ब्राह्मणको हुआ—'अहो ! जो मेरा इच्छित=आकांक्षित=अभिप्रेत=प्रार्थित था—अहोवत ! यदि श्रमण गौतम मेरी अपनी त्रैविद्यक पंडिताईमें प्रश्न पूछता ०। सो श्रमण गौतम मुझसे अपनी त्रैविद्यक पंडिताईमें ही पूछ रहा है। मैं अवश्य प्रश्नोत्तरसे उसके चित्तको संतुष्ट करूँगा। तब सोणदण्ड ब्राह्मण शरीरको उठाकर, परिषद्‌की ओर नजर दौळा भगवान्‌से बोला—

"हे गौतम ! ब्राह्मण लोग पाँच अंगोंसे युक्त (पुरुष)को, ब्राह्मण कहते हैं ०। कौनसे पाँच ? (१) ब्राह्मण दोनों ओरसे सुजात हो ०। (२) अध्यायक (=वेदपाठी) मंत्रधर ० त्रिवेद-पारंगत ०। (३) अभिरूप=दर्शनीय ० अत्यन्त (गौर) वर्णसे युक्त हो। (४) शीलवान् ०। (५) पंडित, मेधावी, यज्ञ-दक्षिणा (=सुजा) ग्रहण करनेवालोंमें प्रथम या द्वितीय हो। इन पाँच अंगोंसे युक्तको ०।"

"ब्राह्मण ! इन पाँच अंगोंमें एकको छोळ, चार अंगोंसे भी ब्राह्मण कहा जा सकता है ० ?"

"कहा जा सकता है, हे गौतम ! इन पाँच अंगोंमेंसे हे गौतम ! वर्ण (३)को छोळते हैं। वर्ण (=रंग) क्या करेगा। यदि ब्राह्मण दोनों ओरसे सुजात हो ०। अध्यायक, मंत्रधर० ० हो। शीलवान् ० हो ०। पंडित मेधावी ० हो। इन चार अंगोंसे युक्तको, हे गौतम ! ब्राह्मण लोग ब्राह्मण कहते हैं ०।"

"ब्राह्मण ! इन चार अंगोंमेंसे एक अंगको छोळ, तीन अंगोंसे युक्तको भी ब्राह्मण कहा जा सकता है ० ?"

"कहा जा सकता है, हे गौतम ! इन चारों अंगोंमेंसे हे गौतम ! मंत्रों (=वेद) (२) को छोळते हैं। मंत्र क्या करेंगे, यदि भो ! ब्राह्मण दोनों ओरसे सुजात० हो। शीलवान्० हो। पंडित मेधावी ० हो। इन तीन अंगोंसे युक्तको हे गौतम ! . . . ब्राह्मण कहते हैं ०।"

"ब्राह्मण ! इन तीन अंगोंमेंसे एक अंगको छोळ, दो अंगोंसे युक्तको भी ब्राह्मण कहा जा सकता है ० ?"

"कहा जा सकता है, हे गौतम ! इन तीनोंमेंसे हे गौतम ! जाति (१) को छोळते हैं, जाति (=जन्म) क्या करेगी, यदि भो ! ब्राह्मण शीलवान् ० हो। पंडित मेधावी ० हो। इन दो अंगोंसे युक्तको . . . ब्राह्मण कहते हैं ०।"

ऐसा कहनेपर उन ब्राह्मणोंने सोणदण्ड ब्राह्मणसे कहा—

"आप सोणदण्ड ! ऐसा मत कहें, आप सोणदण्ड ऐसा मत कहें। आप सोणदण्ड वर्ण (=रंग)-का प्रत्याख्यान (=अपवाद) करते हैं, मंत्र (=वेद)का प्रत्याख्यान करते हैं, जाति (=जन्म)का प्रत्याख्यान करते हैं, एक अंशसे आप सोणदण्ड श्रमण गौतमके ही वादको स्वीकार कर रहे हैं।"

तब भगवान्ने उन ब्राह्मणोंसे कहा—

"यदि ब्राह्मणो ! तुमको यह हो रहा है—सोणदण्ड ब्राह्मण अल्पश्रुत है, ० अ-सुवक्ता है, ० दुष्प्रज्ञ है। सोणदण्ड ब्राह्मण इस बातमें श्रमण गौतमके साथ वाद नहीं कर सकता। तो सोणदण्ड ब्राह्मण ठहरे, तुम्हीं मेरे साथ वाद करो। यदि ब्राह्मणो ! तुमको ऐसा होता है—सोणदण्ड ब्राह्मण बहुश्रुत है; ० सुवक्ता है, ० पंडित है, सोणदण्ड ब्राह्मण इस बातमें श्रमण गौतमके साथ वाद कर सकता है, तो तुम ठहरो, सोणदण्ड ब्राह्मणको मेरे साथ वाद करने दो।"

ऐसा कहनेपर सोणदण्ड ब्राह्मणने भगवान्से कहा—

"आप गौतम ठहरें, आप गौतम मौन धारण करें, मैंही धर्मके साथ इनका उत्तर दूँगा।"

तब सोणदण्ड ब्राह्मणने उन ब्राह्मणोंसे कहा—

"आप लोग ऐसा मत कहें, आप लोग ऐसा मत कहें—आप सोणदण्ड वर्णका प्रत्याख्यान करते हैं ०। मैं वर्ण या मंत्र (=वेद) या जाति (=जन्म)का प्रत्याख्यान नहीं करता।"

उस समय सोणदण्ड ब्राह्मणका भांजा **अं ग क** नामक माणवक उस परिषद्में बैठा था। तब सोणदण्ड ब्राह्मणने उन ब्राह्मणोंसे कहा—

"आप सब हमारे भांजे अंगक माणवकको देखते हैं?"

"हाँ, भो!"

"भो! (१) अंगक माणवक अभिरूप दर्शनीय प्रासादिक, परम (गौर) वर्ण पुष्कलतासे युक्त ० है। इस परिषद्में श्रमण गौतमको छोळकर, वर्ण (=रंग)में इसके बराबरका (दूसरा) कोई नहीं है। (२) अंगक माणवक अध्यायक, (=वेद-पाठी) मंत्रधर निघण्टु-कल्प-अक्षरप्रभेद-सहित तीनों वेद और पाँचवें इतिहासमें पारंगत है, पदक (=कवि), वैयाकरण, लोकायत-महापुरुष-लक्षण-(शास्त्रों)में निपुण है। मैंही उसे मंत्रों (=वेद)को पढ़ानेवाला हूँ। (३) अंगक माणवक दोनों ओरसे सुजात है ०। मैं इसके माता पिता दोनोंको जानता हूँ ०। (यदि) अंगक माणवक प्राणोंको भी मारे, चोरी भी करे, परस्त्रीगमन भी करे, मृषा (=झूठ) भी बोले, मद्य भी पीवे। यहाँपर अब भो! वर्ण क्या करेगा? मंत्र और जाति क्या (करेगी)? जब कि ब्राह्मण (१) शीलवान् (=सदाचारी) बृद्धशील (=बढ़े शीलवाला), बृद्धशीलतासे युक्त होता है; (२) पंडित और मेधावी होता है, सुजा (=यज्ञ-दक्षिणा)-ग्रहण करनेवालोंमें प्रथम या द्वितीय होता है। इन दोनों अंगोंसे युक्तको ब्राह्मण लोग ब्राह्मण कहते हैं। (वह) 'मैं ब्राह्मण हूँ' कहते, सच कहता है, झूठ बोलनेवाला नहीं होता।"

"ब्राह्मण! इन दो अंगोंमेंसे एक अंगको छोळ, एक अंगसे युक्तको भी ब्राह्मण कहा जा सकता है? ०।"

"नहीं, हे गौतम! शीलसे प्रक्षालित है प्रज्ञा (=ज्ञान)। प्रज्ञासे प्रक्षालित है शील (=आचार)। जहाँ शील है, वहाँ प्रज्ञा है; जहाँ प्रज्ञा है, वहाँ शील है। शीलवान्को प्रज्ञा (होती है), प्रज्ञावान्को शील। किन्तु शील लोकमें प्रज्ञाओंका अगुआ (=अग्र) कहा जाता है। जैसे हे गौतम! हाथसे हाथ धोवे, पैरसे पैर धोवे; ऐसेही हे गौतम! शील-प्रक्षालित प्रज्ञा है ०।"

"यह ऐसाही है, ब्राह्मण! शील-प्रक्षालित प्रज्ञा है, प्रज्ञा-प्रक्षालित शील है। जहाँ शील है, वहाँ प्रज्ञा; जहाँ प्रज्ञा है वहाँ शील! शीलवान्को प्रज्ञा होती है, प्रज्ञावान्को शील। किन्तु लोकमें शील प्रज्ञाका सर्दार कहा जाता है। ब्राह्मण! शील क्या है? प्रज्ञा क्या है?"

"हे गौतम! इस विषयमें हम इतनाही भर जानते हैं। अच्छा हो यदि आप गौतमही ... (इसे कहें)।"

"तो ब्राह्मण! सुनो, अच्छी तरह मनमें करो, कहता हूँ।"

"अच्छा भो!" (कह) सोणदण्ड ब्राह्मणने भगवान्को उत्तर दिया। भगवान्ने कहा—

२—शील

"ब्राह्मण ! तथागत लोकमें उत्पन्न होते[1] ०। इस प्रकार भिक्षु शीलसम्पन्न होता है। यह भी ब्राह्मण वह शील है।

३—प्रज्ञा

"० प्रथम ध्यान ०[1]। ० द्वितीय ध्यान ०। ० तृतीयध्यान ०। ० चतुर्थध्यान ०। ० ज्ञानदर्शनके लिये चित्तको लगाता है ०। '० अब कुछ यहाँ करनेको नहीं है' यह जानता है। यह भी उसकी प्रज्ञामें है। ब्राह्मण ! यह है प्रज्ञा।"

ऐसा कहनेपर सोणदण्ड ब्राह्मणने भगवान्से यह कहा—

"आश्चर्य ! हे गौतम !! आश्चर्य ! हे गौतम !! ०[2]। आजसे आप गौतम मुझे अंजलिबद्ध शरणागत उपासक धारण करें। भिक्षु-संघ सहित आप मेरा कलका भोजन स्वीकार करें।"

भगवान्ने मौनसे स्वीकार किया। तब सोणदण्ड ब्राह्मण भगवान्की स्वीकृति जान, आसनसे उठकर, भगवान्को अभिवादनकर प्रदक्षिणाकर चला गया। ०।

तब सोणदण्ड ब्राह्मणने उस रातके बीतनेपर अपने घरमें उत्तम खाद्य-भोज्य तय्यार करा भगवान्को काल सूचित किया—'हे गौतम ! (चलनेका) काल है, भोजन तय्यार है'।

तब भगवान् पूर्वाह्ण समय पहिनकर, पात्र-चीवर ले भिक्षु-संघके साथ जहाँ ब्राह्मण सोणदण्डका घर था, वहाँ गये। जाकर बिछे आसन पर बैठे। तब सोणदण्ड ब्राह्मणने बुद्ध-सहित भिक्षु-संघको अपने हाथसे उत्तम खाद्य-भोज्य द्वारा सर्तापत=संप्रवारित किया। तब सोणदण्ड ब्राह्मण भगवान्के भोजन कर पात्रसे हाथ हटा लेनेपर, एक छोटा आसन ले, एक ओर बैठ गया। एक ओर बैठे हुए सोणदण्ड ब्राह्मणने भगवान्से कहा—

"यदि हे गौतम ! परिषद्में बैठे हुए मैं आसनसे उठकर, आप गौतमको अभिवादन करूँ, तो मुझे वह परिषद् तिरस्कृत करेगी। वह परिषद् जिसका तिरस्कार करेगी, उसका यश भी क्षीण होगा। जिसका यश क्षीण होगा, उसका भोग भी क्षीण होगा। यशसे ही तो हमारे भोग मिले हैं। मैं यदि हे गौतम ! परिषद्में बैठ हाथ जोळूँ, तो उसे आप गौतम मेरा प्रत्युपस्थान (=खळा होना) समझें। मैं यदि हे गौतम! परिषद्में बैठा साफा (=वेष्ठन) हटाऊँ, उसे आप गौतम मेरा शिरसे अभिवादन-समझें। मैं यदि हे गौतम ! यानमें बैठा हुआ, यानसे उतरकर, आप गौतमको अभिवादन करूँ, उससे वह परिषद् मेरा तिरस्कार करेगी ०। मैं यदि हे गौतम ! यानमें बैठाही पतोद-लट्ठी (=कोळेका डंडा) ऊपर उठाऊँ, तो उसे आप गौतम मेरा यानसे उतरना धारण करें। यदि मैं हे गौतम ! यानमें बैठा हाथ उठाऊँ, उसे आप गौतम मेरा शिरसे अभिवादन स्वीकार करें।"

तब भगवान् सोणदण्ड ब्राह्मणको धार्मिक-कथासे ० समुत्तेजित ० कर, आसनसे उठकर चल दिये।

---

[1] देखो पृष्ठ २३-३२।　　[2] पृष्ठ ३२।

५—कुटदन्त-सुत्त (१।५)

१—बुद्धकी प्रशंसा। २—अहिंसामय-यज्ञ (महाविजित जातकका)—(१) बहुसामग्रीका यज्ञ; (२) अल्प सामग्रीका महान् यज्ञ।

ऐसा मैंने सुना—एक समय भगवान् पाँच सौ भिक्षुओंके महा-भिक्षु-संघके साथ **मगध** देशमें विचरते, जहाँ **खाणुमत** नामक मगधका ब्राह्मण-ग्राम था, वहाँ गये। वहाँ भगवान् खाणुमतमें अम्ब-लट्ठिका (=आम्रयष्टिका)में विहार करते थे।

उस समय **कुटदन्त** ब्राह्मण, मगधराज श्रेणिक बिम्बिसार द्वारा दत्त, जनाकीर्ण, तृण-काष्ट-उदक-धान्य-सम्पन्न राज-भोग्य राज-दाय, ब्रह्मदेय खाणुमतका स्वामी होकर रहता था। उस समय कुटदन्त ब्राह्मणको महायज्ञ उपस्थित हुआ था। सात सौ बैल, सातसौ बछळे, सातसौ बछळियाँ, सातसौ बकरियाँ, सातसौ भेळें यज्ञके लिये स्थूण (=खम्भा)पर लाई गई थीं।

खाणुमत-वासी ब्राह्मण गृहस्थोंने सुना—शाक्य कुलसे प्रव्रजित शाक्य-पुत्र श्रमण गौतम ० अम्बलट्ठिकामें विहार करते हैं। उन आप गौतमका ऐसा मंगलकीर्ति-शब्द फैला हुआ है—वह भगवान् अर्हत्, सम्यक्-संबुद्ध, विद्या-आचरण-युक्त, सुगति-प्राप्त, लोकवेत्ता, पुरुषोंके अनुपम चाबुक सवार, देव-मनष्यके उपदेशक, बुद्ध भगवान् हैं; इस प्रकारके अर्हतोंका दर्शन अच्छा होता है। तब खाणुमतके ब्राह्मण गृहस्थ खाणुमतसे निकलकर, झुण्डके झुण्ड जिधर अम्बलट्ठिका थी, उधर जाने लगे। उस समय कुटदन्त ब्राह्मण प्रासादके ऊपर, दिनके शयनके लिये गया हुआ था। कुटदन्त ब्राह्मणने खाणुमतके ब्राह्मण गृहस्थोंको झुण्डके झुण्ड खाणुमतसे निकलकर, जिधर अम्बलट्ठिका थी, उधर जाते देखा। देखकर क्षत्ता (=प्राइवेट सेक्रटरी)को सम्बोधित किया—

"क्या है, हे क्षत्ता! (जो) ० खाणुमतके ब्राह्मण गृहस्थ ० अम्बलट्ठिका . . . जा रहे हैं?"

"भो! शाक्य कुलसे प्रव्रजित ० श्रमण गौतम ० अम्बलट्ठिकामें विहार कर रहे हैं। उन गौतम-का ऐसा मंगलकीर्ति-शब्द फैला हुआ है ०। उन्हीं आप गौतमके दर्शनार्थ जा रहे हैं।"

तब कुटदन्त ब्राह्मणको हुआ—'मैंने यह सुना है, कि श्रमण गौतम सोलह परिष्कारोंवाली त्रिविध यज्ञ-सम्पदा (=यज्ञविधि)को जानता है। मैं महायज्ञ करना चाहता हूँ। क्यों न श्रमण गौतमके पास चलकर, सोलह परिष्कारोंवाली त्रिविध यज्ञ-सम्पदाको पूछूँ?' तब कुटदन्त ब्राह्मणने क्षत्ताको सम्बोधित किया—

"तो हे क्षत्ता! जहाँ खाणुमतके ब्राह्मण गृहस्थ हैं, वहाँ जाओ। जाकर खाणुमतके ब्राह्मण गृहस्थोंसे ऐसा कहो—कुटदन्त ब्राह्मण ऐसा कह रहा है 'थोळी देर आप सब ठहरें, कुटदन्त ब्राह्मण भी, श्रमण गौतमके दर्शनार्थ जायेगा।"

कुटदन्त ब्राह्मणको—'अच्छा भो!' कह क्षत्ता वहाँ गया, जहाँ कि खाणुमतके ब्राह्मण गृहस्थ थे। जाकर ० बोला—'कुटदन्त ०'।

उस समय कई सौ ब्राह्मण कुटदन्तके महायज्ञका उपभोग करनके लिये खाणुमतमें वास करते थे।

उन ब्राह्मणोंने सुना—कुटदन्त ब्राह्मण श्रमण गौतमके दर्शनार्थ जायेगा। तब वह ब्राह्मण जहाँ कुटदन्त ० था वहाँ गये। जाकर कुटदन्त ब्राह्मणसे बोले—"सचमुच आप कुटदन्त श्रमण गौतमके दर्शनार्थ जायेंगे ?"

"हाँ भो ! मुझे यह (विचार) हो रहा है (कि) मैं भी श्रमण गौतमके दर्शनार्थ जाऊँ।"

"आप कुटदन्त श्रमण गौतमके दर्शनार्थ मत जायें। आप कुटदन्त श्रमण गौतमके दर्शनार्थ जाने योग्य नहीं हैं। यदि आप कुटदन्त श्रमण गौतमके दर्शनार्थ जायेंगें, (तो) आप कुटदन्तका यश क्षीण होगा, श्रमण गौतमका यश बढ़ेगा। चूँकि आप कुटदन्तका यश क्षीण होगा, श्रमण गौतमका बढ़ेगा, इस बात(=अंग)से भी आप कुटदन्त श्रमण गौतमके दर्शनार्थ जाने योग्य नहीं हैं। श्रमण गौतम ही आप कुटदन्तके दर्शनार्थ आने योग्य है ०। आप कुटदन्त बहुतोंके आचार्य-प्राचार्य हैं, तीनसौ माणवकों-को मंत्र (=वेद) पढ़ाते हैं। नाना दिशाओंसे, नाना देशोंसे बहुतसे माणवक (=विद्यार्थी) मंत्रके लिये, मंत्र-पढ़नेके लिये, आप कुटदन्तके पास आते हैं ०। आप कुटदन्त जीर्ण=वृद्ध=महल्लक=अध्वगत=वयःप्राप्त हैं। श्रमण गौतम तरुण है, तरुण साधु है ०। आप कुटदन्त मगधराज श्रेणिक **बिम्बिसार**से सत्कृत=गुरुकृत=मानित=पूजित=अपचित हैं ०। आप कुटदन्त ब्राह्मण **पौष्कर-सातिसे** सत्कृत ० हैं ०। आप कुटदन्त ० खाणुमतके स्वामी हैं। इस बातसे भी आप कुटदन्त श्रमण गौतमके दर्शनार्थ जाने योग्य नहीं हैं, श्रमण गौतम ही आपके दर्शनार्थ आने योग्य है।"

१—बुद्धको प्रशंसा

ऐसा कहनेपर कुटदन्त ब्राह्मणने, उन ब्राह्मणोंसे यह कहा—

"तो भो ! मेरी भी सुनो, कि क्यों हमीं श्रमण गौतमके दर्शनार्थ जाने योग्य है, आप श्रमण गौतम हमारे दर्शनार्थ आने योग्य नहीं हैं। श्रमण गौतम भो ! दोनों ओरसे सुजात हैं ०; इस बातसे भी हमी श्रमण गौतमके दर्शनार्थ जाने योग्य हैं, आप श्रमण गौतम हमारे दर्शनार्थ आने योग्य नहीं। श्रमण गौतम बळे भारी जाति-संघको छोळकर प्रव्रजित हुए हैं ०। श्रमण गौतम शीलवान् आर्यशील-युक्त कुशल-शीली=अच्छे शीलसे युक्त ०। श्रमण गौतम सुवक्ता=कल्याण-वाक्करण। श्रमण गौतम बहुतोंके आचार्य-प्राचार्य ०। ० काम-राग-रहित, चपलता-रहित ०। ० कर्मवादी-क्रियावादी ०। ब्राह्मण संतानोंके निष्पाप अग्रणी ०। ० अमिश्र उच्चकुल क्षत्रिय कुलसे प्रव्रजित ०। ० आढ्य महाधनी, महाभोगवान्-कुलसे प्रव्रजित ०। श्रमण गौतमके पास दूसरे राष्ट्रों दूसरे जनपदोंसे पूछनेके लिये आते हैं ०। ० अनेक सहस्र देवता प्राणोंसे शरणागत हुए ०। श्रमण गौतमके लिये ऐसा मंगल-कीर्ति शब्द फैला हुआ है—कि वह भगवान् ०[1]। श्रमण गौतम बत्तीस महापुरुष-लक्षणोंसे युक्त हैं ०। श्रमण गौतम 'आओ, स्वागत' बोलनेवाले, . . . संमोदक, अब्भाकुटिक (=अकुटिलभ्रू), उत्तान-मुख, पूर्वभाषी ०। ० चारों परिषदोंसे सत्कृत= गुरुकृत ००। श्रमण गौतममें बहुतसे देव और मनुष्य श्रद्धावान् हैं ०। श्रमण गौतम जिस ग्राम या नगरमें विहार करते हैं, उसे अ-मनुष्य (=देव, भूत आदि) नहीं सताते ०। श्रमण गौतम संघी (=संघाधिपति), गणी, गणाचार्य, बळे तीर्थंकरों (=संप्रदाय-स्थापकों)में प्रधान कहे जाते हैं ०। जैसे किसी-किसी श्रमण ब्राह्मणका यश, जैसे कैसे हो जाता है, उस तरह श्रमण गौतम का यश नहीं हुआ है। अनुपम विद्या-चरण-सम्पदासे श्रमण गौतमका यश उत्पन्न हुआ है। भो ! पुत्र-सहित, भार्या-सहित, अमात्य-सहित मगधराज श्रेणिक **बिम्बिसार** प्राणोंसे श्रमण गौतमका शरणागत हुआ है ०। ० राजा **प्रसेनजित्** कोसल ०।० ब्राह्मण **पौष्करसाति**से ००। श्रमण गौतम खाणुमतमें आये हैं। खाणुमतमें अम्बलट्ठिकामें विहार करते हैं। जो कोई श्रमण या

[1] पृष्ठ ४८।

ब्राह्मण हमारे गाँव-खेतमें आते हैं, वह (हमारे) अतिथि होते हैं। अतिथि हमारा सत्करणीय=गुरु-करणीय=माननीय=पूजनीय है। चूंकि भो! श्रमण गौतम खाणुमतमें आये हैं ०। श्रमण गौतम हमारे अतिथि हैं। अतिथि हमारा सत्करणीय ० है। इस बातसे भी ०। भो! मैं श्रमण गौतमके इतने ही गुण कहता हूँ। लेकिन वह आप गौतम इतने ही गुणवाले नहीं हैं; आप गौतम अपरिमाण गुणवाले हैं।"

इतना कहनेपर उन ब्राह्मणोंने कुटदन्त ब्राह्मणसे कहा—"जैसे आप कुटदन्त श्रमण गौतमके गुण कहते हैं, (तब तो) यदि वह आप गौतम यहाँसे सौ योजनपर भी हों, तोभी पाथेय बाँधकर, श्रद्धालु कुल-पुत्रको (उनके) दर्शनार्थ जाना चाहिये। तो भो! (चलो) हम सभी श्रमण गौतमके दर्शनार्थ चलेंगे।"

तब कुटदन्त ब्राह्मण महान् ब्राह्मण-गणके साथ, जहाँ अम्बलट्ठिका थी, जहाँ भगवान् थे, वहाँ गया। जाकर उसने भगवान्के साथ संमोदन किया...। खाणुमतके ब्राह्मण गृहस्थोंमें कोई-कोई भगवान्को अभिवादन कर, एक ओर बैठ गये। कोई-कोई संमोदन कर...०; ० जिधर भगवान् थे, उधर हाथ जोळकर ०; ० चुपचाप एक ओर बैठ गये।

एक ओर बैठे हुए कुटदन्त ब्राह्मणने भगवान्से कहा—"हे गौतम! मैंने सुना है कि—श्रमण गौतम सोलह परिष्कार-सहित त्रिविध यज्ञ-सम्पदाको जानते हैं। भो! मैं सोलह परिष्कार-सहित यज्ञ-सम्पदाको नहीं जानता। मैं महायज्ञ करना चाहता हूँ। अच्छा हो यदि आप गौतम, सोलह परिष्कार-सहित त्रिविध यज्ञ-सम्पदाका मुझे उपदेश करें।"

"तो ब्राह्मण! सुनो, अच्छी तरहसे मनमें करो, कहता हूँ।"

"अच्छा भो!" कुटदन्त ब्राह्मणने भगवान्से कहा। भगवान् बोले—

२—अहिंसामय यज्ञ (महाविजित-जातक)

(१) *बहुसामग्रीका यज्ञ*

१—राज्य-युद्ध—"पूर्व-कालमें ब्राह्मण! महाधनी, महाभोगवान्, बहुत सोना चाँदीवाला, बहुत वित्त उपकरण (=साधन)वाला, बहुधन-धान्यवान् भरे-कोश-कोष्ठागारवाला, **महाविजित** नामक राजा था। ब्राह्मण! (उस) राजा महाविजितको एकान्तमें विचारते चित्तमें यह ख्याल उत्पन्न हुआ—'मुझे मनुष्योंके विपुल भोग प्राप्त हैं, (मैं) महान् पृथ्वीमंडलको जीतकर, शासन करता हूँ। क्यों न मैं महायज्ञ करूँ, जो कि चिरकाल तक मेरे हित-सुखके लिये हो।' तब ब्राह्मण! राजा महाविजितने पुरोहित ब्राह्मणको बुलाकर कहा—'ब्राह्मण! यहाँ एकान्तमें बैठ विचारते, मेरे चित्तमें यह ख्याल उत्पन्न हुआ—० क्यों न मैं महायज्ञ करूँ ०। ब्राह्मण! मैं महायज्ञ करना चाहता हूँ। आप मुझे अनुशासन करें, जो चिरकाल तक मेरे हित-सुखके लिये हो।' ऐसा कहनेपर ब्राह्मण! पुरोहित ब्राह्मणने राजा महाविजितसे कहा—'आप...का देश सकंटक, उत्पीळा-सहित है। (राज्यमें) ग्राम-घात (=गाँवोंकी लूट) भी दिखाई पळते हैं, बटमारी भी देखी जाती है। आप ऐसे सकंटक उत्पीळा-सहित देशसे बलि (=कर) लेते हैं। इससे आप इस (देश)के अकृत्य-कारी हैं। शायद आप...का (विचार) हो, दस्युओं (=डाकुओं) के कीलको हम बध, बन्धन, हानि, निन्दा, निर्वासनसे उखाळ देंगे। लेकिन इस दस्यु-कील (=लूट-पाट रूपी कील)को, इस तरह भलीभाँति नहीं उखाळा जा सकता। जो मारनेसे बच रहेंगे, वह पीछे राजाके जनपदको सतायेंगे। ऐसे दस्युकीलका इस उपायसे भली प्रकार उन्मूलन हो सकता है, कि राजन्! जो कोई आपके जनपदमें कृषि गोपालन करनेका उत्साह रखते हैं, उनको आप बीज और भोजन प्रदान करें। ० वाणिज्य करनेका उत्साह रखते हैं, उन्हें आप...पूँजी (=प्राभृत) दें। जो राजपुरुषाई (=राजाकी नौकरी) करनेका उत्साह रखते हैं, उन्हें आप भत्ता-वेतन (=भत्त-वेतन) दें। (इस प्रकार) वह लोग

अपने काममें लगे, राजाके जनपदको नहीं सतायेंगे। आप...को महान् (धन-धान्यकी) राशि (प्राप्त) होगी, जनपद (=देश) भी पीडा-रहित, कंटक-रहित क्षेम-युक्त होगा। मनुष्य भी गोदमें पुत्रोंको नचातेसे, खुले घर विहार करेंगे।'

"राजा महाविजितने पुरोहित ब्राह्मणको—'अच्छा भो ब्राह्मण!' कहा। राजाके जनपदमें जो कृषि-गो-रक्षा करना चाहते थे, उन्हें राजाने बीज-भत्ता सम्पादित किया। जो राजाके जनपदमें वाणिज्य करनेके उत्साही थे, उन्हें पूँजी सम्पादित की। जो राजाके जनपदमें राज-पुरुषाईमें उत्साही हुए, उनका भत्ता-वेतन ठीक कर दिया। उन मनुष्योंने अपने अपने काममें लग, राजाके जनपदको नहीं सताया। राजाको महाधनराशि प्राप्त हुई। जनपद अकंटक अपीडित क्षेम-युक्त हो गया। मनुष्य हर्षित, मोदित, गोदमें पुत्रोंको नचातेसे खुले घर विहार करने लगे।

"ब्राह्मण! तब राजा महाविजितने पुरोहित ब्राह्मणको बुलाकर कहा—'भो! मैंने दस्युकील उखाळ दिया। मेरे पास महाराशि है ०। हे ब्राह्मण! मैं महायज्ञ करना चाहता हूँ। आप मुझे अनुशासन करें, जो कि चिरकाल तक मेरे हित-सुखके लिये हो'।

२—**होम-यज्ञ**'तो आप! ...जो आपके जनपदमें जानपद (=ग्रामीण), नैगम (=शहरके) **अनुयुक्तक** क्षत्रिय हैं, आप उन्हें कहें—'मैं भो! महायज्ञ करना चाहता हूँ, आप लोग मुझे अनुज्ञा (=आज्ञा) करें, जो कि मेरे चिरकाल तक हित-सुखके लिये हो'। जो आपके जनपदमें जानपद या नैगम अमात्य पारिषद्य (=सभासद्) ०। जनपदमें जानपद या नैगम ब्राह्मण महाशाल (=धनी) ०।० जानपद या नैगम गृहपति (=वैश्य) नेचयिक (=धनी) ०। राजा महाविजितने ब्राह्मण पुरोहितको—'अच्छा भो' कहकर, जो राजाके जनपदमें ० अनुयुक्तक क्षत्रिय ०' अमात्य पारिषद्य ०, ० ब्राह्मण महाशाल ०, ० गृहपति नेचयिक थे, उन्हें राजा महाविजितने आमंत्रित किया—'भो! मैं महायज्ञ करना चाहता हूँ, आप लोग मुझे अनुज्ञा करें, जो कि चिरकाल तक मेरे हित-सुखके लिये हो'। 'राजा! आप यज्ञ करें महाराज यह यज्ञका काल है।' ब्राह्मण! यह चारों अनुमति-पक्ष उसी यज्ञके (चार) परिष्कार होते हैं।

"(वह) राजा महाविजित आठ अंगोंसे युक्त था। (१) दोनों ओरसे सुजात ०। (२) अभिरूप=दर्शनीय ० ब्रह्मवर्णी=ब्रह्मबृद्धि, दर्शनके लिये अवकाश न रखनेवाला। (३) ० शीलवान् ०। (४) आढ्य महाधनवान् महाभोगवान्, बहुत चाँदी सोनेवाला, बहुत वित्त-उपकरणवाला, बहुत धन-धान्यवाला, परिपूर्ण-कोश-कोष्ठागारवाला, (५) बलवती चतुरंगिनी सेनासे युक्त, आश्रयके लिये अपवाद-प्रतिकार (=ओवाद्-पटिकार)के लिये यशसे मानों शत्रुओंको तपातासा था। (६) श्रद्धालु, दायक=दानपति श्रमण-ब्राह्मण दरिद्र-आर्थिक (=मँगता) वन्दीजन (=वणिब्बक) याचकोंके लिये खुले-द्वार-वाला प्याउ-सा हो, पुण्य करता था। (७) बहुश्रुत, सुने हुओं, कहे हुओंका अर्थ जानता था—'इस कथनका यह अर्थ है, इस कथनका यह अर्थ है'। (८) पंडित=व्यक्त मेधावी, भूत-भविष्य-वर्तमानसंबंधी बातोंको सोचनेमें समर्थ। राजा महाविजित, इन आठ अंगोंसे युक्त (था)। यह आठ अंग उसी यज्ञके आठ परिष्कार होते हैं।

"पुरोहित ब्राह्मण चार अंगोंसे युक्त (था)। (१) दोनों ओरसे सुजात ०। (२) अध्यायक मंत्र-धर ० त्रिवेद-पारंगत ०। (३) शीलवान् ०। (४) पंडित=व्यक्त मेधावी ० सुजा (=दक्षिणा) ग्रहण करनेवालोंमें प्रथम या द्वितीय था। पुरोहित ब्राह्मण इन चार अंगोंसे युक्त (था)। वह चार अंग भी उसी यज्ञके परिष्कार होते हैं।

"तब ब्राह्मण! पुरोहित ब्राह्मणने पहिले राजा महाविजितको तीन विधियोंका उपदेश किया। (१) यज्ञ करनेकी इच्छावाले आप...को शायद कहीं अफसोस हो—'बळी धनराशि चली

जायगी', सो आप राजाको यह अफसोस न करना चाहिये। (२) यज्ञ करते हुए आप राजाको शायद कहीं अफसोस हो—० चली जा रही है ०। (३) यज्ञ कर चुकनेपर आप राजाको शायद कहीं अफसोस हो—'बळी धन-राशि चली गई', सो यह अफसोस आपको न करना चाहिये। ब्राह्मण! इस प्रकार पुरोहित ब्राह्मणने राजा महाविजितको यज्ञ (करने)से पहले तीन विधियाँ बतलाईं।

"तब ब्राह्मण! पुरोहित ब्राह्मणने यज्ञसे पूर्व ही राजा महाविजितके (हृदयसे) प्रतिग्राहकोंके प्रति (उत्पन्न होनेवाले) दश प्रकारके विप्रतिसार (=चित्तको बुरा करना) हटाये—(१) आपके यज्ञमें प्राणातिपाती (=हिंसारत) भी आवेंगे, प्राणातिपात-विरत (=अ-हिंसारत) भी। जो प्राणातिपाती हैं, (उनका प्राणातिपात) उन्हींके लिये है, जो वह प्राणातिपात विरत हैं, उनके प्रति आप यजन करें, मोदन करें, आप उनके चित्तको भीतरसे प्रसन्न (=स्वच्छ) करें। (२) आपके यज्ञमें चोर भी आवेंगे, अ-चोर भी। जो वहाँ चोर हैं, वह अपने लिये हैं, जो वहाँ अ-चोर हैं, उनके प्रति आप यजन करें, मोदन करें, आप अपने चित्तको भीतरसे प्रसन्न करें। (३) ० व्यभिचारी ०, अ-व्यभिचारी भी ०। (४) ० मृषावादी (=झूठे) ०, मृषावाद-विरत भी ०। (५) ० पिशुनवाची (=चुगुल-खोर) ०, पिशुन-वचन-विरत भी ०। (६) ० परुषवाची (=कटुवचनवाले) ०, परुष-वचनविरत भी ०। (७) ० संप्रलापी (=बकवादी) ०,संप्रलाप-विरत भी ०। (८) ० अभिध्यालु (=लोभी) ०, अभिध्या-विरत ०। (९) ०—व्यापन्न-चित्त (=द्रोही) अ-व्यापन्नचित्त-भी ०। (१०) ० मिथ्यादृष्टि (=झूठे मत वाले) ०, सम्यग्-दृष्टि (=सत्यमतवाले) भी। जो वहाँ मिथ्या दृष्टि हैं, वह अपनेही लिये हैं, जो वहाँ सम्यग्-दृष्टि हैं, उनके प्रति आप यजन करें, मोदन करें, आप अपने चित्तको भीतरसे प्रसन्न करें। ब्राह्मण! पुरोहित ब्राह्मणने यज्ञसे पूर्व ही राजा महाविजितके (हृदयसे) प्रतिग्राहकों (=दान लेनेवालों)के प्रति (उत्पन्न होनेवाले), इन दस प्रकारके विप्रतिसार (=चित्त-विकार) अलग कराये।

"तब ब्राह्मण! पुरोहित ब्राह्मणने यज्ञ करते वक्त राजा महाविजितके चित्तका सोलह प्रकारसे संदर्शन=समादपन=समुत्तेजन संप्रहर्षण किया—(१) शायद यज्ञ करते वक्त आप राजाको (कोई) बोलनेवाला हो—राजा महाविजित महायज्ञ कर रहा है, किन्तु उसने नैगम-जानपद अनुयुक्तक क्षत्रियों (=मांडलिक या जागीरदार राजाओं)को आमंत्रित नहीं किया; तो भी यज्ञ कर रहा है। (सो अब) ऐसा भी आपको धर्मसे बोलनेवाला कोई नहीं है। आप . . . नैगम (=शहरी), जानपद (=देहाती) अनुयुक्तक क्षत्रियोंको आमंत्रित कर चुके हैं। इससे भी आप इसको जानें। आप यजन करें, आप मोदन करें, आप अपने चित्तको भीतरसे प्रसन्न करें। (२) शायद ० कोई बोलनेवाला हो—० नैगम जानपद अमात्यों (=अधिकारी), पार्षदों (=सभासद्)को आमंत्रित नहीं किया ०। (३) ० ० ब्राह्मण महा-शालों ०। (४) ० ० नेचयिक गृहपतियों (=धनी वैश्यों)को ०। (५) शायद कोई बोलनेवाला हो—राजा महाविजित यज्ञ कर रहा है, किन्तु वह दोनों ओरसे सुजात नहीं है ०। तो भी महायज्ञ यजन कर रहा है। ऐसा भी आपको धर्मसे कोई बोलने वाला नहीं है। आप दोनों ओरसे सुजात हैं। इससे भी आप राजा इसको जानें। आप यजन करें, आप मोदन करें, आप अपने चित्तको भीतरसे प्रसन्न करें। (६) ० ० अभिरूप=दर्शनीय ०।०। (७) ० ० शीलवान् ०.०। (८) ० ० आढ्य महा भोगवान् बहुत सोना चाँदी वाले, बहुत वित्त-उपकरण-वान्, बहु-धन-धान्य-वान्, कोश-कोष्ठागार-परिपूर्ण ० ०। (९) ० ० बलवती चतुरंगिनी सेनासे ०" (१०) ० ० श्रद्धालु दायक ० ०। (११) ० ० बहुश्रुत ० ०। (१२) ० ० पण्डित=व्यक्त मेधावी ० ०। (१३) ० ० पुरोहित दोनों ओरसे सुजात ० ०। (१४) ० ० पुरोहित ० अध्यायक मंत्रधर ० ०। (१५) ० ० पुरो-हित ० शीलवान् ० ०। (१६) पुरोहित ० पंडित=व्यक्त ० ०। ब्राह्मण! महायज्ञ यजन करते हुये, राजा महाविजितके चित्तको पुरोहित ब्राह्मणने इन सोलह विधियोंसे समुत्तेजित किया।

12045

"ब्राह्मण ! उस यज्ञमें गायें नहीं मारी गईं, बकरे-भेळें नहीं मारी गईं, मुर्गे सुअर नहीं मारे गये, न नाना प्रकारके प्राणी मारे गये। न यूप (=यज्ञ-स्तंभ)के लिये वृक्ष काटे गये। न पर-हिंसाके लिये दर्भ (=कुश) काटे गये। जो भी उसके दास, प्रेष्य (=नौकर), कर्मकर थे, उन्होंने भी दण्ड-तर्जित, भय-तर्जित हो, अश्रुमुख, रोते हुये सेवा नहीं की। जिन्होंने चाहा उन्होंने किया, जिन्होंने नहीं चाहा उन्होंने नहीं किया। जिसे चाहा उसे किया, जिसे नहीं चाहा उसे नहीं किया। घी , तेल, मक्खन, दही, मधु, खांड (=फाणित)से वह यज्ञ समाप्तिको प्राप्त हुआ ।

"तब ब्राह्मण ! नैगम-जानपद अनुयुक्तक-क्षत्रिय, ० अमात्य-पार्षद, ० महाशाल (=धनी) ब्राह्मण, ० नेचयिक-गृहपति (=धनी वैश्य) बहुतसा धन-धान्य ले, राजा महाविजितके पास जाकर, बोले--'देव ! यह बहुतसा धन-धान्य (=सापतेय्य) देवके लिये लाये हैं, इसे देव स्वीकार करें'। 'नहीं भो । मेरे पास भी यह बहुत सा धर्मसे उपार्जित सापतेय्य है। यह तुम्हारे ही पास रहे, यहाँसे भी और ले जाओ। राजाके इन्कार करनेपर एक ओर जाकर, उन्होंने सलाह की—'यह हमारे लिये उचित नहीं, कि हम इस धन-धान्यको फिर अपने घरको लौटा ले जायें। राजा महाविजित महायज्ञ कर रहा है, हन्त ! हम भी इसके अनुगामी हो पीछे पीछे यज्ञ करनेवाले होवें।

"तब ब्राह्मण! यज्ञवाट (=यज्ञस्थान)के पूर्व ओर नैगम जानपद अनुयुक्तक क्षत्रियोंने अपना दान स्थापित किया। यज्ञवाटके दक्षिण ओर ० अमात्य-पार्षदोंने ०। पश्चिम ओर ० ब्राह्मण महाशालोंने ०। ० उत्तर ओर ० नेचयिक वैश्योंने ०। ब्राह्मण ! उन (अनु)यज्ञोंमें भी गायें नहीं मारी गईं ०। घी, तेल, मक्खन, दही, मधु, खाँळसे ही वह यज्ञ सम्पादित हुये।

"इस प्रकार चार अनुमति-पक्ष, आठ अंगोंसे युक्त राजा महाविजित, चार अंगोंसे युक्त पुरोहित ब्राह्मण, यह सोलह परिष्कार और तीन विधियाँ हुई । ब्राह्मण ! इसे ही त्रिविध यज्ञ-संपदा और सोलह-परिष्कार कहा जाता है।"

ऐसा कहने पर वह ब्राह्मण उन्नाद उच्चशब्द = महाशब्द करने लगे—'अहो यज्ञ ! अहो ! यज्ञ-संपदा ! !' कुटदन्त ब्राह्मण चुपचाप ही बैठा रहा। तब उन ब्राह्मणोंने कुटदन्त ब्राह्मणसे यह कहा—

"आप कुटदन्त किसलिये श्रमण गौतमके सुभाषितको सुभाषितके तौरपर अनुमोदित नहीं कर रहे हैं ?"

"भो ! मैं, श्रमण गौतमके सुभाषितको सुभाषितके तौरपर अन्-अनुमोदन नहीं कर रहा हूँ। शिर भी उसका फट जायगा, जो श्रमण गौतमके सुभाषितको सुभाषितके तौरपर अनुमोदन नहीं करेगा। मुझे यह (विचार) हो रहा है, कि श्रमण गौतम यह नहीं कहते—'ऐसा मैंने सुना', या ऐसा हो सकता है'। वल्कि श्रमण गौतमने—'ऐसा तब था, इस प्रकार तब था', कहा है। तब मुझे ऐसा होता है—'अवश्य श्रमण गौतम उस समय (यातो) यज्ञ-स्वामी राजा महाविजित थे, या यज्ञके करानेवाले पुरोहित ब्राह्मण थे। क्या जानते हैं, आप गौतम ! इस प्रकारके इस यज्ञको करके या कराके, (मनुष्य) काया छोळ मरनेके बाद सुगति स्वर्ग-लोकमें उत्पन्न होता है ?"

"ब्राह्मण ! जानता हूँ इस प्रकारके यज्ञ ०। मैं उस समय उस यज्ञका याजयिता पुरोहित ब्राह्मण था।"

(२) अल्पसामग्रीका महान यज्ञ

"हे गौतम ! इस सोलह परिष्कार त्रिविध यज्ञ-संपदासे भी कम सामग्री (=अर्थ) वाला, कम क्रिया (=समारंभ)-वाला, किन्तु महाफल-दायी कोई यज्ञ है ?"

"है, ब्राह्मण ! इस ० से भी ० महाफलदायी ।"

"हे गौतम ! वह इस ० से भी ० महाफलदायी यज्ञ कौन है ?"

१—दान-यज्ञ—"ब्राह्मण ! वह जो प्रत्येक कुलमें शीलवान् (=सदाचारी) प्रव्रजितोंके लिये नित्य दान दिये जाते हैं। ब्राह्मण ! वह यज्ञ इस० से भी ० महाफलदायी है।"

"हे गौतम ! क्या हेतु है, क्या प्रत्यय है, जो वह नित्य दान इस ० से भी ० महाफलदायी है?"

"ब्राह्मण ! इस प्रकारके (महा)यज्ञोंमें अर्हत् (=मुक्तपुरुष), या अर्हत्-मार्गारूढ़ नहीं आते। सो किस हेतु ? ब्राह्मण ! यहाँ दण्ड-प्रहार और गल-ग्रह (=गला पकळना) भी देखा जाता है। इस लिये इस प्रकारके यज्ञोंमें अर्हत् ० नहीं आते। जोकि वह नित्यश्दान ० है, इस प्रकारके यज्ञमें ब्राह्मण ! अर्हत् ० आते हैं। सो किस हेतु ? वहाँ ब्राह्मण ! दंड-प्रहार, गल-ग्रह नहीं देखा जाता। इसलिये इस प्रकारके यज्ञमें ०। ब्राह्मण ! यह हेतु है, यह प्रत्यय है, जिससे कि नित्य-दान ० उस ० से भी ० महाफलदायी है।"

"हे गौतम ! क्या कोई दूसरा यज्ञ, इस सोलह-परिष्कार-त्रिविध-यज्ञसे भी अधिक फलदायी, इस नित्यदान ० से भी अल्प-सामग्री-वाला. अल्पसमारम्भवाला और महाफलदायी, महामाहात्म्यवाला है ?"

"है, ब्राह्मण ! ०।"

"हे गौतम ! वह यज्ञ कौन सा है, (जो कि) इस सोलह ० ?"

"ब्राह्मण ! जो कि यह चारों दिशाओंके संघके लिये (=चातुद्दिसं संघं उद्दिस्स) विहारका बनवाना है। यह ब्राह्मण ! यज्ञ, इस सोलह ०।"

"हे गौतम ! क्या कोई दूसरा यज्ञ, इस ० त्रिविध यज्ञसे भी ०, इस नित्यदान ० से भी, इस विहार-दानसे भी अल्प-सामग्रीक अल्प-क्रियावाला, और महाफलदायी महामाहात्म्यवाला है ?"

"है, ब्राह्मण ! ०।"

"हे गौतम ! कौन सा है ० ?"

२—त्रिशरण-यज्ञ—"ब्राह्मण ! यह जो प्रसन्नचित्त हो बुद्ध (परम-ज्ञानी)की शरण जाना है, धर्म (=परम-तत्व) की शरण जाना है, संघ (=परम तत्व-रक्षक-समुदाय)की शरण जाना है, ब्राह्मण ! यह यज्ञ, इस ० त्रिविध यज्ञसे भी ० ०।"

"हे गौतम ! क्या कोई दूसरा यज्ञ ० ०इन शरण-गमनोंसे भी अल्प-सामग्रीक, अल्प-क्रियावान् और महाफलदायी, महामाहात्म्यवान् है ?"

"है, ब्राह्मण ! ०।"

"हे गौतम ! कौनसा है, ० ?"

३—शिक्षापद-यज्ञ—"ब्राह्मण ! वह जो प्रसन्न (=स्वच्छ)-चित्त (हो) शिक्षापदों (=यम-नियमों)का ग्रहण करना है—(१) अ-हिंसा, (२) अ-चोरी, (३)अव्यभिचार, (४) झूठ-त्याग, (५) सुरा-मेरय-मद्य-प्रमाद-स्थान-विरमण (=नशा-त्याग)। यह यज्ञ ब्राह्मण ! ० ० इन शरण-गमनोंसे भी ० महा-माहात्म्यवान् है।"

"हे गौतम ! क्या कोई दूसरा यज्ञ ० ० इन शिक्षापदोंसे भी ० महामाहात्म्यवान् है ?"

"है, ब्राह्मण ! ०।"

"हे गौतम ! कौनसा है० ?"

४—शील-यज्ञ—"ब्राह्मण ! जब लोकमें तथागत उत्पन्न होते हैं ? ०[1]। इस प्रकार ब्राह्मण शील-सम्पन्न होता है ०।

---

[1]**देखो पृष्ठ २३-२९।**

५—समाधि-यज्ञ—–० प्रथम ध्यानको प्राप्त हो विहरता है । ब्राह्मण ! यह यज्ञ पूर्वके यज्ञोंसे अल्प-सामग्रीक ० और महामाहात्म्यवान् है।"

"क्या है, हे गौतम ! ० ० इस प्रथम ध्यानसे भी ०[1] ?"

"है ०।" "कौन है ० ?"

" ० ०द्वितीय-ध्यान ० ०।" "तृतीय-ध्यान ० ०।" " ० ० चतुर्थ-ध्यान ० ०।" "ज्ञान दर्शनके लिये चित्तको लगाता, चित्तको झुकाता है ० ०।"

६—प्रज्ञा-यज्ञ—" ० ० ०नहीं अब दूसरा यहाँके लिये है, जानता है ० ०। यह भी ब्राह्मण ! यज्ञ पूर्वके यज्ञोंसे अल्प-सामग्रीक ० और ० महामाहात्म्यवान् है। ब्राह्मण ! इस यज्ञ-संपदासे उत्तरितर (=उत्तम) प्रणीततर दूसरी यज्ञ-संपदा नहीं है।'

ऐसा कहनेपर कुटदन्त ब्राह्मणने भगवान्‌से कहा—

"आश्चर्य ! हे गौतम ! अद्भुत ! हे गौतम ! ०[2] मैं भगवान् गौतमकी शरण जाता हूँ, धर्म और भिक्षु संघकी भी। आप गौतम आजसे मुझे अंजलि-बद्ध शरणागत उपासक धारण करें। हे गौतम ! यह मैं सात सौ बैलों सात सौ बछळों, सात सौ बकरों, सात सौ भेळोंको छोळवा देता हूँ, जीवन-दान देता हूँ, (वह) हरी घासें चरें, ठंडा पानी पीवें, ठंडी हवा उनके (लिये) चले।"

तब भगवान्‌ने कुटदन्त ब्राह्मणको आनुपूर्वी-कथा कही ०[3]। कुटदन्त ब्राह्मणको उसी आसनपर विरज विमल=धर्म-चक्षु उत्पन्न हुआ—"जो कुछ उत्पन्न होने वाला है, वह नाशमान है'। तब कुट-दन्त ब्राह्मणने दृष्टधर्म ० हो भगवान्‌से कहा—

"भिक्षु-संघके साथ आप गौतम कलका मेरा भोजन स्वीकार करें।"

भगवान् ने मौनसे स्वीकार किया। तब कुटदन्त ब्राह्मण भगवान्‌की स्वीकृति जान, आसनसे उठकर, भगवान्‌को अभिवादनकर, प्रदक्षिणाकर चला गया।

तब कुटदन्त ब्राह्मणने उस रातके बीतनेपर, यज्ञवाट (=यज्ञमंडप)में उत्तम खाद्य-भोज्य तैयार करा, भगवान्‌को काल सूचित कराया ०[4]। भगवान् पूर्वाह्ण समय पहिनकर पात्र-चीवर ले, भिक्षु-संघके साथ, जहाँ कुटदन्त ब्राह्मणका यज्ञवाट था, वहाँ गये। जाकर बिछे आसनपर बैठे। कुटदन्त ब्राह्मणने बुद्ध-प्रमुख भिक्षु-संघको अपने हाथसे उत्तम खाद्य-भोज्य द्वारा सन्तर्पित=संप्रवारित किया। भगवान्‌के भोजन कर पात्रसे हाथ हटा लेनेपर; कुटदन्त ब्राह्मण एक छोटा आसन ले, एक ओर बैठ गया। एक ओर बैठ हुये, कुटदन्त ब्राह्मणको भगवान्, धार्मिक कथासे संदर्शित=समादपित=समुत्तेजित, संप्रहर्षित कर, आसनसे उठकर चले गये।

---

[1] पृष्ठ २९।　[2] पृष्ठ ३२।　[3] देखो पृष्ठ ४३।　[4] देखो पृष्ठ ४७।

६—महालि-सुत्त (१।६)

भिक्षु बननेका प्रयोजन (सुनक्खत-कथा)—(१) समाधिके चमत्कार नहीं। (२) निर्वाणका साक्षात्कार। (३) आत्मवाद (मंडिस्स-कथा)। (४) निर्वाण साक्षात्कारके उपाय (शील, समाधि, प्रज्ञा)।

ऐसा मैंने सुना—एक समय भगवान् **वैशाली** में महावन की कूटागारशाला में विहार करते थे।

उस समय बहुतसे कोसलवासी ब्राह्मण-दूत, मगधवासी ब्राह्मण-दूत वैशालीमें किसी कामसे वास करते थे। उन कोसल-मगध-वासी ब्राह्मण-दूतोंने सुना—शाक्य कुलसे प्रव्रजित शाक्य-पुत्र श्रमण-गौतम वैशालीमें महावनकी कूटागारशालामें विहार करते हैं। उन आप गौतमका ऐसा मंगल कीर्ति-शब्द फैला हुआ है— ०[1]। इस प्रकारके अर्हतोंका दर्शन अच्छा होता है।

तब वह कोसल-मागध-ब्राह्मणदूत जहाँ महावनकी कूटागारशाला थी, वहाँ गये। उस समय आयुष्मान् **नागित** भगवान्‌के उपस्थाक (=हजूरी) थे। तब वह ब्राह्मण-दूत जहाँ आयुष्मान् नागित थे, वहाँ गये। जाकर आयुष्मान् नागितसे बोले।—

"हे नागित! इस वक्त आप गौतम कहाँ विहरते हैं? हम उन आप गौतमका दर्शन करना चाहते हैं।"

"आवुसो! भगवान्‌के दर्शनका यह समय नहीं है। भगवान् ध्यानमें हैं।"

तब वह ० ब्राह्मणदूत वहीं एक ओर बैठ गये—'हम उन आप भगवान्‌का दर्शन करके ही जावेंगे'। **ओट्ठद्ध** (=आधे ओठवाला) लिच्छवि भी, बळी भारी लिच्छवि-परिषद्‌के साथ, जहाँ आयुष्मान् नागित थे, वहाँ गया। जाकर आयुष्मान् नागितको अभिवादनकर, एक ओर खळा हो गया। एक ओर खळे हुये ओट्ठद्ध लिच्छविने आयुष्मान् नागितसे कहा—

"भन्ते नागित! इस समय वह भगवान् अर्हत् सम्यक्-सम्बुद्ध कहाँ विहार कर रहे हैं।"

"महालि! भगवान्‌के दर्शनका यह समय नहीं है। भगवान् ध्यानमें हैं।"

ओट्ठद्ध लिच्छवि भी वहीं एक ओर बैठ गया—'उन भगवान् अर्हत् सम्यक्-सम्बुद्धका दर्शन करके ही जायेंगे'।

तब **सिंह** श्रमणोद्देश जहाँ आयुष्मान् नागित थे, वहाँ आया। आकर आयुष्मान् नागित को अभिवादनकर, एक ओर खळा हो गया। ० यह बोला—

"भन्ते काश्यप! यह बहुतसे ०ब्राह्मण-दूत भगवान्‌के दर्शनके लिये यहाँ आये हैं। ओट्ठद्ध लिच्छवि भी महती लिच्छवि-परिषद्‌के साथ भगवान्‌के दर्शनके लिय यहाँ आया है। भन्ते काश्यप! अच्छा हो, यदि यह जनता भगवान्‌का दर्शन पाये।"

"तो सिंह! तू ही जाकर भगवान्‌से कह।"

---

[1] देखो पृष्ठ ४८।

आयुष्मान् नागित को "अच्छा भन्ते !" कह, सिंह श्रमणोद्देश जहाँ भगवान् थे, वहाँ गया। जाकर भगवान्को अभिवादनकर एक ओर खळा हो ० भगवान्से बोला—

"भन्ते ! यह बहुतसे ०, अच्छा हो यदि यह परिषद् भगवान्का दर्शन पाये।"

"तो सिंह ! विहारकी छायामें आसन बिछा ।"

"अच्छा भन्ते !" कह, सिंह श्रमणोद्देशने विहारकी छायामें आसन बिछाया। तब भगवान् विहारसें निकलकर, विहारकी छायामें बिछे आसनपर बैठे।

तब वह ० ब्राह्मण-दूत जहाँ भगवान् थे, वहाँ गये। जाकर भगवान्के साथ संमोदन कर ०। ओट्ठद्ध लिच्छवि भी लिच्छवि-परिषद्के साथ, जहाँ भगवान् थे, वहाँ गया। जाकर भगवान्को अभिवादनकर एक ओर बैठ गया। एक ओर बैठे हुये, ओट्ठद्ध लिच्छविने भगवान्से कहा—

१—भिक्षु बननेका प्रयोजन (सुनक्खत्त-कथा)

"पिछले दिनों (=पुरिमानि दिवसानि पुरिमतराणि) **सु न क्ख त्त** लिच्छविपुत्त जहाँ मैं था, वहाँ आया। आकर मुझसे बोला—'महालि ! जिसके लिये मैं भगवान्के पास अन्-अधिक तीन वर्ष तक रहा कि प्रिय कमनीय रंजनीय दिव्य शब्द सुनूँगा; किन्तु प्रिय कमनीय रंजनीय दिव्य शब्द मैंने नहीं सुना।' भन्ते ! क्या सुनक्खत्त लिच्छवि-पुत्र ने विद्यमान ही ० दिव्य शब्द नहीं सुने, या अविद्यमान ?"

"महालि ! विद्यमान ही ० दिव्य शब्दोंको सुनक्खत्त० ने नहीं सुना, अ-विद्यमानको नहीं।"

"भन्ते ! क्या हेतु-प्रत्यय है, जिससे कि ० दिव्य शब्दोंको सुनक्खत्त ० ने नहीं सुना ० ?"

(१) *समाधिके चमत्कार नहीं*

"महालि ! एक भिक्षुको पूर्व दिशामें ० दिव्य रूपोंके दर्शनार्थ एकांगी समाधि प्राप्त होती है, किन्तु ० दिव्य-शब्दोंके श्रवणार्थ नहीं।... वह पूर्व-दिशामें ० दिव्य-रूपको देखता है, किन्तु ०दिव्य-शब्दोंको नहीं सुनता। सो किस हेतु ? महालि ! पूर्व-दिशामें एकांश एकांगी समाधि प्राप्त होनसे ०दिव्य रूपोंके दर्शनके लिये होती है ०, दिव्य-शब्दोंके श्रवणके लिये नहीं। और फिर महालि ! भिक्षुको दक्षिण-दिशा ०, ० पश्चिम-दिशा, ० उत्तर-दिशा ०, ० ऊपर ०, ० नीचे ० ० तिर्छे रूपोंके दर्शनार्थ एकांगी समाधि प्राप्त होती है ०। महालि ! भिक्षुको पूर्व-दिशामें ० दिव्य-शब्दोंके श्रवणार्थ ०। ० दक्षिण-दिशामें ०। ० पश्चिम-दिशामें ०। ० उत्तर-दिशामें ०। महालि ! भिक्षुको पूर्व-दिशामें ० दिव्य-रूपोंके दर्शनार्थ, और दिव्य-शब्दोंके श्रवणार्थ उभयांश (=दो-तरफी) समाधि प्राप्त होती है। ... वह उभयांश समाधिके प्राप्त होनसे पूर्व-दिशामें ० दिव्य रूपोंको देखता है, ० दिव्य-शब्दोंको सुनता है ...। ० ०। ० उत्तर-दिशामें ०। ० ऊपर ०। ० नोचे ०। ० तिर्छे ० ....।

"भन्ते ! इन समाधि-भावनाओंके साक्षात्कार (=अनुभव)के लिये ही, भगवान्के पास भिक्षु ब्रह्मचर्य-पालन करते हैं ?"

"नहीं महालि ! इन्हीं ० के लिये (नहीं) ०। महालि ! दूसरे इनसे बढ़कर, तथा अधिक उत्तम धर्म हैं, जिनके साक्षात्कारके लिये भिक्षु मेरे पास ब्रह्मचर्य-पालन करते हैं"।

"भन्ते ! कौनसे इनसे बढ़कर तथा अधिक उत्तम धर्म हैं, जिनके ० लिये ० ?"

(२) *निर्वाण साक्षात्कारके लिये ?*

"महालि ! तीन सं यो ज नों (=बंधनों)के क्षयसे (पुरुष) फिर न पतित होनेवाला, नियत संबोधि (=परमज्ञान)की ओर जानेवाला, **स्रोत-आपन्न** होता है। महालि ! ० यह भी धर्म है ०। और फिर महालि ! तीनों संयोजनोंके क्षीण होनेपर, राग, द्वेष, मोहके निर्बल (=तनु) पळनेपर, **सकृदागामी** होता है, एक ही बार (=सकृद् एव) इस लोकमें फिर आ (=जन्म)कर, दुःखका अन्त

करता (=निर्वाण-प्राप्त होता) है। ० यह भी महालि! ० धर्म है ०। और फिर महालि भिक्षु पाँचों अवरभागीय (=ओरंभागिय=यहीं आवागमनमें फँसा रखनेवाले) संयोजनोंके क्षीण होनेसे औपपातिक (=देव) बन वहाँ (=स्वर्ग-लोकमें) निर्वाण पानेवाला =(फिर यहाँ) न लौटकर आनेवाला होता है। ० यह भी महालि! ० धर्म है ०। और फिर महालि! आस्रवों (=चित्तमलों)के क्षीण होनेसे, आस्रव-रहित चित्तकी मुक्तिके ज्ञानद्वारा इसी जन्ममें (निर्वाणको) स्वयं जानकर= साक्षात्कार कर=प्राप्त कर विहार करता है। ० यह भी महालि! ० धर्म है ०। यह हैं महालि! ०अधिक उत्तम धर्म, जिनके साक्षात् करनेके लिये, भिक्षु मेरे पास ब्रह्मचर्य-पालन करते हैं।"

"क्या भन्ते! इन धर्मोंके साक्षात् करनेके लिये मार्ग=प्रतिपद् है?"

"है, महालि! मार्ग=प्रतिपद् ०।"

"भन्ते! कौन मार्ग है, कौन प्रतिपद् है ०।"

"यही आ र्य-अ ष्टां गि क मार्ग, जैसे कि-(१) सम्यक्-दृष्टि, (२) सम्यक्-संकल्प, (३) सम्यग्-वचन, (४) सम्यक्-कर्मान्त, (५) सम्यग्-आजीव, (६) सम्यग्-व्यायाम, (७) सम्यक्-स्मृति, (८) सम्यक्-समाधि। महालि! यह मार्ग है, यह प्रतिपद् है, इन धर्मोंके साक्षात् करनेके लिये०।"

(३) (आत्मवाद नहीं) मण्डिस्स कथा

"एक बार महालि! मैं **कौशाम्बी**में घो षि ता रा म में विहार करता था। तब दो प्रव्रजित (=साधु) **मंडिस्स** परिव्राजक, तथा दा रु पा त्रि क का शिष्य **जालिय**—जहाँ मैं था, वहाँ आये। आकर मेरे साथ....संमोदन कर...एक ओर खळे हो गये। एक ओर खळे हुये उन दोनों प्रव्रजितोंने मुझसे कहा— 'आवुस! गौतम! क्या वही जीव है, वही शरीर है, अथवा जीव दूसरा है, शरीर दूसरा है?' 'तो आवुसो! सुनो, अच्छी तरह मनमें करो, कहता हूँ।' 'अच्छा आवुस!'—कह उन दोनों प्रव्रजितोंने मुझे उत्तर दिया। तब मैंने कहा—

(४) निर्वाण साक्षात्कार के उपाय

१—शील—'आवुसो! लोकमें तथागत उत्पन्न होता है०[1], इस प्रकार आवुसो! भिक्षु शील-सम्पन्न होता है।

२—समाधि—०[2] प्रथम-ध्यानको प्राप्त हो विहरता है। आवुसो! जो भिक्षु ऐसा जानता= ऐसा देखता है, उसको क्या यह कहनेकी ज़रूरत है—'वही जीव है, वही शरीर है, या जीव दूसरा है, शरीर दूसरा है'? आवुसो! जो भिक्षु ऐसा जानता है, ऐसा देखता है, क्या उसको यह कहनेकी ज़रूरत है—वही जीव है ०? मैं आवुसो! इसे ऐसा जानता हूँ०, तो भी मैं नहीं कहता—वही जीव है, वही शरीर है, या ०'। [2]० द्वितीय ध्यानको प्राप्त हो विहरता है। ० तृतीय ध्यानको प्राप्त हो विहरता है। ०[2] चतुर्थ-ध्यानको० प्राप्त हो विहरता है। आवुसो! जो भिक्षु ऐसा जानता=ऐसा देखता है ०।

३—प्रज्ञा—"ज्ञान= दर्शन केलिये चित्तको लगाता=झुकाता है ०। आवुसो! जो भिक्षु ऐसा जानता=ऐसा देखता है ०।०[3] और अब यहाँ करनेके लिये नहीं रहा—जानता है। आवुसो! जो भिक्षु ऐसा जानता=ऐसा देखता है ०। क्या उसको यह कहने की जरूरत है—'वही जीव है, वही शरीर है, या जीव दूसरा है, शरीर दूसरा है?' आवुसो! जो-० ऐसा देखता है, उसे यह कहनेकी जरूरत नहीं है— ०। मैं आवुसो! ऐसे जानता हूँ ०, तो भी मैं नहीं कहता—'वही जीव है, वही शरीर है, अथवा जीव दूसरा है, शरीर दूसरा है।"

भगवान्ने यह कहा—**ओट्ठद्ध** लिच्छविने सन्तुष्ट हो, भगवान्के भाषणको अनुमोदित किया।

---

[1] देखो पृष्ठ २३-२८। [2] पृष्ठ २९। [3] पृष्ठ ३२।

७—जालिय-सुत्त (१।७)

जीव और शरीरका भेद-अभेद कथन अयुक्त——(१) शीलसे; (२) समाधिसे; (३) प्रज्ञासे।

ऐसा मैंने सुना——एक समय भगवान् **कौशाम्बी** के घोषितराममें विहार करते थे। उस समय माण्डिस्स परिव्राजक और दारुपात्रिकके शिष्य **जालिय**—दो साधु जहाँ भगवान् थे वहाँ गये। जाकर उन्होंने भगवान्से कुशल-समाचार पूछा। कुशल-समाचार पूछ लेनेके बाद वे एक ओर खळे हो गये। एक ओर खळे उन साधुओं ने भगवान्से कहा—"आवुस! गौतम! वही जीव है, वही शरीर है या जीव दूसरा और शरीर दूसरा है?"

जीव और शरीरका भेद-अभेद कथन व्यर्थ

(भगवान्ने कहा—) "आवुसो! आप लोग मन लगाकर सुनें, मैं कहता हूँ"।

"हाँ आवुस" कह उन साधुओंने भगवान्को उत्तर दिया।

१——**शीलसे** भगवान् बोले——"आवुसो! जब संसारमें तथागत अर्हत्, सम्यक् सम्बुद्ध०[1] उत्पन्न होते हैं। आवुसो! भिक्षु इस प्रकार शील-सम्पन्न होता है।

२——**समाधिसे** ०[2]प्रथम ध्यानको प्राप्त हो कर विहार करता है। आवुसो! जब वह भिक्षु इस तरह जानता है, इस तरह देखता है, तो क्या उसके लिये यह कहना ठीक है 'वही जीव है, वही शरीर है; या जीव दूसरा और शरीर दूसरा है?' आवुसो! जो वह भिक्षु ऐसा जानता है, ऐसा देखता है, क्या उसका यह कहना ठीक ही है 'वही जीव ०।' "आवुसो! मैं तो इसे इस तरह जानता हूँ, देखता हूँ, अतः मैं नहीं कहता हूँ——वही जीव ०।०[2] द्वितीय ध्यान ०।०[2] तृतीय ध्यान ०।०[2] चतुर्थ ध्यानको प्राप्त हो विहार करता है। वह आवुसो! भिक्षु ऐसा जानता है, ऐसा देखता है; क्या उसका ऐसा कहना ठीक है——'वही जीव ०? आवुसो! जो वह भिक्षु ऐसा जानता है, देखता है, उसका ऐसा कहना ठीक नहीं है 'वह जीव ०।'

३——**प्रज्ञासे** "आवुसो! मैं तो इसे इस तरह जानता हूँ, देखता हूँ, अतः मैं नहीं कहता हूँ——'वही जीव ०—ज्ञानप्राप्तिके लिये चित्तको लगाता है। आवुसो! जो भिक्षु ऐसा जानता है, ऐसा देखता है, उसका ऐसा कहना क्या ठीक है, 'वही जीव'? आवुसो! जो वह भिक्षु ऐसा जानता है, देखता है, उसका ऐसा कहना ठीक नही है—'वही जीव ०।"

"आवुसो! मैं तो इसे इस तरह जानता हूँ, इस तरह देखता हूँ; अतः मैं नहीं कहता हूँ—'वही जीव ०'। आवुसो! जो भिक्षु ऐसा जानता है, ऐसा देखता है, क्या उसका ऐसा कहना ठीक है, 'वही

[1]**देखो पृष्ठ २३–२८।** [2]**देखो पृष्ठ २९।**

जीव ०?' आवुसो ! जो वह भिक्षु ऐसा जानता है, ऐसा देखता है, उसका ऐसा कहना ठीक नहीं, 'वही जीव ०।

"आवुसो ! मैं तो इसे इस तरह जानता हूँ, इस तरह देखता हूँ, अतः मैं नहीं कहता हूँ 'वही' जीव०।"

भगवान्‌ने यह कहा। उन साधुओंने प्रसन्नता-पूर्वक भगवान्‌के कथनका अभिनन्दन किया।

८—कस्सप-सीहनाद-सुत्त (१।८)

१—सभी तपस्यायें निन्द्य नहीं। २—सच्ची धर्मचर्या में सहमत। ३—झूठी शारीरिक तपस्यायें। ४—सच्ची तपस्यायें—(१) शील-सम्पत्ति, (२) चित्त-सम्पत्ति, (३) प्रज्ञा-सम्पत्ति।

ऐसा मैंने सुना—एक समय भगवान् **उजुञ्ञाके** पास **कण्णकत्थल** मिगदायमें विहार करते थे। तब **अचेल** (=नंगा) **काश्यप** जहाँ भगवान् थे वहाँ गया। जाकर उसने भगवान्से कुशल-समाचार पूछा। कुशल-समाचार पूछ वह एक ओर खळा हो गया। एक ओर खळा हो, अचेल काश्यपने भगवान्से कहा—'हे गौतम! ऐसा सुना है कि श्रमण गौतम सभी तपश्चरणोंकी निन्दा करता है, सभी तपश्चरणोंकी कठोरताको बिलकुल बुरा और अनुचित बतलाता है। जो ऐसा कहते हैं क्या वह आपके प्रति ठीक कहनेवाले हैं? आपको असत्य = अभूतसे निन्दा तो नहीं करते? धर्मके अनुकूल तो कहते हैं? वैसा कहनेसे किसी धर्मानुकूल वादका परित्याग या निन्दा तो नहीं होती? हम आप गौतमकी निन्दा नहीं चाहते।"

१—सभी तपस्यायें निन्द्य नहीं

"काश्यप! जो लोग ऐसा कहते हैं—'श्रमण गौतम सभी तपश्चरणोंकी निन्दा करता है, सभी तपश्चरणोंकी कठोरताको बिल्कुल बुरा बतलाता है'—ऐसा कहनेवाले मेरे बारेमें ठीकसे कहनेवाले नहीं हैं, मेरी झूठी निंदा करते हैं। काश्यप! मैं किन्हीं किन्हीं कठोर जीवनवाले तपस्वियोंको विशुद्ध और अलौकिक दिव्यचक्षुसे ०काया छोळ मरनेके बाद नरकमें उत्पन्न और दुर्गतिको प्राप्त देखता हूँ। काश्यप! मैं किन्हीं किन्हीं कठोर जीवनवाले तपस्वियोंको मरनके बाद स्वर्गलोकमें उत्पन्न और सुगतिको प्राप्त देखता हूँ। किन्हीं किन्हीं कम कठोर जीवनवाले तपस्वियोंको मरनेके बाद नरकमें उत्पन्न और दुर्गतिको प्राप्त देखता हूँ। काश्यप! किन्हीं किन्हीं ० को ० मरनेके बाद स्वर्गलोकमें उत्पन्न सुगतिको प्राप्त देखता हूँ।

"जब मैं काश्यप! इन तपस्वियोंकी इस प्रकारकी अगति, गति, च्युति (=मृत्यु) और उत्पत्तिको ठीकसे जानता हूँ। फिर मैं कैसे सब तपश्चरणोंकी निन्दा करूँगा? सभी कठोर जीवनवाले तपस्वियोंकी बिल्कुल निन्दा, शिकायत करूँगा?

२—सच्ची धर्मचर्यामें सहमत

"काश्यप! कोई कोई श्रमण और ब्राह्मण पण्डित, निपुण, शास्त्रार्थमें विजय पाये हुये (और) बालकी खाल उतारनेवाली अपनी बुद्धिसे दूसरोंके मतोंको छिन्न-भिन्न करते-से दीखते हैं। वह भी किन्हीं किन्हीं बातोंमें मुझसे सहमत हैं; किन्हीं किन्हीं बातोंमें सहमत नहीं। कुछ बातें जिन्हें वे ठीक कहते हैं, उन्हें हम भी ठीक कहते हैं। कुछ बातें जिन्हें वे ठीक नहीं कहते, हम भी उन्हें ठीक नहीं कहते।

(किन्तु) कुछ बातें जिन्हें वे ठीक नहीं कहते, उन्हें हम ठीक कहते हैं। कुछ बातें जिन्हें हम ठीक कहते हैं, उन्हें वे ठीक कहते हैं; कुछ बातें जिन्हें हम ठीक नहीं कहते, उन्हें वे भी ठीक नहीं कहते; कुछ बातें जिन्हें हम नहीं—ठीक कहते, उन्हें वे ठीक कहते हैं; जिन्हें हम ठीक कहते हैं, उन्हें वे ठीक नहीं कहते। उनके पास जाकर मैं ऐसा कहता हूँ—'आवुसो! जिन बातोंमें हम लोग सहमत नहीं हैं, उन बातोंको अभी जाने दें। जिन बातोंमें हम लोग सहमत हैं, उन्हें ही बुद्धिमान् लोग अच्छी तरहसे (एक) शास्तासे (दूसरे) शास्ताको; एक संघसे (दूसरे) संघको पूछें, चर्चा करें, विचार करें—क्या जो बातें बुरी बुरी मानी गईं, सदोष सदोष मानी गईं, असेवनीय असेवनीय मानी गईं, निकृष्ट निकृष्ट मानी गईं; काली काली मानी गई हैं, उन बातोंको किसने बिलकुल छोळ दिया है; श्रमण गौतमने या दूसरे आप गणाचार्योंने? काश्यप! जब बुद्धिमान् ० विचारते हैं—फिर काश्यप! बुद्धिमान् ० विचार करके मेरी ही अधिक प्रशंसा करेंगे।

"और फिर काश्यप! बुद्धिमान् लोग ० विचारते हैं—जो ये बातें अच्छी अच्छी मानी गईं, निर्दोष निर्दोष मानी गई, सेवनीय सेवनीय मानी गईं, श्रेष्ठ श्रेष्ठ मानी गईं, शुक्ल शुक्ल मानी गई हैं; उन बातोंका कौन ठीकसे पालन करता है, श्रमण गौतम या दूसरे आप गणाचार्य? ०। ० काश्यप! बुद्धिमान् ० विचार करके मेरी ही अधिक प्रशंसा करेंगे।

"और फिर काश्यप! बुद्धिमान् ० विचारते हैं—०जो बातें बुरी ० हैं, उन्हें बिल्कुल छोळ दिया है, श्रमण गौतमकी शिष्य-मंडलीने या दूसरे आप गणाचार्योंकी शिष्य-मंडलीने? ० फिर काश्यप! बुद्धिमान् ० विचार करके हमारी ही अधिक प्रशंसा करेंगे।

"और फिर काश्यप! बुद्धिमान् ० विचारते हैं—जो ये बातें अच्छी अच्छी मानी गई हैं, कौन इन बातोंका ठीकसे पालन करता है? श्रमण गौतमकी शिष्य-मंडली या दूसरे आप गणाचार्योंकी शिष्य-मंडली? ० फिर काश्यप! बुद्धिमान् ० विचार करके हमारी ही अधिक प्रशंसा करेंगे।

"काश्यप! यह मार्ग (=उपाय) है, यह प्रतिपद् है, जिसके द्वारा (कोई भी) स्वयं जान लेगा, स्वयं देख लेगा कि श्रमण गौतम समयोचित बात बोलनेवाला, सच्ची बात बोलनेवाला, सार्थक बात बोलनेवाला, धर्मकी बात बोलनेवाला (और) विनयकी बात बोलनेवाला (है)। काश्यप! वह कौन-सा मार्ग है, कौन-सी प्रतिपदा है, जिससे (पुरुष) स्वयं जान लेगा (और) स्वयं देख लेगा कि, श्रमण गौतम समयोचित ०? वे ये हैं—सम्यग्-दृष्टि (=ठीक सिद्धान्त), ठीक संकल्प, ठीक वचन, ठीक कारबार, ठीक व्यवसाय, ठीक उद्योग (=व्यायाम), ठीक स्मृति, और ठीक समाधि।

३—झूठी शारीरिक तपस्यायें

"काश्यप! यही मार्ग है, यही प्रतिपद् है जिससे स्वयं ०।

ऐसा कहनेपर अचेल काश्यपने भगवान्‌से कहा—"आवुस गौतम! उन श्रमणों और ब्राह्मणोंकी ये **तपस्यायें** उनके श्रमण और ब्राह्मण-भाव-के द्योतक हैं, जैसे कि—नंगा रहना, सभी आचार विचारोंको छोळ देना, हथचट्टा व्रत, बुलाई भिक्षाका त्याग, ठहरिये-कहकर दी गई भिक्षाका त्याग, अपने लिये लाई भिक्षाका त्याग, अपने लिये पकाये भोजनका त्याग, हांळीके भिक्षाका त्याग, ओखलके मुँहसे निकाली भिक्षाका त्याग, पटरा, दण्ड या मुँहसे निकाली मूसलके बीचसे लाई भिक्षाका त्याग, निमन्त्रणका त्याग, दो भोजन करने वालोंके बीचसे लाई ०, गर्भिणी स्त्री द्वारा लाई ०, दूध पिलाती स्त्री द्वारा लाई ०, अन्य पुरुषके पास गई स्त्री द्वारा लाई ०, चन्दावाली भिक्षाका त्याग, वहाँसे भी नहीं (लेता) जहाँ कोई कुत्ता खळा हो, वहाँ से भी नहीं जहाँ मक्खियाँ भन-भन कर रही हों; न माँस, न मछली, न सुरा, न कच्ची शराब, न

चावलकी शराब (=तुषोदक) ग्रहण करता है। वह एक ही घरसे जो भिक्षा मिलती है लेकर लौट जाता, एक ही कौर खानेवाला होता है; दो घरसे जो भिक्षा०, दो ही कौर खाने वाला; सात घर० सात कौर०। वह एक ही कलछी खाकर रहता है, दो०, सात०। वह एक एक दिन बीच दे करके भोजन करता है, दो दो दिन०, सात सात दिन,०। इस तरह वह आधे आधे महीने पर भोजन करते हुये विहार करता है।

"आवुस गौतम! कुछ श्रमण और ब्राह्मणोंके ये भी तपस्या करनेके तरीके हैं, जिनसे उनका श्रमण-ब्राह्मण-भाव द्योतित होता है। वह साग मात्र खाता है० केवल सामा खाकर रहता है या केवल नीवार (=तिन्नी) ०। चमळा खाकर रहता है, सेवाल०, कण०, काँजी०, खली०, तृण०, गोबर०, या जंगलके फल-फूल, या वृक्षसे स्वयं गिरे फलको खाकर रहता है।

"आवुस गौतम! कुछ श्रमणों और ब्राह्मणोंके ये भी०। वह सनका बना कपळा धारण करता है, श्मशानके वस्त्रोंको धारण०, कफन०, फेंके चियळे०, वल्कल०, मृगचर्म०, मृगके चमळेको बीचमें छेद करके उसमें शिर डालकर धारण०, कुशके बनाये वस्त्र०, चटाई०, मनुष्यके केशके कम्बल०, घोळेके वालके कम्वल०, उल्लूके पंख०। शिर और दाढ़ीके बालोंको नोचनेवाला होता है, शिर और दाढ़ीके बालोंको नुचवाता है। आसनको छोळकर सदा ठळेसरी रहता है। उकळूँ बैठनेवाला (हो) सदा उकळूँ ही बैठता है। काँटोपर (ही) बैठता या सोता है। तख्तेपर सोता है। जमीन-पर सोता है। एक ही करवटसे सोता है। शरीरपर धूल और गर्दा लपेटे रहता है। केवल खुली ही जगहपर रहता है। जहाँ पाता है वहीं बैठ जाता है। मैला खाता है। केवल गरम पानी पीता है। सुबह-दोपहर और शाम तीन बार जल शयन-करता है।"

४—सच्ची तपस्यायें

"काश्यप! जो नंगा रहता है, आचार-विचारको छोळ देता है०। वह शील-सम्पत्ति, चित्त-सम्पत्ति और प्रज्ञासम्पत्तिकी भावना नहीं कर पाता और वह उनका साक्षात्कार भी नहीं कर पाता। अतः वह श्रामण्य और ब्राह्मण्यसे बिल्कुल दूर है। काश्यप! जब भिक्षु वैर और द्रोहसे रहित होकर मैत्री-भावना करता है। चित्त-मलोंके क्षय होनसे निर्मल चित्तकी मुक्ति और प्रज्ञाकी मुक्तिको इसी जन्ममें स्वयं जान कर साक्षात् कर प्राप्तकर विहार करता है। काश्यप! (यथार्थमें) वही भिक्षु श्रमण या ब्राह्मण कहलाता है।

"काश्यप! साग मात्र खानेवाला० है। वह शील-सम्पत्ति, चित्त-सम्पत्ति और प्रज्ञा-सम्पत्ति-की भावना नहीं कर पाता०।

"काश्यप! जो सनका बना कपळा धारण करता है०।"

ऐसा कहनेपर अचेलक काश्यपने भगवान्‌से यह कहा—"हे गौतम! श्रामण्य दुष्कर है, ब्राह्मण्य दुष्कर है।"

"काश्यप! संसारमें लोग ऐसा कहते हैं—श्रामण्य दुष्कर है, ब्राह्मण्य दुष्कर है। काश्यप! जो नंगे रहते हैं, आचार विचारको छोळ देते हैं०। इतने मात्रसे श्रामण्य और ब्राह्मण्य दुष्कर, सुदुष्कर होता तो श्रामण्य ब्राह्मण्यको दुष्कर और सुदुष्कर कहना उचित नहीं।

"काश्यप! चूंकि इस प्रकारकी तपश्चर्य्यासे बिल्कुल भिन्न होने हीके कारण श्रामण्य और ब्राह्मण्य दुष्कर है, इसी लिये यह कहना ठीक है—'श्रामण्य दुष्कर है, ब्राह्मण्य दुष्कर है'। काश्यप! जब भिक्षु०[1] वैर-रहित०। काश्यप! (यथार्थमें) यही भिक्षु०।

---

[1] पृष्ठ ९१ (मैत्री भावना)।

"काश्यप ! कच्चा साग खानेवाला होता है ०।

"काश्यप ! सनका बना कपळा धारण करता है ०।

० अचेल काश्यपने ० कहा—"हे गौतम ! श्रामण्य दुर्ज्ञेय है, ब्राह्मण्य दुर्ज्ञेय है।"

"० नंगे रहते हैं ०। काश्यप ! यदि इस प्रकारकी क़ठोर तपस्या करनेसे ०। यदि इतने मात्रसे ० दुर्ज्ञेय ० होता। इन्हें तो ० पनिहारी तक भी जान सकती है। ०।

"काश्यप ! साग मात्र खानेवाला होता है ०।

"काश्यप ! सनका बना वस्त्र धारण करता है ०।"

ऐसा कहनेपर अचेल काश्यपने भगवान्‌से कहा—"हे गौतम ! वह शीलसम्पत्ति कौनसी है, वह चित्तसम्पत्ति कौनसी है, वह प्रज्ञासम्पत्ति कौनसी है ?"

(१) शील-सम्पत्ति

"काश्यप ! जब संसारमें तथागत अर्हत् सम्यक् सम्बुद्ध ० उत्पन्न होते हैं०[1]। आचार-नियमों (=शिक्षापदों)को मानता है और उनके अनुकूल चलता है, काया और वचनसे अच्छे कर्म करनेमें लगा रहता है। सदाचारी, परिशुद्ध, अपनी इन्द्रियोंको वशमें रखनेवाला, स्मृतिमान्, सावधान और संतुष्ट (रहता है)। काश्यप ! भिक्षु कैसे शीलसम्पन्न होता है ? काश्यप ! भिक्षु हिंसाको छोळ हिंसासे विरत रहता है, दण्ड और शस्त्रको छोळ देता है। संकोची, दयालु, और सभी जीवोंकी ओर स्नेह दिखाते हुए विहार करता है। यह भी उसकी शीलसम्पत्ति होती है। ०[2]। जैसे, कितने ही श्रमण और ब्राह्मण श्रद्धासे दिये भोजनको खाकर इस प्रकारकी बुरी जीविकासे जीवन व्यतीत करते हैं, जैसे—शान्ति-कर्म (=मिन्नत मानना), प्रणिधि-कर्म (=मिन्नत पूरा करना) ०[3] वैद्य-कर्म। इस या इस प्रकारकी दूसरी बुरी जीविकाओंसे विरत रहता है। यह भी उसकी शीलसम्पत्ति है।

"काश्यप ! वह भिक्षु इस प्रकार शीलसम्पन्न हो, शीलसंवरके कारण कहींसे भय नहीं देखता। जैसे काश्यप ! मूर्धाभिषिक्त क्षत्रिय राजा, शत्रुओंको बिल्कुल दमन करनेके बाद कहीं भी शत्रुओंसे भय नहीं देखता। काश्यप ! इसी प्रकार शीलसंवरके कारण भिक्षु कहींसे भय नहीं खाता है, जो यह ०। वह इस आर्य शीलस्कन्ध (=शुद्ध शीलपुंज)से युक्त हो अपने भीतर निर्दोष सुखको अनुभव करता है। काश्यप ! भिक्षु इस प्रकार शीलसम्पन्न होता है। काश्यप ! यह शीलसम्पत्ति है।

(२) चित्त-सम्पत्ति

"०[4]प्रथम ध्यानको प्राप्तकर विहार करता है। यह भी उसकी चित्त-सम्पत्ति है। ० दूसरे ध्यान। ० तीसरे ध्यान, ०। ० चौथे ध्यानको प्राप्तकर विहार करता है। यह भी उसकी चित्त-सम्पत्ति है।

(३) प्रज्ञा-सम्पत्ति

"वह इस प्रकार समाहित एकाग्रचित्त हो ०[5] ज्ञा न-द र्श न की ओर अपने चित्तको लगाता है। ०[5] यह उसकी प्रज्ञा-सम्पत्ति होती है ० आवागमनके किसी कारणको नहीं देखता। यह भी उसकी प्रज्ञा-सम्पत्ति होती है। काश्यप ! यही प्रज्ञा-सम्पत्ति है।

"काश्यप ! इस शील-सम्पत्ति, चित्त-सम्पत्ति और प्रज्ञा-सम्पत्तिसे अच्छी और सुन्दर दूसरी शील-सम्पत्ति, चित्त-सम्पत्ति और प्रज्ञा-सम्पत्ति नहीं है।

---

[1] पृष्ठ २३-२४। [2] पृष्ठ २४। [3] पृष्ठ २४-२७। [4] पृष्ठ २९। [5] पृष्ठ ३०।

"काश्यप ! कोई-कोई श्रमण और ब्राह्मण हैं जो शीलवादी हैं। वे अनेक तरहसे शील (=सदाचार)की प्रशंसा करते हैं। काश्यप ! जहाँ तक सबसे श्रेष्ठ परमशील (का संबंध) है वहाँ तक मैं किसी दूसरेको अपने बराबर नहीं देखता, अधिकका तो कहना ही क्या ! अतः वहाँ इस शीलके विषयमें मैं ही श्रेष्ठ हूँ।

"काश्यप ! कोई कोई श्रमण ब्राह्मण हैं जो तपस्याको बुरा समझते हैं। वे अनेक प्रकारसे तपस्याको बुरा माननेकी ही तारीफ करते हैं। काश्यप ! जहाँ तक सबसे श्रेष्ठ परम तपस्याको बुरा मानना है, वहाँ मैं किसी दूसरेको अपने बराबर नहीं देखता ०।

"काश्यप ! कोई कोई ० प्रज्ञावादी (=ज्ञान ही मुक्तिका मार्ग है ऐसा समझनेवाले) हैं। वे अनेक प्रकारसे प्रज्ञाहीकी प्रशंसा करते हैं। काश्यप ! जहाँ तक ० प्रज्ञा है वहाँ तक ०। अतः ० मैं ही श्रेष्ठ हूँ।

"काश्यप ! कोई कोई ० विमुक्तिवादी हैं। वे अनेक प्रकारसे विमुक्तिहीकी प्रशंसा ०। काश्यप ! जहाँ तक ० विमुक्ति है वहाँ तक ०। अतः ० मैं ही श्रेष्ठ हूँ।

५—बुद्धका सिंहनाद

"काश्यप ! हो सकता है दूसरे मतवाले परिव्राजक ऐसा कहें—'श्रमण गौतम सिंहनाद करता है। (किन्तु) उस सिंहनादको वह सूने घरमें करता है, परिषद्में नहीं'। उन्हें कहना चाहिये—'ऐसी बात नहीं है। श्रमण गौतम सिंहनाद करता है, और परिषद्में करता है।' काश्यप ! हो सकता है, दूसरे मतवाले परिव्राजक ऐसा कहें—'श्रमण गौतम सिंहनाद करता है, परिषद्में (भी) करता है, किन्तु निर्भय होकर नहीं करता'। उन्हें कहना चाहिये—'ऐसी बात नहीं है। श्रमण गौतम सिंहनाद ० और निर्भय होकर करता है। ० उन्हें ऐसा कहना चाहिये।—काश्यप ! हो सकता है ० ऐसा कहें—'श्रमण गौतम सिंहनाद ० किन्तु उसे कोई प्रश्न नहीं पूछता।' ० उसे प्रश्न भी पूछते हैं। ० ऐसी बात भी नहीं है कि प्रश्नोंके पूछे जानेपर वह उनका उत्तर नहीं दे सकता है। प्रश्नोंके पूछे जानेपर वह उनका (ठीक ठीक) उत्तर भी दे देता है। ० ऐसी बात भी नहीं है कि प्रश्नोंके उत्तर नहीं जँचते हों, प्रश्नोंके उत्तर जँचते भी हैं। ० ऐसी बात भी नहीं कि (उसका उत्तर) सुननेके योग्य नहीं होता है, वह सुननेके योग्य होता है। ० ऐसी बात भी नहीं कि उनके सुननेवाले प्रसन्न नहीं होते हैं, प्रसन्न होते हैं। ० ऐसी बात भी नहीं कि वे प्रसन्नताको नहीं प्रगट करते हैं, वे प्रसन्नताको प्रकट करते हैं। ० ऐसी बात भी नहीं है कि (उसका) वह (उत्तर) सत्यका दिखानेवाला नहीं होता, वह सत्यका दिखानेवाला होता है।

"० उन्हें कहना चाहिये—'ऐसी बात नहीं है। श्रमण गौतम सिंहनाद करता है, परिषद्में ०, निर्भय ०, उसे लोग प्रश्न पूछते हैं, पूछे हुए प्रश्नोंका उत्तर देता है, वह उत्तर चित्तको जँचता है, सुननेके योग्य होता है, सुननेवाले प्रसन्न हो जाते हैं, प्रसन्नताको वे प्रगट करते हैं, वह उत्तर सत्यको दिखानेवाला होता है, वे (सत्य को) प्राप्त करते हैं। काश्यप ! उन्हें ऐसा कहना चाहिये।

"काश्यप ! एक समय मैं रा ज गृ ह में **गृध्रकूट** पर्वतपर विहरता था। वहाँ मुझे **न्य ग्रो ध**[1] तपब्रह्मचारीने प्रश्न पूछा। प्रश्नका उत्तर मैंने दे दिया। मेरे उत्तर देनेपर वह अत्यन्त संतुष्ट हुआ।"

"भला, भगवान्के धर्मको सुनकर कौन अत्यन्त संतुष्ट नहीं होगा ! भन्ते ! मैं आपके धर्मको सुनकर अत्यन्त संतुष्ट हूँ। भन्ते ! आपने खूब कहा है, आपने खूब कहा है। भन्ते ! जैसे उलटे हुएको सीधा कर दे, ढकेको खोल दे, भटके हुएको मार्ग दिखा दे, अन्धकारमें तेलका दीपक

---

[1] **मिलाओ उदुम्बरिक-सीहनाद-सुत्त २५ (पृष्ठ २२७)।**

रख दे, जिसमें कि आँखवाले रूप देख लें; इसी प्रकार भगवान्‌ने अनेक प्रकारसे धर्मको प्रकाशित किया। भन्ते! यह मैं आपकी शरण जाता हूँ, धर्मकी और भिक्षुसंघकी भी। भगवान्‌के पाससे मुझे प्रव्रज्या मिले। उपसम्पदा मिले।'

"काश्यप! जो दूसरे मतके परिव्राजक इस (मेरे) धर्ममें प्रव्रज्या और उपसम्पदा चाहते हैं, वह चार महींने परिवास (=परीक्षार्थ वास) करते हैं। चार महीनोंके बीतनेपर (यदि) वे (उससे) संतुष्ट रहते हैं, तो भिक्षु प्रव्रज्या देते हैं, और भिक्षु-भावके लिये उपसम्पदा देते हैं। अभी तो मैं केवल इतनाही जानता हूँ कि तुम कोई मनुष्य हो (अभी तो तुमसे परिचयही हुआ है)।"

"भन्ते! यदि दूसरे मतवाले परिव्राजक, जब इस धर्ममें प्रव्रज्या और उपसम्पदा चाहते हैं, तो (भिक्षु उन्हें) चार महीनोंके लिये परिवास देते हैं, चार महीनोंके बाद ०। (तो) मैं चार साल तक परिवास करूँगा, चार सालके बीतनेपर यदि भिक्षु लोग मुझसे प्रसन्न हों, तो मुझे प्रव्रज्या और उपसम्पदा देंगे।"

अचेल काश्यपने भगवान्‌के पास प्रव्रज्या पाई, उपसम्पदा पाई। उपसम्पदा पानेके बाद आयुष्मान् काश्यप एकान्तमें प्रमादरहित, उद्योगयुक्त, आत्मनिग्रही हो विहरते थोळेही समयमें जिसके लिये कुलपुत्र घरसे बेघर हो साधु होते हैं, उस अनुपम ब्रह्मचर्यके छोर (=निर्वाण)को इसी जन्ममें स्वयं जानकर साक्षात् कर, प्राप्त कर विहार करने लगे। "आवागमन छूट गया, ब्रह्मचर्य पूरा हो गया, जो करना था सो कर लिया, और यहाँ कुछ करनेको (शेष) नहीं रहा"—जान लिया। आयुष्मान् काश्यप अर्हतोंमेंसे एक हुये।[1]

---

[1] **"इस सूत्रका दूसरा नाम महासीहनाद भी है।"**

९—पोट्ठपाद-सुत्त (१।९)

१—व्यर्थकी कथायें। २—संज्ञा निरोध संप्रज्ञात समापत्ति शिक्षासे—(१) शील; (२) समाधि। ३—संज्ञा और आत्मा—(१) अव्याकृत वस्तुयें; ; (२) आत्मवाद; (३) तीन प्रकारके शरीर; (४) वर्तमान शरीर ही सत्य।

ऐसा मैंने सुना—एक समय भगवान् श्रावस्तीमें अ ना थ पिं डि क के आराम जेतवनमें विहार करते थे।

१—व्यर्थकी कथायें

तब भगवान् पूर्वाह्ण समय पहिनकर पात्र-चीवर ले, श्रावस्तीमें भिक्षाके लिये प्रविष्ट हुए। तब भगवान्‌को यह हुआ—'श्रावस्तीमें भिक्षाटनके लिये बहुत सबेरा है, क्यों न मैं स म य प्र वा द क (=भिन्न भिन्न मतोंके वादका स्थान) ए क शा ल कं (=एक शालावाले) मल्लिका (कोसलेश्वर-महिषी)के आराम ति न्दु का ची र[1]में, जहाँ पोट्ठपाद परिब्राजक है, वहाँ चलूँ।' तब भगवान् जहाँ ० तिन्दुकाचीर था, वहाँ गये। उस समय पो ट्ठ (=प्रोष्ठ)पा द परिब्राजक, राज-कथा, चोर-कथा, महामात्य-कथा, सेना-कथा, भय-कथा, युद्ध-कथा, अन्न-कथा, पान-कथा, वस्त्र-कथा, शयन-कथा, गन्ध-कथा, माला-कथा, ज्ञाति(=कुल)-कथा, यान(=युद्ध-यात्रा)-कथा, ग्राम-कथा, निगम-कथा, नगर-कथा, जन-पद-कथा, स्त्री-कथा, शूर-कथा, विशिखा(=चौरस्ता)-कथा, कुम्भ-स्थान(=पनघट)-कथा, पूर्व-प्रेत (=पहिले मरोंकी)-कथा, नानात्व-कथा, लोक-आख्यायिका, समुद्र-आख्यायिका, इति-भवाभव (=ऐसा हुआ, ऐसा नहीं हुआ)-कथा—आदि निरर्थक कथायें कहता, नाद करता, शोर मचाता, बळी भारी परिब्राजक-परिषद्‌के साथ बैठा था। पोट्ठ-पाद परिब्राजकने दूरहीसे भगवान्‌को आते देखा, देखकर अपनी परिषद्‌से कहा—"आप सब निःशब्द हों, आप सब शब्द मत करें। श्रमण गौतम आ रहे हैं। वह आयुष्मान् निःशब्द-प्रेमी, निः(=अल्प)-शब्द-प्रशंसक हैं। परिषद्‌को निःशब्द देख, सम्भव है (इधर) आयें।" ऐसा कहनेपर (वे) परिब्राजक चुप हो गये।

तब भगवान् जहाँ पोट्ठपाद परिब्राजक था, वहाँ गये। पोट्ठपाद परिब्राजकने भगवान्‌से कहा—

"आइये भन्ते! भगवान्! स्वागत है भन्ते! भगवान्! चिर (काल) के बाद भगवान् यहाँ आये, बैठिये भन्ते! भगवान् यह आसन बिछा है।"

भगवान् बिछे आसनपर बैठ गये। पोट्ठपाद परिब्राजक भी एक नीचा आसन लेकर, एक ओर बैठ गया। एक ओर बैठे हुए पोट्ठपाद परिब्राजकसे भगवान्‌ने कहा—

"पोट्ठ-पाद! किस कथामें इस समय बैठे थे, क्या कथा बीचमें चल रही थी?"

ऐसा कहनेपर पोट्ठपाद परिब्राजकने भगवान्‌से कहा—

---

[1] वर्तमान चीरेनाथ (सहेट-महेट)।

२–संज्ञा निरोध संप्रज्ञात समापत्ति शिक्षासे

"जाने दीजिये भन्ते ! इस कथाको, जिस कथामें हम इस समय बैठे थे। ऐसी कथा, भन्ते ! भगवान्‌को पीछे भी सुननेको दुर्लभ न होगी। पिछले दिनोंके पहिले भन्ते ! **कु तू ह ल शा ला** में जमा हुए, नाना तीर्थों (=पन्थों)के श्रमण-ब्राह्मणोंमें अभिसंज्ञा-निरोध (=एक समाधि) पर कथा चली—'भो ! अभिसंज्ञा-निरोध कैसे होता है ?' वहाँ किन्हींने कहा— 'बिना हेतु=बिना प्रत्यय ही पुरुषकी संज्ञा (=चेतना) उत्पन्न भी होती है, निरुद्ध भी होती है । वह उस समय संज्ञा-रहित (=अ-संज्ञी) होता है। इस प्रकार कोई कोई अभि-संज्ञा-निरोधका प्रचार करते हैं।' उससे दूसरेने कहा—'भो ! यह ऐसा नहीं हो सकता। संज्ञा पुरुषका आत्मा है। वह आता भी है, जाता भी है। जिस समय आता है, उस समय संज्ञा-वान् (=संज्ञी) होता है; जिस समय जाता है, उस समय संज्ञा-रहित (=अ-संज्ञी) होता है। इस प्रकार कोई कोई अभि-संज्ञा-निरोध बतलाते हैं।' उसे दूसरेने कहा—'भो ! यह ऐसा नहीं होगा। (कोई कोई) श्रमण ब्राह्मण महा-ऋद्धि-मान्=महा-अनुभाव-वान् हैं। वह इस पुरुषकी संज्ञाको (शरीरके भीतर) डालते भी हैं, निकालते भी हैं। जिस समय डालतेहैं, उस समय संज्ञी होता है। जिस समय निकालते हैं, अ-संज्ञी होता है। इस प्रकार कोई कोई अभि-संज्ञा-निरोध बतलाते हैं।' उसे दूसरेने कहा—'भो ! यह ऐसा न होगा । (कोई कोई) देवता-महा-ऋद्धि-मान्=महा-अनुभाव-वान् हैं। वह इस पुरुषकी संज्ञाको डालते भी हैं, निकालते भी हैं ०। इस प्रकार कोई कोई अभि-संज्ञा-निरोध बतलाते हैं।' तब मुझको भन्ते ! भगवान्‌के बारेमें ही स्मरण आया—'अहो ! अवश्य वह भगवान् सुगत हैं जो इन धर्मोंमें चतुर हैं । भगवान् अभि-संज्ञा-निरोधके प्रकृतिज्ञ (=स्वभावज्ञ) हैं।' कैसे भन्ते ! अभि-संज्ञा-निरोध होता है ?"

"पोट्ठ-पाद ! जो वह श्रमण-ब्राह्मण ऐसा कहते हैं—बिना हेतु=बिना प्रत्यय ही पुरुषकी संज्ञायें उत्पन्न होती हैं, निरुद्ध भी होती हैं। आदिको लेकर उन्होंने भूल की। सो किस लिये ? स-हेतु (=कारणसे)=स-प्रत्यय पोट्ठ-पाद-पुरुषकी संज्ञायें उत्पन्न होती हैं, निरुद्ध भी होती हैं । शिक्षासे कोई कोई संज्ञा उत्पन्न होती है, शिक्षासे कोई कोई संज्ञा निरुद्ध होती है।" "और शिक्षा क्या है ?"

(१) *शील-सम्पत्ति*

"पोट्ठ-पाद ! जब संसारमें तथागत, अर्हत्, सम्यक्-संबुद्ध, विद्या-आचरण-युक्त, सुगत, लोक-विद्, अनुपम पुरुष-चाबुक-सवार, देव-मनुष्य-उपदेशक, बुद्ध भगवान्, उत्पन्न होते हैं।०[१] (२५) हाथ-पैर काटने, मारने, बाँधने, लूटने और डाका डालनेसे विरत होती है। इस प्रकार पोट्ठ-पाद ! भिक्षु शील-सम्पन्न होता है। ०[२]। उसे इन पाँच नीवरणोंसे मुक्त हो, अपनेको देखनेसे प्रमोद उत्पन्न होता है। प्रमुदितको प्रीति उत्पन्न होती है । प्रीति-सहित चित्तवालेकी काया अ-चंचल (=प्रश्रब्ध) होती है। प्रश्रब्ध-कायवाला सुख-अनुभव करता है। सुखितका चित्त एकाग्र होता है ।

(२) *समाधि-सम्पत्ति*

वह काम-भोगोंसे पृथक् हो, बुरी बातोंसे पृथक् हो, वितर्क और विवेक सहित उत्पन्न प्रीतिसुख-वाले **प्रथम ध्यान**को प्राप्त हो विहरता है। उसकी जो वह पहिलेकी काम-संज्ञा है, वह निरुद्ध (=नष्ट) होती है। विवेकसे उत्पन्न प्रीति-सुःखवाली सूक्ष्म-सत्य-संज्ञा उस समय होती है, जिससे कि वह उस समय सूक्ष्म-सत्य-संज्ञी होता है। इस शिक्षासे भी कोई कोई संज्ञायें उत्पन्न होती हैं, कोई कोई निरुद्ध होती हैं।

"और भी पोट्ठपाद ! भिक्षु वितर्क विचारके उपशान्त होनेपर, भीतरके संप्रसाद (=प्रसन्नता)

---

[१] देखो पृष्ठ २४। [२] पृष्ठ २९।

=चित्तकी एकाग्रतासे युक्त, वितर्क-विचार-रहित समाधिसे उत्पन्न प्रीति-सुख-वाले **द्वितीय ध्यान**को, प्राप्त हो विहरताहै। उसकी जो वह पहिली विवेकसे उत्पन्न प्रीति-सुख-वाली सूक्ष्म-सत्य-संज्ञा थी, वह निरुद्ध होती है। समाधिसे उत्पन्न प्रीति-सुख-वाली सूक्ष्म-सत्य-संज्ञासे युक्त ही वह उस समय होता है। इस शिक्षासे भी कोई कोई संज्ञा उत्पन्न होती हैं, कोई कोई संज्ञा निरुद्ध होती है।०

"और फिर पोट्ठपाद! भिक्षु प्रीति और विराग द्वारा उपेक्षायुक्त हो ० **तृतीय ध्यान**को प्राप्त हो विहरता है। उसकी वह पहिलेकी समाधिसे उत्पन्न प्रीति-सुःख-वाली सूक्ष्म-सत्य-संज्ञा निरुद्ध होती है। उपेक्षा सुखवाली सूक्ष्म-सत्य-संज्ञा (ही) उस समय होती है। उपेक्षा-सुख-सत्य-संज्ञा ही वह उस समय होती है। ऐसी शिक्षासे भी कोई कोई संज्ञायें उत्पन्न होती हैं, कोई कोई संज्ञायें निरुद्ध होती हैं।०

"और फिर पोट्ठपाद! भिक्षु सुख और दुःखके विनाशसे **चतुर्थ-ध्यान**को प्राप्त हो विहरता है। उसकी वह जो पहलेकी उपेक्षा-सुख-वाली सूक्ष्म-सत्य-संज्ञा (थी, वह) निरुद्ध होती है। सुख और दुःखसे परे सूक्ष्म-सत्य-संज्ञा, उस समय होती है। उस समय सुख-दुःख-रहित सूक्ष्म-सत्य-संज्ञावाला ही वह होता है। ऐसी शिक्षासे भी कोई कोई संज्ञायें उत्पन्न होती हैं, कोई कोई संज्ञायें निरुद्ध होती हैं।०

"और फिर पोट्ठपाद! भिक्षु रूप-संज्ञाओंके सर्वथा छोळनेसे, प्रतिघ (=प्रतिहिंसा)-संज्ञाओंके अस्त हो जानसे, नानापन (=नानात्व)की संज्ञाओंको मनमें न करनेसे, 'अनन्त आकाश'—इस आकाश-आनन्त्य-आयतनको प्राप्त हो विहरता है। उसकी जो पहलेकी रूप-संज्ञा थी, वह निरुद्ध हो जाती है, आकाश-आनन्त्य-आयतनवाली सूक्ष्म-सत्य-संज्ञा उस समय होती है। आकाश-आनन्त्य-आयतन सूक्ष्म-सत्य-संज्ञावाला ही वह उस समय होता है। ऐसी शिक्षासे भी ०।

"और फिर पोट्ठपाद! भिक्षु आकाश-आनन्त्य-आयतनको सर्वथा अतिक्रमणकर 'विज्ञान अन्त है'—इस विज्ञान-आनन्त्य-आयतनको प्राप्त हो विहरता है। उसकी वह पहलेकी आकाश-आनन्त्य-आयतनवाली सूक्ष्म-सत्य-संज्ञा नष्ट होती है। विज्ञान-आनन्त्य-आयतनवाली सूक्ष्म-सत्य-संज्ञा उस समय होती है। विज्ञान-आनन्त्य-आयतन-सूक्ष्म-सत्य-संज्ञावाला ही (वह) उस समय होता है।०।

"और फिर पोट्ठपाद! भिक्षुविज्ञान-आनन्त्य-आयतनको सर्वथा अतिक्रमणकर 'कुछ नहीं है'—इस आकिंचन्य (=न-कुछ-पना)-आयतनको प्राप्त हो विहार करता है। उसकी वह पहलेकी विज्ञान-आनन्त्य-आयतनवाली सूक्ष्म-सत्य-संज्ञा नष्ट हो जाती है, आकिंचन्य-आयतनवाली सूक्ष्म-सत्य-संज्ञा ही ० वह आकिंचन्य-आयतन-सूक्ष्म-सत्य-संज्ञावाला ही उस समय होता है।०।

"चूंकि पोट्ठपाद! भिक्षु स्वक-संज्ञी (=अपनी ही संज्ञा ग्रहण करनेवाला) होता है, (इसलिये) वह वहाँसे वहाँ, वहाँसे वहाँ, क्रमशः श्रेष्ठसे श्रेष्ठतर संज्ञाको प्राप्त (=स्पर्श) करता है। श्रेष्ठतर-संज्ञा-पर स्थित हो, उसको यह होता है—'मेरा चिंतन करना बहुत बुरा (=पापीयस्) है, मेरा न चिंतन करना, बहुत अच्छा (=श्रेयस्) है। यदि मैं न चिंतन करूँ=न अभिसंस्करण करूँ, तो मेरी यह संज्ञायें नष्ट हो जावेंगी, और और भी विशाल (=उदार) संज्ञायें उत्पन्न होंगी। क्यों न मैं न चिंतन करूँ, न अभिसंस्करण करूँ।' उसके चिंतन न करने, अभिसंस्करण न करनेसे, वह संज्ञायें नष्ट हो जाती हैं, और दूसरी उदार संज्ञायें उत्पन्न नहीं होतीं। वह निरोधको प्राप्त करता है। इस प्रकार पोट्ठपाद! क्रमशः अभिसंज्ञा (=संज्ञाकी चेतना) निरोधवाली संप्रज्ञात-समापत्ति (=संपजान-समापत्ति) उत्पन्न होती है।

"तो क्या मानते हो, पोट्ठपाद! क्या तुमने इससे पूर्व इस प्रकारकी क्रमशः अभिसंज्ञा-निरोध संप्रज्ञात-समापत्ति सुनी थी?"

"नहीं, भन्ते! भगवान्के भाषण करनसे ही मैं इस प्रकार जानता हूँ।"

"चूंकि पोट्ठपाद! भिक्षु यहाँ स्वक-संज्ञी होता है। (इसलिये) वह वहाँसे वहाँ, वहाँसे वहाँ, क्रमशः संज्ञाके अग्र (=अन्तिम स्थान)को प्राप्त (=स्पर्श) करता है। संज्ञाके अग्रपर स्थित हो, उसको ऐसा होता है—'मेरा चिंतन करना बहुत बुरा है, चिंतन न करना मेरे लिये बहुत अच्छा है ०।' वह निरोध-को स्पर्श करता है। इस प्रकार पोट्ठपाद! क्रमशः अभिसंज्ञा-निरोध संप्रज्ञात-समाधि होती है। ऐसे पोट्ठपाद! ०"

३—संज्ञा और आत्मा

"भन्ते! भगवान् क्या एकहीको संज्ञा-अग्र (=संज्ञाओंमें सर्वश्रेष्ठ) बतलाते हैं, या पृथक् पृथक् भी संज्ञाग्रोंको (वैसा) कहते हैं?"

"पोट्ठपाद! मैं एक भी संज्ञाग्र बतलाता हूँ, और पृथक् पृथक् भी संज्ञाग्रोंको बतलाता हूँ। पोट्ठपाद! जैसे जैसे निरोधको प्राप्त करता है, वैसे वैसे संज्ञा-अग्रको मैं कहता हूँ। इस प्रकार पोट्ठपाद! मैं एक भी संज्ञाग्र बतलाता हूँ, और पृथक् पृथक् भी संज्ञाग्रोंको बतलाता हूँ।"

"भन्ते! संज्ञा पहिले उत्पन्न होती है, पीछे ज्ञान; या ज्ञान पहिले उत्पन्न होता है, पीछे संज्ञा; या संज्ञा और ज्ञान न-पूर्व न-पीछे उत्पन्न होते हैं?"

"पोट्ठपाद! संज्ञा पहले उत्पन्न होती है, पीछे ज्ञान। संज्ञाकी उत्पत्तिसे (ही) ज्ञानकी उत्पत्ति होती है। वह यह जानता है—इस कारण (=प्रत्यय)से ही यह मेरा ज्ञान उत्पन्न हुआ है। पोट्ठपाद! इस कारणसे यह जानना चाहिये कि, संज्ञा प्रथम उत्पन्न होती है, ज्ञान पीछे; संज्ञाकी उत्पत्तिसे ज्ञानकी उत्पत्ति होती है।"

"संज्ञा (ही) भन्ते! पुरुषका आत्मा है; या संज्ञा अलग है, आत्मा अलग?"

"किसको पोट्ठपाद! तू आत्मा समझता है?"

"भन्ते! मैं आत्माको स्थूल (=औदारिक) रूपी=चार महाभूतोंवाला,=कौर-कौर करके खानेवाला (=कवलिंकार-आहार) मानता हूँ।"

"तो पोट्ठपाद! तेरा आत्मा यदि स्थूल ०, रूपी = चतुर्महाभौतिक, कवलिंकार-आहार-वान् है; तो ऐसा होनेपर पोट्ठपाद! संज्ञा दूसरी ही होगी, आत्मा दूसरा ही होगा। सो इस कारणसे भी पोट्ठपाद! जानना चाहिये, कि संज्ञा दूसरी होगी, आत्मा दूसरा। पोट्ठपाद! रहने दो इसे—आत्मा स्थूल ० है, (इस)के होनेहीसे इस पुरुषकी दूसरी ही संज्ञायें उत्पन्न होती हैं, दूसरी ही संज्ञायें निरुद्ध होती हैं। सो इस कारणसे भी पोट्ठपाद! जानना चाहिये, संज्ञा दूसरी है, आत्मा दूसरा।"

"भन्ते! मैं आत्माको समझता हूँ—मनोमय सब अंग-प्रत्यंगवाला, इन्द्रियोंसे परिपूर्ण।"

"ऐसा होनेपर भी पोट्ठपाद! तेरी संज्ञा दूसरी होगी और आत्मा दूसरा। सो इस कारणसे भी पोट्ठपाद! जानना चाहिये, (कि) संज्ञा दूसरी होगी, आत्मा दूसरा। पोट्ठपाद! (जब) सर्वांग-प्रत्यंग युक्त इन्द्रियोंसे परिपूर्ण मनोमय आत्मा है, तभी इस पुरुषकी कोई कोई संज्ञायें उत्पन्न होती हैं, कोई कोई संज्ञायें निरुद्ध होती हैं। इस कारणसे भी पोट्ठपाद! ०।"

"भन्ते! मैं आत्माको रूप-रहित संज्ञा-मय समझता हूँ।"

"यदि पोट्ठपाद! तेरा आत्मा रूप-रहित संज्ञामय है, तो ऐसा होनेपर पोट्ठपाद! (इस) कारणसे जानना चाहिये, कि संज्ञा दूसरी होगी, और आत्मा दूसरा। पोट्ठपाद! जब रूप-रहित संज्ञा-मय आत्मा है, तभी इस पुरुषकी ०।"

"भन्ते! क्या मैं यह जान सकता हूँ—कि संज्ञा पुरुषकी आत्मा है, या संज्ञा दूसरी (चीज है,) आत्मा दूसरी (चीज)?"

"पोट्ठपाद! भिन्न दृष्टि(=धारणा)-वाले भिन्न क्षान्ति(=चाह)-वाले, भिन्न रुचिवाले, भिन्न-आयोग-वाले, भिन्न-आचार्य-रखनेवाले तेरे लिये—'संज्ञा पुरुषकी आत्मा है ०'—जानना मुश्किल है।"

"यदि भन्ते! भिन्न-दृष्टिवाले ० मेरे लिये—'संज्ञा पुरुषकी आत्मा है ०'—जानना मुश्किल है। तो फिर क्या भन्ते! 'लोक नित्य (=शाश्वत) है,' यही सच है, दूसरा (अनित्यताका विचार) निरर्थक (=मोघ) है?"

(१) अव्याकृत (=अनिर्वचनीय)

"पोट्ठपाद ! —'लोक नित्य है' यही सच है, और दूसरा (वाद) निरर्थक है—इसें मैंने अ-व्याकृत (=कथनका अ-विषय) कहा है।"

"क्या भन्ते ! —'लोक अ-शाश्वत (=अ-नित्य) हैं', यही सच और सब (वाद) निरर्थक हैं ?"

"पोट्ठपाद ! ० इसे भी मैंने अ-व्याकृत कहा है।"

"क्या भन्ते ! —'लोक अन्तवान् है' ० ?"

"पोट्ठपाद ! ० इसे भी मैंने अ-व्याकृत ०।"

"क्या भन्ते ! —'लोक-अन्-अन्त है ० ?"

"पोट्ठपाद ! ० इसे भी मैंने अव्याकृत ०।"

"० 'वही जीव है, वही शरीर है' ० ?"

"० इसे भी मैंने अव्याकृत कहा है।"

"० 'जीव दूसरा है, शरीर दूसरा है' ० ?"

"० अ-व्याकृत ०।"

"० 'मरनेके बाद तथागत फिर (पैदा) होता है ० ?"

"० अ-व्याकृत ०।"

"० 'मरनेके बाद फिर तथागत नहीं होता' ० ?"

"० अ-व्याकृत ०।"

"० '० होता है, और नहीं भी होता है' ० ?"

"० अ-व्याकृत ०।"

"० 'मरनेके बाद तथागत न होता है, न नहीं होता है' ० ?"

"० अ-व्याकृत ०।"

"किसलिये भन्ते ! भगवान्‌ने इसे अ-व्याकृत कहा है ?"

"पोट्ठपाद ! न यह अर्थ-युक्त (=स-प्रयोजन) है, न धर्म-युक्त, न आदि-ब्रह्मचर्यके उपयुक्त, न निर्वेद (=उदासीनता)के लिये, न विरागके लिये, न निरोध (=क्लेश-विनाश)के लिये, न उपशम (=शान्ति)के लिये, न **अभिज्ञा** के लिये, न संबोधि (=परमार्थ-ज्ञान)के लिये, न निर्वाणके लिये है। इसलिये मैंने इसे अ-व्याकृत कहा है।"

"भन्ते ! भगवान्‌ने क्या क्या व्याकृत किया है ?"

"पोट्ठपाद ! 'यह दुःख है' (इसे) मैंने व्याकृत किया है। 'यह दुःखका हेतु है' मैंने व्याकृत किया है। 'यह दुःख-निरोध है' ०। 'यह दुःख-निरोध-गामिनी प्रतिपद् (=मार्ग) है' ०।"

"भन्ते ! भगवान्‌ने इसे क्यों व्याकृत किया है ?"

"पोट्ठपाद ! यह सार्थक, धर्म-उपयोगी, आदि-ब्रह्म-चर्य-उपयोगी है। यह निर्वेदके लिये, विरागके लिये, निरोधके लिये, उपशमके लिये, अभिज्ञाके लिये, संबोधके लिये, निर्वाणके लिये है। इसलिये मैंने इसे व्याकृत किया।"

"यह ऐसा ही है, भगवान् ! यह ऐसा ही है, सुगत ! अब भन्ते ! भगवान् जिसका काल समझते हों (करें)।"

तब भगवान् आसनसे उठकर चल दिये।

तब परिव्राजकोंने भगवान्‌के जानेके थोळी ही देर बाद, पोट्ठ-पाद परिव्राजकको चारों ओरसे वाग्-वाणोंद्वारा जर्जरित करना शुरू किया—"इसी प्रकार आप पोट्ठपाद, जो जो श्रमण गौतम कहता (रहा), उसीको अनुमोदन करते (रहे) 'यह ऐसा ही है भगवान् ! यह ऐसा ही है सुगत !" हम तो

श्रमण गौतमका कहा कोई धर्म एक-सा नहीं देखते, कि—'लोक शाश्वत है', 'लोक-अशाश्वत हैं', 'लोक अन्तवान् है', 'लोक-अन्-अन्त है', 'वही जीव है, वही शरीर है', 'दूसरा जीव है, दूसरा शरीर है', 'तथागत मरनेके बाद होता है', 'तथागत मरनेके बाद नहीं होता' 'तथागत मरनेके बाद होता भी है, नहीं भी होता है।' 'तथागत मरनेके बाद न होता है, न नहीं होता है।' "

ऐसा कहनेपर पोट्ठ-पाद परिव्राजकने उन परिव्राजकोंसे यह कहा—"मैं भी भो ! श्रमण गौतम-का कहा कोई धर्म एक-सा नहीं देखता... 'लोक शाश्वत है ०। बल्कि श्रमण गौतम 'भूत=तथ्य (=यथार्थ) धर्ममें स्थित हो, धर्म-नियामक-प्रतिपद् (=०मार्ग, ज्ञान)को कहता है। (तो फिर) मेरे जैसा जानकार, श्रमण गौतमके सुभाषितका सुभाषितके तौरपर कैसे अनुमोदन न करेगा ?"

तब दो तीन दिनके बीतनेपर, चित्त ह त्थि सा रि पु त्त और पो ट्ठ-पा द परिव्राजक जहाँ भगवान् थे, वहाँ गये। जाकर चित्त हत्थिसारिपुत्त भगवान्को अभिवादनकर एक ओर बैठ गया। पोट्ठपाद परिव्राजकभी भगवान्के साथ संमोदनकर..., एक ओर बैठ गया। एक ओर बैठे पोट्ठपाद परिव्राजकने भगवान्से कहा—

"उस समय भन्ते ! भगवान्के चले जानेके थोळी ही देर बाद (परिव्राजक) मुझे चारों ओरसे वाग्वाणोंद्वारा जर्जरित करने लगे—'इसी प्रकार आप पोट्ठ-पाद ! ०।० मेरे जैसा जानकार० सुभाषितको ० कैसे अनुमोदन नहीं करेगा ?"

"पोट्ठ-पाद ! वह सभी परिव्राजक अन्धे=आँखबिना हैं। तूही एक उनमें आँखवाला है। पोट्ठ-पाद ! मैंने (कितनेही) धर्म एकांशिक कहे हैं=प्रज्ञापित किये हैं। कितने ही धर्म अन्-एकांशिक भी कहे हैं ०। पोट्ठ-पाद ! मैंने कौनसे धर्म अन्-एकांशिक कहे हैं० ? 'लोक शाश्वत है' इसको मैंने अनैकांशिक धर्म कहा है०। 'लोक अ-शाश्वत है'० अनैकांशिक धर्म०।०। 'तथागत मरनेके बाद न होता है, न नहीं होता है' मैंने अनैकांशिक धर्म कहा है०। यह धर्म पोट्ठ-पाद ! न सार्थक हैं, न धर्म-उपयोगी हैं, न आदि-ब्रह्मचर्य-उपयोगी हैं। न निर्वेदके लिये०, न वैराग्यके लिये०। इसलिये इन्हें मैंने अन्-एकांशिक कहा ०।

"पोट्ठ-पाद ! मैंने कौनसे एक-आंशिक धर्म कहे हैं=प्रज्ञापित किये हैं ? 'यह दुःख है' ०।० "यह दुःख-निरोध-गामिनी-प्रतिपद् है" इसे पोट्ठपाद ! मैंने एकांशिक धर्म बतलाया है०। यह धर्म पोट्ठ-पाद ! सार्थक है ०। इसलिये मैंने इन्हें एकांशिक धर्म कहा है, प्रज्ञापित किया है।

(२) आत्मवाद

"पोट्ठपाद ! कोई कोई श्रमण ब्राह्मण ऐसे वाद (=मत)-वाले ऐसी दृष्टिवाले हैं—'मरनेके बाद आत्मा अरोग, एकान्तसुखी (=केवल सुखी) होता है'। उनसे मैं यह कहता हूँ—'सच-मुच तुम सब आयुष्मान् इस वादवाले=इस दृष्टिवाले हो—'मरनेके बाद आत्मा अ-रोग एकान्त सुखी होता है ? ऐसा पूछनेपर वह 'हाँ' कहते हैं। तब उनसे मैं यह कहता हूँ—'क्या तुम सब आयुष्मान् उस एकान्त सुखवाले लोकको जानते, देखते, विहरते हो' ? ऐसा पूछनेपर 'नहीं' कहते हैं। उनसे मैं यह कहता हूँ—'क्या तुम सब आयुष्मान् एक रात या एक दिन, आधी रात या आधा दिन एकान्त-सुखवाले आत्माको जानते हो' ? यह पूछनेपर 'नहीं' कहते हैं। उनसे मैं यह कहता हूँ—'क्या आप सब आयुष्मान् जानते हैं, यही मार्ग=यही प्रतिपद् एकान्त-सुखवाले लोकके साक्षात्कारके लिये है ? ऐसा पूछनेपर 'नहीं' कहते हैं। उनसे मैं यह पूछता हूँ—'क्या आप सब आयुष्मान् जो वह देवता एकान्त-सुखवाले लोकमें उत्पन्न हैं, उनके कहे शब्दको एकान्त-सुखवाले लोकके साक्षात्कारके लिये सुनते हैं—'मार्ष ! ठीक मार्गपर आरूढ़ हों; मार्ष ! सरल मार्गपर आरूढ़ हों; हम भी मार्ष ! ऐसे ही मार्गारूढ़ हो, एकान्त-सुखवाले लोकमें उत्पन्न हुए हैं ?' ऐसा पूछनेपर 'नहीं' कहते हैं। तो क्या मानते हो पोट्ठपाद ! क्या ऐसा होनेसे उन श्रमण ब्राह्मणोंका कथन प्रमाण(=प्रतिहरण)-रहित नहीं होता ?"

"अवश्य, भन्ते ! ऐसा होनेपर उन श्रमण ब्राह्मणोंका कथन प्रमाण-रहित होता है।"

"**जैसे** कि पोट्ठ-पाद ! कोई पुरुष ऐसा कहे—'इस जनपद (=देश) में **जो जनपद कल्याणी** (=देशकी सुन्दरतम स्त्री) है, मैं उसको चाहता हूँ, उसकी कामना करता हूँ'। उसको यदि (लोग) ऐसा कहें—हे पुरुष जिस जन-पद कल्याणीको तू चाहता है=कामना करता है, जानता है, कि वह क्षत्रियाणी है, ब्राह्मणी है, वैश्य-स्त्री है, या शूद्री है'? ऐसा पूछनेपर 'नहीं' बोले, तब उसको यह कहें—हे पुरुष ! जिस जन-पद–कल्याणीको तू चाहता है ० जानता है ० (वह) अमुक नामवाली अमुक गोत्रवाली है, लम्बी, छोटी या मझोले कदकी, काली, श्यामा या, मद्गुर (=मंगुर मछली) के वर्ण की है; इस ग्राम-निगम या नगर, में (रहती) है?' ऐसा पूछनेपर 'नहीं' कहे तब उसको यह कहें—'हे पुरुष जिसको तू नहीं जानता, जिसको तूने नहीं देखा; उसको तू चाहता है, उसकी तू कामना करता है'? ऐसा पूछनेपर 'हाँ' कहे। तो क्या मानते हो पोट्ठ-पाद ! क्या ऐसा होनेपर उस पुरुषका भाषण प्रमाण-रहित नहीं हो जाता?"

"अवश्य भन्ते ! ऐसा होनेपर उस पुरुषका भाषण प्रमाण-रहित हो जाता है।"

"इसी प्रकार पोट्ठ-पाद ! जो वह श्रमण ब्राह्मण इस तरहके वादवाले=दृष्टिवाले हैं—'मरनेके बाद आत्मा अ-रोग एकान्त-सुखी होता है', उनको मैं यह कहता हूँ—'सचमुच तुम सब आयुष्मान् ०।० पोट्ठ-पाद ! क्या ० उन श्रमण-ब्राह्मणोंका कथन प्रमाण-रहित नहीं है?"

"अवश्य ! भन्ते ०।"

"**जैसे** पोट्ठ-पाद ! कोई पुरुष महलपर चढ़नेके लिये चौरस्ते (=चातुर्महापथ)पर, सीढ़ी बनावे। तब उसको (लोग) यह कहें—'हे पुरुष ! जिस (प्रासाद)के लिये तू सीढ़ी बनाता है, जानता, है वह प्रासाद पूर्व दिशामें है, दक्षिण दिशामें, पश्चिम दिशामें, (या) उत्तर दिशामें है?, ऊँचा, नीचा (या) मझोला है?' ऐसा पूछनेपर 'नहीं' कहे। उसको यह कहें—'हे पुरुष ! जिसको तू नहीं जानता, तूने नहीं देखा, उस प्रासादपर चढ़ने के लिये सीढ़ी बना रहा है?' ऐसा पूछनेपर 'हाँ' कहे। तो क्या मानते हो पोट्ठ-पाद ! क्या ऐसा होनेपर उस पुरुषका भाषण प्रमाण-रहित नहीं हो जाता?"

"अवश्य भन्ते ! ०"....

"इसी प्रकार पोट्ठ-पाद ! जो वह श्रमण ब्राह्मण० 'मरनेके बाद आत्मा अ-रोग एकान्तसुखी होता है ०।०—"अवश्य भन्ते ! ०"

३—तीन प्रकारके शरीर

"पोट्ठ-पाद ! तीन शरीर-ग्रहण हैं, स्थूल (=औदारिक) शरीर-ग्रहण, मनोमय शरीर-ग्रहण, अ-रूप (=अभौतिक) शरीर-ग्रहण। पोट्ठ-पाद ! स्थूल शरीर-ग्रहण क्या है? रूपी=चार महाभूतोंसे बना कवलिंकार (=ग्रास ग्रास करके) आहार करनेवाला, यह स्थूल शरीर-ग्रहण है। मनोमय आत्म-प्रतिलाभ क्या है? रूपी मनोमय सर्व-आहार सर्व अंग-प्रत्यंग-वाला, इन्द्रियोंसे परिपूर्ण, यह मनोमय शरीर-ग्रहण है। अ-रूप (=अभौतिक) शरीर-ग्रहण क्या है? अ-रूप (देवलोकमें) संज्ञामय होना, यह अ-रूप शरीर-ग्रहण है। पोट्ठ-पाद ! मैं स्थूल शरीर-परिग्रहसे छूटनेके लिये धर्म उपदेश करता हूँ, इस तरह मार्गारूढ़ हुओंके चित्तमल उत्पन्न करनेवाले (=संक्लेशिक) धर्म छूट जायँगे। शोधक (=व्यवदानीय) धर्म, प्रज्ञाकी परिपूर्णता, विपुलताको प्राप्त होंगे, (और वह पुरुष) इसी जन्ममें स्वयं जानकर साक्षात्- कर, प्राप्त कर विहरेगा। शायद पोट्ठ-पाद ! तुम्हें (यह विचार) हो—'संक्लेशिक धर्म छूट जायेंगे ०, इसी जन्ममें ० प्राप्त कर विहरेगा, (किन्तु) वह विहरना कठिन (=दुख) होगा।' पोट्ठ-पाद ! ऐसा नहीं समझना चाहिये, ०। उसे प्रामोद्य (=प्रमोद) भी होगा, प्रीति, निश्चलता (=प्रश्रब्धि), स्मृति, सम्प्रजन्य और सुख विहार भी होगा।"

"पोट्ठ-पाद ! मैं मनोमय शरीर-परिग्रहके परित्यागके लिये भी धर्म उपदेश करता हूँ ! जिससे कि मार्गारूढ़ होनेवालोंके संक्लेशिक धर्म छूट जायेंगे ०।०।० सुख विहार भी होगा।

"अ-रूप शरीर-परिग्रहके परित्यागके लिये भी पोट्ठ-पाद ! मैं धर्म उपदेश करता हूँ।०।० सुख विहार भी होगा।"

"यदि पोट्ठ-पाद ! दूसरे लोग हमें पूछें—'क्या है आवुसो ! वह स्थूल शरीर-परिग्रह जिससे छूटनेके लिये तुम धर्म उपदेश करते हो; और जिस प्रकार मार्गारूढ़ हो०, इसी जन्ममें स्वयं जानकर विहरोगे ?' उसकें ऐसा पूछनेपर हम उत्तर देंगे—'यह है आवुसो ! वह स्थूल शरीर-परिग्रह, जिससे छूटनेके लिये हम धर्म उपदेश करते हैं।०।

"दूसरे लोग यदि पोट्ठ-पाद ! हमें पूछें—क्या है आवुसो ! मनोमय शरीर-परिग्रह ०।० विहरेंगे ?

"यदि पोट्ठ-पाद ! दूसरे लोग हमें पूछें—क्या है आवुसो ! अ-रूप शरीर-परिग्रह ० ? ०।०।

"जैसे पोट्ठ-पाद ! कोई पुरुष प्रासादपर चढ़नेके लिये उसी प्रासादके नीचे सीढ़ी बनावे। उसको यह पूछें—'हे पुरुष ! जिस प्रासादपर चढ़नेके लिये तुम सीढ़ी बनाते हो; जानते हो, वह प्रासाद पूर्व दिशामें है, या दक्षिण ०; ऊँचा है या नीचा या मझोला ?।' वह यदि कहे—'यह है आवुसो ! वह प्रासाद, जिसपर चढ़नेके लिये, उसीके नीचे मैं सीढ़ी बनाता हूँ।' तो क्या मानते हो पोट्ठ-पाद ! ऐसा होनेपर क्या उस पुरुषका भाषण प्रामाणिक होगा ?"

"अवश्य भन्ते ! ऐसा होनेपर उस पुरुषका भाषण प्रामाणिक होगा।"

"इसी प्रकार पोट्ठ-पाद ! यदि दूसरे हमें पूछें—आवुसो ! वह स्थूल शरीर-परिग्रह क्या है०।०।

"०आवुसो ! वह मनोमय शरीर-परिग्रह क्या है ० ? ०।

"० आवुसो ! वह अ-रूप शरीर-परिग्रह क्याहै, जिसके (परित्यागके) लिये, तुम धर्म उपदेश करते हो, ०; ०? उनके ऐसा पूछने पर हम यह उत्तर देंगे—'यह है आवुसो ! वह अ-रूप-शरीर-परिग्रह ०।० तो क्या मानते हो पोट्ठ-पाद ! ऐसा होनेपर क्या उस पुरुषका भाषण प्रामाणिक होगा ?"

"अवश्य भन्ते ! ०"

४–वर्तमान शरीर ही सत्य

ऐसा कहनेपर चित्त हत्थिसारिपुत्तने भगवान्‌से कहा—"भन्ते ! जिस समय स्थूल शरीर-परिग्रह होता है, उस समय मनोमय-शरीर-परिग्रह तथा अ-रूप-शरीर-परिग्रह मोघ (=मिथ्या) होते हैं, स्थूल शरीर-परिग्रह ही उस समय उसके लिये सच्चा होता है। जिस समय भन्ते ! मनोमय-शरीर-परिग्रह होता है, उस समय स्थूल शरीर-परिग्रह तथा अ-रूप-शरीर-परिग्रह मिथ्या होते हैं, मनोमय-शरीर-परिग्रह ही उस समय उसके लिये सच्चा होता है। जिस समय भन्ते ! अ-रूप-शरीर-परिग्रह होता है, उस समय स्थूल-शरीर-परिग्रह तथा मनोमय-शरीर-परिग्रह मिथ्या होते हैं, अ-रूप-शरीर-परिग्रह ही उस समय उसके लिये सच्चा होता है।"

"जिस समय चित्त ! स्थूल-शरीर-परिग्रह होता है, उस समय 'मनोमय-शरीर-परिग्रह है' नहीं समझा जाता। न 'अ-रूप-शरीर-परिग्रह है' यही समझा जाता है। 'स्थूल-शरीर-परिग्रह है' यही समझा जाता है। जिस समय चित्त ! मनोमय-शरीर-परिग्रह ०। जिस समय अ-रूप-शरीर-परिग्रह ०। यदि चित्त ! तुझे यह पूछें—तू भूत कालमें था, नहीं तो तू न था ? भविष्यकालमें तू होगा (=रहेगा), नहीं तो तू न होगा ? इस समय तू है, नहीं तो तू नहीं है ?' ऐसा पूछनेपर चित्त ! तू कैसे उत्तर देगा ?"

"ऐसा पूछने पर भन्ते ! मैं यह उत्तर दूँगा—'मैं भूतकालमें था, मैं नहीं तो न था। भविष्य-

कालमें मैं होऊँगा, नहीं तो मैं न होऊँगा। इस समय मैं हूँ, नहीं तो मैं नहीं हूँ'। वैसा पूछनेपर भन्ते ! म इस प्रकार उत्तर दूँगा।"

"यदि चित्त ! तुझे यह पूछें—जो तेरा भूतकालका शरीर-परिग्रह था, वही तेरा शरीर-परिग्रह सत्य है, भविष्यका और वर्तमानका (क्या) मिथ्या है ? जो तेरा भविष्यमें होनेवाला शरीर-परिग्रह है, वही ० सच्चा है, भूतका और वर्तमानका (क्या) मिथ्या है ? जो इस समय तेरा वर्तमानका शरीर-परिग्रह है, वही तेरा शरीर-परिग्रह सच्चा है, भूत और भविष्यका (क्या) मिथ्या है ? ऐसा पूछनेपर चित्त ! तू कैसे उत्तर देगा ?"

"यदि भन्ते ! मुझे ऐसा पूछेंगे 'जो तेरा भूतकालका शरीर-परिग्रह था ०।' ऐसा पूछनेपर भन्ते ! मैं इस प्रकार उत्तर दूँगा—'जो मेरा भूतको शरीर-परिग्रह था, वही शरीर-परिग्रह मेरा उस समय सच्चा था, भविष्य और वर्तमानके ० असत्य थे। जो मेरा, भविष्यमें अन्-आगत शरीर-परिग्रह होगा, वही शरीर-परिग्रह मेरा उस समय सच्चा होगा; भूत और वर्तमानके शरीर-परिग्रह असत्य होंगे। जो मेरा इस समय वर्तमान शरीर-परिग्रह है, वही शरीर-परिग्रह मेरा (इस समय) सच्चा है, भूत और भविष्यके शरीर-परिग्रह असत्य हैं।' ऐसा पूछनेपर भन्ते ! मैं यह उत्तर दूँगा'।"

"ऐसे ही चित्त ! जिस समय स्थूल शरीर-परिग्रह होता है, उस समय मनोमय-शरीर-परिग्रह नहीं कहा जाता, न उस समय अ-रूप-शरीर-परिग्रह कहा जाता है; स्थूल शरीर-परिग्रह ही उस समय कहा जाता है। जिस समय चित्त ! मनोमय-शरीर-परिग्रह ०। जिस समय चित्त ! अरूप शरीर-परिग्रह होता है, उस समय 'स्थूल शरीर-परिग्रह है' नहीं कहा जाता; न 'मनोमय-शरीर-परिग्रह है', कहा जाता है। 'अरूप-शरीर-परिग्रह है' यही कहा जाता है। जैसे चित्त ! गायसे दूध, दूधसे दही, दहीसे नवनीत (=नैनू), नवनीतसे घी (=सर्पिष), सर्पिष्से सर्पिष्-मण्ड (=घीका सार) होता है। जिस समय दूध होता है, उस समय न दही होता है, न नवनीत ०, न सर्पिष् ०, न सर्पिष्-मंड ०; दूध ही उस समय उसका नाम होता है। जिस समय दही ०। ० नवनीत ०। ० सर्पिष् ०। सर्पिष्-मंड ०। ऐसे ही चित्त ! जिस समय स्थूल शरीर-परिग्रह होता है ०। ० मनोमय ०। ० अ-रूप ०। चित्त ! यह लौकिक संज्ञायें हैं=लौकिक निरुक्तियाँ हैं=लौकिक व्यवहार हैं=लौकिक प्रज्ञप्तियाँ हैं, तथागत बिना लिप्त हुये उन्हें व्यवहार करते हैं।"

"ऐसा कहनेपर पोट्ठ-पाद परिब्राजकने भगवान्से कहा—

"आश्चर्य ! भन्ते !! अद्भुत ! भन्ते ! ! ०[1] आजसे आप गौतम मुझे अंजलिबद्ध शरणागत उपासक धारण करें।"

चित्त हत्थि-सारि-पुत्त (=चित्र हस्ति-सारि-पुत्र) ने भगवान्से कहा—

"आश्चर्य ! भन्ते !! अद्भुत ! भन्ते ! ! ०। भंन्ते ! मैं भगवान्का शरणागत हूँ, धर्म और भिक्षु-संघका भी। भन्ते ! भगवान्के पास मुझे प्रब्रज्या मिले, उपसंपदा मिले।"

चित्त-हत्थि-सारि-पुत्तने भगवान्के पास प्रब्रज्या पाई, उपसंपदा पाई। आयुष्मान् चित्त-हत्थि-सारि-पुत्त उपसंपदा प्राप्त करनेके थोळे ही दिनों बाद; एकाकी, एकांतवासी, प्रमाद-रहित, उद्योगी, आत्म-संयमी हो, विहार करते हुये, जल्दी ही, जिसके लिये कुल-पुत्र अच्छी तरह घरसे बेघर हो प्रब्रजित होते हैं, उस अनुपम ब्रह्मचर्य-फलको, इसी जन्ममें जानकर=साक्षात् कर=पाकर, विहार करने लगे 'जन्म क्षीण हो गया, ब्रह्मचर्य-वास पूरा हो गया, करना था, सो कर लिया, और कुछ करनेको (बाकी) नहीं रहा।' यह जान गये। आयुष्मान् चित्त हत्थि-सारि-पुत्त अर्हतोंमेंसे एक हुये।

---

[1] देखो पृष्ठ ३२।

१०—सुभ-सुत्त (१।१०)

धर्म के तीन स्कंध––(१) शील-स्कंध। (२) समाधि-स्कंध। (३) प्रज्ञा-स्कंध।

ऐसा मैंने सुना––एक समय आयुष्मान् आनन्द भगवान्के परिनिर्वाणके कुछ ही दिन बाद श्रावस्तीमें अनाथ-पिण्डिकके आराम जेतवनमें विहार करते थे, ।

उस समय किसी कामसे तो दे य्य पुत्त शु भ नामक माणवक भी श्रावस्तीहीमें वास करता था। तब तोदेय्यपुत्त शुभ माणवकने किसी दूसरे माणवकसे कहा––"हे माणवक, सुनो। जहाँ आयुष्मान् आनन्द हैं वहाँ जाओ, जाकर आयुष्मान् आनन्दको मेरी ओरसे कुशल समाचार पूछो––'तोदेय्यपुत्त शुभ माणवक आप आनन्दका कुशल समाचार पूछता है'। और ऐसा कहो, आप कृपाकर तोदेय्यपुत्त शुभ माणवकके घरपर चलें।"

"बहुत अच्छा" कहकर वह माणवक ० शुभ माणवकके कहे हुयेको स्वीकारकर जहाँ आयुष्मान् आनन्द थे वहाँ गया। जाकर आयुष्मान् आनन्दसे स्वागतके शब्द कहे। स्वागतके शब्द कहकर वह एक ओर बैठ गया। एक ओर बैठे हुये उस माणवकने आयुष्मान् आनन्दसे यह कहा––"शुभ माणवक आप आनन्दका कुशल समाचार पूछता है, और ऐसा कहता है,––'आप कृपाकर वहाँ चलें, जहाँ ० शुभ माणवकका घर है।"

उसके ऐसा कहनेपर आयुष्मान् आनन्दने उस माणवकसे कहा,––"माणवक! यह समय नहीं है, आज मैंने जुलाब लिया है, कल उचित समय देखकर आऊँगा।"

"वह माणवक आयुष्मान् आनन्दके कहे हुयेको मान "बहुत अच्छा" कह आसनसे उठकर वहाँ गया जहाँ ० शुभ माणवक था। जाकर ० शुभसे यह कहा––"श्रमण आनन्दको मैंने आपकी ओरसे कहा––शुभ ० आप आनन्द ०। और ऐसा कहा––आप कृपाकर ०। ऐसा कहनेपर श्रमण आनन्दने मुझे यह कहा––'माणवक! यह समय ०।' इतना पर्याप्त है (क्योंकि इतनेसे) आप आनन्दने कल आनेको स्वीकारकर लिया।"

तब आयुष्मान् आनन्द उस रातके बीत जानेपर सुबह ही तैयार हो, पात्र और चीवर ले **चेतक** भिक्षुको साथ ले जहाँ ० शुभ माणवकका घर था, वहाँ गये। जाकर बिछे आसनपर बैठ गये।

तब ० शुभ माणवक जहाँ आयुष्मान् आनन्द थे वहाँ गया। जाकर आयुष्मान् आनन्दसे स्वागतके वचन कहे। स्वागतके वचन कहनेके बाद एक ओर बैठ गया। एक ओर बैठे ० शुभ माणवकने आयुष्मान् आनन्दसे यह कहा––'आप (आनन्द) भगवान् गौतमके बहुत दिनों तक सेवक और पासमें रहनेवाले रह चुके हैं। आप आनन्द जानते हैं जिन धर्मोंकी प्रशंसा भगवान् गौतम किया करते थे, जिन (धर्मों)को वे जनताको सिखाते पढ़ाते और (जिनमें) प्रतिष्ठित करते थे। हे आनन्द! भगवान् गौतम किन धर्मोंकी प्रशंसा किया करते थे, किन (धर्मों)को वे जनताको सिखाते पढ़ाते और (उनमें) प्रतिष्ठित करते थे?"

धर्मके तीन स्कन्ध

"वे भगवान् तीन स्कन्धों[1] (=समूहों)की प्रशंसा करते थे। जिससे वे जनता ०। किन तीनों की? आर्य शीलस्कन्ध (=उत्तम सदाचार-समूह)की, आर्य समाधिस्कन्धकी, (और) आर्य प्रज्ञा-स्कन्धकी। हे माणवक! भगवान् इन्हीं तीन स्कन्धोंकी प्रशंसा किया करते थे, जिससे वे जनता ०।"

१—शील-स्कन्ध

"हे आनन्द! वह आर्य शील-स्कन्ध कौन-सा है जिसकी भगवान् प्रशंसा करते थे, और जिसको वे जनता ०?"

"हे माणवक! जब संसारमें तथागत अर्हत् सम्यक् सम्बुद्ध ०[2] उत्पन्न होते हैं।० शील-सम्पन्न, ०। इन्द्रियोंको वशमें रखनेवाला, भोजनकी मात्रा जाननेवाला, स्मृतिमान्, सावधान और संतुष्ट रहता है।

"माणवक! भिक्षु कैसे शीलसम्पन्न (=सदाचारयुक्त) होता है?

"माणवक! भिक्षु हिंसाको छोळ ०[3] —वह इस उत्तम सदाचार-समूह (=आर्य शील-स्कन्ध)से युक्त हो अपने भीतर निर्दोष सुखको अनुभव करता है। माणवक! इस तरह भिक्षु शील-सम्पन्न होता है। माणवक! यही शील-स्कन्ध है जिसकी प्रशंसा भगवान् करते थे और जिससे जनता ०। (किन्तु) इससे और ऊपर भी करना है।"

"हे आनन्द! आश्चर्य है, हे आनन्द अद्‌भुत है! हे आनन्द! वह आर्य-शील-स्कन्ध पूर्ण है अपूर्ण नहीं है। हे आनन्द! इस प्रकारका परिपूर्ण आर्य-शील-स्कन्ध मैं तो इस (धर्म)के बाहर और किसी दूसरे श्रमण या ब्राह्मणमें नहीं देखता! हे आनन्द! इस प्रकारके परिपूर्ण आर्य-शील-स्कन्ध इसके बाहर दूसरे श्रमण और ब्राह्मण यदि अपनेमें देखें तो वे इतनेसे संतुष्ट हो जावें—'बस, इतना काफी है, श्रमण-भावके लिये इतना पर्याप्त है, अब और कुछ करना बाकी नहीं है'। किन्तु आप आनन्दने तो कहा है—'इसके ऊपर और करना है'।

(इति) प्रथम भाणवार ॥१॥

२—समाधि-स्कन्ध

"हे आनन्द! वह श्रेष्ठ समाधि-समूह (=आर्य समाधि-स्कन्ध) कौन-सा है, जिसकी प्रशंसा भगवान् किया करते थे, जिसको वे जनता ०?"

३—प्रज्ञा-स्कन्ध

"हे माणवक! भिक्षु कैसे इन्द्रियोंको वशमें रखनेवाला होता है? माणवक! भिक्षु आँखसे रूपको देखकर ००[4] —अब यहाँ करनेके लिये नहीं रहा।"

"आनन्द! आश्चर्य है, आनन्द! अद्‌भुत है! यह आर्य-प्रज्ञा-स्कन्ध परिपूर्ण ०।

"आश्चर्य है हे आनन्द! अद्‌भुत है हे आनन्द! जैसे उलटेको सीधा करदे[5]०। इसी तरहसे आप आनन्दने अनेक प्रकारसे धर्म प्रकाशित किया। हे आनन्द! यह मैं भगवान् गौतमकी शरण जाता हूँ, धर्म और भिक्षु-संघकी भी। हे आनन्द! आजसे आप मुझे जन्म भरकेलिये अंजलिबद्ध शरणागत उपासक स्वीकार करें।"

---

[1] उपनिषद्‌में—त्रयो धर्मस्कन्धा यज्ञोऽध्ययनं, दानमिति।

[2] देखो पृष्ठ २३-२४। [3] पृष्ठ २४। [4] पृष्ठ २७-३२। [5] पृष्ठ ३२।

११—केवट्ट-सुत्त (१।११)

१—ऋद्धियों का दिखाना निषिद्ध । २—तीन ऋद्धि भी अन-प्राति हार्य.। ३—चारों भूतोंका निरोध कहाँ पर ?—(१) सारे देवता अनभिज्ञ; (२) अनभिज्ञ ब्रह्माकी आत्म-वंचना; (३) बुद्धही 'जानकार

ऐसा मैंने सुना—एक समय भगवान् ना ल न्दाके पास पा वा रि क आम्रवनमें विहार करते थे।

तब केवट्ट गृहपतिपुत्र जहाँ भगवान् थे वहाँ गया। जाकर भगवान्को अभिवादनकर एक ओर बैठ गया। एक ओर बैठ केवट्ट गृहपति-पुत्रने भगवान्से यह कहा—"भन्ते! यह नालन्दा समृद्ध, धनधान्यपूर्ण , और बहुत घनी बस्तीवाली है। यहाँके मनुष्य आपके प्रति बहुत श्रद्धालु हैं। भगवान् कृपया एक भिक्षुको कहें कि अलौकिक ऋद्धियोंको दिखावे। इससे नालन्दाके लोग आप भगवान्के प्रति और भी अधिक श्रद्धालु हो जायेंगे।"

१—ऋद्धियोंका दिखाना निषिद्ध

ऐसा कहनेपर भगवान्ने केवट्ट ० से यह कहा—"केवट्ट! मैं भिक्षुओंको इस प्रकारका उपदेश नहीं देता हूँ कि—भिक्षुओ! आओ, तुम लोग उजले कपळे पहननेवाले गृहस्थोंको अपनी ऋद्धि दिखलाओ।"

दूसरी बार भी केवट्ट ० ने भगवान्से यह कहा—"मैं भगवान्को छोटा दिखाना नहीं चाहता हूँ किन्तु ऐसा कहता हूँ—'भन्ते! यह नालन्दा समृद्ध ० इससे नालन्दाके लोग आप भगवान्के प्रति और भी अधिक श्रद्धालु हो जायँगे।"

दूसरी बार भी भगवान्ने केवट्ट ० से यह कहा—"केवट्ट! मैं भिक्षुओंको ०।

तीसरी बार भी केवट्ट ० ने भगवान्से यह कहा—"मैं भगवान्को ०। किंतु ऐसा कहता हूँ—भन्ते! यह नालन्दा समृद्ध ० इससे नालन्दाके लोग ०।"

२—तीन ऋद्धि प्रातिहार्य

"केवट्ट! तीन प्रकारके ऋद्धि-बल (ऋद्धियाँ=दिव्यशक्तियाँ)हैं, जिन्हें मैंने जानकर और साक्षात्कर बतलाया है। वे कौन से तीन? ऋद्धिप्रातिहार्य (=ऋद्धियोंका प्रदर्शन),आदेशना-प्रातिहार्य, अनुशासनी-प्रातिहार्य।

"(१) केवट्ट! **ऋद्धि-प्रातिहार्य** कौन सा है? केवट्ट! भिक्षु अपने ऋद्धिबलसे अनेक प्रकारके रूप धारण करता है—एक होकर बहुत हो जाता है, बहुत होकर एक हो जाता है ०।[१]

---

[१] देखो पृष्ठ ३०

उसे देखकर वह श्रद्धालु=प्रसन्न हो, दूसरे श्रद्धारहित=अप्रसन्न पुरुषको कहता है—'अरे! आश्चर्य, है, अद्भुत है, श्रमणका ऋद्धिबल और उसकी महानुभावता। मैंने भिक्षुको अनेक प्रकारसे अपने ऋद्धिबल दिखाते हुये देखा—एक होकर अनेक ०। श्रद्धारहित=अप्रसन्न मनुष्य उस श्रद्धालु=प्रसन्न मनुष्यको ऐसा कह सकता है—'हाँ! **गान्धारी** नामक एक विद्या है, उसीसे भिक्षु अनेक तरहके ऋद्धिबल दिखाता है—एक होकर ०। तब केवट्ट! क्या समझते हो, वह श्रद्धारहित=अप्रसन्न मनुष्य उस श्रद्धालु=प्रसन्न मनुष्यको ऐसा कहेगा या नहीं ?"

"भन्ते! वह ऐसा कहेगा।" "अतः केवट्ट! ऋद्धिबलके दिखानेमें मैं इसी दोषको देखकर ऋद्धिबलके दिखानेसे हिचकता हूँ, संकोच करता हूँ, और घृणा करता हूँ।

(२) "केवट्ट! **आदेशना-प्रातिहार्य** कौन सा है? केवट्ट! भिक्षु दूसरे जीवों और मनुष्योंके चित्तको बतला देता है०[1] 'तुम्हारा मन ऐसा है, तुम्हारा चित्त ऐसा है'। कोई श्रद्धालु और प्रसन्न मनुष्य उस भिक्षुको दूसरे जीवों और मनुष्योंके चित्त० को बतलाते देखता है। वह श्रद्धालु० दूसरे श्रद्धारहित० से कहता है—'अहो आश्चर्य है! अहो अद्भुत है, श्रमणके इस बळे ऋद्धिबल और उसकी महानुभावताको। मैंने भिक्षुको दूसरेके० चित्त० को बतलाते देखा है। वह श्रद्धा-रहित० उस श्रद्धालु० को ऐसा कहे—'हाँ **चिन्तामणि** नामकी एक विद्या है, उसीसे भिक्षु दूसरे जीवों और मनुष्योंके चित्त० को बतला देता है'। केवट्ट! तब तुम क्या समझते हो—वह श्रद्धारहित० श्रद्धालु० को ऐसा क्या नहीं कहेगा?" "भन्ते! कहेगा।"

"केवट्ट! आदेशना-प्रातिहार्यके इसी दोषको देखकर मैं आदेशना-प्रातिहार्यसे हिचकता०।

(३) "केवट्ट! कौन सा **अनुशासनी-प्रातिहार्य** है? भिक्षु ऐसा अनुशासन करता है—'ऐसा विचारो, ऐसा मत विचारो; ऐसा मनमें करो, ऐसा मनमें मत करो; इसे छोळ दो, इसे स्वीकार कर लो। केवट्ट! यही अनुशासनी-प्रातिहार्य कहलाता है। केवट्ट! जब संसारमें तथागत अर्हत्, सम्यक् सम्बुद्ध०[1], उत्पन्न होते हैं, ० केवट्ट! इस तरहसे भिक्षु शीलसम्पन्न होता है। ०[1] प्रथम ध्यानको प्राप्त कर विहार करता है। केवट्ट! यह भी अनुशासनी प्रातिहार्य कहलाता है। ० द्वितीय ध्यान ०। ० तृतीय ध्यान ०। ० चतुर्थ ध्यानको प्राप्त होकर विहार करता है। केवट्ट! यह भी अनुशासनी-प्रातिहार्य कहलाता है। ० ज्ञानदर्शनके लिये अपने चित्तको नवाता है०[1] केवट्ट! यह भी ०। आवागमनके और किसी कारणको नहीं देखता है ० केवट्ट! यह भी ०।—केवट्ट! इन तीन ऋद्धि-बलोंको मैंने जानकर और साक्षात् कर बतलाया है।

३—चारों भूतोंका निरोध कहाँ पर ?

(१) सारे देवता अनभिज्ञ

"केवट्ट! बहुत पहले इसी भिक्षु-संघमें एक भिक्षुके मनमें यह प्रश्न उत्पन्न हुआ—'ये चार महाभूत—पृथ्वी-धातु, जल-धातु, तेजो-धातु, वायुधातु—कहाँ जाकर बिल्कुल निरुद्ध हो जाते हैं?' तब केवट्ट! उस भिक्षुने उस प्रकारकी समाधिको प्राप्त किया जिससे कि समाहित चित्त होनेपर उसके सामने देवलोक जानेवाले मार्ग प्रकट हुये। केवट्ट! तब वह भिक्षु जहाँ **चातुर्महाराजिक** देवता रहते हैं, वहाँ गया; जाकर चातुर्महाराजिक देवताओंसे यह बोला—'आवुसो! ये चार महाभूत—० कहाँ जाकर बिल्कुल निरुद्ध हो जाते हैं?' केवट्ट! (उस भिक्षुके) ऐसा कहनेपर चातुर्महाराजिक देवताओं

---

[1] देखो पृष्ठ २३-३०।

ने उस भिक्षुसे यह कहा—'हे भिक्षु ! हम लोग भी नहीं जानते हैं कि कहाँ जाकर ये चार महाभूत—० विल्कुल निरुद्ध हो जाते हैं। हे भिक्षु ! हमसे भी बढ़ चढ़कर चार **महाराजा** हैं। वे शायद इसे जानते हों, कि कहाँ जाकर कि ये चार महाभूत—०।' ।

"केवट्ट ! तब वह भिक्षु जहाँ चार महाराज थे, वहाँ गया; जाकर चारो महाराजोंसे यह पूछा,—'ये चार महाभूत—० कहाँ जाकर ०? केवट्ट ! (उसके) ऐसा पूछनेपर चार **महाराजोंने** उस भिक्षुसे यह कहा—'हे भिक्षु ! हम लोग भी नहीं जानते ! हें भिक्षु ! हम लोगोंसे भी बढ़-चढ़कर **त्रायस्त्रिंश** नामक देवता हैं। वे शायद ०।'—

"केवट्ट ! तब वह भिक्षु जहाँ त्रायस्त्रिंश देवता थे, वहाँ गया। जाकर **त्रायस्त्रिंश** देवताओंसे यह पूछा—'ये चार महाभूत— ०कहाँ जाकर ० ?' केवट्ट ! ऐसा पूछनेपर उन त्रायस्त्रिंश देवताओंने उस भिक्षुसे यह कहा–'हे भिक्षु ! हम लोग भी नहीं जानते ! ० हम लोगोंसे बढ़०देवताओंका अधिपति **शक्र** है। वह शायद जान सके ०।'

"केवट्ट ! तब वह भिक्षु जहाँ देवताओंका अधिपति शक्र था वहाँ गया। जाकर शक्र ० से यह पूछा—'ये चार महाभूत— ० कहाँ जाकर ० ?' उसके ऐसा पूछनेपर ० शक्रने उस भिक्षुसे यह कहा—'हे भिक्षु ! मैं भी नहीं जानता ०। हे भिक्षु ! हमसे भी बढ़० **याम** नामक देवता हैं। वे शायद ०।"

"केवट्ट ! तब वह भिक्षु जहाँ याम देवता थे ०।—० जहाँ **सुयाम** नाम देवपुत्र था ०।—० जहाँ **तुषित** नामक देवता थे ०।—० जहाँ **संतुषित** नामक देवपुत्र था ०।।—० जहाँ **निर्म्माण-रति** नामक देवता थे ०।—० जहाँ **सुनिर्म्मित** नामक देवपुत्र था।०—० जहाँ **परनिर्म्मितवशवर्त्ती** नामक देवता थे ०।—० जहाँ **वशवर्ती** नामक देवपुत्र था ०।—० जहाँ **ब्रह्मकायिक** नामक देवता थे ०—" ० हे भिक्षु ! हमसे बहुत बढ़ चढ़कर ब्रह्मा हैं, (वे) महाब्रह्मा, विजयी (=अभिभू), अपराजित (=अनभिभूत), परार्थ-द्रष्टा, वशी, **ईश्वर**, कर्ता, निर्माता, श्रेष्ठ, और सभी हुए और होनेवाले (पदार्थों)के पिता (हैं)। शायद वे जान सकें, कि ये चार महाभूत —० कहाँ जाकर बिल्कुल निरुद्ध हो जाते हैं? (भिक्षुने कहा—) 'तो आवुसो ! वे ब्रह्मा अभी कहाँ हैं?'—'हे भिक्षु ! हम नहीं जानते हैं कि वह ब्रह्मा कहाँ रहते हैं। किन्तु लोग ऐसा कहते हैं कि बहुत आलोक और प्रभाके प्रकट होनेके बाद ब्रह्मा प्रकट होते हैं। ब्रह्माके प्रकट होनेके ये पूर्व-लक्षण हैं, कि (उस समय) बहुत प्रकाश होता है और बळी भारी प्रभा उत्पन्न होती है'।

२–अनभिज्ञ ब्रह्माकी आत्मवंचना

"केवट्ट ! इसके बाद शीघ्र ही महाब्रह्मा भी प्रकट हुआ। केवट्ट ! तब वह भिक्षु जहाँ महाब्रह्मा था वहाँ गया। जाकर (उसने) महाब्रह्मासे यह कहा—'आवुसो ! ये चार महाभूत ०? ' केवट्ट ! ऐसा कहने पर महाब्रह्माने उस भिक्षुसे यह कहा—'हे भिक्षु ! मैं ब्रह्मा, महाब्रह्मा ० ईश्वर०पिता हूँ'। केवट्ट ! दूसरी बार भी उस भिक्षुने उस महाब्रह्मासे यह कहा—'आवुसो ! मैं तुमसे यह नहीं पूछता हूँ कि तुम ब्रह्मा, महाब्रह्मा ० ईश्वर ० हो। आवुसो ! मैं तुमसे यह पूछता हूँ—ये चार महाभूत—० कहाँ ० ?' केवट्ट ! दूसरी बार भी उस महाब्रह्माने उस भिक्षुसे कहा—'भिक्षु ! मैं ब्रह्मा, महाब्रह्मा ० ईश्वर ० हूँ।' केवट्ट ! तीसरी बार भी ०।

"केवट्ट ! तब उस महाब्रह्माने उस भिक्षुकी बाँह पकळ, एक ओर ले जाकर उस भिक्षुसे कहा—'हे भिक्षु ! ये ब्रह्मलोकके देवता मुझे ऐसा समझते हैं—ब्रह्मासे कुछ अज्ञात नहीं है, ब्रह्मासे कुछ अदृष्ट नहीं है, ब्रह्मासे कुछ अविदित नहीं है, ब्रह्मासे कुछ असाक्षात्कृत नहीं है; इसी लिय मैंने उन लोगोंके सामने नहीं कहा। भिक्षु ! मैं भी नहीं जानता हूँ, जहाँ कि ये चार महाभूत ०। अतः हे भिक्षु ! यह

तुम्हारा ही दोष है, यह तुम्हारा ही अपराध है कि तुम भगवान्‌को छोळकर बाहरमें इस बातकी खोज करते हो। हे भिक्षु ! उन्हीं भगवान्‌के पास जाओ, जाकर यह प्रश्न पूछो। जैसा भगवान् कहें वैसा ही समझो'।

३—बुद्धही जानकार

"केवट्ट ! तब वह भिक्षु जैसे कोई बलवान् पुरुष (अप्रयास) मोळी बाँहको पसारे और पसारी बाँहको मोळे, वैसे ही ब्रह्मलोकमें अन्तर्धान होकर मेरे सामने प्रकट हुआ। केवट्ट ! तब वह भिक्षु मुझे प्रणामकर एक ओर बैठ गया। केवट्ट ! एक ओर बैठकर उस भिक्षुने मुझसे यह कहा—'भन्ते ! ये चार महाभूत—०कहाँ जाकर ० ?' केवट्ट ! (उस भिक्षुके) ऐसा पूंछने पर मैंने उस भिक्षुसे कहा—'भिक्षु ! पूर्व समयमें कुछ सामुद्रिक व्यापारी किनारा देखनेवाले पक्षीको साथ ले, नावपर चढ़ समुद्रके बीच गये। नावसे तट नहीं दिखाई देनेके कारण उन्होंने तट देखनेवाले पक्षीको छोळा। (वह पक्षी) पूर्व-दिशाकी ओर गया, दक्षिण ०, पश्चिम ०, उत्तर ०, ऊपर ०, अनुदिशाओंमें ०। यदि वह कहीं तट देखता तो वहीं चला जाता। चूँकि किसी ओर उसने तट नहीं देखा, इस लिये फिर उसी नाव पर चला आया। भिक्षु ! तुम भी इसी तरह इस प्रश्नको सुलझानेके लिये ब्रह्मलोक तक खोजते हुये गये, फिर मेरे ही पास चले आये।

"भिक्षु ! यह प्रश्न ऐसे नहीं पूछना चाहिये—० भन्ते ! ये चार महाभूत—० कहाँ जाकर बिल्कुल निरुद्ध हो जाते हैं। भिक्षु ! यह प्रश्न इस प्रकार पूछना चाहिये—

कहाँ जल, पृथ्वी, तेज और वायु नहीं स्थित रहते हैं ?

कहाँ दीर्घ, ह्रस्व, अणु, स्थूल, (और) शुभ, अशुभ, नाम और रूप बिल्कुल खतम हो जाते हैं ? ॥१॥

"इसका उत्तर यह है :—

"अनिदर्शन (उत्पत्ति, स्थिति और नाशकी जहाँ बात नहीं है), अनन्त, और अत्यन्त प्रभायुक्त निर्वाण जहाँ है, वहाँ, जल, पृथ्वी, तेज और वायु स्थित नहीं रहते ॥२॥

"वहाँ दीर्घ-ह्रस्व, अणु-स्थूल, शुभ-अशुभ, नाम और रूप बिल्कुल खतम हो जाते हैं। वि ज्ञा न के निरोधसे सभी वहाँ खत्म हो जाते हैं ॥३॥"

भगवान्‌ने यह कहा। केवट्ट गृहपतिपुत्रने प्रसन्नचित्त हो भगवान्‌के भाषणका अभिनन्दन किया।

१२—लोहिच्च-सुत्त (१।१२)

१—धर्मोंपर आक्षेप। २—सभीपर आक्षेप ठीक नहीं। ३—झूठे गुरु। ४—सच्चे गुरु—
(१) शील; (२) समाधि; (३) प्रज्ञा।

ऐसा मैंने सुना—एक समय भगवान् पाँच सौ भिक्षुओंके वळे भिक्षुसंघके साथ **को स ल** (देश) में चारिका करते हुए जहाँ **सा ल व ति का** थी वहाँ पहुँचे। उस समय **लो हि च्च** (लौहित्य) ब्राह्मण राजा **प्रसेनजित् कोसल** द्वारा प्रदत्त, राजदाय, ब्रह्मदेय, जनाकीर्ण, तृण-काष्ठ-उदक-धान्य-सम्पन्न राज्य-भोग्य सालवतिकाका स्वामी होकर रहता था।

१—धर्मोंपर आक्षेप

उस समय लोहिच्च ब्राह्मणको यह बुरी धारणा उत्पन्न हुई थी। 'संसारमें (ऐसा कोई) श्रमण या ब्राह्मण नहीं, जो अच्छे धर्मको जाने, (और) जानकर अच्छे धर्मको दूसरेको समझावे। (भला) दूसरा दूसरेके लिए क्या करेगा? जैसे एक पुराने बन्धनको काटकर दूसरा एक नया बन्धन डाल दे; इसी प्रकार मैं इस (श्रमणों या ब्राह्मणोंके समझाने)को पाप(=बुरा) और लोभकी बात समझता हूँ। (भला) दूसरा दूसरेके लिए क्या करेगा?"

लोहिच्च ब्राह्मणने सुना—'श्रमण गौतम, शाक्यपुत्र, शाक्यकुलसे प्रव्रजित हो पाँच सौ भिक्षुओंके वळे भिक्षुसंघके साथ ० सालवतिकामें आये हुए हैं। उन गौतमकी ऐसी कल्याणकारी कीर्ति फैली हुई है—'वे भगवान्, अर्हत्, सम्यक् सम्बुद्ध०[1]। इस प्रकारके अर्हतोंका दर्शन अच्छा होता है।'

तब लोहिच्च ब्राह्मणने रोसिक नामक नाईको बुलाकर कहा—"सुनो भद्र रोसिक! जहाँ श्रमण गौतम हैं वहाँ जाओ। जाकर मेरी ओरसे श्रमण गौतमका कुशल क्षेम पूछो—'हे गौतम! लोहिच्च ब्राह्मण भगवान् गौतमका कुशल मंगल पूछता है', और ऐसा कहो—'भगवान् अपने भिक्षुसंघके साथ कल लोहिच्च ब्राह्मणके घरपर भोजन करना स्वीकार करें।'"

रोसिक नाई लोहिच्च ब्राह्मणकी बात मान—'बहुत अच्छा' कह जहाँ भगवान् थे वहाँ गया। जाकर भगवान्को अभिवादन करके एक ओर बैठ गया। एक ओर बैठे हुये रोसिक नाईने भगवान्से यह कहा—"भन्ते! लोहिच्च ब्राह्मण भगवान्का कुशल मंगल पूछता है, और यह कहता है—'भगवान् अपने भिक्षु-संघके साथ ० स्वीकार करें।'

भगवान्ने मौन रह स्वीकार कर लिया। तब रोसिक नाई भगवान्की स्वीकृतिको जान, आसनसे उठ, भगवान्को अभिवादनकर, प्रदक्षिणाकर जहाँ लोहिच्च ब्राह्मण था वहाँ गया। जाकर

---

[1] देखो पृष्ठ ३४।

लोहिच्च ब्राह्मणसे बोला—'मैंने आपकी ओरसे भगवान्से कहा—'भन्ते ! लोहिच्च ब्राह्मण भगवान्का ०। भगवान् अपने भिक्षु-संघके साथ ०।' और भगवान्ने स्वीकार कर लिया।"

तब लोहिच्च ब्राह्मणने उस रातके बीतनेपर अपने घरमें अच्छी अच्छी खाने पीनेकी चीजें तैयार कराके रोसिक नाईको बुलाकर कहा—'सुनो भद्र रोसिक ! जहाँ श्रमण गौतम हैं वहाँ जाओ, जाकर श्रमण गौतमको समयकी सूचना दो—'हे गौतम ! (भोजनका) समय हो गया। भोजन तैयार है।"

रोसिक नाई लोहिच्च ब्राह्मणकी बात मान 'बहुत अच्छा' कहकर जहाँ भगवान् थे वहाँ गया। जाकर भगवान्को अभिवादनकर एक ओर खळा हो गया। एक ओर खळा हो रोसिक नाईने भगवान्से कहा—'भन्ते ! समय हो गया, भोजन तैयार है। तब भगवान् पूर्वाह्ण समय तैयार हो, पात्र और चीवर ले भिक्षु-संघके साथ जहाँ सालवतिका थी, वहाँ गये। उस समय रोसिक नाई भगवान्के पीछे पीछे आ रहा था।

तब रोसिक नाईने भगवान्से कहा,—"भन्ते ! लोहिच्च ब्राह्मणको इस प्रकारकी बुरी धारणा (=पापदृष्टि) उत्पन्न हुई है—यहाँ (कोई ऐसा) श्रमण या ब्राह्मण नहीं, जो अच्छे धर्मको जानें०। भन्ते ! भगवान् लोहिच्च ब्राह्मणको इस पापदृष्टिसे अलग करा दें।"

"ऐसा ही हो रोसिक ! ऐसा ही हो रोसिक !"

तब भगवान् जहाँ लोहिच्च ब्राह्मणका घर था वहाँ गये। जाकर बिछे आसनपर बैठ गये। तब लोहिच्च ब्राह्मणने बुद्धसहित भिक्षुसंघको अपने हाथसे अच्छी अच्छी खाने और पीनेकी चीजें परोस परोसकर खिलाई। तब लोहिच्च ब्राह्मण भबवान्के भोजन समाप्तकर पात्रसे हाथ हटा लेनेके बाद स्वयं एक दूसरा नीचा आसन लेकर एक ओर बैठ गया। एक ओर बैठे लोहिच्च ब्राह्मणसे भगवान्ने यह कहा—

२—सभीपर आक्षेप ठीक नहीं

"लोहिच्च ! क्या यह सच्ची बात है कि तुम्हें इस प्रकारकी बुरी धारणा उत्पन्न हुई है—'यहाँ (कोई ऐसा) श्रमण या ब्राह्मण नहीं, जो अच्छे धर्मको जानें ० दूसरा दूसरेके लिये क्या करेगा ?"

"हे गौतम ! हाँ ऐसीही बात है।"

"लोहिच्च ! तब क्या समझते हो तुम सालवतिकाके स्वामी हो न ?" "हाँ, हे गौतम।"

"लोहिच्च ! जो कोई ऐसा कहे—'लोहिच्च ब्राह्मण सालवतिकाका स्वामी है। जो सालवतिकाकी आय है उसे लोहिच्च ब्राह्मण अकेला ही उपभोग करे, दूसरोंको (कुछ) नहीं देवे।' तो ऐसा कहनेवाला मनुष्य, जो लोग तुमपर आश्रित होकर जीते हैं, उनका हानिकारक है या नहीं ?"

"हाँ, वह हानिकारक है, हे गौतम !"

"हानिकारक होनेसे वह उनका हित चाहनेवाला होता है या अहित चाहनेवाला ?"

"अहित चाहनेवाला, हे गौतम !"

"अहित चाहनेवालेके मनमें उनके प्रति मित्रताका भाव रहता है या शत्रुताका ?"

"शत्रुताका, हे गौतम !"

"शत्रुताका भाव रहनेमें बुरी धारणा (=मिथ्या-दृष्टि) रहती है या अच्छी धारणा (=सम्यग्-दृष्टि) ?" "मिथ्या दृष्टि, हे गौतम !"

"हे लोहिच्च ! मिथ्या-दृष्टि रखनेवालेकी दो ही गतियाँ होती हैं, तीसरी नहीं—नरक या नीच योनिमें जन्म।"

"लोहिच्च ! तब क्या समझते हो, राजा प्रसेनजित् **कोसल** और **काशी** कोसल (देशों) का स्वामी है कि नहीं ?"

"हाँ, हे गौतम !"

"लोहिच्च ! जो ऐसा कहे—'राजा प्रसेनजित् काशी और कोसलका स्वामी है। काशी और कोसलकी जो आय है०।

"अतः लोहिच्च ! जो ऐसा कहे—'लोहिच्च ब्राह्मण **सालवतिका** का स्वामी है। जो सालवतिकाकी आय है उसे लोहिच्च अकेला ही उपभोग करे, किसी दूसरेको नहीं देवे। ऐसा कहनेवाला वह जो उसके आश्रित होकर जीते हैं उनका हानिकारक होता है। हानिकारक होनेसे अहित चाहनेवाला होता है, अहित चाहनेसे शत्रुताके भाव उत्पन्न होते हैं, (और) शत्रुताके भाव उत्पन्न होनेसे वह मिथ्यादृष्टि होती है।

"इसी तरहसे, लोहिच्च ! जो ऐसा कहे—'यहाँ श्रमण और ब्राह्मण नहीं, जो कुशल धर्म जानें, और कुशल धर्म जानकर दूसरेको कहें। भला ! दूसरा दूसरेके लिये क्या करेगा ? जैसे पुराने बन्धनको काटकर नया बन्धन दे दे। मैं इसको उनका पाप और लोभधर्म समझता हूँ। (भला !) दूसरा दूसरेके लिये क्या करेगा ?' ऐसा कहनेवाला उन कुलपुत्रोंका हानिकारक होता है, जो (कुलपुत्र कि) संसार (=भव)से निवृत्त होनेके लिये तथागतके बताये गये धर्ममें आकर इस प्रकारकी विशारदताको पाते हैं—**स्रोतआपत्तिफल**का साक्षात्कार करते हैं, **सकृदागामी**फलका साक्षात्कार करते हैं, **अनागामी-फल**का साक्षात्कार करते हैं, **अर्हत्व**का भी साक्षात्कार करते हैं, और दिव्यगर्भका परिपाक करते हैं। हानिकारक होनेसे वह अहित चाहनेवाला होता है ० मिथ्यादृष्टिवालोंकी दो ही गतियाँ होती हैं ०। "लोहिच्च ! उसी तरह जो कोई, राजा **प्रसेनजित** कोसलको **काशी** और **कोसल**०। वह उनका हानिकारक ०। हानिकारक होनेसे उनका अहित चाहनेवाला० मिथ्यादृष्टिवाला होता है।

"लोहिच्च ! इसी तरह जो ऐसा कहे—यहाँ श्रमण और ब्राह्मण नहीं जो अच्छे धर्म जानें०।' ऐसा कहनेवाला उन कुलपुत्रोंका ०। हानिकारक होनेसे० मिथ्यादृष्टिवाला होता है। मिथ्यादष्टि-वालोंकी दोही गतियाँ ०।

३—झूठे गुरु

"लोहिच्च ! तीन प्रकारके ही गुरु (=शास्ता) संसारमें कहे सुने जा सकते हैं जिनके ऊपर यदि आक्षेप लगावे, तो वह आक्षेप सत्य, यथार्थ, धर्मानुकूल और निर्दोष होता है। वे कौनसे तीन ?—लोहिच्च ! कितने शास्ता यशके लिये घरसे बेघर होकर साधु (=प्रव्रजित) होते हैं, यह श्रमण-भावके लिये उचित नहीं है। वे श्रमण भावको बिना प्राप्त किये श्रावकों(=शिष्यों)को धर्मोपदेश करते हैं—यह (तुम्हारे) हितके लिये है, यह सुखके लिये है। उनके श्रावक उसे सुननेकी चाह (=सुश्रूषा) नहीं करते, कान नहीं देते, चित्त नहीं लगाते, और उनके उपदेश (=शासन)से विरत रहते हैं। उसे ऐसा कहना चाहिये —आपने जिस निमित्तसे प्रव्रज्या ली थी वह श्रमणभावके लिये नहीं है, और आप श्रमणभावको बिना प्राप्त किये श्रावकोंको उपदेश देते हैं,—'यह हितके लिये०।' इसीलिये आपके श्रावक आपके प्रति सुश्रूषा नहीं०। जैसे, दूर हट गयेको उत्सुक बनानेकी कोशिश करे, मुँह फेर लिये मनुष्यको आलिङ्गन करे। ऐसा करनेको मैं पापपूर्ण लोभकी बात कहता हूँ। दूसरा दूसरेको क्या करेगा ?—लोहिच्च ! यह पहले प्रकारका शास्ता है। उस शास्ताके लिये इस प्रकार कहना, सत्य, यथार्थ, धर्मानुसार और निर्दोष कथन है।

"और फिर लोहिच्च ! (दूसरे) कितने शास्ता यशके लिये घरसे बेघर हो०। वे श्रमणभावको बिना पाये हुए ०। उनके श्रावक उसके प्रति सुश्रुषा नहीं०।—उस (शास्ताको) ऐसा कहना चाहिये —'आप जिस निमित्तसे०। आप श्रमणभाव बिना प्राप्त किये०—यह हितके लिये० अतः आपके श्रावक आपके प्रति सुश्रूषा नहीं ०।—**जैसे** कोई अपने खेतको छोळकर दूसरेके खेतके घासपातको साफ करे; इसे मैं पापपूर्ण लोभ की बात कहता हूँ। दूसरा दूसरेका ०? (उस) शास्ताको जो इस प्रकार कहना, वह निर्दोष, सत्य, यथार्थ, और धार्मिक कथन है।

"लोहिच्च ! फिर भी कितने (दूसरे) शास्ता यशके लिये घरसे बेघर हो०[1]।

ऐसा कहनेपर लोहिच्च ब्राह्मणने भगवान्‌से यह कहा,—"हे गौतम ! संसारमें ऐसे भी कोई शास्ता हैं जो कहे सुने जानेके योग्य नहीं है (जिनपर कोई आक्षेप नहीं किया जा सकता है) ?"

"लोहिच्च ! ऐसे शास्ता हैं जिन्हें कोई ऐसा नहीं कह सकता।"

"हे गौतम ! वे कौनसे शास्ता हैं जिन्हें कोई ० ?

४—सच्चे गुरु

१—शील—"लोहिच्च ! जब संसारमें तथागत अर्हत्, सम्यक् सम्बुद्ध०[2] उत्पन्न होते हैं, लोहिच्च ! इस प्रकार भिक्षु शीलसम्पन्न होता है।

२—समाधि—०[3] प्रथम ध्यानको प्राप्त करके विहार करता है। लोहिच्च ! जिस शास्ताके धर्म (=शासन) में श्रावक विशारदताको पाता है; लोहिच्च ! वही शास्ता है जिसे कोई नहीं ०। जो इस प्रकारके शास्ताके लिये कुछ कहना सुनना है, वह कहना असत्य, अयथार्थ, अधार्मिक और दोषपूर्ण है। "लोहिच्च ! और फिर भिक्षु वितर्क और विचारके शान्त हो जानेके बाद अपने भीतरकी शान्ति (=संप्रसाद), चित्तकी एकाग्रतासे वितर्क और विचार-रहित समाधिसे उत्पन्न प्रीतिसुखवाले दूसरे ध्यान ० तीसरे ध्यान और ०[4] चौथे ध्यानको प्राप्तकर विहार करता है। लोहिच्च ! जिस शास्ताके धर्ममें श्रावक इस प्रकारकी विशारदताको पाते हैं, वह भी लोहिच्च ! शास्ता है जिसे कोई नहीं ०। जो इस प्रकारके शास्ताके लिये ० वह कहना असत्य ०।

३—प्रज्ञा—"वह इस प्रकारके समाहित परिशुद्ध, स्वच्छ, पराहित, क्लेशोंसे रहित, मृदु, सुन्दर और एकाग्र हुए चित्तसे अपने चित्तको ज्ञानदर्शनकी ओर नवाता है। लोहिच्च ! जिस शास्ताके धर्ममें श्रावक ० यह भी लोहिच्च ! शास्ता है जिसके लिये कोई नहीं ०। जो इस प्रकारके शास्ताके लिये ० वह कहना असत्य ०।—वह इस प्रकार समाहित परिशुद्ध ० आस्रवोंके क्षयके ज्ञानके लिये चित्तको ०। वह 'यह दुःख है' अच्छी तरह जानता है ०[5] आवागमनके किसी कारण-को नहीं देखता है। लोहिच्च ! जिस शास्ताके धर्ममें ०। लोहिच्च ! यह भी शास्ता है जिसे कोई नहीं०। जो इस प्रकारके शास्ताके लिये ० वह कहना असत्य ०।

ऐसा कहनेपर लोहिच्च ब्राह्मणने भगवान्‌से यह कहा—"हे गौतम ! **जैसे** कोई पुरुष नरक-प्रपात (नरकके खड्ड) में गिरते किसी पुरुषको उसका केश पकळकर ऊपर खींच ले और भूमिपर रख दे, उसी तरहसे मैं आप **गौतम**के द्वारा नरक-प्रपातमें गिरते हुए ऊपर खींचा जाकर भूमिपर रख दिया गया। आश्चर्य हे गौतम ! अद्‌भुत हे गौतम ! जैसे उलटेको सीधा कर दे ०[5]। इस तरह अनेक प्रकारसे आप गौतमने धर्म प्रकाशित किया। यह मैं भगवान्‌की शरण०[5]। आजसे जीवन भरके लिये मुझे उपासक ०[5]।

---

[1] देखो पृष्ठ २३। [2] देखो पृष्ठ २३-२८। [3] देखो पृष्ठ २९। [4] पृष्ठ २९।
[5] देखो पृष्ठ ३२।

१३—तेविज्ज-सुत्त (१।१३)

ब्रह्मा की सलोकताका मार्ग १——ब्राह्मण और वेदरचयिता ऋषि अनभिज्ञ। २——बुद्धका बतलाया मार्ग——(१) मैत्री भावना; (२) करुणा ०; (३) मुदिता ०; (४) उपेक्षा०।

ऐसा मैंने सुना——एक समय भगवान् पाँच सौ भिक्षुओंके महाभिक्षु-संघके साथ कोसल देशमें विचरते, जहाँ **मनसाकट** नामक कोसलोंका ब्राह्मण-ग्राम था, वहाँ पहुँचे। वहाँ भगवान् मनसाकटमें, मनसाकटके उत्तर तरफ **अचिरवती** नदीके तीर आम्रवनमें विहार करते थे।

उस समय बहुतसे अभिज्ञात (=प्रसिद्ध) अभिज्ञात महा-धनिक (=महाशाल) ब्राह्मण मनसाकटमें निवास कर रहे थे, जैसे कि——चंकि ब्राह्मण, तारुक्ख (=तारुक्ष) ब्राह्मण, पोक्खर-साति (=पौष्करसाति) ब्राह्मण, जानुस्सोणि ब्राह्मण, तोदेय्य ब्राह्मण और दूसरे भी अभिज्ञात अभिज्ञात ब्राह्मण महाशाल।

ब्रह्माकी सलोकताका मार्ग

तब चहलकदमीके लिये रास्तेमें टहलते हुए, विचरते हुए, वाशिष्ट और भारद्वाज दो माणवकों (=ब्राह्मण तरुणों) में बात उत्पन्न हुई। वाशिष्ट माणवकने कहा——

"यही मार्ग (वैसा करनेवालेको) **ब्रह्मा**की सलोकताके लिये जल्दी पहुँचानेवाला, सीधा ले जानेवाला है; जिसे कि ब्राह्मण पौष्करसातिने कहा है।"

भारद्वाज माणवकने कहा——"यही मार्ग० है, जिसे कि ब्राह्मण तारुक्षने कहा है।"

वाशिष्ट माणवक भारद्वाज माणवकको नहीं समझ सका, न भारद्वाज माणवक वाशिष्ट माणवकको (ही) समझ सका। तब वाशिष्ट माणवकने भारद्वाज माणवकसे कहा——

"भारद्वाज! यह **शाक्य** कुलसे प्रव्रजित शाक्य-पुत्र श्रमण गौतम मनसाकटमें, मनसाकटके उत्तर अचिरवती (=राप्ती) नदीके तीर, आम्रवनमें विहार करते हैं। उन भगवान् गौतमके लिये ऐसा मंगल कीर्ति-शब्द फैला हुआ है——वह भगवान् ०[1] बुद्ध भगवान् हैं। चलो भारद्वाज! जहाँ श्रमण गौतम हैं, वहाँ चलें। चलकर इस बातको श्रमण गौतमसे पूछें। जैसा हमको श्रमण गौतम उत्तर देंगे, वैसा हम धारण करेंगे।"

"अच्छा भो!" कह भारद्वाज माणवकने ... उत्तर दिया।

तब वाशिष्ट और भारद्वाज (दोनों) माणवक जहाँ भगवान् थे, वहाँ गये; जाकर भगवान्के साथ संमोदनकर ... (कुशल प्रश्न पूछ) एक ओर बैठ गये। एक ओर बैठे हुए वाशिष्ट माणवकने भगवान्से कहा——

---

[1] देखो पृष्ठ ३४।

"हे गौतम ! ० रास्तेमें हम लोगोंमें यह बात उत्पन्न हुई ०। यहाँ हे गौतम ! विग्रह है, विवाद है, नानावाद है।"

१—ब्राह्मण और वेदरचयिता ऋषि अनभिज्ञ

"क्या वाशिष्ट ! तू ऐसा कहता है—'यही मार्ग ० है, जिसे कि ब्राह्मण पौष्करसातिने कहा है ?' और भारद्वाज माणवक यह कहता है—० जिसे कि ब्राह्मण तारुक्षने कहा है। तब वाशिष्ट ! किस विषयमें तुम्हारा विग्रह ० है ?"

"हे गौतम ! मार्ग-अमार्गके संवन्धमें ऐतरेय ब्राह्मण, तैत्तिरीय ब्राह्मण, छन्दोग ब्राह्मण, छन्दावा ब्राह्मण, ब्रह्मचर्य-ब्राह्मण अन्य अन्य ब्राह्मण नाना मार्ग बतलाते हैं। तो भी वह (वैसा करनेवालेको) ब्रह्माकी सलोकताको पहुँचाते हैं। जैसे हे गौतम ! ग्राम या कस्बेके पास (अ-दूरे) बहुतसे नानामार्ग होते हैं, तो भी वे सभी ग्राममें ही जानेवाले होते हैं। ऐसे ही हे गौतम ! ० ब्राह्मण नाना मार्ग बतलाते हैं, ०। ० ब्रह्माकी सलोकताको पहुँचाते हैं।"

"वाशिष्ट ! 'पहुँचाते हैं' कहते हो ?" " 'पहुँचाते हैं' कहता हूँ।"

"वाशिष्ट ! 'पहुँचाते हैं०' कहते हो ?"

"पहुँचाते हैं ०।"

"वाशिष्ट ! 'पहुँचाते हैं' कहते हो ?"

"पहुँचाते हैं ०।"

"वाशिष्ट ! त्रैविद्य ब्राह्मणोंमें क्या एक भी ब्राह्मण है, जिसने ब्रह्माको अपनी आँखसे देखा हो ?"

"नहीं, हे गौतम !"

"क्या वाशिष्ट ! त्रैविद्य ब्राह्मणोंका एक भी आचार्य है, जिसने ब्रह्माको अपनी आँखसे देखा हो ?"

"नहीं, हे गौतम !"

"क्या वाशिष्ट ! त्रैविद्य ब्राह्मणोंका एक भी आचार्य-प्राचार्य है ० ?"

"नहीं, हे गौतम !"

"क्या वाशिष्ट ! त्रैविद्य ब्राह्मणोंके आचार्योंकी सातवीं पीढ़ी तकमें कोई है ० ?"

"नहीं, हे गौतम !"

"क्या वाशिष्ट ! जो त्रैविद्य ब्राह्मणोंके पूर्वज, मंत्रोंके कर्ता, मंत्रोंके प्रवक्ता ऋषि (थे)—जिनके कि गीत, प्रोक्त, समीहित पुराने मंत्र-पदको आजकल त्रैविद्य ब्राह्मण अनुगान, अनुभाषण करते हैं, भाषितका अनुभाषण करते हैं, वाचेका अनुवाचन करते हैं, जैसे कि अट्टक, वामक, वामदेव, विश्वामित्र, यमदग्नि, अंगिरा, भरद्वाज, वशिष्ट, कश्यप, भृगु। उन्होंने भी (क्या) यह कहा—जहाँ ब्रह्मा है, जिसके साथ ब्रह्मा है, जिस विषयमें ब्रह्मा है, हम उसे जानते हैं, हम उसे देखते हैं ?"

"नहीं, हे गौतम !"

"इस प्रकार वाशिष्ट ! त्रैविद्य ब्राह्मणोंमें एक ब्राह्मण भी नहीं, जिसने ब्रह्माको अपनी आँखसे देखा हो। ० एक आचार्य भी ०। एक आचार्य-प्राचार्य भी ०। ० सातवीं पीढ़ी तकके आचार्योंमें भी ०। जो त्रैविद्य ब्राह्मणोंके पूर्वज ऋषि ०। और त्रैविद्य ब्राह्मण ऐसा कहते हैं !—'जिसको न जानते हैं, जिसको न देखते हैं, उसकी सलोकताके लिये हम मार्ग उपदेश करते हैं—यही मार्ग ब्रह्म-सलोकताके लिये जल्दी पहुँचानेवाला, है !!' तो क्या मानते हो, वाशिष्ट ! ऐसा होनेपर त्रैविद्य ब्राह्मणोंका कथन क्या अ-प्रामाणिकताको नहीं प्राप्त हो जाता ?"

"अवश्य, हे गौतम ! ऐसा होनेपर त्रैविद्य ब्राह्मणोंका कथन अ-प्रामाणिकताको प्राप्त हो जाता है।"

"अहो ! **वाशिष्ट** ! त्रैविद्य ब्राह्मण जिसको न जानते हैं, जिसको न देखते हैं, उसकी सलोकताके मार्गका उपदेश करते हैं ! ! —'यही ० सीधा मार्ग है'—यह उचित नहीं है। जैसे वाशिष्ट ! अन्धोंकी पाँती एक दूसरेसे जुळी हो; पहलेवाला भी नहीं देखता, बीचवाला भी नहीं देखता, पीछेवाला भी नहीं देखता। ऐसे ही वाशिष्ट ! अन्ध-वेणीके समान ही त्रैविद्य ब्राह्मणोंका कथन है, पहलेवालेने भी नहीं देखा ०। (अतः) उन त्रैविद्य ब्राह्मणोंका कथन प्रलाप ही ठहरता है, व्यर्थ ०, रिक्त ०=तुच्छ ठहरता है। तो ...... वाशिष्ट ! क्या त्रैविद्य ब्राह्मण चन्द्र सूर्यको तथा दूसरे बहुतसे जनोंको देखते हैं, कि कहाँसे वह उगते हैं, कहाँ डूबते हैं, जो कि (उनकी) प्रार्थना करते हैं, स्तुति करते हैं, हाथ जोळ नमस्कार कर घूमते हैं ?"

"हाँ, हे गौतम ! त्रैविद्य ब्राह्मण चन्द्र, सूर्य तथा दूसरे बहुत जनोंको देखते हैं। ०"

"तो क्या मानते हो, वाशिष्ट ! त्रैविद्य ब्राह्मण जिन चन्द्र, सूर्य या दूसरे बहुत जनोंको, देखते हैं, कहाँसे ०। क्या त्रैविद्य ब्राह्मण चन्द्र-सूर्यकी सलोकता (=सहव्यता=एक स्थान निवास) के लिये मार्ग-का उपदेश कर सकते हैं—'यही वैसा करनेवाले को, चन्द्र-सूर्यकी सलोकताके लिये ० सीधा मार्ग है ? ।"

"नहीं, हे गौतम !"

"इस प्रकार वाशिष्ट ! त्रैविद्य ब्राह्मण जिनको देखते हैं,० प्रार्थना करते हैं ०। उन चन्द्र-सूर्यकी सलोकताके लिये भी मार्गका उपदेश नहीं कर सकते, कि ० यही सीधा मार्ग है'; तो फिर ब्रह्माको—जिसे न त्रैविद्य ब्राह्मणोंने अपनी आँखोंसे देखा, ० ० न त्रैविद्य ब्राह्मणोंके पूर्वज ऋषियोंने ०। तो क्या वाशिष्ट ! ऐसा होनेपर त्रैविद्य ब्राह्मणोंका कथन अ-प्रामाणिक (=अप्पाटिहीरक) नहीं ठहरता ?"

"अवश्य, हे गौतम !"

"तो वाशिष्ट ! त्रैविद्य ब्राह्मण जिसे न जानते हैं, जिसे न देखत हैं, उसकी सलोकताके लिये मार्ग उपदेश करते हैं—० यही सीधा मार्ग है'। ० यह उचित नहीं। जैसे कि वाशिष्ट ! पुरुष ऐसा कहे—इस जनपद (=देश) में जो **जनपद-कल्याणी** (=देशकी सुन्दरतम स्त्री) है, मैं उसको चाहता हूँ उसकी कामना करता हूँ। उससे यदि (लोग) पूछें—'हे पुरुष ! जिस जनपद-कल्याणीको तू चाहता है, कामना करता है; जानता है, वह क्षत्राणी है, ब्राह्मणी है, वैश्य स्त्री है, या शूद्री है'? ऐसा पूछने पर 'नहीं' कहे। तब उससे पूछें—'हे पुरुष ! जिस जनपद-कल्याणीको तू चाहता है; जानता है, वह अमुक नामवाली, अमुक गोत्रवाली है ? लम्बी, छोटी या मझोली है ? काली, श्यामा या मंगुर (मछलीके) वर्णकी है ? अमुक ग्राम निगम या नगर में रहती है ?' ऐसा पूछने पर 'नहीं' कहे। तब उससे यह पूछें—'हे पुरुष ! जिसको तू नहीं जानता, जिसको तून नहीं देखा, उसको तू चाहता है, उसकी तू कामना करता है' ? ऐसा पूछनेपर 'हाँ' कहे। तो ...... वाशिष्ट ! क्या ऐसा होनेपर उस पुरुषका भाषण अ-प्रामाणिक नहीं ठहरता ?"

"अवश्य, हे गौतम ! ०।"

"ऐसे ही हे वाशिष्ट ! त्रैविद्य ब्राह्मणोंने ब्रह्माको अपनी आँखसे नहीं देखा०। अहो ! वह त्रैविद्य ब्राह्मण यह कहते हैं—'जिसे हम नहीं जानते ० उसकी सलोकताके लिये मार्ग उपदेश करते हैं०'। तो क्या वाशिष्ट ! ० भाषण अ-प्रामाणिक नहीं होता ?"

"अवश्य, हे गौतम ! ०।"

"साधु, वाशिष्ट ! अहो ! वाशिष्ट ! त्रैविद्य ब्राह्मण जिसको नहीं जानते० उपदेश करते हैं। यह युक्त नहीं। जैसे वाशिष्ट ! कोई पुरुष चौरस्तेपर महलपर चढ़नेके लिये सीढ़ी बनावे। उससे

(लोग) पूछें--'हे पुरुष ! जिस महलपर चढ़नेके लिये सीढ़ी बना रहा है, जानता है वह महल पूर्व दिशामें है या दक्षिण दिशामें, पश्चिम दिशामें है या उत्तर दिशामें, ऊँचा या नीचा, या मझोला है ?' ऐसा पूछनेपर 'नहीं' कहे। उससे ऐसा पूछें--'हे पुरुष ! जिसे तू नहीं जानता, नहीं देखता, उस महलपर चढ़नेके लिये सीढ़ी बना रहा है ?' ऐसा पूछनेपर 'हाँ' कहे। तो क्या मानते हो वाशिष्ट ! ०।"

"अवश्य, हे गौतम ! ०"

"साधु, वाशिष्ट ! ०। यह युक्त नहीं। **जैसे** वाशिष्ट ! इस **अचिरवती** (=राप्ती) नदीकी धार उदकसे पूर्ण (=समतित्तिक) काकपेया (=करारपर बैठकर कौआ भी जिससे पानी पी ले) हो, तब पार-अर्थी=पारगामी=पार-गवेषी=पार जानेकी इच्छावाला पुरुष आवे, वह इस किनारेपर खळे हो दूसरे तीरको आह्वान करे--'हे पार इस पार चले आओ।' 'हे पार ! इस पार चले आओ'; तो क्या मानते हो, वाशिष्ट ! क्या उस पुरुषके आह्वानके कारण, याचनाके कारण, प्रार्थनाके कारण, अभिनन्दनके कारण अचिरवती नदीका पारवाला तीर इस पार आ जायगा ?"

"नहीं, हे गौतम !"

"इसी प्रकार वाशिष्ट ! त्रैविद्य ब्राह्मण--जो ब्राह्मण बनानेवाले धर्म हैं उनको छोळकर जो अ-ब्राह्मण बनानेवाले धर्म हैं, उनसे युक्त होते हुए कहते हैं--'(हम) **इन्द्र**को आह्वान करते हैं, **ईशान**को आह्वान करते हैं, **प्रजापति**को आह्वान करते हैं, **ब्रह्मा**को आह्वान करते हैं, **महर्द्धि**को आह्वान करते हैं, **यम**को आह्वान करते हैं।' वाशिष्ट ! अहो ! त्रैविद्य ब्राह्मण, जो ब्राह्मण बनानेवाले धर्म हैं० उनको छोळकर, आह्वानके कारण० काया छोळ मरनेके बाद ब्रह्माकी सलोकताको प्राप्त हो जायेंगे; यह संभव नहीं है।

"**जैसे** वाशिष्ट ! इस **अचिरवती** नदीकी धार उदक-पूर्ण, (करारपर बैठे) कौवेको भी पीने लायक हो। ० पार जानेकी इच्छावाला पुरुष आवे। वह इसी तीरपर दृढ़ सांकलसे पीछे बाँह करके मजबूत बन्धनसे बँधा हो। वाशिष्ट ! क्या वह पुरुष अचिरवतीके इस तीरसे परले तीर चला जायेगा ?"

"नहीं, हे गौतम !"

"इसी प्रकार वाशिष्ट ! यह पाँच काम-गुण (=कामभोग) आर्य-विनय (=बुद्धधर्म) में जंजीर कहे जाते हैं, बंधन कहे जाते हैं। कौनसे पाँच ? (१) चक्षुसे विज्ञेय इष्ट=कांत=मनाप=प्रिय कामना-युक्त, रूप रागोत्पादक हैं। (२) श्रोत्रसे विज्ञेय शब्द०। घ्राणसे विज्ञेय० गंध। (३) जिह्वासे विज्ञेय रस०। (४) काय (=त्वक्) से विज्ञेय० स्पर्श। वाशिष्ट ! ये पाँच काम-गुण० बंधन कहे जाते हैं। वाशिष्ट ! त्रैविद्य ब्राह्मण इन पाँच काम-गुणोंसे मूर्च्छित, लिप्त, अ-परिणाम-दर्शी हैं, इनसे निकलनेका ज्ञान न करके (=अनिस्सरणपञ्ञा) भोग कर रहे हैं। वाशिष्ट ! अहो !! यह त्रैविद्य ब्राह्मण, जो ब्राह्मण बनानेवाले धर्म हैं, उन्हें छोळकर ०, पाँच काम-गुणोंको० भोगते हुए, कामके बंधनमें बँधे हुए, काया छोळ मरनेके बाद ब्रह्माओंकी सलोकताको प्राप्त होंगे, यह संभव नहीं।

"**जैसे** वाशिष्ट ! इस अचिरवती नदीकी धार०; पुरुष आवे; वह इस तीरपर मुँह ढाँककर लेट जावे। तो० परले तीर चला जायेगा ?"

"नहीं, हे गौतम !"

"ऐसे ही, वाशिष्ट ! यह पाँच **नीवरण** आर्य-विनय (=आर्य-धर्म, बौद्ध-धर्म) में आवरण भी कहे जाते हैं, नीवरण भी कहे जाते हैं, परि-अवनाह (=बंधन) भी कहे जाते हैं। **कौनसे पाँच ?** (१) कामच्छन्द (=भोगकी इच्छा) नीवरण, (२) व्यापाद (=द्रोह)०, (३) स्त्यान-मृद्ध (=आलस्य)०, (४) औद्धत्य-कौकृत्य (=उद्धतपना, खेद)०, (५) विचिकित्सा (=दुविधा)०।

वाशिष्ट ! यह पाँच नीवरण आर्य-विनयमें आवरण भी ० कहे जाते हैं। वाशिष्ट ! त्रैविद्य ब्राह्मण इन पाँच नीवरणों (से) आवृत (=ढँके)=निवृत, अवनद्ध=पर्यवनद्ध (=बँधे) हैं। वाशिष्ट ! अहो ! ! त्रैविद्य ब्राह्मण जो ब्राह्मण बनानेवाले ०। पाँच नीवरणोंसे आवृत० बँधे०, मरनेके बाद ब्रह्माओंकी सलोकताको प्राप्त होंगे, यह संभव नहीं।

"तो वाशिष्ट ! क्या तुमने ब्राह्मणोंके वृद्धों=महल्लकों आचार्य-प्राचार्योंको कहते सुना है—**ब्रह्मा** स-परिगृह (=बटोरनेवाला) है, या अ-परिग्रह ?"

"अ-परिग्रह, हे गौतम !"

"स-वैर-चित्त, या वैर-रहित चित्तवाला ?"

"अवैर-चित्त, हे गौतम !"

"स-व्यापाद (=द्रोहयुक्त) या अ-व्यापाद चित्तवाला ?"

"अव्यापाद-चित्त, हे गौतम !"

"संक्लेश (=चित्त-मल)-युक्त या संक्लेश-रहित चित्तवाला ?"

"संक्लेश-रहित चित्तवाला, हे गौतम !"

"वशवर्त्ती (=अपरतंत्र, जितेन्द्रिय) या अ-वश-वर्त्ती ?"

"वशवर्त्ती, हे गौतम !"

"तो वाशिष्ट ! त्रैविद्य ब्राह्मण स-परिग्रह हैं या अ-परिग्रह ?"

"स-परिग्रह, हे गौतम !"

"० सवैर-चित्त ० ? ०। ? ० सव्यापाद-चित्त ० ? ०। ? ० संक्लेश-युक्त चित्त० ? ०।० वशवर्त्ती ० ?" "अ-वशवर्त्ती, हे गौतम !"

"इस प्रकार वाशिष्ट ! त्रैविद्य ब्राह्मण स-परिग्रह हैं, और ब्रह्मा अ-परिग्रह हैं। क्या स-परिग्रह त्रैविद्य ब्राह्मणोंका परिग्रह-रहित ब्रह्माके साथ समान होना, मिलना, हो सकता है ?"

"नहीं, हे गौतम !"

"साधु, **वाशिष्ट** ! अहो ! ! सपरिग्रह त्रैविद्य ब्राह्मण काया छोळ मरनेके बाद परिग्रह-रहित ब्रह्माके साथ सलोकताको प्राप्त करेंगे, यह संभव नहीं।"

"० स-वैर-चित्त त्रैविद्य ब्राह्मण ०, अवैर-चित्त ब्रह्माके साथ सलोकता ० संभव नहीं। ० सव्यापाद-चित्त ०। ० संक्लेश-युक्त चित्त ०। ० अवशवर्त्ती ०।

"वाशिष्ट ! त्रैविद्य ब्राह्मण बे-रास्ते जा फँसे हैं, फँसकर विपादको प्राप्त हैं; सूखेमें **जैसे तैर** रहे हैं। इसलिये त्रैविद्य ब्राह्मणोंकी त्रिविद्या वीरान (=कांतार) भी कही जा(सक)ती है, विपिन (=जंगल) भी कही जा(सक)ती है, व्यसन (=आफत) भी कही जा (सकती) है।"

२—बुद्धका बतलाया मार्ग

ऐसा कहनेपर वाशिष्ट माणवकने भगवान्‌से कहा—"मैंने यह सुना है, हे गौतम ! कि श्रमण गौतम ब्रह्माओंकी सलोकताका मार्ग जानता है ?"

"तो वाशिष्ट ! **मनसाकट** यहाँसे समीप है, मनसाकट यहाँसे दूर नहीं है न ?"

"हाँ, हे गौतम ! मनसाकट यहाँसे समीप है ०, यहाँसे दूर नहीं है।"

"तो वाशिष्ट ! यहाँ एक पुरुष है, (जो कि) मनसाकटहीमें पैदा हुआ है, बढ़ा ह। उससे .. मनसाकटका रास्ता पूछें। वाशिष्ट ! मनसाकटमें जन्मे, बढ़े, उस पुरुषको, मनसाकटका मार्ग पूछनेपर (उत्तर देनेमें) क्या देरी या जळता होगी ?"

"नहीं, हे गौतम !"

"सो किस कारण ?"

"हे गौतम ! वह पुरुष मनसाकटमें उत्पन्न और बढ़ा है, उसको मनसाकटके सभी मार्ग सु-विदित हैं।"

"वाशिष्ट ! मनसाकटमें उत्पन्न और बढ़े हुए उस पुरुषको मनसाकटका मार्ग पूछनेपर देरी या जळता हो सकती है, किन्तु **तथागत**को ब्रह्मलोक या ब्रह्मलोक जानेवाला मार्ग पूछनेपर, देरी या जळता नहीं हो सकती। वाशिष्ट ! मैं ब्रह्माको जानता हूँ, ब्रह्मलोकको, और ब्रह्मलोक-गामिनी-प्रतिपद् (=ब्रह्मलोकके मार्ग)को भी; और जैसे मार्गारूढ़ होनेसे ब्रह्मलोकमें उत्पन्न होता है, उसे भी जानता हूँ ।"

ऐसा कहनेपर **वाशिष्ट** माणवकने भगवान्‌से कहा—"हे गौतम ! मैंने सुना है, श्रमण गौतम ब्रह्माओंकी सलोकताका मार्ग उपदेश करता है । अच्छा हो आप गौतम हमें ब्रह्माकी सलोकताके मार्ग (का) उपदेश करें, हे गौतम ! आप (हम) ब्राह्मण-संतानका उद्धार करें।"

"तो वाशिष्ट ! सुनो, अच्छी प्रकार मनमें (धारण) करो, कहता हूँ।"

"अच्छा भो !" वाशिष्ट माणवकने भगवान्‌से कहा। भगवान्‌ने कहा—"वाशिष्ट ! यहाँ संसारमें तथागत उत्पन्न होते हैं। ०[1] इस प्रकार भिक्षु-शरीरके चीवर, और पेटके भोजनसे संतुष्ट होता है। इस प्रकार वाशिष्ट ! भिक्षु शील-सम्पन्न होता है। ० वह अपनेको इन पाँच नीवरणोंसे मुक्त देख, प्रमुदित होता है। प्रमुदित हो प्रीति प्राप्त करता है, प्रीति-मान्‌का शरीर स्थिर, शान्त होता है। प्रश्रब्ध (=शान्त) शरीरवाला सुख अनुभव करता है, सुखितका चित्त एकाग्र होता है।

(१) *मैत्री भावना*

"वह मैत्री (=मित्र-भाव) युक्त चित्तसे एक दिशाको पूर्ण करके विहरता है, ० दूसरी दिशा ०, ० तीसरी दिशा ०, ० चौथी दिशा ० इसी प्रकार ऊपर नीचे आळे बेळे सम्पूर्ण मनसे, सबके लिये, मित्र-भाव (०**मैत्री**=)-युक्त, विपुल, महान्=अ-प्रमाण, वैर-रहित, द्रोह-रहित चित्तसे सारे ही लोकको स्पर्श करता विहरता है। **जैसे** वाशिष्ट ! बलवान् शंख-ध्मा (=शंख बजानेवाला) थोळी ही मिहनतसे चारों दिशाओंको गुँजा देता है। वाशिष्ट ! इसी प्रकार मित्र-भावनासे भावित, चित्तकी मुक्तिसे जितने प्रमाणमें काम किया गया है, वह वहीं अवशेप=खतम नहीं होता। यह भी वाशिष्ट ! ब्रह्माओंकी **सलोकताका** मार्ग है।

(२) *करुणा भावना*

"और फिर वाशिष्ट ! **करुणा-युक्त** चित्तसे एक दिशाको ०।

(३) *मुदिता भावना*

मुदिता-युक्त चित्तसे ० ०;

(४) *उपेक्षा भावना*

उपेक्षा-युक्त चित्तसे ० विपुल, महान्, अप्रमाण, वैररहित, द्रोह-रहित चित्तसे सारे ही लोकको स्पर्श करके विहरता है। **जैसे** वाशिष्ट ! बलवान् शंख-ध्मा ०। वाशिष्ट ! इसी प्रकार उपेक्षासे

---

[1] देखो पृष्ठ २३-२७।

भावित चित्तकी मुक्तिसे जितने प्रमाणमें काम किया गया है, वहीं अवशेष=खतम नहीं होता। यह भी वाशिष्ट ! ब्रह्माओंकी सलोकताका मार्ग है।

"तो........वाशिष्ट ! इस प्रकारके विहारवाला भिक्षु, स-परिग्रह है, या अ-परिग्रह ?" "अ-परिग्रह, हे गौतम !"

"स-वैर-चित्त या अ-वैर-चित्त ?" "अ-वैर-चित्त, हे गौतम !"

"स-व्यापाद-चित्त या अ-व्यापाद-चित्त ?"

"अ-व्यापाद-चित्त, हे गौतम !"

"संक्लिष्ट (=मलिन)-चित्त या अ-संक्लिष्ट-चित्त ?"

"अ-संक्लिष्ट-चित्त, हे गौतम !"

"वश-वर्ती (=जितेन्द्रिय) या अ-वश-वर्ती ?"

"वश-वर्ती, हे गौतम !"

"इस प्रकार वाशिष्ट ! भिक्षु अ-परिग्रह है, ब्रह्मा अ-परिग्रह है, तो क्या अ-परिग्रह भिक्षुकी अ-परिग्रह ब्रह्माके साथ समानता है, मेल है ?"

"हाँ, हे गौतम !"

"साधु, वाशिष्ट ! वह अ-परिग्रह भिक्षु काया छोळ मरनेके बाद, अ-परिग्रह ब्रह्माकी सलोकता-को प्राप्त होगा, यह संभव है। इस प्रकार भिक्षु अ-वैर-चित्त है०।० वश-वर्ती भिक्षु काया छोळ मरनेके बाद वश-वर्त्ती ब्रह्माकी सलोकताको प्राप्त होगा, यह संभव है।"

ऐसा कहने पर वाशिष्ट और भारद्वाज माणवकोंने भगवान्से कहा—

"आश्चर्य हे गौतम ! अद्भुत हे गौतम ! ०[1] आजसे आप गौतम हम (लोगोंको) अंजलिबद्ध शरणागत उपासक धारण करें !"

(इति सीलक्खन्ध-वग्ग ॥१॥)

---

[1] देखो पृष्ठ ३२

२—महावग्ग

१४–महापदान-सुत्त (२।१)

१––विपश्यी आदि पुराने छै बुद्धोंकी जाति आदि। २––विपस्सी बुद्धकी जीवनी––(१) जाति गोत्र आदि; (२) गर्भमें आनेके लक्षण; (३) बत्तीस शरीर-लक्षण; (४) गृहत्यागके चार पूर्व-लक्षण––वृद्ध, रोगी, मृत और संन्यासीका देखना; (५) संन्यास; (६) बुद्धत्व-प्राप्ति; (७) धर्मचक्र प्रवर्तन; (८) शिष्यों द्वारा धर्मप्रचार; (९) देवता साक्षी। देवतागण।

ऐसा मैंने सुना––एक समय भगवान् **श्रावस्तीमें अनाथपिण्डकके** आराम **जेतवनकी करेरी कुटीमें** विहार करते थे।

तब भिक्षासे लौट भोजन कर लेनेके बाद करेरी(कुटी)की पर्णशाला (=बैठक)में इकट्ठे होकर बैठे बहुतसे भिक्षुओंके बीच पूर्वजन्मके विषयमें धार्मिक-कथा चली––पूर्वजन्म ऐसा होता है, वैसा होता है। भगवान्ने विशुद्ध और अलौकिक दिव्य-श्रोत्रसे उन भिक्षुओंकी इस बातचीतको सुन लिया। तब भगवान् आसनसे उठकर जहाँ **करेरी** पर्णशाला(=मंडलमाल) थी वहाँ गये। जाकर बिछे आसनपर बैठ गये। बैठकर भगवान्ने उन भिक्षुओंको संबोधित किया––"भिक्षुओ! अभी क्या बात चल रही थी, किस बातमें आकर रुक गये?"

ऐसा कहनेपर उन भिक्षुओंने भगवान्से यह कहा––"भन्ते! भिक्षासे लौटे० हम भिक्षुओं-के बीच पूर्व-जन्मके विषयमें धार्मिक-कथा चल रही थी—पूर्व जन्म ऐसा है, वैसा है। भन्ते! यही बात-हममें चल रही थी, कि भगवान् चले आये।"

"भिक्षुओ! पूर्व-जन्म-संबंधी धार्मिक-कथाको क्या तुम सुनना चाहते हो?"

"भगवान्! इसीका काल है। सुगत! इसीका काल है, कि भगवान् पूर्व-जन्म-संबंधी धार्मिक-कथा कहें। भगवान्की बातको सुनकर भिक्षु लोग धारण करेंगे।"

"भिक्षुओ! तो सुनो, अच्छी तरह मनमें करो। कहता हूँ।"

"अच्छा भन्ते"––कह उन भिक्षुओंने भगवान्को उत्तर दिया।

१–विपश्यी आदि छै बुद्धोंकी जाति आदि

भगवान् ने कहा––"भिक्षुओ! आजसे इकानवे कल्प पहले **विपस्सी**(=विपश्यी) भगवान्, अर्हत् और सम्यक् सम्बुद्ध संसारमें उत्पन्न हुये थे। भिक्षुओ! आजसे एकतीस कल्प पहले **सिखी** (=शिखी) भगवान्०। भिक्षुओ! उसी एकतिसवें कल्पमें **वेस्सभू** (=विश्वभू) भगवान्०। भिक्षुओ! इसी **भद्रकल्प** (वर्तमान कल्प)में "**ककुसन्ध** (=क्रकुच्छन्द) भगवान्०। भिक्षुओ! इसी **भद्रकल्पमें कोणागमन भगवान्** ०। भिक्षुओ! इसी०में **कस्सप** (=काश्यप) भगवान्०। भिक्षुओ! इसी०में **मैं** अर्हत् सम्यक् सम्बुद्ध संसारमें उत्पन्न हुआ।

"भिक्षुओ! विपस्सी भगवान्० क्षत्रिय जातिके थे, क्षत्रिय कुलमें उत्पन्न हुये थे। भिक्षुओ! सिखी भगवान्० क्षत्रिय०। भिक्षुओ! वेस्सभू भगवान्० क्षत्रिय०। भिक्षुओ! ककुसन्ध **भगवान्०**

ब्राह्मण ०। भिक्षुओ! कोणागमन भगवान्० ब्राह्मण०। भिक्षुओ! कस्सप भगवान्० ब्राह्मण०। **भिक्षुओ**! और मैं अर्हत् सम्यक् सम्बुद्ध क्षत्रिय जातिका, क्षत्रिय कुलमें उत्पन्न हुआ।

"भिक्षुओ! **विपस्सी** भगवान्०कोण्डञ्ञ (=कौंडिन्य) गोत्रके थे।०**सिखी** भगवान्० **कौण्डिन्य गोत्र**०।० वेस्सभू भगवान्० कौण्डिन्य गोत्र०।० ककुसन्ध भगवान्० काश्यप गोत्रके थे।० **कोणागमन** भगवान्० काश्यप गोत्र०।० कस्सप भगवान्० काश्यप गोत्र०। भिक्षुओ! और मैं अर्हत् **सम्यक्** सम्बुद्ध गोतम गोत्रका हूँ।

"भिक्षुओ! विपस्सी भगवान्० का आयुपरिमाण अस्सी हज़ार वर्षका था।० सिखी भगवान्० **सत्तरहज़ारवर्ष**०।० वेस्सभू भगवान्० साठ हज़ार वर्ष०।०ककुसन्ध भगवान्०चालीस हज़ार वर्ष०।०कोणा-**गमन भगवान्**०तीस हज़ार वर्ष०।०कस्सप भगवान्० बीस हज़ार वर्ष०। भिक्षुओ! और मेरा आयुप्रमाण **बहुत** कम और छोटा है, (इस समय) जो बहुत जीता है वह कुछ कम या अधिक सौ वर्ष (जीता है)।

"भिक्षुओ! विपस्सी भगवान्० पांडर वृक्षके नीचे अभिसम्बुद्ध (=बुद्धत्वको प्राप्त) हुये थे।० सिखी० भगवान्० पुण्डरीकके नीचे ०।० वेस्सभू भगवान्० साल वृक्ष०।० ककुसन्ध भगवान्० **सिरीस** वृक्ष०।० कोणागमन भगवान्० गूलर वृक्ष०।० कस्सप भगवान्० बर्गद०। भिक्षुओ! और मैं **अर्हत्** सम्यक् सम्बुद्ध पीपल वृक्षके नीचे अभिसम्बुद्ध हुआ।

"भिक्षुओ! विपस्सी भगवान्० के **खण्ड** और **तिस्स** नामक दो प्रधान शिष्य हुये।० सिखी **भगवान्**० के **अभिभू** और **सम्भव** नामक०।० वेस्सभू भगवान्० के **सोण** और **उत्तर** नामक०।० ककु-**सन्ध** भगवान्० कें **विधुर** और **सञ्जीव** नामक०।० कोणगमन भगवान्०के **भीयोसु** और **उत्तर नामक**०।० कस्सप भगवान्० के **तिस्स** और **भारद्वाज** नामक०। भिक्षुओ! और मेरे **सारिपुत्त** और **मोग्गलान** नामक दो प्रधान शिष्य हैं।

"भिक्षुओं! विपस्सी भगवान्० के तीन शिष्य-सम्मेलन (=श्रावक-सन्निपात) हुये। अळसठ **लाख** भिक्षुओंका एक शिष्य-सम्मेलन था। एक लाख भिक्षुओंका एक०। (और) अस्सी हजार भिक्षुओंका एक०। भिक्षुओ! विपस्सी भगवान्० के यही तीन शिष्य-सम्मेलन थे, सभी (भिक्षु) अर्हत् थे।० सिखी **भगवान्**० के तीन०। एक लाख भिक्षुओंका एक०। अस्सी हजार भिक्षुओंका एक०। सत्तर हजार भिक्षुओंका एक०। भिक्षुओ! सिखी भगवान्०के यही तीन० सभी अर्हत्०।—० वेस्सभू भगवान्० के तीन०। अस्सी हजार०। सत्तर हजार०। साठ हजार०। भिक्षुओ! वेस्सभू भगवान्०कें यही तीन०। **ककुसन्ध** भगवान्० का एक ही शिष्य-सम्मेलन चालीस हजार भिक्षुओंका था। भिक्षुओ! ककुसन्ध **भगवान्**० के यही एक०।० कोणागमन भगवान्० का एक ही शिष्य-सम्मेलन तीस हजार भिक्षुओंका था। भिक्षुओ! कोणागमन० का यही एक०।० कस्सप भगवान् ० बीस हजार०।० कस्सपका यही०— **भिक्षुओ**! और मेरा एक ही **शिष्य-सम्मेलन** हुआ, बारह सौ पचास भिक्षुओंका। भिक्षुओ! मेरा यही एक शिष्य-सम्मेलन० अर्हत्०।

"भिक्षुओ! विपस्सी भगवान्० का **अशोक** नामक भिक्षु उपस्थाक (=सहचर सेवक) **प्रधान** उपस्थाक था।० सिखी भगवान्० का **खेमंकर** भिक्षु उपस्थाक०।० वेस्सभू भगवान्० का **उपसन्त**०।० ककुसन्ध भगवान्० का **बुद्धिज**०।० कोणागमन भगवान्० का **सोत्थिज**०।० कस्सप भगवान्० का **सर्वमित्र**०। भिक्षुओ! और मेरा **आनन्द** नामक भिक्षु उपस्थाक० हुआ।

"भिक्षुओ! **विपस्सी** भगवान्० कें **बन्धुमान्** नामक राजा पिता (और) **बन्धुमती** देवी नामकी माता थी। बन्धुमान् राजाकी राजधानी **बन्धुमती** नामक नगरी थी।० **सिखी** भगवान्० के **अरुण** नामक राजा पिता और **प्रभावती** देवी नामकी माता०। अरुण राजाकी राजधानी **अरुणवती** नामक **नगरी** थी।० **वेस्सभू** भगवान्० के **सुप्रतीत** नामक राजा० **यशोवती** देवी नामक०। सुप्रतीत राजाकी **राजधानी अनोमा**०।० **ककुसन्ध** भगवान्० के **अग्निदत्त** नामक ब्राह्मण पिता, **विशाखा** नामक ब्राह्मणी

माता०। भिक्षुओ ! उस समय **खेम** नामक राजा था। खेंम राजाकी राजधानी **खेमवती** नामक नगरी थी। ० **कोणागमन** भगवान्० **यज्ञदत्त** नामक ब्राह्मण पिता, **उत्तरा** नामक ब्राह्मणी माता०। भिक्षुओ ! उस समय **सोभ** नामक राजा था। सोभ राजाकी राजधानी **सोभवती** नामक नगरी थी।० **कस्सप** भगवान्० **ब्रह्मदत्त** नामक ब्राह्मण पिता, **धनवती** नामक ब्राह्मणी माता०। उस समय **किकी** नामक राजा था। भिक्षुओ ! किकी राजाकी राजधानी **वाराणसी** (=बनारस) थी। भिक्षुओ ! और मेरा **शुद्धोदन** नामक राजा पिता, **मायादेवी** नामक माता०। **कपिलवत्थु** नामक नगरी राजधानी रही।

भगवान्ने यह कहा। सुगत इतना कह आसनसे उठकर चले गये।

तब भगवान्के जाते ही उन भिक्षुओंमें यह बात चली—"आवुसो ! आश्चर्य है, आवुसो ! अद्भुत है—तथागतका ऐश्वर्य्य और उनकी महानुभावता; कि (इस तरह) तथागतोंने अतीत कालमें निर्वाण प्राप्त किया, संसारके प्रपञ्चपर विजय प्राप्त किया, अपने मार्गको समाप्त किया, और सब दुःखोंका अन्त कर दिया। (वह) बुद्धोंको जन्मसे भी स्मरण करते हैं, नामसे भी स्मरण करते हैं, गोत्रसे भी स्मरण करते हैं, आयु-परिप्रमाणसे भी०, प्रधान शिष्यके पुद्गल (=व्यक्ति)से भी०, शिष्य-सम्मेलन (=श्रावक-सन्निपात)से भी। वे भगवान् इस जातिके थे यह भी, इस नामके, इस गोत्रके, इस शीलके, इस धर्मके, इस प्रज्ञाके, इस प्रकार रहनेवाले, इस प्रकार विमुक्त थे यह भी।

"तो आवुसो ! क्या यह तथागतकी ही शक्ति है जिस शक्तिसे सम्पन्न हो तथागत अतीतमें निर्वाण प्राप्त किये, संसारके प्रपञ्चों० बुद्धोंको जन्मसे भी, नामसे भी०, वे भगवान् इस जन्मके०? या देवता तथागतको यह सब कह देते हैं, जिससे तथागत अतीत कालमें निर्वाण प्राप्त किये० बुद्धोंको जन्मसे, नामसे० वे भगवान् इस जातिके०।—यही बात उन भिक्षुओंमें चल रही थी।

तब भगवान् संध्या समय ध्यानसे उठ कर जहाँ **कारेरी**की पर्णशाला थी वहाँ गये। जाकर बिछे आसनपर बैठ गये। बैठकर भगवान्ने भिक्षुओंको संबोधित किया—"भिक्षुओ ! क्या बात चल रही थी, किस बातमें आकर रुक गये ?"

ऐसा पूछेनेपर उन भिक्षुओंने भगवान्से कहा—"भन्ते ! भगवान्के जाते ही हम लोगोंके बीच यह बात चली—आवुसो ! तथागतका ऐश्वर्य और उनकी महानुभावता, आश्चर्य है, आवुसो ! अद्भुत है, कि तथागत अतीत कालमें निर्वाण प्राप्त किये ० बुद्धोंको जन्मसे ०, 'वे भगवान् इस जातिके थे ०'। तो आवुसो ! क्या यह तथागतकीही शक्ति ०। या देवता तथागतको यह सब कह देते हैं जिससे तथागत अतीत कालमें ०'। भन्ते ! हम लोगोंके बीच यही बात चल रही थी, कि भगवान् आ गये।"

"भिक्षुओ ! यह तथागतकी ही शक्ति है जिस शक्तिसे सम्पन्न होकर तथागत अतीत कालमें निर्वाण पाये ० बुद्धोंको जन्मसे ०, 'वे भगवान् इस जातिके ०' यह भी। देवताने भी तथागतको कह दिया था जिससे तथागत अतीत कालमें ० बुद्धोंको जन्मसे स्मरण ०, वे भगवान् इस जन्मके ० यह भी। भिक्षुओ ! क्या तुम पूर्वजन्म-सम्बन्धी धार्मिक कथाको अच्छी तरह सुनना चाहते हो ?"

"भगवान् ! इसीका काल है। सुगत ! इसीका काल है, कि भगवान् पूर्वजन्म-सम्बन्धी धार्मिक कथा अच्छी तरह कहें; भगवान्की बातोंको सुनकर भिक्षु लोग उसे धारण करेंगे।"

"भिक्षुओ ! तो सुनो, अच्छी तरह मनमें करो, कहता हूँ।" "अच्छा भन्ते" उन्होंने उत्तर दिया।

२—विपस्सी बुद्धकी जीवनी

(१) जाति गोत्र आदि

भगवान्ने यह कहा—"आजसे इक्कानवे कल्प पहले (१) **विपस्सी** भगवान् ० क्षत्रिय जाति ०। भिक्षुओ ! विपस्सी भगवान् अर्हत् ० कौण्डिन्य गोत्रके थे। ० विपस्सी भगवान् ० का आयुपरिमाण अस्सी हजार वर्षोंका था। ० विपस्सी भगवान् ० पाटलि वृक्षके नीचे बुद्ध हुए थे। ० विपस्सी भगवान् ०

के **खण्ड** और **तिस्स** नामक दो प्रधान श्रावक (=शिष्य) थे। ० विपस्सी भगवान् ० के तीन शिष्य-सम्मेलन हुए। एक शिष्यसम्मेलन अळसठ लाख भिक्षुओंका था। एक ० एक लाख भिक्षुओंका ०। एक ० अस्सी हजार भिक्षुओंका। विपस्सी भगवान्‌के यही तीन शिष्य-सम्मेलन हुए, जिनमें सभी अर्हत् (भिक्षु) थे। विपस्सी भगवान्०का अशोक नामक भिक्षु प्रधान उपस्थाक था। ० विपस्सी भगवान्०का बन्धुमान् नामक राजा पिता और बन्धुमती नामकी देवी माता थी। **बन्धुमान्** राजाकी राजधानी बन्धुमती नामक नगरी थी।

(२) *गर्भमें आनेके लक्षण*

"भिक्षुओ! तब विपस्सी बोधिसत्व **तुषित** नामक देवलोकसे च्युत होकर होशके साथ अपनी माताकी कोखमें प्रविष्ट हुए। उसके ये (पूर्व-)लक्षण हैं। (१) भिक्षुओ! लक्षण यह है कि जब बोधिसत्व तुषित देवलोकसे च्युत होकर माताकी कोखमें प्रविष्ट होते हैं तब देवता, मार और ब्रह्मा, श्रमण-ब्राह्मण, और देव मनुष्य सहित इस लोकमें देवोंके देवतेजसे भी बढ़कर बळा भारी प्रकाश होता है। नीचेके नरक—जो अन्धकारसे, अन्धकारकी कालिमासे परिपूर्ण हैं, जहाँ बळी ऋद्धि=बळे महानुभाववाले ये चाँद और सूरज भी अपनी रोशनी नहीं पहुँचा सकते, वहाँ भी—देवोंके देवतेजसे बढ़कर भारी प्रकाश होता है। जो प्राणी वहाँ उत्पन्न हुए हैं, वे भी उस प्रकाशमें एक दूसरेको देखते हैं—'अरे! यहाँ दूसरे भी प्राणी उत्पन्न हैं'। यह दस हजार लोक-धातु (=ब्रह्मांड) कँपने और हिलने लगती है। संसारमें देवोंके देवतेजसे भी बढ़कर बळा भारी प्रकाश फैल जाता है, यह लक्षण होता है।

"भिक्षुओ! (२) लक्षण यह है कि जब बोधिसत्व माताकी कोखमें प्रविष्ट होते हैं, तब चारो देव-पुत्र उन्हें चारो दिशाओंसे रक्षा करनेके लिये आते हैं, जिसमें कि बोधिसत्वको या बोधिसत्वकी माताको कोई मनुष्य या **अमनुष्य** न कष्ट दे सके। यह भी लक्षण है।

"भिक्षुओ! (३) लक्षण यह है कि जब बोधिसत्व माताकी कोखमें प्रविष्ट होते हैं, तब बोधिसत्वकी माता प्रकृतिसे ही शीलवती होती है। हिंसासे विरत रहती है। चोरीसे ०। दुराचार-से ०। मिथ्या-भाषणसे ०। सुरा या नशीली वस्तुओंके सेवनसे ०। यह भी लक्षण है।"

"भिक्षुओ! (४) लक्षण यह है कि जब बोधिसत्व ०। तब बोधिसत्वकी माताका चित्त पुरुषकी ओर आकृष्ट नहीं होता। कामवासनाओंके लिये, बोधिसत्वकी माता किसी पुरुषके द्वारा रागयुक्त चित्तसे जीती नहीं जा सकती। यह भी लक्षण है।

"भिक्षुओ! (५) लक्षण यह है कि जब बोधिसत्व ०। तब बोधिसत्वकी माता पाँच भोगों (=काम-गुणों)को प्राप्त करती है, वह पाँच भोगोंसे समर्पित और सेवित रहती है। यह भी लक्षण है।

"भिक्षुओ! (६) लक्षण यह है कि जब बोधिसत्व ०। तब बोधिसत्वकी माताको कोई रोग नहीं उत्पन्न होता, बोधिसत्वकी माता सुखपूर्वक रहती है। बोधिसत्वकी माता अ-क्लान्त शरीर-वाली रह अपनी कोखमें स्थित, सभी अङ्ग-प्रत्यङ्गसे पूर्ण (=अहीनेन्द्रिय) बोधिसत्वको देखती है। भिक्षुओ! **जैसे** अच्छी जातिवाली, आठ पहलुओंवाली, अच्छी खरादी शुद्ध, निर्मल (और) सर्वाकार सम्पन्न वैदूर्यमणि (=हीरा) (हो)। उसमेंका सूत्र उजला, नीला, या पीला, या लाल, या धूसर (हो) उसे आँखवाला मनुष्य हाथमें लेकर देखे—'यह ० वैदूर्यमणि, ०। यह इसमेंका सूत्र ०। भिक्षुओ! उसी तरह जब बोधिसत्व माताकी कोखमें प्रविष्ट होते हैं तब बोधिसत्वकी माताको कोई रोग नहीं उत्पन्न होता, बोधिसत्वकी माता सुख-पूर्वक रहती है ०, बोधिसत्वको देखती है ०। यह भी लक्षण है।

"भिक्षुओ! (७) लक्षण यह है कि बोधिसत्वके उत्पन्न होनेके एक सप्ताह बाद बोधि-सत्वकी माता मर जाती है, और तुषित देवलोकमें उत्पन्न होती है। यह भी लक्षण है।

"भिक्षुओ! (८) लक्षण यह है कि जैसे दूसरी स्त्रियाँ नव या दस महीना कोखमें बच्चे-

को रखकर प्रसव करती हैं, वैसे बोधिसत्वकी माता बोधिसत्वको नहीं प्रसव करती। बोधिसत्वकी माता बोधिसत्वको पूरे दस महीने कोखमें रखकर प्रसव करती है। यह भी लक्षण है।

"भिक्षुओ! (९) लक्षण यह है कि जैसे और स्त्रियाँ बैठी या सोई प्रसव करती हैं, वैसे बोधिसत्वकी माता ० नहीं ०। बोधिसत्वकी माता बोधिसत्वको खळी खळी प्रसव करती है। यह भी लक्षण है।

"भिक्षुओ! (१०) लक्षण यह है कि जब बोधिसत्व माताकी कोखसे बाहर आते हैं, (तो उन्हें) पहले पहल देवता लोग लेते हैं, पीछे मनुष्य लोग। यह भी लक्षण है।

"भिक्षुओ! (११) लक्षण यह है कि बोधिसत्व माताकी कोखसे निकलकर पृथ्वीपर गिरने भी नहीं पाते, कि चार देवपुत्र उन्हें ऊपरसे लेकर माताके सामने रखते हैं, (और कहते हैं—) प्रसन्न होवें, आपको बळा भग्यवान् पुत्र उत्पन्न हुआ है। यह भी लक्षण है।

"भिक्षुओ! (१२) लक्षण यह है कि जब बोधिसत्व माताकी कोखसे निकलते हैं तब, बिलकुल निर्मल पानीसे अलिप्त, कफसे अलिप्त, रुधिरसे अलिप्त, और किसी भी अशुचिसे अलिप्त, शुद्ध=विशद निकलते हैं। **जैसे** भिक्षुओ! मणिरत्न **काशी**के वस्त्रसे लपेटा हुआ हो, तो न (वह) मणिरत्न काशीके वस्त्रमें चिपट जाता है और न काशीका वस्त्र मणिरत्नमें चिपट जाता है। सो क्यों? दोनोंकी शुद्धताके कारण। इसी तरहसे भिक्षुओ! जब ० निकलते हैं, ० विशद ही निकलते हैं। यह भी लक्षण है।

"भिक्षुओ! (१३) लक्षण यह है कि जब बोधिसत्व ० निकलते हैं तब आकाशसे दो जल-धारायें छूटती हैं, एक शीत (जल)की, एक उष्ण (जल)की, जिनसे बोधिसत्व और माताका प्रक्षालन (=उदककृत्य) होता है। यह भी लक्षण है।

"भिक्षुओ! (१४) लक्षण यह है कि बोधिसत्व उत्पन्न होते ही, समान पैरोंपर खळे हो उत्तरकी ओर मुँह करके सात पग चलते हैं। श्वेत छत्रके नीचे सभी दिशाओंको देखते हैं, और इस श्रेष्ठ वचनको घोषित करते हैं—'इस लोकमें मैं श्रेष्ठ हूँ। इस लोकमें मैं अग्र हूँ। इस लोकमें मैं सबसे ज्येष्ठ हूँ। यह मेरा अन्तिम जन्म है। अब (मेरा) फिर जन्म नहीं होगा।' यह ही लक्षण है।

"भिक्षुओ! (१५) लक्षण यही है कि जब बोधिसत्व ० निकलते हैं तब, देव, मार ०[१] लोकमें ० अत्यन्त तीक्ष्ण प्रकाश होता है। संसारकी बुराइयाँ दूर हो जाती हैं, अन्धकारकी कालिमा हट जाती है, जहाँ इन चाँद-सूरज ० वहाँ भी देवोंके ०। जो वहीं उत्पन्न हुए प्राणी ०, 'दूसरे भी प्राणी ०।' यह दस हजार लोकधातु (=ब्रह्माण्ड) कँपता ०। ०। यह भी लक्षण है।

(३) बत्तीस शरीर-लक्षण

"भिक्षुओ! उत्पन्न होनेपर विपस्सी कुमारने **बन्धुमान्** राजासे यह कहा—'देव! आपको पुत्र उत्पन्न हुआ है। देव, आप उसे देखें।। भिक्षुओ! बन्धुमान् राजाने विपस्सी कुमारको देखा। देख-कर ज्योतिषी (=नैमित्तिक) ब्राह्मणोंको बुलाकर यह कहा—'आप लोग ज्योतिषी ब्राह्मण (मेरे) कुमारके लक्षण देखें।' उन ज्योतिषी ब्राह्मणोंने लक्षण विचारा। गणना देखकर बन्धुमान् राजासे यह कहा—'देव! प्रसन्न होवें। आपका पुत्र बळा भाग्यवान् है। महाराज आपको बळा लाभ है, कि आपके कुलमें ऐसा पुत्र उत्पन्न हुआ है। देव! यह कुमार महापुरुषोंके बत्तीस **लक्षणों**से युक्त है, जिनसे युक्त महापुरुषकी दोही गतियाँ होती हैं, तीसरी नहीं—(१) यदि वह घरमें रहता है तो धार्मिक, धर्मराजा, चारों ओर विजय पानेवाला, शांति स्थापित करनेवाला (और) सात रत्नोंसे युक्त चक्रवर्ती

---

[१] **देखो पृष्ठ ९७।**

राजा होता है। उसके ये सात रत्न होते हैं—चक्र-रत्न,-हस्ति रत्न, अश्व-रत्न, मणि-रत्न, स्त्री-रत्न, गृहपति रत्न, और सातवाँ पुत्र रत्न। एक हजारसे भी अधिक सूर, वीर, शत्रुकी सेनाओंको मर्दन करनेवाले उसके पुत्र होते हैं। वह सागरपर्यन्त इस पृथ्वीको दण्ड और शस्त्रके बिना ही धर्मसे जीत कर रहता है। (२) यदि वह घरसे बेघर होकर प्रव्रजित होता है, (तो) संसारके आवरणको हटा सम्यक् सम्बुद्ध अर्हत् होता है।

"देव! यह कुमार महापुरुषोंके किन, बत्तीस लक्षणों[1]से युक्त है, जिनसे युक्त होनसे० ? यदि वह घरमें रहता है तो०। यदि वह घरसे बेघर हो प्रव्रजित होजाता है०। (१) देव! यह कुमार **सुप्रतिष्ठित-पाद** (जिसका पैर जमीन पर बराबर बैठता हो) है, यह भी देव! इस कुमारके महापुरुष लक्षणोंमें एक है। (२) देव! इस कुमारके नीचे पैरके तलवेमें सर्वाकार-परिपूर्ण नाभि-नेमि (=घुट्ठी)-युक्त सहस्र आरोंवाले चक्र हैं। (३) देव! यह कुमार **आयत-पार्ष्णि** (=चौळी घुट्ठीवाला) है। (४) ० **दीर्घ-अंगुल** ०। (५) ० मृदु तरुण हस्त-पाद०। (६) ० जाल-हस्त-पाद (=अंगुलियोंके बीच कहीं छेद नहीं दिखाई देता) ०। (७) ० उस्संखपाद (=गुल्फ जिस पादमें ऊपर अवस्थित हैं) ०। (८) ० एणी-जंघ (=पेंडुलीवाला भाग मृग जैसा जिसका हो) ०। (९) (सीधे) खळे बिना झुके देव! यह कुमार दोनों घुटनोंको अपने हाथके तलवेसे छूता है (=आजानुबाहु) ०। (१०) कोषाच्छादित (=चमळेसे ढँकी) वस्तिगुह्य (=पुरुष-इन्द्रिय) ०। (११) सुवर्ण वर्ण० कांचन समान त्वचावाले०। (१२) सूक्ष्मछवि (छवि=ऊपरी चमळा) है० जिससे कायापर मैल-धूल नहीं चिपटती०। (१३) एकैकलोम, एक एक रोम कूपमें एक एक रोम हैं०। (१४) ० ऊर्ध्वाग्र-लोम० अंजन समान नीले तथा प्रदक्षिणा (बायेंसे दाहिनी ओर)से कुंडलित लोमोंके सिरे ऊपरको उठे हैं ०। (१५) ब्राह्म-ऋजु-गात्र (=लम्बे अकुटिल शरीरवाला) ०। (१६) सप्त-उत्सद (=सातों अंगोंमें पूर्ण आकारवाला) ०। (१७) सिंह-पूर्वार्द्ध-काय (=छाती आदि शरीरका ऊपरी भाग सिंहकी भाँति जिसका विशाल हो) ०। (१८) चितान्तरांस (दोनों कंधोंका विचला भाग जिसका चित=पूर्ण हो) ०। (१९) न्यग्रोध-परिमंडल है० जितनी शरीरकी उँचाई, उतना व्यायाम (=चौळाई), (और) जितना व्यायाम उतनी ही शरीरकी ऊँचाई। (२०) समवर्त-स्कन्ध (=समान परिमाणके कंधेवाला) ०। (२१) रसग्ग-सग्ग (=सुन्दर शिराओंवाले) ०। (२२) सिंह-हनु (=सिंह समान पूर्ण ठोळीवाला) ०। (२३) चव्वालीस-दन्त०। (२४) सम-दन्त०। (२५) अविवर-दन्त (=दाँतोंके बीच कोई छेद न होना) ०। (२६) सु-शुक्ल-दाढ़ (=खूब सफेद दाढ़वाला) ०। (२७) प्रभूत-जिह्व (=लम्बी जीभवाला) ।०। (२८) ब्रह्म-स्वर करविक (पक्षीसे) स्वरवाला०। (२९) अभिनील-नेत्र (=अलसीके पुष्प जैसी नीली आँखोंवाला) ०। (३०) गो-पक्ष्म (=गाय जैसी पलकवाला) ०। (३१) देव, इस कुमारकी भौहोंके बीचमें श्वेत कोमल कपास सी ऊर्णा (=रोमराजी) है०। (३२) उष्णीषशीर्ष (=पगळी जैसे सामने उभळे शिरवाला) ० है। देव! यह भी इस कुमारके महापुरुष-लक्षणोंमें है।

'देव! यह कुमार महापुरुषोंके इन बत्तीस लक्षणोंसे युक्त है, जिन (लक्षणों)से युक्त होनेसे उस महापुरुषकी दो ही गतियाँ होती हैं, तीसरी नहीं। यदि वह घरमें०। यदि वह घरसे बेघर०।'

"भिक्षुओ! तब **बन्धुमान्** राजाने ज्योतिषी ब्राह्मणोंको नये कपळोंसे आच्छादितकर (उनकी) सभी इच्छाओंको पूरा किया। भिक्षुओ! तब बन्धुमान् राजाने विपस्सी कुमारके लिये धाइयां नियुक्त कीं। कोई दूध पिलाती थी, कोई नहलाती थी, कोई गोदमें लेती थी, कोई गोदमें लेकर टहलाती थी। भिक्षुओ! विपस्सी कुमारको जन्म कालहीसे दिन रात श्वेत छत्र धारण कराया जाता था,

---

[1] मिलाओ ब्रह्मायु-सुत्त (मज्झिमनिकाय ९१) पृष्ठ ३७४-७५।

जिसमें कि उसे शीत, उष्ण, तृण, धूली या ओस कष्ट न दे। भिक्षुओ! विपस्सी कुमार उत्पन्न होकर सभीका प्रिय=मनाप हुआ। भिक्षुओ! जैसे उत्पल, पद्म, या पुण्डरीक (होता है) वैसे ही विपस्सी कुमार सभीका प्रिय=मनाप हुआ। वह (कुमार) एकको गोदसे दूसरेकी गोदमें घूमता रहता था। भिक्षुओ! कुमार विपस्सी उत्पन्न होकर मञ्जु (=कोमल) स्वरवाला, मधुर स्वरवाला (और) प्रियस्वरवाला था। भिक्षुओ! जैसे **हिमालय** पहाळ पर **करविंक** नामका पक्षी मञ्जुस्वरवाला, मनोज्ञ०, मधुर०, प्रिय० (होता है), भिक्षुओ! उसी तरह विपस्सी कुमार मञ्जुस्वरवाला० था। भिक्षुओ! तब उस उत्पन्न हुये विपस्सी कुमारको (पूर्व) कर्मके विपाकसे उत्पन्न दिव्य-चक्षु उत्पन्न हुआ, जिस (दिव्य-चक्षु)से वह रात दिन चारों ओर एक योजन तक देखता था। भिक्षुओ! उत्पन्न हो वह विपस्सी कुमार त्रायस्त्रिंश देवताओंकी भाँति एकटक देखता था। 'कुमार एकटक देखता (=विपस्सति) है।' इसीसे भिक्षुओ! विपस्सी विपस्सी कहते विपस्सी कुमार नाम पळा।

"भिक्षुओ! तब **बन्धुमान्** राजा कचहरी (=अधिकरण)में बैठ, विपस्सी कुमारको गोदमें ले न्याय करता था। भिक्षुओ! तब विपस्सी कुमार पिताकी गोदमें बैठे विचार विचारकर न्यायसे फैसला करता था। 'कुमार विचार विचारकर०' अतः भिक्षुओ! और भी विपस्सी विपस्सी (विपस्सति) कहते विपस्सी कुमार नाम पळा। भिक्षुओ! तब बन्धुमान् राजाने विपस्सी कुमारके लिये तीन महल बनवा दिये। एक वर्षाके लिये, एक हेमन्त ऋतुके लिये, एक ग्रीष्म कालके लिये। पाँच भोगों (=काम-गुणों)का प्रबन्ध करवा दिया। भिक्षुओ! वहाँ विपस्सी कुमार वर्षा कालमें वर्षावाले महलमें चार महीना, निष्पुरुष (=केवल स्त्री) वादिकाओंसे सेवित हो महलसे नीचे कभी नहीं उतरता था।

(इति) प्रथम भाणवार ॥१॥

(४) गृहत्यागके चार पूर्व-लक्षण

"भिक्षुओ! विपस्सी कुमारने बहुत वर्षों, कई सौ वर्षों, कई सहस्र वर्षोंके, बीतनेपर (एक दिन) सारथीसे कहा—'भद्र सारथि! अच्छे-अच्छे रथोंको जोतो। (मैं) उद्यानभूमि को वहाँकी सुन्दरता देखनेके लिये जाऊँगा।' भिक्षुओ! तब सारथीने 'अच्छा देव!' कहकर विपस्सी कुमारको उत्तर दे अच्छे अच्छे रथोंको जोतकर विपस्सी कुमारको इसकी सूचना दी—'देव! अच्छे अच्छे रथ जुते तैयार हैं, अब जो आप उचित समझें।' भिक्षुओ! तब विपस्सी कुमार एक अच्छे रथपर चढ़कर अच्छे अच्छे रथोंके साथ उद्यानभूमिके लिये निकला।

१—वृद्ध—"भिक्षुओ! उद्यानभूमि जाते हुये विपस्सी कुमारने एक गतयौवन पुरुषको बूढ़े बँडेरी जैसे झुके टेढ़े दण्डका सहारा ले काँपते जाते हुये देखा। देखकर सारथीसे पूछा—'भद्र सारथि! यह पुरुष कौन है? इसके केश भी दूसरोंके जैसे नहीं हैं, शरीर भी दूसरोंके जैसा नहीं है।' 'देव! यह बूढ़ा कहा जाता है।' 'भद्र सारथि! बूढ़ा क्या होता है'? 'देव, यह बूढ़ा कहा जाता है, इसे अब बहुत दिन जीना नहीं है।' भद्र सारथि! 'तो क्या मैं भी बूढ़ा होऊँगा, क्या यह अनिवार्य है?' 'देव! आप, हम और सभी लोगोंके लिये बुढ़ापा है, अनिवार्य है।' 'तो भद्र सारथि! बस उद्यानभूमि जाना रहने दो, यहाँहीसे (फिर रथको) अन्तःपुर लौटाकर ले चलो।' भिक्षुओ! 'अच्छा देव'! कह-कर सारथी विपस्सी कुमारको उत्तर दे (रथको) वहींसे लौटाकर, अन्तःपुर ले गया।

"भिक्षुओ! तब विपस्सी कुमार अन्तःपुरमें जाकर दुःखी (और) दुर्मना हो चिन्तन करने लगा—इस जन्म लेनेको धिक्कार है, जब कि जन्मे हुयेको जरा सताती है'।"

"भिक्षुओ! तब बन्धुमान् राजाने सारथीको बुलाकर ऐसा कहा—'भद्र सारथि! क्या कुमार उद्यानभूमिमें टहल चुका, क्या कुमार उद्यानभूमिसे प्रसन्न हुआ?' 'देव! कुमार उद्यानभूमि-

में टहलने नहीं गये, न देव ! कुमार उद्यानभूमिसे प्रसन्न हुये।' 'भद्र सारथि ! 'उद्यानभूमि जाते हुये कुमारने क्या देखा ?' 'देव ! उद्यानभूमि जाते हुये कुमारने एक वृद्ध० पुरुषको जाते देखा। देखकर मुझसे कहा '० यह पुरुष ० ?' देव ! अन्तःपुरमें जाकर चिन्तन कर रहे हैं—'इस जन्म लेनको धिक्कार०'।

"भिक्षुओ ! तब बन्धुमान् राजाके मनमें यह हुआ—'ऐसा न हो कि विपस्सी कुमार राज्य न करे, ऐसा न हो कि विपस्सी कुमार घरसे बेघर होकर प्रव्रजित हो जावे। ज्योतिषी ब्राह्मणोंका कहा हुआ कहीं ठीक न हो जावे।' भिक्षुओ ! तब बन्धुमान् राजाने विपस्सी कुमारकी प्रसन्नताके लिये और भी अधिक पाँचों भोगों (= काम गुणों)से उसकी सेवा करवाई, जिसमें कि विपस्सी कुमार राज्य करे, जिसमें कि विपस्सी कुमार घरसे० न प्रव्रजित हो। जिसमें कि ब्राह्मणोंके कहे० मिथ्या होवें। भिक्षुओं ! तब विपस्सी कुमार पाँचों भोगों (=काम गुणों)से सेवित किया जाने लगा।

२—रोगी—"तब विपस्सी कुमार बहुत वर्षोंके०। उद्यानभूमि जाते विपस्सी कुमारने एक अपने ही मल-मूत्रमें पळे, दूसरोंसे उठाये जाते, दूसरोंसे बैठाये जाते एक रोगी, दुःखी बहुत बीमार पुरुषको देखा। देखकर सारथीसे कहा—'० यह पुरुष कौन है ? इसकी आँखें भी दूसरोंकी जैसी नहीं हैं, स्वर भी०।' 'देव ! यह रोगी है।—'० रोगी क्या होता है ?' 'देव ! यह बीमार है। इस रोगसे अब शायद ही उठे।'—० 'क्या मैं भी व्याधिधर्मा हूँ, क्या व्याधि अनिवार्य है ?' 'देव ! आप, हम और सभी लोग व्याधि-धर्मा हैं, व्याधि अनिवार्य है।' 'तो० बस आज अब टहलना ० चिन्तन करने लगा—"इस जन्म लेनेको धिक्कार ०।'

"भिक्षुओ ! तब बन्धुमान् राजा सारथीको०। देव, कुमारने उद्यानभूमि जाते रोगी० को देखा। देख कर०। अन्तःपुरमें चिन्तन कर रहे हैं—'इस जन्म लेनेको धिक्कार०।'

"भिक्षुओ ! तब बन्धुमान् राजाके मनमें ऐसा हुआ—'ऐसा न हो विपस्सी० राज्य न० सच हो जावे !'—'भिक्षुओ ! तब बन्धुमान् राजा० मिथ्या हो। तब भिक्षुओ ! विपस्सी कुमार पाँच भोगों (=काम गुणों)से सेवित किया जाने लगा।

३—मृत—"भिक्षुओ ! तव विपस्सी कुमारने बहुत वर्षोंके० उद्यानभूमि जाते हुये बहुत लोगोंको इकट्ठा हो नाना प्रकारके अच्छे अच्छे कपळोंसे शिविका बनाते हुये देखा। देखकर सारथीसे पूछा—'० यह बहुत लोग इकट्ठा हो क्यों शिविका (=अर्थी) बना रहे हैं ?'—'देव ! यह मर गया है।'—'० तो जहाँ वह मृतक है वहाँ रथको ले चलो।'—'अच्छा देव !' कहकर सारथी० जहाँ वह मृतक था वहाँ रथ ले गया। भिक्षुओ ! तब विपस्सी कुमारने (उस) प्रेत=मृतकको देखा। देखकर सारथीसे पूछा—'० यह मरना क्या चीज है ?'—'देव ! यह मर गया है। अब उसके माता, पिता, या जाति-वाले दूसरे सम्बन्धी उसको नहीं देख सकेंगे, (और) वह भी अपने माता, पिता० को नहीं देख सकेगा।'—'तो क्या मैं भी मरणधर्मा हूँ, मृत्यु अनिवार्य है ? मुझे भी क्या देव (=पिता), देवी, (=माता) जातिवाले या दूसरे नहीं देख सकेंगे, (और, क्या) मैं भी नहीं देख सकूँगा ?'—'देव ! आप, हम और सभी लोग मरणधर्मा हैं, मृत्यु अनिवार्य है। आपको भी देव० नहीं देख सकेंगे और आप भी नहीं देख सकेंगे।'—'भद्र सारथि ! बस आज अब टहलना रहने दो०।' 'अच्छा देव' कह सारथी० अन्तःपुर ले गया। भिक्षुओ ! वहाँ विपस्सी कुमार० चिन्तन करने लगा—'इस जन्म लेनेको धिक्कार है, जो कि जन्मे हुयेको जरा, व्याधि, और मृत्यु सताते हैं।'

"भिक्षुओ ! तब बन्धुमान् राजा सारथीको० कुमारने मृतकको०। अन्तःपुरमें चिन्तन कर रहे हैं—'जन्म लेना धिक्कार०।'

"भिक्षुओ ! तब बन्धुमान् राजाके मनमें यह हुआ—'कहीं ऐसा न हो०।' भिक्षुओ ! तब

बन्धुमान् राजा विपस्सी कुमारके लिय और भी अधिक० जिससे० कुमार राज्य करे, न घरसे बेघर०। भिक्षुओ! इस प्रकार० कुमार सेवित किया जाने लगा।

४—**संन्यास**—"भिक्षुओ! तब बहुत वर्षोंके०। विपस्सी कुमारने उद्यानभूमि जाते एक मुण्डित, काषाय-वस्त्रधारी, प्रव्रजित (=साधु) को देखा। देखकर सारथीसे पूछा,—'० यह पुरुष कौन है, इसका शिर भी मुंळा है, वस्त्र भी दूसरों जैसे नहीं?'—'देव, यह प्रव्रजित है।'—'० यह प्रव्रजित क्या चीज है'?—'देव, अच्छे धर्माचरणके लिये, शान्ति पानेके लिये, अच्छे कर्म करनेके लिये, पुण्य-संचय करनेके लिये, अहिंसा, भूतों पर अनुकम्पा करनेके लिये यह प्रव्रजित हुआ है'—'० तब जहाँ वह प्रव्रजित है वहाँ रथको ले चलो।'—'अच्छा देव!' कह सारथी०। भिक्षुओ! तब विपस्सी कुमारने उस प्रव्रजितसे यह कहा—'हे! आप कौन हैं, आपका शिर भी० आपके वस्त्र भी०?'—'देव, मैं प्रव्रजित हूँ।'—'आप प्रव्रजित हैं, इसका क्या अर्थ?'—'देव, मैं, अच्छे धर्माचरणके लिये ० प्रव्रजित हुआ हूँ।'

(५) *संन्यास*

"भिक्षुओ! तब विपस्सी कुमारने सारथीसे कहा—'तो ० रथको अन्तःपुर लौटा ले जाओ। मैं तो यहीं शिर दाढ़ी मुंळवा, काषाय वस्त्र पहन, घरसे बेघर हो प्रव्रजित होऊँगा।' 'अच्छा देव!' कहकर सारथी० वहींसे रथको अन्तःपुर लौटा ले गया। और विपस्सी कुमार वहीं शिर और दाढ़ी मुंळा० प्रव्रजित हो गये।

"भिक्षुओ! **बन्धुमती** राजधानीके चौरासी हजार मनुष्योंने सुना कि० कुमार शिर दाढ़ी मुळा० प्रव्रजित हो गये। सुनकर उन लोगोंके मनमें एसा हुआ—'वह धर्म मामूली नहीं होगा, वह प्रव्रज्या भी मामूली नहीं होगी, जहाँ विपस्सी कुमार शिर दाढ़ी मुंळा० प्रव्रजित हुये हैं। यदि विपस्सी कुमार शिर दाढ़ी मुंळा० प्रव्रजित हो गये तो हम लोगोंको अब क्या है?' भिक्षुओ! तब वे सभी चौरासी हजार लोग शिर और दाढ़ी मुंळा० विपस्सीके पीछे प्रव्रजित हो गये। भिक्षुओ! उसी परिषद्के साथ विपस्सी बोधिसत्व ग्राम, निगम (=कस्बा), जनपद (=दीहात) और राजधानियोंमें विचरण करने लगे।

(६) *बुद्धत्व-प्राप्ति*

"भिक्षुओ! तब विपस्सी बोधिसत्वको एकान्तमें ध्यान करते हुए इस प्रकार चित्तमें वितर्क (=ख्याल) उत्पन्न हुआ—'यह मेरे लिये अच्छा नहीं है कि मैं लोगोंकी भीळके साथ विहार करूँ।' भिक्षुओ! तब विपस्सी बोधिसत्व उसके बादसे अपने गणको छोळ अकेले रहने लगे। वे चौरासी हजार प्रव्रजित दूसरी ओर चले गये और विपस्सी बोधिसत्व दूसरी ओर। भिक्षुओ! तब विपस्सी बोधिसत्वको (एक दिन) एकान्तमें ध्यान करते समय इस प्रकार चित्त में विचार उत्पन्न हुआ—'यह संसार बहुत कष्टमें पळा है, जन्म लेता है, वृद्ध होता है, मरता है, च्युत होता है और उत्पन्न होता है। और इस दुःखसे जरा और मृत्युसे निःसरण (=दुःखसे छूटनेके उपाय)को नहीं जानता है। इस दुःखसे जरा और मृत्युसे निःसरण कैसे जाना जायेगा?

"भिक्षुओ! तब विपस्सी बोधिसत्वके मनमें यह हुआ—(१) 'क्या होनेसे जरा-मरण होता है, किस प्रत्यय (=कारण)से जरा-मरण होता है?' भिक्षुओ! तब विपस्सी बोधिसत्वको ठीकसे विचारनेके बाद प्रज्ञासे बोध हुआ—ज न्म के हो ने से ज रा म र ण हो ता है, जन्मके प्रत्ययसे जरा-मरण होता है।

(२) "भिक्षुओ! तब० बोधिसत्वके मनमें यह हुआ—'क्या होनेसे जन्म होता है, किस प्रत्ययसे जन्म होता है?" तब० बोध हुआ—**भव (=आवागमन)के होनेसे जन्म होता है,** भवके प्रत्ययसे जन्म होता है।

(३) '० बोध हुआ,—**उपादानके होनेसे भव होता है,** उपादानके प्रत्ययसे भव होता है।

(४) '० बोध हुआ—**तृष्णाके होनेसे उपादान होता है,** तृष्णाके०

(५) '० बोध हुआ—**वेदना**[1] (=**अनुभव**)**के होनेसे तृष्णा होती है,** वेदना०

(६) '० बोध हुआ—**स्पर्श (=इन्द्रिय और बिषयके मेल)के होनेसे तृष्णा होती है,** स्पर्श०

(७) '० '**षडायतनके होनेसे स्पर्श होता है,** षडायतन०।

(८) '० **नामरूपके होनेसे षडायतन**[2] **होता है,** नामरूपके०

(९) '० **विज्ञानके होनेसे नामरूप होता है,** विज्ञानके०।

(१०) '० **नामरूपके होनेसे विज्ञान होता है, नामरूप ०।**

"भिक्षुओ! तब विपस्सी बोधिसत्वके मनमें यह हुआ—'विज्ञानसे फ़िर लौटना शुरू होता है, नामरूपसे फिर आगे (क्रम) नहीं चलता। इसीसे सभी जन्म लेते हैं, बृद्ध होते हैं, मरते हैं, च्युत होते, हैं। जो यह नामरूपके प्रत्ययसे विज्ञान, (और) विज्ञानके प्रत्ययसे नामरूप, नामरूपके प्रत्ययसे षडा-यतन, षडायतनके प्रत्ययसे स्पर्श, स्पर्शके प्रत्ययसे वेदना, वेदनाके प्रत्ययसे तृष्णा, तृष्णाके प्रत्ययसे उपा-दान, उपादानके प्रत्ययसे भव, भवके प्रत्ययसे जाति, जातिके प्रत्ययसे जरा, मरण, शोक, परिदेव (=रोना पीटना), दुःख=दौर्मनस्य, और परेशानी होती है। इस प्रकार इस केवल दुःख-पुंजकी उत्पत्ति(=समुदय) होती है।

"भिक्षुओ! ० बोधिसत्वको समुदय समुदय करके, पहले कभी नहीं सुने (जाने) गये धर्म (=विषय)में आँख उत्पन्न हुई, ज्ञान-उत्पन्न हुआ, प्रज्ञा उत्पन्न हुई, विद्या उत्पन्न हुई, आलोक उत्पन्न हुआ। भिक्षुओ! तब विपस्सी०के मनमें ऐसा हुआ—

(१) 'किसके नहीं होनेसे जरामरण नहीं होता, किसके विनाश (=निरोध)से जरामरणका निरोध होता है?' भिक्षुओ! तब विपस्सी बोधिसत्वको बोध हुआ—**जन्मके नहीं होनेसे जरामरण नहीं होता, जन्मके निरोधसे जरामरणका निरोध हो जाता है।**

(२) '० बोध हुआ—**भवके नहीं होनेसे जन्म नहीं होता,** भवके निरोधसे जत्मका निरोध हो जाता है

(३) '० बोध हुआ—**उपादान (=भोगग्रहण)के नहीं होनेसे भव भी नहीं होता,** उपादानके निरोध से०

(४) '० बोध हुआ—**तृष्णाके नहीं होनेसे उपादान भी नहीं होता,** तृष्णाके निरोध०।

(५) '० बोध हुआ—**वेदनाके नहीं होनेसे तृष्णा भी नहीं होती,** वेदनाके निरोधसे०।

(६) '० बोध हुआ—स्पर्शके नहीं होनेसे वेदना भी नहीं होती, स्पर्शके निरोधसे०।

(७) '० बोध हुआ—षडायतनके नहीं होनेसे स्पर्श भी नहीं होता, षडायतनके निरोधसे०।

(८) '० बोध हुआ—नामरूपके नहीं होनेसे षडायतन भी नहीं होता, नामरूपके निरोधसे०।

(९) '० बोध हुआ—विज्ञानके नहीं होनेसे नामरूप भी नहीं होता, विज्ञानके निरोधसे०।

(१०) '० बोध हुआ—नामरूपके नहीं होनेसे विज्ञान भी नहीं होता, नामरूपके निरोधसे विज्ञानका निरोध हो जाता है।

---

[1] इन्द्रिय और विषयके एक साथ मिलनेके बाद चित्तमें जो दुःख सुख आदि विकार उत्पन्न होते हैं, वही वेदना है।

[2] चक्षुः, श्रोत्र, घ्राण, जिह्वा, काय, मन—यही षड्-आयतन=छ आयतन हैं।

"भिक्षुओ ! तब विपस्सी बोधिसत्वके मनमें यह हुआ—'मुक्तिका मार्ग मैंने समझ लिया नामरूपके निरोधसे विज्ञानका निरोध, विज्ञानके निरोधसे नामरूपका निरोध, नामरूपके निरोधसे षडायतनका निरोध, षडायतनके निरोधसे स्पर्शका निरोध, स्पर्शके निरोधसे वेदनाका निरोध, वेदनाके निरोधसे तृष्णाका निरोध, तृष्णाके निरोधसे भवका निरोध, भवके निरोधसे जन्मका निरोध, जन्मके निरोधसे जरा, मरण, शोक, परिदेव, दुःख=दौर्मनस्य और परेशानी, सभी निरुद्ध हो जाते हैं। इस प्रकार सारे दुःखोंका निरोध (=नाश) हो जाता है ।

"भिक्षुओ ! विप्पसी बोधिसत्वको 'निरोध' 'निरोध' करके पहले न सुने गये धर्मोंमें आँख उत्पन्न हुई, ज्ञान०, प्रज्ञा०, विद्या०, आलोक०। भिक्षुओ ! तब विप्पसी बोधिसत्व उसके बाद पाँच **उपादान-स्कन्धों**[1] में उदय और व्यय (=उत्पत्ति और विनाश)के देखने वाले हुये। यह रूप है, यह रूपका समुदय (=उत्पत्ति) यह रूपका अस्त हो जाना है। यह वेदना, यह वेदनाका समुदय, यह वेदनाका अस्त हो जाना है। यह संज्ञा०। यह संस्कार०। यह विज्ञान०। पाँच उपादान-स्कन्धोंके उत्पत्ति-विनाशको देख-कर विहार करनेसे उनका चित्त शीघ्र ही चित्तमलों (=आस्रवों)से बिलकुल मुक्त हो गया ।

(इति) द्वितीय भाणवार ॥२॥

(७) *धर्मचक्रप्रवर्तन*

"भिक्षुओ! तब विपस्सी भगवान्, अर्हत् सम्यक् सम्बुद्धके मनमें यह हुआ—क्या मैं अवश्य ही धर्म का उपदेश करूँ? 'भिक्षुओ ! तब विप्पसी भगवान् ० के मनमें यह हुआ—'मैंने इस गम्भीर, दुर्ज्ञेय, दुर्बोध, शान्त, प्रणीत (=उत्तम), तर्कसे अप्राप्य, निपुण और पण्डितोंसे ही समझने योग्य धर्मको जाना है। (और) यह प्रजा (=सांसारिक लोग) **आलय** (=भोगों)में, रमनेवाली आलयमें रत, और आलयसे उत्पन्न है। आलयमें रमने आलयमें रत रहनेवाले और आलयमें ही प्रसन्न रहनेवालेको यह समझना कठिन है कि अमुक प्रत्ययसे अमुककी उत्पत्ति होती है। यह भी समझना कठिन है कि सभी संस्कारोंके शान्त हो जानेसे, सभी उपाधियोंके अन्त हो जानेसे, (और) तृष्णाके नाशसे, राग-रहित होना ही **निर्वाण** है। मैं भी धर्मका उपदेश-करूँ, और दूसरे न समझें; तो यह मेरा व्यर्थका प्रयास और श्रम होगा। भिक्षुओ ! तब विप्पस्सी भगवान्० को इन अश्रुतपूर्व आश्चर्यजनक गाथाओंका भान हुआ—

बहुत कष्टसे मैंने इस धर्मको पाया है, इसका उपदेश करना ठीक नहीं।
राग और द्वेषमें लिप्त लोगोंको यह धर्म जल्दी समझमें नहीं आवेगा ॥ १ ॥
उल्टी धारवाले, निपुण, गम्भीर, दुर्ज्ञेय और सूक्ष्म बातको रागोंमें रत,
और अविद्या के अंधकारमें पळे (लोग) नहीं समझ सकते ॥ २ ॥

"भिक्षुओ ! इस प्रकार चिन्तन करते विपस्सी भगवान्० का चित्त धर्मके उपदेश करनेमें उत्साह-रहित हो गया। भिक्षुओ ! तब विपस्सी भगवान्० के चित्तको (अपने) चित्तसे जान **महाब्रह्माके** मनमें यह हुआ—'अरे ! लोक नष्ट हो जायगा, लोक विनष्ट हो जायगा, यदि विपस्सी भगवान्० का चित्त धर्मोपदेशके लिये उत्साह-रहित हो गया।' भिक्षुओ ! तब महाब्रह्मा, जैसे कोई बलवान् पुरुष (अप्रयास) मोळी बाँहको पसारे और पसारी हुई बाँहको मोळे, वैसे ही ब्रह्मलोकमें अन्तर्धान हो विपस्सी भगवान् ० के सामने प्रगट हुआ। भिक्षुओ ! तब महाब्रह्मा चादरको एक कंधेपर करके दाहिने घुटनेको पृथ्वीपर टेक, जिधर विपस्सी भगवान्० थे उधर हाथ जोळ प्रणामकर, विपस्सी भगवान्०से यह बोला—

---

[1] विषयके तौरपर उपयुक्त होनेवाले भौतिक अभौतिक पदार्थ।

'भन्ते ! भगवान् धर्मका उपदेश करें, सुगत धर्मका उपदेश करें; (संसारमें) चित्तमल-रहित लोग भी हैं, धर्म नहीं सुननेसे उनकी बळी हानि होगी; धर्मके जाननेवाले (प्राप्त) होंगे।'

"भिक्षुओ ! तब विपस्सी भगवान्० ने महाब्रह्मासे कहा—'ब्रह्मा ! मैंने यह समझा था—यह धर्म गम्भीर०[1]।

'ब्रह्मा ! इस तरह चिन्तन करते हुये मेरा चित्त० उत्साह-रहित हो गया।'

"दूसरी बार भी महाब्रह्मा०। तीसरी बार भी महाब्रह्माने विपस्सी भगवान्० से यह कहा—'भन्ते ! भगवान् धर्मका उपदेश करें० धर्मके जाननेवाले होंगे।' भिक्षुओ ! तब विपस्सी भगवान्० ने ब्रह्माके भाव (=अध्याश) को समझ, प्राणियोंपर करुणा करके बुद्ध-चक्षुसे संसारको देखा। भिक्षुओ ! विपस्सी भगवान् ० ने बुद्ध-चक्षुसे संसारका विलोकन करते हुये, प्राणियोंमें चित्तमल (=क्लेश)-रहित अधिक क्लेशवालों, तीक्ष्ण इन्द्रिय (प्रज्ञा) वाले, मृदु इन्द्रिय वाले, अच्छे आकार वाले, किसी बातको जल्दी समझने वाले और परलोकका भय खानेवाले लोगोंको देखा। **जैसे** उत्पलके वनमें, या पद्मके वनमें, या पुण्डरीकके वनमें, कितने ही जलसे उत्पन्न, जलमें बढ़े, जलसे निकले कोई कोई उत्पल पद्म या पुण्डरीक जलके भीतर डूबे रहते हैं। ० कोई कोई उत्पल, पद्म या पुण्डरीक जलके बराबर रहते हैं; तथा ० कोई० जलके ऊपर निकल कर जलसे अलिप्त खळे रहते हैं; **वैसे ही** भिक्षुओ ! विपस्सी भगवान्ने संसारको बुद्ध-चक्षुसे अवलोकन करते हुये अल्प क्लेश-रहित, चित्तमल-रहित प्राणियोंको० देखा। भिक्षुओ ! तब महाब्रह्मा विपस्सी भगवान्०के चित्तकी बातको जानकर विपस्सी भगवान्०से गाथाओंमें बोला—

"**जैसे** (कोई) पथरीले पहाळकी चोटीपर चढ़, चारों ओर मनुष्योंको देखे,
उसी तरह हे शोकरहित ! धर्म रूपी प्रासादपर चढ़कर चारो ओर शोकसे पीडित,
जन्म और जरासे पीडित लोगोंको देखो॥ ३॥
'उठो वीर ! हे संग्रामजित् ! हे सार्थवाह ! उऋण-ऋण ! जगमें विचरो,
धर्म प्रचार करो, भगवान् ! समझने वाले मिलेंगे॥ ४॥'

"भिक्षुओ ! तब विपस्सी भगवान्० ने महाब्रह्मासे गाथामें कहा—

'ब्रह्मा ! अमृतका द्वार उनके लिये खुल गया, जो श्रद्धापूर्वक (उपदेश) सुनेंगे। मेरा परिश्रम व्यर्थ जायगा,
यही समझकर मैं लोगोंको अपने सुन्दर और प्रणीत धर्मका उपदेश नहीं करना चाहता था॥५॥'

"भिक्षुओ ! तब महाब्रह्मा विपस्सी भगवान्० से धर्मोपदेश करनेका बचन ले विपस्सी भगवान्० को अभिवादनकर और प्रदक्षिणाकर वहीं अन्तर्धान हो गया।

"भिक्षुओ ! तब विपस्सी भगवान्० के मनमें यह हुआ—'मैं किसको पहले पहल धर्मोपदेश करूँ, कौन इस धर्मको शीघ्र जान सकेगा ?' भिक्षुओ ! तब विपस्सी भगवान्० के मनमें यह हुआ—पण्डित, व्यक्त, मेधावी, और बहुत दिनोंसे निर्मल चित्त यह **खण्ड** राजपुत्र और **तिस्स** पुरोहितपुत्र बन्धुमती राजधानीमें रहते हैं। अतः मैं खण्ड० (और) तिस्स० को पहले पहल धर्मोपदेश करूँ, वे इस धर्मको शीघ्र ही समझ लेंगे।' भिक्षुओ ! तब विपस्सी भगवान्ने० जैसे कोई बलवान् पुरुष० वैसे ही बोधिवृक्षके नीचे अन्तर्धान हो **बन्धुमती** राजधानीके **खेमा मृगदाव**में प्रकट हुये। भिक्षुओ ! तब विपस्सी भगवान्० ने मालीसे कहा—'उद्यानपाल ! सुनो। बन्धुमती राजधानीमें जाकर खण्ड० और तिस्स० को ऐसा कहो—'भन्ते ! विपस्सी भगवान्० बन्धुमती राजधानीमें आये

---

[1] ऊपर जैसा पाठ।

हुये हैं, खेमा मृगदावमें विहार कर रहे हैं। वे आप लोगोंसे मिलना चाहते हैं।' भिक्षुओ! उद्यानपालन भी 'अच्छा भन्ते!' कह विपस्सी भगवान्० को उत्तर दे बन्धुमती राजधानीमें जाकर खण्ड०और तिस्स० से यह कहा—'भन्ते! विपस्सी भगवान्० बन्धुमती राजधानीमें आये हुये हैं, खेमा मृगदावमें विहार कर रहे हैं। वह आप लोगोंसे मिलना चाहते हैं।'

"भिक्षुओ! तब **खण्ड**० और **तिस्स** ० अच्छे अच्छे रथोंको जोतवा अच्छे अच्छे रथोंपर चढ़, अच्छे अच्छे रथोंके साथ बन्धुमती राजधानीसे निकलकर जहाँ **खेमा मृगदाव** था वहाँ गये। जितना रथसे जाने लायक रास्ता था उतना रथसे जाकर (फिर) रथसे उतर पैदल ही जहाँ विपस्सी भगवान्० थे वहाँ गये। जाकर विपस्सी भगवान्० को अभिवादनकर एक ओर बैठ गये। विपस्सी भगवान्० न उनको आनुपूर्वी (=क्रमानुकूल) कथा कही—जैसे कि, दान-कथा, शील-कथा, स्वर्ग-कथा, भोगोंके दोष, हानि और क्लेश तथा भोग-त्यागके गुण। जब भगवान्ने जान लिया कि वे अब स्वच्छ-चित्तके, मृदुचित्त नीवरणोंसे-रहित-चित्त उदग्रचित्त और प्रसन्न-चित्त हैं, तब उन्होंने बुद्धोंके स्वयं जाने हुये ज्ञान दुःख, समुदय, निरोध और मार्गका उपदेश किया। **जैसे** कालिमा-रहित शुद्ध वस्त्र अच्छी तरहसे रंग पकळता है, उसी तरह खण्ड० और तिस्स० को उसी समय उसी आसनपर रागरहित निर्मल धर्मचक्षु उत्पन्न हो गया—'जो कुछ समुदयधर्मा (=उत्पन्न होनेवाला) है वह निरोध-धर्मा (=नाश होनेवाला) है।' उन्होंने धर्मको देखकर, धर्मको प्राप्तकर, धर्मको जानकर, धर्ममें अच्छी तरह स्थित हो विचिकित्सा-दुबिधा-रहित हो, शंकाओंसे रहित हो, और शास्ताके धर्म (=शासन)में परम विशारदताको प्राप्त हो विपस्सी भगवान्० से यह कहा—'आश्चर्य भन्ते! अद्भुत, भन्ते! जैसे उलटेको सीधा०[१] उसी तरह भगवान्ने अनेक प्रकारसे धर्मको प्रकाशित किया। भन्ते! हम लोग आपकी शरण जाते हैं और धर्मकी भी। भन्ते! भगवान्के पास हम लोगोंको प्रव्रज्या मिले, उपसम्पदा मिले।'

"भिक्षुओ! **खण्ड**० और **तिस्स**० ने विपस्सी० भगवान् के पास प्रव्रज्या पाई, उपसम्पदा पाई। विपस्सी भगवान्० ने उन दोनोंको धार्मिक कथाओंसे सच्चे धर्मको दिखाया, प्रमुदित किया, उत्साहित किया और संतुष्ट किया। संस्कारोंके दोष, अपकार और क्लेश; और निर्वाणके गुण प्रकाशित किये। विपस्सी भगवान्० के सच्चे धर्मको दिखानेसे० शीघ्र ही उनके चित्त आस्रवोंसे बिल्कुल रहित हो गये।

"भिक्षुओ! बन्धुमती राजधानीके चौरासी हजार मनुष्योंने सुना—'विपस्सी भगवान्० बन्धुमती राजधानीमें आकर खेमा मृगदावमें विहारकर रहे हैं। खण्ड० और तिस्स० विपस्सी भगवान्० के पास शिर दाढ़ी मुळा० प्रव्रजित हो गये हैं।' सुनकर उन लोगोंके मनमें यह हुआ—'वह धर्म मामूली नहीं होगा, वह प्रव्रज्या भी मामूली नहीं होगी, जहाँ खण्ड० और तिस्स० शिर और दाढ़ी मुंळा० प्रव्रजित हो गये हैं। जब खण्ड० और तिस्स० शिर और दाढ़ी मुळा० प्रव्रजित हो गये हैं, तो हम लोगोंको क्या है?'

"भिक्षुओ! तब वे चौरासी हजार लोग **बन्धुमती** राजधानीसे निकल, जहाँ **खेमा मृगदाव** था (और) जहाँ विपस्सी भगवान्० थे, वहाँ गये। जाकर विपस्सी भगवान्० को अभिवादन कर एक ओर बैठ गये। विपस्सी भगवान्० ने उन लोगोंको आनुपूर्वी कथा कही—जैसे दानकथा०[२]। जब भगवान्ने जान लिया कि ये अब स्वच्छ-चित्त० हो गये हैं, तब उन्होंने बुद्धोंके स्वयं जाने हुये ज्ञान—दुःख० मार्ग का प्रकाश किया। **जैसे** शुद्ध वस्त्र० धर्म-चक्षु उत्पन्न हो गया। धर्मको देख० विशारदताको प्राप्तकर विपस्सी भगवान्० से यह कहा—आश्चर्य भन्ते! अद्भुत, भन्ते! ० हम लोग भगवान्की शरणमें जाते हैं, धर्म और संघकी भी, भन्ते! प्रव्रज्या०।

---

[१] **देखो पृष्ठ ३२।** [२] **देखो पिछला पृष्ठ।**

"भिक्षुओ ! उन चौरासी हजार लोगोंने विपस्सी भगवान्० के पास प्रव्रज्या ० पाई। विपस्सी भगवान्० ने उनको धार्मिक कथाओंसे० चित्तके आस्रव बिल्कुल नष्ट (=क्षीण) हो गये।

"भिक्षुओ ! तब पहलेवाले चौरासी हजार प्रव्रजितोंने (जो विपस्सी कुमारके साथ प्रव्रजित हुये थे) सुना—'विपस्सी भगवान्०' भिक्षुओ ! तब वे ० अभिवादनकर एक ओर बैठ गये। विपस्सी भगवान्० ने उनको०। ०० चित्तके आस्रव बिलकुल नष्ट हो गये।

(८) *शिष्यों द्वारा धर्मप्रचार*

"भिक्षुओं ! उस समय बन्धुमती राजधानीमें अळसठ लाख भिक्षुओंका महासंघ निवास करता था। भिक्षुओ ! तब विपस्सी भगवान्को एकान्तमें ध्यानावस्थित होते समय चित्तमें यह विचार उत्पन्न हुआ—'इस समय बन्धुमती राजधानीमें अळसठ लाख० निवास करता है। अतः मैं भिक्षुओंको कहूँ—भिक्षुओ ! चारिकाके लिये जाओ, लोगोंके हितके लिये, लोगोंके सुखके लिये, संसारके लोगोंपर अनुकम्पा करनेके लिये, देव और मनुष्योंके लाभ हित (और) सुखके लिये विचरो। एक मार्गसे दो मत जाओ। भिक्षुओ ! आदि-कल्याण, मध्य-कल्याण, अन्त-कल्याण, अर्थयुक्त, स्पष्ट अक्षरोंसे धर्मका उपदेश करो, बिल्कुल परिपूर्ण, (और) परिशुद्ध ब्रह्मचर्यको प्रकाशित करो। ऐसे निर्मल मनुष्य हैं, जिनकी धर्मके नहीं सुननेसे हानि होगी। वह धर्मके समझनेवाले होंगे। और, छै, छै वर्षोंके बाद बन्धुमती राजधानीमें **प्रातिमोक्ष**के वाचनके लिये आना।' तब महाब्रह्मा विपस्सी भगवान्० के चित्त० को जान० प्रगट हुआ। भिक्षुओ ! तब महाब्रह्मा चादरको एक कंधे पर० यह बोला।—'ऐसा ही है भगवान्। एसा ही है सुगत ! बन्धुमती राजधानीमें (अभी) अळसठ लाख० निवास करता है। भन्ते ! भगवान् भिक्षुओंको कहें—भिक्षुओ ! चारिका करनेके लिये जावो० बन्धुमती राजधानीमें **प्रातिमोक्ष**-वाचनके लिये आना।' भिक्षुओ ! महाब्रह्माने ऐसा कहा। यह कहकर विपस्सी भगवान्० को अभिवादन कर, प्रदक्षिणा कर वहीं अन्तर्धान हो गया।

"भिक्षुओ ! तब विपस्सी भगवान्० नें सायंकाल ध्यानसे उठकर भिक्षुओंको संबोधित किया—'भिक्षुओ ! यहाँ एकान्तमें० विचार उत्पन्न हुआ—अभी बन्धुमती राजधानीमें अळसठ लाख०।' तो मैं भिक्षुओंको कहूँ,—'भिक्षुओ ! चारिकाके लिये ०। ०प्रातिमोक्ष-वाचनके लिये आना। भिक्षुओ ! तब महाब्रह्मा०। यह कह मेरा अभिवादनकर (और) प्रदक्षिणाकर वहीं अन्तर्धान हो गया। भिक्षुओ ! मैं कहता हूँ —'चारिकाके लिये ०। प्रातिमोक्ष० आना'।

"भिक्षुओ ! तब उन भिक्षुओंने एक ही दिनमें देहात (=जनपद) में चारिका करनेके लिये चल दिया। भिक्षुओ ! उस समय **जम्बूद्वीप**में चौरासी हजार आवास (= मठ) थे। एक वर्ष के बीतने पर देवताओंने (आकाश–) वाणी सुनाई—'हे मार्षो[1] ! एक वर्ष निकल गया, अब पाँच वर्ष और बाकी हैं। पाँच वर्षोंके बीतनेपर प्रातिमोक्षके वाचनके लिये बन्धुमती राजधानी जाना'। दो वर्षोंके बीतने पर०। ०तीन वर्षोंके ०।० चार वर्षोंके ०:० पाँच वर्षोंके ०। ० छै वर्षोंके बीतनेपर देवताओंने० सुनाई—'मार्षो ! छै वर्ष बीत गये। समय हो गया, प्रातिमोक्षके वाचनके लिये० जायें'।—भिक्षुओ ! तब कितने भिक्षु अपनी ऋद्धिके बलसे, कितने देवताओंकी ऋद्धिके बलसे एक ही दिनमें बन्धुमती राजधानीमें प्रातिमोक्षके वाचनके लिये चले आये। भिक्षुओ ! तब विपस्सी भगवान्० ने भिक्षु-संघके लिये इस प्रकार प्रातिमोक्षका उद्देश (=पाठ) किया।

तितिक्षा और क्षमा परम तप है; बुद्ध लोग निर्वाणको सर्वोत्तम बतलाते हैं।

---

[1] **समान व्यक्तिके संबोधनके लिये देवताओंका यह खास शब्द है।**

प्रव्रजित श्रमण न तो दूसरेको हानि पहुँचाता है और न दूसरेको कष्ट देता है ॥ ६ ॥
'सभी पापोंका न करना, पुण्य कर्मोका करना,
(और) अपने चित्तकी शुद्धि; यही बुद्धोंका उपदेश है ॥ ७ ॥
'कठोर, दुर्वचनका न कहना, दूसरोंकी हिंसा न करनी, प्रातिमोक्षमें संयम,
मात्रासे भोजन अरण्यमें निवास, समाधि-अभ्यास; यही बुद्धोंका शासन है ॥ ८ ॥

(९) *देवता साक्षी*

"भिक्षुओ ! एक समय मैं **उक्कट्ठाके** पास **सुभगवनमें** सालराज वृक्षके नीचे विहार कर रहा था। भिक्षुओ ! उस समय एकान्तमें ध्यान करते मेरे चित्तमें यह विचार उत्पन्न हुआ—'**शुद्धावास** देवोंको छोळकर कोई ऐसी योनि (=सत्वावास) नहीं है, जिसमें मैंने इस दीर्घ कालमें जन्म नहीं लिया। अतः मैं वहाँ जाऊँ जहाँ शुद्धावास देवता रहते हैं। भिक्षुओ ! तब मैं जैसे बलवान् पुरुष० **अवृह** (अविह)-देवोंमें[1] प्रगट हुआ। भिक्षुओ ! उस देवनिवासके अनेक सहस्र देवता मेरे पास आये। आकर मुझे अभिवादन कर एक ओर खळे हो गये। एक ओर खळे हो उन देवताओंने मुझसे कहा—मार्ष ! आजसे इकानवे कल्प पहले[2] **विपस्सी** भगवान्० संसारमें उत्पन्न हुये थे। विपस्सी० क्षत्रिय जाति०। विपस्सी० **कोण्डञ्ञगोत्रके**०।० अस्सी हजार वर्ष आयु परिमाण०।० पाटलि वृक्षके नीच बोधि०। ० उनके खण्ड और **तिस्स** नामक श्रावक ० । ० तीन शिष्य-सम्मेलन०, **अशोक** नामक भिक्षु उपस्थाक। ० **बन्धुमान्** नामक राजा पिता, **बन्धुमती** देवी माता ०।० **बन्धुमती** नाम नगरी राजधानी। विपस्सी भगवान्० के इस प्रकार निष्क्रमण, इस प्रकार प्रव्रज्या, इस प्रकार **प्रधान** (=बुद्धत्व प्राप्तिके लिये तप), इस प्रकार ज्ञान-प्राप्ति, और इस प्रकार धर्म-चक्र-प्रवर्तन हुये थे। मार्ष ! सो हम लोग विपस्सी भगवान्‌के शासनमें ब्रह्मचर्यका पालन करके, सांसारिक भोग-इच्छाओं (=काम-च्छन्दों)से विरक्त हो, यहाँ उत्पन्न हुये हैं।०

"भिक्षुओ ! उसी देवलोकमें जो अनेक सहस्र और अनेक लक्ष देवता थे, वे मेरे पास आये।० खळे हो गये।० कहा—मार्ष इसी **भद्रकल्पमें** आप स्वयं भगवान्० उत्पन्न हुये हैं। मार्ष ! भगवान् क्षत्रिय जाति०।० गौतम गोत्र०। ० कम और छोटी आयु-परिमाण, जो बहुत जीता है वह सौ वर्ष, कुछ कम या अधिक।० पीपल वृक्ष ०।० **सारिपुत्त** और **मोग्गलान** प्रधान शिष्य०० बारह सौ पचास भिक्षुओंका एक शिष्य-सम्मेलन ०।० **आनन्द** भिक्षु उपस्थाक ०।० **शुद्धोदन** नामक राजा पिता, **मायादेवी** माता ०।०**कपिलवस्तु** राजधानी ०।० इस प्रकार निष्क्रमण००। हे मार्ष ! सो हम लोग आपके शासनमें ब्रह्मचर्य पालनकर ० यहाँ उत्पन्न हुये हैं।

"भिक्षुओ ! तब मैं अबृह देवोंके साथ जहाँ **अतप्य** देव थे, वहाँ गया।०

"भिक्षुओ ! तब मैं अबृह और **अतप्य** देवोंके साथ जहाँ **सुदर्श** देव थे वहाँ गया ०।० जहाँ **अकनिष्ट** देव थे वहाँ गया।० खळे हो गये। भिक्षुओ ! एक ओर खळे हो उन देवताओंने मुझे ऐसा कहा, "०**विपस्सी** भगवान्०। भिक्षुओ ! उसी देवलोकमें जो अनेक सहस्र० आये ० ने कहा—'मार्ष ! आजसे इकतीस कल्प पहले **सिखी** भगवान्०।० उसी कल्पमें **वेस्सभू** भगवान्०, ० **ककुसन्ध**, **कोणागमन**, **कस्सप**०,० यहाँ उत्पन्न हुये हैं। ०० ने कहा, हे मार्ष ! इसी भद्रकल्पमें आप स्वयं भगवान्०।

"भिक्षुओ ! चूँकि तथागतने धर्मधातुको अवगाहन कर लिया है जिस धर्मधातुके अवगाहन (=सुप्रतिबेध)के कारण तथागत निर्वाण प्राप्त अतीत बुद्धोंको, ० जन्मसे भी, नामसे भी०।"

भगवान्‌ने यह कहा। प्रसन्नचित्त हो उन भिक्षुओंने भगवान्‌के भाषणका अभिनन्दन किया।

---

[1] **शुद्धावासदेवताओंमेंसे एक समुदाय।** [2] **देखो पृष्ठ ९५।**

१५–महानिदान-सुत्त (२।२)

१––प्रतीत्य-समुत्पाद। २––नाना आत्मवाद। ३––अनात्मवाद।
४––प्रज्ञाविमुक्त। ५––उभयतो भाग विमुक्त।

ऐसा मैंने सुना––एक समय भगवान् **कुरुदेशमें**, कुरुओंके निगम (=कस्बे) कम्मास दम्म (=**कल्माषदम्य**) **में** विहार करते थे।

तब आयुष्मान् आनन्द जहाँ भगवान् थे, वहाँ गये। जाकर भगवान्को अभिवादनकर एक ओर बैठ गये। एक ओर बैठे आयुष्मान् आनन्दने भगवान्से यह कहा––

१––प्रतीत्य समुत्पाद

"आश्चर्य है, भन्ते! अद्भुत है, भन्ते! कितना गम्भीर है, और गम्भीर-सा दीखता है.... यह **प्रतीत्य-समुत्पाद** परन्तु मुझे साफ साफ (=उत्तान) जान पळता है।"

"ऐसा मत कहो आनन्द! ऐसा मत कहो आनन्द! आनन्द! यह प्रतीत्य-समुत्पाद गम्भीर है, और गम्भीर-सा दीखता (भी) है। आनन्द इस धर्मके न जाननेसे=न प्रतिवेध करनेसे ही, यह प्रजा (=जनता) उलझे सूतसी, गाँठें पळी रस्सीसी, मूँज-वल्वज (=भाभळ)सी, अप्-आय=दुर्गति=पतन (=वि-निपात)को प्राप्त हो, संसारसे नहीं पार हो सकती।

"आनन्द! 'क्या जरा-मरण स-कारण है?' पूछनेपर, 'है' कहना चाहिये। 'किस कारणसे जरा-मरण होता है' यह पूछे तो, 'जन्मके कारण जरा-मरण होता है' कहना चाहिये। 'क्या जन्म (=जाति) स-कारण है' पूछनेपर, 'है' कहना चाहिये। 'किस कारणसे जन्म होता है' पूँछनेपर, 'भव-(=आवागमन)के कारण जन्म' कहना चाहिये। 'क्या भव स-कारण है' पूछनेपर, 'है'०। 'किस कारणसे भव होता है' पूछे, तो 'उपादान (=आसक्ति)के कारण भव०'। 'क्या उपादान स-कारण है?' पूछनेपर, 'है' ०। 'किस कारणसे उपादान होता है' पूछे तो, 'तृष्णाके कारण उपादान' ०।० वेदनाके कारण तृष्णा ०।० स्पर्श (=इन्द्रिय-विषय-संयोग)के कारण वेदना ०।० नामरूपके कारण स्पर्श ०।० विज्ञानके कारण नाम-रूप ०।० नाम-रूपके कारण विज्ञान ०।

"इस प्रकार आनन्द! नाम-रूपके कारण विज्ञान है, विज्ञानके कारण नाम-रूप है। नाम-रूपके कारण स्पर्श है। स्पर्शके कारण वेदना है। वेदनाके कारण तृष्णा है। तृष्णाके कारण उपादान है। उपादानके कारण भव है। भवके कारण जन्म (=जाति) है। जन्मके कारण जरा-मरण है। जरा-मरणके कारण शोक, परिदेव (=रोना पीटना), दुःख, दौर्मनस्य (=मनःसंताप) उपायास (=परेशानी) होते हैं। इस प्रकार इस केवल (=सम्पूर्ण)-दुःख-पुंज (रूपी लोक)का समुदय (=उत्पत्ति) होता है।

"आनन्द! 'जन्मके कारण जरा-मरण' यह जो कहा, इसे इस प्रकार जानना चाहिये ......। यदि आनन्द! जन्म न होता तो सर्वथा बिल्कुल ही सब किसीकी कुछ भी जाति न होती; जैसे––देवों-

का देवत्व, गन्धर्वोंका गन्धर्वत्व, यक्षोंका यक्षत्व, भूतोंका भूतत्व, मनुष्योंका मनुष्यत्व, चतुष्पदों (=चौपायों)का चतुष्पदत्व, पक्षियोंका पक्षित्व, सरीसृपों (=रेंगनेवालों)का सरीसृपत्व, उन उन प्राणियों (=सत्त्वों)का वह होना। यदि जन्म न होता, सर्वथा जन्मका अभाव होता' जन्मका निरोध (=विनाश) होता; तो क्या आनन्द! जरा-मरण दिखलाई पळेगा?"

"नहीं, भन्ते!"

"इसलिये आनन्द! जरा-मरणका यही हेतु=निदान=समुदय=प्रत्यय है, जो कि यह जन्म।

" 'भव के कारण जाति होती है', यह जो कहा इसे आनन्द! इस प्रकार जानना चाहिये ०। यदि आनन्द! सर्वथा० सब किसीका कोई भव (=आवागमनका स्थान) न होता; जैसे कि काम-भव,[1] रूप-भव, अ-रूप-भव; तो भवके सर्वथा न होनेपर, भवके सर्वथा अभाव होनेपर, भवके निरोध होनेपर, क्या आनन्द! जन्म दिखाई पळता?"

"नहीं भन्ते!"

"इसलिये आनन्द! जन्मका यही हेतु है०, जो कि यह भव।"

" 'उपादान (=आसक्ति)के कारण भव होता है' यह जो कहा, इसे आनन्द! इस प्रकार जानना चाहिये ०। यदि आनन्द! सर्वथा० किसीका कोई उपादान न होता; जैसे कि—काम-उपादान (= भोगमें आसक्ति), दृष्टि-उपादान (=धारणा०), शील-व्रत-उपादान या आत्मवाद-(=आत्माके नित्यत्वका) उपादान; उपादानके सर्वथा न होनेपर० क्या आनन्द! भव होता?"

"नहीं, भन्ते!"

"इसलिये आनन्द! भवका यही हेतु है०, जो कि यह उपादान।

" 'तृष्णाके कारण उपादान होताहै' ०। यदि आनन्द! सर्वथा० तृष्णा न होती; जैसे कि—रूप-तृष्णा, शब्द-तृष्णा, गन्ध-तृष्णा रस-तृष्णा, स्प्रष्टव्य (=स्पर्श)-तृष्णा, धर्म (=मनका विषय)-तृष्णा; तृष्णाके सर्वथा न होनेपर० क्या आनन्द! उपादान जान पळता?"

"नहीं, भन्ते!"

"इसीलिये आनन्द! उपादानका यही हेतु है०, जो कि यह तृष्णा।

" 'वेदनाके कारण तृष्णा है' ०। यदि आनन्द! सर्वथा० वेदना न होती; जैसे कि—चक्षु-संस्पर्श (=चक्षु और रूपके योग)से उत्पन्न वेदना, श्रोत्र-संस्पर्शसे उत्पन्न वेदना, घ्राण-संस्पर्शसे उत्पन्न वेदना, जिह्वा-संस्पर्शसे उत्पन्न वेदना, काय-संस्पर्शसे उत्पन्न वेदना, मन-संस्पर्शसे उत्पन्न वेदना; वेदनाके सर्वथा० न होनेपर० क्या आनन्द! तृष्णा जान पळती?"

"नहीं, भन्ते!"

"इसीलिये आनन्द! तृष्णाका यही हेतु है०, जो कि यह वेदना।

"इस प्रकार आनन्द! वेदनाके कारण तृष्णा, तृष्णाके कारण पर्येषणा (=खोजना), पर्येषणाके कारण लाभ, लाभके कारण विनिश्चय (=दृढ़-विचार), विनिश्चयके कारण छन्द-राग (=प्रयत्नकी इच्छा), छन्द-रागके कारण अध्यवसान (=प्रयत्न); अध्यवसानके कारण परिग्रह (=जमा करना), परिग्रहके कारण मात्सर्य (=कंजूसी), मात्सर्यके कारण आरक्षा (=हिफाज़त), आरक्षाके कारण ही दंड-ग्रहण, शस्त्र-ग्रहण, कलह, विग्रह, विवाद, 'तूँ तूँ मैं मैं (=तुवं तुवं), चुगली, झूठ बोलना, अनेक पाप=बुराइयाँ (=अ-कुशल-धर्म) होती हैं।

"आनन्द! 'आरक्षाके कारण ही दंड-ग्रहण०० बुराइयाँ होती हैं' यह जो कहा; उसे इस

---

[1] **कामभव=पार्थिवलोक, रूपभव=अ-पार्थिव साकार लोक, अरूपभव=निराकार लोक।**

प्रकारसे भी जानना चाहिये०। यदि सर्वथा० आरक्षा न होती; तो सर्वथा आरक्षाके न होनेपर०, क्या आनन्द ! दंड-ग्रहण० बुराइयाँ होतीं ?"

"नहीं, भन्ते !"

"इसलिये आनन्द ! यह जो आरक्षा है, यही इस दंड-ग्रहण० पापों=बुराइयोंकी उत्पत्तिका हेतु=निदान=समुदय=प्रत्यय है।

" 'मात्सर्य (=कंजूसी)के कारण आरक्षा है' यह जो कहा, सो इसे आनन्द ! इस प्रकार जानना चाहिये०। यदि आनन्द ! सर्वथा किसीको, कुछ भी मात्सर्य न होता; तो सब तरह मात्सर्यके अभाव-में=मात्सर्य=कंजूसीके निरोधसे, क्या आरक्षा देखनेमें आती ?"

"नहीं, भन्ते !"

"इसलिये आनन्द ! आरक्षाका यही हेतु०, जो कि यह कंजूसी।

" 'परिग्रह (=जमा करना)के कारण कंजूसी है०'। यदि आनन्द ! सर्वथा किसीका कुछ भी परिग्रह न होता०, क्या कंजूसी दिखाई पळती ? ०।०।

" 'अध्यवसानके कारण परिग्रह है' ०। यदि आनन्द ! सर्वथा किसीका कुछ भी अध्यवसान न होता०; क्या परिग्रह (=बटोरना) देखनेमें आता ? ०।०।

" 'छन्द-रागके कारण अध्यवसान होता है' ०। क्या अध्यवसान देखनेमें आता ? ०।०।

"विनिश्चयके कारण छन्द-राग होता है' ०।

" 'लाभके कारण विनिश्चय है' ०। यदि आनन्द ! सर्वथा किसीको कहीं कुछ भी लाभ न होता०; क्या विनिश्चय दिखाई देता ? ०।०।

" 'पर्येषणाके कारण लाभ होता है' ०। ०क्या लाभ दिखाई देता ? ०।०।

" 'तृष्णाके कारण पर्येषणा होती' ०। ०क्या पर्येषणा दिखाई देती ? ०।०।

" 'स्पर्शके कारण तृष्णा होती है' ०। ०क्या तृष्णा दिखाई देती ? ०।०।

" 'नाम-रूपके कारण स्पर्श होता है' ०। यह जो कहा, इसको आनन्द ! इस प्रकारसे जानना चाहिये—जैसे नाम-रूपके कारण स्पर्श होता है; जिन आकारों=जिन लिंगों=जिन निमित्तों=जिन उद्देशोंसे नाम-काय (=नाम-समुदाय)का ज्ञान होता है; उन आकारों, उन लिंगों, उन निमित्तों, उन उद्देशोंके न होनेपर; क्या रूप-काय (=रूप-समुदाय)का अधि-वचन (=नाम) देखा जाता ?"

"नहीं, भन्ते।"

"आनन्द ! जिन आकारों, जिन लिंगों, ०से रूप-कायका ज्ञान होता है; उन आकारों०के न होनेपर, क्या नाम-कायमें प्रतिघ-संस्पर्श (=रोकका योग) दिखाई पळता ?"

"नहीं, भन्ते !"

"आनन्द ! जिन आकारों०से नाम-काय और रूप-कायका ज्ञान होता है; उन आकारों०के न होनेपर, क्या अधिवचन-संस्पर्श या प्रतिघ-संस्पर्श दिखाई पळता ?"

"नहीं, भन्ते !"

"आनन्द ! जिन आकारों, जिन लिंगों, जिन निमित्तों, जिन उद्देश्योंसे नाम-रूपका बोलना (=प्रज्ञापन) होता है; उन आकारों, उन लिंगों, उन निमित्तों, उन उद्देशोंके अभावमें क्या स्पर्श (=योग) दिखाई पळता ?"

"नहीं, भन्ते !"

"इसलिये आनन्द ! स्पर्शका यही हेतु=यही निदान=यही समुदय=यही प्रत्यय है, जो कि नाम-रूप।

" 'विज्ञानके कारण नाम-रूप होता है०'। यदि आनन्द ! विज्ञान (=चित्त-धारा, जीव) माताके कोखमें नहीं आता, तो क्या नाम-रूप संचित होता ?"

"नहीं, भन्ते !"

"आनन्द ! (यदि केवल) विज्ञान ही माताकी कोखमें प्रवेश कर निकल जाये; तो क्या नाम-रूप (कहना) इसके लिये बनेगा ?" "नहीं, भन्ते !"

"कुमार या कुमारीके अति-शिशु रहते ही यदि विज्ञान छिन्न हो जाये; तो क्या नाम-रूप वृद्धि=विरूढ़ि=विपुलताको प्राप्त होगा ?" "नहीं, भन्ते !"

"इसलिये आनन्द ! नाम-रूपका यही हेतु० है, जो कि विज्ञान।"

"'नाम-रूपके कारण विज्ञान होता है' ०।०। आनन्द ! यदि विज्ञान नाम-रूपमें प्रतिष्ठित न होता, तो क्या भविष्यमें (=आगे चलकर) जन्म, जरा-मरण, दुःख-उत्पत्ति दिखाई पळते ?"

"नहीं, भन्ते !"

"इसलिये आनन्द ! विज्ञानका यही हेतु० है, जो कि नाम-रूप। आनन्द ! यह जो विज्ञान-सहित नाम-रूप है, इतनेहीसे जन्मता, बूढ़ा होता, मरता=च्युत होता, उत्पन्न होता है; इतनेहीसे अधि-वचन(=नाम=संज्ञा)-व्यवहार, इतनेहीसे निरुक्ति (=भाषा)-व्यवहार, इतनेहीसे प्रज्ञा(=ज्ञान)-विषय है, इतनेहीसे 'इस प्रकार' का जतलानेके लिये मार्ग वर्तमान है।

२—नाना आत्मवाद

"आनन्द ! आत्माको प्रज्ञापन (=जतलाना) करनेवाला (पुरुष) कितनेसे (उसे) प्रज्ञापन (=जताना) करता है ? (१) रूपवान् सूक्ष्म आत्माको प्रज्ञापन करते हुए—'मेरा आत्मा रूप-वान् (=भौतिक) और सूक्ष्म (=क्षुद्र=अणु) है' प्रज्ञापन करता है। (२) रूप-वान् और अनन्त प्रज्ञापन करते हुये 'मेरा आत्मा रूपवान् और अनन्त है' प्रज्ञापन करता है। (३) रूप-रहित अणु (=परित्त) आत्मा कहते हुये 'मेरा आत्मा अ-रूप(=अभौतिक) अणु है' कहता है। (४) रूप-रहित अनन्तको आत्मा मानते हुये 'मेरा आत्मा अ-रूप अनन्त है' कहता है।

(१) "वहाँ जो आनन्द ! आत्माको प्रज्ञापन करते हुये आत्माको रूप-वान् अणु (=परित्त) कहता है, सो वर्तमानके आत्माको प्रज्ञापन करता हुआ, रूप-वान् अणु कहता है, या भावी आत्माको० रूप-वान् अणु कहता है; या उसको होता है कि, 'वैसा नहीं (=अ-तथ)को उस प्रकारका कहूँ।' ऐसा होनेपर आनन्द ! 'आत्मा रूप-वान् अणु है' इस दृष्टि (=धारणा)को पकळता है—यही कहना योग्य० है।

(२) "वह जो आनन्द ! आत्माको प्रज्ञापन करते हुये 'रूप-वान् अनन्त आत्मा' कहता है; सो वर्तमानके आत्माको प्रज्ञापन करते हुये 'रूप-वान् अनन्त' कहता है; या भावी आत्माको० रूप-वान् अनन्त कहता है; या उसके (मनमें) होता है 'वैसा नहींको वैसा कहूँ'। ऐसा होनेपर वह आनन्द ! 'आत्मा रूप-वान् अनन्त है' इस दृष्टि (=धारणा)को पकळता है—यही कहना योग्य है।

(३) "वह जो आनन्द ! ० 'आत्मा रूप-रहित अणु है' कहता है...। वह वर्तमानके आत्माको० कहता है; या भावीको०; या उसको होता है, कि—'वैसा नहींको वैसा कहूँ'।०।

(४) "वह जो आनन्द ! ० 'आत्मा रूप-रहित अनन्त है' कहता है।०।०।

"आनन्द ! आत्माको प्रज्ञापन करनेवाला इन्हीं (चारोंमेंसे एक प्रकारसे) प्रज्ञापन करता है।

३—अनात्मवाद

"आनन्द ! आत्माको न प्रज्ञापन करनेवाला, कैसे प्रज्ञापन नहीं करता ?—आनन्द ! 'आत्माको रूप-वान् अणु' न प्रज्ञापन करनेवाला (तथागत) 'मेरा आत्मा रूप-वान् अणु है' नहीं कहता। आत्माको 'रूप-वान् अनन्त' न प्रज्ञापन करनेवाला 'मेरा आत्मा रूप-वान् अनन्त है' नहीं कहता।

आत्माको 'रूप-रहित अणु' न प्रज्ञापन करनेवाला 'मेरा आत्मा रूप-रहित अणु है' नहीं कहता। आत्मा-को 'रूपरहित अणु' न प्रज्ञापन करनेवाला 'मेरा आत्मा रूप-रहित अनन्त है' नहीं कहता।

"आनन्द! जो वह आत्माको 'रूप-वान्-अणु' न प्रज्ञापन करनेवाला, ० प्रज्ञापन नहीं करता; सो या तो आजकल (=वर्तमान)के आत्माको रूप-वान् अणु प्रज्ञापन नहीं करता; या भावी आत्मा-को० प्रज्ञापन नहीं करता; या 'वैसा नहींको वैसा कहूँ' यह भी उसको नहीं होता। ऐसा होनेसे (वह) आनन्द! 'आत्मा रूप-वान् अणु है' इस दृष्टिको नहीं पकळता—यही कहना चाहिये।

"आनन्द! जो वह आत्माको 'रूप-वान् अनन्त' न प्रज्ञापन करनेवाला, प्रज्ञापन नहीं करता; सो या तो वर्तमान आत्माको रूप-वान् अनन्त प्रज्ञापन नहीं करता०; ०। ऐसा होनेसे (वह) आनन्द! 'आत्मा रूप-वान् अनन्त है' इस दृष्टिको नहीं पकळता, यही कहना चाहिये।

"आनन्द! जो वह आत्माको 'रूप-रहित-अणु' न प्रज्ञापन करनेवाला ० प्रज्ञापन नहीं करता; सो या तो वर्तमान आत्माको रूप-रहित अणु न माननेसे, प्रज्ञापन नहीं करता है; ० भावी०। ऐसा होनेसे आनन्द! वह 'आत्मा रूप-रहित अणु है' इस दृष्टिको नहीं पकळता, यही कहना चाहिये।

"आनन्द! जो वह आत्माको 'रूप-रहित अनन्त' न बतलानेवाला, (कुछ) नहीं कहता; सो वर्तमान आत्माको रूप-रहित अनन्त न बतलानेवाला हो, नहीं कहता है; ० भावी ०; 'वैसा नहींको वैसा कहूँ' यह भी उसको नहीं होता। ऐसा होनेसे आनन्द! यही कहना चाहिये, कि वह 'आत्मा रूप-रहित अनन्त है' इस दृष्टिको वह नहीं पकळता।

"इन कारणोंसे आनन्द! अनात्म-वादी (आत्माकी प्रज्ञप्ति) नहीं करता।

"आनन्द! किस कारणसे आत्मवादी (आत्माको) देखता हुआ देखता है? आत्मदर्शी देखते हुये वेदनाको ही 'वेदना मेरा आत्मा है' समझता है। अथवा 'वेदना मेरा आत्मा नहीं, अ-संवेदन (=न अनुभव) मेरा आत्मा है' ऐसा समझता है... अथवा—'न वेदना मेरा आत्मा है, न अप्रतिसंवेदना मेरा आत्मा है, मेरा आत्मा वेदित होता है, (अतः) वेदना-धर्म-वाला मेरा आत्मा है।" आनन्द! (इस कारणसे) आत्मवादी देखता हुआ देखता है।

"आनन्द! वह जो यह कहता है—'वेदना मेरा आत्मा है' उसे पूछना चाहिये—'आवुस! तीन वेदनायें हैं, सुखा-वेदना, दुःखा-वेदना, अदुःख-असुख-वेदना, इन तीनों वेदनाओंमें किसको आत्मा मानते हो?' जिस समय आनन्द! सुखा-वेदनाको वेदन (=अनुभव) करता है, उस समय न दुःखा-वेदनाको अनुभव करता है, नहीं अदुःख-अ-सुखा-वेदनाको अनुभव करता है। सुखा वेदनाहीको उस समय अनुभव करता है। जिस समय दुःखा-वेदनाको०। जिस समय अदुःख-असुखा-वेदनाको०।

"सुखा वेदना भी, आनन्द! अनित्य=संस्कृत (=कृत)=प्रतीत्य-समुत्पन्न (=कारणसे उत्पन्न)=क्षय-धर्मवाली=व्यय-धर्मवाली, विराग-धर्मवाली, निरोध-धर्मवाली है। दुःखा-वेदना भी आनन्द! ०; अदुःख-असुख वेदना भी०। उसको सुखा-वेदना अनुभव करते समय 'यह मेरा आत्मा है' होता है। उसी सुखा-वेदनाके निरोध होनेसे 'विगत हो गया मेरा आत्मा' ऐसा होता है। दुःखा-वेदना अनुभव करते०। अदुःख-असुख-वेदना अनुभव करते 'यह मेरा आत्मा है' होता है। उसी अदुःख-असुख-वेदनाके निरुद्ध (=विनष्ट, विगत, विलीन) होनेपर 'मेरा आत्मा विगत हो गया' होता है। जो ऐसा कहता है, कि 'वेदना मेरा आत्मा है' इस प्रकार आनन्द! वह इसी जन्ममें आत्माको अ-नित्य, सुख, दुःख, (या) मिश्रित (=व्यवकीर्ण), उत्पत्तिमान्=व्यय(=विनाश) शील देखता है। इसलिये भी आनन्द! उसका (ऐसा कहना) कि 'वेदना मेरा आत्मा है' ठीक नहीं।

"आनन्द! जो वह ऐसा कहता है—'वेदना मेरा आत्मा नहीं, अ-प्रति-संवेदना मेरा आत्मा

है,' उससे यह पूछना चाहिये—'आवुस ! जहाँ सब कुछ अनुभव (=वेदयित) है, क्या वहाँ 'मैं हूँ' यह होता है?"

"नहीं, भन्ते!"

"इसलिये आनन्द ! इससे भी यह समझना ठीक नहीं—'वेदना आत्मा नहीं है, अ-प्रतिसंवेदना मेरा आत्मा है।'

"आनन्द ! जो वह यह कहता है—'न वेदना मेरा आत्मा है, और न अ-प्रति-संवेदना मेरा आत्मा है, मेरा आत्मा वेदित होता है (=अनुभव किया जाता है); वेदना-धर्मवाला मेरा आत्मा है।' उसे यह पूछना चाहिये—'आवुस ! यदि वेदनायें सारी सर्वथा बिल्कुल नष्ट हो जायें; तो वेदनाके सर्वथा न होनेसे, वेदनाके निरोध होनेसे, क्या वहाँ 'मैं हूँ' यह होगा?" "नहीं, भन्ते!"

"इसलिये आनन्द ! इससे भी यह समझना ठीक नहीं कि—'न वेदना मेरा आत्मा है, और न अ-प्रतिसंवेदना० वेदना-धर्मवाला मेरा आत्मा है।'

"चूंकि आनन्द ! भिक्षु न वेदनाको आत्मा समझता है, न अ-प्रतिसंवेदनाको०, और नहीं 'आत्मा मेरा वेदित होता है, वेदना-धर्मवाला मेरा आत्मा है' समझता है। इस प्रकार समझ, लोकमें किसीको (मैं और मेरा करके) नहीं ग्रहण करता। न ग्रहण करने वाला होनेसे त्रास नहीं पाता। त्रास न पानेसे स्वयं परि-निर्वाणको प्राप्त होता है। (तब)—'जन्म खतम हो गया, ब्रह्मचर्य-वास (पूरा) हो चुका, कर्तव्य कर चुका, और कुछ यहाँ (करणीय) नहीं' (—इसे) जानता है। ऐसे मुक्त-चित्त भिक्षुके बारेमें जो कोई ऐसा कहे—'मरनेके बाद तथागत होता है—यह इसकी दृष्टि है' सो अयुक्त है। 'मरनेके बाद तथागत नहीं होता है—यह इसकी दृष्टि है'—सो अ-युक्त है। 'मरनेके बाद तथागत होता भी है, नहीं भी होता है—यह इसकी दृष्टि है'—सो अयुक्त है। 'मरनेके बाद तथागत न होता है, न नहीं होता है—यह इसकी दृष्टि है'—सो अयुक्त है। सो किस कारण ? जितना भी आनन्द ! अधिवचन (=नाम, संज्ञा), जितना वचन-व्यवहार, जितनी निरुक्ति (=भाषा), जितना भी भाषा-व्यवहार, जितनी प्रज्ञप्ति (=रूढ़ि), जितना भी प्रज्ञप्ति-व्यवहार, जितनी भी प्रज्ञा (=ज्ञान), जितना भी प्रज्ञाका विषय, संसारमें है, उस (सबको) जानकर भिक्षु मुक्त हुआ है। उसे जानकर मुक्त हुये भिक्षुको 'नहीं जानता है, नहीं देखता है—यह इसकी दृष्टि है'—(कहना) अयुक्त है।

४—प्रज्ञा विमुक्त

"आनन्द ! विज्ञान (=जीव)की सात स्थितियाँ (=योनियाँ) हैं, और दो ही आयतन। कौन सी सात ? आनन्द ! (१) कोई कोई सत्त्व (=जीव) नाना कायावाले और नाना संज्ञा (=नाम) वाले हैं, जैसे कि मनुष्य, कोई कोई देवता (=काम-धातुके छै) और कोई कोई विनिपातिक (=नीच योनि-वाले=पिशाच) यह प्रथम विज्ञान-स्थिति है। (२) आनन्द ! कोई कोई सत्त्व नाना कायावाले, किंतु एक संज्ञा (=नाम) वाले होते हैं, जैसे कि, प्रथम-ध्यानके साथ उत्पन्न **ब्रह्म-कायिक** (=ब्रह्मा लोग) देवता। यह दूसरी विज्ञान-स्थिति है। (३) आनन्द ! ० एक काया किंतु नाना संज्ञावाले देवता हैं, जैसे कि **आभास्वर** देवता। यह तीसरी विज्ञान-स्थिति है। (४) ० एक कायावाले एक संज्ञावाले देवता, जैसे कि **शुभकृत्स्न** (=सुभ-किण्ण) देवता। यह चौथी विज्ञान-स्थिति है। (५) आनन्द ! (कोई कोई) सत्त्व हैं, (जो कि) रूप-संज्ञाके अतिक्रमणसे, प्रतिघ (=प्रतिहिंसा) संज्ञाके अस्त हो जानेसे, नानापनकी संज्ञा को मनमें न करनेसे 'अनन्त आकाश' इस **आकाश-आयतन** (=निवास-स्थान)को प्राप्त हैं। यह पाचवीं विज्ञान-स्थिति है। (६) आनन्द ! (कोई कोई) सत्त्व आकाश-आयतनको सर्वथा अतिक्रमण कर 'विज्ञान अनंत है,' इस **विज्ञान-आयतन**को प्राप्त हैं। यह छठीं विज्ञान-स्थिति है। (७)

आनन्द ! (कोई कोई) सत्व विज्ञान-आयतनको सर्वथा अतिक्रमणकर 'कुछ नहीं है' इस **आकिंचन्य-आयतन** (=०निवास-स्थान)को प्राप्त हैं। यह सातवीं विज्ञान-स्थिति है। (दो आयतन हैं) असंज्ञि-सत्त्व-आयतन (=संज्ञा-रहित सत्त्वोंका आवास), और दूसरा नैव-संज्ञा-नासंज्ञा-आयतन (=न संज्ञावाला, न अ-संज्ञावाला आयतन)।

"आनन्द ! जो यह प्रथम विज्ञान-स्थिति 'नाना काया नाना संज्ञा' है, जैसे कि०। जो उस (प्रथम विज्ञान-स्थिति) को जानता है, उसकी उत्पत्ति (=समुदय)को जानता है, उसके अस्तगमन (=विनाश)को जानता है, उसके आस्वादको जानता है, उसके दुष्परिणाम (=आदिनव) को जानता है, उसके निस्सरण (=छूटनेके मार्ग) को जानता है, क्या उस (जानकारको) उस (=विज्ञान-स्थिति)का अभिवादन करना युक्त है ?" "नहीं, भन्ते !"

"० दूसरी विज्ञान-स्थिति—० सातवीं विज्ञान-स्थिति०। ० असंज्ञी-सत्त्वायतन ०, ० नैव-संज्ञा-न-असंज्ञायतन०।

"आनन्द ! जो इन सात सत्त्व-स्थितियों और दो आयतनोंके समुदय, अस्त-गमन, आस्वाद, परिणाम, निस्सरणको जान कर, (उपादानोंको) न ग्रहण कर मुक्त होता है; वह भिक्षु **प्रज्ञा-विमुक्त** (=जानकर मुक्त) कहा जाता है।

"आनन्द ! यह आठ विमोक्ष हैं। कौन से आठ ? (१) (स्वयं) रूप-वान् (दूसरे) रूपोंको देखता है। यह प्रथम विमोक्ष है। (२) भीतर (=अध्यात्म)में रूप-रहित संज्ञावाला, बाहर रूपोंको देखता है, यह दूसरा विमोक्ष है। (३) 'शुभ है' इससे अधिमुक्त (=विमुक्त) होता है, यह तीसरा विमोक्ष है। (४) सर्वथा रूप-संज्ञाके अतिक्रमण, प्रतिघ (=प्रतिहिंसा) संज्ञाके अस्त होनेसे, नानात्वकी संज्ञाके मनमें न करनेसे 'आकाश अनन्त है' इस (अनन्त) आकाशके आयतनको प्राप्त हो विहरता है, यह चौथा विमोक्ष है। (५) सर्वथा (अनन्त) आकाशके आयतनको अतिक्रमण कर, 'विज्ञान अनन्त है' इस विज्ञान-आयतनको प्राप्त हो विहरता है, यह पाँचवाँ विमोक्ष है। (६) सर्वथा विज्ञान आयतनको अतिक्रमण कर, 'कुछ नहीं है' इस आकिंचन्य-आयतनको प्राप्त हो विहरता है, यह छठाँ विमोक्ष है। (७) सर्वथा आकिंचन्य-आयतनको अतिक्रमण कर, नैव-संज्ञा-न-असंज्ञा-आयतनको प्राप्त हो विहरता है। यह सातवाँ विमोक्ष है। (८) सर्वथा नैव-संज्ञा-न-असंज्ञा-आयतनको अतिक्रमण कर संज्ञाकी वेदना (=अनुभव)के निरोधको प्राप्त हो विहरता है। यह आठवाँ विमोक्ष है। आनन्द ! यह आठ विमोक्ष हैं।

५—उभयतो भाग विमुक्त

"जब आनन्द ! भिक्षु इन आठ विमोक्षोंको अनुलोमसे (१,२,३ . . . क्रमसे) प्राप्त (=समाधि-प्राप्त) करता है, प्रतिलोमसे (८,७,६ . . .) भी (समाधि-) प्राप्त होता है। अनुलोमसे भी और प्रतिलोमसे भी (१ . . . ८ . . . १) प्राप्त होता है, जहाँ चाहता है, जब चाहता है, जितना चाहता है, उतनी (समाधि) प्राप्त करता है; (समाधिसे) उठता है। (=राग द्वेष आदि चित्त-मलों)के क्षयसे, इसी जन्ममें आस्रव-रहित (=अन्-आस्रव) चित्तकी मुक्ति, प्रज्ञा-विमुक्तिको स्वयं जान कर=साक्षात् कर, प्राप्त हो, विहरता है। आनन्द ! यह भिक्षु **उभयतो भाग-विमुक्त** (=नाम रूपसे मुक्त) कहा जाता है। आनन्द ! इस उभयतोभाग-विमुक्तिसे बढ़कर=उत्तम दूसरी उभयतो-भागविमुक्ति नहीं है।"

भगवान्‌ने यह कहा। सन्तुष्ट हो आयुष्मान् आनन्दने भगवान्‌के भाषणका अभिनंदन किया।

१६—महापरिनिब्बाण सुत्त-(२।३)

१—वज्जियोंके विरुद्ध अजातशत्रु। २—हानिसे बचने के उपाय। ३—बुद्धकी अन्तिम यात्रा—(१) बुद्धके प्रति सारिपुत्रका उद्‌गार (२) पाटलिपुत्रका निर्माण। (३) धर्म-आदर्श। (४) अम्बपाली गणिकाका भोजन। (५) सख्त बीमारी। (६) जीवनशक्तिका निर्वाणकी तैयारी। (७) महाप्रदेश (कसौटी)। (८) चुन्दका दिया अन्तिम भोजन। ४—जीवनकी अन्तिम घड़ियाँ—(१) चार दर्शनीय स्थान। (२) स्त्रियोंके प्रति भिक्षुओंका बर्ताव। (३) चक्रवर्तीकी दाहक्रिया। (४) आनन्दके गुण। (५) चक्रवर्तीके चार गुण। (६) महासुदर्शन जातक। (७) सुभद्रकी प्रव्रज्या। (८) अन्तिम उपदेश। ५—निर्वाण। ६—महाकाश्यपको दर्शन। ७—दाह क्रिया। ८—स्तूपनिर्माण।

ऐसा मैंने सुना—एक समय भगवान् **राजगृहमें गृध्रकूट** पर्वतपर विहार करते थे।

उस समय राजा मागध **अजातशत्रु** वैदेही-पुत्र[1] **वज्जीपर** चढ़ाई (=अभियान) करना चाहता था। वह ऐसा कहता था—'मैं इन ऐसे महर्द्धिक (=वैभव-शाली),=ऐसे महानुभाव, वज्जियोंको[2] उच्छिन्न करूँगा, वज्जियोंका विनाश करूँगा, उनपर आफत ढाऊँगा।'

१—वज्जियोंके विरुद्ध अजातशत्रु

तब ० अजातशत्रु०ने **मगधके** महामात्य (=महामंत्री) **वर्षकार** ब्राह्मणसे कहा—

"आओ ब्राह्मण! जहाँ भगवान् हैं, वहाँ जाओ। जाकर मेरे वचनसे भगवान्‌के पैरोंमें शिर से वन्दना करो। आरोग्य=अल्प-आतंक, लघु-उत्थान (=फुर्ती), सुख-विहार पूछो—'भन्ते! राजा० वन्दना करता है, आरोग्य० पूछता है।' और यह कहो—'भन्ते! राजा० वज्जियोंपर चढ़ाई करना चाहता है, वह ऐसा कहता है—'मैं इन ० वज्जियोंको उच्छिन्न करूँगा ०।' भगवान् जैसा तुमसे बोलें, उसे यादकर (आकर) मुझसे कहो, तथागत अ-यथार्थ (=वितथ) नहीं बोला करते।"

---

[1] गंगा (?)के घाटके पास आधा योजन अजातशत्रुका राज्य था, और आधा योजन लिच्छवियोंका।...। वहाँ पर्वतके पाद (=जळ)से बहुमूल्य सुगन्ध-वाला माल उतरता था। उसको सुनकर अजातशत्रुके—'आज जाऊँ कल जाऊँ' करते ही, लिच्छवी एक राय, एक मत हो पहले ही जाकर सब ले लेते थे। अजातशत्रु पीछे जाकर उस समाचारको पा क्रुद्ध हो चला आता था। वह दूसरे वर्ष भी वैसा ही करते थे। तब उसने अत्यन्त कुपित हो...ऐसा सोचा—'गण (=प्रजातंत्र)के साथ युद्ध मुश्किल है, (उनका) एक भी प्रहार बेकार नहीं जाता। किसी एक पंडितके साथ मंत्रणा करके करना अच्छा होगा।...'। (सोच) उसने वर्षकार ब्राह्मणको भेजा।—(अट्ठकथा)

[2] वर्तमान मुजफ्फरपुर, चम्पारन और दरभंगाके जिले।

"अच्छा भो।" कह ... वर्षकार ब्राह्मण अच्छे अच्छे यानोंको जुतवाकर, बहुत अच्छे यानपर आरूढ़ हो, अच्छे यानोंके साथ, राजगृहसे निकला; (और) जहाँ **गृध्रकूट**-पर्वत था, वहाँ चला। जितनी यानकी भूमि थी, उतना यानसे जाकर, यानसे उतर पैदल ही, जहाँ भगवान् थे, वहाँ गया। जाकर भगवान्के साथ संमोदनकर ... एक ओर बैठा; एक ओर बैठकर ... भगवान्से बोला—"भो गौतम! राजा ० आप गौतमके पैरोंमें शिरसे वन्दना करता है ०। ० वज्जियोंको उच्छिन्न करूँगा०'।"

२—हानिसे बचनेके उपाय

"उस समय आयुष्मान् **आनन्द** भगवान्के पीछे (खळे) भगवान्को पंखा झल रहे थे। तब भगवान्ने आयुष्मान् आनन्दको संबोधित किया—

"आनन्द! क्या तूने सुना है, (१) **वज्जी** (सम्मतिके लिये) बराबर बैठक (=सन्निपात) करते हैं=सन्निपात-बहुल हैं?"

"सुना है, भन्ते! वज्जी बराबर०।"

"आनन्द! जब तक वज्जी बैठक करते रहेंगे=सन्निपात-बहुल रहेंगे; (तब तक) आनन्द! वज्जियोंकी वृद्धि ही समझना, हानि नहीं।

(२) "क्या आनन्द! तूने सुना है, वज्जी एक हो बैठक करते हैं, एक हो उत्थान करते हैं, वज्जी एक हो करणीय (=कर्तव्य)को करते हैं?"

"सुना है, भन्ते! ०।"

"आनन्द! जब तक ०।

(३) "क्या ० सुना है, वज्जी **अ-प्रज्ञप्त**[1] (=गैरकानूनी)को प्रज्ञप्त (=विहित) नहीं करते, प्रज्ञप्त (=विहित)का उच्छेद नहीं करते। जैसे प्रज्ञप्त है, वैसे ही पुराने पुराने **वज्जि-धर्म** (=०नियम) को ग्रहण कर, वर्तते हैं?"

"भन्ते! सुना है।"

"आनन्द ०! जब तक कि ०।

(४) "क्या आनन्द! तूने सुना है—वज्जियोंके जो महल्लक (=वृद्ध) हैं, उनका (वह) सत्कार करते हैं,=गुरुकार करते हैं, मानते हैं, पूजते हैं; उनकी (बात) सुनने योग्य मानते हैं।"

"भन्ते! सुना है ०।"

"आनन्द! जब तक कि ०।"

---

[1] "पहले न किये गये, शुल्क या बलि (=कर) या दंड लेनेवाले अप्रज्ञप्त (काम) करते हैं। ...। पुराना वज्जिधर्म ... यहाँ पहले वज्जिराजा लोग—'यह चोर है=अपराधी है' (कह) लाकर दिखलानेपर, 'इस चोरको बाँधो'—न कह विनिश्चय-महामात्य (=न्यायाधीश)को देते थे, वह विचारकर अचोर होनेपर छोळ देते थे, यदि चोर होता, तो अपने कुछ न कहकर व्यवहारिकको दे देते थे। वह भी विचारकर अचोर होनेपर छोळ देते थे, यदि चोर होता तो सूत्रधारको दे देते थे। वह भी विचारकर अचोर होनेपर छोळ देते, यदि चोर होता तो अष्टकुलिकको दे देते। वह भी वैसाही कर सेनापतिको, सेनापति उपराजको, और उपराज राजा (=गण-पति)को। राजा विचारकर यदि अचोर होता तो छोळ देता। यदि चोर (=अपराधी) होता, तो प्रवेणी-पुस्तक बँचवाता। उसमें—जिसने यह किया, उसको ऐसा दंड हो—लिखा रहता है। राजा उसके अपराधको उससे मिलाकर उसके अनुसार दंड करता।"—अट्ठकथा।

(५) "क्या सुना है—जो वह कुल-स्त्रियाँ हैं, कुल-कुमारियाँ हैं, उन्हें (वह) छीनकर, जबर्दस्ती नहीं बसाते?"

"भन्ते! सुना है ०।"

"आनन्द! ० जब तक ०।"

(६) "क्या ० सुना है—वज्जियोंके (नगरके) भीतर या बाहरके जो चैत्य (=चौरा=देव-स्थान) हैं, वह उनका सत्कार करते हैं, ० पूजते हैं। उनके लिये पहिले किये गये दानको, पहिले-की गई धर्मानुसार बलि (=वृत्ति)को, लोप नहीं करते?"

"भन्ते! सुना है ०?"

"जब तक ०।"

(७) "क्या सुना है,—**वज्जी** लोग अर्हतों (=पूज्यों)की अच्छी तरह धार्मिक (=धर्मानुसार) रक्षा=आवरण=गुप्ति करते हैं। किसलिये? भविष्यमें अर्हत् राज्यमें आवें, आये अर्हत् राज्यमें सुखसे विहार करें।"

"सुना है, भन्ते! ०।"

"जब तक ०।"

तब भगवान्ने ० **वर्षकार** ब्राह्मणको संबोधित किया—

"ब्राह्मण! एक समय मैं **वैशालीके सारन्दद-चैत्यमें** विहार करता था। वहाँ मैंने वज्जियोंको यह सात अपरिहाणीय-धर्म (=अ-पतनके नियम) कहे। जब तक ब्राह्मण! यह सात अपरि-हाणीय-धर्म वज्जियोंमें रहेंगे; इन सात अपरिहाणीय-धर्मोंमें वज्जी (लोग) दिखलाई पळेंगे; (तब तक) ब्राह्मण! वज्जियोंकी वृद्धि ही समझना, हानि नहीं।"

ऐसा कहने पर० वर्षकार ब्राह्मण भगवान्से बोला—

"हे गौतम! (इनमेंसे) एक भी अपरिहाणीय-धर्मसे वज्जियोंकी वृद्धि ही समझनी होगी, सात अ-परिहाणीय धर्मोंकी तो बात ही क्या? हे गौतम! राजा ० को उपलाप (=रिश्वत देना), या आपसमें फूटको छोळ, युद्ध करना ठीक नहीं। हन्त! हे गौतम! अब हम जाते हैं, हम बहु-कृत्य=बहु-करणीय (=बहुत कामवाले) हैं ०"

"ब्राह्मण! जिसका तू काल समझता है।"

"तब मगध-महामात्य वर्षकार ब्राह्मण भगवान्के भाषणको अभिनन्दनकर, अनुमोदनकर, आसनसे उठकर, चला गया[1]।

---

[1] अ. क. "राजाके पास गया। राजाने उससे पूछा—'आचार्य! भगवान्ने क्या कहा?'। उसने कहा—'भो! श्रमण०के कथनसे तो वज्जियोंको किसी प्रकार भी लिया नहीं जा सकता; हाँ, उपलापन (=रिश्वत) और आपसमें फूट होनेसे लिया जा सकता है'। तब राजाने कहा—'उपलापनसे हमारे हाथी घोळे नष्ट होंगे, भेद (=फूट)से ही पकळना चाहिये। ०।"

"तो महाराज! वज्जियोंको लेकर तुम परिषद्में बात उठाओ। तब मैं—'महाराज! तुम्हें उनसे क्या है? अपनी कृषि, वाणिज्य करके यह राजा (=प्रजातन्त्रके सभासद्) जीयें'—कहकर चला जाऊँगा। तब तुम बोलना—'क्योंजी! यह ब्राह्मण वज्जियोंके सम्बन्धमें होती बातको रोकता है'। उसी दिन मैं उन (=वज्जियों)के लिये भेंट (=पर्णाकार) भेजूँगा; उसे भी पकळकर मेरे ऊपर दोषा-रोपणकर, बंधन, ताळन आदि न कर, छुरेसे मुंडन करा मुझे नगरसे निकाल देना। तब मैं कहूँगा—

तब भगवान्‌ने ० वर्षकार ब्राह्मणके जानेके थोळी ही देर बाद आयुष्मान् आनन्दको संबोधित किया—

"जाओ, आनन्द ! तुम जितने भिक्षु राजगृहके आसपास विहरते हैं; उन सबको उपस्थान-शालामें एकत्रित करो।"

"अच्छा, भन्ते !"

"भन्ते ! भिक्षुसंघको एकत्रित कर दिया, अब भगवान् जिसका समय समझें।"

तब भगवान् आसनसे उठकर जहाँ उपस्थान-शाला थी, वहाँ जा, बिछे आसन पर बैठे। बैठ कर भगवान्‌ने भिक्षुओंको संबोधित किया—"भिक्षुओ ! तुम्हें सात अपरिहाणीय-धर्म उपदेश करता हूँ, उन्हें सुनो कहता हूँ।"

... "अच्छा, भन्ते !" ...

मैंने तेरे नगरमें प्राकार और परिखा (=खाईं) बनवाई हैं; मैं दुर्बल ...तथा गंभीर स्थानोंको जानता हूँ, अब जल्दी (तुझे) सीधा करूँगा'। ऐसा सुनकर बोलना—'तुम जाओ'।

"राजाने सब किया। लिच्छवियोंने उसके निकालने (=निष्क्रमण)को सुनकर कहा—'ब्राह्मण मायावी (=शठ) है, उसे गंगा न उतरने दो।' तब किन्हीं किन्हींके—'हमारे लिये कहनेसे तो वह (राजा) ऐसा करता है' कहनेपर,—'तो भणे ! आने दो'। उसने जाकर लिच्छवियों द्वारा—'किस-लिये आये?' पूछनेपर, वह (सब) हाल कह दिया। लिच्छवियोंने—'थोळीसी बातके लिये इतना भारी दंड करना युक्त नहीं था' कहकर—'वहाँ तुम्हारा क्या पद=(स्थानान्तर) था'—पूछा। 'मैं विनिश्चय-महामात्य था'—(कहनेपर)—'यहाँ भी (तुम्हारा) वही पद रहे'—कहा। वह सुन्दर तौरसे विनिश्चय (=इन्साफ) करता था। राजकुमार उसके पास विद्या (=शिल्प) ग्रहण करते थे। अपने गुणोंसे प्रतिष्ठित हो जानेपर उसने एक दिन एक लिच्छविको एक ओर लेजाकर—'खेत (=केदार, क्यारी) जोतते हैं'? 'हाँ जोतते हैं'। 'दो बैल जोतकर?' 'हाँ, दो बैल जोतकर'—कहकर लौट आया। तब उसको दूसरेके—'आचार्य ! (उसने) क्या कहा?'—पूछनेपर, उसने वह कह दिया। (तब) 'मेरा विश्वास न कर, यह ठीक ठीक नहीं बतलाता है' (सोच) उसने बिगाळ कर लिया। ब्राह्मण दूसरे दिन भी एक लिच्छवीको एक ओर लेजाकर 'किस व्यंजन (=तेमन, तरकारी)से भोजन किया' पूछ-कर लौटनेपर, उससे भी दूसरेने पूछकर, न विश्वासकर वैसेही बिगाळ कर लिया। ब्राह्मण किसी दूसरे दिन एक लिच्छवीको एकान्तमें लेजाकर—'बळे गरीब हो न?'—पूछा। 'किसने ऐसा कहा?' 'अमुक लिच्छवीने।' दूसरेको भी एक ओर लेजाकर—'तुम कायर हो क्या?' 'किसने ऐसा कहा' 'अमुक लिच्छवीने'। इस प्रकार दूसरेके न कहे हुएको कहते तीन वर्ष (४८३—४८० ई. पू.)में उन राजाओंमें परस्पर ऐसी फूट डाल दी, कि दो आदमी एक रास्तेसे भी न जाते थे। वैसा करके, जमा होनेका नगारा (=सन्निपात-भेरी) बजवाया।

लिच्छवी—'मालिक (=ईश्वर) लोग जमा हों'—कहकर नहीं जमा हुए। तब उस ब्राह्मणने राजाको जल्दी आनेके लिये खबर (=शासन) भेजी। राजा सुनकर सैनिक नगारा (=बलभेरी) बजवाकर निकला। वैशालीवालोंने सुनकर भेरी बजवाई—'(आओ चलें) राजाको गंगा न उतरने दें'। उसको भी सुनकर—'देव-राज (=सुर-राज) लोग जायें' आदि कहकर लोग नहीं जमा हुए। (तब) भेरी बजवाई—'नगरमें घुसने न दें, (नगर-)द्वार बन्द करके रहें'। एक भी नहीं जमा हुआ। (राजा अजातशत्रु) खुले द्वारोंसे ही घुसकर, सबको तबाह कर (=अनय-व्यसनं पापेत्वा) चला गया।

"(१) भिक्षुओ! जब तक भिक्षु बार बार (=अभीक्ष्णं) बैठक करनेवाले=सन्निपात-बहुल रहेंगे; (तब तक) भिक्षुओ! भिक्षुओंकी वृद्धि समझना, हानि नहीं। (२) जब तक भिक्षुओ! भिक्षु एक हो बैठक करेंगे, एक हो उत्थान करेंगे; एक हो संघके करणीय (कामों)को करेंगे; (तब तक) भिक्षुओ! भिक्षुओंकी वृद्धि ही समझना, हानि नहीं। (३) जब तक ० अप्रज्ञप्तों (=अ-विहितों) को प्रज्ञप्त नहीं करेंगे, प्रज्ञप्तका उच्छेद नहीं करेंगे; प्रज्ञप्त शिक्षा-पदों (=विहित भिक्षु-नियमों)के अनुसार वर्तेंगे ०। (४) जब तक ० जो वह रक्तज्ञ (=धर्मानुरागी) चिरप्रब्रजित, संघके पिता, संघके नायक, स्थविर भिक्षु हैं, उनका सत्कार करेंगे, गुरुकार करेंगे, मानेंगे, पूजेंगे, उन(की बात)को सुनने योग्य मानेंगे ०। (५) जब तक पुनः पुनः उत्पन्न होनेवाली तृष्णाके बशमें नहीं पळेंगे०। (६) जब तक ० भिक्षु, आरण्यक शयनासन (=वनकी कुटियों)की इच्छावाले रहेंगे०। (७) जब तक भिक्षुओ! हर एक भिक्षु यह याद रखेगा कि अनागत (=भविष्य)में सुन्दर सब्रह्मचारी आवें, आये हुये (=आगत) सुन्दर सब्रह्मचारी सुखसे विहरें; (तब तक)०। भिक्षुओ! जब तक बह सात अ-परिहाणीय-धर्म (भिक्षुओंमें) रहेंगे; (जब तक) भिक्षु इन सात अ-परिहाणीय-धर्मोंमें दिखाई देंगे; (तब तक) ०।

"भिक्षुओ! और भी सात अ-परिहाणीय-धर्मोंको कहता हूँ। उसे सुनो ०।....। (१) भिक्षुओ! जब तक भिक्षु (सारे दिन चीवर आदिक) काममें लगे रहनेवाले (=कर्माराम)=कर्मरत =कर्मारामता-युक्त नहीं होंगे। (तब तक) ०। (२) जब तक भिक्षु बकवादमें लगे रहनेवाले (=भस्साराम),=भस्सरत=भस्सारामता-युक्त नहीं होंगे। (३)० निद्राराम=निद्रा-रत=निद्रारामता-युक्त नहीं होंगे ०। (४) ० संगणिकाराम (=भीळको पसन्द करनवाले)=संगणिक-रत= संगणिकारामता-युक्त नहीं होंगे०। (५) ० पापेच्छ (=बदनीयत)=पाप-इच्छाओंके वशमें नहीं होंगे ०। (६) ० पाप-मित्र (=बुरे मित्रोंवाले),=पाप-सहाय, बुराईकी ओर रुझानवाले न होंगे०। (७) ० थोळेसे विशेष (=योग-साफल्य)को पाकर बीचमें न छोळ देंगे ०।०।

"भिक्षुओ! और भी सात अ-परिहाणीय-धर्मोंको कहता हूँ ०।...। (१) भिक्षुओ! जब तक भिक्षु श्रद्धालु होंगे ०। (२) ० (पापसे) लज्जाशील (=ह्रीमान्) होंगे०। (३) ० (पापसे) भय खानेवाले (=अपत्रपी) होंगे ०। (४) ० बहुश्रुत ० (५) ० उद्योगी (=आरब्ध-वीर्य) ०। (६) ० याद रखनेवाले (=उपस्थित-स्मृति)०। (७) ० प्रज्ञावान् होंगे ०।०।

"भिक्षुओ! और भी सात अ-परिहाणीय-धर्मोंको०। (१) भिक्षुओ! जब तक भिक्षु स्मृति-संबोध्यंग[1]की भावना करेंगे०। (२) ० धर्म-विचय-संबोध्यंगकी०। (३) ० वीर्य-सं०। (४) प्रीति-सं०। (५) ० प्रश्रब्धि-सं०। (६) ० समाधि-सं०। (७) ० उपेक्षा-संबोध्यंगकी।०।०।

"भिक्षुओ! और भी सात अ-परिहाणीय-धर्मोंको कहता हूँ।....। (१) भिक्षुओ! जबतक भिक्षु अनित्य-संज्ञाकी भावना करेंगे ०। (२) ० अनात्मसंज्ञा ०। (३) ० भोगोंमें; अशुभसंज्ञा ०। (४) ० आदिनव (=दुष्परिणाम)-संज्ञा ०। (५) प्रहाण-(=त्याग) ०। (६) ० विरागसंज्ञा ०। (७) ० निरोधसंज्ञा ०।०।

"भिक्षुओ! और भी छै अ-परिहाणीय-धर्मोंको कहता हूँ ०।...। (१) जब तक भिक्षु-सब्रह्मचारियों (=गुरुभाइयों)में गुप्त और प्रकट, मैत्रीपूर्ण कायिक कर्म रखेंगे०। (२)/० मैत्रीपूर्ण वाचिक-कर्म रक्खेंगे०। (४) ० जब तक भिक्षु धार्मिक, धर्मसे प्राप्त जो लाभ हैं—अन्तमें पात्रमें चुपळने मात्र भी—वैसे लाभोंको (भी) शीलवान् सब्रह्मचारी भिक्षुओंमें बाँटकर भोग करनेवाले होंगे ० (५) ० जब तक भिक्षु, जो वह अखंड (=निर्दोष) अ-छिद्र, अ-कल्मष=भुजिस्स

[1] परमज्ञानप्राप्त करनेके लिये सात आवश्यक बातें।

(=सेवनीय), विद्वानोंसे प्रशंसित, अ-निन्दित, समाधिकी ओर (ले) जानेवाले शील हैं, वैसे शीलोंसे शील-श्रामण्य-युक्त हो सब्रह्मचारियोंके साथ गुप्त भी प्रकट भी विहरेंगे०। (६) जो वह आर्य (=उत्तम), नैर्याणिक (=पार करानेवाली), वैसा करनेवालेको अच्छी प्रकार दुःख-क्षयकी ओर ले जानेवाली दृष्टि है, वैसी दृष्टिसे दृष्टि-श्रामण्य-युक्त हो, सब्रह्मचारियोंके साथ गुप्त भी प्रकट भी विहरेंगे०। भिक्षुओ! जब तक यह अपरिहाणीय-धर्म०।

वहाँ **राजगृहमें गृध्रकूट-पर्वत**पर विहार करते हुए भगवान् बहुत करके भिक्षुओंको यही धर्म-कथा कहते थे—ऐसा शील है, ऐसी समाधि है, ऐसी प्रज्ञा है। शीलसे परिभावित समाधि महा-फलवाली =महा-आनृशंसवाली होती है। समाधिसे परिभावित प्रज्ञा महाफलवाली=महा-आनृशंसवाली होती है। प्रज्ञासे परिभावित चित्त आस्रवों[1],—कामास्रव, भवास्रव, दृष्टि-आस्रव—से अच्छी तरह मुक्त होता है।

३—बुद्धकी अन्तिम यात्रा

अम्ब-लट्ठिका—

तब भगवान्ने राजगृहमें इच्छानुसार विहारकर आयुष्मान् आनन्दको आमंत्रित किया—

"चलो आनन्द! जहाँ **अम्बलट्ठिका**[2] है, वहाँ चलें।" "अच्छा, भन्ते!"...

भगवान् महान् भिक्षु-संघके साथ जहाँ अम्बलट्ठिका थी, वहाँ पहुँचे। वहाँ भगवान् अम्बलट्ठिकामें **राजगारकमें** विहार करते थे। वहाँ० राजगारकमें भी भगवान् भिक्षुओंको बहुधा यही **धर्म-कथा** कहते थे—०।

भगवान्ने अम्बलट्ठिकामें यथेच्छ विहार कर आयुष्मान् आनन्दको आमंत्रित किया—

"चलो आनन्द! जहाँ **नालन्दा** है, वहाँ चलें।" "अच्छा, भन्ते!"...

(१) बुद्धके प्रति सारिपुत्रका उद्गार

नालन्दा—

तब भगवान् वहाँसे महाभिक्षु-संघके साथ जहाँ नालन्दा थी, वहाँ पहुँचे। वहाँ भगवान् नालन्दा[3] में **प्रावारिक-आम्रवनमें** विहार करते थे।

तब आयुष्मान् **सारिपुत्र**[4] जहाँ भगवान् थे, वहाँ गये। जाकर भगवान्को अभिवादनकर एक ओर बैठ गये। एक ओर बैठे आयुष्मान् सारिपुत्रने भगवान्से कहा—

"भन्ते! मेरा ऐसा विश्वास है—'संबोधि (=परमज्ञान)में भगवान्से बढ़कर=भूयस्तर कोई दूसरा श्रमण ब्राह्मण न हुआ, न होगा, न इस समय है'।"

"सारिपुत्र! तूने यह बहुत उदार (=बळी)=आर्षभी वाणी कही। बिल्कुल सिंहनाद... किया—'मेरा ऐसा०।' सारिपुत्र! जो वह अतीतकालमें अर्हत् सम्यक्-संबुद्ध हुए, क्या (तूने) उन सब भगवानोंको (अपने) चित्तसे जान लिया; कि वह भगवान् ऐसे शीलवाले, ऐसी प्रज्ञावाले, ऐसे विहार-वाले, ऐसी विमुक्तिवाले थे?"

"नहीं, भन्ते!"

---

[1] **आस्रव (=चित्त-मल)—भोग(=काम)-संबंधी, आवागमन(=भव)-संबंधी, धारणा (=दृष्टि)-संबंधी।** [2] **सम्भवतः वर्तमान सिलाव।** [3] **वर्तमान बळगाँव, जिला पटना।**

[4] **पृ० १२४ टि० १ से विरुद्ध होनेसे सारिपुत्रका इस वक्त होना सन्दिग्ध है।**

"सारिपुत्र ! जो वह भविष्यकालमें अर्हत्-सम्यक्-संबुद्ध होंगे, क्या उन सब भगवानोंको चित्तसे जान लिया ० ?"

"नहीं, भन्ते !"

"सारिपुत्र ! इस समय मैं अर्हत्-सम्यक्-संबुद्ध हूँ, क्या चित्तसे जान लिया, (कि मैं) ऐसी प्रज्ञावाला ० हूँ ?"

"नहीं, भन्ते !"

"(जब) सारिपुत्र ! तेरा अतीत, अनागत (=भविष्य), प्रत्युत्पन्न (=वर्तमान) अर्हत्-सम्यक्-संबुद्धोंके विषयमें चेतः-परिज्ञान (=पर-चित्तज्ञान) नहीं है; तो सारिपुत्र ! तूने क्यों यह बहुत उदार =आर्षभी वाणी कही ० ?"

"भन्ते ! अतीत-अनागत- प्रत्युत्पन्न अर्हत्-सम्यक्-संबुद्धोंमें मुझे चेतः-परिज्ञान नहीं है; किन्तु (सबकी) धर्म-अन्वय (=धर्म-समानता) विदित है। **जैसे** कि भन्ते ! राजाका सीमान्त-नगर दृढ़ नींव-वाला, दृढ़ प्राकारवाला, एक द्वारवाला हो। वहाँ अज्ञातों (=अपरिचितों)को निवारण करनेवाला, ज्ञातों (=परिचितों)को प्रवेश करानेवाला पंडित=व्यक्त=मेधावी द्वारपाल हो। वहाँ नगरकी चारों ओर, अनुपर्याय (=क्रमशः) मार्गपर घूमते हुए (मनुष्य), प्राकारमें अन्ततो बिल्लीके निकलने भरकी भी संधि=विवर न पाये। उसको ऐसा हो—'जो कोई बळे बळे प्राणी इस नगरमें प्रवेश करते हैं; सभी इसी द्वारसे ०। ऐसे ही भन्ते ! मैंने धर्म-अन्वय जान लिया—'जो वह अतीतकालमें अर्हत्-सम्यक्-संबुद्ध हुए, वह सभी भगवान् भी चित्तके उपक्लेश (=मल), प्रज्ञाको दुर्बल करनेवाले, पाँचों नी व र णों को छोळ, चारों स्मृति-प्रस्थानोंमें चित्तको सु-प्रतिष्ठितकर, सात बोध्यंगोंकी यथार्थसे भावना कर, सर्वश्रेष्ठ (=अनुत्तर) सम्यक्-संबोधि (=परमज्ञान)का साक्षात्कार किये थे। और भन्ते ! अनागतमें भी जो अर्हत्-सम्यक्-संबुद्ध होंगे; वह सभी भगवान् ०। भन्ते ! इस समय भगवान् अर्हत्-सम्यक्-संबुद्धने भी चित्तके उपक्लेश ०।"

वहाँ नालन्दामें प्रावारिक-आम्रवनमें विहार करते, भगवान् भिक्षुओंको बहुधा यही कहते थे ०।

पाटलि-ग्राम—

तब भगवान्ने नालन्दामें इच्छानुसार विहारकर, आयुष्मान् आनन्दको आमंत्रित किया—

"चलो, आनन्द ! जहाँ **पाटलि-ग्राम** है, वहाँ चलें।"

"अच्छा, भन्ते !"

तब भगवान्...भिक्षुसंघके साथ, जहाँ पा ट लि ग्रा म[१] था, वहाँ गये। पाटलिग्रामके उपासकोंने सुना कि भगवान् पाटलिग्राम आये हैं। तब ... उपासक जहाँ भगवान् थे वहाँ गये। जाकर भगवान्को अभिवादनकर एक ओर बैठ गये। एक ओर बैठे ... उपासकोंने भगवान्से यह कहा—

"भन्ते ! भगवान् हमारे आवसथागार (=अतिथिशाला)को स्वीकार करें।"

भगवान्ने मौनसे स्वीकार किया।

तब ... उपासक भगवान्की स्वीकृति जान आसनसे उठ, भगवान्को अभिवादनकर, प्रदक्षिणा कर जहाँ आवसथागार था, वहाँ गये। जाकर आवसथागारमें चारों ओर बिछौना बिछाकर, आसन लगाकर, जलके बर्तन स्थापितकर, तेल दीपक जला, जहाँ भगवान् थे वहाँ गये। जाकर, भगवान्को अभिवादनकर एक ओर खळे हो गये। एक ओर खळे हो पाटलिग्रामके उपासकोंने भगवान्से यह कहा—"भन्ते ! आव-सथागारमें चारों ओर बिछौना बिछा दिया ०, अब जिसका भन्ते ! भगवान् काल समझें।"

---

[१] **वर्तमान पटना।**

तब भगवान् सायंकालको पहिनकर पात्र चीवर ले, भिक्षु-संघके साथ ० आवसथागारमें प्रविष्ट हो बीचके खम्भेके पास पूर्वाभिमुख बैठे। भिक्षुसंघ भी पैर पखार आवसथागारमें प्रवेशकर, पूर्वकी ओर मुँहकर पच्छिमकी भीतके सहारे भगवान्को आगेकर बैठा। पाटलिग्रामके उपासक भी पैर पखार आवसथागारमें प्रवेशकर पच्छिमकी ओर मुँहकर पूर्वकी भीतके सहारे भगवान्को सामने करके बैठे। तब भगवान्ने . . . उपासकोंको आमंत्रित किया—

"गृहपतियो ! दुराचारके कारण दुःशील (=दुराचारी) के लिये यह पाँच दुष्परिणाम हैं। कौनसे पाँच ? गृहपतियो ! (१) दुराचारी आलस्य करके बहुतसे अपने भोगोंको खो देता है, दुराचारीका दुराचारके कारण यह पहला दुष्परिणाम है। (२) और फिर. . .दुराचारीकी निन्दा होती है ०। (३) दुराचारी आचारभ्रष्ट (पुरुष) क्षत्रिय, ब्राह्मण, गृहपति या श्रमण जिस किसी सभामें जाता है प्रतिभारहित, मूक होकर ही जाता है ०। (४) ० मूढ़ रह मृत्युको प्राप्त होता है ०। (५) और फिर गृहपतियो ! दुराचारी आचारभ्रष्ट काया छोळ मरनेके बाद अपाय=दुर्गति=पतन=नरकमें उत्पन्न होता है। दुराचारीके दुराचारके कारण यह पाँचवाँ दुष्परिणाम है। ०।

"गृहपतियो ! सदाचारीके लिये सदाचारके कारण पाँच सुपरिणाम हैं। कौनसे पाँच ?—(१) गृहपतियो ! सदाचारी अप्रमाद (=गफलत न करना) न कर बळी भोगराशिको (इसी जन्ममें) प्राप्त करता है। सदाचारीको सदाचारके कारण यह पहला सुपरिणाम है। (२) ० सदाचारीका मंगल यश फैलता है ०। (३) ० जिस किसी सभामें जाता है मूक न हो विशारद बन कर जाता है ०। (४) ० मूढ़ न हो मृत्युको प्राप्त होता है ०। (५) और फिर गृहपतियो ! सदाचारी सदाचारके कारण काया छोळ मरनेके बाद सुगति=स्वर्गलोकको प्राप्त होता है। सदाचारीको सदाचारके कारण यह पाँचवाँ सुपरिणाम है। गृहपतियो ! सदाचारीके लिये सदाचारके कारण यह पाँच सुपरिणाम हैं।"

तब भगवान्ने बहुत रात तक. . .उपासकोंको धार्मिक कथासे संदर्शित. . .समुत्तेजितकर. . . उद्योजित किया—"गृहपतियो ! रात क्षीण हो गई, जिसका तुम समय समझते हो (वैसा करो)।"

"अच्छा भन्ते !". . .पाटलिग्राम-वासी. . .[1] उपासक. . .आसनसे उठकर भगवान्को अभिवादनकर, प्रदक्षिणाकर, चले गये। तब पाटलिग्रामिक उपासकोंके चले जानेके थोळी ही देर बाद भगवान् शून्य-आगारमें चले गये।

(२) पाटलिपुत्रका निर्माण

उस समय **सुनीध** (=सुनीथ) और **वर्षकार** मगधके महामात्य पाटलिग्राममें **वज्जियों**को रोकनेके लिये नगर बसा रहे थे। उस समय अनेक हजार देवता पाटलिग्राममें वास ग्रहण कर रहे थे। जिस स्थानमें महाप्रभावशाली (=महेसक्ख) देवताओंने वास ग्रहण किया, उस स्थानमें महा-

---

[1] "भगवान् कब पाटलिग्राम गये ? . . . श्रावस्तीमें धर्मसेनापति (सारिपुत्र) का चैत्य बनवा, वहाँसे निकलकर राजगृहमें वास करते, वहाँ आयुष्मान् महामौद्गल्यायनका चैत्य बनवाकर, वहाँसे निकल अम्बलट्ठिकामें वासकर; अ-त्वरित चारिकासे देशमें विचरते; वहाँ वहाँ एक एक रात वास करते, लोकानुग्रह करते, क्रमशः पाटलिग्राम पहुँचे। . . . पाटलिग्राममें अजातशत्रु और लिच्छवि राजाओंके आदमी समय समयपर आकर घरके मालिकोंको घरसे निकालकर (एक) मास भी आधे मास भी बस रहते थे। इससे पाटलिग्राम-वासियोंने नित्य पीळित हो—उनके आनेपर यह (हमारा) वासस्थान होगा—(सोच) . . . नगरके बीचमें महाशाला बनवाई। उसीका नाम था आवसथागार। वह उसी दिन समाप्त हुआ था।"—अट्ठकथा।

प्रभावशाली राजाओं और राजमहामंत्रियोंके चित्तमें घर बनानेको होता है। जिस स्थानमें मध्यम श्रेणीके देवताओंने वास ग्रहण किया, उस स्थानमें मध्यमश्रेणीके राजाओं और राजमहामंत्रियोंके चित्तमें घर बनानेको होता है। जिस स्थानमें नीच देवताओंने वास ग्रहण किया, उस स्थानमें नीच राजाओं और राजमहामंत्रियोंके चित्तमें घर बनानेको होता है।

भगवान्‌ने रातके प्रत्यूष-समय (=भिनसार)को उठकर आयुष्मान् आनन्दको आमंत्रित किया—

"आनन्द ! पाटलिग्राममें कौन नगर बना रहा है ?"

"भन्ते ! सुनीथ और वर्षकार मगध-महामात्य, वज्जियोंको रोकनेके लिये नगर बसा रहे हैं।"

"आनन्द ! जैसे त्रायस्त्रिंश देवताओंके साथ सलाह करके **मगध**के महामात्य सुनीथ, वर्षकार, वज्जियोंके रोकनेके लिये नगर बना रहे हैं। आनन्द ! मैंने अमानुष दिव्य नेत्रसे देखा—अनेक सहस्र देवता यहाँ पाटलिग्राममें वास्तु (=घर, वास) ग्रहण कर रहे हैं। जिस प्रदेशमें महाशक्ति-शाली (=महेसक्ख) देवता वास ग्रहणकर रहे हैं, वहाँ महा-शक्ति-शाली राजाओं और राज-महामात्योंका चित्त, घर बनानेको लगेगा। जिस प्रदेशमें मध्यम देवता वास ग्रहणकर रहे हैं, वहाँ मध्यम राजाओं और राज-महामात्योंका चित्त घर बनानेको लगेगा। जिस प्रदेशमें नीच देवता०, वहाँ नीच राजाओं०। आनन्द ! जितने (भी) आर्य-आयतन (=आर्योंके निवास) हैं, जितने भी वणिक्-पथ (=व्यापार-मार्ग) हैं, (उनमें) यह पाटलिपुत्र, पुट-भेदन (=मालकी गाँठ जहाँ तोळी जाय) अग्र (=प्रधान)-नगर होगा। पाटलिपुत्रके तीन अन्तराय (=शत्रु) होंगे—आग, पानी, और आपसकी फूट।"

तब मगध-महामात्य **सुनीथ** और **वर्षकार** जहाँ भगवान् थे, वहाँ गये; जाकर भगवान्‌के साथ संमोदनकर...एक ओर खळे हुए...भगवान्‌से बोले—

"भिक्षु-संघके साथ आप गौतम हमारा आजका भात स्वीकार करें।"

भगवान्‌ने मौनसे स्वीकार किया।

तब ० सुनीथ वर्षकार भगवान्‌की स्वीकृति जान, जहाँ उनका आवसथ (=डेरा) था, वहाँ गये। जाकर अपने आवसथमें उत्तम खाद्य-भोज्य तैयार करा (उन्होंने) भगवान्‌को समयकी सूचना दी...।

तब भगवान् पूर्वाह्ण समय पहनकर, पात्र चीवर ले भिक्षु-संघके साथ जहाँ मगध-महामात्य सुनीथ और वर्षकारका आवसथ था, वहाँ गये; जाकर बिछे आसनपर बैठे। तब सुनीथ, वर्षकारने बुद्ध-प्रमुख भिक्षू-संघको अपने हाथसे उत्तम खाद्य-भोज्यसे संतर्पित=संप्रवारित किया। तब ० सुनीथ वर्षकार, भगवान्‌के भोजनकर पात्रसे हाथ हटा लेनेपर, दूसरा नीचा आसन ले, एक ओर बैठ गये। एक ओर बैठे हुए मगध-महामात्य सुनीथ, वर्षकारको भगवान्‌ने इन गाथाओंसे (दान-)अनुमोदन किया—

"जिस प्रदेश(में) पंडितपुरुष, शीलवान्, संयमी,
ब्रह्मचारियोंको भोजन कराकर वास करता है॥१॥
"वहाँ जो देवता हैं, उन्हें दक्षिणा (=दान) देनी चाहिये।
वह देवता पूजित हो पूजा करते हैं, मानित हो मानते हैं॥२॥
"तब (वह) औरस पुत्रकी भाँति उसपर अनुकम्पा करते हैं।
देवताओंसे अनुकम्पित हो पुरुष सदा मंगल देखता है॥३॥"

तब भगवान् ० सुनीथ और वर्षकारको इन गाथाओंसे अनुमोदनकर, आसनसे उठकर चले गये।

उस समय ० सुनीथ, वर्षकार भगवान्‌के पीछे पीछे चल रहे थे—'श्रमण गौतम आज जिस द्वारसे निकलेंगे, वह **गौतम-द्वार**...होगा। जिस तीर्थ (=घाट)से **गंगा** नदी पार होंगे, वह **गौतम-तीर्थ**...होगा। तब भगवान् जिस द्वारसे निकले, वह गौतमद्वार...हुआ। भगवान् जहाँ गंगा-नदी है, वहाँ गये।

उस समय गंगा करारों बराबर भरी, करारपर बैठे कौवेके पीने योग्य थी। कोई आदमी नाव खोजते थे, कोई ० बेळा (=उलुम्प) खोजते थे, कोई ० कूला (=कुल्ल) बाँधते थे। तब भगवान्, जैसे कि बल-वान् पुरुष समेटी बाँहको (सहज ही) फैलादे, फैलाई बाँहको समेट ले, वैसे ही भिक्षु-संघके साथ गंगा नदीके इस पारसे अन्तर्धान हो, परले तीरपर जा खळे हुए। भगवान्ने उन मनुष्योंको देखा, कोई कोई नाव खोज रहे थे ०। तब भगवान्ने इसी अर्थको जानकर, उसी समय यह उदान कहा—

"(पंडित) छोटे जलाशयों (=पल्वलों)को छोळ समुद्र और नदियोंको सेतुसे तरते हैं।
(जब तक) लोग कूला बाँधते रहते हैं, (तब तक) मेधावी जन तर गये रहते हैं ॥४॥"

(इति) प्रथम भाणवार ॥१॥

कोटिग्राम––

तब भगवान्ने आयुष्मान् आनन्दको आमंत्रित किया—

"आओ आनन्द! जहाँ **कोटिग्राम** है, वहाँ चलें।" "अच्छा, भन्ते!"

तब भगवान् भिक्षु-संघके साथ जहाँ कोटिग्राम था, वहाँ गये। वहाँ भगवान् कोटि-ग्राममें विहार करते थे। भगवान्ने भिक्षुओंको आमंत्रित किया—

"भिक्षुओ! चारों आर्य-सत्योंके अनुबोध=प्रतिवेध न होनेसे इस प्रकार दीर्घकालसे (यह) दौळना=संसरण (=आवागमन) 'मेरा और तुम्हारा' हो रहा है। कौनसे चारोंसे? भिक्षुओ! दुःख आर्य-सत्यके अनुबोध=प्रतिबोध न होनेसे ० दुःख-समुदय ०। दुःख-निरोध ०। दुःख-निरोध-गामिनी प्रतिपद् ०। भिक्षुओ! सो इस दुःख आर्य-सत्यको अनु-बोध=प्रतिबोध किया ०, (तो) भव-तृष्णा उच्छिन्न हो गई, भवनेत्री (=तृष्णा) क्षीण हो गई"

यह कहकर सुगत (=बुद्ध)ने और यह भी कहा––"चारों आर्य-सत्योंको ठीकसे न देखनेसे,
उन उन योनियोंमें दीर्घकालसे आवागमन हो रहा है ॥५॥
जब ये देख लिये जाते हैं, तो भवनेत्री नष्ट हो जाती है,
दुःखकी जळ कट जाती है, और फिर आवागमन नहीं रहता ॥६॥"

वहाँ कोटिग्राममें विहार करते भी भगवान्, भिक्षुओंको बहुत करके यही धर्म-कथा कहते थे०। ०

नादिका––

तब भगवान्ने कोटिग्राममें इच्छानुसार विहारकर, आयुष्मान् आनन्दको आमंत्रित किया––

"आओ आनन्द! जहाँ नादिका[1] (=नाटिका) है, वहाँ चलें।" "अच्छा, भन्ते!"

तब भगवान् महान् भिक्षु-संघके साथ जहाँ नादिका है, वहाँ गये। वहाँ **नदिकामें** भगवान् **गिंजकावसथमें** विहार करते थे।

(३) धर्म-आदर्श

तब आयुष्मान् आनन्द जहाँ भगवान् थे, वहाँ गये; जाकर भगवान्को अभिवादनकर एक ओर बैठ गये। एक ओर बैठे आयुष्मान् आनन्दने भगवान्से यह कहा––

"भन्ते! **साळ्ह** भिक्षु नादिकामें मर गया, उसकी क्या गति=क्या अभिसम्पराय (=परलोक) हुआ? **नन्दा** भिक्षुणी ० **सुदत्त** उपासक ० **सुजाता** उपासिका ० **ककुध** उपासक ० **कालिंग** उपासक ० **निकट** उपासक ० **काटिस्सभ** उपासक ० **तुट्ठ** उपासक ० **सन्तुट्ठ** उपासक ० **भद्द** उपासक० भन्ते!

---

[1] **मिलाओ जनवसभसुत्त पृष्ठ १६०।**

सुभद्द उपासक नादिकामें मर गया, उसकी क्या गति=क्या अभिसम्पराय हुआ ?"

"आनन्द ! साळ्ह भिक्षु इसी जन्ममें आस्रवों (=चित्तमलों)के क्षयसे आस्रव-रहित चित्तकी मुक्ति प्रज्ञा-विमुक्ति (=ज्ञानद्वारा मुक्ति)को स्वयं जानकर साक्षात्कर प्राप्तकर विहार कर रहा था। आनन्द ! नन्दा भिक्षुणी पाँच **अवरभागीय** संयोजनोंके क्षयसे देवता हो वहाँसे न लौटनेवाली (अनागामी)हो वहीं (देवलोकमें) निर्वाण प्राप्त करेगी। सुदत्त उपासक आनन्द ! तीन संयोजनोंके क्षीण होनेसे, राग-द्वेष-मोहके दुर्बल होनेसे **सकृदागामी** हुआ, एक ही बार इस लोकमें और आकर दुःखका अन्त करेगा। सुजाता उपासिका. . .तीन संयोजनोंके क्षयसे न-गिरनेवाले बोधिके रास्ते पर आरूढ़ हो **स्रोतआपन्न** हुई। ककुध ० अनागामी ०। कालिंग०। निकट ०। कटिस्सभ ०। तुट्ठ ०। संतुट्ठ ०। भद्द ०। सुभद्द उपासक आनन्द ! पाँच अवरभागीय संयोजनोंके क्षयसे देवता हो वहाँसे न लौटनेवाला (=अनागामी) हो वहीं (देवलोकमें) निर्वाण प्राप्त करनेवाला है। आनन्द ! नादिकामें पचाससे अधिक उपासक मरे हैं, जो सभी ० अनागामी० हैं। ० नब्बेसे अधिक उपासक ० सकृदागामी ०। ० पाँचसौसे अधिक उपासक० स्रोत-आपन्न०। आनन्द ! यह ठीक नहीं, कि जो कोई मनुष्य मरे, उसके मरनेपर तथागतके पास आकर इस बातको पूछा जाय। आनन्द ! यह तथागतको कष्ट देना है। इसलिये आनन्द ! **धर्म-आदर्श** नामक धर्म-पर्याय (=उपदेश)को उपदेशता हूँ। जिससे युक्त होनेपर आर्यस्रावक स्वयं अपना व्याकरण (=भविष्य-कथन)कर सकेगा—'मुझे नर्क नहीं, पशु नहीं, प्रेत-योनि नहीं, अपाय=दुर्गति=विनिपात नहीं। मैं न गिरनेवाला बोधिके रास्तेपर आरूढ़ स्रोतआपन्न हूँ।' आनन्द ! क्या है वह धर्मादर्श धर्मपर्याय ० ?—(१) [1]आनन्द ! जो आर्यश्रावक बुद्धमें अत्यन्त श्रद्धायुक्त होता है—'वह भगवान् अर्हत्, सम्यक्-संबुद्ध (=परमज्ञानी), विद्या-आचरण-युक्त, सुगत, लोकविद्, पुरुषोंके दमन करनमें अनुपम चाबुक-सवार, देवताओं और मनुष्योंके उपदेशक बुद्ध (=ज्ञानी) भगवान् हैं।' (२) ० धर्ममें अत्यन्त श्रद्धासे युक्त होता है—'भगवान्का धर्म स्वाख्यात (=सुन्दर रीतिसे कहा गया) है, वह सांदृष्टिक (=इसी शरीरमें फल देनेवाला), अकालिक (=कालान्तरमें नहीं सद्यः फलप्रद), एहिपस्सिक (=यहीं दिखाई देनेवाला), औपनयिक (=निर्वाणके पास ले जानेवाला) विज्ञ (पुरुषों)को अपने अपने भीतर (ही) विदित होनेवाला है।' (३) ० संघमें अत्यन्त श्रद्धासे युक्त होता है—'भगवान्का श्रावक (=शिष्य)-संघ सुमार्गारूढ़ है, भगवान्का श्रावक-संघ सरल मार्गपर आरूढ़ है, ० न्याय मार्गपर आरूढ़ है,० ठीक मार्गपर आरूढ़ है, यह चार पुरुष-युगल (स्रोतआपन्न, सकृदागामी, अनागामी और अर्हत्) और आठ पुरुष=पुद्गल हैं, यही भगवान्का श्रावक-संघ है, (जोकि) आह्वान करने योग्य है, पाहुनां बनाने योग्य है, दान देने योग्य है, हाथ जोळने योग्य है, और लोकके लिये पुण्य (बोने)का क्षेत्र है।' (४) और अखंडित, निर्दोष, निर्मल, निष्कल्मष, सेवनीय, विज्ञ-प्रशंसित, आर्य (=उत्तम) कान्त, शीलों (=सदाचारों)से युक्त होता है। आनन्द ! यह धर्मादर्श धर्मपर्याय है ०।" वहाँ नादिकामें विहार करते भी भगवान् भिक्षुओंको यही धर्मकथा ०।

वैशाली—

(४) *अम्बपाली गणिकाका भोजन*

० तब भगवान् महाभिक्षु-संघके साथ जहाँ वैशाली थी वहाँ गये। वहाँ **वैशालीमें अम्ब-पाली-वनमें** विहार करते थे। वहाँ भगवान्ने भिक्षुओंको आमंत्रित किया—

"भिक्षुओ ! स्मृति और संप्रजन्यके साथ विहार करो, यही हमारा अनुशासन है। कैसे. . .भिक्षु स्मृतिमान् होता है ? जब भिक्षुओ ! भिक्षु कायामें काय-अनुपश्यी (=शरीरको उसकी बनावटके अनु-

---

[1]यही तीनों वाक्य-समूह त्रिरत्न (=बुद्ध-धर्म-संघ)की अनुस्मृति (=स्मरण), कही जाती है।

सार केश-नख-मल-मूत्र आदिके रूपमें देखना) हो, उद्योगशील, अनुभवज्ञान-(=संप्रजन्य) युक्त, स्मृतिमान्, लोकके प्रति लोभ और द्वेष हटाकर विहरता है। वेदनाओं (=सुख दुःख आदि) में वेदनानुपश्यी हो ०। चित्तमें चित्तानुपश्यी हो।० धर्मोंमें धर्मानुपश्यी हो ०। इस प्रकार भिक्षु स्मृतिमान्, होता है। कैसे. . .संप्रज्ञ (=संपजान) होता है। जब. . . भिक्षु जानते हुये गमन-आगमन करता है। जानते हुये आलोकन-विलोकन करता है। ० सिकोळना-फैलाना ०। ० संघाटी-पात्र-चीवरको धारण करता है। ० आसन, पान, खादन, आस्वादन करता है। ० पाखाना, पेशाब करता है। चलते, खळे होते, बैठते, सोते, जागते, बोलते, चुप रहते जानकर करनेवाला होता है। इस प्रकार भिक्षुओ! भिक्षु संप्रजानकारी होता है। इस प्रकार. . .संप्रज्ञ होता है। भिक्षुओ! भिक्षुको स्मृति और संप्रजन्य-युक्त विहरना चाहिये, यही हमारा अनुशासन है।"

अम्बपाली गणिकानें सुना—भगवान् वैशालीमें आये हैं; और वैशालीमें मेरे आम्रवनमें विहार, करते हैं। तब अम्बपाली गणिका सुन्दर सुन्दर (=भद्र) यानोंको जुळवाकर, एक सुन्दर यानपर चढ़ सुन्दर यानोंके साथ वैशालीसे निकली; और जहाँ उसका आराम था, वहाँ चली। जितनी यानकी भूमि थी, उतंनी यानसे जाकर, यानसे उतर पैदल ही जहाँ भगवान् थे, वहाँ गई। जाकर भगवान्‌को अभिवादनकर एक ओर बैठ गई। एक ओर बैठी **अम्बपाली** गणिकाको भगवान्‌ने धार्मिक-कथासे संदर्शित समुत्तेजित. . .किया। तब अम्बपाली गणिका भगवान्‌से यह बोली—

"भन्ते! भिक्षु-संघके साथ भगवान् मेरा कलका भोजन स्वीकार करें।"

भगवान्‌ने मौनसे स्वीकार किया।

तब अम्बपाली गणिका भगवान्‌की स्वीकृति जान, आसनसे उठ भगवान्‌को अभिवादनकर प्रदक्षिणाकर चली गई।

वैशालीके **लिच्छिवियोंने** सुना—'भगवान् वैशालीमें आये हैं ०'। तब वह लिच्छवि ० सुन्दर यानोंपर आरूढ़ हो ० वैशालीसे निकले। उनमें कोई कोई लिच्छवि नीले=नील-वर्ण नील-वस्त्र नील-अलंकारवाले थे। कोई कोई लिच्छवि पीले ० थे। ० लोहित (=लाल) ०। ० अवदात (=सफेद) ०। अम्बपाली गणिकाने तरुण तरुण लिच्छवियोंके धुरोंसे धुरा, चक्कोंसे चक्का, जूयेसे जुआ टकरा दिया। उन लिच्छवियोंने अम्बपाली गणिकासे कहा—

"जे! अंम्बपाली! क्यों तरुण तरुण (=दहर) लिच्छवियोंके धुरोंसे धुरा टकराती है। ०"

"आर्यपुत्रो! क्योंकि मैंने भिक्षु-संघके साथ कलके भोजनके लिये भगवान्‌को निमंत्रित किया है।"

"जे! अम्बपाली! सौ हजार (कार्षापण)से भी इस भात (=भोजन) को (हमें करनेके लिये) देदे।"

"आर्यपुत्रो! यदि **वैशाली** जनपद भी दो, तो भी इस महान् भातको न दूँगी।"

तब उन लिच्छवियोंने अँगुलियाँ फोळीं—

"अरे! हमें **अम्बिकाने** जीत लिया, अरे। हमें अम्बिकाने वंचित कर दिया।"

तब वह लिच्छवि जहाँ अम्बपाली-वन था, वहाँ गये। भगवान्‌ने दूरसे ही लिच्छवियोंको आते देखा। देखकर भिक्षुओंको आमंत्रित किया—

"अवलोकन करो भिक्षुओ! लिच्छवियोंकी परिषद्‌को। अवलोकन करो भिक्षुओ! लिच्छ-वियोंकी परिषद्‌को। भिक्षुओ! लिच्छवि-परिषद्‌को त्रायस्त्रिंश (देव)-परिषद् समझो (=उप-संहरथ)।"

तब वह लिच्छवि ० रथसे उतरकर पैदल ही जहाँ भगवान् थे, वहाँ. . .जाकर भगवान्‌को अभिवादनकर एक ओर बैठे। एक ओर बैठे लिच्छवियोंको भगवान्‌ने धार्मिक-कथासे ० समुत्तेजित ० किया। तब वह लिच्छवि ० भगवान्‌से बोले—

"भन्ते ! भिक्षु-संघके साथ भगवान् हमारा कलका भोजन स्वीकार करें।"

"लिच्छवियो ! कल तो, मैंने अम्बपाली-गणिकाका भोजन स्वीकार कर दिया है।"

तब उन लिच्छवियोंने अँगुलियाँ फोळीं——

"अरे ! हमें अम्बिकाने जीत लिया। अरे ! हमें अम्बिकानें वंचित कर दिया।"

तब वह लिच्छवि भगवान्के भाषणको अभिनन्दितकर अनुमोदितकर, आसनसे उठ भगवान्को अभिवादनकर प्रदक्षिणाकर चले गये।

अम्बपाली गणिकाने उस रातके बीतनेपर, अपने आराममें उत्तम खाद्य-भोज्य तैयारकर, भगवान्को समय सूचित किया . . .।

भगवान् पूर्वाह्ण समय पहिनकर पात्र चीवर ले भिक्षु-संघके साथ जहाँ अम्बपालीका परोसनेका स्थान था, वहाँ गये। जाकर बिछे आसनपर बैठे। तब अम्बपाली गणिकाने बुद्ध-प्रमुख भिक्षु-संघको अपने हाथसे उत्तम खाद्य-भोज्य द्वारा संतर्पित=संप्रवारित किया। तब अम्बपाली गणिका भगवान्के भोजनकर पात्रसे हाथ खींच लेनपर, एक नीचा आसन ले, एक ओर बैठ गई। एक ओर बैठी अम्बपाली गणिका भगवान्से बोली——

"भन्ते ! मैं इस आरामको बुद्ध-प्रमुख भिक्षु-संघको देती हूँ।"

भगवान्ने आरामको स्वीकार किया। तब भगवान् अम्बपाली ०को धार्मिक-कथासे ० समुत्तेजित०कर, आसनसे उठकर चले गये।

वहाँ वैशालीमें विहार करते भी भगवान् भिक्षुओंको बहुत करके यही धर्म-कथा कहते थे ०।

वेलुव-ग्राम——

० तब भगवान् महाभिक्षु-संघके साथ जहाँ **वेलुव-गामक** (=वेणु-ग्राम) था, वहाँ गये। वहाँ भगवान् वेलुव-गामकमें विहरते थे। भगवान्ने वहाँ भिक्षुओंको आमंत्रित किया——

"आओ भिक्षुओ ! तुम वैशालीके चारों ओर मित्र, परिचित. . . देखकर वर्षावास करो। मैं यहीं वेलुव-गामकमें वर्षावास करूँगा।" "अच्छा, भन्ते !" . . .

(५) सख्त बीमारी

वर्षावासमें भगवान्को कळी बीमारी उत्पन्न हुई। भारी मरणान्तक पीळा होने लगी। उसे भगवान्ने स्मृति-संप्रजन्यके साथ बिना दुःख करते, स्वीकार (=सहन) किया। उस समय भगवान्को ऐसा हुआ——'मेरे लिये यह उचित नहीं, कि मैं उपस्थाकों (=सेवकों)को बिना जतलाये, भिक्षु-संघको बिना अवलोकन किये, परिनिर्वाण प्राप्त करूँ। क्यों न मैं इस आवाधा (=व्याधि)को हटाकर, जीवन-संस्कार (=प्राणशक्ति)को दृढ़तापूर्व धारणकर, विहार करूँ'। भगवान् उस व्याधिको वीर्य (=मनोबल)से हटाकर प्राण-शक्तिको दृढ़तापूर्वक धारणकर, विहार करने लगे। तब भगवान्की वह बीमारी शान्त हो गई।

भगवान् बीमारीसे उठ, रोगसे अभी अभी मुक्त हो, विहारसे (बाहर) निकलकर विहारकी छायामें बिछे आसनपर बैठे। तब आयुष्मान् आनन्द जहाँ भगवान् थे, वहाँ गये। जाकर भगवान्को अभिवादनकर एक ओर बैठे। एक ओर बैठे आयुष्मान् आनन्दने भगवान्से यह कहा——

"भन्ते ! भगवान्को सुखी देखा ! भन्ते ! मैंने भगवान्को अच्छा हुआ देखा ! भन्ते ! मेरा शरीर शून्य हो गया था। मुझे दिशायें भी सूझ न पळती थीं। भगवान्की बीमारीसे (मुझे) धर्म (=बात)

भी नहीं भान होते थे। भन्ते ! कुछ आश्वासन मात्र रह गया था, कि भगवान् तबतक परिनिर्वाण नहीं प्राप्त करेंगे; जबतक भिक्षु-संघको कुछ कह न लेंगे।"

"आनन्द ! भिक्षु-संघ मुझसे क्या चाहता है? आनन्द ! मैंने न-अन्दर न-बाहर करके धर्म-उपदेश कर दिये। आनन्द ! धर्मोंमें तथागतको (कोई) **आ चा र्य मु ष्टि** (=रहस्य) नहीं है। आनन्द ! जिसको ऐसा हो कि मैं भिक्षु-संघको धारण करता हूँ, भिक्षु-संघ मेरे उद्देश्यसे है, वह जरूर आनन्द ! भिक्षु-संघके लिये कुछ कहे। आनन्द ! तथागतको ऐसा नहीं है...आनन्द ! तथागत भिक्षु-संघके लिये क्या कहेंगे? आनन्द ! मैं जीर्ण=वृद्ध=महल्लक=अध्वगत=वयःप्राप्त हूँ। अस्सी वर्षकी मेरी उम्र है। आनन्द ! **जैसे** पुरानी गाळी (=शकट) बाँध-बूँधकर चलती है, ऐसे ही आनन्द ! मानों तथागतका शरीर बाँध-बूँधकर चल रहा है। आनन्द ! जिस समय तथागत सारे निमित्तों (=लिंगों)को मनमें न करनेसे, किन्हीं किन्हीं वेदनाओंके निरुद्ध होनसे, निमित्त-रहित चित्तकी समाधि (=एकाग्रता)को प्राप्त हो विहरते हैं, उस समय...तथागतका शरीर अच्छा (=फासुकत) होता है। इसलिये आनन्द ! आत्मदीप=आत्मशरण=अनन्यशरण, धर्मदीप=धर्म-शरण=अनन्य-शरण होकर विहरो। कैसे आनन्द ! भिक्षु आत्मशरण ० होकर विहरता है? आनन्द ! भिक्षु कायामें कायानुपश्यी ०[1]।"

(इति) द्वितीय भाणवार ॥२॥

तब भगवान् पूर्वाह्ण समय पहनकर पात्र चीवर ले **वैशाली**में भिक्षाके लिये प्रविष्ट हुये। वैशालीमें पिंडचारकर, भोजनोपरान्त...आयुष्मान् आनन्दसे बोले—

"आनन्द ! असनी उठाओ, जहाँ **चापाल-चैत्य** है, वहाँ दिनके विहारके लिये चलेंगे।"

"अच्छा भन्ते !"—कह...आयुष्मान् आनन्द आसनी ले भगवान्के पीछे पीछे चले। तब भगवान् जहाँ चापाल-चैत्य था, वहाँ गये। जाकर बिछे आसनपर बैठे। आयुष्मान् आनन्द भी अभिवादन कर....। एक ओर बैठे आयुष्मान् आनन्दसे भगवान्ने यह कहा—

"आनन्द ! जिसने चार **ऋद्धिपाद** (=योगसिद्धियाँ) साधे हैं, बढ़ा लिये हैं, रास्ता कर लिये हैं, घर कर लिये हैं; अनुत्थित, परिचित और सुसमारब्ध कर लिये हैं, यदि वह चाहे तो कल्प भर ठहर सकता है, या कल्पके बचे (काल) तक। तथागतने भी आनन्द ! चार ऋद्धिपाद साधे हैं ०, यदि तथागत चाहें तो कल्प भर ठहर सकते हैं या कल्पके बचे (काल) तक।"

ऐसे स्थूल संकेत करनेपर भी, स्थूलतः प्रकट करनेपर भी आयुष्मान् आनन्द न समझ सके, और उन्होंने भगवान्से न प्रार्थना की—"भन्ते ! भगवान् बहुजन-हितार्थ बहुजन-सुखार्थ, लोकानुकम्पार्थ देव-मनुष्योंके अर्थ-हित-सुखके लिये कल्प भर ठहरें"; क्योंकि **मारने** उनके मनको फेर दिया था।

दूसरी बार भी भगवान्ने कहा—"आनन्द ! जिसने चार ऋद्धिपाद ०।

तीसरी बार भी भगवान्ने कहा—"आनन्द ! जिसने चार ऋद्धिपाद ०।

तब भगवान्ने आयुष्मान् आनन्दको संबोधित किया—"जाओ, आनन्द ! जिसका काल समझते हो।"

"अच्छा, भन्ते !"—कह आयुष्मान् आनन्द भगवान्को उत्तर दे आसनसे उठ भगवान्को अभिवादनकर प्रदक्षिणाकर, न-बहुत-दूर एक वृक्षके नीचे बैठे।

---

[1] देखो **महासतिपट्ठान-सुत्त** २२ पृष्ठ १९०।

(६) निर्वाणकी तैयारी

तब आयुष्मान् आनन्दके चले जानेके थोळे ही समय बाद पापी (=दुष्ट) मार जहाँ भगवान् थे, वहाँ गया, जाकर एक ओर खळा हुआ। एक ओर खळे पापी मारने भगवान्से यह कहा—

"भन्ते! भगवान् अब परिनिर्वाणको प्राप्त हों, सुगत परिनिर्वाणको प्राप्त हों। भन्ते! यह भगवान्के परिनिर्वाणका काल है। भन्ते! भगवान् यह बात कह चुके हैं—'पापी! मैं तबतक परिनिर्वाणको नहीं प्राप्त होऊँगा, जबतक मेरे भिक्षु श्रावक व्यक्त (=पंडित), विनययुक्त, विशारद, बहुश्रुत, धर्म-धर, धर्मानुसार धर्म मार्गपर आरूढ़, ठीक मार्गपर आरूढ़, अनुधर्मचारी न होंगे, अपने सिद्धान्त (=आचार्यक)को सीखकर उपदेश, आख्यान, प्रज्ञापन (=समझाना), प्रतिष्ठापन, विवरण=विभजन, सरलीकरण न करने लगेंगे, दूसरेके उठाये आक्षेपको धर्मानुसार खंडन करके प्रातिहार्य (=युक्ति)के साथ धर्मका उपदेश न करने लगेंगे।' इस समय भन्ते! भगवान्के भिक्षु श्रावक० प्रातिहार्यके साथ धर्मका उपदेश करते हैं। भन्ते! भगवान् अब परिनिर्वाणको प्राप्त हों०। भन्ते! भगवान् यह बात कह चुके हैं—'पापी! मैं तब तक परिनिर्वाणको नहीं प्राप्त होऊँगा, जब तक मेरी भिक्षुणी श्राविकायें० प्रातिहार्यके साथ धर्मका उपदेश न करने लगेंगी।' इस समय०। भन्ते! भगवान् यह बात कह चुके हैं—'पापी! मैं तब तक परिनिर्वाणको नहीं प्राप्त होऊँगा, जब तक मेरे उपासक श्रावक०।' इस समय०। भन्ते! भगवान् यह बात कह चुके हैं—'पापी! मैं तब तक परिनिर्वाणको नहीं प्राप्त होऊँगा, जब तक मेरी उपासिका श्राविकायें०।' इस समय०। भन्ते! भगवान् यह बात कह चुके हैं—'पापी! मैं तब तक परिनिर्वाणको नहीं प्राप्त होऊँगा, जब तक कि यह ब्रह्मचर्य (=बुद्धधर्म) ऋद्ध (=उन्नत)=स्फीत, विस्तारित, बहुजनगृहीत, विशाल, देवताओं और मनुष्यों तक सुप्रकाशित न हो जायेगा।' इस समय भन्ते! भगवानका ब्रह्मचर्य०।"

ऐसा कहनेपर भगवान्ने पापी मारसे यह कहा—"पापी! बेफिक्र हो, न-चिर ही तथागतका परिनिर्वाण होगा। आजसे तीन मास बाद तथागत परिनिर्वाणको प्राप्त होंगे।"

तब भगवान्ने **चापाल-चैत्य**में स्मृति-संप्रजन्यके साथ आयुसंस्कार (=प्राण-शक्ति)को छोळ दिया। जिस समय भगवान्ने आयु-संस्कार छोळा उस समय भीषण रोमांचकारी महान् भूचाल हुआ, देवदुन्दुभियाँ बजीं। इस बातको जानकर भगवान्ने उसी समय यह उदान कहा—

"मुनिने अतुल-तुल उत्पन्न भव-संस्कार (=जीवन-शक्ति)को छोळ दिया।

अपने भीतर रत और एकाग्रचित्त हो (उन्होंने) अपने साथ उत्पन्न कवचको तोळ दिया।।७।।"

तब आयुष्मन् आनंदको ऐसा हुआ—"आश्चर्य है! अद्भुत है!! यह महान् भूचाल है। सु-महान् भूचाल है। भीषण रोमांचकारी है। देव-दुन्दुभियाँ बज रही हैं। (इस) महान् भूचालके प्रादुर्भावका क्या हेतु=क्या प्रत्यय है?"

तब आयुष्मान् आनन्द जहाँ भगवान् थे, वहाँ गये। जाकर भगवान्को अभिवादनकर एक ओर बैठ गये। एक ओर बैठे आयुष्मान् आनन्दने भगवान्से यह कहा—

"आश्चर्य भन्ते! अद्भुत भन्ते! यह महान् भूचाल आया० क्या हेतु=क्या प्रत्यय है?"

"आनन्द! महान् भूचालके प्रादुर्भावके ये आठ हेतु=आठ प्रत्यय होते हैं। कौनसे आठ? (१) आनन्द! यह **महापृथिवी** जलपर प्रतिष्ठित है, जल वायुपर प्रतिष्ठित है, वायु आकाशमें स्थित है। किसी समय आनन्द! महावात (=तूफ़ान) चलता है। महावातके चलनेपर पानी कंपित होता है। हिलता पानी पृथिवीको डुलाता है। आनन्द! महाभूचालके प्रादुर्भावका यह प्रथम हेतु=

प्रथम प्रत्यय है। (२) और फिर आनन्द ! कोई श्रमण या ब्राह्मण ऋद्धिमान् चेतोवशित्त्व (=योगबल) को प्राप्त होता है, अथवा कोई दिव्यबलधारी=महानुभाव देवता होता है; उसने पृथिवी-संज्ञाकी थोळीसी भावनाकी होती है, और जल-संज्ञाकी बळी भावना। वह (अपने योगबलसे) पृथिवीको कंपित=संकंपित=संप्रकंपित=संप्रवेपित करता है। ० यह द्वितीय हेतु है। (३) ० जब बोधिसत्व तुषित देवलोकसे च्युत हो होश-चेतके साथ माताकी कोखमें प्रविष्ट होते हैं। ० यह तृतीय ०। (४) ० जब बोधिसत्व होश-चेतके साथ माताके गर्भसे बाहर आते हैं। ० यह चतुर्थ हेतु है। (५) ० जब तथागत अनुपम बुद्ध-ज्ञान (=सम्यक् संबोधि) का साक्षात्कार करते हैं। ० यह पंचम हेतु है। (६) ० जब तथागत अनुपम धर्मचक्र (=धर्मोपदश) को (प्रथम) प्रवर्तित करते हैं। ० यह षष्ट हेतु है। (७) और आनन्द ! जब तथागत होश-चेतके साथ जीवन-शक्तिको छोळते हैं। आनन्द ! यह महाभूचालके प्रादुर्भावका सप्तम हेतु=सप्तम प्रत्यय है। (८) और फिर आनन्द ! जब तथागत संपूर्ण निर्वाणको प्राप्त होते हैं। ० यह अष्टम हेतु है। आनन्द ! महा-भूचालके यह आठ हेतु=प्रत्यय हैं।

"आनन्द ! यह आठ (प्रकारकी) परिषद् (=सभा) होती हैं। कौनसी आठ ? क्षत्रिय-परिषद्, ब्राह्मण-परिषद्, गृहपति-परिषद्, श्रमण-परिषद्, चातुर्महाराजिक-परिषद्, त्रायस्त्रिंश-परिषद्, मार-परिषद् और ब्रह्म-परिषद्। आनन्द ! मुझे अपना सैकळों क्षत्रिय-परिषदोंमें जाना याद है। और वहाँ भी (मेरा) पहिले भाषण किये जैसा, पहिले आये जैसा साक्षात्कार (होता है)। आनंद ! ऐसी कोई बात देखनेका कारण नहीं मिला, जिससे कि मुझे वहाँ भय या घबराहट हो। क्षेमको प्राप्त हो, अभयको प्राप्त हो, वैशारद्यको प्राप्त हो, मैं विहार करता हूँ। आनंद ! मुझे अपना सैकळों ब्राह्मण-परिषदोंमें जाना याद है ०।० गृहपति-परिषदोंमें ०।० श्रमण-परिषदोंमें ०।० चातुर्महाराजिक-परिषदोंमें ०।० त्रायस्त्रिंश-परिषदोंमें ०।० मार-परिषदोंमें ०।० ब्रह्मपरिषदोंमें ०।

'आनन्द ! यह आठ **अभिभू-आयतन** (=एक प्रकारकी योग-क्रिया) हैं। कौनसे आठ ? (१) अपने भीतर अकेला रूपका ख्याल रखनेवाला होता है, और बाहर स्वल्प सुवर्ण या दुर्वर्ण रूपोंको देखता है। 'उन्हें दबाकर (=अभिभूय) जानूँ देखूँ'—ऐसा ख्याल रखनेवाला होता है। यह प्रथम अभिभू-आयतन है। (२) अपने भीतर अकेला अ-रूपका ख्याल रखनेवाला होता है, और बाहर अपरिमित सुवर्ण या दुर्वर्ण रूपोंको देखता है। 'उन्हें दबाकर जानूँ देखूँ'—ऐसा ख्याल रखनेवाला होता है। यह द्वितीय ०। (३) अपने भीतर अकेला अ-रूपका ख्याल रखनेवाला बाहर स्वल्प सुवर्ण या दुर्वर्ण रूपोंको देखता है ०। (४) अपने भीतर अ-रूपका ख्याल ० बाहर सुवर्ण या दुर्वर्ण अपरिमित रूपोंको देखता है ०। (५) अपने भीतर अरूपका ख्याल० बाहर नीले, नीले जैसे, नीलवर्ण, नीलनिदर्शन, नीलनिभास रूपोंको देखता है। **जैसे** कि अलसीका फूल नील=नीलवर्ण=नीलनिदर्शन=नील-निभास होता है; (वैसा) रूपोंको देखता है। **जैसे** दोनों ओरसे चिकना नील ० **बनारसी** वस्त्र हो, ऐसे ही अपने भीतर अ-रूप ०। (६) अपने भीतर अरूप ०, बाहर पीत (=पीले) ० देखता है। **जैसे** कि कर्णिकारका फूल पीत०; जैसे कि दोनों ओरसे चिकना पीत ० **काशीका** वस्त्र ०। (७) अपने भीतर अरूप ०, बाहर लोहित (=लाल) ० देखता है। **जैसे** कि बंधुजीवक (=अँळहुल) का फूल लोहित ०; जैसे कि० लाल ० काशीका वस्त्र ०। (८) अपने भीतर अरूप ०, बाहर सफेद ० देखता है। **जैसे** कि शुक्रतारा सफेद०; जैसे कि ० सफेद ० काशीका वस्त्र ०। आनन्द ! यह आठ अभिभू-आयतन हैं।

"और फिर आनन्द ! यह आठ विमोक्ष हैं। कौनसे आठ? (१) रूपी (=रूपवाला) रूपोंको देखता है, यह प्रथम विमोक्ष है। (२) शरीरके भींतर अरूपका ख्याल रखनेवाला हो बाहर रूपोंको देखता है ०। (३) सुभ (=शुभ्र) ही अधिमुक्त (=मुक्त) होते हैं ०। (४) सर्वथा रूपके ख्यालको अतिक्रमणकर, प्रतिहिंसाके ख्यालके लुप्त होनेसे, नानापनके ख्यालको मनमें न करनेसे

'आकाश अनन्त है'--इस आकाश-आनन्त्य-आयतनको प्राप्त हो विहरता है०। (५) सर्वथा आकाश-आनन्त्य-आयतनको अतिक्रमण कर 'विज्ञान (=चेतना) अनन्त है'--इस विज्ञान-आनन्त्य-आयतनको प्राप्त हो विहरता है०। (६) सर्वथा विज्ञान-आनन्त्यको अतिक्रमणकर 'कुछ नहीं है'—इस आकिंचन्य-आयतनको प्राप्त हो विहरता है०। (७) सर्वथा आकिंचन्य-आयतन-को अतिक्रमणकर, नैवंसंज्ञा-नासंज्ञा-आयतन (=जिस समाधिके आभासको न चेतना ही कहा जा सके, न अचेतना ही) को प्राप्त हो विहरता है०। (८) सर्वथा नैवसंज्ञा-नासंज्ञा-आयतनको अतिक्रमणकर प्रज्ञावेदितनिरोध (=प्रज्ञाकी वेदनाका जहाँ निरोध हो) को प्राप्त हो विहरता है, यह आठवाँ विमोक्ष है।

"एक बार आनन्द! मैं प्रथम प्रथम बुद्धत्वको प्राप्त हो **उरुबेलामें नेरंजरा** नदीके तीर अजपाल बर्गदके नीचे विहार करता था। तब आनन्द! दुष्ट (=पाप्मा) मार जहाँ मैं था वहाँ आया। आकर एक ओर खळा होगया। और बोला—'भन्ते! भगवान् अब परिनिर्वाणको प्राप्त हों, सुगत! परिनिर्वाण-को प्राप्त हों।' ऐसा कहनेपर आनन्द! मैंने दुष्ट मारसे कहा—'पापी! मैं तब तक परिनिर्वाणको नहीं प्राप्त होऊँगा, जब तक मेरे भिक्षु श्रावक निपुण (=व्यक्त), विनय-युक्त, विशारद, बहुश्रुत, धर्म-धर (=उपदेशोंको कंठस्थ रखनेवाले), धर्मके मार्गपर आरूढ़, ठीक मार्गपर आरूढ़, धर्मानुसार आचरण करनेवाले, अपने सिद्धान्त (=आचार्यक)को ठीकसे पढ़ कर न व्याख्यान करने लगेंगे, न उपदेश करेंगे, न प्रज्ञापन करेंगे, न स्थापन करेंगे, न विवरण करेंगे, न विभाजन करेंगे, न स्पष्ट करेंगे; दूसरों द्वारा उठाये अपवादको धर्मके साथ अच्छी तरह पकळ कर युक्ति (=प्रतिहार्य)के साथ धर्मका उपदेश न करेंगे। जब तक कि मेरी भिक्षुणी श्राविकायें (=शिष्या) निपुण ०।० उपासक श्रावक ०।० उपासिका श्राविकायें ०। जब तक यह ब्रह्मचर्य (=बुद्धधर्म) समृद्ध=वृद्धिगत, विस्तारको प्राप्त, बहुजन-संमानित, विशाल और देव-मनुष्यों तक सुप्रकाशित न हो जायगा।' आनन्द! अभी आज इस **चापाल**-चैत्यमें मार पापी मेरे पास आया। आकर एक ओर खळा...हो बोला—'भन्ते! भगवान् अब परिनिर्वाणको प्राप्त हों०।' ऐसा कहनेपर मैंने आनन्द! पापी मारसे यह कहा—'पापी! बेफिक्र हो, आजसे तीन मास बाद तथागत परिनिर्वाणको प्राप्त होंगे।' अभी आनन्द! इस **चापाल-चैत्यमें** तथागतने होश-चेतके साथ जीवन-शक्तिको छोळ दिया।"

ऐसा कहनेपर आयुष्मान् आनंदने भगवान्से यह कहा--"भन्ते! भगवान् बहुजन-हितार्थ, बहुजन-सुखार्थ, लोकानुकम्पार्थ, देव-मनुष्यों के अर्थ-हित-सुख के लिये कल्प भर ठहरें।"

"बस आनंद! मत तथागतसे प्रार्थना करो! आनंद! तथागतसे प्रार्थना करनेका समय नहीं रहा।"

दूसरी बार भी आयुष्मान् आनंदने ०।

तीसरी बार भी ०।

"आनंद! तथागतकी बोधि (=परमज्ञान) पर विश्वास करते हो?"

"हाँ, भन्ते!"

"तो आनंद! क्यों तीन बार तक तथागतको दबाते हो?"

"भन्ते! मैंने यह भगवान्के मुखसे सुना, भगवान्के मुखसे ग्रहण किया—'आनंद! जिसने चार ऋद्धिपाद साधे हैं०[१]।"

"विश्वास करते हो आनन्द!"

---

[१] देखो पृष्ठ ३०

"हाँ, भन्ते!"

"तो आनंद! यह तुम्हारा ही दुष्कृत है, तुम्हारा ही अपराध है; जो कि तथागतके वैसा उदार-(=स्थूल) भाव प्रकट करनेपर, उदार भाव दिखलानेपर भी तुम नहीं समझ सके। तुमने तथागतसे नहीं याचना की—'भन्ते! भगवान् ० कल्प भर ठहरें'। यदि आनंद! तुमने याचना की होती, तो तथागत दो ही बार तुम्हारी बातको अस्वीकृत करते, तीसरी बार स्वीकार कर लेते। इसलिये, आनंद! यह तुम्हारा ही दुष्कृत (=दुक्कट) है, तुम्हारा ही अपराध है।

"आनंद! एक बार मैं **राजगृहके गृध्रकूट-पर्वत** पर विहार करता था। वहाँ भी आनंद! मैंने तुमसे कहा—आनंद! राजगृह रमणीय है। गृध्रकूट-पर्वत रमणीय है। आनंद! जिसने चार ऋद्धिपाद साधे हैं ०। तथागतके वैसा उदार भाव प्रकट करने पर ० भी तुम नहीं समझ सके ०। आनंद! यह तुम्हारा ही दुष्कृत है, तुम्हारा ही अपराध है।

"आनंद! एक बार मैं वहीं राजगृहके **गौतम-न्यग्रोध**में विहार करता था ०। ० **राजगृहके चोरतपा** पर ०। ० राजगृहमें **वैभार-पर्वत**की बगलमेंकी **सप्तपर्णी** (=सत्तपण्णी) गुहामें ०। ० **ऋषि-गिरि**की बगलमें **कालशिला**पर ०। ० **सीतवनके सर्पशौंडिक** (=सप्पसोंडिक) पहाळ (=पब्भार) पर ०। ० **तपोदाराम**में ०। ० **वेणुवन**में **कलन्दक-निवाप**में ०। ० **जीवकाम्रवन**में ०। ० **मद्रकुक्षि-मृगदाव**में विहार करता था। वहाँ भी आनंद। मैंने तुमसे कहा—आनन्द! रमणीय है राजगृह। रमणीय है गौतमन्यग्रोध ०। तुम्हारा ही अपराध है।

"आनन्द! एक बार मैं इसी वैशालीके **उदयनचैत्य**में विहार करता था ०। ० **गौतमक-चैत्य** ०। ० **सप्ताम्र** (=**सत्तम्ब**) **चैत्य** ०। ० **बहुपुत्रक-चैत्य** ०। ० **सारन्दद-चैत्य** ०। अभी आज मैंने आनन्द! तुम्हें इस चापाल-चैत्यमें कहा—आनंद! रमणीय है वैशाली ०। तुम्हारा ही अपराध है।

"आनन्द! क्या मैंने पहिले ही नहीं कह दिया—सभी प्रियों=मनापोंसे जुदाई वियोग=अन्यथाभाव होता है। सो वह आनन्द कहाँ मिल सकता है, कि जो उत्पन्न=भूत=संस्कृत, नाशमान है, वह न नष्ट हो। यह संभव नहीं। आनन्द! जो यह तथागतने जीवन-संस्कार छोळा, त्यागा, प्रहीण=प्रतिनिःसृष्ट किया, तथागतने बिल्कुल पक्की बात कही है—जल्दी ही ० आजसे तीन मास बाद तथागतका परिनिर्वाण होगा। जीवनके लिये तथागत क्या फिर वमन कियेको निगलेंगे! यह संभव नहीं।

"आओ आनन्द! जहाँ **महावन-कूटागारशाला** है, वहाँ चलें।"

"अच्छा भन्ते।"

भगवान् आयुष्मान् आनन्दके साथ जहाँ महावन कूटागार-शाला थी, वहाँ गये। जाकर आयुष्मान् आनन्दसे बोले—"आनन्द! जाओ वैशालीके पास जितने भिक्षु विहार करते हैं, उनको उपस्थानशालामें एकत्रित करो।"...

तब भगवान् जहाँ उपस्थानशाला थी वहाँ गये। जाकर बिछे आसनपर बैठे। बैठकर भगवान्ने भिक्षुओंको आमंत्रित किया—

"इसलिये भिक्षुओ! मैंने जो धर्म उपदेश किया है, तुम अच्छी तौरसे सीखकर उसका सेवन करना, भावना करना, बढ़ाना; जिसमें कि यह ब्रह्मचर्य अध्वनीय=चिरस्थायी हो; यह (ब्रह्मचर्य) बहुजन-हितार्थ, बहुजन-सुखार्थ, लोकानुकंपार्थ; देव-मनुष्योंके अर्थ-हित-सुखके लिये हो। भिक्षुओ! मैंने यह कौनसे धर्म, अभिज्ञानकर, उपदेश किये हैं, जिन्हें अच्छी तरह सीखकर ०? जैसे कि (१) चार स्मृति-प्रस्थान, (२) चार सम्यक-प्रधान; (३) चार ऋद्धिपाद, (४) पाँच इन्द्रिय, (६) पाँचबल, (७) सात बोध्यंग, (८) आर्य अष्टांगिक-मार्ग।...।

"हन्त ! भिक्षुओ ! तुम्हें कहता हूँ—संस्कार (=कृतवस्तु), नाश होने वाले (=वयधर्म्मा) हैं, प्रमादरहित हो (आदर्शको) सम्पादन करो। अचिरकालमें ही तथागतका परिनिर्वाण होगा। आजसे तीन मास बाद तथागत परिनिर्वाण पायेंगे।"

भगवान्‌ने यह कहा। सुगत शास्ताने यह कह फिर यह भी कहा—

"मेरा आयु परिपक्व हो गया, मेरा जीवन थोळा है।
"तुम्हें छोळकर जाऊँगा, मैंने अपने करने लायक (काम)को कर लिया॥८॥
भिक्षुओ ! निरालस, सावधान, सुशील होओ।
संकल्पका अच्छी तरह समाधान कर अपने चित्तकी रक्षा करो॥९॥
जो इस धर्ममें प्रमादरहित हो उद्योग करेगा ;
वह आवागमनको छोळ दुःखका अन्त करेगा॥१०॥

(इति) तृतीय भाणवार ॥३॥

कुसीनाराकी ओर—

तब भगवान्‌ने पूर्वाह्ण समय पहिनकर पात्र चीवर ले वैशालीमें पिंडचार कर, भोजनोपरान्त नागावलोकन (=हाथीकी तरह सारे शरीरको घुमा कर देखना) से वैशालीको देखकर, आयुष्मान् आनन्दसे कहा—

"आनन्द ! तथागतका यह अन्तिम वैशाली-दर्शन होगा। आओ आनंद ! जहाँ **भ ण्ड गा म** है, वहाँ चलें।" "अच्छा भन्ते ! "...

भण्डगाम—

तब भगवान् महाभिक्षु-संघके साथ जहाँ भंडग्राम था, वहाँ पहुँचे। वहाँ भगवान् भण्डग्राममें विहार करते थे। ... वहाँ भंडग्राममें विहार करते भी भगवान् ०।

० जहाँ अम्बगाम (=**आम्रग्राम**) ०। ० जहाँ जम्बूगाम (=**जम्बूग्राम**) ०। ० जहाँ **भोगनगर** ०

भोगनगर—

(७) *महाप्रदेश (कसौटी)*

वहाँ भोगनगरमें भगवान् **आनन्द-चैत्य**में विहार करते थे। वहाँ भगवान्‌ने भिक्षुओंको आमंत्रित किया —

"भिक्षुओ ! चार **महाप्रदेश** तुम्हें उपदेश करता हूँ, उन्हें सुनो, अच्छी तरह मनमें करो, भाषण करता हूँ।"

"अच्छा भन्ते ! " कह उन भिक्षुओंने भगवान्‌को उत्तर दिया।

भगवान्‌ने यह कहा—(१) "भिक्षुओ ! यदि (कोई) भिक्षु ऐसा कहे—आवुसो ! मैंने इसे भगवान्‌के मुखसे सुना, मुखसे ग्रहण किया है; यह **धर्म** है, यह **विनय** है, यह शास्ताका उपदेश है। तो भिक्षुओ ! उस दिन भिक्षुके भाषणका न अभिनन्दन करना, न निन्दा करना। अभिनन्दन न कर, निन्दा न कर, उन पद-व्यंजनोंको अच्छी तरह सीखकर, **सूत्र**से तुलना करना, **विनय**में देखना। यदि वह सूत्रसे तुलना करने पर, विनयमें देखनेपर, न सूत्रमें उतरते हैं; न विनयमें दिखाई देते हैं; तो विश्वास करना कि अवश्य यह भगवान्‌का वचन नहीं है, इस भिक्षुका ही दुर्गृहीत है। ऐसा (होनेपर) भिक्षुओ ! उसको छोळ देना। यदि वह सूत्रसे तुलना करनेपर, विनयमें देखनेपर, सूत्रमें

भी उतरता है, विनयमें भी दिखाई देता है, तो विश्वास करना—अवश्य यह भगवान्‌का वचन है, इस भिक्षुका यह सुगृहीत है। भिक्षुओ! इसे प्रथम महाप्रदेश धारण करना।

"(२) और फिर भिक्षुओ! यदि (कोई) भिक्षु ऐसा कहे—आवुसो! अमुक आवास में स्थविर-युक्त प्रमुख-युक्त (भिक्षु)-संघ विहार करता हैं। मैंने उस संघके मुखसे सुना, मुखसे ग्रहण किया है—यह धर्म है, यह विनय है, यह शास्ताका शासन है। ०। तो विश्वास करना, कि अवश्य उन भगवान्‌का वचन है, इसे संघने सुगृहीत किया। भिक्षुओ! यह दूसरा महाप्रदेश धारण करना।

"(३) ० भिक्षु ऐसा कहै—'आवुसो !अमुक आवासमें बहुतसे बहुश्रुत, आगत-आगम—(=आगमज्ञ), धर्म-धर, विनय-धर, **मात्रिका-धर**, स्थविर भिक्षु विहार करते हैं। यह मैंने उन स्थविरों के मखसे सुना, मुखसे ग्रहण किया। यह धर्म है। ०। ०।

"(४) भिक्षुओ! (यदि) भिक्षु ऐसा कहे—अमुक आवासमें एक बहुश्रुत ० स्थविर भिक्षु विहार करता है। यह मैंने उस स्थविरके मुखसे सुना है, मुखसे ग्रहण किया है। यह धर्म है, यह विनय ०। भिक्षुओ! इसे चतुर्थ महाप्रदेश धारण करना।

भिक्षुओ! इन चार महाप्रदेशोंको धारण करना।"

वहाँ भोगनगरमें विहार करते समय भी भगवान् भिक्षुओंको बहुत करके यही धर्म-कथा कहते थे ०।

पावा—

(८) चुन्दका अन्तिम भोजन

० तब भगवान् भिक्षु-संघके साथ जहाँ पावा थी, वहाँ गये। वहाँ पावामें भगवान् **चुन्द** कर्मार-(=सोनार)-पुत्रके आम्रवनमें विहार करते थे।

चुन्द कर्मारपुत्रने सुना—भगवान् पावामें आये हैं; पावामें मेरे आम्रवनमें विहार करते हैं। तब चुन्द कर्मार-पुत्र जहाँ भगवान् थे, वहाँ ... जाकर भगवान्‌को अभिवादनकर एक ओर बैठा। एक ओर बैठे चुन्द कर्मार-पुत्रको भगवान्‌ने धार्मिक-कथासे ० समुत्तेजित ० किया। तब चुन्द ० ने भगवान् की धार्मिक-कथासे ० समुत्तेजित ० हो भगवान्‌से यह कहा—

"भन्ते! भिक्षु-संघके साथ भगवान् मेरा कलका भोजन स्वीकार करें।"

भगवान्‌ने मौनसे स्वीकार किया।

तब चुन्द कर्मार-पुत्रने उस रातके बीतनेपर उत्तम खाद्य-भोज्य (और) बहुत सा शूकर-मार्दव (=सूकर-मद्दव)[1] तैयार करवा, भगवान्‌को कालकी सूचना दी ....। तब भगवान् पूर्वाह्ण समय पहिनकर पात्र-चीवर ले भिक्षु-संघके साथ, जहाँ चुन्द कर्मार-पुत्रका घर था, वहाँ गये। जाकर बिछे आसन पर बैठे। .... (भोजनकर) .... एक ओर बैठे चुन्द कर्मार-पुत्रको भगवान् धार्मिक-कथा से ० समुत्तेजित ० कर आसनसे उठकर चल दिये।

तब चुन्द कर्मार-पुत्रके भात (=भोजन)को खाकर भगवान्‌को खून गिरनेकी, कळी बीमारी उत्पन्न हुई, मरणान्तक सख्त पीळा होने लगी। उसे भगवान्‌ने स्मृति-संप्रजन्ययुक्त हो, बिना दुःखित हुये, सहन किया। तब भगवान्‌ने आयुष्मान् आनन्दको संबोधित किया—

"आओ आनन्द! जहाँ **कुसीनारा** है, वहाँ चलें।" "अच्छा भन्ते।"

---

[1] **सुअरका मांस या शूकरकन्दका पाक।**

मैंने सुना है—चुन्द कर्मारके भातको भोजनकर,
धीरको मरणान्तक भारी रोग हो गया।।१३।।
शूकर-मार्दवके खानेपर शास्ताको भारी रोग उत्पन्न हुआ।
विरेचनोंके होते समय ही भगवान्‌ने कहा—चलो, कुसीनारा चलें ।।१४।।
तब भगवान् मार्गसे हटकर एक वृक्षके नीचे गये। जाकर आयुष्मान् आनन्दसे कहा—
"आनन्द मेरे लिये चौपेती संघाटी बिछा दो, मैं थक गया हूँ, बैठूँगा।

"अच्छा भन्ते!"....आयुष्मान् आनन्दने चौपेती संघाटी बिछादी, भगवान् बिछे आसनपर बैठे। बैठकर भगवान्‌ने आयुष्मान् आनन्दसे कहा—"आनन्द मेरे लिये पानी लाओ। प्यासा हूँ, आनंद! पानी पिऊँगा।"

ऐसा कहने पर आयुष्मान् आनंदने भगवान्‌से यह कहा—

"भन्ते! अभी अभी पाँच सौ गाळियाँ निकली हैं। चक्कोंसे मथा हिंडा पानी मैला होकर बह रहा है। भन्ते! यह सुंदरजलवाली, शीतलजलवाली, सफेद, सुप्रतिष्ठित रमणीय **ककुत्था** नदी करीबमें है। वहाँ (चलकर) भगवान् पानी पीयेंगे, और शरीरको ठंडा करेंगे।"

दूसरी बार भी भगवान्‌ने ०। तीसरी बार भी भगवान्‌ने आयुष्मान् आनन्दसे कहा—"
"आनन्द मेरे लिये पानी लाओ ०।"

"अच्छा, भन्ते!" कह भगवान्‌को उत्तर दे पात्र लेकर जहाँ वह नदी थी, वहाँ गये। तब वह चक्कोंसे मथे हिंडे मैले थोळे पानीके साथ बहनेवाली नदी, आयुष्मान् आनन्दके वहाँ पहुँचने पर स्वच्छ निर्मल (हो) बहने लगी। तब आयुष्मान् आनंदको ऐसा हुआ—'आश्चर्य है! तथागतकी महा-ऋद्धि, महानुभावताको अद्भुत है! यह नदिका (=छोटी नदी) चक्कोंसे मथे हिंळे मैले थोळे पानीके साथ बह रही थी; सो मेरे आने पर स्वच्छ निर्मल बह रही है।' और पात्रमें पानी भरकर भगवान्‌के पास ले गये। लेजाकर भगवान्‌से यह बोले—"०आश्चर्य है भन्ते! अद्भुत है भन्ते ० निर्मल बह रही है। भन्ते! भगवान् पानी पियें, सुगत पानी पियें।"

तब भगवान्‌ने पानी पिया।

उस समय **आलारकालाम**का शिष्य **पुक्कुस मल्ल-पुत्र कुसीनारा** और **पावा**के बीच, रास्ते में जा रहा था। पुक्कुस मल्ल-पुत्रने भगवान्‌को एक बृक्षके नीचे बैठे देखा। देखकर जहाँ भगवान् थे, वहाँ....जाकर भगवान्‌को अभिवादनकर एक ओर बैठ गया। पुक्कुस ० ने भगवान्‌से कहा—

"आश्चर्य भन्ते! अद्भुत भन्ते! प्रव्रजित (लोग) शांततर विहारसे विहरते हैं। भन्ते! पूर्वकालमें (एक बार) आलार कालाम रास्ता चलते, मार्गसे हटकर पासमें दिनके विहारके लिये एक बृक्षके नीचे बैठे। उस समय पाँच सौ गाळियाँ आलार कालामके पीछेसे गईं। तब उस गाळियोंके सार्थ (=कारवाँ)के पीछे पीछे आते एक आदमीने आलार कालामके पास...जाकर पूछा—'क्या भन्ते! पाँच सौ गाळियाँ (इधरसे) निकलते देखा है?'

'आवुस! मैंने नहीं देखा।"

"क्या भन्ते! आवाज सुनी?"

"नहीं आवुस! मैंने आवाज नहीं सुनी।"

"क्या भन्ते! सो गये थे?"

"नहीं आवुस! सोया नहीं था।"

"क्या भन्ते! होशमें थे?"

"हाँ, आवुस!"

"तो भन्ते ! आपने होशमें जागते हुए भी पीछेसे निकली पाँच सौ गाळियाँको न देखा, न (उनकी) आवाजको सुना ? किन्तु (यह जो) आपकी संघाटी पर गर्द पळी है ?"

"हाँ ! आवुस।"

"तब भन्ते ! उस पुरुषको हुआ—आश्चर्य है ! अद्भुत है !! अहो प्रव्रजित लोग शान्त विहारसे विहरते हैं, जो कि (इन्होंने) होशमें, जागते हुये भी पाँच सौ गाळियोंको न देखा, न (उनकी) आवाजको सुना।'—कह आलार कालामके प्रति बळी श्रद्धा प्रकट कर चला गया।"

"तो क्या मानते हो पुक्कुस ! कौन दुष्कर है, दुःसम्भव है—जो कि होशमें जागते हुये पाँच सौ गाळियोंका न देखना, न आवाज सुनना; अथवा होशमें जागते हुये, पानीके बरसते बादल के गळगळाते, बिजलीके निकलते और अशनि (=बिजली)के गिरनेके समय भी न (चमक) देखे न आवाज सुने ?"

"क्या है भन्ते पाँच सौ गाळियाँ, छै सौ०, सात सौ ०, आठ सौ ०, नौ सौ ०, दस सौ ०, दस हजार ०, या सौ हजार गाळियाँ; यही दुष्कर दुःसम्भव है जो कि होशमें जागते हुये, पानीके बरसते ० बिजलीके गिरनेके समय भी न (चमक) देखे, न आवाज सुने।"

"पुक्कुस ! एक समय मैं **आतुमाके भुसागारमें** विहार करता था। उस समय देवके बरसते ० बिजलीके गिरनेसे दो भाई किसान और चार बैल मरे। तब आतुमासे आदमियोंकी भीळ निकल कर वहाँ पहुँची, जहाँपर कि वह दो भाई किसान और चार बैल मरे थे। उस समय पुक्कुस ! मैं भुसागारसे निकलकर द्वारपर टहल रहा था। तब पुक्कुस ! उस भीळसे निकल कर एक आदमी मेरे पास... आ .... खळा होकर बोला—'भन्ते ! इस समय देवके बरसते ० बिजलीके गिरनेसे दो भाई किसान और चार बैल मर गये। इसीलिये यह भीळ इकट्ठी हुई है। आप भन्ते ! (उस समय) कहाँ थे।'

'आवुस ! यहीं था।'

'क्या भन्ते ! आपने देखा ?'

'नहीं, आवुस ! नहीं देखा।'

'क्या भन्ते ! शब्द सुना ?'

'नहीं आवुस ! शब्द (भी) नहीं सुना।'

'क्या भन्ते ! सो गये थे ?'

'नहीं आवुस ! सोया नहीं था।

'क्या भन्ते ! होशमें थे ?'

'हाँ, आवुस !'

'तो भन्ते ! आपने होशमें जागते हुये भी देवके बरसते ० बिजलीके गिरनेको न देखा, न शब्द-को सुना ?'

'हाँ, आवुस !'

"तब पुक्कुस ! उस आदमीको हुआ—आश्चर्य है ! अद्भुत है !! अहो प्रव्रजित लोग शान्त विहारसे विहरते हैं ० न आवाज सुने।'—कह मेरे प्रति बळी श्रद्धा प्रकटकर चला गया।"

ऐसा कहनेपर पुक्कुस मल्लपुत्रने भगवान्से यह कहा—

"भन्ते ! यह मैं, जो मेरा **आलार कालाममें** श्रद्धा (=प्रसाद) थी, उसे हवामें उळा देता हूँ, या शीघ्र धारवाली नदीमें बहा देता हूँ। आश्चर्य भन्ते ! अद्भुत भन्ते ! जैसे औंधेको सीधा करदे, ढँकेको खोलदे, भूलेको रास्ता बतला दे, अंधेरेमें चिराग रखदे, कि आँखवाले रूपको देखें, ऐसे ही भन्ते !

भगवान्ने अनेक प्रकारसे धर्मको प्रकाशित किया। यह मैं भन्ते! भगवान्की शरण जाता हूँ, धर्म और भिक्षु संघकी भी। आजसे मुझे भगवान् अंजलिबद्ध शरणागत उपासक धारण करें।"

तब पुक्कुस मल्लपुत्रने (अपने) एक आदमीसे कहा—"आ रे! मेरे इंगुरके वर्ण वाले चमकते **दुशाले**कों ले आ।"

"अच्छा, भन्ते!"—कह उस आदमीने पुक्कुस मल्लपुत्रको कह, ० **दुशाले**को ला दिया। तब पुक्कुस मल्लपुत्रने ० **दुशाला** भगवान्को अर्पित किया—

"भन्ते! कृपाकरके इस मेरे ० **दुशाले**को स्वीकार करें।"

"तो पुक्कुस! एक मुझे ओढ़ा दे, एक आनंदको।"

"अच्छा, भन्ते!"—कह, पुक्कुस मल्लपुत्रने भगवान्को उत्तर दे, एक ० शाल भगवान्को ओढ़ा दिया, एक ० आयुष्मान् आनंदको।

तब भगवान्ने पुक्कुस मल्लपुत्रको धार्मिक कथा द्वारा संदर्शित=समुत्तेजित संप्रर्हषित किया। भगवान्की धार्मिक कथा द्वारा ० संप्रर्हषित हो पुक्कुस मल्लपुत्र आसनसे उठ भगवान्को अभिवादन कर प्रदक्षिणा कर चला गया।

तब पुक्कुस मल्ल-पुत्रके जानेके थोळीही देर बाद आयुष्मान् आनंदने उस (अपने) ० शालको भगवान्के शरीरपर ढाँक दिया। भगवान्के शरीरपर किरणसी फूटी जान पळती थी। तब आयुष्मान् आनंदने भगवान्से यह कहा—

"आश्चर्य भन्ते! अद्भुत भन्ते! कितना परिशुद्ध=पर्यवदात तथागतके शरीरका वर्ण है!! भन्ते! यह ० दुशाला भगवान्के शरीरपर किरणसा जान पळता है।"

"ऐसा ही है आनन्द! ऐसा ही है आनन्द! दो समयोंमें आनन्द! तथागतके शरीरका वर्ण अत्यन्त परिशुद्ध=पर्यवदात जान पळता है। किन दो समयोंमें? जिस समय तथागतने अनुपम सम्यक्-संबोधि (=परमज्ञान) का साक्षात्कार किया, और जिस रात तथागत उपादि (=आवागमनके कारण) रहित निर्वाणको प्राप्त होते हैं। आनन्द! इन दो समयोंमें ०। आनन्द! आज रातके पिछले पहर **कुसीनारा**के **उपवत्तन** (नामक) **मल्लोंके शालवन**में जोळे शालवृक्षोंके बीच तथागतका परिनिर्वाण होगा। आओ, आनन्द! जहाँ **ककुत्था** नदी है, वहाँ चलें।"

"अच्छा, भन्ते!" कह आयुष्मान् आनंदने भगवान्को उत्तर दिया।

इंगुर वर्णवाले चमकते दुशालेको पुक्कुसने अर्पण किया।
उनसे आच्छादित बुद्ध सोनेके वर्ण जैसे शोभा देते थे॥१५॥

"अच्छा भन्ते!"...

तब महाभिक्षु-संघके साथ भगवान् जहाँ ककुत्था नदी थी, वहाँ गये। जाकर ककुत्था नदीको अवगाहन कर, स्नानकर, पानकर, उतरकर, जहाँ अम्बवन (आम्रवन) था, वहाँ गये। जाकर आयुष्मान् **चुन्दक**से बोले—

"चुन्दक! मेरे लिये चौपेती संघाटी बिछा दे। चुन्दक थक गया हूँ, लेटूँगा।"

"अच्छा भन्ते।"

तब भगवान् पैरपर पैर रख, स्मृतिसंप्रजन्यके साथ, उत्थान-संज्ञा मनमें करके, दाहिनी करवट सिंह-शय्यासे लेटे। आयुष्मान् चुन्दक वहीं भगवान्के सामने बैठे।

बुद्ध उत्तम, सुंदर स्वच्छ जलवाली ककुत्था नदी पर जा,
लोकमें अद्वितीय, शास्ताने अ-क्लान्त हो स्नान किया॥१६॥
स्नानकर, पानकर चुन्दको आगे कर भिक्षु-गणके बीचमें (चलते)

धर्मके वक्ता प्रवक्ता महर्षि भगवान् आम्रवनमें पहुँचे ॥१७॥
चुन्दक भिक्षुसे कहा––चौपेती संघाटी बिछाओ, लेटूँगा।
आत्मसंयमीसे प्रेरित हो तुरन्त चौपेती (संघाटी)को बिछा दिया।
अक्लान्त हो शास्ता लेट गये, चुन्द भी वहाँ सामने बैठ गये ॥१८॥

तब भगवान्ने आयुष्मान् आनन्दसे कहा––

"आनन्द! शायद कोई चुन्द कम्मारपुत्रको चिंतित करे (=विप्पटिसारं उपदहेय) (और कहे)––'आवुस चुन्द! अलाभ है तुझे, तूने दुर्लभ कमाया, जो कि तथागत तेरे पिंडपातको भोजनकर परिनिर्वाणको प्राप्त हुये।' आनंद! चुन्द कर्मार-पुत्रकी इस चिंताको दूर करना (और कहना)––'आवुस! लाभ है तुझे, तूने सुलाभ कमाया, जो कि तथागत तेरे पिंडपातको भोजनकर परिनिर्वाणको प्राप्त हुये।' आवुस चुन्द! मैंने यह भगवान्के मुखसे सुना, मुखसे ग्रहण किया––'यह दो पिंड-पात समान फलवाले=समान विपाकवाले हैं, दूसरे पिंडपातोंसे बहुतही महाफल-प्रद=महानृशंसतर हैं। कौनसे दो? (१) जिस पिंडपात (=भिक्षा) को भोजनकर तथागत अनुत्तर सम्यक्-संबोधि (=बुद्धत्त्व) को प्राप्त हुये, (२) और जिस पिंडपातको भोजनकर तथागत अन्-उपादिशेष निर्वाणधातु (=दुःख-कारण-रहित निर्वाण) को प्राप्त हुये। आनन्द! यह दो पिंडपात ०। चुन्द कर्मारपुत्रने आयु प्राप्त करानेवाले कर्मको संचित किया; ० वर्ण ०; ० सुख ०; ० यश ०; ० स्वर्ग ०; ० आधिपत्य प्राप्त करानेवाले कर्मको संचित किया।' आनन्द! चुन्द कर्मारपुत्रकी चिन्ताको इस प्रकार दूर करना।"

तब भगवान्ने इसी अर्थको जानकर उसी समय यह उदान कहा––

"(दान) देनेसे पुण्य बढ़ता है, संयमसे वैर नहीं संचित होता।
सज्जन बुराईको छोळता है, (और) राग-द्वेष-मोहके क्षयसे वह निर्वाण प्राप्त करता है ॥१७॥

(इति) चतुर्थ भाणवार ॥४॥

४–जीवनकी अन्तिम घळियाँ

तब भगवान्ने आयुष्मान् आनंदको आमंत्रित किया––

"आओ आनन्द! जहाँ **हिरण्यवती** नदीका परला तीर है, जहाँ कुसीनाराके मल्लोंका शालवन उपवत्तन है, वहाँ चलें।"

"अच्छा भन्ते!"

तब भगवान् महाभिक्षु-संघके साथ जहाँ हिरण्यवती ० मल्लोंका शालवन था, वहाँ गये। जाकर आयुष्मान् आनन्दसे बोले––

"आनन्द! यमक (=जुळवें)-शालों के बीचमें उत्तरकी ओर सिरहानाकर चारपाई (=मंचक) बिछा दे। थका हूँ, आनन्द! लेटूँगा।" "अच्छा भन्ते!"

तब भगवान् ० दाहिनी करवट सिंह-शय्यासे लेटे।

उस समय अकालहीमें वह जोळे शाल खूब फूले हुये थे। तथागतकी पूजाके लिये वे (फूल) तथागत के शरीरपर बिखरते थे। दिव्य मन्दार-पुष्प आकाशसे गिरते थे, वह तथागतके शरीर पर बिखरते थे। दिव्य चंदन चूर्ण ०। तथागतकी पूजाके लिये आकाशमें दिव्य वाद्य बजते थे। ० दिव्य संगीत ०।

तब भगवान्ने आयुष्मान् आनंदको संबोधित किया––"आनंद! इस समय अकालहीमें यह जोळे शाल खूब फूले हुये हैं। ०। किन्तु, आनन्द! इनसे तथागत सत्कृत गुरुकृत, मानित-पूजित नहीं होते। आनन्द! जो कि भिक्षु या भिक्षुणी, उपासक या उपासिका धर्मके मार्गपर आरूढ़ हो विहरता

है, यथार्थ मार्गपर आरूढ़ हो धर्मानुसार आचरण करनेवाला होता है; उससे तथागत ० पूजित होते हैं। ऐसा आनंद। तुम्हें सीखना चाहिये।"

उस समय आयुष्मान् **उपवान** भगवान्पर पंखा झलते भगवान्के सामने खळे थे। तब भगवान्ने आयुष्मान उपवानको हटा दिया—

"हट जाओ , भिक्षु ! मत मेरे सामने खळे होओ।"

तब आयुष्मान् आनन्दको यह हुआ—'यह आयुष्मान् उपवान चिरकालतक भगवान्के समीप चारी=सन्तिकावचर उपस्थाक रहे हैं। किन्तु, अन्तिम समयमें भगवान्ने उन्हें हटा दिया—हट जाओ ! भिक्ष ०। क्या हेतु=प्रत्यय है, जो कि भगवान्ने आयुष्मान् उपवानको हटा दिया—० ?'

तब आयुष्मान् आनन्दने भगवान्से यह कहा—

"भन्ते ! यह आयुष्मान् उपवान चिरकालतक भगवान्के ० उपस्थाक रहे हैं। ० क्या हेतु ० है ?"

"आनंद ! बहुतसे दसों लोक-धातुओंके देवता तथागतके दर्शनके लिये एकत्रित हुये हैं। आनंद ! जितना (यह) कुसीनाराका उपवर्तन मल्लोंका शालवन है, उसकी चारों ओर बारह योजन तक बालके नोक गळाने भरके लिये भी स्थान नहीं है, जहाँ कि महेशाख्य देवता न हों। आनन्द ! देवता परेशान हो रहे हैं—'हैम तथागतके दर्शनार्थ दूरसे आये हैं। तथागत अर्हत् सम्यक् संबुद्ध कभी ही कभी लोकमें उत्पन्न होते हैं। आज ही रातके अन्तिम पहरमें तथागतका परिनिर्वाण होगा। और यह महेशाख्य (=प्रतापी) भिक्षु ढाँकते हुये भगवान्के सामने खळा है। अन्तिम समयमें हमें तथागतका दर्शन नहीं मिल रहा है।'

"भन्ते ! भगवान् देवताओंके बारेमें कैसे देख रहे हैं ?"

"आनंद ! देवता आकाशको पृथिवी ख्यालकर बाल खोले रो रहे हैं। हाथ पकळकर चिल्ला रहे हैं। कटे (वृक्ष) की भांति भूमिपर गिर रहे हैं। (यह कहते) लोट पोट रहे हैं—'बहुत जल्दी भगवान् निर्वाणको प्राप्त हो रहे हैं। बहुत शीघ्र सुगत निर्वाणको प्राप्त हो रहे हैं। बहुत शीघ्र चक्षुमान् (=बुद्ध) लोकसे अन्तर्धान हो रहे हैं।' और जो देवता होश-चेतवाले हैं, वह होश-चेत स्मृति संप्रजन्योंके साथ सह रहे हैं—'संस्कृत (=कृत वस्तुयें) अनित्य हैं। सो कहाँ मिल सकता है'।"

"भन्ते ! पहिले दिशाओंमें वर्षावास कर भिक्षु भगवान्के दर्शनार्थ आते थे। उन मनोभावनीय भिक्षुओंका दर्शन , सत्संग हमें मिलता था। किन्तु भन्ते ! भगवान्के बाद हमें मनोभावनीय भिक्षुओंका दर्शन, सत्संग नहीं मिलेगा।"

"आनन्द ! श्रद्धालु कुल-पुत्रके लिये यह चार स्थान दर्शनीय, संवेजनीय (=वैराग्यप्रद) हैं। कौनसे चार ? (१) 'यहाँ तथागत उत्पन्न हुये (=**लुम्बिनी**)' यह स्थान श्रद्धालु ० ! (२) 'यहाँ तथागतने अनुत्तर सम्यक्-संबोधिको प्राप्त किया' (=**बोधगया**) ०। (३) 'यहाँ तथागतने अनुत्तर (=सर्व श्रेष्ठ) धर्मचक्रको प्रवर्तन किया' (=**सारनाथ**) ०। (४) 'यहाँ तथागत अनुपादि-शेष निर्वाण-धातुको प्राप्त हुये (=**कुसीनारा**) ०। ० यह चार स्थान दर्शनीय ० हैं। आनन्द ! श्रद्धालु भिक्षु भिक्षुणियाँ उपासक उपासिकायें (भविष्यमें यहाँ) आवेंगी—'यहाँ तथागत उत्पन्न हुये', ० 'यहाँ तथागत ० निर्वाण ० को प्राप्त हुये . . .।"

(२) स्त्रियोंके प्रति भिक्षुओंका बर्ताव

"भन्ते ! स्त्रियोंके साथ हम कैसा बर्ताव करेंगे ?"

"अ-दर्शन (=न देखना), आनन्द !"

"दर्शन होनेपर भगवान् कैसे बर्ताव करेंगे ?"

"आलाप (=बात) न करना, आनन्द!"
"बात करनेवालेको कैसा करना चाहिये?"
"स्मृति (=होश) को सँभाले रखना चाहिये?"

(३) चक्रवर्तीकी दाहक्रिया

"भन्ते! तथागतके शरीरको हम कैसे करेंगे?" "आनन्द! तथागतकी शरीर-पूजासे तुम बेपर्वाह रहो। तुम आनन्द सच्चे पदार्थ (=सदर्थ) के लिये प्रयत्न करना, सत्-अर्थके लिये उद्योग करना। सत्-अर्थमें अप्रमादी, उद्योगी, आत्मसंयमी हो विहरना। हैं, आनन्द! क्षत्रिय पंडित भी, ब्राह्मण पण्डित भी, गृहपति पंडित भी, तथागतमें अत्यन्त अनुरक्त; वह तथागतकी शरीर-पूजा करेंगे।"

"भन्ते! तथागतके शरीरको कैसे करना चाहिये?" "जैसे आनन्द! राजा चक्रवर्तीके शरीरके साथ करना होता है, वैसे तथागतके शरीरको करना चाहिये!"

"भन्ते! राजा चक्रवर्तीके शरीरके साथ कैसे किया जाता है?"

"आनन्द! राजा चक्रवर्तीके शरीरको नये वस्त्रसे लपेटते हैं; नये वस्त्रसे लपेटकर धुनी रुईसे लपेटते हैं। धुनी रुईसे लपेटकर नये वस्त्रसे लपेटते हैं। इस प्रकार लपेटकर तेलकी लोहद्रोणी (=दोन) में रखकर, दूसरी लोह-द्रोणीसे ढाँककर, सभी गंधों (वाले काष्ठ) की चिता बनाकर, राजा चक्रवर्तीके शरीरको जलाते हैं; जलाकर बळे चौरस्ते पर राजा चक्रवर्तीका स्तूप बनाते हैं।"

"वहाँ आनन्द! जो माला, गंध या चूर्ण चढ़ायेंगे, या अभिवादन करेंगे, या चित्त प्रसन्न करेंगे, तो वह दीर्घ काल तक उनके हित-सुखके लिये होगा। आनंद! चार स्तूपार्ह (=स्तूप बनाने योग्य) हैं। कौनसे चार? (१) तथागत सम्यक् संबुद्ध स्तूप बनाने योग्य है। (२) प्रत्येक संबुद्ध ०। (३) तथागतका श्रावक (=शिष्य) ०। (४) चक्रवर्ती राजा आनंद, स्तूप बनाने योग्य है। सो क्यों आनंद? तथागत अर्हत् सम्यक् संबुद्ध स्तूपार्ह हैं? यह उन भगवान् ० संबुद्धका स्तूप है—(सोचकर) आनंद! बहुतसे लोग चित्तको प्रसन्न करेंगे चित्तको प्रसन्न कर मरनेके बाद सुगति स्वर्ग लोकमें उत्पन्न होंगे। इस प्रयोजनसे आनंद। तथागत ० स्तूपार्ह हैं। ०। किस लिये आनंद! राजा चक्रवर्ती स्तूपार्ह हैं? आनन्द! यह धार्मिक धर्मराजका स्तूप है, सोच आनंद! बहुतसे आदमी चित्तको प्रसन्न करेंगे ०। ० आनंद! यह चार स्तूपार्ह हैं।

(४) आनन्दके गुण

तब आयुष्मान् आनन्द विहारमें जाकर कपिसीस (=खूँटी) को पकळकर रोते खळे हुये—'हाय! मैं शैक्ष्य=सकरणीय हूँ। और जो मेरे अनुकंपक शास्ता हैं, उनका परिनिर्वाण हो रहा है!!"

भगवान्‌ने भिक्षुओंको आमंत्रित किया—"भिक्षुओ! आनन्द कहाँ है?"

"यह भन्ते! आयुष्मान् आनन्द विहार (=कोठरी) में जाकर ० रोते खळे हैं ०।"

"आ! भिक्षु! मेरे वचनसे तू आनन्दको कह—'आवुस आनन्द! शास्ता तुम्हें बुला रहे हैं।" "अच्छा, भन्ते!"

आयुष्मान् आनन्द जहाँ भगवान् थे वहाँ आकर अभिवादनकर एक ओर बैठे। आयुष्मान् आनन्दसे भगवान्‌ने कहा—

"नहीं आनन्द! मत शोक करो, मत रोओ! मैंने तो आनन्द! पहिले ही कह दिया है—सभी प्रियों=मनापोंसे जुदाई ० होनी है, सो वह आनन्द! कहाँ मिलनेवाला है। जो कुछ जात (=उत्पन्न) =भूत=संस्कृत है, सो नाश होनेवाला है। 'हाय! वह नाश न हो।' यह संभव नहीं। आनन्द! तूने

दीर्घरात्र (=चिरकाल) तक अप्रमाण मैत्रीपूर्ण कायिक-कर्मसे तथागतकी सेवा की है। मैत्रीपूर्ण वाचिक कर्मसे ०। ० मैत्रीपूर्ण मानसिक कर्मसे ०। आनन्द! तू कृतपुण्य है। प्रधान (=निर्वाण-साधन)में लग जल्दी अनास्रव(=मुक्त) हो जा।"

तब भगवान्ने भिक्षुओंको संबोधित किया—

"भिक्षुओ! जो तथागत अर्हत्-सम्यक्-संबुद्ध अतीतकालमें हुए, उन भगवानोंके भी उपस्थाक (=चिरसेवक) इतने ही उत्तम थे, जैसा कि मेरा (उपस्थाक) आनन्द। भिक्षुओ! जो तथागत ० भविष्यमें होंगे ०। भिक्षुओ! आनन्द पंडित है। भिक्षुओ! आनन्द मेधावी है। वह जानता है—यह काल भिक्षुओंका तथागतके दर्शनार्थ जाने का है, यह काल भिक्षुणियोंका है, यह काल उपासकोंका है, यह काल उपासिकाओंका है। यह काल राजाका ० राज-महामात्यका ० तीर्थिकोंका ० तीर्थिक-श्रावकोंका है।

"भिक्षुओ! आनन्दमें यह चार आश्चर्य अद्भुत बातें (=धर्म) हैं। कौनसी चार? (१) यदि भिक्षु-परिषद् आनन्दका दर्शन करने जाती है, तो दर्शनसे सन्तुष्ट हो जाती है। वहाँ यदि आनन्द धर्मपर भाषण करता है, भाषणसे भी सन्तुष्ट हो जाती है; भिक्षुओ! भिक्षु-परिषद् अ-तृप्त ही रहती है, जब कि आनन्द चुप हो जाता है। (२) यदि भिक्षुणी-परिषद् ०। (३) यदि उपासक-परिषद् ०। (४) यदि उपासिका-परिषद् ०। भिक्षुओ! यह चार ०।

(५) चक्रवर्तीके चार गुण

"भिक्षुओ! चक्रवर्ती राजामें यह चार आश्चर्य, अद्भुत बातें हैं। कौनसी चार? (१) यदि भिक्षुओ! क्षत्रिय-परिषद् चक्रवर्ती राजाका दर्शन करने जाती है, तो दर्शनसे सन्तुष्ट हो जाती है। वहाँ यदि चक्रवर्ती राजा भाषण करता है, तो भाषणसे सन्तुष्ट हो जाती है; और भिक्षुओ! क्षत्रिय-परिषद् अ-तृप्त ही रहती है, जब कि चक्रवर्ती राजा चुप होता है। (२) यदि ब्राह्मण-परिषद् ०। (३) यदि गृहपति-परिषद् ०। (४) यदि श्रमण-परिषद् ०। इसी प्रकार भिक्षुओ! यह चार आश्चर्य, अद्भुत बातें आनन्दमें हैं। (१) यदि भिक्षु-परिषद् ०। ०। भिक्षुओ! यह चार आश्चर्य अद्भुत बातें आनन्दमें हैं।"

आयुष्मान् आनन्दने भगवान्से यह कहा—"भन्ते! मत इस क्षुद्र नगले (=नगरक)में, जंगली नगलेमें शाखा-नगरकमें परिनिर्वाणको प्राप्त होवें। भन्ते! और भी महानगर हैं; जैसे कि **चम्पा, राजगृह, श्रावस्ती, साकेत, कौशाम्बी, वाराणसी**। वहाँ भगवान् परिनिर्वाण करें। वहाँ बहुतसे क्षत्रिय महाशाल (=महाधनी), ब्राह्मण-महाशाल, गृहपति-महाशाल तथागतके भक्त हैं; वह तथागतके शरीरकी पूजा करेंगे।"

(६) महासुदर्शनजातक[1]

"मत आनन्द! ऐसा कह; मत आनन्द! ऐसा कह—'इस क्षुद्र नगले ०।' आनन्द! पूर्वकालमें **महासुदर्शन** नामक चारों दिशाओंका विजेता, देशोंपर अधिकारप्राप्त, सात रत्नोंसे युक्त धार्मिक धर्मराजा चक्रवर्ती राजा था। आनन्द! यह कुसीनारा राजा महासुदर्शनकी **कुशावती** नामक राजधानी थी। जो कि पूर्व-पश्चिम लम्बाईमें बारह योजन थी, उत्तर-दक्षिण विस्तारमें सात योजन थी। आनन्द! कुशावती राजधानी समृद्ध=स्फीत, बहुजना=जनाकीर्ण और सुभिक्ष थी। जैसे कि आनन्द! देवताओं-

---

[1] **देखो महासुदस्सन-सुत्त पृ० १५२।**

की **आलकमंदा** नामक राजधानी समृद्ध=स्फीत, बहुजना=यक्ष-आकीर्ण और सुभिक्ष हैं; इसी प्रकार ०। आनन्द! कुशावती राजधानी दिन-रात, हस्ति-शब्द, अश्व-शब्द, रथ-शब्द, भेरी-शब्द, मृदंग-शब्द, वीणा-शब्द, गीत-शब्द, शंख-शब्द, ताल-शब्द, 'खाइये-पीजिये'—इन दस शब्दोंसे शून्य न होती थी। आनन्द! कुसीनारामें जाकर कुसीनारावासी मल्लोंको कह—'**वाशिष्टो**! आज रातके पिछले पहर तथागतका परिनिर्वाण होगा। चलो वाशिष्टो! चलो वाशिष्टो! पीछे अफसोस मत करना—'हमारे ग्राम-क्षेत्रमें तथागतका परिनिर्वाण हुआ, लेकिन हम अन्तिमकालमें तथागतका दर्शन न कर पाये।" "अच्छा भन्ते!"

आयुष्मान् आनन्द चीवर पहिनकर, पात्रचीवर ले, अकेले ही कुसीनारामें प्रविष्ट हुए। उस समय कुसीनारावासी **मल्ल** किसी कामसे **संस्थागार**में जमा हुए थे। तब आयुष्मान् आनन्द जहाँ कुसीनाराके मल्लोंका संस्थागार था, वहाँ गये। जाकर कुसीनारावासी मल्लोंसे यह बोले—'वाशिष्टो! ०।'

आयुष्मान् आनन्दसे यह सुनकर मल्ल, मल्ल-पुत्र, मल्ल-बधुयें, मल्ल-भार्यायें दुःखित दुर्मना दुःख-समर्पित-चित्त हो, कोई कोई बालोंको बिखेर रोते थे, बाँह पकळकर क्रंदन करते थे, कटे (वृक्ष)से गिरते थे, (भूमिपर) लोटते थे—बहुत जल्दी भगवान् निर्वाण प्राप्त हो रहे हैं, बहुत जल्दी सुगत निर्वाण प्राप्त हो रहे हैं ०। बहुत जल्दी लोक-चक्षु अन्तर्धान हो रहे हैं। तब मल्ल ० दुःखित ० हो, जहाँ उपवत्तन मल्लोंका शालवन था, वहाँ गये।

तब आयुष्मान् आनन्दको यह हुआ—'यदि मैं कुसीनाराके मल्लोंको एक एक कर भगवान्की वन्दना करवाऊँ; तो भगवान् (सभी) कुसीनाराके मल्लोंसे अवन्दित ही होंगे, और यह रात बीत जायेगी। क्यों न मैं कुसीनाराके मल्लोंको एक एक कुलके क्रमसे भगवान्की वन्दना करवाऊँ—'भन्ते! अमुक नामक मल्ल स-पुत्र, स-भार्य, स-परिषद्, स-अमात्य भगवान्के चरणोंको शिरसे वन्दना करता है।' तब आयुष्मान् आनन्दने कुसीनाराके मल्लोंको एक एक कुलके क्रमसे भागवान्की वन्दना करवाई—०। इस उपायसे आयुष्मान् आनन्दने, प्रथम याम (=छैसे दस बजे राततक)में कुसीनाराके मल्लोंसे भगवान्की वन्दना करवा दी।

(७) *सुभद्रकी प्रव्रज्या*

उस समय कुसीनारामें **सुभद्र** नामक परिव्राजक वास करता था। सुभद्र परिव्राजकने सुना, आज रातको पिछले पहर श्रमण गौतमका परिनिर्वाण होगा। तब सुभद्र परिव्राजकको ऐसा हुआ—"मैंने बृद्ध=महल्लक आचार्य-प्राचार्य परिव्राजकोंको यह कहते सुना है—'कदाचित् कभी ही तथागत अर्हत् सम्यक्-सम्बुद्ध उत्पन्न हुआ करते हैं।' और आज रातके पिछले पहर श्रमण गौतमका परिनिर्वाण होगा, और मुझे यह संशय (=कंखा-धम्म) उत्पन्न है;...इस प्रकार मैं श्रमण गौतममें प्रसन्न (=श्रद्धावान्) हूँ—श्रमण गौतम मुझे वैसा, धर्म उपदेश कर सकता है; जिससे मेरा यह संशय हट जायेगा।"

तब सुभद्र परिव्राजक जहाँ मल्लोंका शाल-वन उपवत्तन था, जहाँ आयुष्मान् आनन्द थे, वहाँ गया। जाकर आयुष्मान् आनन्दसे बोला—"हे आनन्द! मैंने बृद्ध=महल्लक ० परिव्राजकोंको यह कहते सुना है ०। सो मैं ... श्रमण गौतमका दर्शन पाऊँ?"

ऐसा कहनेपर आयुष्मान् आनन्दने सुभद्र परिव्राजकसे कहा—

"नहीं आवुस! सुभद्र! तथागतको तकलीफ मत दो। भगवान् थके हुए हैं।"

दूसरी बार भी सुभद्र परिव्राजकने ०।०। तीसरी बार भी ०।०।

भगवान्ने आयुष्मान् आनन्दका सुभद्र परिव्राजकके साथका कथा-संलाप सुन लिया। तब भगवान्ने आयुष्मान् आनन्दसे कहा—

"नहीं आनन्द ! मत सुभद्रको मना करो। सुभद्रको तथागतका दर्शन पाने दो। जो कुछ सुभद्र पूछेगा, वह आ ज्ञा (=परम-ज्ञान)की इच्छासे ही पूछेगा; तकलीफ देनेकी इच्छासे नहीं। पूछनेपर जो मैं उसे कहूँगा, उसे वह जल्दी ही जान लेगा।"

तब आयुष्मान् आनन्दने सुभद्र परिव्राजकसे कहा—

"जाओ आवुस सुभद्र ! भगवान् तुम्हें आज्ञा देते हैं।"

तब सुभद्र परिव्राजक जहाँ भगवान् थे, वहाँ गया। जाकर भगवान्के साथ संमोदनकर. . .एक ओर बैठा। एक ओर बैठ. . .बोला।

"हे गौतम ! जो श्रमण ब्राह्मण संघी गणी=गणाचार्य, प्रसिद्ध यशस्वी तीर्थंकर, बहुत लोगों द्वारा उत्तम माने जानेवाले हैं; जैसे कि—**पूर्ण काश्यप, मक्खलि गोसाल, अजित केशकम्बल, पकुध कच्चायन, संजय बेलट्ठिपुत्त, निगण्ठ नाथपुत्त**। (क्या) वह सभी अपने दावा (=प्रतिज्ञा)को (वैसा) जानते, (या) सभी (वैसा) नहीं जानते; (या) कोई कोई वैसा जानते, कोई कोई वैसा नहीं जानते हैं ! . . ."

"[1] नहीं सुभद्र ! जाने दो—'वह सभी अपने दावाको ०। सुभद्र ! तुम्हें धर्म ० उपदेश करता हूँ; उसे सुनो, अच्छी तरह मनमें करो, भाषण करता हूँ।"

"अच्छा भन्ते !" सुभद्र परिव्राजकने भगवान्से कहा। भगवान्ने यह कहा—

"सुभद्र ! जिस धर्म-विनयमें आर्य अष्टांगिक मार्ग उपलब्ध नहीं होता, वहाँ प्रथम श्रमण (=स्रोत आपन्न) भी उपलब्ध नहीं होता; द्वितीय श्रमण (=सकृदागामी) भी उपलब्ध नहीं होता; तृतीय श्रमण (=अनागामी) भी उपलब्ध नहीं होता; चतुर्थ श्रमण (=अर्हत्) भी उपलब्ध नहीं होता। सुभद्र ! जिस धर्म-विनयमें आर्य-अष्टांगिक-मार्ग उपलब्ध होता है, प्रथम श्रमण भी वहाँ होता है ०। सुभद्र ! इस धर्म-विनयमें आर्य अष्टांगिक-मार्ग उपलब्ध होता है; सुभद्र ! यहाँ प्रथम श्रमण ० भी, यहाँ ० द्वितीय श्रमण भी, यहाँ ० तृतीय श्रमण भी, यहाँ ० चतुर्थ श्रमण भी है। दूसरे वाद (=मत) श्रमणोंसे शून्य हैं। सुभद्र ! यहाँ (यदि) भिक्षु ठीकसे विहार करें (तो) लोक अर्हतोंसे शून्य न होवे।"

"सुभद्र ! उन्तीस वर्षकी अवस्थामें कुशलका खोजी हो, जो मैं प्रव्रजित हुआ।

सुभद्र ! जब मैं प्रव्रजित हुआ तबसे इक्कावन वर्ष हुए।

न्याय-धर्म (=आर्य-धर्म=सत्यधर्म)के एक देशको भी देखनेवाला यहाँसे बाहर कोई नहीं है ॥२०॥

ऐसा कहनेपर सुभद्र परिव्राजकने भगवान्से कहा—

"आश्चर्य भन्ते ! अद्भुत भन्ते ! ०[2] मैं भगवान्की शरण जाता हूँ, धर्म और भिक्षु-संघकी भी। भन्ते ! मुझे भगवान्के पाससे प्रव्रज्या मिले, उपसंपदा मिले।"

"सुभद्र ! जो कोई भूतपूर्व अन्य-तीर्थिक (=दूसरे पंथका) इस धर्म. . .में प्रव्रज्या. . .उपसंपदा चाहता है। वह चार मास परिवास (=परीक्षार्थ वास) करता है। चार मासके बाद, आरब्ध-चित्त भिक्षु प्रव्रजित करते हैं, भिक्षु होनेके लिये उपसंपन्न करते हैं।". . .

"भन्ते ! यदि भूतपूर्व अन्यतीर्थिक इस धर्मविनयमें प्रव्रज्या ० उपसंपदा चाहनेपर, चार मास परिवास करता है ०। तो भन्ते ! मैं चार वर्ष परिवास करूँगा। चार वर्षोंके बाद आरब्ध-चित्त भिक्षु मुझे प्रव्रजित करें।"

---

[1] अ. क. **"पहिले पहरमें मल्लोंको धर्मदेशनाकर, बिचले पहर सुभद्रको, पिछले पहर भिक्षु-संघको उपदेशकर, बहुत भोरे ही परिनिर्वाण····।**

[2] पृष्ठ ३२

तब भगवान्‌ने आयुष्मान् आनन्दसे कहा—"तो आनन्द ! सुभद्रको प्रव्रजित करो।" "अच्छा भन्ते !"

तब सुभद्र परिव्राजकको आयुष्मान् आनन्दने कहा—

"आवुस !...लाभ है तुम्हें, सुलाभ हुआ तुम्हें; जो यहाँ शास्ताके सम्मुख अन्तेवासी (=शिष्य)के अभिषेकसे अभिषिक्त हुए।"

सुभद्र परिव्राजकने भगवान्‌के पास प्रव्रज्या पाई, उपसंपदा पाई। उपसंपन्न होनेके अचिरहीमें आयुष्मान् सुभद्र...आत्मसंयमी हो विहार करते, जल्दी ही, जिसके लिये कुलपुत्र ० प्रव्रजित होते हैं; उस अनुत्तर ब्रह्मचर्यफलको इसी जन्ममें स्वयं जानकर, साक्षात्कारकर, प्राप्तकर, विहरने लगे। ०। सुभद्र अर्हतोंमेंसे एक हुए। वह भगवान्‌के अन्तिम...शिष्य हुए।

(इति) पंचम भाणवार ॥५॥

(८) अन्तिम उपदेश

तब भगवान्‌ने आयुष्मान् आनन्दसे कहा—

"आनन्द ! शायद तुमको ऐसा हो—(१) अतीत-शास्ता (=चलेगये गुरु)का (यह) प्रवचन (=उपदेश) है, (अब) हमारा शास्ता नहीं है। आनन्द ! इसे ऐसा मत समझना। मैंने जो **धर्म** और **विनय** उपदेश किये हैं, प्रज्ञप्त (=विहित) किये हैं; मेरे बाद वही तुम्हारा शास्ता (=गुरु) है।—(२) आनन्द ! जैसे आजकल भिक्षु एक दूसरेको 'आवुस' कहकर पुकारते हैं, मेरे बाद ऐसा कहकर न पुकारें। आनन्द ! स्थविरतर (=उपसंपदा प्रव्रज्यामें अधिक दिनका) भिक्षु नवकन्तर (=अपनेसे कम समयके) भिक्षुको नामसे, या गोत्रसे; या आवुस, कहकर पुकारें। नवकतर भिक्षु स्थविरतरको 'भन्ते' या 'आयुष्मान्' कहकर पुकारें। (३) इच्छा होनेपर संघ मेरे बाद क्षुद्र-अनुक्षुद्र (=छोटे छोटे) शिक्षापदों (=भिक्षुनियमों)को छोळ दे। (४) आनन्द ! मेरे बाद **छन्न** भिक्षुको ब्रह्मदण्ड करना चाहिये।"

"भन्ते ! **ब्रह्मदण्ड** क्या है ?"

"आनन्द ! छन्न, भिक्षुओंको जो चाहे सो कहे, भिक्षुओंको उससे न बोलना चाहिये, न उपदेश=अनुशासन करना चाहिये।"

तब भगवान्‌ने भिक्षुओंको आमंत्रित किया—

"भिक्षुओ ! (यदि) बुद्ध, धर्म, संघमें एक भिक्षुको भी कुछ शंका हो, (तो) पूछ लो। भिक्षुओ ! पीछे अफसोस मत करना—'शास्ता हमारे सन्मुख थे, (किन्तु) हम भगवान्‌के सामने कुछ पूछ न सके'।"

ऐसा कहनेपर वह भिक्षु चुप रहे। दूसरी बार भी भगवान्‌ने ०।०। तीसरी बार भी ०।०। तब आयुष्मान् आनन्दने भगवान्‌से यह कहा—"आश्चर्य भन्ते ! अद्भुत भन्ते !! मैं भन्ते ! इस भिक्षु-संघमें इतना प्रसन्न हूँ। (यहाँ) एक भिक्षुको भी बुद्ध, धर्म, संघ, मार्ग, या प्रतिपद्‌के विषयमें संदेह (=कांक्षा)=विमति नहीं है।"

"आनन्द ! 'प्रसन्न हूँ' कह रहा है ? आनन्द ! तथागतको मालूम है—इस भिक्षु-संघमें एक भिक्षुको भी बुद्ध०के विषयमें संदेह=विमति नहीं है। आनन्द ! इन पाँचसौ भिक्षुओंमें जो सबसे छोटा भिक्ष है। वह भी न गिरनेवाला हो, नियत संबोधि-परायण है।"

तब भगवान्‌ने भिक्षुओंको आमंत्रित किया—"हन्त ! भिक्षुओ अब तुम्हें कहता हूँ—"संस्कार (=कृतवस्तु) व्यय-धर्मा (=नाशमान) हैं; अप्रमादके साथ (=आलस न कर) (जीवनके लक्ष्यको) संपादन करो।"—यह तथागतका अन्तिम बचन है।"

५—निर्वाण

तब भगवान् प्रथम ध्यानको प्राप्त हुए। प्रथम ध्यानसे उठकर द्वितीय ध्यानको प्राप्त हुए। ० तृतीय ध्यानको ०। ० चतुर्थ ध्यानको ०। ० आकाशानन्त्यायतनको ०। ० विज्ञानानन्त्यायतनको ०। ० आकिंचन्यायतनको ०। ० नैवसंज्ञानासंज्ञायतनको ०। ० संज्ञावेदयितनिरोधको प्राप्त हुए। तब आयष्मान् आनन्दने आयुष्मान् अनुरुद्धसे कहा—"भन्ते अनुरुद्ध ! क्या भगवान् परिनिर्वृत होगये ?"

"आवुस आनन्द ! भगवान् परिनिर्वृत नहीं हुए। संज्ञावेदयितनिरोधको प्राप्त हुए हैं।"

तब भगवान् संज्ञावेदयितनिरोध-समापत्ति (=चारों ध्यानोंके ऊपरकी समाधि)से उठकर नवसंज्ञा-नासंज्ञायतनको प्राप्त हुए। ०। द्वितीय ध्यानसे उठकर प्रथम ध्यानको प्राप्त हुए। प्रथम ध्यानसे उठकर द्वितीय ध्यानको प्राप्त हुए। ०। चतुर्थ ध्यानसे उठनेके अनन्तर भगवान् परिनिर्वाणको प्राप्त हुए। भगवान्के परिनिर्वाण होनेपर निर्वाण होतेके साथ भीषण, लोमहर्षण महाभूचाल हुआ। देव-दुन्दुभियाँ बजीं। भगवान्के परिनिर्वाण होनेपर निर्वाण होतेके साथ **सहापति ब्रह्माने** यह गाथा कही—

"संसारके सभी प्राणी जीवनसे गिरेंगे।
जबकि ऐसे लोकमें अद्वितीय पुरुष बलप्राप्त,
तथागत, शास्ता बुद्ध परिनिर्वाण को प्राप्त हुए" ॥२१॥

भगवान्के परिनिर्वाण होनेपर ० देवेन्द्र शक्रने यह गाथा कही—

"अरे! संस्कार (=उत्पन्न वस्तुयें) उत्पन्न और नष्ट होनेवाले हैं।
(जो) उत्पन्न होकर नष्ट होते हैं; उनका शान्त होना ही सुख है" ॥२२॥

भगवान्के परिनिर्वाण होनेपर ० आयुष्मान् अनुरुद्धने यह गाथा कही—

"स्थिर-चित्त तथागतको (अब) श्वास-प्रश्वास नहीं रहा।
शान्तिके लिये निष्कम्प हो मुनिने काल किया" ॥२३॥

भगवान्के परिनिर्वाण होनेपर ० आयुष्मान् आनन्दने यह गाथा कही—

"जब सर्वश्रेष्ठ आकारसे युक्त संबुद्ध परिनिर्वाणको प्राप्त हुए,
तो उस समय भीषणता हुई, उस समय रोमांच हुआ" ॥२५॥

भगवान्के परिनिर्वाण हो जानेपर, जो वह अवीत-राग (=अ-विरागी) भिक्षु थे, (उनमें) कोई बाँह पकळकर क्रन्दन करते थे; कटे (वृक्ष) के सदृश गिरते थे, (धरतीपर) लोटते थे—'भगवान् बहुत जल्दी परिनिर्वृत हो गये ०। किन्तु जो वीत-राग भिक्षु थे, वह स्मृति-संप्रजन्यके साथ स्वीकार (=सहन) करते थे—'संस्कार अनित्य है, सो कहाँ मिलेगा ?'

तब आयुष्मान् **अनुरुद्धने** भिक्षुओंसे कहा—

"नहीं आवुसो ! शोक मत करो, रोदन मत करो। भगवान्ने तो आवुसो ! यह पहले ही कह दिया है—'सभी प्रियों०से जुदाई ० होनी है ०'।"

आयुष्मान् अनुरुद्ध और आयुष्मान् आनन्दने वह बाकी रात धर्म-कथामें बिताई। तब आयुष्मान् अनुरुद्धने आयुष्मान् आनन्दसे कहा—

"जाओ ! आवुस आनन्द ! **कुसीनारामें** जाकर, कुसीनाराके **मल्लोंसे** कहो—'वाशिष्टो ! भगवान् परिनिर्वृत हो गये। अब जिसका तुम काल समझो (वह करो)।"

"अच्छा भन्ते !" कह...आयुष्मान् आनन्द पहिनकर पात्र-चीवर ले अकेले कुसीनारामें प्रविष्ट हुए। उस समय किसी कामसे कुसीनाराके मल्ल, संस्थागार (=प्रजातन्त्र-सभा-भवन) में जमा थे। तब आयुष्मान् आनन्द जहाँ मल्लोंका संस्थागार था, वहाँ गये। जाकर कुसीनाराके मल्लों-से बोले—

"वाशिष्टो ! भगवान् परिनिर्वृत हो गये, अब जिसका तुम काल समझो (वैसा करो)।"

आयुष्मान् आनन्दसे यह सुनकर मल्ल, मल्ल-पुत्र, मल्ल-बधुयें, मल्ल-भार्यायें दुःखित हो ० कोई केशोंको बिखेरकर क्रंदन करती थीं, दुर्मना चित्तमें संतप्त हो कोई कोई केशोंको बिखेर कर रोती थीं, बाँह पकळकर रोती थीं, कटे (वृक्ष)की भाँति गिरती थीं, (धरतीपर) लुठित विलुंठित होती थीं—"बळी जल्दी भगवान्का निर्वाण हुआ, बळी जल्दी सुगतका निर्वाण हुआ, बळी जल्दी लोकनेत्र अंतर्धान हो गये।"

तब कुसीनाराके मल्लोंने पुरुषोंको आज्ञा दी—

"तो भणे ! कुसीनाराकी सभी गंध-माला और सभी वाद्योंको जमा करो।"

तब कुसीनाराके मल्ल गंध-माला, सभी वाद्यों, और पाँच हजार थान (=दुस्स)-जोळोंको लेकर जहाँ [1]उपवत्तन ० था, जहाँ भगवान्का शरीर था, वहाँ गये। जाकर उन्होंने भगवान्के शरीरको नृत्य, गीत, वाद्य, माला, गंधसे सत्कार करते,=गुरुकार करते,=मानते=पूजते कपळेका वितान (=चँदवा) करते, मंडप बनाते उस दिनको बिता दिया। तब कुसीनाराके मल्लोंको हुआ—'भगवान्के शरीरके दाह करनेको आज बहुत विकाल हो गया। अब कल भगवान्के शरीरका दाह करेंगे।' तब कुसीनाराके मल्लों-ने भगवान्के शरीरको नृत्य, गीत, वाद्य, माला, गंधसे सत्कार करते=गुरुकार करते=मानते=पूजते, चँदवा तानते, मंडप बनाते दूसरा दिन भी बिता दिया। तीसरा दिन भी ०। ० चौथा दिन भी ०। ० पाँचवाँ दिन भी ०। छठाँ दिन भी ०। तब सातवें दिन कुसीनाराके मल्लोंको यह हुआ—'हम भगवान्के शरीरको नृत्य० गंधसे सत्कार करते नगरके दक्षिणसे लेजाकर बाहरसे बाहर नगरके दक्षिण भगवान्के शरीरका दाह करें। उस समय मल्लोंके आठ प्रमुख (=मुखिया) शिरसे नहाकर, नये वस्त्र पहिन, भगवान्के शरीरको उठाना चाहते थे; लेकिन वह नहीं उठा पाते थे। तब कुसीनाराके मल्लोंने आयुष्मान् अनुरुद्धसे पूछा—

"भन्ते ! अनुरुद्ध ! क्या हेतु है=क्या कारण है; जो कि हम आठ मल्ल-प्रमुख ० नहीं उठा सकते ?"

"वाशिष्टो ! तुम्हारा अभिप्राय दूसरा है, और देवताओंका अभिप्राय दूसरा है।"

"भन्ते ! देवताओंका अभिप्राय क्या है ?"

"वाशिष्टो ! तुम्हारा अभिप्राय है, हम भगवान्के शरीरको नृत्य०से सत्कार करते ० नगरके दक्षिण दक्षिण ले जाकर, बाहरसे बाहर नगरके दक्षिण, भगवान्के शरीरका दाह करें। देवताओंका अभिप्राय है—हम भगवान्के शरीरको दिव्य नृत्यसे० सत्कार करते ० नगरके उत्तर उत्तर ले जाकर, उत्तर-द्वारसे नगरमें ० प्रवेशकर, नगरके बीच ले जा, पूर्व-द्वारसे निकल, नगरके पूर्व ओर (जहाँ) [2]**मुकुट-बंधन** नामक मल्लोंका चैत्य (=देवस्थान) है, वहाँ भगवान्के शरीरका दाह करें।"

"भन्ते ! जैसा देवताओंका अभिप्राय है—वैसा ही हो।"

उस समय कुसीनारामें जाँघभर मन्दारव-पुष्प (=एक दिव्य पुष्प) बरसे हुए थे।

तब देवताओं और कुसीनाराके मल्लोंने भगवान्के शरीरको दिव्य और मानुष नृत्य०के साथ सत्कार करते ० नगरसे उत्तर उत्तरसे ले जाकर ० (जहाँ) मुकुट-बंधन नामक मल्लोंका चैत्य था, वहाँ भगवान्का शरीर रक्खा। तब कुसीनाराके मल्लोंने आयुष्मान् आनन्दसे कहा—

"भन्ते ! आनन्द ! हम तथागतके शरीरको कैसे करें ?"

---

[1] **वर्तमान माथाकुंअर कसंया (जि. गोरखपुर)।**

[2] **वर्तमान रामाभार, कसया (जि. गोरखपुर)।**

"वाशिष्टो ! जैसे चक्रवर्ती राजाके शरीरको करते हैं, वैसे ही तथागतके शरीरको करना चाहिये।"

"कैसे भन्ते ! चक्रवर्ती राजाके शरीरको करते हैं।"

"वाशिष्टो ! चक्रवर्ती राजाके शरीरको नये कपळेसे लपेटते हैं ०। (दाहकर) बळे चौरस्ते पर तथागतका स्तूप बनवाना चाहिये। वहाँ जो माला, गंध या चूर्ण चढ़ायेंगे, या अभिवादन करेंगे, या चित्तको प्रसन्न करेंगे, उनके लिये वह चिरकाल तक हित-सुखके लिये होगा।"

तब कुसीनाराके **मल्लोंने** आदमियोंको आज्ञा दी—"जाओ रे ! धुनी रुईको एकत्रित करो।

तब **कुसीनारा**के मल्लोंने भगवान्‌के शरीरको कोरे वस्त्रमें लपेटा। कोरे वस्त्रमें लपेटकर धुने कपाससे लपेटा। धुने कपाससे लपेटकर, कोरे वस्त्रमें लपेटा। इसी प्रकार पाँच सौ जोळेमें लपेटकर ताँबे(=लोह)की तेलवाली कळाही (=द्रोणी)में रख सारे गंध (काष्टों)की चिता बनाकर, भगवान्‌के शरीरको चितापर रक्खा।"

६—महाकाश्यपको दर्शन

उस समय आयुष्मान् **महाकाश्यप** पाँचसौ भिक्षुओंके महाभिक्षुसंघके साथ **पावा** और **कुसीनारा** बीचमें, रास्तेपर जा रहे थे। तब आयुष्मान् महाकाश्यप मार्गसे हटकर एक वृक्षके नीचे बैठे। उस समय एक **आजीवक** कुसीनारासे मंदारका पुष्प ले पावाके रास्तेपर जा रहा था। आयुष्मान् महाकाश्यपने उस आजीवककों दूरसे आते देखा। देखकर उस आजीवकसे यह कहा—

"आवुस ! क्या हमारे शास्ताको भी जानते हो?"

"हाँ, आवुस ! जानता हूँ; श्रमण गौतमको परिनिर्वृत हुए आज एक सप्ताह होगया; मैंने यह मंदार-पुष्प वहींसे पाया।"

यह सुन वहाँ जो अवीतराग भिक्षु थे, (उनमें) कोई कोई बाँह पकळकर रोते ०। उस समय **सुभद्र** नामक (एक) वृद्धप्रब्रजित (=बुढ़ापेमें साधु हुआ) उस परिषद्‌में बैठा था। तब वृद्ध-प्रब्रजित सुभद्रने उन भिक्षुओंसे यह कहा—"मत आवुसो ! मत शोक करो, मत रोओ। हम सुमुक्त होगये। उस महाश्रमणसे पीळित रहा करते थे—'यह तुम्हें विहित है, यह तुम्हें विहित नहीं है।' अब हम जो चाहेंगे, सो करेंगे, जो नहीं चाहेंगे, सो नहीं करेंगे।"

तब आयुष्मान् महाकाश्यपने भिक्षुओंको आमंत्रित किया—

"आवुसो ! मत सोचो, मत रोओ। आवुसो ! भगवान्‌ने तो यह पहले ही कह दिया है—सभी प्रियों=मनापोंसे जुदाई ० होनी है, सो वह आवुसो ! कहाँ मिलनेवालाहै ? जो जात(=उत्पन्न) =भूत ० है, वह नाश होनेवाला है। 'हाय ! वह नाश मत हो'—यह सम्भव नहीं।"

उस समय चार मल्ल-प्रमुख शिरसे नहाकर, नया वस्त्र पहिन, भगवान्‌की चिताको लीपना चाहते थे, किन्तु नहीं (लीप) सकते थे। तब कुसीनाराके मल्लोंने आयुष्मान् अनुरुद्धसे पूछा—"भन्ते ! अनुरुद्ध ! क्या हेतु है=क्या प्रत्यय है, जिससे कि चार मल्ल-प्रमुख० नहीं (लीप) सकते हैं।"

"वाशिष्टो ! ० देवताओंका दूसरा ही अभिप्राय है। आयुष्मान् महाकाश्यप पाँचसौ भिक्षुओंके महाभिक्षुसंघके साथ पावा और कुसीनाराके बीच रास्तेमें आ रहे हैं। भगवान्‌की चिता तब तक न जलेगी, जब तक आयुष्मान् महाकाश्यप स्वयं भगवान्‌के चरणोंको...शिरसे वन्दना न कर लेंगे।"

"भन्ते ! जैसा देवताओंका अभिप्राय है, वैसा ही हो।"

तब आयुष्मान् महाकाश्यपने जहाँ मल्लोंका **मुकुटबन्धन** नामक चैत्य था, जहाँ भगवान्‌की चिता थी, वहाँ...पहुँचकर, चीवरको एक कन्धेपर कर अञ्जली जोळ, तीन बार चिताकी परिक्रमाकर,

चरण खोलकर, शिरसे वन्दना की। उन पाँचसौ भिक्षुओंने भी एक कन्धेपर चीवर कर, हाथ जोळ तीन बार चिताकी प्रदक्षिणाकर, भगवान्‌के चरणोंमें शिरसे वन्दना की।

७—दाहक्रिया

आयुष्मान् महाकाश्यप और उन पाँचसौ भिक्षुओंके वन्दना कर लेते ही, भगवान्‌की चिता स्वयं जल उठी। भगवान्‌के शरीरमें जो छवि (=झिल्ली) या चर्म, मांस, नस, या लसिका थी, उनकी न राख जान पळी, न कोयला; सिर्फ अस्थियाँ ही बाकी रह गईं; जैसे कि जलते हुए घी या तेलकी न राख (= छारिका) जान पळती है, न कोयला (=मसी)...। भगवान्‌के शरीरके दग्ध हो जानेपर मेघने प्रादुर्भूत हो आकाशसे भगवान्‌की चिताको ठंडा किया।...। कुसीनाराके मल्लोंने भी सर्व-गन्ध (-मिश्रित) जलसे भगवान्‌की चिताको ठंडा किया।

तब कुसीनाराके मल्लोंने भगवान्‌की अस्थियों (=सरीरानि)को सप्ताह भर संस्थागारमें शक्ति(-हस्त पुरुषोंके घेरेका)-पंजर बनवा, धनुष(-हस्त पुरुषोंके घेरेका)-प्राकार बनवा, नृत्य, गीत, वाद्य, माला, गंधसे सत्कार किया=गुरुकार किया, माना=पूजा।

८—स्तूपनिर्माण

राजा मागध **अजातशत्रु** वैदेहीपुत्रने सुना—'भगवान् कुसीनारामें परिनिर्वाणको प्राप्त हुए।' तब राजा० अजातशत्रु०ने कुसीनाराके मल्लोंके पास दूत भेजा—'भगवान् भी क्षत्रिय (थे), मैं भी क्षत्रिय (हूँ); भगवान्‌के शरीरों (=अस्थियों)में मेरा भाग भी वाजिब है। मैं भी भगवान्‌के शरीरोंका स्तूप बनवाऊँगा और पूजा करूँगा।'

वैशालीके **लिच्छवियों**ने सुना०।

कपिलवस्तुके **शाक्यों**ने सुना०।—'भगवान् हमारे ज्ञातिके (थे)०।

अल्लकप्पके **बुलियों**ने सुना०। रामग्रामके कोलियोंने सुना०।

वेठ-दीपके ब्राह्मणोंने सुना०, भगवान् भी क्षत्रिय थे, हम ब्राह्मण०।

पावाके मल्लोंने भी सुना०।

ऐसा कहनेपर कुसीनाराके मल्लोंने उन संघों और गणोंसे कहा—"भगवान् हमारे ग्राम-क्षेत्रमें परिनिर्वृत हुए, हम भगवान्‌के शरीरों (=अस्थियों)का भाग नहीं देंगे।"

ऐसा कहनेपर **द्रोण** ब्राह्मणने उन संघों और गणोंसे यह कहा—

"आप सब मेरी एक बात सुनें, हमारे बुद्ध क्षांति(=क्षमा)-वादी थे।

यह ठीक नहीं कि (उस) उत्तम पुरुषकी अस्थि-बाँटनेमें मारपीट हो ॥२६॥

"आप सभी एक साथ=एक राय संमोदन करते आठ भाग करें।

दिशाओंमें स्तूपोंका विस्तार हो, बहुतसे लोग चक्षुमान् (=बुद्ध) में प्रसन्न हों ॥२७॥"

"तो ब्राह्मण! तूही भगवान्‌के शरीरोंको आठ समान भागोंमें सुविभक्त कर।"

"अच्छा भो!"... द्रोण ब्राह्मणने भगवान्‌के शरीरोंको आठ समान भागोंमें सुविभक्त (=बाँट) कर, उन संघों गणोंसे कहा—

"आप सब इस कुंभको मुझे दें, मैं कुंभका स्तूप बनाऊँगा और पूजा करूँगा।"

उन्होंने द्रोण ब्राह्मणको कुंभ दे दिया।

पिप्पलीवनके मोरियों (=**मौर्यो**) ने सुना० 'भगवान्‌भी क्षत्रिय, हमभी क्षत्रिय०।"

"भगवान्‌के शरीरोंका भाग नहीं है, भगवान्‌के शरीर बँट चुके। यहाँसे कोयला (=अंगार) लेजाओ।" वह वहाँसे अंगार ले गये।

तब (१) राजा०[१] अजातशत्रु०ने राजगृहमें भगवान्के अस्थियोंका स्तूप (बनाया) और पूजा (=मह) की। वैशालीके लिच्छवियोंने भी ०। (३) कपिलवस्तुके शाक्योंने भी ०। (४) अल्ल-कप्पके बुलियोंने भी ०। (५) रामगामके कोलियोंने भी ०। वेठदीपके ब्राह्मणोंनेभी ०। (७) पावाके मल्लोंने भी ०। (८) कुसीनाराके मल्लोंने भी ०। (९) द्रोण ब्राह्मणने भी कुम्भका ०। (१०) पिप्पलीवनके मौर्योंने भी अंगारोंका ०।

इस प्रकार आठ शरीर (=अस्थि) के स्तूप और एक **कुम्भ-स्तूप** पूर्वकाल (=भूतपूर्व) में थे।
"चक्षुमान्का शरीर आठ द्रोण था, (जिसमें) सात द्रोण **जम्बूदीप**में पूजित होते हैं।
(और) पुरुषोत्तमका एक द्रोण **राम-गाम**में नागोंसे पूजा जाता है ॥२८॥
एक दाढ़ (=दाठा) स्वर्ग-लोकमें पूजित है, और एक **गंधारपुर**में पूजी जाती है।
एक **कलिंगराजा**के देशमें है; और एकको नागराज पूजते हैं ॥२९॥
उसी तेजसे पटुकाकी भाँति यह वसुंधरा मही अलकृत है।
इस प्रकार चक्षुष्मान् (=बुद्ध) का शरीर सत्कृतों द्वारा सुसत्कृत हुआ ॥३०॥
देवेन्द्रों-नागेन्द्र नरेन्द्रोंसे पूजित, तथा श्रेष्ठ मनुष्योंसे पूजित हुआ।
उसे हाथ जोळकर वंदना करो, सौ कल्पमें भी बुद्ध होना दुर्लभ है ॥३१॥
चालीस केश, रोम आदिको चारों ओर,
एक एक करके नाना चक्रवालोंमें देवता ले गये ॥२३॥

---

[१] अ. क. "कुसीनारासे राजगृह पचीस योजन है। इस बीचमें आठ ऋषभ चौळा समतल मार्ग बनवा, मल्ल राजाओंने मुकुट-बंधन और संस्थागारमें जैसी पूजा की थी; वैसीही पूजा पचीस योजन मार्गमें की।...(उसने) अपने पाँचसौ योजन परिमंडल (=घेरेवाले) राज्यके मनुष्योंको एकत्रित करवाया। उन धातुओंको ले, कुसीनारासे धातु (-निमित्त)-क्रीळा करते निकलकर (लोग) जहाँ सुन्दर पुष्पोंको देखते,...वहीं पूजा करते थे। इस प्रकार धातु लेकर आते हुए, सात वर्ष सात मास सात दिन बीत गये।...लाई गई धातुओंको लेकर (अजातशत्रुने) राजगृहमें स्तूप बनवाया, पूजा कराई।...

इस प्रकार स्तूपोंके प्रतिष्ठित होजानेपर महाकाश्यप स्थविरने धातुओंके अन्तराय (=विघ्न) को देखकर, राजा अजातशत्रुके पास जाकर कहा—"महाराज! एक धातु-निधान (=अस्थि-धातु रखनेका चहबच्चा) बनाना चाहिये।" "अच्छा भन्ते!"...

स्थविर उन-उन राज-कुलोंको पूजा करने मात्रकी धातु छोळकर बाकी धातुओंको ले आये। रामग्राममें धातुओंके नागोंके ग्रहण करनेसे अन्तराय न था; 'भविष्यमें लंका-द्वीपमें इसे महाविहारके महाचैत्यमें स्थापित करेंगे'—(के ख्यालसे भी) न ले आये। बाकी सातों नगरोंसे ले आकर, राजगृहके पूर्व-दक्षिण भागमें...(जो स्थान है); राजाने उस स्थानको खुदवाकर, उससे निकली मिट्टीसे ईंटें बनवाईं। 'यहाँ राजा क्या बनवाता है', पूछनेवालोंको भी 'महाश्रावकोंका चैत्य बनवाता है' यही कहते थे; कोई भी धातु-निधानकी बात न जानता था।

१७-महासुदस्सन-सुत्त (२।४)

चक्रवर्ती राजाका जीवन (महासुदर्शन-जातक)। १—कुशावती राजधानी। २—राजाके सात रत्न। ३—राजाकी चार ऋद्धियाँ। ४—धर्म प्रासाद (महल)। ५—राजा ध्यानमें रत। ६—राजाका ऐश्वर्य। ७—सुभद्रादेवीका दर्शनार्थ आना ८—राजाकी मृत्यु। ९—बुद्धही महासुदर्शन राजा।

ऐसा मैंने सुना—एक समय अपने परिनिर्वाणके[1] वक्त भगवान् कुसिनाराके पास **उपवत्तन** नामक **मल्लों**के सालवनमें दो साल वृक्षोंके बीच विहार करते थे।

चक्रवर्ती राजाका जीवन (महासुदर्शन जातक)

तब आयुष्मान् आनन्द जहाँ भगवान् थे वहाँ गये। जाकर भगवान्को अभिवादन कर एक ओर बैठ गये। एक ओर बैठे आयुष्मान् आनन्दने भगवान्से यह कहा—

"भन्ते! मत इस छुद्र नगलेमें, जंगली नगलेमें, शाखा-नगलेमें परिनिर्वाणको प्राप्त होवें। भन्ते! और भी महानगर हैं; जैसे कि **चम्पा, राजगृह, श्रावस्ती, साकेत, कौशाम्बी, वाराणसी,** वहाँ भगवान् परिनिर्वाण करें। वहाँ बहुत से क्षत्रिय महाशाल (=महाधनी), ब्राह्मण महाशाल, गृहपति महाशाल तथागतके भक्त हैं; वे तथागतके शरीरकी पूजा करेंगे।"

"नहीं आनन्द! ऐसा न कहो, मत इस क्षुद्र नगले ०।

१—कुशावती राजधानी

"आनन्द! पूर्वकालमें महासुदस्सन नामक चारों दिशाओंपर विजय पाने वाला, दृढ़ शासक मूर्धाभिषिक्त क्षत्रिय राजा था। आनन्द! महासुदस्सन राजाकी यही **कुसिनारा कुशावती** नामकी राजधानी थी। आनन्द! वह कुशावती पूरवसे लेकर पश्चिमकी ओर लम्बाईमें बारह योजन थी, चौड़ाईमें उत्तरसे दक्षिण सात योजन। आनन्द! कुशावती राजधानी समृद्ध थी, उन्नतिशील थी, बहुत आबादी वाली थी, गुलज़ार थी, और सुभिक्ष थी। आनन्द! जैसे देवताओं की **आलकमन्दा नाम** राजधानी समृद्ध ० है, वैसे ही आनन्द! कुशावती राजधानी समृद्ध ० थी। आनन्द! कुशावती राजधानी दस शब्दोंसे रात दिन सदा भरी रहती थी, जैसे हाथीके शब्द, अश्व-शब्द, रथ-शब्द, भेरि-शब्द, मृदङ्ग-शब्द, वीणा-शब्द, गीत-शब्द, झांझ-शब्द, ताल-शब्द, शंख-शब्द, "खाओ" "पीओ" के शब्द।

"आनन्द! कुशावती राजधानी सात प्राकारोंसे घिरी थी। एक प्राकार सोनेका, एक चाँदीका, एक वैदूर्य, एक स्फटिकका, एक पद्मराग, एक मसारगल्ल और एक सब प्रकारके रत्नोंका।

---

[1] **मिलाओ पृष्ठ १४३ (महासुदर्शन जातक)।**

"आनन्द ! कुशावती राजधानीमें चार रंगके दर्वाज़े लगे थे। एक द्वार सोनेका, एक चाँदीका, एक वैदूर्यका और एक स्फटिकका। प्रत्येक द्वारमें तीन पोरसा (एक पोरसा=५ हाथ) खळे, तीन पोरसा गळे हुये, सब मिलाकर बारह पोरसा लम्बे सात सात खम्भे गळे थे। एक खम्भा सोनेका ० एक सब प्रकारके रत्नोंका।

"आनन्द ! कुशावती राजधानी सात ताल-पंक्तियोंसे घिरी थी। एक ताल-पंक्ति सोने की ० एक सब प्रकारके रत्नोंकी। सोनेके तालका स्कन्ध (=तना,धळ) सोनेका (और) पत्ते और फल चाँदीके थे। चाँदीके तालका स्कन्ध चाँदीका (और) पत्ते और फल सोनेके थे। वैदूर्यके तालका ० पत्ते और फल स्फटिकके थे। स्फटिकके ताल ० पत्ते और फल वैदूर्यके थे। लोहिताङ्कके ताल ० फल और पत्ते मसारगल्लके थे। मसारगल्लके ताल ० फल और पत्ते लोहिताङ्कके थे। सब प्रकारके रत्नोंके पत्ते और फल ताल ० सर्वरत्न-मय थे।—आनन्द ! हवासे हिलनेपर उन ताल-पंक्तियोंसे सुन्दर, प्रसन्नकर, प्रिय (और) मदनीय (=मोह लेने वाला) शब्द निकलता था। आनन्द ! जैसे (वाद्य-विद्यामें) चतुर लोग जब अच्छी तरह सजे हुये और तालसे मिलाये पाँच अंगोंसे युक्त बाजेको बजाते हैं, तो उससे सुन्दर ० शब्द निकलता है, वैसेही उन ताल-पंक्तियों से ०। आनन्द ! उस समय जो कुशावती राजधानीके गुण्डे, जुआरी और शराबी थे, वे उन हवासे हिलती ताल पंक्तियोंके शब्दसे (मस्त हो) नाचते और खेलते थे।

२—चक्रवर्तीके सात रत्न

"आनन्द ! राजा महासुदस्सनके पास सात रत्न, और चार ऋद्धियाँ थीं। कौनसे सात रत्न ? (१) आनन्द ! एक उपोसथ-पूर्णिमाकी रातको उपोसथ व्रत रख शिरसे स्नानकर, जब राजा महासुदस्सन प्रासादके सबसे ऊपरके तल्लेपर था, तो उसके सामने सहस्र अरों वाला, नाभि नेमि (=पुट्ठी) से युक्त और सर्वाकार परिपूर्ण दिव्य चक्र-रत्न प्रगट हुआ। उसे देखकर राजा महासुदस्सनके मनमें ऐसा हुआ—"ऐसा सुना है—उपोसथ-पूर्णिमाकी रात शिरसे नहा, उपोसथ व्रतकर, प्रासादके ऊपरले तल्लेपर गये जिस मूर्धाभिषिक्त क्षत्रिय राजाके सामने सहस्र अरों वाला ० दिव्य चक्र-रत्न प्रगट होता है; वह चक्रवर्ती (राजा) होता है। मैं चक्रवर्ती राजा होऊँगा। आनन्द ! तब वह महासुदस्सन राजा आसनसे उठ, चादरको एक कंधेपर कर बायें हाथमें सोनेकी झारी ले, दाहिने हाथसें चक्र-रत्नका अभिषेक करने लगा—'हे चक्र-रत्न ! आपका स्वागत हो, आपकी जय हो !' आनन्द ! तब वह चक्र-रत्न पूर्व दिशाकी ओर चला। राजा महासुदस्सनके पास चतुरङ्गिनी सेना थी। आनन्द ! जिस प्रदेशमें चक्र-रत्न ठहरता, वहीं राजा महासुदस्सन अपनी चतुरङ्गिनी सेनाके साथ पळाव डालता। आनन्द ! जो पूर्व दिशाके राजा थे वे राजा महासुदस्सनके पास आकर कहने लगे—'महाराज ! आपका स्वागत हो, (हम लोग सभी) आपके (आधीन) हैं। महाराज ! आप आज्ञा दीजिये'! राजा महासुदस्सन ने यह कहा—'जीव नहीं मारना चाहिये, चोरी नहीं करनी चाहिये, काम (=भोग) में पळकर दुराचार नहीं करना चाहिये, मिथ्या-भाषण नहीं करना चाहिये, शराब आदि नशीली चीज़ें नहीं पीना चाहिये। उचित भोग करना चाहिये।' आनन्द ! (इस प्रकार) जो पूर्व दिशाके राजा थे वे राजा महासुदस्सनके **अनुयुक्तक** (=मांडलिक) हुये।

"आनन्द ! तब वह चक्र-रत्न पूर्वके समुद्रमें डुबकी लगा, निकल दक्षिण दिशामें ठहरा। ० दक्षिण दिशावाले समुद्रमें ०। ० पश्चिम दिशामें ०। ० उत्तर दिशामें ०। राजा महासुदस्सन के पास चतुरङ्गिनी सेना थी। आनन्द ! जिस प्रदेशमें चक्र-रत्न ठहरता वहीं राजा ० पळाव डालता था। आनन्द ! जो उत्तर दिशाके राजा थे वे राजा महासुदस्सनके पास आकर ०। ० अनुयुक्तक हुये।

"आनन्द ! तब वह चक्र-रत्न समुद्र-पर्यन्त पृथ्वीको जीत कुशावती राजधानी लौट कर राजा महासुदस्सनके अन्तःपुरके द्वारके पास न्याय करनेके आँगनमें कीलमें ठोंकासा ठहर गया। उससे राजा महासुदस्सनका अन्तःपुर बळा शोभायमान होने लगा। इस प्रकार आनन्द ! राजा महासुदस्सनको चक्र-रत्न प्रादुर्भूत हुआ।

(२) "आनन्द ! फिर राजाको बिलकुल उजला, चौपहल, ऋद्धियुक्त=अन्तरिक्षमें भी गमन करनेवाला **उपोसथ** हस्ति-राज नामक हस्ति-रत्न प्रादुर्भूत हुआ। उसे देख राजा ० का चित्त बळा प्रसन्न हुआ। यदि हाथी अच्छी तरह सिखाया रहे तो उसकी सवारी बळी अच्छी होती है। आनन्द ! तब वह हस्ति-रत्न, उत्तम जातिका हाथी जैसे बहुत दिनोंसे सिखाया गया हो, वैसा शिक्षित था। आनन्द ! तब राजा महासुदस्सनने उस हस्ति-रत्नकी परीक्षा करनेके विचारसे पूर्वाह्ण (प्रातः) समय उसपर चढ़कर समुद्र-पर्यन्त पृथ्वीका चक्कर लगाके कुशावती राजधानीमें लौटकर प्रातराश किया। आनन्द ! राजा ० को इस प्रकारका हस्ति-रत्न प्रादुर्भूत हुआ।

(३) "और फिर आनन्द राजा महासुदस्सनको बिलकुल उजला, काले शिर और मुञ्जके ऐसे केशोंवाला, ऋद्धि-युक्त, आकाशमें गमन करनेवाला **बलाहक** अश्वराज नामक अश्वरत्न प्रकट हुआ। उसे देख ० प्रसन्न हुआ। यदि अश्व अच्छी तरह सिखाया ० ० प्रातराश किया। आनन्द ! राजा ० अश्वरत्न ०।

(४) "और फिर आनन्द ! ० मणि-रत्न प्रादुर्भूत हुआ। वह शुभ्र, अच्छी जातिका, आठ पहलुओं वाला, अच्छा खरादा, स्वच्छ, विप्रसन्न (और) सर्वाकार सम्पन्न वैदूर्यमणि था। आनन्द ! उस मणि-रत्नकी आभा चारों ओर एक योजन तक फैलती थी। आनन्द ! राजाने ० उस मणि-रत्न की परीक्षा करनेके विचारसे चतुरंगिनी सेनाको सजाकर उस मणिको झंडेके ऊपर बाँध रातकी काली अंधियारीमें प्रस्थान किया। आनन्द ! जो चारों ओर गाँव थे वहाँ के लोग उसके प्रकाशसे 'दिन होगया' समझ अपने अपने कामोंमें लगने लगे। आनन्द ! राजा ० मणि-रत्न ०।

(५) "और फिर आनन्द ! ०अभिरूप, दर्शनीय, चित्तको प्रसन्न करनेवाली, परमसौन्दर्य-सम्पन्न, न अधिक लम्बी—न अधिक नाटी, न बहुत दुबली—न बहुत मोटी, न बहुत काली—न बहुत उजली, मनुष्योंके वर्णसे बढ़कर और देवोंके वर्णसे कम (की) स्त्रीरत्न ०। आनन्द ! उस स्त्री-रत्नका ऐसा कायसंस्पर्श था, जैसे मानों रूईका फाहा या कपासका फाहा। आनन्द ! उस ० का गात्र शीत-कालमें उष्ण और ऊष्ण-कालमें शीतल रहता था। आनन्द ! उस ०के शरीरसे चन्दनकी (और) मुँहसे कमल की सुगन्ध निकलती थी। आनन्द ! वह स्त्री-रत्न राजा ० से पहले ही उठ जाती थी और पीछे सोती थी। आज्ञा सुननेके लिये सदा तैयार रहती थी। मनके अनुकूल आचरण करनेवाली, और प्रिय बोलने वाली थी। आनन्द ! वह० राजा० को मनसे भी नहीं छोळती थी (दूसरे पुरुषके प्रति मनसे भी राग नहीं करती थी), शरीरसे तो कहाँ तक ? आनन्द ० स्त्री-रत्न०।

(६) "और फिर आनन्द ! ० गृहपति (=वैश्य)-रत्न ०। उसके अच्छे कर्मोंके फलसे उसे दिव्य चक्षु उत्पन्न हुआ। वह उससे स्वामी या बिना स्वामी वाले खजानों (=निधियों) को देख लेता था। उसने राजा ० के पास जाकर यह कहा—देव ! आप कोई चिन्ता न करें, मैं आपका धनका कारबार करूँगा। आनन्द ! राजा ० ने इस गृहपतिकी परीक्षा करनेके विचारसे नावपर चढ़कर गङ्गानदीकी बीच धारामें जा उस गृहपति-रत्नसे यह कहा—"गृहपति ! मुझे सोने और चाँदी की आवश्यकता है'। 'तो महाराज ! नावको एक किनारे पर ले चलें।' 'गृहपति ! यहीं पर मुझे सोने और चाँदीकी आवश्यकता है।' आनन्द ! तब वह गृहपति-रत्न दोनों हाथोंसे जलको छू सोने चाँदी भरे घळे निकाल राजा ० से बोला—'महाराज, क्या यह पर्याप्त है ? क्या इतने से

काम हो जायगा? क्या इतनेसे महाराज संतुष्ट हैं?' राजा ० ने कहा—'गृहपति! यह पर्य्याप्त ०। आनन्द! ० गृहपति-रत्न ०।

(७) "आनन्द! ० पण्डित, व्यक्त, मेधावी, और स्वीकरणीय (चीज़ों) को स्वीकार, तथा त्याज्य (चीज़ों) के त्यागमें समर्थ परिणायक (=कारबारी) रत्न प्रकट हुआ। उसने राजा ० के पास जाकर यह कहा—देव! आप चिन्ता न करें, मैं अनुशासन करूँगा।' आनन्द! ० परिणायक-रत्न ०। आनन्द! राजा ० इन सात रत्नोंसे युक्त था।

३—चार ऋद्धियाँ

"और फिर आनन्द! राजा० चार ऋद्धियोंसे युक्त था। किन चार ऋद्धियोंसे? (१) आनन्द! राजा० दूसरे मनुष्योंसे बहुत अभिरूप=दर्शनीय, प्रिय, परम-सौन्दर्य-सम्पन्न था। आनन्द! राजा० इसी पृथ्वीमें ऋद्धिसे सम्पन्न था। (२) और आनन्द! राजा० दीर्घायु था। दूसरे मनुष्योंसे बहुत बढ़ चढ़कर चिरायु था। आनन्द! राजा० इस दूसरी ऋद्धिसे युक्त था। (३) और आनन्द! राजा० नीरोग चंगा था, औरोंकी भाँति न अति-शीत, और न अति-उष्ण समान प्रकृतिका था। आनन्द! राजा० इस तीसरी ऋद्धिसे युक्त था। (४) और आनन्द! राजा ब्राह्मण और गहस्थोंका प्रिय=मनाप था। आनन्द! जैसे पिता पुत्रोंका प्रिय=मनाप (होता है), उसी तरह राजा० ब्राह्मण और गृहस्थोंका ०। आनन्द! वे ब्राह्मण और गृहस्थ भी राजा० के प्रिय मनाप थे। आनन्द! जैसे पुत्र पिताके०। आनन्द! एक समय राजा ० चतुरंगिणी सेनाके साथ उद्यान-भमिको गया। आनन्द! उस समय ब्राह्मण और गृहस्थोंने जाकर राजासे यह कहा—'देव! आप निर्भय जावें, हम लोग आपकी सदा रक्षा करगे'। आनन्द! राजा०ने भी सारथीसे कहा—'सारथि! बिना किसी भयके रथको हाँको, क्योंकि ब्राह्मण० मेरी सदा रक्षा करेंगे'। आनन्द! राजा० इस चौथी ऋद्धि०।

"आनन्द! तब राजा०के मनमें यह हुआ—'इन तालोंके बीच सौ सौ धनुष (=४०० हाथ) पर पुष्करणी खुदवाऊँ'। आनन्द! राजा०ने उन तालोंके बीच सौ सौ धनुषपर पुष्करणियाँ खुदवाईं। आनन्द! वह पुष्करणियाँ चार रंगोंकी ईंटोंकी बनी थीं; एककी ईंटें सोनकी, एककी चाँदीकी, एककी वेदूर्यकी, एककी स्फटिककी। आनन्द! उन पुष्करणियोंमें चार (दिशाओंमें) चार रंगोंकी चार सीढ़ियाँ थीं—एक की सीढ़ी सोनेकीं, एककी चाँदीकी, एककी वैदूर्यकी, एककी स्फटिककी। सोनेकी सीढ़ीमें सोनेका खंभा (और) चाँदीकी काँटियाँ तथा छत थी। चाँदीकी सीढ़ीमें चाँदीका खम्भा और सोनेकी काँटियाँ और छत थी। वैदूर्यकी ० स्फटिककी काँटियाँ ०। स्फटिककी० वैदूर्यकी काँटियाँ०। आनन्द! वे पुष्करणियाँ दो वेदिकाओंसे घिरी थीं, एक वेदिका सोनेकी, दूसरी चाँदीकी। सोनेकी वेदिकामें सोनेके खंभे, चाँदीकी काँटियाँ, और छत थी। चाँदीकी वेदिका ०।—आनन्द! तब, राजा०के मनमें यह हुआ—'इन पुष्करणियोंमें सभी डालियोंमें फूल-लगे सभीको चकित करनेवाले उत्पल, पद्म, कुमुद, पुण्डरीकके फूल रोपूँ।' आनन्द! राजा०ने उन पुष्करणियोंमें उस प्रकारके उत्पल० फूल रोपे। आनन्द! तब राजा०के मनमें ऐसा हुआ—'इन पुष्करणियोंके तीर पर नहलानेवाले पुरुष नियुक्त होने चाहिये, जो आये हुये लोगोंको नहलाया करें।' आनन्द! राजा०ने० नियुक्त किये। आनन्द! तब राजा०के मनमें ऐसा हुआ—'इन पुष्करणियोंके तीरपर इस प्रकारके दान स्थापित होने चाहिये, जिससेकि अन्न चाहनेवालेको अन्न, पेय (=पान) चाहनेवालोंको पेय, वस्त्र०, सवारी०, शय्या०, स्त्री०, सोना०। आनन्द! राजा०ने० इस प्रकारके दान स्थापित किये०।

'आनन्द! तब ब्राह्मणों और गृहस्थोंने बहुत धनले राजा०के पास जाकर यह कहा—'देव! यह बहुतसा धन (हम लोग) आपहीकी सेवामें लाये हैं, इसे आप स्वीकार करें।' 'बस रहने दो; मैंने

भी बहुत धन धर्मसे और बलसे उपार्जित किया है, वह तो है ही। (यदि आप लोग चाहें तो) यहाँहीसे और धन ले जावें।' राजाके स्वीकार न करनेपर उन लोगोंने एक ओर जाकर विचारा—'यह हम लोगोंको उचित नहीं है कि इस धनको फिर अपने घर लौटाकर ले चलें, अतः (चलो) हम लोग राजा०के लिये प्रासाद तैयार करें।' उन लोगोंने राजाके पास जाकर यह कहा—'देव! (हम लोग) आपके लिये एक प्रासाद तैयार करवायेंगे।' आनन्द! राजा०ने मौनसे स्वीकार किया।

४—धर्मप्रासाद (महल)

"आनन्द! तब देवेन्द्र **शक्र**ने राजा०के चित्तको अपने चित्तसे जानकर देवपुत्र **विश्वकर्मा**को संबोधित किया—'जाओ, भद्र विश्वकर्मा! राजाके लिये **धर्म** नामक प्रासाद तैयार करो। आनन्द! देवपुत्र विश्वकर्मा भी 'अच्छा, भदन्त!' कह, शक्र देवेन्द्रको उत्तर दे, **जैसे** बलवान् पुरुष० वैसे त्रायस्त्रिंश देवलोकमें अन्तर्धान हो राजा०के सामने प्रादुर्भूत हुआ। आनन्द! तब देवपुत्र०ने राजा०से यह कहा—'देव! **धर्म** नामक प्रासाद आपके लिये तैयार करूँगा।' आनन्द! राजा०ने मौनसे स्वीकार किया। आनन्द! देवपुत्र विश्वकर्मा०ने० प्रासाद तैयार किया।

"आनन्द! धर्म-प्रासाद पूरबसे पश्चिम लम्बाईमें एक योजन, और उत्तरसे दक्षिण चौळाईमें आधा योजन था। आनन्द! धर्म-प्रासादकी इमारत ऊँचाईमें तीन पोरसाकी थी। वह चार रंगोंवाली ईंटोंसे चिनी गई थी, एक ईंट सोनेकी० एक स्फटिककी। आनन्द! धर्म-प्रासादमें चार रंगोंके चौरासी हज़ार खम्भे लगे थे—एक खंभा सोनेका० एक स्फटिकका।—आनन्द! धर्म-प्रासादमें चार रंगोंके पट्टे लगे थे—एक पट्टा सोनेका०। आनन्द! धर्म-प्रासादमें चार रंगोंकी चौबीस सीढ़ियाँ थीं—एक सीढ़ी सोनेकी०। स्फटिकवाली सीढ़ीमें स्फटिकके खम्भे लगे थे (और) वैदूर्यकी काँटियाँ और छत। आनन्द! ० चार रंगोंके चौरासी हजार कोठे थे। एक कोठा सोनेका०। सोनेके कोठेमें चाँदीके पलंग बिछे थे। चाँदीके०में सोनेके पलंग०। वैदूर्यके कोठेमें (हाथी)के दाँतके पलंग बिछे थे। स्फटिकके कोठे-में मसारगल्लके पलंग बिछे थे। सोनेके कोठेके द्वारमें चाँदीके ताल (वृक्ष) बने हुये थे, उस (ताल वृक्ष) का तना चाँदीका, पत्ते और फल सोनेके। चाँदीके कोठेके द्वारमें सोनेका ताल०। वैदूर्यके कोठेके द्वारमें स्फटिकके ताल० वैदूर्यके पत्ते०। स्फटिकके कोठेके द्वारमें वैदूर्यका ताल०।

"आनन्द! तब राजा०के मनमें यह हुआ—'मैं इस बळे कोठेके द्वार पर दिनमें विहारके लिये बिल्कुल सोनेका एक ताल-वन बनवाऊँ। आनन्द! राजा० (ने)० बनवाया। आनन्द! **धम-प्रासदा** दो वेदिकाओंसे घिरा था, एक वेदिका सोनेकी, ऐंक चाँदीकी। सोनेकी वेदिकामें सोनेके खम्भे०। आनन्द! धर्म-प्रासाद दो घुँघरू-के-जालोंसे घिरा था, एक जाल सोनेका, एक चाँदीका। सोनेके जालमें चाँदीकी घंटियाँ थीं, (और) चाँदीके जालमें सोनेकी०। आनन्द! हवाके झोंकेसे हिलनेपर उन घंटियों-से सुन्दर, रागोत्पादक० शब्द निकलता था। आनन्द! उस समय जो कुशावती राजधानीमें गुण्डे, शराबी और जुआरी रहते थे, वे उस० शब्दसे (मस्त हो) नाचते खेलते थे। आनन्द! (मारे चमकके) उस प्रासाद पर आँख नहीं ठहरती थी, आँखोंको वह मानों हर लेता था। आनन्द! **जैसे** वर्षाके अन्तिम मासमें, शरद् ऋतुके प्रारम्भ होनेपर, मेघरहित आकाशके ऊपर चढ़ते सूर्यपर आँखें नहीं ठहरतीं वह मानों आँखोंको हर लेता है, उसी तरह आनन्द! वह धर्म्म-प्रासाद०।

"आनन्द! तब राजा०के मनमें हुआ—'धर्म-प्रासादके सामने **धर्म** नामक पुष्करणी बनवाऊँ।' ० बनवाया। आनन्द! धर्म पुष्करणी पूरबसे पश्चिम लम्बाईमें एक योजन, उत्तरसे दक्षिण चौळाईमें आधा योजन थी। आनन्द! ० चार रंगके ईंटोंसे०, एक ईंट सोनेकी०। ० चार रंगकी चौबीस सीढ़ियाँ०। सोनेकी सीढ़ीमें सोनेके खंभे०। ० दो वेदिकाओंसे घिरी थी, ० सात ताल-पंक्तियोंसे घिरी

थी, एक ताल-पंक्ति सोनेकी०; सोनेके तालमें सोनेका तना०। ० उन ताल पंक्तियोंसे० शब्द निकलता था, **जैसे** पाँच अंगोंवाला बाजा० नाचते और खेलते थे। आनन्द! धर्म-प्रासादके और धर्म-पुष्करणीके तैयार हो जानेपर राजाने० उस समय जो अच्छे अच्छे श्रमण और ब्राह्मण थे सभीको संतुष्टकर धर्म-प्रासादमें प्रवेश किया।

(इति) प्रथम भाणवार ॥१॥

५—राजा ध्यानमें रत

"आनन्द! तब राजा०के मनमें ऐसा हुआ—'यह मेरे किस कर्मका फल है, किस कर्मका विपाक है, जिससे मैं इस समय इस प्रकार समृद्ध=महानुभाव हुआ हूँ?' आनन्द। उसके मनमें ० ऐसा आया—'यह मेरे दान, दम, संयम—इन तीन कर्मोंका फल है, तीन कर्मोंका विपाक है, जिससे मैं इस समय०। आनन्द! तब राजा० जहाँ बळा कोठा था वहाँ गया, जाकर बळे कोठेके द्वार पर खळा हो यह उदान (=प्रीति वाक्य) बोला—'भोगोंका ख्याल(=काम-वितर्क) रोको, द्रोह (=व्या-पाद)-वितर्क रोको, विहिंसा-वितर्क रोको; काम-वितर्कसे बस, व्यापाद वितर्कसे बस, हिंसा वितर्कसे बस करो।'

"आनन्द! तब राजा० बळे कोठेमें प्रवेशकर सोनेके पलंगपर बैठ, एकान्तमें भोग-संबंधी बुराइयोंसे विरत हो वितर्क और विचार-युक्त विवेकसे उत्पन्न प्रीति सुखवाले प्रथम ध्यानको प्राप्त हो गया। ०[1]द्वितीय०,० तृतीय० ० चतुर्थ ध्यानको०। आनन्द! तब राजा० बळे कोठेसे निकल सोनेके कोठेमें प्रवेशकर चाँदीके पलंगपर बैठ **मैत्री**-युक्त चित्तसे एक दिशाको व्याप्तकर विहरने लगा। वैसे ही दूसरी, तीसरी और चौथी; और, ऊपर, नीचे, आळे-बेळे, सभी ओर, संसारमें सभी जगह मैत्री-युक्त चित्तसे, तथा अत्यधिक वैररहित और द्रोह-रहित श्रेष्ठ चित्तसे व्याप्तकर विहरने लगा। **करुणा**युक्त०, **मुदिता**युक्त० और **उपेक्षा**-युक्त चित्तसे एक दिशाको व्याप्तकर विहरने लगा, वैसे ही दूसरी०।

६—राजाका ऐश्वर्य

"आनन्द! राजा०को **कुशावती** राजधानी आदि चौरासी हज़ार नगर थे, धर्म-प्रासाद आदि चौरासी हज़ार प्रासाद थे, महाव्यूहकूटागार (नामक) आदि०। सोने, चाँदी, (हाथी-) दाँत, हीरेके पायोंवाले, लम्बे बालोंवाले बिछौने बिछे, सफेद ऊनी बिछौनेवाले, फूल बूटे कटे बिछौनेवाले, कादलि मृग-चर्मके बिछौनेवाले, मसहरी लगे तथा उनकी दोनों ओर लाल तकिये रक्खे चौरासी हज़ार पलंग थे; उसके पास सोनेके अलंकारोंसे अलंकृत सोनेकी ध्वजाओंसे युक्त, सोनेकी जालीसे आच्छादित उपोसथ नागराज आदि चौरासी हज़ार हाथी थे। ० बलाहक-अश्व राज आदि चौरासी हज़ार घोळे थे। सिंह-चर्म, व्याघ्र-चर्म, द्वीपि(=चीते) चर्म, तथा दुशाले बिछे, सोनेके अलंकारसे सजे, सोनेकी ध्वजाओंसे युक्त, सोनेके जालसे आच्छादित वैजयन्तरथ आदि चौरासी हज़ार रथ थे। मणि-रत्न आदि चौरासी हज़ार रत्न थे। **सुभद्रा**देवी आदि चौरासी हज़ार स्त्रियाँ थीं। गृहपति रत्न आदि चौरासी हजार गृहपति थे। परिणायक-रत्न आदि चौरासी हज़ार०। काँसेकी घण्टी पहने, चादर ओढ़े, दूध देनेवाली चौरासी हज़ार गौवें थीं। (उसके पास) क्षौम (=अलसीके), कपास, कौषेय तथा ऊनके सूक्ष्म चौरासी हज़ार करोळ वस्त्र थे। चौरासी हज़ार थालियाँ थीं, जिनमें शाम-सुबह भोजन परोसा जाता था।

---

[1] देखो पृष्ठ २९-३२

"आनन्द ! उस समय राजा०के पास चौरासी हज़ार हाथी थे, जो शाम-सुबह (राजाकी) सेवामें आते थे। आनन्द ! तब राजा०के मनमें यह हुआ—'ये मेरे चौरासी हज़ार हाथी हैं, जो शाम-सुबह मेरी सेवामें आते हैं। सो अबसे ये सौ-सौ वर्ष बीतनेके बाद बयालिस-बयालिस हज़ार हाथी अपनी नौकरी बजानेके लिये आयें।' आनन्द ! तब राजा०ने परिणायक-रत्नको संबोधित किया—'भद्र परिणायक-रत्न ! ये चौरासी हज़ार हाथी प्रतिदिन शाम-सुबह सेवाके लिये आते हैं, सो० ! सौ-सौ वर्ष० आवें।' आनन्द ! 'हाँ देव' कहकर परिणायक-रत्नने राजा०को उत्तर दिया। आनन्द ! तब उसके बादसे सौ-सौ वर्षके बाद० आने लगे।

७—सुभद्रादेवीका दर्शनार्थ आना

"आनन्द ! तब सुभद्रा देवीको बहुत वर्षों, बहुत सहस्र वर्षोंके बीतनेके बाद, यह हुआ—'राजा०-को देखे बहुत दिन हो गये, अतः मैं राजाको देखनेके लिये चलूँ।' आनन्द ! तब सुभद्रा देवीने और स्त्रियों-को संबोधित किया—'आप लोग शिरसे नहा, पीले कपळे-पहन लें; राजा०को देखे बहुत दिन हो गये, राजा०को देखनेके लिये हम लोग चलेंगी।' आनन्द ! 'अच्छा, आर्ये !' कहकर० उत्तर दे, शिरसे नहा० जहाँ सुभद्रा देवी थी वहाँ गईं। आनन्द ! तब सुभद्रा देवीने परिणायक-रत्नको संबोधित किया—'भद्र परिणायक-रत्न ! चतुरंगिणी सेना०को सजाओ०, राजा०के दर्शनके लिये जाऊँगी।' आनन्द ! 'अच्छा, देवि' कह परिणायक-रत्न० (ने) उत्तर दे, चतुरंगिणी सेनाको तैयार करा सुभद्रा देवीको सूचित किया—'देवि ! चतुरंगिणी सेना तैयार है, आप जैसा समझें।'

"तब आनन्द ! सुभद्रा देवी ० सेनाके साथ, सभी स्त्रियोंको ले, जहाँ धर्म-प्रासाद था वहाँ गई। जाकर धर्म-प्रासादके ऊपर चढ़ जहाँ **महाव्यूह** (नामक) कूटागार था वहाँ गई। जाकर महाव्यूह कूटागारके दरवाजेको पकळकर खळी हो गई। आनन्द ! तब राजाने (उस शब्दको सुन-कर)—'यह किसी बळी भीळका शब्द क्या है?' (सोच) महाव्यूह कूटागारसे निकलकर **सुभद्रा देवी**को दरवाज़ा पकळ खळी देखा। देखकर० देवीसे कहा—'देवि ! यहीं खळी रहो, भीतर मत आओ।' आनन्द ! तब राजा०ने किसी दूसरे पुरुषको आज्ञा दी—'सुनो, महाव्यूह कूटागारसे सोनेके पलंगको निकाल बिलकुल सोनेवाले तालवनमें बिछाओ।' 'अच्छा, देव!' कह०। आनन्द ! तब राजा०ने दहिनी करवट हो पैरके ऊपर पैर रखकर, स्मृति और संप्रजन्यके साथ सिंह-शय्या लगाई।

८—राजाकी मृत्यु

"आनन्द ! तब सुभद्रादेवीके मनमें यह हुआ—'राजाकी इन्द्रियाँ (=शरीर) बिलकुल प्रसन्न मालूम होती हैं, इनकी छवि (=चर्म)का वर्ण परिशुद्ध है, निर्मल है; कहीं राजाकी मृत्यु तो होने-वाली नहीं है।' ऐसा विचारकर राजा०से कहा—'देव ! **कुशावती** राजधानी आदि आपके ये चौरासी हजार नगर हैं, देव ! इनसे प्रसन्न होवें और जीवित रहनेकी कामना करें। देव ! धर्म-प्रासाद आदि०। महाव्यूह कूटागार आदि०। देव ! आपकी ये चौरासी हज़ार थालियाँ हैं, जिनमें शाम सवेरे भोजन परोसा जाता है—इनसे प्रसन्न होवें, और जीवित रहनेकी कामना करें।'

"आनन्द ! ऐसा कहनेपर राजा० ने० देवीसे यह कहा—'बहुत दिनों तक देवि ! आपने मेरे साथ इष्ट=कान्त, प्रिय=मनाप आचरण किये हैं; और अब आप अन्तिम समयमें अनिष्ट, अ-कान्त, अ-प्रिय और अ-मनाप आचरण कर रही हैं'। 'देव ! मैं कैसे आचरण करूँ।' 'देवि ! आप इस तरह कहें—'देव ! सभी प्रियों=मनापोंसे नानाभाव (=वियोग)=विनाभाव=अन्यथाभाव होता है। देव ! आप किसी कामनाके साथ प्राण न त्यागें, कामना-युक्त मृत्यु दुःखपूर्ण होती है, कामनापूर्ण मृत्यु

निन्दनीय होती है। देव ! कुशावती राजधानी आदि आपके चौरासी हज़ार नगर हैं। देव ! उनमें **लिप्त न होवें, जीवित रहनेकी कामना मनमें न करें** ० थालियाँ हैं० उनमें लिप्त न होवें, जीवित रहनेकी कामना मनमें न करें।'

"आनन्द ! ऐसा कहनेपर सुभद्रा देवी रोने लगी, आँसू बहाने लगी। आँसू पोंछ ०। यह कहा—'देव ! सभी प्रियों=मनापोंसे नानाभाव, विनाभाव, अन्यथाभाव होता है। देव ! आप कामनायुक्त प्राण न त्यागें०० थालियाँ हैं० उनमें लिप्त न होवें, जीवित रहनेकी कामना न करें।'

"आनन्द ! तब कुछ ही देरके बाद राजा०की मृत्यु हो गई। आनन्द ! **जैसे** गृहपति या गृह-पति-पुत्रको अच्छे अच्छे भोजन कर लेनेके बाद भत्तसम्मद (=भोजनोपरान्त आलस) होता है, वैसेही राजा०को मरणके समय पीळा हुई। आनन्द ! राजा० मरकर अच्छी गतिको प्राप्त हो ब्रह्मलोक में उत्पन्न हुआ। आनन्द ! राजा महासुदर्शनने चौरासी हज़ार वर्षों तक बच्चोंके खेल खेले, चौरासी हज़ार वर्षों तक युवराज रहा, (चौरासी हज़ार वर्षों तक राज्य करता रहा), चौरासी० हज़ार वर्ष गृहस्थ होते (भी उसने) धर्म-प्रासादमें ब्रह्मचर्य्य व्रतका पालन किया। वह (मैत्री आदि) चारों ब्रह्म-विहारोंकी साधना करके शरीर छोळ मरनेके बाद ब्रह्मलोकमें उत्पन्न हुआ।

९—बुद्धही महासुदर्शन राजा

"आनन्द ! यदि तुम ऐसा समझो कि यह राजा महासुदर्शन० उस समय कोई दूसरा राजा रहा होगा, तो आनन्द ! तुम्हें ऐसा नहीं समझना चाहिये। मैं ही उस समय राजा महासुदस्सन था। मेरे ही वे **कुशावती** राजधानी आदि चौरासी हज़ार नगर थे० मेरी ही वे चौरासी हज़ार थालियाँ०।

"आनन्द ! उस समय चौरासी हज़ार नगरोंमें वही एक कुशावती नगर राजधानी थी जहाँ कि मैं रहता था। आनन्द ! उस समय० प्रासादोंमें वही एक धर्म-प्रासाद था जहाँ मैं रहता था०।

"आनन्द ! देखो, वे सभी सं स्का र (=कृत वस्तुयें) क्षीण हो गये, निरुद्ध हो गये, विपरिणत (=बदल) हो गये। आनन्द ! इसी तरह सभी संस्कार अ-नित्य हैं। आनन्द ! इसी तरह सभी संस्कार अ-ध्रुव हैं। आनन्द ! इसी तरह सभी संस्कार विश्वासके अ-योग्य हैं। आनन्द ! इसलिये संस्कारोंकी चाह व्यर्थ है, उनमें राग करना व्यर्थ है, उनमें आसक्त होना व्यर्थ है। आनन्द ! मैं जानता हूँ, इसी स्थानमें मेरी छै वार मृत्यु हो चुकी है—(पहले छै वार) चारों दिशाओंको जीतनेवाला, शान्त धार्मिक, धर्मराज और स्थिरता स्थापित करनेवाला, सातों रत्नोंसे युक्त चक्रवर्त्ती राजा होकर; यह सातवीं बार यहाँ मेरा शरीरपात हो रहा है। आनन्द ! मैं देवताओं सहित सारे लोकमें० कोई दूसरा स्थान नहीं देखता, जहाँ तथागत आठवीं बार भी शरीरको छोळेंगे।"

भगवान्ने यह कहा; यह कह सुगत शास्ताने यह भी कहा—

"सभी संस्कार (=कृत वस्तुयें) अनित्य; उत्पत्ति और क्षय स्वभाववाले हैं,
होकर मिट जानेवाले हैं; उनका शान्त हो जाना ही सुखमय है ॥१॥"

१८—जनवसभ-सुत्त (२ । ५)

१—सभी देशोंके मृत भक्तोंकी गतिका प्रकाश। २—मगधके भक्तोंको गतिका प्रकाश क्यों नहीं। ३—जनवसभ (बिंबिसार) देवताका संलाप। ४—शक्रद्वारा बुद्धधर्मकी प्रशंसा। ५—सनत्कुमार ब्रह्मा द्वारा बुद्ध धर्मकी प्रशंसा। ६—मगधके भक्तोंकी सुगति।

ऐसा मैंने सुना—एक समय भगवान् नादिकामें गिंजकावसथमें विहार कर रहे थे।

१—सभी देशोंके मृत भक्तोंकी गतिका प्रकाश

उस समय भगवान् चारों ओरके प्रदेशोंमें सभी ओर (घूमकर बुद्ध, धर्म और संघकी) सेवा करनेवाले अतीत कालमें मरे लोगोंकी, गति (=परलोक), का व्याकरण[1] (=अदृष्ट कथन) कर रहे थे। **काशी**[2] और **कोसलमें**, **वज्जी** और **मल्लमें**, **चेति** और **वत्समें**, **कुरु** और **पञ्चालमें**, तथा **मत्स्य** और **सूरसेनमें**—अमुक वहाँ उत्पन्न हुआ है, और अमुक वहाँ उत्पन्न हुआ है। पचाससे कुछ अधिक नादिका ग्रामके रहनेवाले परिचारक (=बुद्ध, धर्म, और संघकी सेवा करनेवाले भक्त) अतीत कालमें मर कर अवरभागीय (=पाँच कामलोकके) बन्धनों (=संयोजनों)के क्षय हो जानेके कारण औपपातिक (=देवता) हो उस लोकसे फिर कभी नहीं लौटेंगे। नब्बेसे कुछ अधिक नादिका ग्रामके परिचारक अतीत कालमें मरकर तीन बन्धनों (=संयोजनों)के क्षय हो जानेके कारण राग, द्वेष, और मोहके तनु (=कमजोर, क्षीण) हो जानेके कारण **सकृदागामी** हो गये हैं—वे एक ही बार इस लोकमें आकर अपने सारे दुःखोंका अन्त करेंगे। पाँच सौसे कुछ अधिक नादिका ग्रामके परिचारक ० तीन बन्धनोंके क्षय हो जानेसे स्रोतआपन्न हो गये हैं, अब वे फिर गिर नहीं सकते हैं, उनकी सम्बोधि-प्राप्ति नियत है।" नादिकाके परिचारकोंने सुना—'भगवान् भिन्न भिन्न प्रदेशोंमें सभी ओर ० स्रोतआपन्न० सम्बोधि-प्राप्ति नियत है।' उससे प्रमुदित, प्रीति और सौमनस्य युक्त नादिका ग्रामके परिचारक भगवान्‌के व्याकरणको सुनकर बळे संतुष्ट हुये।

२—मगधके भक्तोंकी गतिका प्रकाश क्यों नहीं

आयुष्मान् आनन्दने सुना,—भगवान् भिन्न भिन्न प्रदेशोंमें०। उससे नादिका ग्रामके परिचारक ०बळे सन्तुष्ट हुये। तब आयुष्मान् आनन्दके मनमें यह हुआ—"ये **अंग मगधके** परिचारक भी अतीत कालमें मर चुके हैं। अतीत कालमें मरे हुये **अंग** और **मगधके** परिचारकोंसे मानों अंग और मगध शून्य

---

[1] मिलाओ महापरिनिब्बाण-सुत्त १६ (पृष्ठ १२६)

[2] इन देशोंके लिये देखो मानचित्र।

(खाली) है। वे भी तो बुद्धके ऊपर प्रसन्न थे, धर्मके ऊपर प्रसन्न थे, संघके ऊपर प्रसन्न थे और शीलोंको पूरा करनेवाले थे। अतीत कालमें मरे हुये उन लोगोंके विषयमें भगवान्ने कुछ नहीं कहा। उनके विषयमें भी कहना उचित है, इससे बहुतसे लोग श्रद्धालु (=प्रसन्न) होंगे, और सुगतिको प्राप्त होंगे। मगधराज **सेनिय बिम्बिसार** भी तो धार्मिक, धर्मराजा, ब्राह्मण और गृहस्थोंका, तथा नगर और देशका हित करनेवाला था। सभी लोग उसकी बळाई करते हैं—'वह इस प्रकारका धार्मिक धर्मराज था, जो लोगोंको सुखी कर स्वयं मृत्युको प्राप्त हुआ। उस धार्मिक धर्मराजाके राज्यमें हम लोग भी सुखपूर्वक विहार करते थे।' वह भी बुद्धमें प्रसन्न०। लोग यह भी कह रहे थे—'मरते दम तक मगधराज०ने भगवान्का यश (गुण-) कीर्तन करते ही मृत्युको प्राप्त किया'। भगवान्ने अतीत कालमें मरे हुये (उस राजाके) विषयमें कुछ नहीं कहा है। इसका कहना उचित होगा, बहुत लोग प्रसन्न०। भगवान्की बुद्धत्त्व (=सम्बोधि) प्राप्ति भी **मगध**हीमें हुई है। भगवान्की सम्बोधि-प्राप्ति मगधहीमें हुई, तो भी भगवान्ने अतीत काल० मगधके परिचारकोंके ज्ञान, गति, और पुण्यकी उत्पत्तिके विषयमें क्यों कुछ नहीं कहा ? भगवान्ने अतीत कालमें० नहीं कहा है, इसलिये मगधके परिचारक खिन्न-मन हैं। मगधके परिचारक खिन्न हो गये हैं, फिर भगवान् क्यों नहीं कहेंगे ?"

आयुष्मान् आनन्द मगधके परिचारकोंके विषयमें अकेले एकान्त-स्थानमें इस प्रकार विचारकर रातके ढल जानेपर उठकर जहाँ भगवान् थे वहाँ गये।

जाकर भगवान्को० अभिवादनकर बैठ गये।० कहा—

"भन्ते ! मैंने सुना है कि भगवान् भिन्न भिन्न प्रदेशोंमें (विचरते)०। उससे नादिकाके परिचारक प्रसन्न०। ये मगधके परिचारक भी अतीत कालमें० मगधके परिचारक खिन्न हो गये हैं, फिर भगवान् क्यों नहीं कहेंगे।" आयुष्मान् आनन्द मगधके परिचारकोंके विषयमें भगवान्के सम्मुख यह कहकर, आसनसे उठ, भगवान्की वन्दना और प्रदक्षिणा कर चले गये।

तब भगवान् आयुष्मान् आनन्दके जानेके बाद पूर्वाह्ण समय पहनकर, पात्र और चीवर ले नादिका ग्राममें भिक्षाटनके लिये प्रविष्ट हुये। नादिका ग्राममें भिक्षाटनके बाद लौटकर, पैर धो भोजन कर चुकनेपर **गिंजकाराम**में प्रवेशकर बिछे आसनपर बैठे, और उन्होंने मगधके परिचारकोंके विषयमें जाननेके लिये अपने चित्तको सभी ओरसे खींचा; जिसमें कि उनकी परलोककी गति को जानें, कि परलोकमें वह किस गतिको प्राप्त हुये हैं। भगवान्ने मगधके परिचारकों द्वारा प्राप्त लोकको देखा। तब भगवान् सायंकाल ध्यानसे उठकर गिंजकावसथसे निकल, विहारके पीछे छायामें बिछे आसनपर बैठ गये।

तब आयुष्मान् आनन्द गये।० बैठ गये।० यह कहा—"भन्ते ! भगवान् बळे शान्त-दर्शन मालूम हो रहे हैं, इन्द्रियोंकी प्रसन्नतासे भगवान्का मुख बहुत ही सुन्दर मालूम हो रहा है। (ज्ञात होता है कि) भगवान्ने आज शान्तिपूर्वक विहार किया है।"

३—जनवसभ (बिंबिसार) देवतासे संलाप

"आनन्द ! मगधके परिचारकोंके विषयमें मेरे सामने कहकर जब तुम आसनसे उठ कर चले गये, तब मैं नादिका ग्राममें० (भिक्षाकर) बिछे आसनपर बैठ गया—०मैंने देखा०। आनन्द ! तब किसी अदृश्य यक्ष (=देवता)ने शब्द सुनाया—'भगवान् ! मैं जनवसभ हूँ, सुगत ! मैं **जनवसभ** हूँ'। क्या आनन्द ! तुमने पहले यह नाम कभी सुना है ? यह जनवसभ कौन है कभी सुना है ?"

"भन्ते ! इस प्रकारके नामको हमने पहले कभी नहीं सुना। यह जनवसभ कौन है यह नहीं सुना है। भन्ते ! किंतु 'जनवसभ' नामको सुनकर मुझे रोमाञ्च सा हो आया। भन्ते ! तब मेरे मनमें यह आया—जिसका 'जनवसभ' जैसा अच्छा नाम है, वह कोई मामूली यक्ष नहीं होगा।"

"आनन्द ! शब्द सुना जनवसभ यक्षने अत्यन्त कान्तिमय बन मेरे सामने प्रकट हो, दूसरी बार भी शब्द सुनाया—'भगवान् ! मैं **बिम्बिसार** हूँ, सुगत ! मैं बिम्बिसार हूँ। भन्ते ! यह सातवीं बार **वैश्रवण** महाराजका मित्र होकर उत्पन्न हुआ हूँ, सो मैं यहाँसे च्युत होकर मनुष्य-राजा हो सकता हूँ।

'इससे सात (और) उससे भी सात चौदह जन्मोंको,
जिन में मैंने पहले बास किया है, मैं उन्हें अच्छी तरह स्मरण करता हूँ ॥ १ ॥

'भन्ते ! मैं जानता हूँ कि बहुत वर्ष पहले भी मैंने चार प्रकारके अपायों (=नरकों) में कभी नहीं जन्म लिया। सकृदागामी होनेके लिये मुझे उत्साह भी है।'

'आश्चर्य ! आयुष्मान् जनवसभ यक्षको अद्भुत'०। और बोला—मैंने पहिले वास०। सकृदागामी होनेके०। यह आयुष्मान् जनवसभ यक्ष कैसे इस महान् विशेष लाभ=(मार्गफल प्राप्ति)को पाये ?'

'भगवान् ! आपके धर्म (=शासन)को छोळ और किसी दूसरी तरहसे नहीं। सुगत ! आपके०। भन्ते ! जबसे मैं भगवान्का सुभक्त बना तबसे चिरकाल तक मैंने चार अपायोंमें नहीं जन्म लिया। सकृदागामी होने०। भन्ते ! अभी मुझे **वैश्रवण** (=कुवेर) महाराजने **विरूढक** महाराजके पास देवताओंके किसी कामसे भेजा था। रास्तेमें जाते हुये भगवान्को **गिंजकावसथ**में प्रवेशकर मगधके परिचारकोंके विषयमें० विचार करते हुये (मैंने) देखा। भन्ते ! आश्चर्य नहीं। कुवेर महाराजको उस सभामें बोलते हुये सामनेसे सुना, सामनेसे ग्रहण किया, कि क्या उनकी गति हुई है, क्या उनके परलोक हैं। भन्ते ! तब मेरे मनमें यह आया—(चलो) भगवान्का दर्शन भी करूँगा; भगवान्से यह कहूँगा भी। भन्ते ! भगवान्के दर्शनार्थ मेरे आनेके यही दो कारण हैं।

४—शक्र द्वारा बुद्धधर्मकी प्रशंसा

'भन्ते ! पहले बीते उपोसथको बैसाख पूर्णिमाकी रातमें सभी त्रायस्त्रिंश देवता **सुधर्मा** सभामें इकट्ठे होकर बैठे थे। चारों ओर बळी भारी देवताओंकी सभा लगी थी। चारों दिशाके चारों महाराज बैठे थे। पूर्व दिशाके धतरट्ठ (=धृतराष्ट्र) महाराज देवोंको सामने करके पश्चिम मुख किये बैठे थे। दक्षिण दिशाके विरुळ्हक (=**विरूढक**) महाराज देवोंको० उत्तर०। पश्चिम०के विरूपक्ख (=**विरूपाक्ष**) पूर्व०। उत्तरके० **वैश्रवण** (कुवेर) दक्षिण०। भन्ते ! जब सभी त्रायस्त्रिंश देवता **सुधर्मा** सभामें० ०चारों महाराज बैठे थे। उन लोगोंका आसन इस प्रकार था। उसके पीछे हम लोगोंका आसन था। भन्ते ! वे देव जो भगवान्के धर्म (=शासन)में ब्रह्मचर्य व्रतका पालन करके हालमें त्रायस्त्रिंश लोकमें उत्पन्न हुए हैं, वे दूसरे देवताओंसे कान्ति तथा यशमें बढ़े चढ़े हें। भन्ते ! उससे वे त्रायस्त्रिंश देवता सन्तुष्ट हैं, प्रमुदित, प्रीति=सौमनस्यसे युक्त हैं—'देव-लोक भर रहा है; अ-सुर-लोक क्षीण हो रहा है।

'भन्ते ! तब **शक्र** देवेन्द्रने त्रायस्त्रिंश देवताओंको प्रसन्न देखकर इन गाथाओंसे अनुमोदन किया।—

'**इन्द्र**के साथ सभी (हम) त्रायस्त्रिंश देवता;
तथागत और धर्मकी सुधर्मताको नमस्कार करते हुये प्रमुदित हैं ॥२॥
सुगतके (शासन)में ब्रह्मचर्यव्रतका पालन करके,
यहाँ आये हुए नये देवोंको कान्तियुक्त और यशस्वी देख कर ॥३॥
भूरिप्रज्ञ (=बुद्ध)के वे श्रावक यहाँ बळप्पनको प्राप्त हैं।
वे कान्ति आयु और यशमें दूसरोंसे बढ़ चढ़कर हैं ॥४॥

•इन्हें देखकर तथागत और धर्मकी सुधर्मताको नमस्कार करते हुए;

इन्द्रके साथ त्रायस्त्रिंश (देव) आनन्दित हो रहे हैं ॥५॥

'भन्ते ! उससे त्रायस्त्रिंश देवता अत्यधिक प्रसन्न, संतुष्ट, प्रमुदित तथा प्रीति और सौमनस्यसे युक्त हो (कहते थे)—देवलोक भर रहा ०। भन्ते ! तब जिस कामके लिये त्रायस्त्रिंश देव सुधर्मा-सभामें इकट्ठे हुये थे, उस कामको यादकर, उस कामके विषयमें मन्त्रणाकी। चारों महाराजने भी कहा, समर्थन किया। वे चारों महाराज फिर न जा करके अपने अपने आसनपर खळे थे—

'वे राजा अपनी अपनी बात कहके आज्ञा लेकर।'

प्रसन्न मनसे शान्त हो अपने अपने आसनपर खळे थे ॥६॥

'भन्ते ! तब उत्तर दिशामें देवोंके देवानुभावसे बढ़कर बळा प्रकाश उत्पन्न हुआ, तीव्र प्रकाश प्रादुर्भूत हुआ। भन्ते ! तब शक्र देवेन्द्रने त्रायस्त्रिंश देवोंको संबोधित किया—मार्ष ! जैसा लक्षण दिखाई दे रहा है, बळा प्रकाश ० ब्रह्मा प्रकट होंगे। ब्रह्माहीके प्रकट होनेके लिये यह पूर्व-निमित्त है, जिससे कि यह बळा प्रकाश उत्पन्न हो रहा है।

५—सनत्कुमार ब्रह्मा द्वारा बुद्ध धर्मकी प्रशंसा

'जैसा निमित्त दिखाई दे रहा है, उससे ब्रह्मा प्रकट होंगे।

यह ब्रह्माका ही लक्षण है, जो कि यह बळा प्रकाश हो रहा है ॥७॥'

'भन्ते ! तब त्रायस्त्रिंश देव अपने अपने आसनोंपर वैसे ही बैठ गये, कि उस बळे प्रकाश को जान, और जो उसका फल होगा उसे देख ही कर जायेंगे। चारों महाराजा भी ०। इसे सुनकर त्रायस्त्रिंश देवता सभी एकत्र हो गये, उस बळे प्रकाश ०। भन्ते ! जब सनत्कुमार ब्रह्मा त्रायस्त्रिंश देवोंके सामने प्रकट होता है, तो वह अपने बळे तेजको प्रकाशित करके ही प्रकट होता है; जिसमें कि भन्ते ! जो ब्रह्माकी स्वाभाविक दुष्प्राप्य कान्ति है, उसे त्रायस्त्रिंश देव देख लें। भन्ते ! जब सनत्कुमार ब्रह्मा ० प्रकट होता है, तब वह दूसरे देवोंसे वर्ण और यशमें बहुत बढ़ा रहता है। भन्ते ! जैसे, सोनेकी मूर्त्ति मनुष्यके विग्रहसे अधिक तेजसी होती है, वैसे ही भन्ते ! जब ब्रह्मा प्रकट ०। भन्ते ! जब सनत्कुमार ० प्रकट होता है, उस सभामें कोई भी देव उसे न तो अभिवादन करते हैं, न उठकर अगवानी करते हैं, न आसनके लिये निमन्त्रित करते हैं। सभी चुप होकर, हाथ जोळे, पलथी मारे बैठे रहते हैं। ब्रह्मा सनत्कुमार जिस देवके आसन में चाहता है उसी देवके पर्यङ्कमें बैठ जाता है। भन्ते ! ब्रह्मा ० जिस देवके पर्यङ्कमें बैठ जाता है, वह देव बळा विशाल हो जाता है, सौमनस्यको लाभ करता है। भन्ते ! जैसे हालमें मूर्धाभिषिक्त, क्षत्रिय राजा, बहुत अधिक संतोष पाता है, ० सौमनस्य लाभ करता है, उसी तरह जिस देवके पर्यङ्कमें ब्रह्मा सनत्कुमार बैठता है, वह देव ०। भन्ते ! तब ब्रह्मा सनत्कुमार अपने विशाल शरीरको निर्माणकर पाँच शिखाओंवाले एक बच्चेका रूप धर त्रायस्त्रिंश देवोंके सामने प्रकट हुआ। वह आकाशमें उळ अन्तरिक्षमें पलथी लगाकर बैठ गया। भन्ते ! जैसे कोई बलवान् पुरुष ठीकसे बिछे आसन या समतल भूमिपर पलथी मारकर बैठे, वैसे ही ब्रह्मा सनत्कुमार आकाशमें उळकर, आकाशमें पलथी लगाके बैठा। त्रायस्त्रिंश देवोंको प्रसन्न देख इन गाथाओंसे अनुमोदन किया—'इन्द्रके साथ ० ॥२—५॥

'भन्ते ! सनत्कुमार ब्रह्माने यह कहा। भन्ते ! सनत्कुमार ब्रह्माका स्वर आठ अंगोंसे युक्त था—(१) स्पष्ट (=साफ साफ), (२) समझने लायक, (३) मञ्जु, (४) श्रवणीय, (५) एक घन (=फटा नहीं), (६) क्रमानुकूल, (७) गम्भीर, (८) ऊँचा। भन्ते ! ० ब्रह्मा सभाके अनुकूल ही स्वरसे भाषण

करता था। उसका घोष सभाके बाहर नहीं जाता था। भन्ते ! जिसका स्वर इस प्रकार आठ अंगोंसे युक्त होता है वह ब्रह्मस्वर कहलाता है। भन्ते ! तब ब्रह्मा ०ने त्रायस्त्रिशीय शरीरका निर्माणकर त्रायस्त्रिश देवोंके पर्यङ्कोंसे प्रत्येक पर्यङ्कमें बैठकर तावतिंस देवोंको संबोधित किया—आप तावतिंस (=त्रायस्त्रिंश) देव लोग इसे क्या नहीं जानते, कि भगवान् लोगोंके हितके लिये लगे हैं, लोगोंके सुखके लिये ०। जितने बुद्धकी शरणमें गये, धर्मकी शरणमें गये, संघकी शरणमें गये, और जिन्होंने शीलोंको पूरा किया, मरनेके बाद, उनमेंसे कितने ही **परनिर्म्मितवशवर्त्ती** देवोंमें उत्पन्न हुए, कितने **निर्म्माणरति** देवोंमें ०, कितने **तुषित** देवों ०, ० **याम** देवों ०, ० **त्रायस्त्रिश** देवों ०, ० **चातुर्महाराजिक** देवों ०। (उनमें) सबसे हीन शरीर पानेवालेने, **गन्धर्व**के शरीरको पाया। ब्रह्मा ०ने यह कहा। भन्ते ! ब्रह्मा०के घोषको सभी देवोंने जाना कि मानों वह उन्हींके आसनसे हो रहा है—

'एकके भाषण करनेपर (दिव्य-बल द्वारा) निर्मित सभी शरीर भाषण करते हैं।
एकके चुप बैठनेपर, वे सभी चुप हो जाते हैं ॥८॥
"इन्द्रके साथ सभी त्रायस्त्रिश देव समझते थे,
कि ब्रह्मा उन्हींके आसनमें है और वहींसे भाषण कर रहा है ॥९॥

'भन्ते ! तब ब्रह्मा ० एक ओरसे अपनेको समेटने लगा; एक ओरसे अपनेको समेटकर (उसने) शक्र देवेन्द्रके आसन (=पर्यङ्क)में पलथी लगाके बैठकर तावतिंस देवोंको संबोधित किया—'आप त्रायस्त्रिश देव लोग क्या समझते हैं,—उन भगवान् अर्हत्, सर्वद्रष्टा, सर्ववित्, सम्यक्-सम्बुद्धको ऋद्धियों-की अधिकतासे ऋद्धियोंकी विशदतासे, तथा ऋद्धियोंको नाना प्रकारसे देखनेसे चारों ऋद्धिपाद प्राप्त हैं। कौनसे चार (ऋद्धिपाद) ? भिक्षु छन्दसमाधि प्रधान संस्कारसे युक्त ऋद्धिपादकी भावना करता है, वीर्यसमाधि प्रधान ० संस्कारयुक्त ऋद्धिपादकी भावना करता है, चित्तसमाधि प्रधान संस्कारसे युक्त ऋद्धिपादकी भावना करता है, वीमंसासमाधि ०। ये चार ऋद्धिपाद उन भगवान् ०को सिद्ध हैं, ऋद्धियोंकी अधिकतासे ०। अतीतकालमें जिन श्रमण और ब्राह्मणोंने अनेक प्रकारकी ऋद्धियोंको सिद्ध किया था उन सभीनें इन्हीं चार ऋद्धिपादोंकी भावना करके (और) अभ्यास करके। भविष्य (=अनागत)कालमें जिन ० सिद्ध करेंगे ०। वर्तमानकालमें जिन ० सिद्ध किया है ०। आप जो त्राय-स्त्रिश देव इस समय मेरे ऋद्धिबलको देख रहे हैं—ऐसे महाब्रह्मा हैं—मैं भी इन्हीं चार ऋद्धिपादोंकी भावना करनेसे, अभ्यास करनेसे इस प्रकारका महाऋद्धिवाला महानुभाव हुआ हूँ।'

'भन्ते ! ब्रह्मा ० ने यह बात कही। भन्ते ! ब्रह्मा ० ने यह बात कह, त्रायस्त्रिश देवोंको संबोधित, किया—'तब आप ० लोग क्या जानते हैं, कि उन भगवान् ० को तीन सुखकी प्राप्तिके लिये अवकाश प्राप्त हैं ! वे तीन (सुख) कौनसे ? कोई पुरुष भोगों (=कामों)से लिप्त होकर अकुशल धर्मों (=पापों)से लिप्त होकर विहार करता है। वह आगे चलकर आर्यधर्मको सुनता, अच्छी तरह मनमें लाता है, धर्मकी ओर ही लग जाता है। वह आर्यधर्मको सुनकर अच्छी तरहसे धर्मकी ओर लगता है, अच्छी तरह मनमें लाते हुए, भोगों (=कामों)में बिना आसक्त हुए विहार करता है, अकुशल पापोंमें बिना आसक्त ०। भोगों (=कामों)में न लगनेसे (और) अकुशल धर्मोंमें न लगनेसे उसे सुख होता है। सुखसे सौमनस्य, जैसे मोदसे प्रमोद होता है। इसी तरह कामोंमें न आसक्त ० सुख होता है, सुखसे फिर सौमनस्य। उन भगवान्०को सुखकी प्राप्तिके लिये यह प्रथम अवकाश प्राप्त है।

"और फिर, किसीके महान् काय-संस्कार अशान्त होतेहैं, महान् वाक्-संस्कार ०, महान् चित्त-संस्कार ०। वह किसी समय आर्यधर्मको सुनता है, अच्छी तरह मनमें लाता है, धर्मकी ओर प्रवृत्त हो जाता है। आर्यधर्म सुननेके बादसे ० प्रवृत्त होनेसे महान् काय-संस्कार शान्त हो जाते हैं, महान् वाक्-संस्कार ०, महान् चित्त-संस्कार ०। उसके महान् काय-संस्कारोंके शान्त होनेसे, महान् वाक्-

संस्कारोंके ०, ० चित्त-संस्कारोंके शान्त होनेसे सुख उत्पन्न होता है। सुखसे सौमनस्य। जैसे मोदसे ०। यह उन भगवान्‌०को सुखकी प्राप्तिके लिये दूसरा अवकाश प्राप्त है।

"और फिर, कोई 'यह कुशल है' ऐसा ठीकसे नहीं जानता है; 'यह अकुशल है' ऐसा ठीकसे नहीं जानता है; 'यह निन्द्य है, यह अनिन्द्य है, यह करने के योग्य है, यह न करने योग्य है, यह हीन है, यह सुन्दर है, इसमें अच्छाई बुराई दोनों हैं' ऐसा ठीकसे नहीं जानता है। वह किसी समय आर्यधर्मको सुनता है ०। वह आर्यधर्म सुननेके बाद ० प्रवृत्त होता है। 'यह कुशल है ० ऐसा (सभी) ठीक ठीक जान जाता है। उसके ऐसा जानने, ऐसा देखनेसे अविद्या क्षीण हो जाती है, और विद्या उत्पन्न होती है। अविद्याके हट जाने और विद्याके उत्पन्न होनेसे उसे सुख उत्पन्न होता है, सुखसे सौमनस्य। जैसे ०। ० यह तीसरा अवकाश प्राप्त ०। उन भगवान्‌०को सुखप्राप्तिके लिये ये तीनों अवकाश प्राप्त हैं।

"भन्ते! ब्रह्मा०ने यह बात कही। भन्ते! ब्रह्मा०ने यह बात कहके तावतिंस (=त्रायस्त्रिंश) देवोंको संबोधित किया—'तब आप त्रायस्त्रिंश देव लोग क्या जानते हैं कुशल प्राप्तिके लिये जो चार **स्मृति-प्रस्थान** कहे गये हैं, ये भगवान्‌०को अच्छी तरह ज्ञात हैं। कौनसे चार? भिक्षु अपने कायामें कायानुपश्यी होकर विहरता है, उद्योगी, सावधान, स्मृतिमान्, अभिध्या (=लोभ) और दौर्मनस्य (=मनकी अशान्ति)को दबाकर, अपनी कायामें कायानुपश्यी होकर विहरते हुए उसके धर्म समाधिमें आते हैं, निर्मल होते हैं। वह अच्छी तरह समाहित और प्रसन्न हो बाहर, दूसरोंके शरीरको निमित्त करके अपने ज्ञानदर्शनमें प्रवृत्त होता है।—भीतरी वेदनाओंमें वेदनानुपश्यी होकर विहार करता है ० बाहर दूसरोंकी वेदनाओंमें ०।—भीतरी चित्तमें चित्तानुपश्यी ०।—अपने भीतरी धर्मोंमें धर्मानुपश्यी ०। ये चार स्मृतिप्रस्थान कुशल प्राप्तिके लिये भगवान्‌० से बतलाये गये हैं।

६—मगधके भक्तोंकी सुगति

"ब्रह्माने ०—क्या आप त्रायस्त्रिंश देव लोग जानते हैं कि सम्यक्-समाधिकी भावना और परिशुद्धिके लिये सात समाधि-परिष्कारोंको भगवान्‌०ने अच्छी तरह बतलाया है? कौनसे सात? सम्यक्-दृष्टि, सम्यक्-संकल्प, सम्यक्-वाक्, सम्यक्-कर्म, सम्यक्-आजीव, सम्यक्-व्यायाम, सम्यक्-स्मृति। जो इन सात अंगोंसे अङ्ग प्रत्यङ्गोंके साथ, (और) सभी परिष्कारोंके साथ चित्तकी एकाग्रता रूपी परिष्कृति है वही सम्यक्-समाधि कही० जाती है। सम्यक्-दृष्टिवाला मनुष्य सम्यक्-संकल्पमें समर्थ होता है, सम्यक्-संकल्पवाला मनुष्य सम्यक्-वाक्‌में समर्थ होता है ०। सम्यक्-स्मृति से ०। सम्यक् समाधिमें समर्थ होता है। सम्यक् समाधि ० सम्यक् ज्ञानमें समर्थ होता है। सम्यक् ज्ञानवाला मनुष्य सम्यक् विमुक्तिमें समर्थ होता है। जिसे भली भाँति कहनेवाले मनुष्य कहते हैं—भगवान्‌का धर्म स्वाख्यात (=सुन्दर प्रकारसे कहा गया) है, सान्दृष्टिक (=इसी संसारमें फल देनेवाला), अकालिक (=कालान्तरमें नहीं, सद्यः फलप्रद), एहिपश्यिक (=परीक्षा किया जा सकनेवाला), औपनयिक (=निर्वाणके पास ले जानेवाला), विज्ञ (पुरुषों)को अपने अपने विदित होनेवाला है—जो लोग बुद्धमें स्थिर रूपसे प्रसन्न हैं, धर्ममें स्थिर ० और संघमें ०, उत्तम प्रिय शीलसे युक्त हैं उनके लिये अमृत (=स्वर्ग)का द्वार खुल गया। (जैसे) ये औपपातिक (=देवता) धर्मविनीत चौबीस लाखसे भी अधिक **मगध**के परिचारक अतीतकालमें **मार**के तीन बन्धनोंके कट जानेसे स्रोतआपन्न हो गये हैं, वह फिर कभी तीन अपायोंमें नहीं गिर सकते हैं और वह नियत रूपसे सम्बोधि-प्राप्तिमें लगे हैं। और यहाँ सकृदागामी भी हैं—

'मैं जानता हूँ कि यहाँ और दूसरे लोग (भी) पुण्यके भागी हैं।

'कहीं मिथ्या-भाषण न हो जावे!' इस डरसे उनकी गणना भी नहीं कर सका ॥१०॥'

"भन्ते! ब्रह्मा०ने यह कहा। भन्ते! ब्रह्मा०के इतना कहनेपर **वैश्रवण** महाराजके मनमें यह वितर्क उत्पन्न हुआ––आश्चर्य है, अद्भुत है; इस प्रकारके उदार (=महान्, श्रेष्ठ) शास्ता (फिर भी कभी) उत्पन्न हों, तो इस प्रकारके उदार धर्मोपदेश, (और) इस प्रकारके ऊँचे ज्ञान देखे जायें। भन्ते! ब्रह्माने० वैश्रवण (=कुवेर) महाराजके चित्तको अपने चित्तसे जान यह कहा––वैश्रवण महाराज! क्या जानते हैं कि अतीतकालमें भी इस प्रकार उदार शास्ता० देखे गये थे; भविष्य में भी इस प्रकारके उदार शास्ता० होंगे० देखे जायेंगे।

"भन्ते! ब्रह्मा०ने त्रायस्त्रिंश देवोंसे यह कहा। त्रायस्त्रिंश देवोंके सामने जो कुछ ब्रह्मा०ने कहा, उसे सामने सुन और ग्रहणकर वैश्रवण महाराजने अपनी सभामें कह सुनाया।'

जनवसभ देवता (=यक्ष)ने वैश्रवण महाराज द्वारा अपनी सभामें कहे गये इस वचनको सुन, और ग्रहणकर भगवान्से कह दिया। भगवान्ने जनवसभके मुँहसे सुन, ग्रहणकर, तथा स्वयं जानकर आयुष्मान् आनन्दसे कहा। आयुष्मान् आनन्दने भगवान्के मुँहसे० भिक्षु, भिक्षुणी, उपासक और उपासिकाओंको कह सुनाया। वही ब्रह्मचर्य ऋद्धियुक्त, उन्नत, विस्तारित, प्रसिद्ध, और विशाल होकर देव मनुष्योंमें प्रकाशित हुआ।

१९—महागोविन्द-सुत्त (२ । ६)

१—शक्रद्वारा बुद्धधर्मकी प्रशंसा। २—बुद्धके आठ गुण। ३—ब्रह्मा सनत्कुमार द्वारा बुद्धधर्मकी प्रशंसा। ४—महागोविन्द जातक। (१) महागोविन्दकी दक्षता। (२) जम्बूद्वीपका सात राज्योंमें विभाग। (३) ब्रह्माका दर्शन। (४) महागोविन्दका संन्यास। ५—बुद्धधर्मकी महिमा।

ऐसा मैंने सुना—एक समय भगवान् **राजगृह**के **गृध्रकूट** पर्वतपर विहार कर रहे थे। तब **पञ्चशिख** गन्धर्वपुत्र रातके चढ़नेपर देदीप्यमान शरीरसे सारे गृध्रकूट पर्वतको प्रकाशित करके जहाँ भगवान् थे, वहाँ आया। आकर ० खळा हो गया। ० यह बोला—

"भन्ते! मैंने जो त्रायस्त्रिंश देवोंके मुँहसे सुना है (और) जाना है, उसे आपसे कहता हूँ।'

भगवान्‌ने कहा—"तो पञ्चशिख! मुझसे कहो।"

१—शक्रद्वाराबुद्ध धर्मकी प्रशंसा

"भन्ते! बहुत दिन व्यतीत हुए एक प्रवारणा (=आश्विन पूर्णिमा) के उपोसथकी पञ्चदशीको पूर्णमासीकी रातमें सभी त्रायस्त्रिंश देव **सुधर्मा**-सभामें बैठे थे। महती देव-परिषद् चारों ओरसे बैठी थी। चारों दिशाओंसे चारों महाराज भी आकर बैठे थे।०। भन्ते! तब शक्र देवेन्द्रने त्रायस्त्रिंश देवताओंको प्रसन्न देखकर इन गाथाओंसे अनुमोदन किया—"इन्द्रके साथ सभी ०[1] ॥१-४॥"

"भन्ते! इससे त्रायस्त्रिंश देव अत्यधिक प्रसन्न, संतुष्ट० हो गये—'देवलोक भर रहा है, असुर-लोक क्षीण हो रहा है।' भन्ते! तब शक्र देवेन्द्रने त्रायस्त्रिंश देवोंको प्रसन्न देख तावतिंस देवोंको संबोधित किया—'मार्ष! क्या आप लोग उन भगवान्‌के आठ यथार्थ गुणोंको सुनना चाहते हैं?'

'मार्ष! हम लोग ० सुनना चाहते हैं।'

२—बुद्धके आठ गुण

"भन्ते! तब **शक्र** देवेन्द्रने तावतिंस (=त्रायस्त्रिंश) देवोंसे भगवान्‌के ० गुणोंको कहा—(१) 'आप तावतिंस देव लोग क्या जानते हैं कि भगवान् लोगोंके हितकेलिये०। भगवान्‌को छोळकर। इस प्रकारके अङ्गोंसे युक्त शास्ताको हम लोगोंने आज तक पहले कभी नहीं देखा था। (२) "भगवान्‌का धर्म स्वाख्यात०[2] है। उन भगवान्‌को छोळकर आज तक हम लोगोंने पहले इस प्रकारके स्वर्ग-प्रद धर्मका उपदेश देनेवाले, (तथा) इन अङ्गोंसे युक्त शास्ताको नहीं देखा। (३) 'यह अच्छा है' इसे भगवान्‌ने ठीक ठीक बतलाया है। 'यह बुरा (अकुशल) है' इसे ०। 'यह निन्द्य, यह अनिन्द्य ०' इसे ०।

---

[1] देखो पृष्ठ १६२, १६३। [2] देखो पृष्ठ १६५।

उन भगवान्को छोळ० इस प्रकारके कुशलाकुशल, निन्द्यानिन्द्य ० धर्मोंके बतलानेवाले शास्ता ०। (४) उन भगवान्ने श्रावकोंको निर्वाण-गामिनी प्रतिपदा (=मार्ग) ठीक ठीक बतलाई है। निर्वाण और उसके मार्ग बिल्कुल अनुकूल हैं। **जैसे गंगा**की धारा **यमुना**में गिरती है, और (गिरकर) एक हो जाती है, उसी तरह श्रावकोंको उन भगवान्की बतलाई निर्वाण-गामिनी प्रतिपदा निर्वाणके साथ मेल खाती है। उन भगवान्को छोळ० इस प्रकारकी निर्वाण-गामिनी प्रतिपदाका बतलानेवाला ०। (५) उन भगवान्को महालाभ हुआ है, उनकी गुणकीर्ति भी बळी भारी है। क्षत्रिय आदि सभीके वे समान रूपसे प्रिय हैं। वे भगवान् जो आहार ग्रहण करते हैं वह मदके लिये नहीं होता। उन भगवान्को छोळ० इस प्रकार मदकेलिये०। (६) भगवान्ने शैक्ष, निर्वाणके मार्गपर आरूढ़, क्षीणास्रव (=अर्हत्), तथा ब्रह्मचर्य व्रतको पूरा करनेवाले (भिक्षुओं)की सहायताको पाया है। भगवान् उन्हें छोळकर एकान्तमें भी विहार करते हैं। उन भगवान्को छोळ ० एकान्तमें विहार करनेवाले ०। (७) भगवान् यथावादी (=जैसा बोलनेवाले) तथाकारी (=वैसा करनेवाले) हैं, यथाकारी तथावादी हैं। अतः, यथावादी तथाकारी, यथाकारी तथावादी उन भगवान्को छोळ ० इस प्रकार धर्मानुधर्म-प्रतिपन्न (=धर्मके अनुसार मार्गपर आरूढ) ०। (८) भगवान् तीर्णविचिकित्स (=जिन्हें कोई सन्देह नहीं रह गया हो) हैं, विगतशंक (=जिनकी सारी शंकायें दूर हो गई हैं), पर्यवसित-संकल्प (=जिनके सारे संकल्प पूरे हो चुके हैं), और ब्रह्मचर्य पूरा कर चुके हैं। भगवान्को छोळ ०।— भन्ते! **शक्र** देवेन्द्रने तावतिंस देवोंसे भगवान्के इन्हीं यथार्थं आठ गुणोंको कहा।

"भन्ते! भगवान्के आठ यथार्थ गुणोंको सुनकर तावतिंस देव अत्यन्त संतुष्ट, प्रमुदित (तथा) प्रीति-सौमनस्य-युक्त हुए।' भन्ते! तब कुछ देवोंने यह कहा—'मार्ष! भगवान्से यदि चार सम्यक् सम्बुद्ध संसारमें उत्पन्न हों और धर्मका उपदेश करें, तो वह लोगोंके हितके लिये, लोगोंके सुखके लिये ० हो।'

"दूसरे देवोंने ऐसा कहा—'मार्ष! चार तो जाने दीजिये, यदि तीन सम्यक् सम्बुद्ध भी संसारमें ० लोगोंके सुखके लिये ० हो।' "दूसरे देवोंने ऐसा कहा—'मार्ष! तीन जाने दीजिये, यदि दो ० भी ०।'

"भन्ते! उनके ऐसा कहनेपर देवेन्द्र शक्रने ० देवोंसे यह कहा—

'ऐसा नहीं मार्षो! एक ही लोकधातुमें एक ही समय दो अर्हत् सम्यक् सम्बुद्ध नहीं होते। ऐसा नहीं होता। मार्ष! यही भगवान् नीरोग, सानन्द, और दीर्घजीवी होवें; जो कि लोगोंके हितके लिये ०।

"भन्ते! उसके बाद जिस कामसे ० देव लोग **सुधर्मा**-सभामें इकट्ठे होकर बैठे थे, उस कामके विषयमें विचार करके, मन्त्रणा करके उन चारों महाराजके भी कहने और समर्थन करनेपर अपने अपने आसनोंपर खळे थे।

वे चारों महाराज भी कहकर और अनुशासनी ग्रहणकर,
प्रसन्नमनसे अपने अपने आसनोंपर खळे थे ॥५॥

३–ब्रह्मा सनत्कुमार द्वारा बुद्धधर्मकी प्रशंसा

"भन्ते! तब उत्तर दिशामें एक बळा विशाल (=उदार) आलोक उत्पन्न हुआ। देवोंके देवानुभावसे भी बढ़कर तीव्र प्रकाश (उत्पन्न) हुआ। भन्ते! तब शक्र०ने त्रायस्त्रिंश देवोंको संबोधित किया—मार्ष! जैसा निमित्त दिखाई दे रहा है ०[1] ब्रह्माके ये निमित्त ० ॥६॥"

---

[1] देखो पृष्ठ १६३।

"भन्ते ! तावतिंस देव अपने अपने ०।

"तब ब्रह्मा०ने अन्तर्हित (=अदृश्य) होकर इन गाथाओंसे त्रायस्त्रिंश देवोंका अनुमोदन किया—

'इन्द्रके साथ त्रायस्त्रिंश देव ० ॥१-४॥'

"भन्ते ! सनत्कुमार ब्रह्माने यह कहा। भन्ते ! कहते समय सनत्कुमार ब्रह्माका स्वर आठ अंगोंसे युक्त था; वह विस्पष्ट, विज्ञेय, मंजु, श्रवणीय, विन्दु (=ठोस), बिखरा-नहीं, गंभीर, और निनादी परिषद् के अनुसार (तीव्र मन्द) स्वरसे ब्रह्मा सनत्कुमार परिषद्को उपदेशता है, उसका स्वर परिषद्से बाहर नहीं जाता। भन्ते ! जिसका स्वर इन आठ अंगों से युक्त होता है, वह **ब्रह्मस्वर** कहा जाता है। भन्ते ! तब ० देवोंने ब्रह्मा ०से यह कहा—'साधु महाब्रह्मा ! इसीलिये हम लोग प्रसन्न हो रहे हैं। शक्र०के द्वारा भगवान्के यथाभूत =यथार्थ आठ गुण कहे गये हैं। उसीसे हम लोग प्रसन्न हो रहे हैं।'

"भन्ते ! तब ० ब्रह्माने शक्र०से यह कहा—साधु देवेन्द्र ! मैं भी भगवान्के आठ ० सुनूँ। भन्ते ! तब शक्रने ० ब्रह्मा०को भगवान्के ० गुणोंको कह सुनाया।

'तो आप महाब्रह्मा क्या जानते हैं कि भगवान् लोगोंके हित ०[1]।'

"भन्ते ! शक्र०ने ब्रह्मा०को ये भगवान्के आठ यथार्थ गुण कह सुनाये। उससे ब्रह्मा ० संतुष्ट ०। भन्ते ! तब ब्रह्मा ० अपना उदार स्वरूप धारणकर, कुमारके वेशमें, पाँच शिखाओंवाला बन तावतिंस देवोंके सामने प्रकट हुआ। वह आकाशमें ०[2] देवोंको संबोधित किया—

४—महागोविन्द जातक

'आप त्रायस्त्रिंश देव लोग क्या नहीं जानते कि भगवान् बहुत दिन पहले भी महाप्रज्ञावान् थे।—बहुत दिन पहले **दिशांपति** नामक एक राजा रहता था। दिशांपति राजाका **गोविन्द** नामक ब्राह्मण पुरोहित था। गोविन्द ब्राह्मणका **जोतिपाल** नामक माणवक पुत्र था। **रेणु** राजपुत्र, जोतिपाल माणवक और दूसरे छै क्षत्रिय—ये आठों बळे मित्र थे।

'तब बहुत दिनोंके बीतनेपर गोविन्द ब्राह्मण मर गया। गोविन्द ब्राह्मणके मर जानेपर राजा ० विलाप करने लगा—जो गोविन्द ब्राह्मण (हमारे) सभी कृत्योंको करके पाँच भोगों (=काम गुणों)से हमारी सेवा करता था वह गोविन्द ब्राह्मण मर गया'।

'(राजाके) ऐसा कहनेपर रेणु राजपुत्रने राजा ०से यह कहा—देव ! आप गोविन्द ब्राह्मणके मर जानेसे अधिक विलाप न करें। देव ! गोविन्द ब्राह्मणका जोतिपाल नामक माणवक पुत्र है,। वह अपने पितासे भी बढ़कर पण्डित है, अपने पितासे भी बढ़कर अर्थदर्शी है। जिन कामोंकी देख-रेख उसका पिता करता था, उन कामोंकी देख-रेख जोतिपाल माणवक भी कर सकता है।

'कुमार ! ऐसी बात है ?' 'देव ! हाँ।'

'तब उस राजा०ने एक पुरुषसे कहा—सुनो, जहाँ जोतिपाल माणवक है, वहाँ जाओ। जाकर जोतिपाल माणवकसे यह कहो—जोतिपाल माणवकका शुभ हो। राजा ० आप ०को बुला रहे हैं; राजा ० आप०से मिलना चाहते हैं।'

'अच्छा देव !' कहकर ०।

'जोतिपाल माणवक 'बहुत अच्छा' कह उस पुरुषको उत्तर दे जहाँ राजा दिशांपति था, वहाँ

---

[1] **देखो पृष्ठ १६७।** [2] **देखो पृष्ठ १६३।**

गया। जाकर (उसने) राजा०का अभिनन्दन किया। अभिनन्दन ..... करनेके बाद एक ओर बैठ गया। राजा०ने एक ओर बैठे जोतिपाल माणवकसे कहा——

'आप जोतिपाल मुझे अनुशासन करें (=सभी कामोंमें विचारपूर्वक सलाह दें)। आप जोतिपाल० अनुशासन करनेसे मत हिचकें। आपको आपके पिताके स्थानमें नियुक्त करता हूँ। गोविन्दके आसनपर आपको अभिषिक्त करता हूँ।'

'बहुत अच्छा' कह जोतिपाल०ने राजा०को उत्तर दिया।

"तब राजा०ने जोतिपाल०को गोविन्दके आसनपर अभिषिक्त किया, पिताके स्थानपर नियुक्त किया।

(१) महागोविन्दकी दक्षता

"जोतिपाल०गोविन्दके आसनपर अभिषिक्त हो, अपने पिताके स्थानपर नियुक्त हो, उन कृत्योंकी देख रेख करने लगे जिनकी देख रेख उनका पिता करता था, (और) जिनकी देख रेख उनका पिता नहीं करता था उनकी भी देख रेख करने लगे। जिन कामोंका प्रबन्ध उनका पिता करता था, उनका प्रबन्ध करने लगे (और) जिन कामोंका प्रबन्ध उनका पिता नहीं कर सकता था, उनका भी प्रबन्ध करने लगे। इसलिये उन्हें लोग कहने लगे——यह गोविन्द ब्राह्मणसा है, **महागोविन्द** ब्राह्मण है। इस प्रकार जोतिपाल माणवकका गोविन्द या महागोविन्द नाम पळा।

"तब महागोविन्द ब्राह्मण जहाँ छै क्षत्रिय थे वहाँ गये, जाकर उन छै क्षत्रियोंसे बोले——दिशापति राजा जीर्ण=वृद्ध=महल्लक, पुराने और वयस्क हो गये हैं। जीवनके विषयमें कौन जानता है। बात ऐसी है कि ० राजाके मर जानेपर (कदाचित्) राज्य-कर्त्ता लोग रेणु राजपुत्रको राज्याभिषिक्त करें। आप लोग आवें, जहाँ रेणु राजपुत्र है वहाँ चलें, और जाकर रेणु राजपुत्रसे यह कहें——'हम लोग आपके सहायक, प्रिय=मनाप, (और) अप्रतिकूल (=आपहीके पक्षमें रहनेवाले) हैं। आपको जिसमें सुख है, उसीमें हम लोगोंको भी सुख है; आपको जिसमें दुःख है ०। दिशाम्पति राजा जीर्ण० हो गये हैं। जीवनके ०। बात यह है कि ० राजाके मरनेपर कदाचित् राज्यकर्ता लोग आप हीका राज्याभिषेक करें। यदि आप राज्य पावें तो हम लोगोंको भी राज्यका (उचित) भाग दें।'

'बहुत अच्छा' कह, छै क्षत्रिय महागोविन्द ०को उत्तर दे, जहाँ रेणु थे, वहाँ ० गये। ० यह बोले——हम लोग आपके सहायक ०।'

'हाँ, मेरे राज्यमें आप लोगोंको छोळकर और दूसरा कौन सुखी होगा! यदि मैं राज्य पाऊँगा तो आप लोगोंको भी राज्यका भाग दूँगा।'

"तब बहुत दिनोंके बाद राजा ० मर गया। राजाके मर जानेपर राजकर्ताओंने रेणु राजपुत्रका राज्याभिषेक किया। रेणु राज्याभिषिक्त हो पाँचों भोगोंका सेवन करने लगा।

"तब महागोविन्द ब्राह्मण जहाँ छै क्षत्रिय थे, वहाँ गये। जाकर बोले——राजा ० मर गया। राज्याभिषिक्त हो रेणु पाँच भोगोंको सेवन कर रहा है। मदवर्धक भोगोंका कौन ठिकाना? आप लोग आवें, जहाँ रेणु राजा है, वहाँ जावें (और) जाकर रेणु राजासे यह कहें——दिशाम्पति राजा मर गया। आप राज्याभिषक्त हुये हैं। आप उस वचनको स्मरण करते हैं?'

'बहुत अच्छा' कह ०। ० स्मरण करते हैं?'

(२) जम्बूद्वीपका सात राज्योंमें विभाग

'हाँ! उस वचनको मैं स्मरण करता हूँ। तो कौन है जो उत्तरमें तो चौळी और दक्षिणमें शकटके मुखके समान संकीर्ण इस **महापृथिवी** (=भारत)को सात बराबर भागोंमें बाँट सकता है।

'महागोविन्द०को छोळकर भला और दूसरा कौन (यह) कर सकता है ?'

"तब राजा रेणुने एक पुरुषको बुलाकर कहा—सुनो! जहाँ महागोविन्द ० हैं वहाँ जाओ, ० कहो—भन्ते! रेणु राजा आपको बुलाते हैं।" 'बहुत अच्छा' कह ०। ० बुलाते हैं।

'बहुत अच्छा' कह वह ० पुरुषको उत्तर दे जहाँ रेणु राजा ०। ० बैठ गये। एक ओर बैठे महागोविन्द ब्राह्मणसे रेणु राजाने यह कहा—

'आप ० इस महापृथ्वीको सात बराबर बराबर भागोंमें बाँटें।'

'बहुत अच्छा' कह महागोविन्दने रेणु ०को उत्तर दे, इस महापृथ्वीको ० बाँट दिया ०। बीचमें रेणुका भाग रहा।

[1]**कलिंगमें दन्तपुर, अश्वक** (देश) में **पोतन,**
अवन्ती (देश) में **माहिष्मती, सौवीर** (देश) में **रोरुक।**
विदेह (देश) में **मिथिला, अंगमें चम्पा,**
और **काशी** (देश) में वाराणसी—इन्हें महागोविन्दने बनाया ॥७॥

तब वे छै क्षत्रिय अपने अपने भागसे संतुष्ट हुए, उनका संकल्प पूरा हुआ—जो हम लोगोंका इच्छित, जो आकांक्षित, जो अभिप्रेत (और) जो अभिप्रार्थित था, सो हम लोगोंने पा लिया।

सत्तभू, ब्रह्मदत्त, वेस्सभू, भरत,
रेणु और दो **धृतराष्ट्र** उस समय यह सात भारत (=राजा) थे ॥८॥

(इति) प्रथम भाणवार ॥१॥

तब वे छै क्षत्रिय जहाँ महागोविन्द थे, वहाँ गये। जाकर महागोविन्दसे बोले—जैसे आप रेणु राजाके सहायक, प्रिय, मनाप और अप्रतिकूल हैं, वैसे ही आप हम लोगोंके भी सहायक हों। हम लोगोंको अनुशासन करें। आप अनुशासन करनेसे मत हिचकें। 'बहुत अच्छा' कह ०।

"तब महागोविन्द ० सात मूर्धाभिषिक्त क्षत्रिय राजाओंको अनुशासन करने लगे। सात ब्राह्मण-महाशालों (=महाधनी) को और सातसौ स्नातकोंको मन्त्र (=वेद) पढ़ाने लगे। तब कुछ समय बीतनेपर महागोविन्दकी ऐसी ख्याति फैल गई—

'महागोविन्द ० साक्षात् ब्रह्माको देखता है। महागोविन्द ० साक्षात् ब्रह्मासे बातें करता है, संलाप करता है, (और) मन्त्रणा करता है।'

"तब महागोविन्द०के मनमें यह आया—मेरी ऐसी ख्याति हो गई है—'महागोविन्द ० साक्षात् ० मन्त्रणा करता है।' मैं तो ब्रह्माको नहीं देखता, न ब्रह्माके साथ बातें करता हूँ, न ० संलाप ०, न ० मन्त्रणा ०।'

'मैंने वृद्ध=महल्लक, आचार्य, प्राचार्य ब्राह्मणोंको ऐसा कहते सुना है कि, जो वर्षाकालके चौमासे में समाधि लगाता तथा करुणा भावनाको करता है, वह ब्रह्माको देखता है ० बातें करता है ०। अतः मैं वर्षाकालके चौमासेमें ध्यान ० करूँगा।

---

[1] **(१) कलिंग=उडीसा। (२) अश्वक=औरंगाबादसे पैठन तक (हैद्राबाद)। (३) अवन्ती=मालवा। (४) सौवीर=वर्तमान सिंध। (५) विदेह=तिर्हुत। (६) अंग=भागलपुर-मुंगेर जिले। (७) काशी=बनारस कमिश्नरी। यही भारतके सात पुराने खंड हैं। पोतन,=पैठन (हैदराबाद), माहिष्मती=महेश्वर (इन्दौर), रोरुक=रोरी (सिन्ध), चम्पा=चम्पा (भागलपुर)।**

"तब महागोविन्द ० जहाँ रेणु राजा था, ० वहाँ गये। ० बोले—मेरी ऐसी ख्याति हो गई है, 'महागोविन्द ० साक्षात्०। (किन्तु) मैं ० नहीं देखता हूँ ०। ० कहते सुना है ०। अतः मैं वर्षाकालके चौमासेमें ध्यान ० करना चाहता हूँ। एक भोजन ले जानेवालेको छोळकर मेरे पास और कोई दूसरा न आवे।'

'आप गोविन्द, जैसा उचित समझें वैसा करें।'

"तब महागोविन्द ० जहाँ छै क्षत्रिय थे ० वहाँ गये। ० बोले—'आप गोविन्द, जैसा उचित समझें।'

"तब महागोविन्द ० जहाँ सात ब्राह्मण महाशाल और सातसौ स्नातक ०।'

'आप गोविन्द, जैसा उचित समझें।'

"तब महागोविन्द ० जहाँ उनकी एक जातिकी चालीस स्त्रियाँ थीं ०।

'आप गोविन्द, जैसा उचित समझें।'

"तब महागोविन्द ० नगरके पूरब नया **सन्थागार** (=ध्यान, आदिके अनुकूल स्थान) बनवाकर वर्षाकालके चार मास समाधि लगाने लगे, करुणा-भावनाका अभ्यास करने लगे। भोजन ले जानेवालेको छोळकर और कोई दूसरा वहाँ नहीं जाता था। तब चार मासके बीतनेपर महागोविन्द०को एक पुण्य की उत्सुकता होने लगी—० 'ब्राह्मणोंको कहते सुना था—वर्षाकालके ०। (किन्तु) मैं ब्रह्माको न देखता हूँ, ० न (उससे) बातें करता हूँ ०।'

(३) *ब्रह्माका दर्शन*

"तब ब्रह्मा **सनत्कुमार** महागोविन्द०के चित्तको अपने चित्तसे जान जैसे बलवान् पुरुष ० वैसे ही ब्रह्मलोकमें अन्तर्धान हो महागोविन्द ० के सामने प्रकट हुआ। तब उस अदृष्टपूर्व रूपको देखकर महगोविन्दको कुछ भय होने लगा, स्तब्धता होने लगी, रोमाञ्च होने लगा। तब महागोविन्दने ० भयभीत=संविग्न, रोमाञ्चित हो ब्रह्मा सनत्कुमारसे गाथाओंमें कहा—

'मार्ष ! सुन्दर, यशस्वी, श्रीमान् आप कौन हैं, नहीं जानकर ही
मैं आपको पूछ रहा हूँ। आपको हम लोग भला कैसे जानें ॥९॥'

'ब्रह्मलोकमें सनत्कुमारके नामसे
मुझे सभी देव जानते हैं; गोविन्द ! तुम वैसा ही जानो ॥१०॥'

'आसन, जल, पैरमें लगानेके लिये तेल, (और) मधुर शाक से
मैं आप ब्रह्माकी पूजा करता हूँ; कृपया इन्हें आप स्वीकार करें ॥११।'

'गोविन्द ! इसी जन्म (=दृष्टधर्म)के हितके लिये, स्वर्गप्राप्तिके लिये और सुखके लिये जो तुम कहते हो;
उन अर्घ्योंको मैं स्वीकार करता हूँ। मैं आज्ञा देता हूँ, जो चाहो पूछ सकते हो ॥१२॥

"तब महागोविन्द०के मनमें यह आया—ब्रह्मा०ने आज्ञा दे दी है। ब्रह्मा०को मैं क्या पूछूँ—इसी संसारकी बातें या परलोककी बातें ? तब महागोविन्दके मनमें यह आया—इस जन्म (=दृष्ट-धर्म)के अर्थोंमें (=सांसारिक बातोंमें) तो मैं स्वयं कुशल हूँ, दूसरे लोग भी मुझसे दृष्टधर्मके अर्थको पूछते हैं। अतः मैं ब्रह्मासे परलोककी ही बात पूछूँ। तब महागोविन्द०ने ब्रह्मा०से गाथामें कहा—

'श्रेष्ठों द्वारा ज्ञातव्य बातोंमें मुझे शंका है, इसलिये उन्हें मैं, शंकारहित ब्रह्मा सनत्कुमारसे पूछता हूँ।'

'कहाँ रहकर और क्या अभ्यासकर मनुष्य अमृत ब्रह्मलोकको प्राप्त होता है ? ॥१३॥'

'ब्राह्मण ! मनुष्योंमें ममत्वको छोळ एकान्तमें रहना, करुणा-भावयुक्त होना।'
पापोंसे अलग रहना (तथा) मैथुन-कर्मसे विरत रहना;
इन्हींका अभ्यासकर, और इन्हींको सीखकर मनुष्य अमृत ब्रह्मलोकको प्राप्त होता है ॥१४॥'

'मैं जानता हूँ कि तुमने ममत्वको छोळ दिया है। कोई पुरुष कम या बहुत भोगविलासको, बन्धु बान्धवोंको छोळ शिर और दाढ़ी मुँळ ० प्रव्रजित हो जाता है। मैं जानता हूँ कि तुमने उस ममत्वको छोळ दिया है। मैं जानता हूँ कि तुम सबसे अकेले भी हो गये हो।

'कोई कोई मनुष्य विविक्त (=एकान्त, निर्जन) स्थानमें वास करता है। अरण्य, वृक्षके नीचे पर्वत-कन्दरा, पहाळकी गुफा, श्मशान, जंगल, खुले मैदान, या ० पुआलके ढेरमें वास करता है। मैं जानता हूँ कि तुम भी इसी तरह विविक्त स्थानमें वास करते हो। मैं जानता हूँ कि तुम करुणासे भी युक्त हो।

'कोई कोई मनुष्य करुणायुक्त चित्तसे एक दिशाकी ओर ध्यान कर विहार करता है, वैसे ही दूसरी दिशा० ० तीसरी ० चौथी दिशा, ऊपर, नीचे, आळे, बेळे सभी तरहसे सभी ओर सारे संसारको वैररहित द्रोह-रहित विपुल, अत्यधिक, सच्चे चित्तसे विहार करता है। मैं जानता हूँ कि तुम्हें भी इसी तरह करुणाका योग है। किंतु तुम्हारे कहनेसे भी तुम्हारा **आमगन्ध** मैं नहीं जानता।'

''ब्रह्मा ! मनुष्योंमें वे कौनसे आमगन्ध हैं ? उन्हें मैं नहीं जानता; कृपया कहें।
ब्रह्मलोकसे गिरकर नारकीय लोग किन मलोंसे लिप्त हो दुर्गन्धिको प्राप्त होते हैं ? ॥१५॥'
''क्रोध, मिथ्याभाषण, वञ्चना मित्र-द्रोह, कृपणता, अभिमान,
ईर्ष्या, तृष्णा, विचिकित्सा, परपीळा, लोभ, दोष, मद और मोह;
'इन्हींसे युक्त होकर नारकीय लोग ब्रह्मलोकसे गिरकर दुर्गन्धको प्राप्त होते हैं ॥१६॥'

'आपके कहनेसे मैं आमगन्धोंको जान गया। वे गृहस्थसे जल्दी दूर नहीं किये जा सकते, अतः, मैं घरसे बेघर हो प्रव्रजित होऊँगा।' 'महागोविन्द, जैसा उचित समझो।'

(४) *महागोविन्दका संन्यास*

''तब महागोविन्द ० जहाँ रेणु राजा था वहाँ गये। जाकर रेणु राजासे बोले—अब आप अपना दूसरा पुरोहित खोज लें, जो कि आपके राज्यका अनुशासन करेगा। मैं घरसे बेघर हो प्रव्रजित होना चाहता हूँ। ब्रह्माके कहनेसे जो आमगन्ध मैंने सुने हैं, वेगृहस्थ रहकर आसानीसे दूर नहीं किये जा सकते; मैं घर से बेघर हो प्रव्रजित होऊँगा।

'भूपति रेणु राजाको मैं संबोधित करता हूँ; आप अपने राज्यको देखें,
मैं अब पुरोहितके कामोंको नहीं कर सकता ॥१७॥
'यदि आपको भोगोंकी कमी है, मैं उसे पूरा करूँगा। जो आपको कष्ट देता है,
उसे मैं वारण कर दूँगा, मैं भूमि और सेनाका पति हूँ; तुम पिता हो, मैं पुत्र हूँ;
गोविन्द, हम लोगोंको आप मत छोळें ॥१८॥'
'मुझे भोगोंकी कमी नहीं है और न मुझे कोई कष्ट देता है।
अ-मनुष्य (=देवता)की बातको सुननेके बाद मैं गृहस्थ रहना नहीं चाहता' ॥१९॥
'अ-मनुष्य कैसा था, उसने आपको क्या कहा है, जिसे सुनकर कि
आप अपने घर तथा हम सभीको छोळ रहे हैं ? ॥२०॥'
'पहले, यज्ञ करनेकी इच्छासे मैंने अग्नि प्रज्वलित की; कुश और पत्ते बिछाये।
उसी समय ब्रह्मा सनत्कुमार ब्रह्मलोकसे आकर प्रकट हुए ॥२१॥'
'उन्होंने मेरे प्रश्नोंका उत्तर दिया।

उसे सुनकर मैं गृहस्थ रहना नहीं चाहता ॥२२॥'

'हे गोविन्द ! आप जो कहते हैं उसमें मेरी श्रद्धा है। देवकी बातको सुनकर

अब आप कोई दूसरा काम कैसे कर सकते हैं ? ॥२३॥

'(किन्तु) हम लोग भी आपके अनुगामी होंगे। गोविन्द ! आप हम लोगोंके गुरु होवें।

जैसे चिकना, निर्मल और शुभ्र हीरा होता है

उसी तरह गोविन्दके अनुशासनमें हम लोग शुद्ध हो विचरण करेंगे ॥२४॥'

'यदि आप गोविन्द घरसे बेघर हो प्रव्रजित होंगे; तो हम लोग भी ० प्रव्रजित हो जायँगे। जो आपकी गति होगी वही हम लोगोंकी गति होगी।'

"तब महागोविन्द ० जहाँ छै क्षत्रिय थे वहाँ गये। ० बोले—'आप लोग अपना दूसरा पुरोहित खोज लें ०।'

"तब छै क्षत्रियोंने एक ओर जाकर ऐसा विचारा—ये ब्राह्मण धनके लोभी होते हैं, अतः हम लोग महागोविन्द०को धनका लोभ देकर रोकें। उन लोगोंने महागोविन्द०के पास जाकर यह कहा—इन सात राज्योंमें बहुत धन है। आप जितना धन चाहें ले लें।'

'मेरी भी प्रचुर धन-राशि आप लोगोंकी ही सम्पत्ति होवे। मैं सभीको छोळकर घरसे बेघर हो प्रव्रजित होऊँगा ०।'

"तब छै क्षत्रियोंने एक ओर जाकर ० स्त्रीके लोभी ० स्त्रीका लोभ देकर ०। उन लोगोंने ० यह कहा—इन सात राज्योंमें बहुतसी स्त्रियाँ हैं ०।'

'बस रहने दें। मेरी जो चालीस एक वंश (गोरी आर्य जाति)की स्त्रियाँ हैं, उन सभीको छोळ-कर मैं घरसे बेघर ०। क्योंकि मैंने ब्रह्मासे सुना है ०।'

'यदि आप गोविन्द घरसे बेघर ० तो हम लोग भी ० प्रव्रजित होवेंगे। जो आपकी गति होगी, वही हम लोगोंकी गति होगी।'

'यदि आप उन भोगोंको त्याग रहे हैं जिनमें सांसारिक लोग लग्न रहते हैं,

(तो) दृढ़ता पूर्वक आरम्भ करें, क्षत्रियोचित बलसे युक्त होवें ॥२५॥

"यही मार्ग सीधा मार्ग है, यही अनुपम मार्ग है।

सभी (बुद्धों)से रक्षित यह धर्म ब्रह्मलोकको प्राप्त करानेवाला होता है ॥२६॥'

'तो आप गोविन्द, सात वर्ष प्रतीक्षा करें। सात वर्षोंके बाद हम लोग भी घरसे बेघर ०। जो आपकी गति ०।'

'सात वर्ष बहुत लम्बा होता है। सात वर्ष मैं आप लोगोंकी प्रतीक्षा नहीं कर सकता। जीवनका कौन ठिकाना! मरना (अवश्य) है, (अतः) ज्ञानप्राप्ति करनी चाहिये, अच्छा कर्म करना चाहिये, ब्रह्मचर्य-व्रतका पालन करना चाहिये। जन्म लेकर अमर कोई नहीं रहता। ब्रह्मासे मैंने सुना है ० प्रव्र-जित होऊँगा।'

'तो गोविन्द ! छै वर्ष प्रतीक्षा करें ०। पाँच वर्ष, ०। चार वर्ष, ०। तीन वर्ष, ०। दो वर्ष, ०। एक वर्ष ०।'

"एक वर्ष बहुत लम्बा होता है ० प्रव्रजित होऊँगा।'

"तो गोविन्द ! सात महीना ०।'

"सात महीना बहुत लम्बा ०।'

'तो गोविन्द, छै महीना ०। पाँच ०। चार ०। तीन ०। दो ०। एक ०। आधा महीना ०।'

'आधा महीना बहुत लम्बा ०।'

'तो गोविन्द, सात दिन ० कि हम लोग अपने भाई-बेटोंको राज्य सौंप दें। एक सप्ताह बीतनेके बाद हम लोग भी ०।'

'एक सप्ताह अधिक नहीं होता। एक सप्ताह तक आप लोगोंकी प्रतीक्षा करूँगा।'

'तब महागोविन्द ० जहाँ सात ब्राह्मणमहाशाल और सातसौ स्नातक थे वहाँ गये। ० बोले—आप लोग अब अपना दूसरा आचार्य खोज लें, जो कि आप लोगोंको मन्त्र (=वेद) पढ़ावेगा। मैं प्रव्रजित होना चाहता हूँ। क्योंकि ब्रह्मासे मैंने सुना है ०।'

'गोविन्द! आप मत घरसे बेघर ०। प्रव्रज्या अच्छी चीज नहीं है, उससे लाभ भी अल्प ही है। ब्राह्मणपन अच्छी चीज है, और उससे लाभ भी बहुत है।'

'मुझे अब अच्छी चीजसे या महालाभसे क्या! मैं आज तक राजाओंका राजा, ब्राह्मणोंका ब्राह्मण, (और) गृहस्थोंके लिये देवता-स्वरूप था। (लेकिन अब) उन सभीको छोळकर मैं घरसे बेघर हो ० प्रव्रजित हो जाऊँगा। क्योंकि मैंने ब्रह्मासे ०।'

'यदि आप गोविन्द घरसे बेघर हो प्रव्रजित होंगे, तो हम लोग भी ० प्रव्रजित हो जायेंगे ०

"तब महागोविन्द ० जहाँ उनकी समानवंशवाली चालीस स्त्रियाँ थीं वहाँ गये। ० बोले—आप लोग अपनी इच्छाके अनुसार पीहर चली जावें, या दूसरे पतिको खोज लें। मैं घरसे बेघर ०। ब्रह्मासे मैंने सुना है ०।'

'आप ही हम लोगोंके सम्बन्धी हैं, आप ही हम लोगोंके पति हैं। यदि आप घरसे बेघर हो प्रव्रजित होंगे तो हम लोग भी ०।'

'तब महागोविन्द ० उस सप्ताहके बीत जानेपर शिर और दाढ़ी मुंळा प्रव्रजित हो गये। महागोविन्द०के प्रव्रजित हो जानेपर सात मूर्धाभिषिक्त क्षत्रिय राजा, सात ब्राह्मणमहाशाल, सातसौ स्नातक, समानवंशवाली चालीस स्त्रियाँ, अनेक सहस्र क्षत्रिय, अनेक सहस्र ब्राह्मण, अनेक सहस्र वैश्य (=गृहपति) और अनेक सहस्र स्त्रियाँ ० प्रव्रजित हुए। उन लोगोंके साथ महागोविन्द ० गाँव, कस्बा, और राजधानीमें चारिका करने लगे। उस समय महागोविन्द ० जिस गाँव या कस्बेमें पहुँचते थे वहाँ ही वह राजोंके राजा, ब्राह्मणोंके ब्राह्मण और गृहपतियोंके लिये देवता स्वरूप हो जाते थे।

"उस समय मनुष्य लोग ठेस लगने या छींक आनेसे यह कहा करते थे—'नमोऽस्तु महागोविन्दाय ब्राह्मणाय। नमोऽस्तु सप्तपुरोहिताय।'

"महागोविन्द०ने मैत्री-सहित चित्तसे एक दिशाकी ओर ध्यान लगाया, वैसे ही दूसरी दिशा, तीसरी ०। करुणायुक्त चित्तसे ०। मुदिता ०। उपेक्षा ०। श्रावकों (=शिष्यों)को ब्रह्मलोकका मार्ग बतलाया।

"उस समय महागोविन्द०के जितने श्रावक थे, उनमें जिन्होंने धर्म को जाना था। वे मरकर सुगतिको प्राप्त हो ब्रह्मलोकमें उत्पन्न हुए। जिन लोगोंने धर्मको पूरा पूरा नहीं समझ पाया, वे मरकर कुछ तो परनिर्म्मितवशवर्ती देवलोकमें उत्पन्न हुए, कुछ निर्म्माणरत देवोंके बीचमें उत्पन्न हुए, कुछ तुषित देवों ०, कुछ याम देवों ० त्रायस्त्रिंश (=तावतिंस) देवों ० चातुर्महाराजिक देवों ०। जिन्होंने सबसे हीन शरीर पाया, वे गन्धर्वलोकमें उत्पन्न हुए। इस प्रकार उन सभी कुलपुत्रोंकी प्रव्रज्या सफल, सार्थक और उन्नत हुई। 'भगवान्‌को वह स्मरण है?"

५—बुद्ध-धर्मकी महिमा

"पञ्चशिख ! हाँ, मुझे स्मरण है। मैं ही उस समय महागोविन्द ब्राह्मण था। मैंने ही उन श्रावकोंको ब्रह्मलोकका मार्ग बतलाया था। पञ्चशिख ! मेरा वह ब्रह्मचर्य न निर्वेदके लिये,=न विरागके लिये, न निरोधके लिये, न उपशम (=परमशान्ति)के लिये, न ज्ञान-प्राप्तिके लिये, न संबोधिके लिये, और न निर्वाणके लिये था। वह केवल ब्रह्मलोक-प्राप्तिके लिये था। पञ्चशिख ! मेरा यह ब्रह्मचर्य ऐकान्त (बिलकुल) निर्वेदके लिये, विराग ० और निर्वाणके लिये है।

"पञ्चशिख ! तो कौनसा ब्रह्मचर्य एकान्त निर्वेदके लिये, ० और निर्वाणके लिये होता है ? यही आर्य अष्टाङ्गिक मार्ग—सम्यक् दृष्टि, सम्यक् संकल्प, सम्यक् वाक्, सम्यक् कर्मान्त, सम्यक् आजीव, सम्यक् व्यायाम, सम्यक् स्मृति, सम्यक् समाधि। पञ्चशिख ! यही ब्रह्मचर्य एकान्त निर्वेदके लिये ० है। पञ्चशिख ! जो मेरे श्रावक पूरा पूरा धर्म जानते हैं, वे आस्रवोंके क्षय होनेसे, आस्रव-रहित चित्तकी मुक्ति (=चेतोविमुक्ति), प्रज्ञाविमुक्तिको इसी जन्ममें स्वयं जानकर, साक्षात्कारकर विहार करते हैं। (और) जो पूरा पूरा धर्म नहीं जानते, वे कामलोकके क्लेश (=चित्त-मल) रूपी बन्धनोंके क्षय होनेसे देवता (=औपपातिक) होते हैं। जो पूरा पूरा धर्म नहीं जानते, उनमें कितने ही तीन बन्धनोंके क्षय हो जानेसे राग, दोष, और मोहके दुर्बल हो जानेसे **सकृदागामी** होते हैं। वह एक ही बार इस संसारमें आकर दुःखोंका अन्त करेंगे। कितने ही अविनिपात-धर्मा (जो फिर मार्गसे कभी नहीं गिर सकें) होंगे और जिनकी संबोधि-प्राप्ति नियत है ऐसे स्रोत आपन्न होते हैं।

"पञ्चशिख ! अतः इन सभी कुलपुत्रोंकी प्रव्रज्या सफल, सार्थक और उन्नत है।"

भगवान्ने यह कहा। **पञ्चशिख** गन्धर्वपुत्र संतुष्ट हो भगवान्के कथनका अभिनन्दन और अनुमोदनकर भगवान्की वन्दना तथा प्रदक्षिणा करके वहीं अन्तर्धान हो गया।

२०—महासमय-सुत्त (२।७)

१—बुद्धके दर्शनार्थ देवताओंका आगमन। २—देवताओंके नाम-गाँव आदि। ३—मारका भी सदलबल पहुँचना।

ऐसा मैंने सुना—एक समय भगवान् पाँचसौ सभी अर्हत् भिक्षुओंके बळे संघके साथ **शाक्य** देशमें **कपिलवस्तुके महावनमें** विहार कर रहे थे। उस समय भगवान् और भिक्षुसंघके दर्शनके लिये दश-लोकधातुओंके बहुतसे देवता इकट्ठे हुए थे।

१—बुद्धके दर्शनार्थ देवताओंका आगमन

तब चारों शुद्धावास लोक के देवताओंके मनमें यह हुआ—यह भगवान् शाक्यदेशमें ० विहार कर रहे हैं। ० इकट्ठे हुए हैं। क्यों न हम भी चलकर भगवान्के पास गाथा कहें।

तब वे देवता, जैसे बलवान् ० वैसे **शुद्धावास** देवलोकमें अन्तर्धान हो भगवान्के सामने प्रकट हुए। तब वे देवता भगवान्को अभिवादनकर एक ओर खळे हो गये। एक ओर खळे हो एक देवताने भगवान्से गाथामें यह कहा—

"इस वनमें देवताओंका यह महासमूह एकत्रित हुआ है। हम लोग भी
इस अजेय संघके दर्शनार्थ इस धर्म सम्मेलनमें आये हुए हैं॥१॥"

तब दूसरे देवताने भगवान्के सामने गाथामें यह कहा—

"भिक्षु लोग अपने चित्तको सीधाकर (वैसेही) समाहित (=ध्यानमें लीन) होते हैं;
पण्डित लोग लगाम ताने सारथीकी भाँति अपनी इन्द्रियोंको वशमें रखते हैं॥२॥"

तब दूसरे देवताने—

"राग आदि रूपी कण्टक, परिघ (=अर्गल) तथा रोळेको नष्टकर ज्ञानी (जन) शुद्ध,
विमल, दान्त और श्रेष्ठ होकर विचरण करते हैं॥३॥"

तब दूसरे देवताने—

"जो लोग बुद्धकी शरणमें गये हैं वे नरकमें नहीं पळेंगे।
मनुष्य-शरीरको छोळ कर वे देव-शरीरको पावेंगे॥४॥"

तब भगवान्ने भिक्षुओंको संबोधित किया—"भिक्षुओ! तथागत और भिक्षुसंघके दर्शनार्थ दसों लोकधातुके बहुतसे देवता इकट्ठे हुए हैं। भिक्षुओ! अतीतकालमें जो अर्हत् सम्यक् सम्बुद्ध हो गये हैं उन्हें भी (देखनेके लिये) इतने ही देवता इकट्ठे हुए थे, जितने कि इस समय मुझे देखनेके लिये। भिक्षुओ! अनागतकालमें भी जो अर्हत् ० होंगे, उन्हें भी ० इतने ही देवता इकट्ठे होंगे जैसे ०।

"भिक्षुओ! मैं देवशरीरधारियोंके नामको कहता हूं, ० वर्णन करता हूँ, ० के नामका उपदेश करता हूँ। उसे सुनो, मनमें लाओ।"

२—देवताओंके नाम-गाँव आदि

"अच्छा भन्ते !" कह, उन भिक्षुओंने भगवान्‌को उत्तर दिया।
भगवान्‌ने कहा—
"पृथ्वीपर भिन्न भिन्न स्थानोंमें, पहाळकी कन्दराओंमें रहनेवाले
जो संयमी और समाहित (ध्यानारूढ़) देवता हैं उनके विषयमें मैं कहता हूँ ॥५॥
सिंहके समान दृढ़, भयरहित, रोमांचरहित,
पवित्र मनवाले, शुद्ध, प्रसन्न, निर्दोष; ॥६॥
पाँचसौ बुद्धधर्म (=शासन)में रत श्रावकोंको
कपिलवस्तुके वनमें बुद्ध (=शास्ता)ने संबोधित किया ॥७॥
'जो देवशरीरधारी आये हुए हैं, उन्हें भिक्षुओ ! जानो (दिव्यचक्षुसे देखो)।'
उन (भिक्षुओं)ने बुद्धकी आज्ञाको सुनकर उत्साह (साहस ?) किया ॥८॥
'देवोंके देखने योग्य उन्हें ज्ञान उत्पन्न हो गया।
और कितनोंने सौ, हजार और सत्तर हजार देवता देखे ॥९॥
कितनोंने सौ हजार देवता देखे।
कितनोंने सभी दिशाओंको अनन्त देवोंसे पूर्ण देखा ॥१०॥
तब सर्वद्रष्टा शास्ताने वह सब देख और जान
धर्म (=शासन)में रत श्रावकोंको संबोधित किया ॥११॥
जितने देवशरीरधारी आये हुए हैं उन्हें भिक्षुओ ! जानो,
मैं क्रमानुसार उनके विषयमें कहता हूँ ॥१२॥
"**कपिलवस्तु**में रहनेवाले ऋद्धिमान्, द्युतिमान्, सुन्दर और यशस्वी सात हजार भूमि देवता, यक्ष प्रसन्नतापूर्वक इस वनमें भिक्षुओंके सम्मेलन (को देखनेके लिये) आये हुए हैं ॥१३॥
"**हिमालय**पर रहनेवाले ऋद्धिमान् ० रंग विरंगके छै हजार यक्ष प्रसन्नतापूर्वक० ॥१४॥
"**सातागिरि** पहाळपर रहनेवाले ० ॥१५॥
और दूसरे सोलह हजार यक्ष ० ॥१६॥
वेस्सामित्त पर्वतपर रहनेवाले पाँचसौ यक्ष ० ॥१७॥
"**राजगृह**का **कुम्भीर** यक्ष, जो **वेपुल्लपर्वत**पर रहता है;
और एक लाखसे भी अधिक यक्ष जिसकी सेवा करते हैं,
वह भी वनके इस सम्मेलनमें आया हुआ है ॥१८॥
"गन्धर्वोंके अधिपति यशस्वी महाराज धतरट्ठ (=**धृतराष्ट्र**) पूर्व दिशामें विराजमान हैं ॥१९॥
"ऋद्धिमान् ० **इन्द्र** (=इन्द) नामधारी उनके अनेक महाबली पुत्र ० आये हैं ॥२०॥
"कुम्भण्डों (=**कूष्मांड**)के अधिपति यशस्वी
महाराज **विरूढक** दक्षिण दिशामें विराजमान हैं ॥२१॥
"ऋद्धिमान् ० **इन्द्र** नामधारी उनके भी अनेक महाबली पुत्र ० आये हैं ॥२२॥
"नागोंके अधिपति ० **विरूपाक्ष** पश्चिम दिशामें विराजमान हैं ॥२३॥
"ऋद्धिमान् ० **इन्द्र** नामधारी उनके भी अनेक महाबली पुत्र ० आये हैं ॥२४॥
"यक्षोंके अधिपति ० **वैश्रवण** (=कुवेर) उत्तर दिशामें विराजमान हैं ॥२५॥
"ऋद्धिमान् ० **इन्द्र** नामधारी उनके भी अनेक महाबली पुत्र ० आये हैं ॥२६॥
"पूर्वमें **धृतराष्ट्र**, दक्षिणमें **विरूढक**, पश्चिममें **विरूपाक्ष** (और) उत्तरमें **वैश्रवण** ॥२७॥

'**कपिलवस्तु**के वनमें ये चारों महाराज चारों दिशाओंमें चमक रहे हैं ॥२८॥
'उनके मायाधारी, वञ्चक और शठ दासभृत्य भी आये हुए हैं,
जिनके नाम—**माया, कूटेण्ड, वेटेण्ड, विटुच्च विटुर** ॥२९॥
चन्दन, कामसेट्ठ, किनुघण्डु, निघण्डु, पनाद, ओपमञ्ञ
और देवपुत्र **मातलि, चित्तसेनो** और जननायक गन्धर्व **नल** राजा ॥३०॥
" **पञ्चशिख, तिम्बरू, सूर्यवर्चस्** तथा और दूसरे गन्धर्वराजा
राजाओंके साथ प्रसन्नतापूर्वक ० आये हैं ॥३१॥

आकाशवासी और **वैशाली**में रहनेवाले नाग अपनी अपनी सभाके साथ आये हैं। **कम्बल अश्वतर** (=अस्सतर) अपने बन्धु-बान्धवोंके साथ **प्रयाग** (प्रयागवाले) भी आये हैं ॥३२॥

यामुन (=यमुनावासी) और **धृतराष्ट्र** नामक यशस्वी नाग आये हैं।
महानाग **ऐरावण** भी वनके सम्मेलनमें आये हैं ॥३३॥
वे विशुद्ध दिव्यचक्षुवाले पक्षी, जो नागराजाओंके वाहन हैं,
आकाशमार्गसे इस वनमें पहुँचे हैं। **चित्र** और **सुपर्ण** उनके नाम हैं ॥३४॥
"वहाँ नागराजाओंको भय न था। भगवान् **बुद्ध**ने गरुडोंसे उन्हें रक्षा प्रदान की थी।
मीठे वचनोंमें परस्पर संलाप करते हुए वह नाग और गरुड बुद्धकी शरणमें गये ॥३५॥
समुद्रके आश्रित असुर, जिन्हें इन्द्रने पराजित किया था।
वे ऋद्धिमान् और यशस्वी (असुर) **इन्द्र**के भाई हो गये ॥३६॥
'**कालक** (नामक असुर) बळे भयंकर रूपमें आया।
वेमचित्ति, सुचित्त, पहराद (**प्रह्लाद**) और **नमुचि** नामक असुर धनुष लिये हुए आये ॥३७॥

"सभी **राहु** नामवाले **बलि**के सौ पुत्र अपनी अपनी सेनाओंको सजाकर राहुभद्रके पास गये। (और बोले) हे भदन्त ! वनमें भिक्षुओंकी समिति हो रही है ॥३८॥

जल, पृथ्वी, तेज तथा वायुके देवता वहाँ आये हैं। **वरुण, वारण, सोम**
और यश यशस्वी, मैत्री तथा करुणा शरीरवाले देव वहाँ आये हैं ॥३९॥
"ये दस, दस प्रकारके शरीरवाले, सभी रंग विरंगे ऋद्धिमान् ० ॥४०॥
"**वेण्डुदेव, सहली, असम** और दो **सम,**
चन्द्रमाके देवता चन्द्रमाको आगे करके आये हैं ॥४१॥
"**सूर्य**के देवता सूर्यको आगे करके आये हैं।
मन्दबलाहक देवता नक्षत्रोंको आगे करके आये हैं।
वसु देवताओंमें श्रेष्ठ **वासव, शक्र, इन्द्र** भी आये हैं ॥४२॥
"ये दस, दस प्रकारके शरीरवाले, सभी रंग विरंगे ऋद्धिमान् ० ॥४३॥
"अग्नि-शिखासे दहकते **सहभू** देव आये हैं। अलसीके फूलकी
आभाके सदृश शरीरवाले **अरिट्ठक** राजा आये हैं ॥४४॥
वरुण, सहधम्म, अच्चुत, अनेजक, सूलेय्य,
रुचिर और **वासवन**-निवासी देवता आये हैं ॥४५॥
"ये दस, दस प्रकारके शरीरवाले, सभी रंग विरंगे ० ॥४६॥
"**समान, महासमान मानुस** (=मानुष), **मानुषोत्तम** (=मानुसुत्तम),
क्रीड़ाप्रदूषिक (=खिड्डापदूसिक) और **मनोपदूसिक** देवता आये हैं ॥४७॥
"**लोहित** नगरके रहनेवाले **हरि** देवता आये हैं।

पारग और **महापारग** नामक यशस्वी देवता आये हैं ॥४८॥
"ये दस, दस प्रकारके शरीरवाले, सभी रंग विरंगे ० ॥४९॥
"**सुक्क, करम्भ** और **अरुण, वेसनस**के साथ आये हैं।
अवदातगृह नामक प्रमुख विचक्षण देवता आये हैं ॥५०॥
"**सदामत्त, हारगज,** और यशस्वी **मिस्सक** आये हैं।
पज्जुन्न अपने रहनेकी दिशासे गरजते हुए आये हैं ॥५१॥
"ये दस, दस प्रकारके शरीरवाले ० ॥५२॥
"**खेमिय, तुषित, याम** और यशस्वी **कट्ठक** (आये हैं)। **लम्बितक, लोमसेट्ठ,**
जोति और **आसव** नामक **निम्माणरति** और **परनिर्मित** देवता आये हैं ॥५३॥
"ये दस, दस प्रकारके शरीर ० ॥५४॥
"और दूसरे इसी प्रकारके साठ देव-समुदाय
नाना नाम और जातिके आये हैं ॥५५॥
"जन्मरहित, रागादिरहित, भव-पार (=जिसने चार ओघोंको पार कर लिया है),
आस्रवरहित, कालिमारहित चन्द्रमा जैसे नागको देखेंगे ॥५६॥
"**सुब्रह्मा, परमत्थ** और **ऋद्धिमान्**के पुत्र,
सनत्कुमार और **तिस्स** भी ० आये हैं ॥५७॥
"ब्रह्मलोकवासी हजारोंके ऊपर रहनेवाला ब्रह्मलोकमे उत्पन्न,
द्युतिमान् भीमकायधारी और यशस्वी महाब्रह्मा ॥५८॥
प्रत्येक **वशवर्ती** लोकके दस स्वामी (=ईश्वर) आये हैं।
उनसे घिरा **हारित** भी आया है ॥५९॥

३—मारका भी सदलबल पहुँचना

"**इन्द्र** और **ब्रह्मा**के साथ सभी देवोंके आनेपर **मार** सेना भी आ धमकी।
मारकी यह मूर्खता देखो ॥६०॥
"आओ, पकळो, बाँधो, रागसे सभीको वशमें कर लो,
चारों ओरसे घेर लो, कोई किसीको न छोळो ॥६१॥
"हाथसे जमीनको ठोक, भैरव स्वर (महानाद) करके, जैसे वर्षाकालमें
मेघ बिजलीके साथ गरजता है, उस तरह (गर्जकर)
मारने अपनी वळी भारी सेनाको भेजा ॥६२॥
"तब क्रोधसे भरा मार आया। उन सबोंको जानकर सर्वद्रष्टा भगवान् ० ॥६३॥
"शास्ताने शासनमें रत श्रावकोंको संबोधित किया—
'**मार-सेना** आई हुई है। इसे भिक्षुओ! जान लो' ॥६४॥
"बुद्धकी बातको सुनकर वे वीर्यपूर्वक सचेत हो गये।
(मार सेना) वीतराग (भिक्षुओं)से (हारकर) भाग चली।
उनके एक बालको भी टेढ़ा न कर सकी ॥६५॥

"वे सभी प्रसिद्ध, संग्राम-विजयी निर्भय और यशस्वी श्रावक वीतराग आर्योंके साथ मुदित हैं" ॥६६॥

२१—सक्कपञ्ह-सुत्त (२।८)

१——इन्द्रशाल गुहामें शक्र। २——पंचशिखका गान। ३——तिम्बरूकी कन्या पर पंचशिख आसक्त। ४——बुद्ध-धर्मकी महिमा। ५——शक्रके छै प्रश्न।

ऐसा मैंने सुना——एक समय भगवान् **मगधमें** प्राचीन **राजगृहसे** पूर्व **अम्बसण्ड** नामक ब्राह्मण-ग्रामके उत्तर **वेदिक** (वेदियक) पर्वतकी **इन्द्रशाल-गुहामें** विहार कर रहे थे, उस समय **शक्र** देवेन्द्रको भगवान्के दर्शनके लिये इच्छा उत्पन्न हुई।

१--इन्द्रशाल गुहामें शक्र

तब देवेन्द्र शक्रके मनमें यह आया——"भगवान्, अर्हत्, सम्यक् सम्बुद्ध इस समय कहाँ विहार करते हैं ?" देवेन्द्र शक्र ० ने भगवान्को मगधमें ० विहार करते देखा। देखकर त्रायस्त्रिंश देवोंको संबोधित किया——"मार्षो! अभी . भगवान् मगधमें प्राचीन राजगृहके ० विहार कर रहे है। चलो मार्षो! हम लोग उन अर्हत्, सम्यक् सम्बुद्ध भगवान्के दर्शनको चलें।"

"अच्छा भन्ते"——कह उन देवोंने देवेन्द्र शक्रको उत्तर दिया। तब देवेन्द्र शक्रने **पञ्चशिख** गन्धर्वपुत्रको संबोधित किया——'तात! अभी भगवान् मगधमें ० विहार कर रहे हैं। चलो हम लोग उन ०के दर्शनको चलें।' "अच्छा भन्ते!" कह देवपुत्र पञ्चशिख गन्धर्व उत्तर दे (अपनी) **वेलुवपण्डु** नामक वीणा ले देवेन्द्र शक्रके पास आ गया।

तब देवेन्द्र शक्र त्रायस्त्रिंश देवोंको साथ ले देवपुत्र पञ्चशिख गन्धर्वको आगेकर जैसे बलवान् ० वैसे ही त्रायस्त्रिंश देवलोकमें अन्तर्धान हो मगधमें, राजगृहसे पूर्व ० वेदिक पर्वतपर प्रकट हुआ।

उस समय उन देवोंके देवानुभावसे **वेदिक** पर्वत, और **अम्बसण्ड** ब्राह्मणग्राम सभी अत्यन्त प्रकाशित हो रहे थे। और चारों ओर गाँवके लोग कहते थे——आज वेदिक पर्वत आदिप्त हो रहा है; आज वेदिक पर्वत जल रहा है। आज क्यों वेदिक पर्वत, और अम्बसण्ड ब्राह्मणग्राम सभी अत्यन्त प्रकाशित हो रहे हैं ? उद्वेगके मारे उन्हें रोमाञ्च हो रहा था।

तब देवेन्द्र शक्रने पञ्चशिख०को संबोधित किया——"पञ्चशिख! ध्यानमग्न, समाधिस्थ तथागतके पास मेरे जैसा कोई सहसा नहीं जा सकता। पञ्चशिख! यदि आप पहले जाकर भगवान्को प्रसन्न करें (तो अच्छा हो)। पहले आप प्रसन्न कर लेंगे तब पीछे हम लोग भगवान् अर्हत् सम्यक्-सम्बुद्ध-के दर्शनके लिये आवेंगे।"

२--पंचशिखका गान

"अच्छा भन्ते!" कह पञ्चशिख ० देवेन्द्र शक्र ०को उत्तर दे, वेलुवपण्डु वीणा ले जहाँ इन्द्र-शाल गुहा थी वहाँ गया। जाकर, इतने फासिलेपर,——जहाँसे कि भगवान् न तो बहुत दूर थे और न बहुत निकट, (खळे होकर) पञ्चशिख ० वेलुवपण्डु वीणाको बजाने लगा। और इन बुद्ध-संबंधी, धर्म-

संबंधी, संघसंबंधी, अर्हत्-संबंधी और भोग-संबंधी गाथाओंको गाने लगा—

"**भद्रे**! सूर्यवर्चसे! तेरे पिता **तिम्बरू**की वंदना करता हूँ।
जिससे हे कल्याणि! मेरी आनन्ददायिनी तू उत्पन्न हुई ॥१॥
जैसे पसीना चूते थके पुरुषके लिये वायु, प्यासेको पानी,
जैसे अर्हतोंको धर्म, **आंगिरसे**! वैसे ही तू मुझे प्रिय है ॥२॥
जैसे रोगीको दवा, भूखेको भोजन,
जलतेको पानीकी भाँति **भद्रे**! मुझे शान्ति प्रदान कर ॥३॥
पुष्परेणुसे युक्त शीतलजलवाली पुष्करिणीको
धूपमें संतप्त गजराजकी भाँति मैं तेरे स्तनोदरको अवगाहन करूँ ॥४॥
भाले और अंकुश द्वारा निरंकुश नागकी भाँति मुझे (तूने) जीत लिया।
कारण नहीं जानता, सुन्दरजंघीने (मुझे) पागल बना दिया ॥५॥
मेरा मन तेरेमें आसक्त है, मैंने (अपना) चित्त तुझे प्रदान कर दिया है।
पंकमें फँसे कमलकी भाँति मैं लौटनेमें असमर्थ हूँ ॥६॥
वामोरु! **भद्रे**! मेरा आलिंगन कर, मन्दलोचने! मुझे आलिंगित कर।
कल्याणि! गले मिल, यही मेरी चाह है ॥७॥
वंकितकेशीने अहो! मेरी कामनाको थोळा शान्त किया,
किन्तु (उसने) अर्हतोंमें मेरा अधिक आदर उत्पन्न किया ॥८॥
मैंने अर्हत् तथागतोंके लिये जो पुण्य किया है,
सर्वांगकल्याणी! वह (सब) तेरे साथ भोगनेको मिले ॥९॥
इस पृथ्वी-मंडलपर मैंने जो पुण्य किया है,
सर्वांगकल्याणी! ० ॥१०॥
जैसे **शाक्यपुत्र** मुनि ध्यानद्वारा एकाग्र, एकांतसेवी, स्मृतिसंयुक्त हो,
अमृत पाना चाहते हैं; वैसे ही **सूर्यवर्चसे**! मैं तुझे (चाहता हूँ) ॥११॥
जैसे मुनि उत्तम संबोधि (=परमज्ञान)को प्राप्त हो आनंदित होता है,
कल्याणि! उसी तरह तुझसे मिलकर (आलिंगित होकर) मैं आनंदित होऊँगा ॥१२॥
यदि **त्रायस्त्रिंश** (लोक)के स्वामी **शक्र** मुझे वर दें,
तो भी मेरा प्रेम इतना दृढ़ है, कि भद्रे! मैं उसे न लूँगा ॥१३॥
हालके फूले शालवनकी भाँति सुमेधे! तेरे पिताको
मैं स्तुतिपूर्वक नमस्कार करता हूँ, जिसकी तेरी जैसी संतान है ॥१४॥

इन गाथाओंके गानेके बाद भगवान्‌ने **पञ्चशिख**से यह कहा—"पञ्चशिख! तुम्हारे बाजेका स्वर तुम्हारे गीतके स्वरसे बिलकुल मिला है (और) तुम्हारे गीतका स्वर, तुम्हारे बाजेके स्वरसे बिलकुल मिला है। पञ्चशिख! न तो तुम्हारे बाजेका स्वर तुम्हारे गीत-स्वरसे इधर-उधर जाता है; और न तुम्हारा गीत-स्वर तुम्हारे बाजेके स्वरसे इधर उधर जाता है। तुमने इन बुद्धसंबंधी ० गाथाओंको कब रचा?"

३—तिम्बरुकी कन्यापर पंचशिख आसक्त

"भन्ते! जिस समय भगवान् प्रथम प्रथम बुद्ध हो **उरुवेला**में **नेरञ्जरा** नदीके तीरपर **अजपाल** नामक वर्गदके नीचे विहार कर रहे थे। भन्ते! उस समय मैं तिम्बरु गन्धर्वराजकी कन्या भद्रा सूर्यवर्चसापर आसक्त था। (किन्तु) भन्ते! वह भगिनी किसी दूसरे, **मातलि** संग्राहक

(=सारथी)के पुत्र **शिखंडी**को चाहती थी। भन्ते ! जब मैं उसे नहीं पा सका तो किसी बहानेसे अपनी **वेलुवपण्डु** वीणा लेकर जहाँ **तिम्बरु** गन्धर्वराजका घर था, वहाँ गया। जाकर वेलुवपण्डु वीणाको बजा, इन बुद्धसंबंधी गाथाओंको गाने ० लगा—"भद्रे ! सूर्यवर्चसे ! ० सन्तान है ॥१-१४॥

"भन्ते ! गाना गानेके बाद **भद्रा सूर्यवर्चसा** मुझसे बोली—'मार्ष ! उन भगवान्‌को मैंने प्रत्यक्ष नहीं देखा है। (किन्तु) **त्रायस्त्रिंश** देवोंकी धर्मसभामें जब नृत्य करनेके लिये गई थी, तो उन भगवान्‌के विषयमें सुना था। मार्ष ! आप उन भगवान्‌का कीर्तन करते हैं, इसलिये आज, हम लोगोंका समागम हो।' भन्ते ! उसके साथ वही एक समागम हुआ है। उसके बाद कभी नहीं।"

तब देवेन्द्र **शक्र**के मनमें यह हुआ—'अब भगवान् प्रसन्न होकर पञ्चशिखसे बातें कर रहे हैं। तब देवेन्द्र शक्रने पञ्चशिख०को संबोधित किया—

"**पञ्चशिख** ! भगवान्‌को मेरी ओरसे अभिवादन करो—भन्ते ! देवेन्द्र शक्र अपने अमात्यों (=मन्त्री) तथा परिजनोंके साथ भगवान्‌के चरणोंमें शिरसे वन्दना करता है।'

"अच्छा, भन्ते !" कह ० पञ्चशिख०ने भगवान्‌को अभिवादनकर कहा—"भन्ते ! देवेन्द्र शक्र ० वन्दना करता है।"

"पञ्चशिख ! देवेन्द्र शक्र ० अपने अमात्यों तथा परिजनोंके साथ सुखी होवे। देव, मनुष्य असुर, नाग, गन्धर्व सभी सुखी होवें। इन लोगोंको तथागत इस प्रकार आशीर्वाद देते हैं।"

४—बुद्धधर्मकी महिमा

आशीर्वाद पा देवेन्द्र शक्र ० **इन्द्रशाल-गुहा**में प्रवेशकर, भगवान्‌को अभिवादनकर एक ओर खळा हो गया। त्रायस्त्रिंश देव भी इन्द्रशाल-गुहामें प्रवेशकर ० खळे हो गये। देवपुत्र पञ्चशिख गन्धर्व भी ० खळा हो गया।

उस समय इन्द्रशाल-गुहाका जो भाग टेढ़ा मेढ़ा था, बराबर हो गया, जो संकीर्ण था सो विस्तृत हो गया, और देवोंके देवानुभावसे ही गुहा प्रकाशसे भर गई।

तब भगवान्‌ने देवेन्द्र शक्रसे यह कहा—"अद्‌भुत है, बळा आश्चर्य है, जो आप आयुष्मान् **कौशिक** (=इन्द्र) जैसे बहुकृत्य, बहुकरणीय पुरुषका यहाँ आगमन हुआ !!"

"भन्ते ! मैं चिरकालसे भगवान्‌के दर्शनार्थ आनेकी इच्छा रखता था। किन्तु, त्रायस्त्रिंश देवोंके कुछ न कुछ काममें लगे रहनेसे भगवान्‌के दर्शनार्थ इतने दिनों तक आनेमें असमर्थ रहा। भन्ते ! एक समय भगवान् **श्रावस्ती**के पास **सललागार**[1] में विहार कर रहे थे। उस समय मैं भगवान्‌के दर्शनार्थ श्रावस्ती गया था। भन्ते ! उस समय भगवान् किसी समाधिमें बैठे थे। **भुञ्जती** नामक **वैश्रवण**की परिचारिका उस समय हाथ जोळे भगवान्‌को नमस्कार करती खळी थी। भन्ते ! तब मैंने भुञ्जतीसे यह कहा—'भगिनिके ! भगवान्‌को मेरी ओरसे अभिवादन करो, और कहो कि देवेन्द्र शक्र० अपने अमात्य और परिजनोंके साथ भगवान्‌के चरणोंमें शिरसे प्रणाम करता है।' ऐसा कहनेपर भुञ्जतीने मुझसे यह कहा—'मार्ष भगवान्‌के दर्शनका यह समय नहीं है, भगवान् समाधिमें हैं।' 'भगिनि ! तो जब भगवान् इस समाधिसे उठें तब ही उनको मेरी ओरसे अभिवादन करके कहना कि देवेन्द्र शक्र भगवान्‌को प्रणाम करता है।'

"भन्ते ! क्या उसने भगवान्‌को अभिवादन किया था ? भगवान्‌को उसकी बात याद है ?"

---

[1] **जेतवनके पीछेकी ओर था। देखो 'जेतवन'; नागरी प्रचारिणी पत्रिका १९३४।**

"देवेन्द्र ! हाँ ! उसने अभिवादन किया था। मुझे उसकी बात याद है। बल्कि आपके रथकी घळघळाहटहीसे मेरी समाधि टूटी थी।"

"भन्ते ! **त्रायस्त्रिंश** देवलोकमें मैंने अपनेसे पहले उत्पन्न हुए देवोंको कहते सुना है कि जब तथागत अर्हत् सम्यक् सम्बुद्ध संसारमें उत्पन्न होते हैं, तो **असुरों**की संख्या कम हो देवताओंकी बढ़ती है। भन्ते ! उसे मैंने आँखों देख लिया कि जब तथागत ०।

"भन्ते ! इसी **कपिलवस्तु**में बुद्धमें प्रसन्न ० संघमें प्रसन्न और शीलोंको पूरा करनेवाली **गोपिका** नामकी एक शाक्यपुत्री थी। वह स्त्री-चित्तसे विरत रह, और पुरुष-चित्तकी भावनाकर मरनेके बाद सुगतिको प्राप्त हो स्वर्गलोकमें उत्पन्न हुई। **त्रायस्त्रिंश** देवलोकमें पुत्र होकर पैदा हुई। वहाँ भी उसे '**गोपक** देवपुत्र गोपक देवपुत्र' कहते हैं।

"भन्ते ! दूसरे भी तीन भिक्षु भगवान्‌के शासनमें ब्रह्मचर्य व्रत पालन करके हीन गन्धर्वलोकमें उत्पन्न हुए। वे पाँच भोगोंसे युक्त हो हम लोगोंकी सेवा करनेको आते हैं, हम लोगोंकी परिचर्या करनेको आते हैं। एक बार हम लोगोंकी सेवामें आनेपर उनसे गोपक देवपुत्रने कहा––मार्ष ! आप लोगोंने भगवान्‌के धर्मको क्यों नहीं सुना ? मैं स्त्री होकर भी बुद्धमें प्रसन्न ०। स्त्रीत्वसे विरत रह, पुरुषत्वकी भावना कर ० देवेन्द्र **शक्र**०का पुत्र होकर उत्पन्न हुई हूँ। यहाँ भी लोग मुझे गोपक देवपुत्र कहते हैं। मार्ष आप लोग भगवान्‌के शासनमें ब्रह्मचर्य व्रतका पालन करके भी हीन गन्धर्वलोकमें उत्पन्न हुए हैं।

'यह बळा बुरा मालूम होता है, कि एक ही धर्ममें रहकर भी हम लोग हीन गन्धर्वलोकमें उत्पन्न हुए हैं।'

"भन्ते ! गोपक देवपुत्रके ऐसा कहनेपर उनमेंसे दो देखते देखते स्मृति लाभकर (सचेत हो) **ब्रह्मपुरोहित** (देवताओंके) शरीरको प्राप्त हो गये। एक कामलोकमें ही देव रह गया।

"चक्षुमान् (बुद्ध)की मैं उपासिका थी। मेरा नाम गोपिका था।
बुद्ध और धर्ममें प्रसन्न (=श्रद्धावान्) रहकर प्रसन्न चित्तसे संघकी सेवा करती थी ॥१५॥
"उन्हीं बुद्धके धर्मबलसे अभी मैं शक्रका महानुभाव पुत्र हूँ।
महातेजस्वी हो स्वर्गलोकमें उत्पन्न हुआ हूँ।
यहाँ भी लोग मुझे गोपकके नामसे जानते हैं ॥१६॥
"मैंने अपने परिचित भिक्षुओंको गन्धर्व शरीर पाये देखा।
जब पहले हम लोग मनुष्य थे तो वह (भगवान्) गौतमके श्रावक थे ॥१७॥
"अपने घरमें पैर धोकर अन्न और पानसे मैंने (उनकी) सेवा की थी,
क्योंकि इन लोगोंने बुद्धके धर्मको ग्रहण किया था ॥१८॥
'बुद्धके उपदिष्ट धर्मको स्वयं अपने समझना चाहिये।
मैं आप लोगोंकी ही सेवा करती और आर्य सुभाषित धर्मको सुनकर; ॥१९॥
'स्वर्गमें उत्पन्न हो, महातेजस्वी और महानुभाव हो शक्रका पुत्र हुआ हूँ।
और आप लोग (स्वयं) बुद्धकी सेवामें रह
तथा अनुपम ब्रह्मचर्य व्रत पालन करके (भी) ॥२०॥
'अयोग्य, हीन कायाको प्राप्त हुए हैं। यह देखनेमें बळा बुरा मालूम होता है;
कि एक ही धर्ममें रहकर भी आपने हीन कायाको प्राप्त किया है ॥२१॥
'गन्धर्व शरीरको प्राप्तकर आप लोग देवोंकी सेवा-टहलके लिये आते हैं
(किन्तु पूर्वमें) गृहस्थ रहकर भी मेरी इस विशेषताको देखिये ॥२२॥
'स्त्री होकर भी आज पुरुष देव हो दिव्य भोगों (कामों)से सेवित हूँ।'

गोपकके ऐसा कहने पर वे गौतमके श्रावक वैराग्यको प्राप्त हुए ॥२३॥
'शोककी बात है कि हम लोग दास हो गये हैं !'
और उनमें दोने **गौतम**के धर्मका स्मरणकर अपने उद्योग किया ॥२४॥
"कमोंमें आदिनवों (=दोषों)को देख, उनमेंसे चित्तको उचाट,
वे मारके लगाये हुए कामोंके दढ़ वन्धनको ॥२५॥
हाथी जैसे रस्सीको तोळ देता है, वैसे तोळ, **त्रार्यास्त्रिश** देवलोकमें चले गये।
उस समय **इन्द्र** और **प्रजापति**के साथ सभी देव धर्मसभामें बैठे थे ॥२६॥
वे वैराग्यसे अत्यन्त निर्मल हो बैठे हुए (देवों)से बढ़ गये।
उन्हें देखकर देवगणोंमें बैठे देवाभिभू (जो देवोंको वशमें रखता है) इन्द्रको बळा संवेग हुआ॥२७॥
अहो ! हीन शरीर प्राप्त करके भी यह त्रायस्त्रिश देवोंसे बढ़ गये हैं।'
(इन्द्रकी) संवेग-पूर्ण बातको सुनकर गोपकने इन्द्रसे कहा ॥२८॥—
"हे इन्द्र ! मनुष्य लोकमें भोगोंपर विजय प्राप्त करनेवाले **शाक्यमुनि** बुद्ध प्रसिद्ध हैं।
उन्हींके ये पुत्र स्मृतिसे विहीन (हो गये थे, सो), मेरे प्रेरित करनेपर स्मृतिको प्राप्त हुए हैं ॥२९॥
"यह लोग परवशता पार कर गये हैं। (इनमें) एक गन्धर्वलोकहीमें रह गया
और दो सम्बोधि (ज्ञान)के मार्गपर चलकर एकाग्र मन हो देवोंसे भी बढ़ गये ॥३०॥
"इस प्रकारके धर्मोपदेशमें किसी शिष्य (=श्रावक)को कोई शंका नहीं रह जाती।
भवसागर पारंगत, छिन्न-विचिकित्सा=विजयी संदेहरहित, उन जननायक (=जिन) बुद्धको नमस्कार है ॥३१॥
"(उन्हींके) उस धर्मको समझकर ये इस विशेषताको प्राप्त हुए हैं।
दोनोंने **ब्रह्मपुरोहित** शरीर पाया है ॥३२॥
"मार्ष ! उसी धर्मकी प्राप्तिके लिये हम लोग आये हुए हैं।
भगवान्से आज्ञा लेकर प्रश्न पूछना चाहता हूँ" ॥३३॥

तब भगवान्के मनमें यह हुआ—'यह **शक्र** बहुत दिनोंसे विशुद्ध है। अवश्य ही सार्थक प्रश्न पूछेगा, निरर्थक नहीं। जिस प्रश्नका उत्तर मैं दूँगा उसे वह शीघ्र ही समझ लेगा। तब भगवान्ने देवेन्द्र शक्रसे गाथामें कहा—

"हे **वासव** (=इन्द्र) ! तुम्हारे मनमें जो इच्छा हो, उस प्रश्नको पूछो,
तुम्हारे उन प्रश्नोंका मैं उत्तर दूँगा ॥३४॥

(इति) प्रथम भाणवार ॥१॥

५—शक्रके छै प्रश्न

(१) भगवान्से आज्ञा लेकर शक्र ०ने भगवान्से यह पहला प्रश्न पूछा—

"मार्ष ! देव, मनुष्य, असुर, नाग, गन्धर्व और दूसरे प्राणी किस बन्धनमें पळे हैं? 'वैर, दण्ड, शत्रु और हिंसाके भावको छोळ, वैररहित हो विहार करें' ऐसी इच्छा रखते हुए भी वे दण्ड-सहित, शत्रुता और हिंसाभावसे युक्त होकर वैर-सहित ही रहते हैं।"

इस प्रश्नके पूछनेपर भगवान्ने उत्तर दिया—"देवेन्द्र ! देव, मनुष्य ० सभी ईर्ष्या और मात्सर्यके बन्धनमें पळे हैं। वैर, दण्ड ० अवैरी हो ० ऐसी इच्छा रखते हुए भी वे वैर-सहित ० ही रहते हैं।"

संतुष्ट होकर देवेन्द्र शक्र०ने भगवान्के भाषणका अभिनन्दन और अनुमोदन किया—"ठीक है भगवान्, ठीक है सुगत। भगवान्के प्रश्नोत्तरको सुनकर मेरी शंका मिट गई।

शक्र०ने भगवान्‌के कथनका अभिनन्दन और अनुमोदनकर, भगवान्‌से दूसरा प्रश्न पूछा—

(२) "मार्ष ! ईर्ष्या और मात्सर्यके कारण (=निदान), समुदय=जन्म=प्रभव क्या हैं ? किसके होनेसे ईर्ष्या और मात्सर्य होते हैं, किसके नहीं होनेसे ईर्ष्या और मात्सर्य नहीं होते ?"

"देवेन्द्र ! ईर्ष्या और मात्सर्य प्रिय-अप्रियके कारण ० होते हैं। प्रिय-अप्रियके होनेसे ईर्ष्या मात्सर्य होते हैं और प्रिय-अप्रियके नहीं होनेसे ईर्ष्या मात्सर्य नहीं होते।

"मार्ष ! प्रिय-अप्रियके कारण ० क्या हैं ? किसके होनेसे ० ?"

"देवेन्द्र ! प्रिय-अप्रिय छन्द (=चाह)के कारण०से होते हैं। छन्दके होनेसे ०।"

"मार्ष ! छन्दके कारण ० क्या हैं ? किसके होनेसे ० ?"

"देवेन्द्र ! छन्द वितर्कके कारण०से होता है। वितर्कके होनेसे ०।"

"मार्ष ! वितर्कके कारण ० क्या हैं ? किसके होनेसे ० ?"

"देवेन्द्र ! वितर्क प्रपञ्चसंज्ञासंख्याके कारण०से होता है०।"

"मार्ष ! प्रपञ्चसंज्ञासंख्याके निदान क्या हैं ? किसके होनेसे० ? मार्ष ! क्या करनेसे भिक्षु प्रपञ्चसंज्ञासंख्याके विनाश (=निरोध)के मार्गपर आरूढ़ होता है ?"

"देवेन्द्र ! सौमनस्य (=मनकी प्रसन्नता, सुख) दो प्रकारके होते हैं—एक सेवनीय और दूसरा अ-सेवनीय। देवेन्द्र ! दौर्मनस्य (=चित्तके खेद) भी दो प्रकारके होते हैं—एक सेवनीय और दूसरा अ-सेवनीय। देवेन्द्र ! उपेक्षा भी दो प्रकार ०। देवेन्द्र ! सौमनस्य दो प्रकार ०। यह जो कहा है सो किस कारणसे ? तो, जिस सौमनस्यको जाने कि उसके सेवनसे बुराइयाँ (=अकुशल धर्म) बढ़ती हैं और अच्छाइयाँ (=कुशल धर्म) कम होती हैं, उस प्रकारका सौमनस्य सेवनीय नहीं है। और, जिस सौमनस्यको जाने कि उसके सेवनसे बुराइयाँ घटती हैं और अच्छाइयाँ बढ़ती हैं, उस प्रकारका सौमनस्य सेवनीय है। वैसे ही उस अवस्थामें सवितर्क और सविचार तथा अवितर्क और अविचारमें, जो अवितर्क और अविचार हैं वही श्रेष्ठ हैं। देवेन्द्र ! सौमनस्य दो प्रकार ०। जो कहा है सो इसी कारणसे !

"देवेन्द्र ! दौर्मनस्य दो प्रकार ०। यह जो कहा है सो किस कारणसे ? तो जिस दौर्मनस्यको जाने कि उसके सेवनसे बुराइयाँ बढ़ती हैं ०[1] वही श्रेष्ठ है। देवेन्द्र ! दौर्मनस्य दो प्रकार ०। जो कहा सो इसी कारणसे।

"देवेन्द्र ! उपेक्षा दो प्रकार ०।

"देवेन्द्र ! इस प्रकारका आचरण करनेवाला भिक्षु प्रपञ्चसंज्ञासंख्याके निरोधके मार्गपर आरूढ़ होता है।"

इस प्रकार भगवान्‌ने **शक्र**के पूछे प्रश्नका उत्तर दिया। संतुष्ट होकर शक्र० ने भगवान्‌के भाषणका अभिनन्दन और अनुमोदन किया।—"ठीक है भगवान् ०।"

(३) तब देवेन्द्र शक्रने ० अनुमोदन करके भगवान्‌से और प्रश्न पूछा—

"मार्ष ! क्या करनेसे भिक्षु प्रातिमोक्ष-संवर (=भिक्षु-संयम)से युक्त होता है ?

"देवेन्द्र ! कायिक आचरण (=कायसमाचार) भी दो प्रकारके होते हैं, एक सेवनीय और दूसरे असेवनीय। देवेन्द्र ! वाचिक आचरण (=वाक्‌समाचार) भी दो ०। देवेन्द्र ! पर्येषण (=भोगोंकी चाह) भी दो ०।

"कायिक आचरण दो ०। यह जो कहा गया है सो किस कारणसे ? तो जिस कायिक आचरण-

---

[1] ऊपर जैसा पाठ।

को जाने ०। देवेन्द्र ! वाचिक आचरण दो ०। जिस वाचिक आचरणको जाने ०। देवेन्द्र ! पर्येषण दो ०। तो जिस पर्येषणको जाने ०। देवेन्द्र ! इस प्रकार आचरण करनेसे भिक्षु प्रातिमोक्ष-संवरसे युक्त होता है।"

इस प्रकार भगवान्ने ० उत्तर दिया। संतुष्ट हो ० देवेन्द्र शक्रने ० अनुमोदन किया ०। देवेन्द्र शक्रने ० और प्रश्न पूछा—

(४) "मार्ष ! क्या करनेसे भिक्षु इन्द्रिय-संयम (=संवर)से युक्त होता है ?"

"देवेन्द्र ! चक्षुसे ज्ञेय (=जो आँखसे देखे जावें) रूप दो प्रकारके होते हैं—एक सेवनीय और दूसरे असेवनीय। श्रोत्रसे ज्ञेय शब्द भी ०। घ्राणसे ज्ञेय गन्ध भी ०। जिह्वासे ज्ञेय रस भी ०। कायासे ज्ञेय स्पर्श भी ०। मनसे ज्ञेय **धर्म** भी ०।"

ऐसा कहनेपर देवेन्द्र शक्रने भगवान्से यह कहा—भन्ते ! भगवान्के इस संक्षिप्त भाषणका अर्थ मैं इस प्रकार विस्तार पूर्वक समझता हूँ—

"भन्ते ! जिस चक्षुसे ज्ञेय रूपको सेवन करनेसे बुराइयाँ बढ़ें और अच्छाइयाँ घटें, उस प्रकारके चक्षुसे ज्ञेय रूप सेवितव्य नहीं है। और भन्ते ! जिस०से बुराइयाँ घटें और अच्छाइयाँ बढ़ें,० सेवनीय हैं।

"०जिस श्रोत्रसे ज्ञेय शब्दको ०।

"जिस घ्राणसे ज्ञेय गन्धको ०।

"०जिस जिह्वासे ज्ञेय रसको ०।

"०जिस कायासे ज्ञेय स्पर्शको ०।

"०जिस मनसे ज्ञेय धर्मको ०।

"भन्ते ! आपके संक्षिप्त भाषणका अर्थ मैं इस प्रकार विस्तार पूर्वक समझता हूँ। भगवान्के प्रश्नोत्तरको सुनकर मेरी शंका दूर हो गई, संदेह मिट गये।"

(५) तब देवेन्द्र शक्रने ० और प्रश्न पूछा—"मार्ष ! क्या सभी श्रमण और ब्राह्मण एक ही सिद्धान्तके प्रतिपादन करनेवाले, एक ही शीलको माननेवाले, एक ही अभिप्राय=एक ही अध्याशवाले हैं ?"

"देवेन्द्र ! सभी श्रमण और ब्राह्मण एक ही सिद्धान्तके ० नहीं हैं।"

"मार्ष ! सभी श्रमण और ब्राह्मण एक ही सिद्धान्त०के क्यों नहीं हैं ?"

"देवेन्द्र ! संसारके सभी लोग भिन्न-भिन्न धातुके बने हैं। संसारके सभी लोगोंके अनेक और भिन्न-भिन्न धातुके बने रहनेके कारण, जो जीव जिस धातुका बना रहता है उसीको हठ-पूर्वक दृढ़तापूर्वक ग्रहण कर लेता है—यही सच्चा है, और दूसरे सभी झूठ। इसीलिये सभी श्रमण और ब्राह्मण एक ही सिद्धान्तके ० नहीं हैं।"

"मार्ष ! क्या सभी श्रमण और ब्राह्मण अत्यन्त निष्ठावान्, अत्यन्त योग-क्षेमवाले, अत्यन्त ब्रह्मचारी, सुन्दर लक्ष्यवाले (=अत्यन्त पर्यवसानके) हैं ?।"

"देवेन्द्र ! सभी श्रमण और ब्राह्मण अत्यन्तनिष्ठ० नहीं है।"

'मार्ष ! सभी श्रमण और ब्राह्मण अत्यन्त निष्ठावान् ० क्यों नहीं हैं ?"

"देवेन्द्र ! जो भिक्षु तृष्णाके ख्याल (=संख्या)से विमुक्त हैं, वे अत्यन्त-निष्ठावान् ० हैं। इसीसे सभी श्रमण और ब्राह्मण अत्यन्त-निष्ठावान् नहीं हैं।"

इस प्रकार भगवान्ने देवेन्द्र शक्रके पूछे प्रश्नका उत्तर दिया। संतुष्ट होकर देवेन्द्र शक्रने अनुमोदन किया। ० दूसरा ० और प्रश्न पूछा—

(६) "भन्ते ! तृष्णा रोग है, तृष्णा घाव है, तृष्णा शल्य है, तृष्णा ही, पुरुषको उन-उन योनियोंमें

ले जानेके लिये खींचती है। इसीके कारण पुरुषकी वृद्धि और हानि होती है।

"भन्ते! जिन प्रश्नोंके उत्तरको दूसरे श्रमण और ब्राह्मणोंसे पूछ कर मैं नहीं पा सका था, उन्हें भगवान्‌ने स्पष्ट कर दिया। मेरी जो शंका और दुविधा बहुत दिनोंसे पूरी न हुई थी, उसे भगवान्‌ने दूरकर दिया।"

"देवेन्द्र! क्या तुमने इन प्रश्नोंको कभी किसी दूसरे श्रमण ब्राह्मणसे पूछा था?"

"भन्ते! हाँ मैंने इन प्रश्नोंको दूसरे श्रमण ब्राह्मणोंसे पूछा था।"

"देवेन्द्र! जिस प्रकार उन्होंने उत्तर दिया, यदि तुम्हें भार न हो तो, कहो।"

"भन्ते! जहाँ आप जैसे बैठे हों वहाँ मुझे भार क्योंकर हो सकता है?"

"देवेन्द्र! तो कहो।"

"भन्ते! जो श्रमण और ब्राह्मण निर्जन वनमें वास करते हैं उनके पास जाकर मैंने इन प्रश्नोंको पूछा। पूछनेपर वे लोग उत्तर न दे सके। बल्कि मुझहीसे पूछने लगे—

"आप कौन हैं?" उनके पूछनेपर मैंने कहा—'मार्ष! मैं देवेन्द्र **शक्र०** हूँ। तब वे मुझहीसे पूछने लगे—'देवेन्द्र! आपने कौन-सा पुण्य करके इस पदको प्राप्त किया है?' उन लोगोंको मैंने यथा-ज्ञान यथाशक्ति धर्मका उपदेश किया। वे उतनेहीसे संतुष्ट हो गये—'देवेन्द्र शक्रको हम लोगोंने देख लिया। जो हम लोगोंने पूछा उसका उत्तर उसने दे दिया।' (इस प्रकार) वे मेरे ही शिष्य (=श्रावक) बन जाते हैं, न कि उनका मैं। भन्ते! मैं (तो), भगवान्‌का स्रोतआपन्न, अविनिपातधर्मा, नियत सम्बोधिपरायण श्रावक हूँ।"

"देवेन्द्र! तुम्हें स्मरण है क्या इसके पहले तुमको कभी ऐसा संतोष और सौमनस्य हुआ था?"

"भन्ते! स्मरण है, इसके पहले भी मुझे ऐसा संतोष और सौमनस्य हो चुका है।"

"देवेन्द्र! जैसे तुम्हें स्मरण है इसके पहले भी ० उसे कहो।"

"भन्ते! बहुत दिन हुये कि देवासुर संग्राम हुआ था। उस संग्राममें देवोंकी विजय हुई और असुरोंकी पराजय। भन्ते! उस संग्रामको जीतकर मेरे मनमें यह हुआ—'अब जो दिव्य-ओज और असुर-ओज हैं, दोनोंका देव लोग भोग करेंगे।' भन्ते! मेरा वह संतोष और सौमनस्य लळाई झगळेके सम्बन्धमें था। निर्वेदके लिये नहीं, विरागके लिये नहीं, निरोधके लिये नहीं, शान्तिके लिये नहीं, ज्ञानके लिये नहीं, सम्बोधिके लिये और निर्वाणके लिये नहीं। भन्ते! जो यह भगवान्‌के धर्मोपदेशको सुनकर संतोष और सौमनस्य हुआ है वह लळाई-झगळेका नहीं, किंतु पूर्णतया निर्वेद ० के लिये।"

"देवेन्द्र! क्या देखकर यह कह रहे हो, कि तुमने ऐसा संतोष सौमनस्य पाया?"

"भन्ते! छैः अर्थोंको देखकर ० कह रहा हूँ।—मार्ष! देव रूपमें।
यहीं रहते-रहते मैंने फिर आयु प्राप्त की है; इस प्रकार आप जानें ॥३५॥
भन्ते! यह पहला अर्थ है कि जिसे देखकर कि मैंने इस प्रकारका संतोष और सौमनस्य पाया।
'दिव्य आयुके क्षीण हो जानेपर इस शरीरसे च्युत होकर;
मैं अपनी इच्छानुसार जहाँ मन होगा उसी गर्भमें प्रवेश करूँगा।' ॥३६॥
"भन्ते! यह दूसरा अर्थ है कि०।
"सो मैं तथागतके शासन (=धर्म) में रत रहकर स्मृतिमान्,
तथा सावधान हो ज्ञानपूर्वक विहार करूँगा ॥३७॥
"भन्ते! यह तीसरा अर्थ ०।
"ज्ञानपूर्वक आचरण करते हुये मुझे सम्बोधि प्राप्त होगी।
मैं परमार्थको जानकर विहार करूँगा, यही इसका अन्त होगा ॥३८॥

"भन्ते ! यह चौथा अर्थ ०।
"मनुष्यकी आयु क्षीण होनेके बाद मनुष्य-शरीरसे च्युत होकर।
फिर भी देव-लोकमें उत्पन्न हो जाऊँगा ॥३९॥
"भन्ते ! यह पाँचवाँ ०।
"**अकनिष्ठ** लोकके श्रेष्ठ यशस्वी देवोंमें।
मेरा अन्तिम जन्म होगा ॥४०॥"
"भन्ते ! यह छठा०।
"भन्ते ! इन्हीं छैः अर्थोंको देखकर मुझे इस प्रकारका संतोष और सौमनस्य प्राप्त हुआ।
"तथागतकी खोजमें बहुत दिनों तक अपूर्ण संकल्प रह
नाना शंकाओंमें पळकर भटकता था ॥४१॥
"एकान्तवास करनेवाले श्रमणोंको संबुद्ध समझकर
उनकी उपासनाके लिये जाता था ॥४२॥
"मोक्ष-प्राप्तिके कौनसे उपाय हैं और मोक्षके विपरीत ले जानेवाली कौनसी बातें हैं?
इस तरह पूछनेपर वे न तो मार्गको=न प्रतिपदाको ही बता सकते थे ॥४३॥
"जब उन लोगोंने जाना कि देवेन्द्र **शक्र** आया है, तो मुझहीसे पूछने लगते
कि किस पुण्यको करके आपने इस पदको पाया है ॥४४॥
"भगवान् ! जब मैंने उन लोगोंको यथाज्ञान धर्मका उपदेश दिया,
तो वे संतुष्ट हो गये—हम लोगोंने इन्द्रको देख लिया ॥४५॥
"जब मैंने संदेहोंको दूर करनेवाले भगवान् बुद्धको देखा
तो आज मैं उनकी उपासना करके भयरहित हो गया ॥४६॥
"यह मैं तृष्णा रूपी शूलको नष्ट करनेवाले, असाधारण,
सूर्यवंशमें उत्पन्न, महावीर बुद्धको नमस्कार करता हूँ ॥४७॥
"मार्ष ! अपने देवोंके साथ जो मैं ब्रह्माको नमस्कार किया करता था
वह नमस्कार आजसे आपहीको करूँगा ॥४८॥
"आप ही सम्बुद्ध हैं, आप ही अनुपम उपदेशक (=शास्ता) हैं।
देवताओं सहित सारे लोकमें आपके समान और कोई नहीं है ॥४९॥"

तब देवेन्द्र शक्रने देवपुत्र **पञ्चशिख** गंधर्व (=गायक) को संबोधित किया—"तात पञ्चशिख ! आपने मेरा बळा उपकार किया है, जो कि पहले भगवान्‌को प्रसन्न किया। आपके प्रसन्नकर देनेपर पीछे हमलोग भगवान्०के पास आये। (अबसे) आपको अपने पिताके स्थानपर रक्खूँगा। आप अब गन्धर्वराज होंगे और आपकी वांछित **भद्रा सूर्यवर्चसा** आपको देता हूँ।"

तब देवेन्द्र शक्रने हाथसे पृथ्वीको तीन वार छूकर प्रीतिवाक्य कहे—

"उन भगवान् अर्हत् सम्यक्-संबुद्धको नमस्कार है। उन०। उन०" (नमो तस्स भगवतो अरहतो सम्मासम्बुद्धस्स)। इतना कहते-कहते देवेन्द्र शक्रको विरज निर्मल=धर्मचक्षु उत्पन्न हो गया—'जो कुछ समुदय-धर्म (=उत्पन्न होनेवाला) है सभी निरोधधर्म (=नाश होनेवाला) है।' और दूसरे अस्सी हज़ार देवताओंको भी।

इस प्रकार भगवान्‌ने देवेन्द्र शक्रके पूछे सभी प्रश्नोंका उत्तर दे दिया। अतः इस (सूत्र)का **नाम** शक्र-प्रश्न (=सक्क-पञ्ह) पळा।

२२—महासतिपट्ठान-सुत्त (२।९)

विषय संक्षेप——१——कायानुपश्यना । २——वेदनानुपश्यना । ३——चित्तानुपश्यना । ४——धर्मानुपश्यना ।

ऐसा मैंने सुना——एक समय भगवान् कुरु[1] (देश)में कुरुओंके निगम (=कस्बे) **कम्मास-दम्ममें** विहार करते थे।

विषय-संक्षेप

वहाँ भगवान्ने भिक्षुओंको संबोधित किया——"भिक्षुओ!"

"भदन्त!" (कह) भिक्षुओंने भगवान्को उत्तर दिया।

"भिक्षुओ! यह जो चार स्मृति-प्रस्थान (=सति-पट्ठान) हैं, वह सत्त्वोंकी विशुद्धिके लिए; शोक कष्टके विनाशके लिए; दुःख=दौर्मनस्यके अतिक्रमणके लिये, न्याय (=सत्य)की प्राप्तिके लिये, निर्वाणकी प्राप्ति और साक्षात् करनेके लिये, एकायन (=अकेला) मार्ग है। कौनसे चार?—— भिक्षुओ! वहाँ (इस धर्ममें) भिक्षु कायामें [2]कायानुपश्यी हो, उद्योगशील अनुभव (=संप्रजन्य) ज्ञान-युक्त, स्मृति-मान्, लोक (=संसार या शरीर)में अभिध्या (=लोभ) और दौर्मनस्य (=दुःख) को हटाकर विहरता है। वेदनाओं (=सुखादि)में [3]वेदनानुपश्यी हो ० विहरता है। चित्तमें चित्तानुपश्यी ०। धर्मोंमें धर्मानुपश्यी ०।

१—कायानुपश्यना

(१) आनापान (=प्राणायाम)

"भिक्षुओ! कैसे भिक्षु [4]कायामें, कायानुपश्यी हो विहरता है?——भिक्षुओ! भिक्षु अरण्यमें, वृक्षके नीचे, या शून्यागारमें, आसन मारकर, शरीरको सीधाकर, स्मृतिको सामने रखकर बैठता है। वह स्मरण रखते साँस छोळता है, स्मरण रखते ही साँस लेता है। लम्बी साँस छोळते वक्त, 'लम्बी साँस छोळता हूँ'——जानता है। लम्बी साँस लेते वक्त, 'लम्बी साँस लेता हूँ'——जानता है। छोटी साँस छोळते, 'छोटी साँस छोळता हूँ'——जानता है। छोटी साँस लेते 'छोटी साँस लेता हूँ'—— जानता है। सारी कायाको जानते (=अनुभव करते) हुये, साँस छोळना सीखता है। सारी कायाको

---

[1] कुरुके बारेमें देखो बुद्धचर्या पृष्ठ ११८। [2] शरीरको उसके असल स्वरूप केश-नख-मल-मूत्र आदि रूपमें देखनेवाला 'काये कायानुपश्यी' कहा जाता है। [3] सुःख, दुःख, न दुःख न सुख इन तीन चित्तकी अवस्था रूपी वेदनाओंको जैसा हो वैसा देखनेवाला 'वेदनामें वेदनानुपश्यी ०।'

[4] यही आनापान (=प्राणायाम) कहलाता है।

जानते हुये साँस लेना सीखता है। कायाके संस्कार (=गति, क्रिया)को शांत करते साँस छोळना सीखता है। कायाके संस्कारको शांत करते साँस लेना सीखता है। जैसे कि—भिक्षुओ! एक चतुर खरादकार (=भ्रमकार)या खरादकारका अन्तेवासी लम्बे (काष्ठ)को रंगते समय 'लम्बा रंगता हूँ'—जानता है। छोटेको रंगते समय 'छोटा रंगता हूँ'—जानता है। ऐसेही भिक्षुओ! भिक्षु लम्बी साँस छोळते ०, लम्बी साँस लेते ०, छोटी साँस छोळते ०, छोटी साँस लेते ० जानता है। सारी कायाको जानते (=अनुभव करते) हुये साँस छोळना सीखता है, ० साँस लेना ०। काय-संस्कारको शांत करते साँस छोळना सीखता है; ० साँस लेना ०। इस प्रकार कायाके भीतरी भागमें कायानुपश्यी हो विहरता है। कायाके बाहरी भागमें ०। कायाके भीतरी और बाहरी भागमें-कायानुपश्यी विहरता है। कायामें समुदय (=उत्पत्ति) धर्मको देखता विहरता है। कायामें व्यय (=विनाश) धर्मको देखता विहरता है। कायामें समुदय-व्यय (=उत्पत्ति-विनाश) धर्मको देखता विहरता है। 'काया है'—यह स्मृति, ज्ञान और स्मृतिके प्रमाणके लिये उपस्थित रहती है। (तृष्णा आदिमें) अ-लग्न हो विहरता है। लोकमें कुछ भी (मैं, और मेरा करके) नहीं ग्रहण करता। इस प्रकार भी भिक्षुओ! भिक्षु कायामें काय-बुद्धि रखते विहरता है।

(२) *ईर्या-पथ*

"[1]फिर भिक्षुओ! भिक्षु जाते हुये 'जाता हूँ'—जानता है। बैठे हुये 'बैठा हूँ'—जानता है। सोये हुये 'सोया हूँ'—जानता है। जैसे जैसे उसकी काया अवस्थित होती है, वैसेही उसे जानता है। इसी प्रकार कायाके भीतरी भागमें कायानुपश्यी हो विहरता है; कायाके बाहरी भागमें कायानुपश्यी विहरता है। कायाके भीतरी और बाहरी भागोंमें कायानुपश्यी विहरता है। कायामें समुदय-(=उत्पत्ति)-धर्म देखता विहरता है, ० व्यय-(=विनाश) धर्म ०, ० समुदय-व्यय-धर्म ०।०।

(३) *संप्रजन्य*

"[2]और भिक्षुओ! भिक्षु जानते (=अनुभव करते) हुये गमन-आगमन करता है। जानते हुये आलोकन=विलोकन करता है।० सिकोळना फैलाना ०[3] संघाटी, पात्र, चीवरको धारण करता है। जानते हुये आसन, पान, खादन, आस्वादन, करता है।० पाखाना (=उच्चार), पेशाब (=पस्साव) करता है। चलते, खळे होते, बैठते, सोते, जागते, बोलते, चुप रहते, जानकर करनेवाला होता है। इस प्रकार कायाके भीतरी भागमें कायानुपश्यी हो विहरता है।०।

(४) *प्रतिकूल मनसिकार*

"[4]और भिक्षुओ! भिक्षु पैरके तलवेसे ऊपर, केश-मस्तकसे नीचे, इस कायाको नाना प्रकारके मलोंसे पूर्ण देखता (=अनुभव करता) है—इस कायामें हैं—केश, रोम, नख, दाँत, त्वक् (=चमळा), मांस, स्नायु, अस्थि, अस्थि (के भीतरकी) मज्जा, वृक्क, हृदय (=कलेजा), यकृत, क्लोमक, प्लीहा (=तिल्ली), फुफ्फुस, आँत, पतली आँत (=अंत-गुण), उदरस्थ (वस्तुयें), पाखाना, पित्त, कफ़, पीब, लोहू, पसीना, मेद (=वर), आँसू, वसा (=चर्बी), लार, नासा-मल, [5]लसिका, और मूत्र।

---

[1] यही ईर्या-पथ है। [2] यही संप्रजन्य है। [3] भिक्षुओंकी दोहरी चादर। [4] प्रतिकूल-मनसिकार। [5] केहुनी आदि जोळोंमें स्थित तरल पदार्थ।

जैसे भिक्षुओ ! नाना अनाज शाली, व्रीही (=धान), मूँग, उळद, तिल, तण्डुलसे दोनों मुखभरी डेहरी (=मुढोली, पुटोली) हो, उसको आँखवाला पुरुष खोलकर देखे––यह शाली हैं, यह व्रीही हैं, यह मूँग हैं, यह उळद हैं, यह तिल हैं, यह तंडुल हैं। इसी प्रकार भिक्षुओ ! भिक्षु पैरके तलवेके ऊपर केश-मस्तकसे नीचे इस कायाको नाना प्रकारके मलोंसे पूर्ण देखता है––इस कायामें हैं ०। इस प्रकार कायाके भीतरी भागमें कायानुपश्यी हो विहरता है।०।

(५) *धातुमनसिकार*

"और फिर भिक्षुओ ! भिक्षु इस [1]कायाको (इसकी) स्थितिके अनुसार (इसकी) रचनाके अनुसार देखता है––इस कायामें हैं––पृथिवी धातु (=पृथिवी महाभूत), आप (=जल)-धातु, तेज (=अग्नि) धातु, वायु-धातु। **जैसे** कि भिक्षुओ ! दक्ष (=चतुर) गो-घातक या गो-घातकका अन्तेवासी, गायको मारकर बोटी-बोटी काटकर चौरस्तेपर बैठा हो। ऐसे ही भिक्षुओ ! भिक्षु इस कायाको स्थितिके अनुसार, रचनाके अनुसार देखता है।०।इस प्रकार कायाके भीतरी भागको ०।

(६-१४) *श्मशानयोग*

१––"[2]और भिक्षुओ ! भिक्षु एक दिनके मरे, दो दिनके मरे, तीन दिनके मरे, फूले, नीले पळ गये, पीब-भरे, (मृत)-शरीरको श्मशानमें फेंकी देखे। (और उसे) वह इसी (अपनी) कायापर घटावे––यह भी काया इसी धर्म (=स्वभाव)-वाली, ऐसी ही होनेवाली, इससे न बच सकनेवाली है। इस प्रकार कायाके भीतरी भाग०।०।

२––"और भिक्षुओ ! भिक्षु कौओंसे खाये जाते, चील्होंसे खाये जाते, गिद्धोंसे खाये जाते, कुत्तोंसे खाये जाते, नाना प्रकारके जीवोंसे खाये जाते, श्मशानमें फेंके (मृत-)शरीरको देखे। वह इसी (अपनी) कायापर घटावै––यह भी काया ०।०।

३––"और भिक्षुओ ! भिक्षु माँस-लोहू-नसोंसे बँधे हड्डी-कंकालवाले शरीरको श्मशानमें फेंका देखे०।०।

४––"० माँस-रहित लोहू-लगे, नसोंसे बँधे०।०।० माँस-लोहू-रहित नसोंसे बँधे०।०० । बंधन-रहित हड्डियोंको दिशा-विदिशामें फेंकी देखे––कहीं हाथकी हड्डी है, ० पैरकी हड्डी ०,० जंघाकी हड्डी ०, ० उरुकी हड्डी ०,० कमरकी हड्डी ०, ० पीठके काँटे ०, ० खोपळी ०; और इसी (अपनी) कायापर घटावे ०।०।[3]

५––"और भिक्षुओ ! भिक्षु शंखके समान सफ़ेद वर्णके हड्डीवाले शरीरको श्मशानमें फेंका देखे ०।०।० वर्षों-पुरानी जमाकी हड्डियोंवाले ०।०।० सड़ी चूर्ण होगई हड्डियोंवाले ०।०।

२–वेदनानुपश्यना

"कैसे भिक्षुओ ! भिक्षु [4]वेदनाओंमें वेदनानुपश्यी (हो) विहरता है ?––भिक्षुओ ! भिक्षु सुख-वेदनाको अनुभव करते 'सुख-वेदना अनुभव कर रहा हूँ'––जानता है। दुःख-वेदनाको अनुभव करते 'दुःखवेदना अनुभव कर रहा हूँ'––जानता है। अदुःख-असुख वेदनाको अनुभव करते 'अदुःख-असुख-वेदना अनुभव कर रहा हूँ'––जानता है। स-आमिष (=भोग-पदार्थ-सहित) सुख-वेदनाको

---

[1] धातु-मनसिकार।
[2] श्मशान। [3] चौदह (१) कायानुपश्यना समाप्त। [4] (२) वेदनानुपश्यना।

अनुभव करते ०। निर्-आमिष सुख-वेदना ०। स-आमिष दुःख-वेदना ०। निर्-आमिष दुःख-वेदना ०। स-आमिष अदुःख-असुख-वेदना ०। निर्-आमिष अदुःख-असुख-वेदना ०। इस प्रकार कायाके भीतरी भाग ०।०।

३—चित्तानुपश्यना

"कैसे भिक्षुओ! भिक्षु चित्तमें [1]चित्तानुपश्यी हो विहरता है?—यहाँ भिक्षुओ! भिक्षु स-राग चित्तको 'स-राग चित्त है'—जानता है। विराग (=राग-रहित) चित्तको 'विराग चित्त है'—जानता है। स-द्वेष चित्तको 'सद्वेष चित्त है'—जानता है। वीत-द्वेष (=द्वेष-रहित) चित्तको 'वीत-द्वेष चित्त है'—जानता है। स-मोह चित्तको ०। वीत-मोह चित्तको ०। संक्षिप्त चित्तको ०। विक्षिप्त चित्तको ०। महद्-गत (=महापरिमाण) चित्तको ०। अ-महद्गत चित्तको ०। स-उत्तर ०। अन्-उत्तर (=उत्तम) ०। समाहित (=एकाग्र) ०। अ-समाहित ०। विमुक्त ०। अ-विमुक्त ०। इस प्रकार कायाके भीतरी भाग ०।०।

४—धर्मानुपश्यना

(१) नीवरण

"कैसे भिक्षुओ! भिक्षु धर्मोंमें [2]धर्मानुपश्यी हो विहरता है?—भिक्षुओ! भिक्षु पाँच नीवरण धर्मोंमें धर्मानुपश्यी (हो) विहरता है। कैसे भिक्षुओ! भिक्षु पाँच [3]नीवरण धर्मोंमें धर्मानुपश्यी हो विहरता है?—यहाँ भिक्षुओ! भिक्षु विद्यमान भीतरी **काम-च्छन्द** (=कामुकता)को 'मेरेमें भीतरी काम-च्छन्द विद्यमान है'—जानता है। अ-विद्यमान भीतरी कामच्छन्दको 'मेरेमें भीतरी कामच्छन्द नहीं विद्यमान है'—जानता है। अन्-उत्पन्न कामच्छन्दकी जैसे उत्पत्ति होती है, उसे जानता है। जैसे उत्पन्न हुये कामच्छन्दका प्रहाण (=विनाश) होता है, उसे जानता है। जैसे विनष्ट काम-च्छन्दकी आगे फिर उत्पत्ति नहीं होती, उसे जानता है। विद्यमान भीतरी **व्यापाद** (=द्रोह)को—'मुझमें भीतरी व्यापाद विद्यमान है'—जानता है। अ-विद्यमान भीतरी व्यापादको—'मेरेमें भीतरी व्यापाद नहीं विद्यमान है'—जानता है। जैसे अन्-उत्पन्न व्यापाद उत्पन्न होता है, उसे जानता है। जैसे उत्पन्न व्यापाद नष्ट होता है, उसे जानता है। जैसे विनष्ट व्यापाद आगे फिर नहीं उत्पन्न होता, उसे जानता है। विद्यमान भीतरी **स्त्यान-मृद्ध** (=थीन-मिद्ध=शरीर-मनकी अलसता)०।०।

० भीतरी **औद्धत्य-कौकृत्य** (=उद्धच्च-कुक्कुच्च=उद्वेग-खेद,) ०।०।

० भीतरी **विचिकित्सा** (=संशय) ०।०।

"इस प्रकार भीतर धर्मोंमें धर्मानुपश्यी हो विहरता है। बाहर धर्मोंमें (भी) धर्मानुपश्यी हो विहरता है। भीतर-बाहर ०। धर्मोंमें समुदय (=उत्पत्ति) धर्मका अनुपश्यी (=अनुभव करने-वाला) हो विहरता है। ० व्यय (=विनाश)-धर्म ०। ० उत्पत्ति-विनाश-धर्म ०। स्मृतिके प्रमाणके लिये ही, 'धर्म है'—यह स्मृति उसकी बराबर विद्यमान रहती है। वह (तृष्णा आदिमें) अ-लग्न हो विहरता है। लोकमें कुछ भी (मैं और मेरा) करके ग्रहण नहीं करता। इस प्रकार भिक्षुओ! भिक्षु धर्मोंमें धर्म-अनुपश्यी हो विहरता है।

---

[1] (३) चित्तानुपश्यना। [2] (४) धर्मानुपश्यना।

[3] **पाँच नीवरण हैं—कामच्छन्द, व्यापाद, स्त्यान-मृद्ध, औद्धत्य-कौकृत्य, विचिकित्सा।**

(२) स्कंध

"और फिर भिक्षुओ ! भिक्षु पाँच उपादान[1] स्कंध धर्मोंमें धर्म-अनुपश्यी हो विहरता है। कैसे भिक्षुओ ! भिक्षु पाँच उपादानस्कंध धर्मोंमें धर्म-अनुपश्यी हो विहरता है ? भिक्षुओ ! भिक्षु (अनुभव करता है)—'यह रूप है', 'यह रूपकी उत्पत्ति (=समुदय)', 'यह रूपका अस्त-गमन (=विनाश) है'। ० संज्ञा ०। ० संस्कार ०। ० विज्ञान ०। इस प्रकार अध्यातम (=शरीरके भीतरी) धर्मोंमें धर्म-अनुपश्यी हो विहरता है। वहिर्धा (=शरीरके वाहरी) धर्मोंमें धर्म-अनुपश्यी ०। शरीरके भीतरी-बाहरी धर्मों (=वस्तुओं) में समुदय (=उत्पत्ति)-धर्मको अनुभव करता विहरता है। वस्तुओंमें विनाश (=व्यय)-धर्मको अनुभव करता विहरता है। वस्तुओंमें उत्पत्ति-विनाश-धर्मको अनुभव करता विहरता है। सिर्फ़ ज्ञान और स्मृतिके प्रमाणके लिये ही 'धर्म है'—यह स्मृति उसको बराबर विद्यमान रहती है। वह अनासक्त हो विहरता है। लोकमें कुछ भी नहीं ग्रहण करता। इस प्रकार भिक्षुओ ! भिक्षु पाँच उपादान-स्कंधोंमें धर्म (=स्वभाव) अनुभव करता (=धर्म-अनुपश्यी) विहरता है।

(३) आयतन

"और फिर भिक्षुओ ! भिक्षु छै आध्यात्मिक (=शरीरके भीतरी), बाह्य (=शरीरके बाहरी) [2]आयतन धर्मोंमें धर्म अनुभव करता विहरता है। कैसे भिक्षुओ ! भिक्षु छै भीतरी बाहरी आयतन(-रूपी) धर्मोंमें धर्म अनुभव करता विहरता है ?—भिक्षुओ ! भिक्षु चक्षुको अनुभव करता है, रूपोंको अनुभव करता है, और जो उन दोनों (=चक्षु और रूप) करके संयोजन[3] उत्पन्न होता-है, उसे भी अनुभव करता है। जिस प्रकार अन्-उत्पन्न संयोजनकी उत्पत्ति होती है, उसे भी जानता है। जिस प्रकार उत्पन्न संयोजनका प्रहाण (=विनाश) होता है, उसे भी जानता है। जिस प्रकार प्रहीण (=विनष्ट) संयोजनकी आगे फिर उत्पत्ति नहीं होती, उसे भी जानता है। श्रोत्रको अनुभव करता है; शब्दको अनुभव करता है ०। घ्राण (=सूँघनेकी शक्ति, घ्राण-इंद्रिय)को अनुभव करता है। गंधको अनुभव करता है ०। जिह्वा ०।०।०। काया (=त्वक्-इंद्रिय, ठंडा गर्म आदि जाननेकी शक्ति) ०' स्प्रष्टव्य (=ठंडा गर्म आदि) ०।०। मनको अनुभव करता है। धर्म (=मनके विषय)को अनुभव करता है। दोनों (=मन और धर्म) करके जो [3]संयोजन उत्पन्न होता है, उसको भी अनुभव करता है।०। इस प्रकार अध्यातम (=शरीरके भीतर) धर्मों (=पदार्थों) में धर्म (=स्वभाव) अनुभव करता विहरता है, बहिर्धा (=शरीरके बाहर) ०, अध्यातम-बहिर्धा ०। धर्मोंमें उत्पत्ति-धर्मको ०, ० विनाश-धर्मको ०, ० उत्पत्ति-विनाश-धर्मको ०। सिर्फ़ ज्ञान और स्मृतिके प्रमाणके लिये ०। इस प्रकार भिक्षुओ ! भिक्षु शरीरके भीतर और बाहरवाले छै आयतन धर्मों (=पदार्थों) में धर्म (=स्वभाव) अनुभव करता विहरता है।

---

[1] **स्कंध—रूप, वेदना, संज्ञा, संस्कार, विज्ञान।**

[2] **आयतन—चक्षुः, श्रोत्र, घ्राण (=नासिक), जिह्वा (=रसना), काय (=त्वक्), मन। इनमें पहिले पाँच बाह्य आयतन हैं, मन आध्यात्मिक (=शरीरके भीतरका) आयतन है।**

[3] **संयोजन दश यह हैं—प्रतिघ (=प्रतिहिंसा), मान (=अभिमान), दृष्टि (=धारणा, मत), विचिकित्सा (=संशय), शील-व्रत-परामर्श (=शील और व्रतका ख्याल), भव-राग (आवागमन-प्रेम), ईर्षा, मात्सर्य और अ-विद्या। संयोजनका शब्दार्थ बन्धन है।**

(४) बोध्यंग

"और भिक्षुओ ! भिक्षु सात बोधि-अंग धर्मों (=पदार्थों) में धर्म (=स्वभाव) अनुभव करता विहरता है। कैसे भिक्षुओ।०? भिक्षुओ ! भिक्षु विद्यमान भीतरी (=अध्यात्म) स्मृति संबोधि-अंगको 'मेरे भीतर स्मृति संबोधि-अंग है'—अनुभव करता है। अ-विद्यमान भीतरी स्मृति संबोधि-अंगको 'मेरे भीतर स्मृति संबोधि-अंग नहीं है'—अनुभव करता है। जिस प्रकार अन्-उत्पन्न स्मृति संबोधि-अंगकी उत्पत्ति होती है; उसे जानता है। जिस प्रकार उत्पन्न स्मृति संबोधि-अंगकी भावना परिपूर्ण होती है; उसे भी जानता है। ० भीतरी धर्म-विचय (=धर्म-अन्वेषण) संबोधि-अंग ०। ० वीर्य ०। ० प्रीति ०। ० प्रश्रब्धि ०। ० समाधि ०। विद्यमान भीतरी उपेक्षा संबोधि-अंगको 'मेरे भीतर उपेक्षा संबोधि-अंग है'—अनुभव करता है। अ-विद्यमान भीतरी उपेक्षा संबोधि-अंगको 'मेरे भीतर उपेक्षा संबोधि-अंग नहीं है'—अनुभव करता है। जिस प्रकार अन्-उत्पन्न उपेक्षा संबोधि-अंगकी उत्पत्ति होती है; उसे जानता है। जिस प्रकार उत्पन्न उपेक्षा संबोधि-अंगकी भावना परिपूर्ण होती है; उसे जानता है। इस प्रकार शरीरके धर्मोंमें धर्म अनुभव करता विहरता; शरीरके बाहर ०, शरीरके भीतर-बाहर ०।०। इस प्रकार भिक्षुओ ! भिक्षु शरीरके भीतर और बाहर वाले सात संबोधि-अंग धर्मोंमें धर्म अनुभव करता विहरता है।

(५) आर्य-सत्य

"और फिर भिक्षुओ ! भिक्षु चार [1]आर्य-सत्य धर्मोंमें धर्म अनुभव करता विहरता है। कैसे ०? भिक्षुओ ! 'यह दुःख है'—ठीक ठीक (=यथाभूत=जैसा है वैसा) अनुभव करता है। 'यह दुःखका समुदय (=कारण) है'—ठीक ठीक अनुभव करता है। 'यह दुःखका निरोध (=विनाश) है'—ठीक ठीक अनुभव करता है। 'यह दुःखके निरोधकी ओर ले जानेवाला मार्ग (=दुःख-निरोध गामिनी-प्रतिपद्) है'—ठीक ठीक अनुभव करता है।

(इति) प्रथम भाणवार ॥१॥

"इस प्रकार भीतरी धर्मोंमें धर्मानुपश्यी हो विहरता है। ०। अ-लग्न हो विहरता है। लोकमें किसी (वस्तु) को भी (मैं और मेरा) करके नहीं ग्रहण करता। इस प्रकार भिक्षुओ ! भिक्षु चार आर्य-सत्य धर्मोंमें धर्मानुपश्यी हो विहरता है।

(क) दुःख-आर्य-सत्य—

"क्या है भिक्षुओ ! **दुःख** आर्य-सत्य ? जन्म भी दुःख है। बुढापा (=जरा) भी दुःख है। **मरण** भी दुःख है। शोक, परिदेवन (=रोना-काँदना), दुःख, दौर्मनस्य, उपायास (=हैरानी-परेशानी) भी दुःख है। अ-प्रियोंका संयोग भी दुःख है। प्रियोंका वियोग भी दुःख है। इच्छित वस्तु जो नहीं मिलती वह भी दुःख है। संक्षेपमें पाँचो **उपादान-स्कंध** ही दुःख हैं।' क्या है, भिक्षुओ ! जन्म (=जाति)? उन उन प्राणियोंका उन उन योनियों (=सत्त्वनिकायों) में जो जन्म=संजाति,=अवक्रमण=अभि-निर्वृत्ति, (भौतिक और अभौतिक) स्कंधोंका प्रादुर्भाव, आयतनों (=इन्द्रिय-विषयों) का लाभ है; यही भिक्षुओ ! जन्म कहा जाता है। क्या है, भिक्षुओ ! बुढ़ापा (=**जरा**) ? उन उन प्राणियोंका उन उन योनियोंमें जो बूढ़ा होना=जीर्णता, खांडित्य (=दाँत टूटना), पालित्य (=बाल पकना), चमळा-

---

[1]**आर्य-सत्य चार हैं—दुःख, समुदय, निरोध, निरोध-गामिनी-प्रतिपद्।**

सिकुळना, आयुकी हानि, इन्द्रियोंका परिपाक है; यहीं भिक्षुओ ! बुढ़ापा कहा जाता है। क्या है, भिक्षुओ ! **मरण** ? उन उन प्राणियोंका उन उन योनियोंसे जो च्युत होना=च्यवनता, बिलगाव, अन्तर्धान होना, मृत्यु, मरण, काल करना, स्कन्धोंका बिलगाव, कलेवरका छूटना, जीवनका विच्छेद है; यही ०। क्या है भिक्षुओ ! **शोक** ? उन उन व्यसनोंसे युक्त, उन उन दुःखोंसे पीडित (व्यक्ति)का जो शोक=शोचना =शोचितत्त्व, भीतर शोक, भीतर परिशोक है; यही ०। क्या है, भिक्षुओ ! **परिदेव** ? उन उन व्यसनों-से युक्त, उन उन दुःखोंसे पीडित (व्यक्ति)का जो आदेवन=परिदेवन (=रोना-काँदना), आदेव= परिदेव=आदेवितत्त्व=परिदेवितत्त्व है, यही ०। क्या है, भिक्षुओ ! दुःख ? भिक्षुओ ! जो शारीरिक दुःख=शारीरिक पीडा, कायाके स्पर्शसे (हुआ) दुःख=अ-सात अनुभव (=वेदना) है; यही ०। क्या है, भिक्षुओ ! **दौर्मनस्य** ? भिक्षुओ ! जो मानसिक दुःख=मानसिक पीडा, मनके स्पर्शसे (हुआ) दुःख=अ-सात (=प्रतिकूल) अनुभव है; यही ०। क्या है, भिक्षुओ ! **उपायास** ? भिक्षुओ ! उन उन व्यसनोंसे युक्त, उन उन दुःखोंसे पीडित (व्यक्ति)का, जो आयास=उपायास (=हैरानी-परेशानी) =आयासितत्त्व=उपायासितत्त्व है; यही ०। क्या है, भिक्षुओ ! 'अप्रियोंका संयोग भी दुःख' ? किसी (पुरुष)के अन्-इष्ट (=अनिच्छित)=अ-कान्त=अमानाप जो रूप, शब्द, गंध, रस, स्प्रष्टव्य वस्तुयें हैं, या जो उसके अनर्थाभिलाषी, अ-हिताभिलाषी,=अ-प्राशु-इच्छुक, अ-मंगल-इच्छुक (व्यक्ति) हैं, उनके साथ जो समागम=समवधान, मिश्रण है; यही ०। क्या है, भिक्षुओ ! 'प्रियोंका वियोग भी दुःख' ? किसी (पुरुष)के इष्ट=कान्त=मनाप जो रूप, शब्द, गंध, रस, स्प्रष्टव्य वस्तुयें हैं, या जो उसके अर्थाभिलाषी, हिताभिलाषी=प्राशु-इच्छुक, मंगल-इच्छुक माता, पिता, भ्राता, भगिनी, कनिष्ठा (बहिन), मित्र, अमात्य, या जाति, रक्तसंबंधी हैं, उनके साथ अ-संगति=अ-समागम=अ-समवधान =अ-मिश्रण है; यही ०। क्या है, भिक्षुओ ! 'इच्छित वस्तु जो नहीं मिलती, वह भी दुःख' ? भिक्षुओ ! जन्मनेके स्वभाववाले प्राणियोंको यह इच्छा उत्पन्न होती है—'अहो ! हम जन्म स्वभाववाले न होते, हमारे लिये जन्म न आता'; किन्तु यह इच्छा करनेसे मिलनेवाला नहीं। यह भी 'इच्छित वस्तु जो नहीं मिलती, वह भी दुःख' है। भिक्षुओ ! जरा-स्वभाववाले प्राणियोंको इच्छा होती है—'अहो ! हम जरा स्वभाववाले न होते, हमारे लिये जरा न आती'; किन्तु यह इच्छा करनेसे मिलनेवाला नहीं है। यह भी ०। भिक्षुओ ! व्याधि-स्वभाववाले प्राणियोंको इच्छा होती है—०। भिक्षुओ ! मरण-स्वभाववाले प्राणियोंको इच्छा होती है—०। भिक्षुओ ! शोक-स्वभाववाले प्राणियोंको इच्छा होती है—०। भिक्षुओ ! परिदेव-स्वभाववाले०।० दुःख-स्वभाववाले०।० दौर्मनस्य-स्वभाववाले०।० उपायास-स्वभाववाले०। क्या है, भिक्षुओ ! 'संक्षेपमें पाँचों उपादानस्कंध ही दुःख है ? जैसे कि रूप-उपादान-स्कंध, वेदना०, संज्ञा०, संस्कार०, विज्ञान-उपादानस्कंध—यही भिक्षुओ ! 'संक्षेपमें पाँचों उपादानस्कंध ही दुःख' कहे जाते हैं।

"भिक्षुओ ! यह दुःख **आर्यसत्य** कहा जाता है।

(ख) दुःख-समुदय आर्यसत्य—

"क्या है, भिक्षुओ ! दुःख-समुदय आर्यसत्य ? जो यह राग-युक्त, नन्दी—उन उन (वस्तुओं) में अभिनन्दन करनेवाली, आवागमनकी **तृष्णा** है; जैसे कि भोग-तृष्णा, भव(=जन्म)-तृष्णा, विभव-तृष्णा। भिक्षुओ ! वह तृष्णा उत्पन्न होने पर कहाँ उत्पन्न होती है; स्थित होनेपर कहाँ स्थित होती है ? जो लोकमें (मनुष्यका) प्रिय, सात (=अनुकूल) है, वहीं यह तृष्णा उत्पन्न होनेपर उत्पन्न होती है, स्थित होनेपर स्थित होती है। क्या है लोकमें प्रिय, सात ? चक्षु लोकमें प्रिय=सात है, यहाँ यह तृष्णा ० उत्पन्न होती है ०। श्रोत्र ०। घ्राण ०। जिह्वा ०। काय ०। मन०। (चक्षुका विषय) रूप ०। शब्द ०। गन्ध ०। रस ०। स्प्रष्टव्य ०। धर्म ०। चक्षुर्विज्ञान (=आँख और रूपके संबंधसे उत्पन्न ज्ञान)०। श्रोत्रविज्ञान ०। घ्राणविज्ञान ०। जिह्वाविज्ञान ०। कायविज्ञान ०। मनोविज्ञान ०।

चक्षु-संस्पर्श (=आँखका उसके विषय रूपके साथ समागम) ०। श्रोत्रसंस्पर्श ०। घ्राणसंस्पर्श ०। जिह्वासंस्पर्श ०। कायसंस्पर्श ०। चक्षु-संस्पर्शज वेदना (=आँख और रूपके समागमसे जो ज्ञान होता है, और उसमें अनुकूलता या प्रतिकूलताको देखकर चित्तको दुःख या सुख होता है वह वेदना कही जाती है) ०। श्रोत्रसंस्पर्शज वेदना ०। घ्राणसंस्पर्शज वेदना ०। जिह्वासंस्पर्शज वेदना ०। कायसंस्पर्शज वेदना ०। मनःसंस्पर्शज वेदना ०। रूपसंज्ञा (=रूप संबंधी ज्ञानका अनुभव) ०। शब्दसंज्ञा ०। गंध-संज्ञा ०। रससंज्ञा ०। स्प्रष्टव्यसंज्ञा ०। धर्मसंज्ञा ०। रूपसंचेतना (=रूपका ख्याल) ०। शब्दसंचे-तना ०। गंधसंचेतना ०। रससंचेतना ०। स्प्रष्टव्यसंचेतना ०। धर्मसंचेतना ०। रूपतृष्णा ०। शब्द-तृष्णा ०। गंधतृष्णा ०। रसतृष्णा ०। स्प्रष्टव्यतृष्णा ०। धर्मतृष्णा ०। रूपवितर्क ०। शब्दवितर्क ०। गंधवितर्क०। रसवितर्क०। स्प्रष्टव्यवितर्क०। धर्मवितर्क०। रूपविचार०। शब्दविचार०। गंधविचार०। रसविचार०। स्प्रष्टव्यविचार०। धर्मविचार लोकमें प्रिय सात है, यहाँ वह तृष्णा ० उत्पन्न होती है०।

"भिक्षुओ! यह दुःखसमुदय आर्यसत्त्य कहा जाता है।

(ग) दुःख-निरोध आर्यसत्त्य

"क्या है, भिक्षुओ! दुःखनिरोध आर्यसत्त्य? जो उसी तृष्णाका सर्वथा निरोध, त्याग=प्रति-निस्सर्ग, मुक्ति=अन्-आलय है। भिक्षुओ! वह तृष्णा कहाँ प्रहीण=निरुद्ध होती है? लोकमें जो प्रिय =सात हैं, यहाँ वह तृष्णा प्रहीण=निरुद्ध होती है। क्या है लोकमें प्रिय सात? चक्षु ०[1] धर्मविचार लोकमें प्रिय=सात है, यहाँ वह तृष्णा प्रहीण=निरुद्ध होती है।

"भिक्षुओ! यह दुःखनिरोध आर्यसत्त्य कहा जाता है।

(घ) दुःख-निरोधगामिनी प्रतिपद् आर्यसत्त्य

"क्या है भिक्षुओ! दुःखनिरोधगामिनी प्रतिपद् आर्यसत्य? यही आर्य अष्टांगिक मार्ग जैसे कि—सम्यग्दृष्टि, सम्यक्संकल्प, सम्यग्वचन, सम्यक्कर्मान्त, सम्यग्आजीव, सम्यग्व्यायाम, सम्यक्-स्मृति, सम्यक्समाधि। क्या है भिक्षुओ! **सम्यग्दृष्टि?** जो दुःख-विषयक ज्ञान है, दुःखसमुदय-विषयक ज्ञान है, दुःख-निरोधविषयक ज्ञान है, दुःखनिरोधगामिनीप्रतिपद-विषयक ज्ञान है; भिक्षुओ! यह सम्यग्-दृष्टि कही जाती है। क्या है, भिक्षुओ! सम्यक्संकल्प? निष्कामता (=अनासक्ति)का संकल्प, अ-व्यापाद(=अद्रोह)संकल्प, अहिंसासंकल्प, यह भिक्षुओ! सम्यक्संकल्प कहा जाता है। क्या है, भिक्षुओ! सम्यग्वचन? झूठत्याग, चुगलीत्याग, कटुवचनत्याग, बकवासका त्याग; यह भिक्षुओ! सम्यग्वचन कहा जाता है। क्या है, भिक्षुओ! सम्यक्कर्मान्त? हिंसात्याग, चोरीत्याग, व्यभिचार-त्याग; यह ०। क्या है, भिक्षुओ! सम्यग्आजीव? भिक्षुओ! आर्यश्रावक मिथ्याआजीव (=झूठी जीविका)को छोळ सम्यग्आजीवसे जीविका चलाता है; यह ०। क्या है, भिक्षुओ! सम्यग्व्यायाम? भिक्षुओ! यहाँ भिक्षु अनुत्पन्न पापों=बुराइयों(=अकुशलधर्मों)को न उत्पन्न होने देनेके लिये छन्द (=इच्छा) उत्पन्न करता है, उद्योग करता है, =वीर्यारम्भ करता है, चित्तको रोकता थामता है। उत्पन्न पापों=बुराइयोंके नाशके लिये छन्द उत्पन्न करता है ०। अनुत्पन्न सुकर्मों (=कुशलधर्मों)के उत्पादनके लिये छन्द उत्पन्न करता है ०। उत्पन्न कुशलधर्मोंकी स्थिति, अ-नाश, वृद्धि, विपुलता, भावना-की पूर्णताके लिये छन्द उत्पन्न करता है ०। यह ०। क्या है, भिक्षुओ! सम्यक्स्मृति? जब भिक्षुओ! भिक्षु ०[2] कायामें कायानुपश्यी हो विहरता है। ० चित्तमें चित्तानुपश्यी ०। यह कही जाती है भिक्षुओ! सम्यक्स्मृति। क्या है, भिक्षुओ! सम्यक्समाधि? भिक्षुओ! यहाँ भिक्षु कामोंसे अलग हो, बुराइयोंसे

---

[1] ऊपर जैसा पाठ। [2] (दुःखका कारण तृष्णा आदि)।

अलग हो वितर्क और विचारयुक्त विवेकसे उत्पन्न प्रीति सुखवाले प्रथम ध्यानको प्राप्त हो विहार करता है। ०[1] द्वितीय ध्यान ०। ० तृतीय ध्यान ०। ० चतुर्थ ध्यान ०। यह कही जाती है भिक्षुओ ! सम्यक्-समाधि।

"भिक्षुओ ! यह दुःखनिरोधगामिनी प्रतिपद् आर्यसत्य कहा जाता है।

"इस प्रकार भीतरी धर्मोंमें धर्मानुपश्यी हो विहरता है ०।। अ-लग्न हो विहरता है। लोकमें किसी (वस्तु)को भी (मैं और मेरा) करके नहीं ग्रहण करता। इस प्रकार भिक्षुओ ! भिक्षु चार आर्य-सत्य धर्मोंमें धर्मानुपश्यी हो विहरता है।

"भिक्षुओ ! जो कोई इन चार स्मृति-प्रस्थानोंकी इस प्रकार सात वर्ष भावना करे, उसको दो फलोंमें एक फल (अवश्य) होना चाहिए—इसी जन्ममें आज्ञा(=अर्हत्व)का साक्षात्कार, या [2]उपाधि शेष होनेपर अनागामी-भाव। रहने दो भिक्षुओ ! सात वर्ष, जो कोई इन चार स्मृति-प्रस्थानों-को इस प्रकार छै वर्ष भावना करे ०।० पाँच वर्ष ०।० चार वर्ष ०।० तीन वर्ष ०। ० दो वर्ष ०। ० एक वर्ष ०। ० सात मास ०। ० छै मास ०। ० पाँच मास ०। ० चार मास ०। ० तीन मास ०। ० दो मास ०। ० एक मास ०। ० अर्द्ध मास ०। ० सप्ताह ०।

"भिक्षुओ ! 'वह जो चार स्मृति-प्रस्थान हैं; वह सत्त्वोंकी विशुद्धिके लिए; शोक-कष्टके विनाशके लिए; दुःख दौर्मनस्यके अतिक्रमणके लिये, न्याय (=सत्य)की प्राप्तिके लिये, निर्वाणकी प्राप्ति और साक्षात् करनेके लिये, एकायन मार्ग है।' यह जो (मैंने) कहा, इसी कारणसे कहा।"

भगवान्ने यह कहा, सन्तुष्ट हो, उन भिक्षुओंने भगवान्के भाषणको अभिनन्दित किया।[3]

१—इति मूलपरियायवग्ग (१।१)

---

[1] कायानुपश्यनाकी भाँति पाठ। [2] देखो पृष्ठ २८-२९।

[3] थोळेसे अंशकी अधिकतासे यही सूत्र, मज्झिम-निकायका सतिपट्ठान-सुत्त (१०) है।

२३—पायासिराजञ्ञ-सुत्त (२।१०)

परलोकवादका खंडन-मंडन। १—मरनेके साथ जीवन उच्छिन्न—(१) मरे नहीं लौटते; (२) धर्मात्मा आस्तिकोंको भी मरनेकी अनिच्छा; (३) मृत शरीरसे जीवके जानेका चिन्ह नहीं। २—मत त्यागमें लोक-लाजका भय। ३—सत्कार रहित यज्ञका कम फल।

ऐसा मैंने सुना—एक समय आयुष्मान् **कुमार कस्सप** (कुमार काश्यप) **कोसल** देशमें पाँचसौ भिक्षुओंके बळे संघके साथ विचरते, जहाँ **सेतव्या** (=श्वेतांबी) नामक कोसलोंका नगर था, वहाँ पहुँचे। वहाँ आयुष्मान् कुमार काश्यप सेतव्यामें सेतव्याके उत्तर **सिंसपावन**में विहार करते थे।

परलोकवादका खंडन मंडन

उस समय **पायासी राजन्य** (=राजञ्ञ, माण्डलिक राजा) जनाकीर्ण, तृण-काष्ट-उदक-धान्य-संपन्न राज-भोग्य कोसलराज **प्रसेनजित** द्वारा दत्त, राज-दाय, ब्रह्मदेय सेतव्याका स्वामी होकर रहता था।

१—मरनेके साथ जीवन उच्छिन्न

उस समय पायासी राजन्यको इस प्रकारकी बुरी धारणा उत्पन्न हुई थी—यह (लोक) भी नहीं है, परलोक भी नहीं है, जीव मर कर पैदा नहीं होते, अच्छे और बुरे कर्मोंका कोई भी फल नहीं होता।

सेतव्याके ब्राह्मण-गृहस्थोंने सुना—श्रमण गौतमके श्रावक (=शिष्य) श्रमण कुमार कस्सप कोसल देशमें पाँचसौ भिक्षुओंके बळे संघके साथ ० सिंसपावनमें विहार करते हैं। उन आप कुमार काश्यपकी ऐसी कल्याणमय कीर्ति फैली है—वह पंडित=व्यक्त, मेधावी, बहुश्रुत, मनकी बातको कहनेवाले, अच्छी प्रतिभावाले, ज्ञानी, और अर्हत् हैं। इस प्रकारके अर्हतोंका दर्शन अच्छा होता है। तब सेतव्याके ब्राह्मण गृहस्थ सेतव्यासे निकलकर, झुंड बाँधकर इकट्ठे उत्तरकी ओर जहाँ सिंसपावन था उस ओर जाने लगे।

उस समय पायासी राजन्य दिनमें आराम करनेके लिये प्रासादके ऊपर गया हुआ था। पायासी-राजन्यने उन ब्राह्मण गृहस्थोंको ० जाते हुए देखा। देखकर अपने क्षत्ता (=प्राइवेट सेक्रेटरी)को संबोधित किया—

"क्यों क्षत्ता! ये सेतव्याके ब्राह्मण गृहस्थ ० सिंसपावनकी ओर क्यों जा रहे हैं?"

"भो! श्रमण कुमार काश्यप श्रमण **गौतम**के श्रावक ० सेतव्यामें आये हुए हैं ०। उन कुमार कस्सपकी ऐसी ० कीर्ति फैली है—वह पण्डित, व्यक्त ०। उन्हीं कुमार कस्सपके दर्शनके लिये ० जा रहे हैं।

"तो क्षत्ता! जहाँ सेतव्याके ब्राह्मण गृहस्थ हैं वहाँ जाओ। जाकर ० ऐसा कहो—पायासी राजन्य आप लोगोंको ऐसा कहता है—आप लोग थोळा ठहरें। पायासीराजन्य भी० दर्शनार्थ चलेंगे। श्रमण

कुमार काश्यप सेतव्याके ब्राह्मण-गृहस्थोंको बाल(=मूर्ख)=अव्यक्त समझ(कर कहता) है—यह लोक भी है, परलोक भी है, जीव मरकर होते भी हैं, अच्छे और बुरे कर्मोंके फल भी हैं। (किन्तु यथार्थमें)—क्षत्ता ! यह लोक नहीं है, परलोक नहीं है ०।"

"बहुत अच्छा"—कहकर क्षत्ता० वहाँ गया। जाकर बोला—"पायासी राजन्य आप लोगोंको यह कह रहा है—आप लोग थोळा ठहरें ०।

तब पायासी राजन्य सेतव्याके ब्राह्मण-गृहस्थोंको साथ ले जहाँ सिंसपावनमें आयुष्मान् कुमार काश्यप थे वहाँ गया। जाकर आयुष्मान् काश्यपके साथ कुशल-क्षेम पूछनेके बाद एक ओर बैठ गया। **सेतव्याके** ब्राह्मण-गृहस्थोंमें, कितने ० कुमार काश्यपको अभिवादन करके एक ओर बैठ गये; कितने० कुशल-क्षेम पूछनेके बाद एक ओर बैठ गये; कितने कुमार काश्यपकी ओर हाथ जोळकर एक ओर बैठ गये; कितने अपने नाम-गोत्र को सुना कर एक ओर बैठ गये; कितने चुपचाप एक ओर बैठ गये।

एक ओर बैठे हुए **पायासी** राजन्यने आयुष्मान् **कुमार काश्यपसे** यह कहा—"हे काश्यप ! मैं ऐसी दृष्टि, ऐसे सिद्धान्तको माननेवाला हूँ—यह लोक भी नहीं है , परलोक भी नहीं ०।"

"राजन्य ! पहले ऐसी दृष्टि और ऐसे सिद्धान्तके माननेवालेको मैंने न तो देखा था और न सुना था। तुम कैसे कहते हो—यह लोक भी नहीं है ०। तो राजन्य ! तुम्हींसे पूछता हूँ, जैसा तुम्हें सूझे वैसा उत्तर दो—राजन्य ! तो क्या समझते हो, ये चाँद और सूरज क्या इसी लोकमें हैं या परलोकमें, मनुष्य हैं या देव ?"

"हे काश्यप ! ये चाँद और सूरज परलोकमें हैं, इस लोकमें नहीं, देव हैं, मनुष्य नहीं।"

"राजन्य ! इस तरह भी तुम्हें समझना चाहिये—यह लोक भी है, परलोक भी ०।"

"हे काश्यप ! चाहे आप जो कहें, मैं तो ऐसा ही समझता हूँ—यह लोक भी नहीं ०।"

"राजन्य ! क्या कोई तर्क है जिसके बलपर तुम ऐसा मानते हो—यह लोक नहीं ०।?"

"हे काश्यप ! है ऐसा तर्क, जिसके बलपर मैं ऐसा मानता हूँ—यह लोक नहीं ०"

"राजन्य ! वह कैसे ?"

(१) मरे नहीं लौटते

१—"हे काश्यप ! मेरे कितने मित्र अमात्य, और एक ही खूनवाले बन्धु हैं जो जीव-हिंसा करते हैं, चोरी करते हैं, दुराचार करते हैं, झूठ बोलते हैं, चुगली खाते हैं, कठोर बात बोलते हैं, निरर्थक प्रलाप करते रहते हैं, दूसरेके प्रति द्रोह करते हैं, द्वेष चित्तवाले तथा बुरे सिद्धान्तोंको माननेवाले हैं। वे कुछ दिनोंके बाद रोग-ग्रस्त हो बहुत बीमार पळ जाते हैं। जब मैं समझ जाता हूँ कि वे इस बीमारीसे नहीं उठेंगे, तो मैं उनके पास जाकर ऐसा कहता हूँ—कोई कोई श्रमण और ब्राह्मण ऐसी दृष्टि, ऐसे सिद्धान्तको माननेवाले हैं—जो जीवहिंसा करते हैं, चोरी करते हैं ० वे मरनेके बाद नरकमें गिरकर दुर्गतिको प्राप्त होते हैं। आप लोग तो जीवहिंसा करते थे, चोरी करते थे ०। यदि उन श्रमण और ब्राह्मणोंका कहना सच है, तो आप लोग मरनेके बाद नरकमें गिरकर दुर्गतिको प्राप्त होंगे। यदि आप लोग मरनेके बाद ० प्राप्त हों तो मुझसे आकर कहें—यह लोक भी है, परलोक भी ०। आप लोगोंके प्रति मेरी श्रद्धा और विश्वास है। आप लोग जो स्वयं देखकर मुझसे आकर कहेंगे मैं उसे वैसा ही ठीक समझूँगा।'

"बहुत अच्छा" कहकर भी वे न तो आकर (स्वयं) कहते हैं और न किसी दूतको ही भेजते हैं। हे काश्यप ! यह एक कारण है जिससे मैं ऐसा समझता हूँ—यह लोक भी नहीं है, परलोक भी नहीं०।"

"राजन्य ! तब तुम्हींसे पूछता हूँ ०। तो क्या समझते हो राजन्य ! (यदि) तुम्हारे नौकर एक **चोर** या अपराधीको पकळकर दिखावें—यह आपका चोर या अपराधी है, आप जैसा उचित समझें इसे दण्ड दें। (तब) तुम उन लोगोंको ऐसा कहो—इस पुरुषको एक मज़बूत रस्सीसे हाथ पीछे करके कसकर बाँध, शिर मुंळवा, घोषणा करते एक सळकसे दूसरी सळक, एक चौराहेसे दूसरे चौराहे ले जाकर, दक्खिन द्वारसे निकाल, नगरसे दक्खिन बध्यस्थानमें इसका शिर काट दो।' 'बहुत अच्छा' कहकर वे उस पुरुषको एक मज़बूत रस्सीसे ० बध्यस्थानमें ले जावें। तब चोर उन जल्लादोंसे कहे—'हे जल्लादो ! हे जल्लादो ! इस ग्राम या निगममें मेरे मित्र, अमात्य और रक्तसंबंधी रहते हैं, आप लोग तब तक ठहरें; जब तक मैं उनसे भेंट कर लूँ।' तो क्या उसके ऐसा कहते रहनेपर भी जल्लाद उसका शिर नहीं काट देंगे?"

"हे काश्यप ! यदि चोर जल्लादोंको कहे ० तो भी उसके ऐसा कहते रहनेपर भी जल्लाद उसका शिर काट देंगे।"

"राजन्य ! जब वह चोर मनुष्य मनुष्य-जल्लादोंसे भी छुट्टी नहीं ले सकता—हे जल्लादो ! आप लोग ठहरें ०—तो तुम्हारे मित्र अमात्य, रक्तसंबंधी, जीवहिंसा करनेवाले, चोरी करनेवाले ० मरनेके बाद नरकमें पळकर दुर्गतिको प्राप्त हो कैसे नरकके **यमों**से छुट्टी ले सकेंगे—आप लोग ठहरें, जब तक मैं **पायासी**राजन्यके पास जाकर कह आऊँ—यह लोक भी है, परलोक भी ०? इसलिये भी राजन्य ! तुम्हें समझना चाहिये — यह लोक भी है, परलोक भी ०।"

"हे काश्यप ! आप चाहे जो कहें मैं तो यही समझता हूँ—यह लोक भी नहीं ०।

२—"राजन्य ! कोई तर्क है जिसके बलपर तुम ऐसा समझते हो—यह लोक भी नहीं ०?"

"हे काश्यप ! ऐसा तर्क है जिसके बलपर मैं ऐसा समझता हूँ—यह लोक भी नहीं ०। हे काश्यप ! मेरे कितने मित्र, अमात्य ० जीवहिंसासे विरत रहते हैं, चोरी करनेसे विरत रहते हैं, दुराचारसे विरत रहते हैं ० और अच्छे सिद्धान्तोंको माननेवाले हैं। वे कुछ दिनोंके बाद रोगग्रस्त हो बहुत बीमार प्ळ जाते हैं। जब मैं समझता हूँ कि वे इस बीमारीसे नहीं उठेंगे तो ० ऐसा कहता हूँ—कोई कोई श्रमण और ब्राह्मण ऐसा कहते हैं—जो जीवहिंसासे विरत रहते हैं ० वे मरनेके बाद स्वर्गमें उत्पन्न हो सुगतिको प्राप्त होते हैं। आप लोग तो जीवहिंसासे विरत ० रहते थे। यदि उन श्रमण और ब्राह्मणोंका कहना ठीक है, तो आप लोग ० सुगतिको प्राप्त होंगे। यदि ० सुगतिको प्राप्त हों तो आकर मुझसे कहेंगे—यह लोक भी है, परलोक भी ०। आप लोगोंके प्रति मेरी श्रद्धा और विश्वास है। आप लोग स्वयं देखकर जो कहेंगे मैं उसीको ठीक समझूँगा।' 'बहुत अच्छा' कहकर भी न तो वे आकर स्वयं कहते हैं और न किसी दूतको ही भेजते हैं। हे काश्यप ! इसी कारणसे मैं ऐसा समझता हूँ—यह लोक भी नहीं है ०।"

"राजन्य ! तो मैं एक **उपमा** कहता हूँ। उपमासे भी कितने चतुर लोग बातको झट समझ जाते हैं—राजन्य ! मान लो कि कोई मनुष्य चोटी तक संडासमें डूबा हो। तुम अपने नौकरोंको आज्ञा दो—'उस पुरुषको उस संडाससे निकाल दो।' 'बहुत अच्छा' कहकर वे उस पुरुषको उस संडाससे निकाल दें। उन (नौकरों)को तुम फिर भी कहो—'उस पुरुषके शरीरको बाँसके टुकळोंसे अच्छी तरह साफ़ करो।' ० वे साफ़ कर दें। उनको तुम फिर भी कहो—'उस पुरुषके शरीरको पीली मिट्टीसे तीन बार अच्छी तरह उबटन लगा लगाकर साफ़ करो'। ० वे साफ़ करें। उनको तुम फिर भी कहो—'उस पुरुषके शरीरमें तेल लगाकर पतला स्नान चूर्ण तीन बार लगा लगाकर नहलाओ'। ० वे नहला दें। उनको तुम फिर भी कहो—'इस पुरुषके शिर दाढ़ीको मूँळ दो'। ० वे मूँळ दें। उनको तुम फिर भी कहो—'इस पुरुषके लिये अच्छी अच्छी मालायें, अच्छा उबटन और अच्छा अच्छा वस्त्र ले आओ'। ० वे ले आवें। उनको तुम फिर भी कहो—'कोठेपर ले जाकर पाँच भोगों (=कामगुणों)से इस पुरुषको सेवित करो'। ० वे सेवित करें।

"तो राजन्य ! क्या समझते हो—अच्छी तरह नहाये, अच्छी तरह ० उबटन लगाये, अच्छी तरह क्षौर किये, माला पहने, साफ़ वस्त्र धारण किये तथा कोठेपर पाँच भोगोंसे सेवित उस पुरुषको फिर भी उसी संडासमें डूबनेकी इच्छा होगी ?"

"हे काश्यप ! नहीं।"

"सो, क्यों ?"

"हे काश्यप ! संडास (=गूथकूप) अपवित्र है, मैला है, दुर्गन्धसे भरा है, घृणित है, और मनके प्रतिकूल है।"

"राजन्य ! इसी तरह मनुष्ययोनि देवोंके लिये अपवित्र, ० है। राजन्य ! एक सौ योजनकी दूरहीसे देवोंको मनुष्यकी दुर्गन्धि लगती है। तब भला तुम्हारे मित्र, अमात्य ० स्वर्गलोकमें उत्पन्न हो सुगतिको प्राप्तकर फिर (लौटकर) तुमसे कहनेके लिये कैसे आवेंगे—यह लोक भी है, परलोक भी ० ?

"राजन्य ! इस कारणसे भी तुम्हें समझना चाहिये—यह लोक भी है, परलोक भी ०।"

"हे काश्यप ! चाहे आप जो कहें, मैं तो ऐसा ही समझता हूँ—यह लोक भी नहीं, परलोक भी नहीं ०।"

३—"राजन्य ! कोई तर्क ० ?"

"हे काश्यप ! ऐसा तर्क है ०।"

"राजन्य ! वह क्या ?"

"हे काश्यप ! मेरे मित्र, अमात्य ० जीवहिंसासे विरत रहनेवाले ० हैं। ० जब मैं समझता हूँ कि इस बीमारीसे ये नहीं उठेंगे तो उनके पास जाकर ऐसा कहता हूँ—

'कितने श्रमण और ब्राह्मण ऐसा ० जो जीवहिंसासे विरत ० वे सुगति प्राप्त करते हैं। और आप लोग जीवहिंसासे विरत रहनेवाले ० हैं। यदि उन०का कहना सच होगा तो आप लोग ० सुगति प्राप्त करेंगे। यदि मरनेके बाद आप लोग ० सुगति प्राप्त करें तो मेरे पास आकर कहें—यह लोक भी है, परलोक भी ०। मेरे प्रति ०। वे न तो स्वयं आकर ०।

"हे काश्यप ! इस कारणसे०—यह लोक भी नहीं, परलोक भी नहीं ०।

"राजन्य ! तब तुम्हींको मैं पूछता हूँ ०। राजन्य ! जो मनुष्योंका सौ वर्ष है, वह **त्रायस्त्रिंश** देवोंके लिये एक रात-दिन है; वैसी तीस रातका एक मास होता है; वैसे बारह मासका एक संवत्सर (वर्ष) होता है; वैसे-देव-सहस्र वर्ष त्रायस्त्रिंश देवोंका आयुपरिमाण है। जो तुम्हारे ० मित्र, अमात्य मरनेके बाद त्रायस्त्रिंश देवोंके साथ स्वर्गमें उत्पन्न हो सुगतिको प्राप्त हुए हैं। उन लोगोंके मनमें यदि ऐसा हो, जब तक हम लोग दो या तीन रात दिन पाँच दिव्य भोगोंका सेवन कर लें, फिर हम पायासी राजन्यके पास जाकर कह आवेंगे—यह लोक भी है, परलोक भी ०। और वे आकर कहें—यह लोक भी है, परलोक भी ०।"

"हे काश्यप ! ऐसा नहीं, तब तक तो हम लोग बहुत पहले ही मर चुके रहेंगे। आप काश्यपसे कौन कहता है, कि तावतिंस ऐसे दीर्घायु देव हैं, ? मैं आप काश्यपमें विश्वास नहीं करता कि इस प्रकारके दीर्घायु तावतिंस देव हैं।"

"राजन्य ! **जैसे** कोई जन्मान्ध पुरुष न काला और न उजला देखे, न नीला, न पीला, न लाल, न मंजीठ, न ऊँचा नीचा, न तारा, न चाँद और न सूरज देखे। वह ऐसा कहे—न काला है न उजला है न पीला ० न सूरज है और न उनको देखनेवाला कोई है। मैं उसे नहीं जानता, मैं उसे नहीं देखता; इसलिये वह नहीं है। राजन्य ! क्या उसका कहना ठीक होगा ?"

"हे काश्यप ! ऐसा नहीं। काला, उजला, पीला ० है और उनको देखनेवाला भी है। 'मैं उसे नहीं जानता हूँ, मैं उसे नहीं देखता हूँ, इसलिये वे नहीं हैं'—ऐसा कहनेवाला हे काश्यप! ठीक नहीं कहता है।"

"राजन्य ! मैं समझता हूँ कि तुम भी उसी जन्मान्धके ऐसे हो जो मुझे ऐसा कहते हो—हे काश्यप ! आपसे कौन कहता है ०। राजन्य ! जैसा तुम समझते हो, परलोक वैसा इसी मांसकी आँखोंसे नहीं देखा जा सकता। राजन्य ! जो श्रमण ब्राह्मण निर्जन वनोंमें एकान्तवास करते हैं, वे वहाँ प्रसन्न-चित्त हो संयमसे रहते दिव्यचक्षुको पाते हैं। वे अलौकिक दिव्यचक्षुसे इस लोकको, परलोकको ० देखते हैं। राजन्य ! इस तरह परलोक देखा जाता है, न कि इस मांसवाली आँखोंसे, जैसा कि तुम समझते हो। राजन्य ! इस कारणसे भी तुम्हें समझना चाहिए—यह लोक है, परलोक है ०।"

"हे काश्यप ! आप चाहे जो कहें ०।"

(२) धर्मात्मा आस्तिकोंको भी मरनेकी अनिच्छा

"राजन्य ! कोई तर्क ० ?" "हे काश्यप ! ऐसा तर्क है ०।"

"राजन्य ! वह क्या ?"

"हे काश्यप ! मैं ऐसे सदाचारी तथा पुण्यात्मा (=कल्याणधर्मि) श्रमण ब्राह्मणोंको देखता हूँ, जो जीनेकी इच्छा रखते हैं, मरनेकी इच्छा नहीं रखते; दुःखसे दूर रह सुख चाहते हैं। हे काश्यप ! तब मेरे मनमें यह होता है—यदि ये सदाचारी, पुण्यात्मा श्रमण ब्राह्मण यह जानते कि मरनेके बाद हमारा श्रेय होगा, तो वे ० इसी समय विष खा, छुरा भोंक, गला-घोंट, गळहेमें गिरकर (आत्मघात) कर लेते। चूँकि ये सदाचारी पुण्यात्मा श्रमण और ब्राह्मण ऐसा नहीं जानते, कि मरकर उनका श्रेय होगा, इसी लिये वे ० (आत्मघात) नहीं करते। यह भी काश्यप ! ० न यह लोक, न पर-लोक ०।"

"राजन्य ! तो मैं एक **उपमा** कहता हूँ। उपमासे भी कितने चतुर लोग झट बातको समझ जाते हैं। राजन्य ! पुराने समयमें एक ब्राह्मणकी दो स्त्रियाँ थीं। एकको दस या बारह वर्षका एक लळका था और दूसरी गर्भवती थी। इतनेमें वह ब्राह्मण मर गया। तब उस लळकेने अपनी माँकी सौतसे यह कहा—जो यह धन,धान्य और सोना चाँदी है सभी मेरा है। तुम्हारा कुछ नहीं है। यह सब मेरे पिता का तर्का (=दाय) है। उसके ऐसा कहने पर ब्राह्मणी बोली—तब तक ठहरो जब तक मैं प्रसव कर लूँ। यदि वह लळका होगा तो उसका भी आधा हिस्सा होगा, यदि लळकी होगी तो उसे भी तुम्हें पालना होगा।

"दूसरी बार भी उस लळकेने अपनी माँकी सौतसे यह कहा—जो यह धन ०।

"दूसरी बार भी ब्राह्मणी बोली—तब तक ठहरो ०।

"तीसरी बार भी ०।

"तब उस ब्राह्मणीने (यह सोच) छुरा ले, कोठरीमें जा अपना पेट फाळ डाला, कि अभी प्रसव करना चाहिये, चाहे लळका हो या लळकी। (इस प्रकार) वह स्वयं मर गई और गर्भ भी नष्ट हो गया।

"जिस प्रकार बुरी तरहसे दायकी इच्छा रखनेवाली वह मर्ख अजान स्त्री नाशको प्राप्त हुई, तुम भी परलोककी इच्छा रखते मूर्ख, अजान हो उसी तरह नाशको प्राप्त होगे, **जैसे** कि वह ब्राह्मणी ०।

"राजन्य ! इसीलिये वे ० श्रमण ब्राह्मण अपरिपक्व को नहीं पकाते, बल्कि पण्डितोंकी तरह परिपाककी प्रतीक्षा करते हैं। राजन्य ! उन ० श्रमण ब्राह्मणोंको जीनेसे मतलब है। वे ० जितना अधिक जीते हैं उतना ही अधिक पुण्य करते हैं। लोगोंके हितमें लगे रहते हैं, लोगोंके सुखमें लगे रहते हैं।

"राजन्य ! इस कारणसे भी तुम्हें समझना चाहिये ०।"

"हे काश्यप ! चाहे आप जो कहें, ० यह लोक नहीं ०।

१—"राजन्य ! कोई तर्क ० ?" "हे काश्यप ! ऐसा तर्क है ० ।"

"राजन्य ! वह क्या ?"

(३) मृत शरीरसे जीवके जानेका चिन्ह नहीं

"हे काश्यप ! मेरे नौकर लोग चोरको पकळकर मेरे पास ले आते हैं—'स्वामिन् ! यह आपका चोर है, इसे जो उचित समझें दण्ड दें।' उन्हें मैं ऐसा कहता हूँ—'तो इस पुरुषको जीते जी एक बळे हंडेमें डाल, मुँह बंदकर, गीले चमळेसे बाँध गीली मिट्टी लेपकर चूल्हेपर रख आँच लगावो।'

'बहुत अच्छा' कह वे उस पुरुषको ० आँच लगाते हैं।

"जब मैं जान लेता हूँ कि वह पुरुष मर गया होगा तब मैं उस हंडेको उतार, धीरेसे मुँह खोलकर देखता हूँ; कि उसके जीवको बाहर निकलते देखूं; किंतु उसके जीवको निकलते हुये नहीं देखता। हे काश्यप ! इस कारणसे भी ० यह लोक भी नहीं ०।

"राजन्य ! तब मैं तुम्हींसे पूछता हूँ ०।

"राजन्य ! दिनमें सोते समय क्या तुमने कभी स्वप्नमें रमणीय आराम, रमणीय वन, रमणीय भूमि या रमणीय पुष्करिणी नहीं देखी है ?"

"हे काश्यप ! हाँ, दिनमें ० रमणीय पुष्करिणी देखी है।"

"उस समय कुबळे भी, बौने भी, स्त्रियाँ भी, कुमारियाँ भी क्या तुम्हारे पहरेमें नहीं रहतीं ?"

"हे काश्यप ! हाँ, उस समय ० पहरेमें रहती हैं।"

"वे क्या तुम्हारे जीवको (उद्यानके लिये) निकलते और भीतर आते देखते हैं ?"

"नहीं, हे काश्यप !"

"राजन्य ! जब वे तुम्हारे जीते हुयेके जीवको निकलते और भीतर आते नहीं देख सकते, तो तुम मरे हुयेके जीवको निकलते या भीतर आते कैसे देख सकते हो ?"

"राजन्य ! इस कारणसे भी ० यह लोक है ०।"

"हे काश्यप ! चाहे आप जो कहें ० ०।"

२—"राजन्य ! कोई तर्क ० ?"

"हे काश्यप ! ऐसा तर्क है ०।"

"० वह क्या ?"

"हे काश्यप ! मेरे नौकर चोरको ०। उन्हें मैं ऐसा कहता हूँ—इस पुरुषको (पहले) जीते जी तराजूपर तौलकर, रस्सीसे गला घोंटकर मार दो, और फिर तराजूपर तौलो। 'बहुत अच्छा' कह-कर ० वे तौलते हैं। जब वह जीता रहता है तो हलका होता है; किंतु मरकर वही लोथ भारी हो जाती है।

"हे कस्सप ! इस कारणसे भी ० यह लोक नहीं ०।"

"राजन्य ! तो मैं एक **उपमा** कहता हूँ ०। राजन्य ! **जैसे** कोई पुरुष किसी संतप्त, आदीप्त, संप्रज्वलित दहकते हुये लोहेके गोलेको तराजूपर तौले, और फिर कुछ समयके बाद उसके ठंडा हो जाने-पर उसे तौले। तो वह लोहेका गोला कब हलका होगा ? जब आदीप्त है तब, या जब ठंडा हो गया है तब ?"

"हे काश्यप ! जब वह लोहेका गोला अग्नि और वायुके साथ हो, आदीप्त होता है ०, तब हलका होता है। जब वह लोहेका गोला अग्नि और वायुके साथ नहीं होता, तो ठंडा और बुझा भारी हो जाता है। राजन्य ! इसी तरहसे जब यह शरीर आयुके साथ, श्वासके साथ, विज्ञानके साथ रहता है, तो हलका होता है। जब यह शरीर आयु ० श्वास ० विज्ञानके साथ नहीं ० रहता है तो भारी हो जाता है।

"राजन्य ! इस कारणसे भी ० यह लोक है ०।"

"हे काश्यप ! आप चाहे जो कहें ०।"

३—"राजन्य ! कोई तर्क ० ?"

"हे काश्यप ! ऐसा तर्क है ०।"

"० वह क्या ?"

"हे काश्यप ! मेरे नौकर चोरको ०। उन्हें मैं ऐसा कहता हूँ—इस पुरुषको बिना मारे चमळा, मांस, स्नायु, हड्डी और मज्जा अलग अलग कर दो, जिससे मैं उसके जीवको निकलते देख सकूँ।

'बहुत अच्छा' कह वे ० अलग अलग कर देते हैं। जब वह मरणासन्न होता है, तो मैं उनसे ऐसा कहता हूँ—इसको चित सुला दो, जिसमें कि मैं इसके जीवको निकलते देख सकूँ। वे उस पुरुषको चित सुला देते हैं किंतु हम उसके जीवको निकलते नहीं देखते।

"फिर भी उन नौकरोंको मैं ऐसा कहता हूँ—इसे पट ०, करवट ०, दूसरी करवट ०, ऊपर खळा करो, हाथसे पीटो, ढेलासे मारो, लाठीसे मारो, शस्त्रसे मारो, हिलाओ डुलाओ, जिसमें कि मैं इसके जीव ०। वे उस पुरुषको ० किंतु हम उसके जीवको निकलते नहीं देखते।

"उसकी वही आँखें रहती हैं, वही रूप रहते हैं, वही आयतन, किंतु देख नहीं सकता। वही श्रोत्र ०, वही शब्द ० किंतु सुन नहीं सकता। वही नासिका ०, वही गन्ध ० किंतु सूँघ नहीं सकता। वही जिह्वा ०, वही रस ० किंतु चख नहीं सकता। वही शरीर ०, वही स्प्रष्टव्य ० किंतु स्पर्श नहीं कर सकता।

"हे कस्सप ! इस कारण भी ० यह लोक नहीं ०।"

"राजन्य ! तो एक **उपमा** कहता हूँ ०। राजन्य ! बहुत दिन हुये कि एक शंख बजानेवाला शंख लेकर नगरसे बाहर, जहाँ एक ग्राम था वहाँ गया। जाकर बीच गाँवमें खळा हो तीन बार शंख बजा, शंखको जमीनपर रख, एक ओर बैठ गया। राजन्य ! तब उन सीमान्त देशके लोगोंके मनमें यह हुआ—अरे ! ऐसा रमणीय, सुन्दर, मदनीय, चित्ताकर्षक और मोहित करनेवाला शब्द किसका है ? वे सभी इकट्ठे होकर शंख बजानेवालेसे बोले—अरे ! ऐसा ० शब्द किसका है ?"

'यही शंख है जिसका ऐसा ० शब्द है।'

"उन लोगोंने उस शंखको चित रख दिया—हे शंख, बजो, बजो। किंतु शंख नहीं बजा। उन लोगोंने उस शंखको पट, करवट ०। किंतु शंख नहीं बजा।

"राजन्य ! तब शंख बजानेवालेके मनमें यह आया—गाँवके रहनेवाले बळे मूर्ख हैं। इन्हें ठीक तरहसे शंख बजाना नहीं आता ? उसने उन लोगोंके देखते देखते शंखको उठा, तीन बार बजा, वहाँसे चल दिया।

"राजन्य ! तब उस गाँववालोंके मनमें यह आया—जब यह शंख पुरुष, व्यायाम, और वायुके साथ होता है तब बजता है। जब यह शंख न पुरुषके साथ, न व्यायामके साथ और न वायुके साथ होता है, तब नहीं बजता।"

"राजन्य ! उसी तरहसे जब यह शरीर आयुके साथ, श्वासके साथ, और विज्ञानके साथ होता है तब हिलता, डोलता, खळा रहता, बैठता, और सोता है। चक्षुसे रूप देखता है, कानसे शब्द सुनता है, नाकसे गंध सूँघता है, जिह्वासे रसका आस्वादन करता है, शरीरसे स्पर्श करता है तथा मनसे धर्म्मोंको जानता है। जब यह शरीर न आयुके साथ ० होता है, तब न हिलता न डोलता ०।

"राजन्य ! इस कारणसे भी ० यह लोक है ०।"

"हे काश्यप ! चाहे आप जो कहें ०।"

४–० "राजन्य! वह कैसे ?"

"हे काश्यप! मेरे नौकर चोरको ०। उन्हें मैं ऐसा कहता हूँ––इस पुरुषकी खाल उतार लो, जिसमें कि मैं उसके जीवको देख सकूँ। वे ० खाल उतारते हैं, किन्तु हम लोग उसके जीवको नहीं देखते। फिर भी उन्हें मैं कहता हूँ––इसका मांस, स्नायु, हड्डी और मज्जा काट डालो, जिसमें कि मैं इसके जीवको देख सकूँ। वे उस पुरुषके मांस०को काट डालते हैं, किन्तु हम लोग उसके जीवको नहीं देखते।

"हे काश्यप! इस कारणसे भी ० यह लोक नहीं है ०।"

"राजन्य! तो मैं एक **उपमा** कहता हूँ ०। पुराने समयमें कोई अग्नि-उपासक जटिल (=जटाधारी) जंगलके बीच पर्णकुटीमें रहता था। राजन्य! तब उस प्रदेशमें व्यापारियोंका एक सार्थ (=कारवाँ) आया। वे व्यापारी उस अग्नि-उपासक जटिलके आश्रमके पास एक रात रह कर चले गये। राजन्य! तब उस अग्नि-उपासक जटिलके मनमें यह हुआ––जहाँ इन व्यापारियोंका मालिक है वहाँ चलूँ, इन लोगोंसे कुछ सामान मिलेगा। तब वह ० जटिल उठकर जहाँ बंजारोंका मालिक था वहाँ गया। जाकर उस बंजारोंके आवास (=टिकनेके स्थान) में एक छोटे, उतान ही लेट सकनेवाले बच्चेको छूटा पाया। देखकर उसके मनमें यह हुआ––यह मेरे लिये उचित नहीं है कि कोई मनुष्यका बच्चा मेरे देखते मर जाये। अतः इस बच्चेको अपने आश्रममें ले जा, और पाल-पोषकर बळा करना चाहिये। तब उस जटिलने उस बच्चेको अपने आश्रममें ले जा, पालपोषकर बळा किया।

"जब वह लळका दस या बारह वर्षका हुआ तब उस जटिलको देहात (=जनपद) में कुछ काम पळा। तब वह जटिल उस लळकेसे यह बोला––तात! मैं देहात जाना चाहता हूँ, तुम अग्निकी सेवा करना। अग्नि बुझने न पाये। यदि अग्नि बुझे तो यह कुल्हाळी है, ये लकळियाँ, ये दोनों अरणी हैं; अग्नि उत्पन्न करके फिर अग्निकी सेवा करना। तब उस (लळके) के खेलमें लगे रहनेसे (एक दिन) आग बुझ गई। उस लळकेके मनमें यह हुआ––पिताने मुझे ऐसा कहा था––हे तात! अग्निकी सेवा करना, अग्नि बुझने न पावे। यदि अग्नि बुझे तो यह कुल्हाळी ०। अतः मुझे अग्नि उत्पन्नकर, अग्निकी सेवा करनी चाहिये।

"तब उस लळकेने अग्नि निकालनेके लिये कुल्हाळीसे दोनों अरणियोंको फाळ डाला। किन्तु अग्नि नहीं निकली। अरणियोंको दो टुकड़ोंमें, तीन टुकळोंमें ० पाँच टुकळोंमें, दस टुकळोंमें, सौ टुकळोंमें काट डाला; फिर उन टुकळोंको ओखलमें कूट डाला, ओखलमें कूटकर हवामें उळा दिया जिसमें कि अग्नि निकले। अग्नि नहीं निकली।

"तब वह जटिल जनपदमें अपना काम समाप्तकर, जहाँ अपना आश्रम था वहाँ आया। आकर उस लळकेसे बोला––तात! अग्नि बुझी तो नहीं?" 'हे तात! खेलमें लग जानेके कारण अग्नि बुझ गई। तब मेरे मनमें यह आया—पिताने मुझे ऐसा कहा था––तात! अग्निकी सेवा करना ०। अतः अग्नि उत्पन्नकर अग्निकी सेवा करनी चाहिये। तब अरणियोंको मैंने दो टुकळोंमें ० अग्नि नहीं निकली।'

"तब उस जटिलके मनमें यह आया––यह बालक नादान, मूर्ख है। कैसे ठीकसे अग्नि उत्पन्न करेगा! उसके देखते देखते उसने अरणियोंको ले, अग्नि उत्पन्न कर, उस लळकेसे कहा––तात! अग्नि इस प्रकार उत्पन्न होती है, न कि उस बेढंगे तरीक़ेसे जिससे कि तुम अग्निको खोज रहे थे।

"राजन्य! तुम भी उसी तरह बाल और अजान होकर अनुचित प्रकारसे परलोककी खोज-कर रहे हो। राजन्य! इस बुरी धारणाको छोळो; जिसमें कि तुम्हारा भविष्य अहित और दुःखके लिये न होवे।"

२—मतत्यागमें लोकलाजका भय

१—"आप काश्यप ! जो कहें, किन्तु मैं इस बुरी धारणाको नहीं छोळ सकता हूँ। कोसलराज़ **प्रसेनजित्** और दूसरे राजा भी जानते हैं कि **पायासी** राजन्य इस दृष्टि इस सिद्धान्तका माननेवाला है—यह लोक भी नहीं ०।

"हे काश्यप ! यदि मैं इस बुरी धारणाको छोळ दूँ, तो लोग मुझे ताना देंगे—पायासी-राजन्य मूर्ख, अजान भ्रममें पळा हुआ था। मैं तो क्रोधसे भी, अमरखसे भी, निष्ठुरतासे भी इसे लिये रहूँगा।"

"राजन्य ! तो मैं एक **उपमा** ०। पुराने समयमें बहुतसे बंजारे एक हज़ार गाळियोंके साथ पूर्व देश (=जनपद)से पश्चिम देश (=जनपद)को जा रहे थे। वे जिस जिस मार्गसे जाते शीघ्र ही तृण, काष्ठ और हरे पत्तोंको नष्ट कर देते थे। उस सार्थ (=कारवाँ)में पाँच पाँच सौ गाळियोंके दो मालिक थे। तब उन दोनोंके मनमें यह हुआ—हम बंजारोंका, एक हज़ार गाळियोंके साथ यह बहुत बळा सार्थ है। हम लोग जिस जिस रास्तेसे जाते हैं ०। तो हम लोग इस समूहको दो भागोंमें बाँट दें। एकमें पाँच सौ गाळियाँ और दूसरे में पाँच सौ गाळियाँ। उन लोगोंने उस सार्थको दो भागोंमें बाँट दिया।

"बंजारोंका एक मालिक बहुत-सा तृण, काष्ठ और जल साथमें ले एक ओर चल पळा। दो तीन दिन जानेके बाद उसने एक काले, लाल आँखोंवाले, तीर धनुष लिये, कुमुदकी माला पहने, भीगे कपळे और भीगे केशके साथ, कीचळ लगे हुए चक्कोंवाले एक सुन्दर रथपर सामनेसे आते हुये एक पुरुषको देखा। देखकर यह बोला—'आप कहाँसे आते हैं?'

'अमुक जनपदसे।'

'आप कहाँ जायेंगे?'

'अमुक जनपदको।'

'क्या अगले कान्तारमें बळी वृष्टि हुई है?'

'हाँ अगले कान्तारमें बळी वृष्टि ०। मार्ग पानीसे भर गये हैं। बहुत तृण, काष्ठ और उदक है। आप लोग अपने पुराने तृण, काष्ठ और उदकके भारको यहीं फेंक दें। हल्की गाळियोंको ले जल्दी जल्दी आगे जायें, बैलोंको व्यर्थ कष्ट मत दें।'

"तब वह बंजारोंका मालिक बंजारोंसे बोला—'यह पुरुष ऐसा कहता है—आगेवाले कान्तारमें ० बैलोंको कष्ट मत दें। आप लोग पुराने तृण०को यहीं छोळ दें। गाळियोंको हल्काकर आगे चलें।'

'बहुत अच्छा' कह ० पुराने तृणको ० छोळ ० आगे चले।

"वे न तो पहली चट्टीपर तृण ० पा सके, न दूसरी चट्टीपर ० न सातवीं चट्टीपर। वे सभी बळी आपत्तिमें पळे; और उस सार्थमें जितने मनुष्य और पशु थे सभीको वह राक्षस खा गया। वहाँ बची हुई हड्डियाँ रह गईं।

"जब बंजारोंके दूसरे मालिकने समझा—कि उस सार्थके निकले काफ़ी दिन बीत चुके, तो वह भी बहुतसे तृण०को साथमें ले आगे चला। दो तीन दिन जानेके बाद उसने एक काले, लाल आँखोंवाले ०। ० बैलोंको व्यर्थमें कष्ट मत दें।'

"तब उसके मनमें यह हुआ—'यह पुरुष ऐसा कहता है—आगेके कान्तारमें बळी वृष्टि ०। यह पुरुष न तो हम लोगोंका मित्र है, न रक्त-संबंधी। इसमें हम लोगोंका कैसे विश्वास हो? ये पुराने तृण ० छोळने योग्य नहीं हैं। इसलिये इसी तरह आगे चलना चाहिये।

'बहुत अच्छा' कह० वे बंजारे चले। उन लोगोंने न तो पहली चट्टीपर तृण ० पाया ०, न सातवीं

चट्टीपर०। और उन्होंने देखा, कि उस सार्थमें जितने मनुष्य और पशु थे, सभीको यह राक्षस खा गया है। उनकी वहाँ हड्डियाँ बची रह गई हैं।

"तब उसने बंजारोंको संबोधित किया—उस मूर्ख मालिक सार्थवाह (=नायक) होनेके कारण वह सार्थ इस प्रकार नष्ट हो गया। अच्छा हम लोगोंके पास जो अल्प मूल्यवाले सामान हैं, उन्हें छोळ, इस समूहके जो बहुमूल्य माल हैं, उन्हें ले लें।

'बहुत अच्छा' कह ० और उस कान्तारको स्वस्तिपूर्वक पार किया।

"राजन्य! इसी प्रकार तुम भी बाल, अजान हो अनुचित रीतिसे परलोककी खोज करते नष्ट होगे, जैसे वह पहला सार्थ। जो तुम्हारी बातोंके सुनने और माननेवाले हैं वे भी ०।

"राजन्य! इस बुरी धारणाको छोळ दो, जिसमें कि तुम्हारा भविष्य अहित और दुःखके लिये न हो।"

२–"आप काश्यप चाहे जो कहें ० कोसलराज प्रसेनजित और दूसरे राजा भी ०।"

राजन्य! तो मैं एक **उपमा** कहता हूँ ०। बहुत पहले, एक सूअर पालनेवाला पुरुष अपने गाँवसे दूसरे गाँवमें गया। वहाँ उसने सूखे मैलेका एक ढेर देखा। उस ढेरको देखकर उसके मनमें यह आया—यह सूखे मैलेका एक बळा ढेर है। यह मेरे सूअरोंका भक्ष्य है। अतः मैं यहाँसे सूखे मैलेको ले चलूँ। तब वह अपनी चादर पसार, बहुतसे सूखे मैलेको बटोर गठरी बाँध, शिरपर रख चल दिया। उसके रास्तेमें जाते वक्त अचानक बळी वृष्टि होने लगी। वह चूते और टपकते मैलेकी गठरीको लिये, शिरसे पैर तक मैलेसे लथपथ जा रहा था।

"उसे देखकर लोग कहने लगे—क्या आप पागल हैं? क्या आप सनकी हैं? क्यों इस चूते टपकते मैलेकी गठरीको लिये शिरसे पैर तक मैलेसे लथपथ जा रहे हैं?'

"'आप ही लोग पागल हैं। आप ही लोग सनकी हैं। यह तो मेरे सूअरोंका खाद्य है।'

"राजन्य! उसी तरह तुम मैलेकी गठरीको ले जानेवालेके समान मालूम पळते हो। राजन्य! इस बुरी धारणाको छोळ दो ०।"

३–"आप काश्यप चाहे जो कहें ०।" ०

"राजन्य! तो मैं एक **उपमा** कहता हूँ ०। पुराने समयमें दो जुआरी जुआ खेलते थे। उनमेंसे एक जुआरी हार या जीतके पासेको निगल जाता था। दूसरे जुआरीने उस ०को ० निगलते देखा। देखकर उस जुआरीसे कहा—

"'तुम तो बिलकुल जीत लेते हो। मुझे पासोंको दो, कि मैं उनको पूज लूँ। 'बहुत अच्छा' कह उस जुआरीने दूसरे जुआरीको पासे दे दिये।

"तब वह जुआरी पासोंको विषमें भिगो दूसरे जुआरीसे बोला—'आओ, जूआ खेलें।'

"बहुत अच्छा' ०।

"जुआरियोंने पासा फेंका फिर भी वह जुआरी ० पासाको निगल गया। दूसरे जुआरीने पहले जुआरीको ० निगलते हुये देखा। देखकर उस जुआरीसे कहा—

"तेज विषमें भिगोये पासेको निगलते हुये यह पुरुष नहीं समझ रहा है।
रे पापी, धूर्त! (पासेको) निगल। इसका फल भोगेगा ॥१॥'

"राजन्य! तुम भी उसी जुआरीके समान मालूम होते हो। राजन्य! इस बुरी धारणाको छोळ दो। तुम्हारा भविष्य ०।"

४–"चाहे आप काश्यप जो कहें ०।" ०

"राजन्य! तो मैं एक **उपमा** कहता हूँ ०। पुराने समयमें एक बळा समृद्ध देश (=जनपद)

था। तब एक मित्रने दूसरे मित्रसे कहा––जहाँ वह जनपद है वहाँ चलें। थोळे ही दिनों में कुछ धन कमा लायेंगे।

" 'बहुत अच्छा' कहकर वे जहाँ वह जनपद था वहाँ गये। वहाँ उन लोगोंने एक जगह बहुत सा सन पळा देखा। देखकर एक मित्रने दूसरे मित्रसे कहा––यह बहुत सन फेंका पळा है। तुम भी सनका एक गट्ठर बाँध लो, और मैं भी सनका एक गट्ठर बाँध लूँ। दोनों सनके गट्ठरको लेकर चलेंगे।

'बहुत अच्छा' कह, सनके गट्ठरको बाँधकर वे दोनों सनके गट्ठरको लिये जहाँ दूसरा गाँव था वहाँ पहुँचे। वहाँ उन लोगोंने बहुतसा सनका कता सूत फेंका देखा। देखकर एक मित्रने दूसरे मित्रसे कहा––जिसके लिये सन होता है, वह सनका कता सूत यहाँ बहुतसा पळा है। सो तुम सनके गट्ठरको यहीं छोळ दो, (और) मैं भी सनके गट्ठरको यहीं छोळ दूँगा। दोनों सनके कते सूतका भार बनाकर ले चलें।

'मित्र! देखो, मैं इस सनके भारको दूरसे ला रहा हूँ (और) यह बळी अच्छी तरह बँधा है। मेरे लिये यही काफ़ी है।'

"तब पहले मित्रने सनके गट्ठरको छोळ सनके कते सूतका एक भार ले लिया। वे जहाँ दूसरा गाँव था, वहाँ पहुँचे। वहाँ उन्होंने ० बुने हुये टाटको फेंका देखा। देख कर एक मित्रने दूसरे मित्रसे कहा––'जिसके लिये सन या सनका सूत चाहिये, वह टाट यहाँ ० है। अतः सनके गट्ठरको छोळ दो ०। दोनों टाटके भारको लेकर चलें।' ० दूरसे ०। मेरे लिये यही काफ़ी ०।'

"तब उस मित्रने सनके कते सूतके भारको छोळ टाटके भारको ले लिया।

"वे दूसरे गाँव ०। ० बहुतसा क्षौम (=अलसीका सन) फेंका देखा, बहुतसा क्षौमका कता सू०, ० बहुतसे क्षौमके वस्त्र ०,० कपास ०, ताँबा ०, राँगा ०, सीसा ०, चाँदी ० सुवर्ण ०।

'तुम ० गट्ठरको छोळ दो ०। दोनों सुवर्णके भारको लेकर चलें।'

'इस सनके भारको मैं दूरसे ला रहा हूँ। यह बहुत अच्छा कसकर बंधा है। मेरे लिये यही काफ़ी है ०।"

"तब उस मित्रने चाँदीके भारको छोळकर सुवर्णके भारको ले लिया। वे दोनों जहाँ उनका गाँव था, वहाँ लौट आये।

"तब उनमें जो सनके भारको लेकर घर लौटा, उसके न माँ-बाप उससे प्रसन्न हुये, न पुत्र, न स्त्री ०, न मित्र, न अमात्य ०। और न उसके बाद उसे सुख और सौमनस्य प्राप्त हुआ। और जो मित्र सोनेका भार लेकर घर लौटा, उसके माँ-बाप बळे प्रसन्न हुये, पुत्र, स्त्री ०। उसके बाद उसे बहुत सुख और सौमनस्य प्राप्त हुआ।

"राजन्य! तुम भी उस सनके भार ढोनेवालेके सदृश हो। राजन्य! इस बुरी धारणाको छोळ दो। तुम्हारा भविष्य ०।"

"आप काश्यपकी पहली ही उपमासे मैं संतुष्ट और प्रसन्न हो गया था। किंतु मैंने इन विचित्र प्रश्नोत्तरोंको सुननेकी इच्छाहीसे, ये उलटी बातें कहीं।

"आश्चर्य हे काश्यप! अद्भुत हे काश्यप, जैसे उलटेको सीधा करदे, ढँके हुयेको खोल दे, ०। उसी तरह आपने अनेक प्रकारसे धर्मको प्रकाशित किया। हे काश्यप! मैं उन भगवान् **गौतमकी** शरणमें जाता हूँ, धर्म, और भिक्षु संघकी भी। हे काश्यप! आजसे जन्म भरके लिये मुझे उपासक धारण करें।"

३—सत्काररहित यज्ञका कमफल

"हे काश्यप ! मैं एक महायज्ञ करना चाहता हूँ। हे काश्यप ! आप निर्देश करें जिससे मेरा भविष्य हित और सुखके लिये हो। जिस प्रकारके यज्ञमें गौवें काटी जाती हैं, भेळ बकरियाँ काटी जाती हैं, कुक्कुट और सूकर काटे जाते हैं, तीन प्रकारके प्राणी मारे जाते हैं। उसके करनेवाले मिथ्या-दृष्टि, मिथ्या-संकल्प मिथ्या-वाक्, मिथ्या-कर्मान्त, मिथ्या-आजीव, मिथ्या-व्यायाम, मिथ्या-स्मृति और मिथ्या-समाधिवाले हैं। इस प्रकारके यज्ञका न तो अच्छा फल होता है, न अच्छा लाभ होता है, न अच्छा गौरव होता है।"

"राजन्य ! जैसे कोई कृषक बीज और हल लेकर वनमें प्रवेश करे। वह वहाँ बुरे खेतमें, ऊसर भूमिमें, बालू और काँटोंवाली जगहमें सळे हुए, सूखे हुए, सार-रहित, न जमने लायक बीजको बोये। वृष्टि भी यथा समय खूब न बरसे। तो क्या वे बीज वृद्धि और बिपुलताको प्राप्त होंगे ? क्या कृषक अच्छा फल पायेगा ?"

"नहीं, हे काश्यप !"

"राजन्य ! उसी तरह जिस यज्ञमें गौवें काटी जाती हैं ० उस यज्ञसे न महाफल ० होता है। राजन्य ! जिस यज्ञमें गौवें नहीं काटी जाती हैं ० उस यज्ञसे महाफल ० होता है।

"राजन्य ! जैसे कोई कृषक बीज और हल लेकर बनमें प्रवेश करे। वहाँ बालू और काँटोंसे रहित अच्छे खेतमें अच्छे स्थानमें अखंड, अच्छे, सूखे नहीं, सारवाले और शीघ्रतासे जमने योग्य बीजको बोए। कालोचित खूब वृष्टि भी होए। तो क्या वे बीज वृद्धि और बिपुलताको प्राप्त होंगे ?"

"हाँ, हे काश्यप !"

"राजन्य ! उसी तरह, जिस प्रकारके यज्ञमें गौवें नहीं काटी जाती हैं, ० उस प्रकारके यज्ञसे महाफल ०।"

तब **पायासी राजन्य** सभी श्रमण, ब्राह्मण, कृपण(=गरीब), साधु और भिखमंगोंको दान दिलवाने लगा। उस दानमें कनी और बिलङ्ग (=काँजी)के भोजन दिये जाते थे—मोटे पुराने वस्त्र दिये जाते थे। दान बाँटनेके लिये **उत्तर** नामक एक माणवक बैठाया गया था।

वह दान देकर ऐसा कहा करता था—इस दान द्वारा मेरा इसी लोकमें पायासी राजन्यसे समागम हो, परलोकमें नहीं।

पायासी राजन्यने सुना कि उत्तर माणवक दान दे कर ऐसा कहा करता है—"इस दान द्वारा ०। तब पायासी राजन्यने **उत्तर** ०को बुलाकर कहा—तात उत्तर ! क्या यह सच बात है कि तुम दान देनेके बाद ऐसा कहा करते हो—इस दानसे ० ?

"जी हाँ।"

"तात उत्तर ! ० ऐसा क्यों कहते हो—इस दानसे ० ? तात उत्तर ! हम तो पुण्य कमाना चाहते हैं, दानके फलहीकी तो हमें इच्छा है।"

"आपके दानमें कनी और काँजीका भोजन दिया जाता है, मोटे पुराने वस्त्र दिये जाते हैं, जिन्हें कि आप पैरसे भी नहीं छूयें, खाना और पहनना तो दूर रहे। आप हम लोगोंके प्रिय और मनाप हैं। हम लोग अपने प्रियको अप्रियके साथ कैसे देख सकते हैं ?"

"तात उत्तर ! तो जिस प्रकारका भोजन मैं स्वयं करता हूँ, उसी प्रकारका भोजन बाँटो; जिस प्रकारके वस्त्र मैं पहनता हूँ, उसी प्रकारके वस्त्र बाँटो।"

'बहुत अच्छा' कह उत्तर माणवक ० जिस प्रकारका भोजन पायासी राजन्य स्वयं करता था,

उसी प्रकारका भोजन बाँटने लगा; जिस प्रकारके वस्त्र पायासी राजन्य स्वयं पहनता था, उसी प्रकारके वस्त्र बाँटने लगा।

तब पायासी राजन्य बिना सत्कार रहित दान दे, दूसरेके हाथसे दान दिलवा, बेमनसे दान दे, फेंक कर दान दे, मरनेके बाद **चातुर्महाराजिक** देवोंके बीच उत्पन्न हुआ। उसे **सेरिस्सक** नाम छोटा-सा विमान मिला और जो उत्तर नामक माणवक उस दानपर बैठाया गया था, वह सत्कारपूर्वक दान दे, अपने हाथोंसे दान दे, मनसे दान दे, ठीकसे दान दे, मरनेके बाद सुगतिको प्राप्त हो स्वर्ग लोक में त्रायस्त्रिंश देवोंके बीच उत्पन्न हुआ।

उस समय आयुष्मान् **गवाम्पति** अपने छोटे सेरिस्सक विमानपर दिनके विहारके लिये सदा बाहर निकला करते थे। तब **पायासी** देवपुत्र जहाँ आयुष्मान् गवाम्पति थे वहाँ गया। जाकर ० एक ओर खळा हो गया। एक ओर खळे पायासी ० को ० गवाम्पति यह बोले—

"आवुस! आप कौन हैं?"

"भन्ते! मैं पायासी राजन्य हूँ।"

"आवुसो! क्या आप इस धारणाके थे—यह लोक नहीं है ०?"

"भन्ते! हाँ, मैं इस दृष्टिका था—यह लोक नहीं है ०। किंतु मैं आर्य कुमार काश्यपके द्वारा इस बुरी धारणासे हटाया गया।"

"आवुस! जो **उत्तर** नामक माणवक आपके दानमें बैठाया गया था सो कहाँ उत्पन्न हुआ है?"

"भन्ते! जो उत्तर नामक ० वह सत्कार पूर्वक ० दान दे मरनेके बाद ० हुआ है **त्रायस्त्रिंश** देवोंके बीच उत्पन्न हुआ है। और मैं भन्ते! सत्कारके बिना ० दान दे मरनेके बाद चातुर्महाराजिक देवताओंमें उत्पन्न हुआ हूँ। भन्ते गवाम्पति! तो आप मनुष्य लोकमें जाकर कहें—सत्कार पूर्वक दान दो, अपने हाथसे दान दो ०। पायासी राजन्य सत्कारके बिना ० दान दे ० चातुर्महाराजिक देवोंके बीच उत्पन्न हुआ, और ० उत्तर माणवक ० त्रायस्त्रिंश देवताओंमें ०।"

तब आयुष्मान् गवाम्पति मनुष्य-लोकमें आकर लोगोंको यह उपदेश देने लगे—

"सत्कारपूर्वक दान दो, अपने हाथसे दान दो, मनसे दान दो, ठीकसे दान दो। **पायासी** राजन्य सत्कारके बिना ० दान देकर मरनेके बाद चातुर्महाराजिक देवोंके बीच उत्पन्न ० और उत्तर माणवक ० त्रायस्त्रिंश देवोंमें उत्पन्न हुआ है।"

(इति महावग्ग ॥२॥)

३—पाथिक-वग्ग

२४–पाथिक-सुत्त (३।१)

१—सुनक्खत्तका बौद्धधर्म त्याग। २—अचेल कोरखत्तियकी मृत्यु। ३—अचेल कोरमट्टककी सात प्रतिज्ञायें। ४—अचेल पाथिक पुत्रकी पराजय। ५—ईश्वर-निर्माणवादका खंडन। ६—शुभविमोक्ष।

ऐसा मैंने सुना—एक समय भगवान् **मल्ल** देशमें **अनूपिया** नामक मल्लोंके निगममें विहार कर रहे थे।

तब भगवान्ने पूर्वाह्ण समय पहनकर, पात्र चीवर ले भिक्षाके लिये अनूपियामें प्रवेश किया। तब भगवान्के मनमें यह हुआ—अनूपियामें भिक्षाटन करनेके लिये यह बहुत सबेरा है। क्यों न मैं जहाँ **भार्गव-गोत्र** परिव्राजकका आराम है, और जहाँ भार्गव-गोत्र परिव्राजक है, वहाँ चलूँ।

तब भगवान् जहाँ ० भार्गवगोत्र परिव्राजक था वहाँ गये। भार्गवगोत्र परिव्राजकने भगवान्से कहा—"भन्ते! भगवान् पधारें, भगवान्का स्वागत है, बहुत दिनोंके बाद भगवान्का दर्शन हुआ है। यह आसन बिछा है, भगवान् बैठें।" भगवान् बिछे आसनपर बैठ गये। भार्गव-गोत्र परिव्राजक भी एक नीचा आसन लेकर एक ओर बैठ गया।

१–सुनक्खत्तका बौद्धधर्म-त्याग

एक ओर बैठे हुए भार्गव-गोत्र परिव्राजकने भगवान्से यह कहा—"भन्ते! कुछ दिन हुए कि **सुनक्खत्त लिच्छवि-पुत्र** जहाँ मैं था वहाँ आया। आकर मुझसे बोला—'हे भार्गव! मैंने भगवान्को छोळ दिया, अब मैं भगवान्के धर्मको नहीं मानता।'

"भन्ते! क्या जो सुनक्खत्त ० कहता है वह ठीक है?"

"भार्गव! ० ठीक है। कुछ दिन हुए कि सुनक्खत्त ० जहाँ मैं था वहाँ आया। आकर मेरा अभिवादन कर एक ओर बैठ गया। एक ओर बैठ सुनक्खत्त ० लिच्छविपुत्रने मुझसे यह कहा—'भन्ते! मैं अब भगवान्को छोळ देता हूँ, मैं अब आपके धर्मको नहीं मानता।'

"ऐसा कहनेपर मैंने ० यह कहा—'सुनक्खत्त! क्या मैंने तुझसे कभी कहा था—सुनक्खत्त! आ, मेरे धर्मको स्वीकार कर?'

'नहीं भन्ते।'

'तुमने भी क्या मुझसे कहा था—'भन्ते! मैं भगवान्के धर्मको स्वीकार करता हूँ?'

'नहीं, भन्ते!'

'सुनक्खत्त! न तो मैंने कहा—सुनक्खत्त! आ, मेरे धर्मको स्वीकार कर, और न तूने ही मुझसे कहा—भन्ते! मैं भगवान्के धर्मको स्वीकार करता हूँ। तब मूर्ख! तू किसको मानकर किसको छोळता है? मूर्ख! देख यह तेरा ही अपराध है।'

'भन्ते! भगवान् मुझे अलौकिक ऋद्धिबल नहीं दिखाते।'

'सुनक्खत्त ! क्या मैंने तुझसे ऐसा कहा था––सुनक्खत्त ! मेरे धर्मको स्वीकार कर, मैं तुझे अलौकिक ऋद्धि-बल दिखाऊँगा ?'

'नहीं, भन्ते !'

'तो क्या तूने मुझसे कभी ऐसा कहा था––मैं भन्ते ! आपके धर्मको मानता हूँ, आप मुझे अलौकिक ऋद्धि-बल दिखावें ?' 'नहीं, भन्ते !'

'**सुनक्खत्त** ! न मैंने ऐसा कहा ० और न तूने ऐसा कहा ०। तब, मूर्ख ! किसका होकर तू किसको छोळता है ?'

"सुनक्खत्त ! तब क्या तू समझता है––मेरे अलौकिक ऋद्धि-बलके दिखानेसे या न भी दिखानेसे दुःखोंके बिलकुल क्षयके लिये उपदिष्ट मेरा धर्म पूरा होगा ?'

"भन्ते ! आपके अलौकिक ऋद्धि-बल दिखाने या न दिखानेसे भी ० पूरा होगा।'

'सुनक्खत्त ! जब मेरे ० पूरा नहीं होगा तब मैं क्यों ० ऋद्धि-बल दिखलाऊँ ? मूर्ख ! देख, यह तेरा ही अपराध है।'

'भन्ते ! भगवान् मुझे लोगोंमें आगे करके उपदेश नहीं देते।'

'क्या सुनक्खत्त ! मैंने ऐसा कहा था––सुनक्खत्त ! आ ०।'

'नहीं, भन्ते !'

'सुनक्खत्त ! क्या तूने मुझसे ऐसा कहा था––० ?'

'नहीं, भन्ते !'

'सुनक्खत्त ! मैंने भी ऐसा नहीं कहा ० और तूने भी ऐसा नहीं कहा ०। तब मूर्ख ! तू किसका होकर किसको छोळता है ? क्या तू समझता है, सुनक्खत्त ! लोगोंमें आगे करके उपदेश देनेसे भी न देनेसे भी दुःखोंके बिलकुल क्षयके लिये उपदिष्ट मेरा धर्म पूरा होगा ?'

'भन्ते ! ० पूरा होगा।'

'सुनक्खत्त ! ० जब पूरा हो जाता है तो लोगोंमें आगे करके उपदेश देनेका क्या अर्थ ? मूर्ख ! देख, यह तेरा ही अपराध है। सुनक्खत्त ! तूने **वज्जी** ग्राममें अनेक प्रकारसे मेरी प्रशंसा की थी––वे भगवान् अर्हत् सम्यक् संबुद्ध ०[1] हैं। सुनक्खत्त ! इस तरह तूने वज्जी ग्राममें मेरी प्रशंसा अनेक प्रकारसे की थी। ० धर्मकी प्रशंसा की थी––भगवान्‌का धर्म स्वाख्यात, ०[1] है। सुनक्खत्त ! इस तरह ० धर्मकी प्रशंसा ० की थी। ० संघकी ०––भगवान्‌का श्रावक-संघ सुप्रतिपन्न ०[1]। सुनक्खत्त ! इस तरह ० संघकी प्रशंसा ० की थी।

'सुनक्खत्त ! तुम्हें कहता हूँ––लोग तुम्हें ही दोष देंगे––सुनक्खत्त लिच्छविपुत्र श्रमण गौतमके शासनमें ० ब्रह्मचर्य पालन करनेमें असमर्थ रहा। वह असमर्थ हो, शिक्षाको छोळ, गृहस्थ बन गया। सुनक्खत्त ! इस तरह लोग तुम्हें ही दोष देंगे।'

"भार्गव ! मेरे इस प्रकार कहनेपर सुनक्खत्त ० लिच्छविपुत्र आपायिक=नैरयिक (=नारकीय)के ऐसा इस धर्म-विनयसे चला गया।

२–अचेल कोरखत्तियकी मृत्यु

"भार्गव ! एक समय मैं **थुलू** देशमें **उत्तरका** नामवाले थुलुओंके कस्बेमें विहार कर रहा था। भार्गव ! मैं पूर्वाह्ण समय पहनकर पात्र चीवर ले सुनक्खत्त ० लिच्छविपुत्रको साथ ले उत्तरकामें भिक्षा-

---

[1] देखो पृष्ठ २८८।

टनके लिये गया। उस समय **अचेल कोरखत्तिय** कुक्कुर-व्रतिक (कुत्तेके जैसा) दोनों घुटनों और हाथोंके बल बैठा, ज़मीनपर फेंके हुए अन्नको मुँहसे खा और चबा रहा था।

"भार्गव ! सुनक्खत्त लिच्छविपुत्रने उस कुक्कुरव्रतिक अचेल कोरखत्तियको ० खाते और चबाते देखा। देखकर उसके मनमें यह आया—'यह बळा पहुँचा हुआ अर्हत् श्रमण है, जो दोनों घुटने और हाथों-के बल ० खा और चबा रहा है।

"भार्गव ! तब मैंने **सुनक्खत्त** लिच्छविपुत्रके चित्तको चित्तसे जान उससे कहा—'मूर्ख ! क्या तू भी अपनेको **शाक्य-पुत्रीय** श्रमण समझेगा ?'

'भन्ते ! भगवान्‌ने ऐसा क्यों कहा—मूर्ख ! क्या तू भी ० ?'

'सुनक्खत्त ! इस ० अचेल कोरखत्तिय ०को खाते चबाते देखकर तेरे मनमें क्या यह नहीं आया—यह बळा ० अर्हत् श्रमण है ?'

'हाँ, भन्ते ! भगवान् दूसरेके अर्हत् होनेसे क्यों डाह करते हैं।'

'मूर्ख ! मैं उसके अर्हत् होनेसे डाह नहीं करता। किन्तु जो तेरी यह बुरी धारणा (=पाप-दृष्टि) उत्पन्न हुई है, उसे छोळ दे, जिसमें कि तेरा भविष्य अहित और दुःखके लिये न हो। सुनक्खत्त ! जिस अचेल **कोरखत्तिय**को तू समझ रहा है—यह ० अर्हत् श्रमण है ०, वह आजसे सातवें दिन **अलसक** रोगसे मरकर **कालकञ्जिका** नामक निकृष्ट असुर-योनिमें उत्पन्न होगा। मर जानेपर लोग उसे **वीरणत्थम्भक** नामक श्मशानमें छोळ देंगे। यदि चाहे तो सुनक्खत्त ! अचेल कोरखत्तियके पास जाकर पूछ—आवुस अचेल ! अपनी गति तुम्हें मालूम है ? सुनक्खत्त ! यह बात है जिसे वह ० बतलावेगा—आवुस सुनक्खत्त ! मैं अपनी गति जानता हूँ। कालकञ्जिका नामक असुर ० होऊँगा।'

"भार्गव ! तब सुनक्खत्त लिच्छविपुत्र जहाँ अचेल कोरखत्तिय था वहाँ गया। ० बोला—आवुस कोरखत्तिय ! श्रमण गौतम कहते हैं—अचेल कोरखत्तिय आजसे सातवें दिन ०। ० श्मशानमें छोळ देंगे। अतः, आवुस ० ! तुम बहुत हिसाबसे खाओ और पीओ, जिससे श्रमण गौतमका कहना झूठा हो जावे।

"भार्गव ! तब सुनक्खत्त लिच्छविपुत्र तथागतमें अविश्वास करके एक दो दिन करके सात दिन गिनने लगा। भार्गव ! तब सातवें दिन अचेल ० अलसक रोगसे मर गया ० लोग उसे ० श्मशानमें छोळ आये। भार्गव ! तब सुनक्खत्त लिच्छविपुत्रने सुना—अचेल कोरखत्तिय मर गया है ०, लोग उसे ० श्मशानमें छोळ आये हैं। भार्गव ! तब सुनक्खत्त लिच्छविपुत्र जहाँ ० श्मशानमें अचेल कोरखत्तिय था, वहाँ गया। जाकर अचेल कोरखत्तियको उसने तीन बार थपथपाया—आवुस कोरखत्तिय ! अपनी गति जानते हो ?'

"भार्गव ! तब अचेल कोरखत्तिय पीठ पोंछते हुए उठ खळा हुआ—'आवुस ० ! मैं अपनी गति जानता हूँ। कालकञ्जिका नामक निकृष्ट असुर-योनिमें उत्पन्न हुआ हूँ।' इतना कहकर वहीं चित गिर गया।

"भार्गव ! तब सुनक्खत्त लिच्छविपुत्र जहाँ मैं था, वहाँ आया। आकर मेरा अभिवादनकर एक ओर बैठ गया। भार्गव ! एक ओर बैठे सुनक्खत्त लिच्छविपुत्रसे मैंने कहा—'सुनक्खत्त ! तो क्या समझता है—जैसा मैंने अचेल कोरखत्तियके विषयमें कहा था, वैसा ही हुआ या दूसरा ?'

'भन्ते ! भगवान्‌ने ० जैसा कहा था वैसा ही हुआ, दूसरा नहीं।'

'सुनक्खत्त ! तो तू क्या समझता है—ऐसा होनेपर यह अलौकिक ऋद्धि-बल हुआ या नहीं ?'

'भन्ते ! ऐसा होनेपर ० ऋद्धि-बल हुआ, 'नहीं नहीं' हुआ।'

'मूर्ख ! इस तरह मेरें ० ऋद्धि-बल दिखानेपर भी तू कैसे कहता है—भन्ते ! भगवान् मुझे ० ऋद्धि-बल नहीं दिखाते हैं ? मूर्ख ! देख, यह तेरा ही अपराध है।'

"भार्गव ! मेरे ऐसा कहनेपर भी सुनक्खत्त लिच्छविपुत्र, अपायिक—नारकीयकी भाँति इस धर्मसे चला गया।

३–अचेल कोरमट्टककी सात प्रतिज्ञायें

"भार्गव ! एक समय मैं **वैशाली**के पास **महावन**की **कूटागारशाला**में विहार करता था। उस समय **अचेल कोरमट्टक वज्जियों**के ग्राम वैशालीमें बळे लाभ और बळे यशको प्राप्त हो निवास करता था। उसने सात व्रत ग्रहण किये थे—(१) जीवन भर नंगा रहूँगा, वस्त्र-धारण नहीं करूँगा; (२) जीवन भर ब्रह्मचारी रहूँगा, मैथुन-धर्मका सेवन नहीं करूँगा; (३) जीवन भर मांस खाकर और सुरा पीकर ही रहूँगा, भात दाल नहीं खाऊँगा; (४) वैशालीमें पूरबकी ओर **उदयन** नामक चैत्यके आगे न जाऊँगा; (५) ० दक्षिणमें **गोतमक** नामक चैत्य ०। (६) ० पश्चिममें **सप्ताम्रक** नामक चैत्य ०। (७) ० उत्तरमें **बहुपुत्रक** नामक चैत्यके आगे न जाऊँगा। वह इन सात व्रतोंको लेनेके कारण वज्जियोंके ग्राममें वळे लाभ और यशको प्राप्त था।

"भार्गव ! तब सुनक्खत्त लिच्छविपुत्र जहाँ अचेल कोरमट्टक था, वहाँ गया। जाकर उसने अचेल कोरमट्टकसे कुछ प्रश्न पूछे। उन प्रश्नोंके पूछे जानेपर अचेल कोरमट्टक उत्तर न दे सका। उत्तर न दे वह क्रोध, द्वेष और असंतोष प्रगट करने लगा।

"भार्गव ! तब सुनक्खत्त लिच्छविपुत्रके मनमें यह आया—ऐसे पहुँचे हुए अर्हत् श्रमणको मैंने चिढ़ा दिया, कहीं मेरा भविष्य अहित और दुःखके लिये न हो।

"भार्गव ! तब सुनक्खत्त लिच्छविपुत्र जहाँ मैं था वहाँ आया। आकर मुझे अभिवादन करके एक ओर बैठ गया। एक ओर बैठे सुनक्खत्त लिच्छविपुत्रको मैंने कहा—'मूर्ख ! क्या तू भी अपने को **शाक्यपुत्रीय** श्रमण कहेगा ?' 'भन्ते ! भगवान्ने ऐसा क्यों कहा ० ?'

'सुनक्खत्त ! क्या तूने अचेल कोरमट्टकके पास जाकर प्रश्न नहीं पूछे ०। वह प्रकट करने लगा। तब तेरे मनमें यह आया—ऐसे पहुँचे ० मेरा भविष्य अहित और दुःखके लिये न हो।'

'हाँ, भन्ते ! ० क्यों डाह करते हैं ?'

'मूर्ख ! मैं ० डाह नहीं करता। किन्तु जो तुझे यह बुरी धारणा उत्पन्न हुई है, उसे छोळ दे। जिसमें कि तेरा भविष्य अहित और दुःखके लिये न हो। सुनक्खत्त ! जिस अचेल कोरमट्टकको तू ऐसा समझता है—पहुँचा हुआ ० वह शीघ्र ही कपळे पहन, स्त्रीके साथ, दाल भात खाते, वैशालीके सभी चैत्योंको पारकर अपने सारे यशको खो विचरते हुए मर जायेगा।'

"भार्गव ! तब कुछ ही दिनोंके बाद अचेल कोरमट्टक ० विचरते हुए मर गया। सुनक्खत्त लिच्छविपुत्रने सुना—'अचेल कोरमट्टक ० विचरते हुए मर गया।'

"भार्गव ! तब सुनक्खत्त लिच्छविपुत्र जहाँ मैं था वहाँ आया ० एक ओर बैठ गया। एक ओर बैठे सुनक्खत्त लिच्छविपुत्रको मैंने कहा—सुनक्खत्त ! तो क्या समझता है, जैसा मैंने अचेल कोरमट्टकके विषयमें कहा था, वैसा ही उसका फल हुआ या दूसरा ?

'भन्ते ! भगवान्ने जैसा कहा था, वैसा ही उसका फल हुआ, दूसरा नहीं।'

'सुनक्खत्त ! ० ऋद्धि-बल हुआ या नहीं ?' 'भन्ते ! ० ऋद्धि-बल हुआ ०।'

'मूर्ख ! इस तरह मेरे ० ऋद्धि-बल दिखानेपर भी तू कैसे कहता है—भन्ते ! भगवान् मुझे ०

ऋद्धि-बल नहीं दिखाते हैं ? मूर्ख ! देख यह तेरा ही अपराध है ।'

"भार्गव ! मेरे ऐसा कहनेपर भी सुनखत्त ० चला गया।

४—अचेल पाथिक-पुत्रकी पराजय

"भार्गव ! एक समय मैं वहीं वैशालीके महावनकी **कूटागार**शालामें विहार करता था। उस समय अचेल **पाथिक-पुत्र** बळे लाभ और बळे यशको प्राप्तकर वज्जियोंके ग्राम वैशालीमें वास करता था। वह वैशालीमें सभाओंके बीच ऐसा कहा करता था—श्रमण गौतम ज्ञानवादी है, मैं भी ज्ञानवादी हूँ। ज्ञानवादीको ज्ञानवादीके साथ अलौकिक ऋद्धि-बल दिखाना चाहिये। श्रमण गौतम आधा मार्ग आवे और मैं भी आधा मार्ग जाऊँ। हम दोनों वहाँ मिलकर अलौकिक ऋद्धि-बल दिखावें। यदि श्रमण गौतम एक ऋद्धि-बल दिखावेंगे तो मैं दो दिखाऊँगा, यदि श्रमण गौतम दो ० तो मैं चार, यदि ० चार ० तो मैं आठ ०। इस तरह श्रमण गौतम जितना ० दिखलायेंगे, मैं उसका दूना दिखलाऊँगा।

"**भार्गव** ! तब **सुनक्खत्त** लिच्छविपुत्र जहाँ मैं था वहाँ आया। ० बैठ गया। एक ओर बैठे ० कहा—'भन्ते अचेल पाथिकपुत्र ० ऐसा कहता है ०। इस तरह श्रमण गौतम जितना ० उसका मैं दूना ०।'

"भार्गव ! ऐसा कहनेपर मैंने सुनक्खत्त ० से यह कहा—'सुनक्खत्त ! अचेल पाथिकपुत्रका ऐसा कहना अनुचित है; यदि वह इस बातको बिना छोळे, इस चित्तको बिना छोळे, इस दृष्टिको बिना छोळे ० मेरे सामने आवे। यदि उसके मनमें ऐसा भी हो—मैं उस बातको बिना छोळे ० श्रमण गौतम के निकट चलूँ, तो उसका शिर भी फट जायेगा।'

'भन्ते ! भगवान् रहने दें इस वचनको, सुगत रहने दें इस वचनको।'

'सुनक्खत्त ! तूने मुझसे ऐसा क्यों कहा—भन्ते ! भगवान् रहने दें ० ?'

'भन्ते ! भगवान्ने तो पक्की तौरसे कह दिया—अचेल पाथिकपुत्रका ऐसा कहना अनुचित है ० शिर भी फट जायेगा। भन्ते ! यदि अचेल पाथिकपुत्र विरूप वेशमें भगवान्के सामने आ जाये तो यह भगवान्की बात झूठ हो जायेगी।'

'सुनक्खत्त ! तथागत क्या ऐसी बात बोलते हैं जो अन्यथा हो ?'

'भन्ते ! क्या भगवान्ने अचेल पाथिकपुत्रके चित्तको अपने चित्तसे जान लिया है—अचेल पाथिकपुत्रका ऐसा कहना अनुचित है ० ? या किसी देवताने भगवान्से यह कह दिया है—अचेल पाथिकपुत्रका ऐसा कहना ० ?

'सुनक्खत्त ! मैंने अपने चित्तसे उसके चित्तको जान लिया है—अचेल पाथिकपुत्रका ऐसा कहना ०।' और देवताओंने भी मुझे कहा है—अचेल पाथिकपुत्रका ऐसा कहना ०। **अजित**नामक लिच्छवियोंका सेनापति अभी अभी मरकर त्रायस्त्रिंश लोकमें उत्पन्न हुआ है। उसने भी मेरे पास आकर कहा है—भन्ते ! अचेल पाथिकपुत्र निर्लज्ज है, झूठा है। अचेल पाथिकपुत्रका ऐसा कहना ०। सुनक्खत्त ! मैंने अपने चित्तसे भी जान लिया है—अचेल पाथिकपुत्र का ऐसा कहना ०। देवताने भी ०। सुनक्खत्त ! कल मैं वैशालीमें भिक्षाटनसे लौट, भोजनोपरान्त दिनके विहारके लिये जहाँ अचेल पाथिकपुत्रका आराम है, वहाँ चलूँगा। सुनक्खत्त ! जो तू चाहता है सो कर।'

"भार्गव ! तब मैं पूर्वाह्ण समय पहनकर ० जहाँ अचेल पाथिकपुत्रका आराम था, वहाँ गया।

"भार्गव ! तब सुनक्खत्त घबळाया हुआ सा वैशालीमें प्रविष्ट हो, जहाँ बळे बळे **लिच्छवी** थे वहाँ गया। जाकर ० बोला—'यह भगवान् वैशालीमें भिक्षाटनके बाद दिनके विहारके लिये जहाँ अचेल पाथिकपुत्रका आराम है, वहाँ गये हुए हैं। आप लोग चलें—पहुँचे हुए श्रमण अलौकिक ऋद्धि-बल दिखायेंगे।'

'हाँ ! हम लोग चलेंगे।'

"(फिर वह) 'जहाँ बळे बळे ब्राह्मणमहाशाल, धनी वैश्य, नाना प्रकारके साधु, श्रमण और ब्राह्मण थे वहाँ गया। जाकर ० बोला—ये भगवान् ० जहाँ अचेल०का आराम ०। ० चलें। ० ऋद्धि-बल दिखायेंगे।'

'हाँ, हम लोग चलेंगे।'

"भार्गव ! तब बळे बळे **लिच्छवि**, बळे बळे ब्राह्मण महाशाल, ० जहाँ अचेल **पाथिकपुत्र**का आराम था, वहाँ पहुँचे। कई सौ और कई हज़ारोंका जमघट हो गया।

"भार्गव ! तब अचेल पाथिकपुत्रने सुना—बळे बळे लिच्छवी० वळे वळे ब्राह्मण० आये हुए हैं। श्रमण गौतम मेरे आराममें दिनके विहारके लिये बैठे हैं। सुनकर उसे भय, कंप, और रोमाञ्च होने लगे। भार्गव ! तब अचेल पाथिकपुत्र भयभीत, संविग्न, और रोमाञ्चित हो जहाँ **तिन्दुकखाणु** (नामक) परिब्राजकोंका आराम था, वहाँ चला गया।

"भार्गव ! उस सभाने यह सुना—अचेल पाथिकपुत्र भयभीत हो ० चला गया है। भार्गव ! तब उस सभाने किसी पुरुषसे कहा—जहाँ ० परिब्राजकों का आराम है और जहाँ अचेल पाथिकपुत्र है वहाँ जाओ। जाकर ० यह कहो—पाथिकपुत्र ! चलें, बळे वळे लिच्छवी ० आये हुए हैं, और श्रमण गौतम भी आयुष्मान्‌के आराममें दिनके विहारके लिये बैठे हैं। आवुस पाथिकपुत्र ! आपने **बैशाली**में सभाके बीच यह बात कही थी—श्रमण गौतम भी ज्ञानवादी ० उससे दुगुना ऋद्धि-बल दिखाऊँगा। आवुस ० ! आधे मार्गको छोळ श्रमण गौतम सर्वप्रथम ही आयुष्मान्‌के आराम में आकर दिनके विहारके लिये बैठे हैं।'

'बहुत अच्छा' कह वह पुरुष ० जहाँ अचेल पाथिकपुत्र था वहाँ गया। जाकर ० बोला— 'आवुस ० ! चलें, बळे बळे लिच्छवी ०।'

"भार्गव ! ऐसा कहनेपर अचेल पाथिकपुत्र 'आवुस, चलता हूँ। आवुस, चलता हूँ।' कहकर वहीं रुक गया, आसनसे उठ भी नहीं सका। भार्गव ! तब वह पुरुष अचेल पाथिकपुत्रसे यह बोला— 'आवुस ० ! आपको क्या हो गया है ? क्या आपकी देह पीढ़ेमें सट गई है, या पीढ़ा ही आपकी देहमें सट गया है ? जो 'आवुस, चलता हूँ ०' कहकर वहीं रुक जाते हो, आसनसे उठते भी नहीं।'

"भार्गव ! ऐसा कहनेपर ० उठ भी नहीं सका। भार्गव ! जब उस पुरुषने समझ लिया— यह अचेल पाथिकपुत्र हारा ही सा है, 'चलता हूँ चलता हूँ' कहकर ० उठ भी नहीं सकता, तब उसने सभामें आकर कहा—'यह अचेल पाथिकपुत्र हारा ही सा है। 'चलता हूँ, चलता हूँ'—कहकर ० उठ भी नहीं सकता।'

"भार्गव ! उसके ऐसा कहनेपर मैंने सभासे यह कहा—'अचेल पाथिकपुत्रका ऐसा कहना अनुचित है ० शिर भी फट जायगा।'

(इति) प्रथम भाणवार ॥१॥

"भार्गव ! तब लिच्छवियोंके एक अफसरने आसनसे उठकर सभामें कहा—'तो आप लोग थोळी और प्रतीक्षा करें। मैं जाता हूँ, शायद मैं अचेल पाथिकपुत्रको इस सभामें ला सकूँ।'

"भार्गव ! तब वह लिच्छवियोंका मन्त्री ० जहाँ अचेल पाथिकपुत्र था वहाँ गया। जाकर अचेल पाथिकपुत्रसे बोला—'आवुस पाथिक-पुत्र ! चलें, आपका चलना बळा अच्छा होगा। बळे-बळे लिच्छवी ० आये हैं। आपने ० सभाके बीच यह बात कही थी—श्रमण गौतम ज्ञानवादी ०।

आवुस।० ! श्रमण गौतमने सभामें यह बात कही है—अचेल ०का ऐसा कहना अनुचित ०। आवुस०! चले। चलनेहीसे हम लोग आपको जिता देंगे, श्रमण गौतमकी हार हो जायेगी।'

"भार्गव ! ऐसा कहनेपर अचेल पाथिकपुत्र 'आवुस ! चलता हूँ०' कहकर ० उठ भी नहीं सका। भार्गव ! तब ० अफसरने अचेल पाथिकपुत्रसे कहा—क्या ० पीढ़ा सट गया है ०। जब मन्त्रीने जान लिया—अचेल ० हार सा गया है, 'चलता हूँ ०' कहकर ० उठ भी नहीं सकता, तो सभामें आकर कहा—'अचेल हारसा गया ० उठ भी नहीं सकता।'

"भार्गव ! उसके ऐसा कहनेपर मैंने सभामें कहा—० अनुचित था ०। यदि आप आयुष्मान् लिच्छवियोंके मनमें यह हो—हम लोग अचेल पाथिकपुत्रको रस्सीसे बाँध, बैलकी जोळीसे खींच लावेंगे; तौ भी चाहे तो रस्सी ही टूट जायेगी या पाथिकपुत्र ही टूट जायेगा (किंतु वह अपने आसनको नहीं छोळेगा) अचेल पाथिकपुत्रका ऐसा कहना अनुचित ०।'

"भार्गव ! तब, **दारुपत्तिक**का शिष्य **जालिय** आसनसे उठकर सभामें बोला—तो आप लोग थोळी और प्रतीक्षा करें ०। जहाँ अचेल वहाँ गया ० चलें। ० तुमने यह बात कही थी ० ज्ञानवादी ०। ० आवुस पाथिक-पुत्र ! आप चलें। चलनेहीसे हम लोग आपको जिता देंगे, श्रमण **गौतम**की हार हो जायेगी।'

"भार्गव ! 'चलता हूँ, चलता हूँ।' कह ० आसनसे भी नहीं उठ सका।

"भार्गव ! तब जालिय ० ने अचेल पाथिकपुत्रसे यह कहा—० क्या सट गया है ? ० आसनसे भी नहीं उठता ?'

"भार्गव ! ० आसनसे भी नहीं उठ सका। जब ० जालियने समझ लिया—अचेल नहीं मानेगा—'चलता हूँ, चलता हूँ।' कहकर ० आसनसे उठता भी नहीं; तब उससे कहा—'आवुस पाथिकपुत्र ! पुराने समयमें एक बार मृगराज सिंहके मनमें यह आया—मैं किसी बनमें जाकर वास करूँ, वहाँ वासकर सायंकाल अपनी माँदसे निकलूँगा। माँदसे निकलकर जँभाई लूँगा। जँभाई लेकर चारों ओर देखूँगा। चारों ओर देखकर तीन बार सिंह-नाद करूँगा। तीन बार सिंह-नाद करके गोचर- (=शिकार)के लिये प्रस्थान करूँगा। वहाँ अच्छे अच्छे जानवरोंको मार, नरम नरम मांस खा, उसी माँदमें चला आऊँगा।

तब वह मृगराज सिंह किसी वनमें जाकर वास करने लगा, ० नरम नरम मांस खा, उसी माँदमें आकर रहने लगा। पाथिकपुत्र ! उसी मृगराज सिंहके जूठे छुटे माँसको खाकर एक बूढ़ा स्यार मोटा और बलवान् हो गया।

"आवुस पाथिकपुत्र ! तब उस बूढ़े स्यारके मनमें यह आया—क्या मैं हूँ, क्या मृगराज सिंह है ? मैं भी क्यों न किसी वनमें जाकर वास करूँ ० सायंकाल माँदसे निकलूँगा ० सिंह-नाद करूँगा ० अच्छे अच्छे जानवरोंको मार, नरम नरम मांस खा, उसी माँदमें चला आऊँगा। 'आवुस ! तब वह बूढ़ा स्यार किसी वनमें जाकर वास करने लगा, ० सायंकाल माँदसे निकला, ० जँभाई ली, ०चारों ओर देखा, चारों ओर देखकर 'तीन बार सिंह-नाद करूँगा' करके कर्कश स्यारोंका ही शब्द (हुँवा, हुँवा) करने लगा। भला, कहाँ सिंह-नाद और कहाँ एक तुच्छ स्यारका हुँवा हुँवा।

'आवुस पाथिक ! इसी तरह सुगतकी ही शिक्षाओंसे जीनेवाले और उनका जूठा खानेवाले आप सम्यक्-सम्बुद्ध, अर्हत्, तथागतका सामना कैसे करना चाहते थे ? कहाँ तुच्छ पाथिक-पुत्र और कहाँ सम्यक्-सम्बुद्ध अर्हत् तथागतोंका सामना करना ?'

"भार्गव ! दारुपत्तिकका शिष्य जालिय, इस **उपमा**से भी अचेल पाथिकपुत्रको उस आसनसे हिला नहीं सका। तब, बोला—

'अपनेको सिंह मान स्यारने समझा कि मैं मृगराज हूँ, और ऐसा कह'।
"हुँवा, हुँवा" करने लगा, कहाँ तुच्छ स्यार और कहाँ सिंह-नाद ॥१॥

'आवुस०! उसी तरह सुगतकी ही शिक्षाओंसे जीनेवाले० आप मानों अर्हत् तथागत सम्यक् सम्बुद्धका सामना करना चाहते थे। कहाँ तुच्छ पाथिक-पुत्र और कहाँ० सम्बुद्धोंका सामना करना?

"भार्गव! तब भी जालिय० अचेल **पाथिकपुत्र** को उस आसनसे नहीं हिला सका। तो बोला—

'जूठेको खा, अपनेको (मोटा) देख, जब तक अपने स्वरूपको नहीं पहचानता, तब तक स्यार अपनेको व्याघ्र समझता है।
वह उसी तरह स्यारके ऐसा 'हुँवा, हुँवा' करता है।
कहाँ तुच्छ स्यार और कहाँ सिंह-नाद!॥२॥

"आवुस! उसी तरह सुगतकी ही० सामना करना चाहते थे। कहाँ० पाथिकपुत्र०! ० तब बोला—

'मेंढक, चूहों, श्मशानमें फेंके मुर्दोंको खाकर बूढ़ा (स्यार) छोटे या बळे जंगलमें रहता था।
स्यारने समझा—मैं मृगराज हूँ। उसी तरह वह 'हुँवा, हुँवा' करने लगा।
कहाँ एक तुच्छ स्यार और कहाँ सिंह-नाद!'॥३॥

"०इस **उपमा** से भी अचेल पाथिकपुत्रको अपने आसनसे नहीं हिला सका।

"तब वह उस सभामें आकर यह बोला—अचेल पाथिकपुत्र हार ही गया है। 'चलता हूँ' 'चलता हूँ' कहकर० आसनसे नहीं उठता।

"भार्गव! ऐसा कहनेपर मैंने सभाम यह कहा—० अचेल पाथिकपुत्रका ऐसा कहना अनुचित०। ० या रस्सी टूट जायेगी या अचेल पाथिकपुत्र ही टूट जायेगा। ० अनुचित ०'।

"भार्गव! तब मैंने उस सभाको धार्मिक उपदेशोंसे समझाया, बुझाया, उत्साहित तथा प्रसन्न-किया। उस सभाको धार्मिक उपदेशोंसे ० प्रसन्नकर, संसारके बळे बन्धनसे मुक्त किया। चौरासी हज़ार प्राणियोंको भवसागरसे उबारा, फिर अग्नितत्त्व (=तेजो धातु)को (ध्यानसे) ग्रहणकर, सात ताल आकाशमें ऊपर उठ और सात ताल ऊँचा अपने तेजको फैला और (स्वयं) धुँआ देते, प्रज्वलित हो **महावन** की कूटागारशालाके ऊपर उठा।

"भार्गव! तब **सुनक्खत्त** लिच्छविपुत्र जहाँ मैं था वहाँ गया। ० एक ओर बैठे सुनक्खत्त ०-को मैंने कहा—'सुनक्खत्त! तो तू क्या समझता है—अचेल पाथिक-पुत्रके विषयमें जैसा मैंने कहा था वैसा ही हुआ या दूसरा?'

'भन्ते! ० जैसा आपने कहा था वैसा ही हुआ, दूसरा नहीं।'

'सुनक्खत्त! तो तू क्या समझता है—० ऋद्धि-बल दिखाया गया या नहीं?'

'भन्ते! ० दिखाया गया ०।'

'मूर्ख! ० दिखानेपर भी तू कैसे कहता है—भन्ते! भगवान् ० (ऋद्धि) नहीं दिखाते। मूर्ख! देख यह तेरा ही दोष है।' भार्गव! ० सुनक्खत्त ० चला गया।

"भार्गव! मैं अग्र (श्रेष्ठ)को जानता हूँ। मैं उसे जानता हूँ, उससे भी अधिक जानता हूँ। उसे जानकर वैसा अभिमान भी नहीं करता। अभिमान न करते हुये मैं अपने भीतरही भीतर मुक्तिका अनुभव करता हूँ, जिस अनुभव के करनेसे तथागत फिर कभी दुःख नहीं पाते।

५–ईश्वर निर्माणवादका खंडन

"भार्गव ! जो श्रमण ब्राह्मण **ईश्वर** (=इस्सर) या **ब्रह्माक** (सृष्टि)कर्तापनके मत (=आचार्यक)को अग्रणी (=श्रेष्ट) बतलाते हैं, उनके पास जाकर मैं यों कहता हूँ—क्या सचमुच आप लोग **ईश्वर**०के (सृष्टि)कर्त्तापनको श्रेष्ठ बतलाते हैं ?' मेरे ऐसा पूछनेपर वे 'हाँ' कहते हैं।

"उन्हें मैं ऐसा कहता हूँ—'आप लोग कैसे ईश्वर ०के (सृष्टि)कर्त्तापनको श्रेष्ठ बताते हैं ?' मेरे ऐसे पूछने पर वे उत्तर नहीं दे सकते। उत्तर न देकर वे मुझहीसे पूछने लगते हैं। उन लोगोंके पूछनेपर मैं उनका उत्तर देता हूँ।—'आवुसो ! बहुत दिनोंके बीतनेपर कोई समय आवेगा जब इस लोकका प्रलय होगा। प्रलय हो जानेपर (भी) जो **आभास्वर** योनिमें जन्मे प्राणी मनोमय, प्रीति भोजी, स्वयंप्रभ, अन्तरिक्षगामी और शुभस्थायी होते हैं वही चिरकाल तक रहते हैं।

"आवुसो ! बहुत काल बीतनेपर कोई समय आवेगा, जब इस लोककी उत्पत्ति (=विवर्त) होती है। लोकके विवर्त हो जानेपर, शून्य ब्रह्म-विमान (=ब्रह्मलोक) प्रकट होता है। तब (आभास्वर देवलोकका) कोई प्राणी आयुके क्षीण होनेसे, या पुण्यके क्षीण होनेसे, (आभास्वर लोक)से च्युत हो शून्य ब्रह्म-विमानमें उत्पन्न होता है। वह वहाँ मनोमय प्रीतिभोजी ० होता है। वह वहाँ बहुत दिनों तक रहता है। वहाँ बहुत दिनों तक अकेले रहनेके कारण उसका जी ऊब जाता है और उसे भय मालूम होने लगता है—'अहो ! दूसरे प्राणी भी यहाँ आवें'। उसी समय दूसरे प्राणी भी आयु ० पुण्यके क्षय होनेसे ० पहिलेवाले प्राणीके साथी हो शून्य ब्रह्म-विमानमें उत्पन्न होते हैं। वे भी वहाँ मनोमय ० होते हैं। ० बहुत दिन तक रहते हैं।

"आवुस ! जो प्राणी वहाँ पहले उत्पन्न होता है, उसके मनमें यह होता है—'मैं ब्रह्मा, महा-ब्रह्मा, अभिभू (=विजेता) अन्-अभिभूत, सर्वज्ञ, वशवर्ती, **ईश्वर**, कर्ता, निर्माता, श्रेष्ठ, स्वामी (=वशी) और भूत तथा भविष्यके प्राणियोंका पिता हूँ। मैंने ही इन प्राणियोंको उत्पन्न किया है। सो किस हेतु ? मेरे ही मनमें यह पहले हुआ था—अहो ! दूसरे भी प्राणी यहाँ आवें। अतः मेरे ही मनसे उत्पन्न होकर ये प्राणी यहाँ आये हैं। और जो प्राणी पीछे उत्पन्न हुये, उनके मनमें भी यह आता है—'यह ब्रह्मा, महाब्रह्मा ० ईश्वर, (सृष्टि)कर्त्ता, ० पिता है। इसने०ही हम लोगोंको उत्पन्न किया है। सो किस हेतु ? इसको हम लोगोंने यहाँ पहलेहीसे विद्यमान पाया, हम लोग (तो) पीछे उत्पन्न हुये।'

"आवुसो ! जो प्राणी पहले उत्पन्न होता है, वह दीर्घ-आयु, अधिक रोबवाला और अधिक सम्मानित होता है। और जो प्राणी पीछे उत्पन्न होते हैं, वे अल्प-आयु कमरोबवाले, कम सम्मानित होते हैं। आवुसो ! यही कारण है कि दूसरा प्राणी (जब) उस कायाको छोळ कर इस (लोक)में आता है। यहाँ आकर घरसे बेघर हो प्रव्रजित होता है। ० प्रव्रजित होकर संयम, वीर्य, अध्यवसाय, अप्रमाद और स्थिर चित्तसे उस प्रकारकी चित्तसमाधिको प्राप्त करता है, जिससे कि एकाग्रचित्त होनेपर उससे पूर्वके जन्मका स्मरण करता है, उसके आगेका नहीं स्मरण करता। वह ऐसा कहता है—जो वह ब्रह्मा, महाब्रह्मा ० है, जिस ब्रह्माने हमें उत्पन्न किया है, वह नित्य, ध्रुव, शाश्वत, निर्विकार (=अविपरिणामधर्मा) और सदाके लिये वैसा ही रहनेवाला है। और जो हम लोग उस ब्रह्मा द्वारा उत्पन्न किये गये हैं, अनित्य, अध्रुव, अल्पायु, मरणशील हैं। इस प्रकार आप लोग **ईश्वरका (सृष्टि-) कर्त्ता-पन** ० बतलाते हैं ?' वह लोग ऐसा कहते हैं—'आवुस गौतम ! जैसा आयुष्मान् **गौतम** बतलाते हैं, वैसा ही हम लोगोंने (भी) सुना है।

"भार्गव ! मैं अग्र जानता हूँ ० जिसके जाननेसे तथागत फिर दुःखमें नहीं पळते।"

"भार्गव ! कितने श्रमण और ब्राह्मण **क्रीडाप्रदोषिक** (=खिड्डापदोसिक)का आदिपुरुष होना—इस मत (=आचार्यक)को मानते हैं। उनके पास जाकर मैं ऐसा कहता हूँ—'क्या सचमुच आप

आयुष्मान् लोग क्रीडाप्रदोषिकको आदि पुरुष ० बतलाते हैं?' मेरे ऐसा पूछनेपर वे 'हाँ' कहते हैं। उन्हें मैं यह कहता हूँ—'आप आयुष्मान् कैसे ० आदिपुरुष ० मानते हैं?' मेरे ऐसा पूछनेपर वे उत्तर नहीं देते। उत्तर न देकर मुझसे ही पूछते हैं। उन लोगोंके पूछने पर मैं उत्तर देता हूँ—'आवुसो! क्रीडाप्रदोषिक नामक सात देवता हैं। वे बहुत दिनों तक क्रीडामें रत रह, लगे रह विहार करते हैं। ० विहार करनेसे उनकी स्मृति नष्ट हो जाती है। स्मृति के नष्ट हो जानेपर वे देव उस कायासे च्युत हो जाते हैं। आवुस! यही कारण है कि कोई प्राणी उस कायासे च्युत होकर इस (लोक)में आता है। यहाँ आकर घरसे बेघर ० एकाग्रचित्त हो उससे पूर्वके जन्मको स्मरण करता है; उसके पहले को स्मरण नहीं करता। वह ऐसा कहता है—'जो देवता क्रीडाप्रदोषिक नहीं हैं वे क्रीडा और रतिमें बहुत लगे नहीं रहते। ० उनकी स्मृति नष्ट नहीं होती। स्मृतिके नष्ट नहीं होनेसे वे उस कायासे च्युत नहीं होते, नित्य ध्रुव ०। और जो हम लोग क्रीडाप्रदोषिक देवता हैं, ० रतिमें लगे रहे। ० स्मृति नष्ट हो गई। ० उस कायासे च्युत हो गये। (अतः हम लोग) अनित्य, अध्रुव ०'। ० जैसा आपने कहा।

"भार्गव! मैं अग्रको जानता०।

"भार्गव! कितने श्रमण और ब्राह्मण **मनःप्रदोषिक** (=मनोपदोसिक) देवताके आदिपुरुष होनेके मतको मानते हैं। उनके पास जाकर मैं यों कहता हूँ—कैसे ०।०।० मैं यह कहता हूँ—आवुसो! मनःप्रदोषिक नामक देवता हैं। वे (जब) एक दूसरेको बहुत आँख लगाकर देखते हैं। ० (उससे) उनके चित्त एक दूसरेके प्रति दूषित हो जाते हैं। वे एक दूसरेके प्रति दूषित चित्तवाले, क्लान्त-काय और क्लान्त-चित्त हो जाते हैं। (तब) वे देवता उस कायासे च्युत हो जाते हैं। आवुस! यह कारण है कि (उनमेंसे जब) कोई प्राणी उस कायासे च्युत होकर यहाँ आता है। घरसे बेघर ०। ० एकाग्र चित्त हो उससे पूर्वके जन्मको स्मरण करता है; उसके पहिलेको नहीं स्मरण करता। वह ऐसा कहता है—'जो मनःप्रदोषिक देवता नहीं हैं ० वे नित्य ० हैं। और हम लोग ० अनित्य, अध्रुव ० हैं। आप लोग ऐसे ही मनःप्रदोषिक देवताको आदिपुरुष होनेके मतको न मानते हैं? वह लोग कहते हैं—'आवुस गौतम! हम लोगोंने भी ऐसा ही सुना है, जैसा आयुष्मान् गौतम कह रहे हैं।'

"भार्गव! मैं अग्रको ०।

"भार्गव! कितने श्रमण और ब्राह्मण हैं, जो अधीत्यसमुत्पन्न (=अधिच्चसमुप्पन्न) देवताके आदिपुरुष होनेके मत मानते हैं। मैं उनके पास जाकर ऐसा कहता हूँ—क्या सचमुच०?' उन लोगोंके पूछनेपर मैं इस प्रकार उत्तर देता हूँ—'आवुसो! असंज्ञी सत्त्व (=असञ्ञिसत्त) नामक देवता हैं। संज्ञा (=होश)के उत्पन्न होनेसे वे देवता उस कायासे च्युत हो जाते हैं। आवुसो! यह कारण है कि (जब) कोई प्राणी उस कायासे च्युत हो यहाँ आता है। यहाँ आकर घरसे बेघर ० एकाग्रचित्त हो वह संज्ञाके उत्पन्न होनेको स्मरण करता है, उसके पहिलेको नहीं स्मरण करता। वह ऐसा कहता है—आत्मा और लोक दोनों अधीत्यसमुत्पन्न (=अभावसे उत्पन्न) हैं। सो किस हेतु? मैं पहले नहीं था, और अब हूँ। न होकर भी (अब) मैं हो गया।' आवुसो! आप लोग इसीलिये अधीत्यसमुत्पन्नके आदिपुरुष होनेके मतको मानते हैं।' वह लोग कहते हैं—'० जैसा आप गौतम कह रहे हैं।'

"भार्गव! मैं अग्रको जानता ० जिससे तथागत फिर दुःखमें नहीं पळते।

६–शुभ विमोक्ष

"भार्गव! मेरे इस तरह कहनेपर कुछ श्रमण और ब्राह्मण मुझपर असत्य, तुच्छ, मिथ्या और अयथार्थ दोषका आक्षेप करते हैं—'श्रमण गौतम और भिक्षु लोग उलटे हैं।' श्रमण गौतम ऐसा कहता

है—'जिस समय शुभ **विमोक्ष**[1] उत्पन्न करके (योगी) विहार करता है, उस समय (योगी) सब कुछ-को अशुभ ही अशुभ देखता है।'

"भार्गव ! (किंतु) मैं ऐसा नहीं कहता—जिस समय ० अशुभ ही अशुभ देखता है।' भार्गव ! वल्कि मैं तो ऐसा कहता हूँ—'जिस समय शुभ **विमोक्ष** उत्पन्न करके विहार करता हैं, उस समय (योगी) शुभ ही शुभ समझता है।"

"वे ही उल्टे हैं, जो भगवान् और भिक्षुओंपर मिथ्या दोषारोपण करते हैं। भन्ते ! मैं आपपर इतना प्रसन्न हूँ। आप मुझे उस धर्मका उपदेश करें, जिससे शुभ विमोक्षको उत्पन्नकर मैं विहार करूँ।"

"भार्गव ! दूसरे मतवाले, दूसरे विचारवाले, दूसरी रुचिवाले, दूसरे आयोगवाले, दूसरे मत (=आचार्यक)को माननेवाले तुम्हारेलिये शुभ विमोक्ष उत्पन्नकर विहार करना दुष्कर है। भार्गव ! जो तुम मुझपर प्रसन्न हो उसीको ठीकसे निभाओ।"

"भन्ते ! यदि दूसरे मतवाले ० होनेसे मेरे लिये शुभ विमोक्ष उत्पन्न होकर विहार करना दुष्कर है, तो मैं जो आपसे इतना प्रसन्न हूँ उसीको ठीकसे निभाऊँगा।"

भगवान्‌ने यह कहा।

भार्गव-गोत्र परिव्राजकने भगवान्‌के भाषणका अभिनन्दन किया।

---

[1] **देखो आठ विमोक्ष संगीति परियाय-सुत्त ३३ (पृष्ठ २९८)।**

२५–उदुम्बरिकसीहनाद-सुत्त (३।२)

१––न्यग्रोध द्वारा बुद्धकी निन्दा। २––अशुद्ध तपस्या। ३––शुद्ध तपस्या। ४––वास्तविक तपस्या––चार भावनायें। ५––न्यग्रोधका पश्चात्ताप। ६––बुद्धधर्मसे लाभ इसी शरीरमें।

ऐसा मैंने सुना––एक समय भगवान् **राजगृहके गृध्र-कूट** पर्वतपर विहार करते थे। उस समय **न्यग्रोध** परिव्राजक तीन हज़ार परिव्राजकोंकी बळी मण्डलीके साथ **उदुम्बरिका** (नामक) परिव्राजक-आराममें वास करता था।

१–न्यग्रोध द्वारा बुद्धकी निन्दा

तब **सन्धान** गृहपति दोपहरको (=दिन ही दिन) भगवान्‌के दर्शनके लिये राजगृहसे निकला। तब सन्धान गृहपतिके मनमें यह हुआ––भगवान्‌के दर्शनके लिये यह ठीक समय नहीं है, भगवान् समाधि-में बैठे हैं। दूसरे भिक्षु जो ध्यान कर रहे हैं उनसे भी मिलनेका यह ठीक समय नहीं है। सभी भिक्षु ध्यानमें बैठे हैं। अतः, मैं जहाँ उदुम्बरिका परिव्राजक-आराम है, और जहाँ न्यग्रोध परिव्राजक है, वहाँ चलूँ।

तब सन्धान गृहपति जहाँ उदुम्बरिका परिव्राजिक-आराम था और जहाँ न्यग्रोध परिव्राजक था,, वहाँ गया। उस समय न्यग्रोध परिव्राजक राज-कथा, चोर-कथा, माहात्म्य-कथा, सेना-कथा, भय-कथा, युद्ध-कथा, अन्न-कथा, पान-कथा, वस्त्र-कथा, शयन-कथा, गंध-कथा, माला-कथा, ज्ञाति-(=कुल)-कथा, यान(।=युद्ध-यात्रा)-कथा, ग्राम-कथा, निगम-कथा, नगर-कथा, जनपद-कथा, स्त्री-कथा, शूर-कथा, विशिखा (=चौरस्ता) कथा, कुम्भस्थान (=पनघट)-कथा, पूर्वप्रेत (=पहले मरोंकी)-कथा, नानात्त्व-कथा, लोक-अख्यायिका, समुद्र-अख्यायिका, इति-भवाभव (=ऐसा हुआ, ऐसा नहीं हुआ)-कथा आदि निरर्थक कथा कहती, नाद करती, शोर मचाती, तीन हज़ार परिव्राजकोंकी बळी भारी परिव्राजक-परिषद्‌के साथ बैठा था।

न्यग्रोध परिव्राजकने सन्धान गृहपतिको दूर हीसे आते देखा। देखकर अपनी मण्डलीको शान्त किया––"आप लोग चुप हो जायँ, हल्ला न मचावें। यह श्रमण गौतमका श्रावक सन्धान गृहपति आ रहा है। श्रमण गौतमके जितने उजले वस्त्र पहननेवाले गृहस्थ श्रावक राजगृहमें रहते हैं, उनमें यह सन्धान गृहपति भी एक है। ये आयुष्मान् निःशब्द चाहनेवाले हैं, निःशब्दमें विनीत हैं, निःशब्दताकी प्रशंसा करनेवाले हैं। ये निःशब्द मण्डलीमें ही जाना अच्छा समझते हैं।"

ऐसा कहनेपर वे परिव्राजक चुप हो गये। तब सन्धान गृहपति जहाँ न्यग्रोध परिव्राजक था वहाँ गया। जाकर कथा कुशलक्षेम पूछ संलाप करके एक ओर बैठ गया। एक ओर बैठ सन्धान गृहपति न्यग्रोध परिव्राजकसे यह बोला––

"ये अन्यतीर्थिक (=दूसरे मतवाले) परिव्राजक, जो जमा होकर ० आदि निरर्थक कथा कहते ०

शोर मचाते दूसरे ही प्रकारके हैं; और वे भगवान् जो समाधि लगानेके योग्य, मनुष्योंसे अगम्य, शांत, एकान्त और निर्जन वनोंमें वास करते हैं, बिलकुल दूसरे हैं।"

ऐसा कहनेपर **न्यग्रोध** परिब्राजकने **सन्धान** गृहपतिसे कहा—"सुनो गृहपति! जानते हो किसके साथ श्रमण गौतम संलाप करते हैं, किसके साथ साक्षात्कार करते हैं, किसको ज्ञानोपदेश करते हैं? शून्यागारमें रहते रहते श्रमण गौतमकी बुद्धि मारी गई है। श्रमण गौतम सभासे मुँह चुराते हैं। संवाद करनेमें असमर्थ हैं। वे लोगोंसे अलग अलग भागे फिरते हैं, **जैसे** कानी गाय अकेले अलग ही अलग भागी फिरती है। इसी तरह श्रमण गौतमकी प्रज्ञा मारी गई है ०। सुनो गृहपति! यदि श्रमण गौतम इस सभामें आवें, तो एक ही प्रश्नमें उन्हें चकरा दें, खाली घळेकी तरह जिधर चाहें घुमा दें।"

भगवान्ने अलौकिक, विशुद्ध, दिव्य श्रोत्रसे न्यग्रोध ० के साथ **सन्धान** गृहपतिका यह कथा संलाप सुना।

तब भगवान् गृध्रकूट पर्वतसे उतर जहाँ **सुमागधा** (पुष्करिणी) के तीरपर **मोरनिवाप** था, वहाँ गये। जाकर खुले स्थानमें टहलने लगे।

न्यग्रोध परिब्राजकने ० मोरनिवापमें भगवान्को टहलते देखा। देखकर अपनी मण्डलीको सावधान किया—"आप लोग चुप रहें ०। यह श्रमण गौतम ० खुले स्थानमें टहल रहे हैं। वे निःशब्दता-को पसंद करते हैं ०। यदि श्रमण गौतम इस सभामें आवें तो उन्हें यह प्रश्न पूछूँ—भन्ते! भगवान्का वह कौन धर्म है, जिससे भगवान् अपने श्रावकोंको विनीत करते हैं, जिससे विनीत होकर भगवान्के श्रावक ब्रह्मचर्य पालनमें आश्वासन पाते हैं?" ऐसा कहनेपर वे परिब्राजक चुप हो गये।

तब भगवान् जहाँ न्यग्रोध परिब्राजक था, वहाँ गये। तब न्यग्रोध परिब्राजकने भगवान्से कहा—पधारें, "भगवान्, भगवान्का स्वागत है, भगवान्ने बहुत दिनोंके बाद यहाँ आनेकी कृपाकी, भगवान् बैठें, यह आसन बिछा है।"

भगवान् बिछे हुये आसनपर बैठ गये। न्यग्रोध परिब्राजक भी एक नीचा आसन लेकर एक ओर बैठ गया। एक ओर बैठे न्यग्रोध परिब्राजकसे भगवान्ने यह कहा—"न्यग्रोध! अभी क्या बात चल रही थी, किस बातमें आकर रुके?"

ऐसा कहनेपर न्यग्रोध परिब्राजक बोला—

"भन्ते! हम लोगोंने भगवान्को सुमागधाके तीरपर मोरनिवापमें खुले स्थानमें टहलते देखा। देखकर यह कहा—यदि श्रमण गौतम इस सभामें आवें ० ब्रह्मचर्य व्रत पालन करनेमें आश्वासन पाते हैं? भन्ते! इसी बातमें आकर हम लोग रुके कि भगवान् पधारे।"

२—अशुद्ध तपस्या

"न्यग्रोध! दूसरे मतवाले, दूसरे सिद्धान्तवाले.... तुम्हें यह समझाना बळा दुष्कर है कि मैं कैसे अपने श्रावकोंको विनीत करता हूँ, जिससे विनीत होकर मेरे श्रावक आदि ब्रह्मचर्य पालन करनेमें आश्वासन पाते हैं। तो न्यग्रोध! तपोंकी निन्दा करनेवाले अपने मत (=आचार्यक)के बारेमें ही पूछो—भन्ते! क्या होनेसे तप-जुगुप्सा पूरी होती है, क्या होनेसे नहीं पूरी होती?"

ऐसा कहनेपर वे परिब्राजक हल्ला करने लगे—"अरे, बळा आश्चर्य है, बळा अद्भुत है! श्रमण गौतमकी शक्ति और महानुभावताको (तो देखो) कि अपने पक्षका स्थापन करता है और दूसरोंके पक्ष का निराकरण!"

तब न्यग्रोध परिब्राजक उन परिब्राजकोंको चुपकर भगवान्से यह बोला—"भन्ते! हम लोग

तो तप-जुगुप्साके माननेवाले, तपो-जुगुप्सा (=तपोंकी निन्दा)में रत, तप-जुगुप्सामें लग्न हो विहरते हैं। भन्ते! क्या होनेसे तप-जुगुप्सा पूरी होती है, (और) क्या होनेसे पूरी नहीं होती?"

"न्यग्रोध! कोई तपस्वी नग्न रहता है, आचार विचारको छोळ देता है, हाथ चाट चाटकर खाता है ०[१]। इस तरह वह आधे आधे महीनेपर भोजन करता है, वह साग मात्र खाता है, ०[१]। ० सुबह दोपहर और शाम तीन बार जल-शयन करता है।

"न्यग्रोध! तो क्या समझते हो—यदि कोई ऐसा करे तो इस तपश्चर्य्यासे उसके पापोंका पूरा निराकरण होता है या नहीं?"

"हाँ, भन्ते! ऐसा करनेसे इस तपश्चर्य्यासे उसके पापोंका पूर्ण निराकरण होता है, अपूर्ण नहीं।"

"न्यग्रोध! इस तरह पूर्ण होनेपर भी मैं कहता हूँ कि इसमें अनेक प्रकारके क्लेश (=मैल) रह जाते हैं।"

"भन्ते! इस तरह पूर्ण होनेपर भी भगवान् कैसे कहते हैं कि इसमें अनेक प्रकारके क्लेश रह जाते हैं?"

"न्यग्रोध! तपस्वी तप करता है; वह उस तपसे संतुष्ट और परिपूर्ण संकल्प होता है। न्यग्रोध! यह भी तपस्वीका उपक्लेश है।—और फिर न्यग्रोध! (जब) तपस्वी तप करता है। वह उस तप करनेके कारण अपनेको बहुत बळा समझता है और दूसरोंको छोटा। न्यग्रोध! ० यह भी तपस्वीका उपक्लेश (=मल) है। —० वह उस तप करनेसे बळा घमण्ड करता है, बेसुध हो जाता है और प्रमाद करता है। ० यह भी तपस्वीका उपक्लेश है।—० वह उस तपके करनेसे लोगोंसे बहुत सत्कार और प्रशंसा पाता है। वह उस सत्कार और प्रशंसासे संतुष्ट और परिपूर्ण संकल्प हो जाता है। ० यह भी तपस्वीका उपक्लेश है।—० वह उस सत्कार और प्रशंसासे अपनेको बहुत बळा समझने लगता है, और दूसरोंको छोटा ० यह भी तपस्वीका उपक्लेश है।—० वह उस सत्कार और प्रशंसासे घमण्ड करने लगता है, बेसुध हो जाता है और प्रमाद करता है।—० यह भी तपस्वीका उपक्लेश है।

"और फिर न्यग्रोध! तपस्वी तप करता है। उसे भोजनमें द्वैधी भाव हो जाता है—यह भोजन मुझे खाना बनता है और यह नहीं। जो भोजन खाना उसे नहीं बनता, उसको इच्छा रहने पर भी छोळ देता है; और जो भोजन खाना बनता है उसे अत्यन्त लालचसे बिना उसके गुण-दोषको विचारे खूब ठूस ठूस कर खा लेता है। ० यह भी उपक्लेश ०।

"न्यग्रोध! तपस्वी लाभ, सत्कार और प्रशंसाकी प्राप्तिके हेतु तप करता है—राजा, मन्त्री क्षत्रिय, ब्राह्मण, गृहपति और दूसरे साधु लोग मेरा सत्कार करेंगे। ० यह भी उपक्लेश ०।

"न्यग्रोध! तपस्वी दूसरे श्रमण और ब्राह्मणोंको बतलाता है—क्यों यह सब तरहकी जीविकावाला मूलबीज,[१] स्कन्धबीज (जैसे ईख), फलबीज, अग्रबीज और पाँचवें बीज-बीज असनिविचक्क दन्तकूट श्रमणोंके प्रवादसे सब कुछ खा जाते हैं,। ० यह भी उपक्लेश।

"न्यग्रोध! दूसरे श्रमण या ब्राह्मणों को गृहस्थ-कुलोंमें सत्कृत=गुरुकृत, सम्मानित, पूजित देखकर तपस्वी के मनमें यह होता है—इन्हींका गृहस्थ कुलोंमें लोग सत्कार करते हैं, गुरुकार करते हैं, सम्मान करते हैं, पूजा करते हैं। मुझ रूखे रहनेवाले तपस्वीको गृहस्थ कुलोंमें लोग न सत्कार करते हैं ० न पूजा करते हैं। अतः वह गृहस्थ कुलोंके प्रति ईर्ष्या और मात्सर्य उत्पन्न करता है। ० यह भी उपक्लेश ०।

"न्यग्रोध! तपस्वी, लोगोंके आने जानेके स्थानमें आसन लगाता है। ० यह भी उपक्लेश ०।

---

[१] देखो पृष्ठ ६२-६३।

"न्यग्रोध ! तपस्वी अपने गुणोंका वर्णन आप करते कुलोंमें जाता है—'यह मेरा तप है, यह भी मेरा तप है।' ० यह भी उपक्लेश ०।

"न्यग्रोध ! तपस्वी चुपचाप छिपाकर कुछ काम करता है। 'आपको ऐसा करना बनता है ?' पूछे जानेपर जो बनता है उसे 'नहीं बनता है', और जो नहीं बनता है उसे 'बनता है' कह देता है। यह जान बूझकर झूठ बोलना होता है। ० यह भी उपक्लेश ०।

"न्यग्रोध ! तपस्वी तथागत या तथागतके श्रावकोंके धर्मोपदेशको अनुमोदन करनेके योग्य होनेपर भी नहीं अनुमोदन करता । ० यह भी उपक्लेश ०।

"न्यग्रोध ! तपस्वी क्रोधी ० और बद्धवैरी होता है। ० यह भी उपक्लेश ०।

"न्यग्रोध ! तपस्वी कृतघ्न, डाह करनेवाला, ईर्ष्यालु, कृपण, शठ, मायावी, क्रूर, अभिमानी, दुष्ट इच्छावाला, पाप इच्छाओंके वसमें पळा, बुरी धारणाओंमें विश्वास करनेवाला, उच्छेद-दृष्टिवाला, अपने मतपर अभिमान करनेवाला, अपने मतपर हठ करनेवाला, जिद्दी होता है। ० यह भी उपक्लेश ०।

"न्यग्रोध ! तो क्या समझते हो—तप करना क्लेश-सहित है या क्लेशके बिना ?"

"भन्ते ! तप करना क्लेश-सहित होता है, क्लेशके बिना नहीं। भन्ते ! यही कारण है कि तपस्वी इन सभी उपक्लेशोंके सहित होता है, इनमेंसे किन्हीं किन्हींकी तो बात ही क्या ?"

३—शुद्ध तपस्या

"न्यग्रोध ! तपस्वी तप करता है। वह उस तपसे न तो संतुष्ट होता है और न परिपूर्ण-संकल्प। ० इस तरह वह वहाँ परिशुद्ध रहता है।—० वह उस तपसे न तो अपनको बहुत बळा समझता है और न दूसरोंको छोटा। ० इस तरह वह वहाँ परिशुद्ध रहता है।—० वह न घमण्ड करता है, न बेसुध होता है, न प्रमाद करता है। ० परिशुद्ध रहता है।—० लाभ, सत्कार और प्रशंसासे न संतुष्ट होता और न परिपूर्ण-संकल्प। ० परिशुद्ध ०।—० लाभ ०से न अपनेको बळा समझता है और न दूसरोंको छोटा। ० परिशुद्ध ०।—० लाभ ०से न घमंड करता है, न बेसुध होता है, न प्रमाद करता है। ० परिशुद्ध ०। —० भोजनमें द्वैधीभाव नहीं लाता ० न ठूस ठूसकर खाता है। ० परिशुद्ध ०।—० लाभ, सत्कार और प्रशंसाके लिये तप नहीं करता है ०। ० परिशुद्ध ०।—० दूसरे श्रमण, ब्राह्मणोंको नहीं बताता है ०। ० परिशुद्ध ०।—० दूसरे श्रमण या ब्राह्मणोंको गृहस्थ कुलोंमें सत्कृत ० देखकर उसके मनमें ऐसा नहीं होता ० न गृहस्थ कुलोंके प्रति ईर्ष्या और मात्सर्य उत्पन्न करता है। ० परिशुद्ध ०।—न मनुष्योंके आने जानेके स्थानपर बैठता है। ० परिशुद्ध ०।—० न अपने गुणोंका वर्णन आप करते गृहस्थ कुलोंमें जाता है ०। ० परिशुद्ध ०।—न अकेलेमें चुपचाप कोई काम करता है ०। ० परिशुद्ध ०।—० तथागत या तथागतके श्रावकोंके धर्मोपदेशको अनुमोदन करने योग्य होनेपर अनुमोदन करता है। ० परिशुद्ध ०। —० क्रोध और वैरसे रहित रहता है। ० परिशुद्ध ०।—० कृतघ्न नहीं होता, डाह नहीं करता, ईर्ष्या नहीं करता, मात्सर्य नही करता ०। ० परिशुद्ध ०।

"न्यग्रोध ! तो क्या समझते हो—यदि ऐसा हो तो तप शुद्ध होता है या अशुद्ध ?"

"भन्ते ! ऐसा होनेपर तप शुद्ध होता है अशुद्ध नहीं।"

४—वास्तविक तपस्या—चार भावनायें

"न्यग्रोध ! इतनेसे ही तप प्रशंसनीय, सार्थक नहीं होता। यह तो वृक्षके ऊपरकी पपळी मात्र है।"

"भन्ते ! क्या होनेसे तप प्रशंसनीय और सार्थक होता है ? साधु भन्ते ! भगवान् मुझे प्रशंसनीय और सार्थक तप क्या है, उसे बतलावें।"

"न्यग्रोध ! तपस्वी चार संयमों (=चातुर्याम संवर)से सुरक्षित (संवृत) होता है। कैसे तपस्वी चार संयमोंसे सुरक्षित होता है ? न्यग्रोध ! तपस्वी जीवहिंसा नहीं करता है, न करवाता है, न जीवहिंसा करवानेमें सहमत होता है। न चोरी करता है ०, न झूठ बोलता है ०, न पाँच भोगों (=काम गुणों)में प्रवृत्त होता है। न्यग्रोध ! इस प्रकार तपस्वी चार संयमोंसे सुरक्षित होता है।

"न्यग्रोध ! जो कि तपस्वी चार संयमोंसे संवृत होता है यही उसका तपस्वीपन है। वह प्रव्रज्याको निभाता है, ब्रह्मचर्य व्रतको नहीं तोळता। वह वन, वृक्षकी छाया, पर्वत-कन्दरा, गिरिगुहा, श्मशान, खुले स्थान, या पुआलके ढेरमें एकान्तवास करता है। वह भिक्षाटनके बाद भोजन करके शरीरको सीधा कर, स्मृतिको सामने रख आसन मारकर बैठता है। वह संसारके रागोंको छोळ वीतराग चित्तसे विहार करता है, रागोंसे चित्तको शुद्ध करता है। व्यापाद (-हिंसाभाव)को छोळ हिंसा-रहित चित्तसे विहार करता है, सभी प्राणियोंके हितकी इच्छा रखनेवाला हो व्यापाद-दोषसे चित्तको शुद्ध करता है। चित्त और चैतसिक आलस्यको छोळ उससे रहित होकर विहार करता है, परिशुद्ध संज्ञासे युक्त सावधान होकर चित्त और चैतसिकके आलस्यसे अपने चित्तको शुद्ध करता है। औद्धत्य और कौकृत्य (=चिन्ता)को छोळ अनुद्धत्त होकर विहार करता है, आध्यात्मिक शान्ति द्वारा अपने चित्तको औद्धत्य और कौकृत्यसे शुद्ध करता है। विचिकित्सा (=संदेह)को छोळ, उससे रहित होकर विहार करता है, अच्छाइयों (=कुशल धर्मों)के प्रति निःशंक हो विचिकित्सासे चित्तको परिशुद्ध करता है। वह इन (औद्धत्य आदि) पाँच **नीवरणों**को छोळ चित्तके उपक्लेशोंको प्रज्ञासे दुर्बल करनेके लिये मैत्री-युक्त चित्तसे एक दिशाकी ओर ध्यान रखता है, वैसे ही दूसरी दिशा,[1] वैसे ही चौथी दिशा। ऊपर, नीचे, तिरछे, सभी तरहसे सभी ओर सारे संसारको उपेक्षा-युक्त चित्तसे विपुल, महान् और अप्रमाण (अत्यधिक) अवैर तथा अ-द्रोहसे भावनाकर विहार करता है।

"न्यग्रोध ! तो क्या समझते हो—यदि ऐसा हो तो तप शुद्ध होता है या अशुद्ध ?"

'भन्ते ! ऐसा होनेसे तप परिशुद्ध होता है, अपरिशुद्ध नहीं; श्रेष्ठ और सार्थक होता है।"

"न्यग्रोध ! इतना ही तपश्चरण श्रेष्ठ और सार्थक नहीं होता। बल्कि, यह तो (वृक्षकी पपळीसे कुछ अधिक) वृक्षके छालहीके समान है।"

'भन्ते ! क्या होनेसे तपश्चरण श्रेष्ठ और सार्थक होता है ? साधु भन्ते ! भगवान् मुझे श्रेष्ठ और सार्थक तपश्चरण बतलावें।"

"न्यग्रोध ! तपस्वी चार संयमके संवरों (=चातुर्याम संवर)से संवृत रहता है। कैसे ० ? ० होनेसे ०। यह उसकी तपस्यामें होता है। वह प्रव्रज्याको निभानेमें उत्साहित होता है ०। वह एकान्त-वास करता है ०। वह इन पाँच नीवरणोंको छोळ चित्तके उपक्लेशोंको प्रज्ञासे दुर्बल करनेके लिये मैत्री-युक्त चित्तसे०[1]० वह अनेक प्रकारसे अपने पूर्व-जन्मोंको स्मरण करता है, जैसे एक जन्म०[2] अनेक लाख जन्म; अनेक संवर्त-कल्प, अनेक विवर्त-कल्प, अनेक संवर्त-विवर्त-कल्प—मैं वहाँ था, इस नामका ०।

"न्यग्रोध ! तो क्या समझते हो—यदि ऐसा हो तो तपश्चरण परिशुद्ध होता है या अपरिशुद्ध ?"

"भन्ते। ० परिशुद्ध होता है, अपरिशुद्ध नहीं। यही तपश्चरण श्रेष्ठ और सार्थक होता है।"

"न्यग्रोध ! इतना ही तपश्चरण श्रेष्ठ और सार्थक नहीं होता। बल्कि यह तो फल्गु (=हीर और छालके बीचवाला भाग) मात्र है।"

---

[1] देखो पृष्ठ ४९१। [2] देखो पृष्ठ ३१।

"भन्ते ! क्या होनेसे तपश्चरण श्रेष्ठ और सार्थक होता है ? साधु भन्ते ! भगवान् मुझे श्रेष्ठ और सार्थक तपश्चरण बतलावें।"

"न्यग्रोध ! तपस्वी चातुर्याम संवरों से संवृत होता है ० उत्साहित होता है। वह एकान्त-वास करता है ० उपक्लेशोंको प्रज्ञासे दुर्बल करनेके लिये मैत्री-युक्त चित्तसे ० उपेक्षा-युक्त चित्तसे ०। वह अनेक प्रकारसे अपने पूर्वजन्मोंको स्मरण करता है, जैसे कि एक जन्म० अनेक लाख जन्म०। वह अलौकिक विशुद्ध दिव्य चक्षुसे प्राणियों (=सत्वों)को च्युत होते और उत्पन्न होते देखता है—नीच सत्वोंको उत्तम सत्वोंको, सुन्दर सत्वोंको, कुरूप सत्वोंको, अच्छी-गति-प्राप्त सत्वोंको, बुरी-गति-प्राप्त सत्वोंको, तथा अपने कर्मोंके अनुसार ही गति-प्राप्त सत्वोंको ठीक ठीक जान लेता है।—ये सत्व कायिक दुराचारसे, वाचिक दुराचारसे, मानसिक दुराचारसे युक्त हो, आर्य धर्मके निन्दक रह, बुरी धारणाओंमें विश्वास कर, बुरी धारणाके अनुसार काम करके, मरकर नरकमें उत्पन्न हो अति-दुर्गतिको प्राप्त है। और ये दूसरे सत्व कायिक सदाचारसे ० युक्त हो आर्य धर्मको स्वीकार कर, ० सुगतिको प्राप्त हैं।

"न्यग्रोध ! तो क्या समझते हो—० परिशुद्ध होता है या अपरिशुद्ध?"

"भन्ते ! ० परिशुद्ध होता है, अपरिशुद्ध नहीं। श्रेष्ठ और सार्थक होता है।"

"न्यग्रोध ! इतनेहीसे तपश्चरण श्रेष्ठ और सार्थक होता है। न्यग्रोध ! तुमने जो मुझ पूछा था—'भन्ते ! भगवान्का वह कौनसा धर्म है जिससे भगवान् अपने श्रावकोंको विनीत करते हैं, और जिससे विनीत होकर श्रावक आदि-ब्रह्मचर्य पालन करनेमें आश्वासन पाते हैं?' सो न्यग्रोध ! यही कारण है, इससे भी बढ़ चढ़कर और इससे भी प्रणीत (कारण) है जिससे मैं अपने श्रावकोंको विनीत करता हूँ, जिससे विनीत होकर श्रावक आदि-ब्रह्मचर्य पालन करनेमें आश्वासन पाते हैं।"

ऐसा कहनेपर वे परिब्राजक बहुत शोर करने लगे—"हाय ! गुरु-सहित हम लोग नष्ट हो गये, विनष्ट हो गये। हम लोग इससे कुछ अधिक नहीं जानते।"

५—न्यग्रोधका पश्चात्ताप

जब **सन्धान** गृहपतिने समझा कि अब ये दूसरे मत-वाले परिब्राजक भगवान्के कहे हुएको सुनेंगे, कान देंगे, जानकर (उसमें) चित्त लगावेंगे, तब उसने न्यग्रोध परिब्राजकसे कहा—"भन्ते न्यग्रोध ! आपने जो मुझे कहा था—'सुनो गृहपति ! जानते हो श्रमण गौतम किसके साथ संलाप करते हैं ० वे लोगोंसे मुँह चुराकर अलग ही अलग रहते हैं। ० यदि श्रमण गौतम इस सभामें आवें तो ० उन्हें खाली घळेकी तरह जिधर चाहें हेर फेर दें।' भन्ते ! वे भगवान् अर्हत्, सम्यक्-सम्बुद्ध यहाँ पधारे हैं, उन्हें सभासे मुँहचोर बनाइये न, कानी गायकी तरह अलग ही अलग चलनेवाला बनाइये न ? क्यों नहीं एक ही प्रश्नसे उन्हें चकरा देते, जैसे कि खाली घळेको हेर फेर देते हैं ?"

ऐसा कहनेपर **न्यग्रोध** परिब्राजक चुप हो, गूँगा बन, कन्धा गिरा, नीचे मुँहकर, चिन्तित और उदास होकर बैठा रहा।

तब भगवान्ने न्यग्रोध परिब्राजकको चुप, गूँगा बन ० उदास होकर बैठा देख, यह कहा—"न्यग्रोध ! क्या सचमुच तुमने ऐसी बात कही ?"

"भन्ते ! सचमुच मैंने बालक मूढ़ जैसे अजान बात कही।

"न्यग्रोध ! तो तुम क्या समझते हो ? क्या तुमने वृद्ध, बळे आचार्य और प्राचार्य परिब्राजकोंको कहते सुना है कि अतीत कालमें (जो) अर्हत् सम्यक् सम्बुद्ध हो गये हैं, वे अर्हत् सम्यक् सम्बुद्ध क्या तुम्हारे जैसा हल्ला मचानेवाले और अनेक प्रकारकी निरर्थक कथायें कहनेवाले थे ० ? या वे भगवान् जंगलोंमें एकान्तवास ० करनेवाले थे, जैसा कि इस समय मैं ?"

"भन्ते ! ऐसा मैंने ० आचार्य प्राचार्य परिब्राजकोंको कहते सुना है ०। वे मेरे जैसा हल्ला मचाने ० वाले नहीं थे, किन्तु जंगलोंमें एकान्तवास ० करनेवाले थे जैसा कि इस समय भगवान्।"

"न्यग्रोध ! तब क्या तुम्हारे जैसे सुविज्ञ पुरुषको यह भी समझमें नहीं आता—बुद्ध हो भगवान् बोधके लिये धर्मोपदेश करते हैं, दान्त हो भगवान् दमनके लिये धर्मोपदेश करते हैं; शान्त हो,

भगवान् शमनके लिये धर्मोपदेश करते हैं; तीर्ण (=भवसागर पार) हो, भगवान् तरणके लिये धर्मोपदेश करते हैं; परिनिवृत्त हो, भगवान् परिनिर्वाणके लिये धर्मोपदेश करते हैं।"

ऐसा कहनेपर न्यग्रोध परिव्राजकने भगवान्से यह कहा—"भन्ते! बाल-मूढ़ अजानके जैसा मुझसे बळा भारी अपराध हो गया, कि मैंने आपके विषयमें ऐसा कह दिया। भन्ते! भविष्यमें संयमके लिये मेरे अपराधको क्षमा करें।"

"न्यग्रोध! सुनो, बाल ०के जैसा तुमने बळा भारी अपराध किया, जो कि तुमने मेरे विषयमें वैसा कहा; किन्तु न्यग्रोध! जब तुम अपने अपराधको स्वयं स्वीकारकर धर्मानुकूल प्रतीकार करते हो, तो मैं उसे क्षमा करता हूँ। न्यग्रोध! आर्य विनयमें यह बुद्धिमानी ही समझी जाती है; कि पुरुष भविष्यमें संयमके लिये अपने अपराधको स्वयं स्वीकारकर धर्मानुकूल प्रतीकार करे।

६–बुद्ध-धर्मसे लाभ इसी शरीर में

"न्यग्रोध! मैं तो ऐसा कहता हूँ—कोई सज्जन, निश्छल, और सरल स्वभाववाला बुद्धिमान् पुरुष आवे। मैं उसे अनुशासन करता हूँ, धर्मोपदेश देता हूँ, मेरी शिक्षाके अनुसार आचरण करे, तो जिसके लिये कुलपुत्र ० प्रव्रजित होते हैं उस अनुपम ब्रह्मचर्यके अन्तिम लक्ष्यको सात वर्षमें ही स्वयं जानकर साक्षात्कार कर प्राप्तकर विहरेगा। न्यग्रोध! सात वर्ष तो जाने दो, छै वर्ष में ही, ० पाँच ० चार ० तीन ० दो ० एक वर्षमें ० एक सप्ताहमें ० ।

"न्यग्रोध! यदि तुम्हारे मनमें ऐसा हो—अपने चेलोंकी संख्या बढ़ानेके लिये श्रमण गौतम ऐसा कहते हैं, तो न्यग्रोध! ऐसा नहीं समझना चाहिए। जो तुम्हारा आचार्य है वही तुम्हारे आचार्य रहें।

"न्यग्रोध! यदि तुम्हारे मनमें ऐसा हो—हमें अपने उद्देश्यसे च्युत करनेके लिये श्रमण गौतम ऐसा कहते हैं, तो न्यग्रोध ऐसा नहीं समझना चाहिये। जो तुम्हारा अभी उद्देश्य है वही उद्देश्य रहे।

"न्यग्रोध! यदि तुम्हारे मनमें ऐसा हो—हम लोगोंको अपनी जीविका छुळा देनेके लिये श्रमण गौतम ऐसा कहते हैं, तो ०। जो तुम्हारी अभी जीविका है वही जीविका रहे।

"न्यग्रोध! यदि तुम्हारे मनमें ऐसा हो—हमारे मताचार्यों की जो बुराइयाँ (=अकुशल धर्म) हैं, उनमें प्रतिष्ठित करनेकी इच्छासे श्रमण गौतम ऐसा कहते हैं, तो न्यग्रोध! ऐसा नहीं समझना चाहिए। आचार्योंके साथ तुम्हारे वे अकुशल धर्म अकुशल ही रहें।

"न्यग्रोध! यदि तुम्हारे मनमें ऐसा हो— ० कुशल धर्म ०।

"न्यग्रोध! अतः, न तो मैं अपने चेलोंकी संख्या बढ़ानेके लिये, न उद्देश्यसे च्युत करनेके लिये ० ऐसा कहता हूँ।

"न्यग्रोध! जो अ-नष्ट (=अप्रहीण) बुराइयाँ (=अकुशल धर्म) क्लेशोंको उत्पन्न करनेवाली, आवागमनके कारणभूत, सभी प्रकारकी पीडाओंको देनेवाली, दुःख-परिणामवाली, जाति, जरा, और मरणके कारण हैं, उन्हींके प्रहाण (नाश)के लिये मै धर्मोपदेश करता हूँ जिसमें कि तुम्हारे क्लेश देनेवाले धर्म नष्ट हो जावें और शुद्ध धर्म बढ़ें; और तुम प्रज्ञाकी पूर्णता और विपुलताको प्राप्त होकर, उसे इसी संसारमें जानकर साक्षात्कार कर प्राप्त कर विहार करो।"

ऐसा कहनेपर वे परिव्राजक चुप हो, गूँगे बन, ० बैठे रहे, जैसे कि उनके चित्त को **मारने** जकळ लिया हो।

तब भगवान्के मनमें यह हुआ—'ये सभी मूर्ख पुरुष **मारके** बन्धनमें बँधे हैं; जिससे इनमें एकके मनमें भी यह नहीं होता, कि 'मैं ज्ञान-प्राप्तिके लिये भगवान्के शासनमें रहकर ब्रह्मचर्यका पालन करूँ। सप्ताह क्या करेगा?'

तब भगवान् **उदुम्बरिका** परिव्राजक-आराममें सिंहनादकर, आकाशमें ऊपर उठ, गृध्रकूट पर्वतपर जा विराजे।

सन्धान गृहपति भी **राजगृह** चला गया।

२६—चक्कवत्ति-सीहनाद-सुत्त (३।३)

१——स्वावलम्बी बनो। २——मनुष्य क्रमशः अवनतिकी ओर (दृढनेमि जातक)——(१) चक्रवर्ति व्रत। (२) व्रत त्यागसे लोगोंमें असन्तोष और निर्धनता। (३) निर्धनता सभी पापोंकी जननी। (४) पापोंसे आयु और वर्णका ह्रास। (५) पशुवत् व्यवहार और नरसंहार। ३——मनुष्य क्रमशः उन्नतिकी ओर——(१) पुण्यसे आयु और वर्णकी वृद्धि। (२) मैत्रेय बुद्धका जन्म। ४—भिक्षुओंके कर्तव्य।

ऐसा मैंने सुना——एक समय भगवान् **मगध**के **मातुला** (स्थान)में विहार कर रहे थे। वहाँ भगवान्ने भिक्षुओंको संबोधित किया——"भिक्षुओ!"

"भदन्त!"——कह उन भिक्षुओंने भगवान्को उत्तर दिया।

१—स्वावलम्बी बनो

भगवान् बोले——"भिक्षुओ! आत्मद्वीप=आत्मशरण (=स्वावलम्बी) होकर विहार करो, किसी दूसरेके भरोसे मत रहो; धर्मद्वीप और धर्मशरण होकर विहार करो, किसी दूसरे०।

"भिक्षुओ! कैसे भिक्षु ० आत्मशरण, ० धर्मशरण होकर विहार करता है, किसी दूसरेके भरोसेपर नहीं रहता? भिक्षुओ! भिक्षु कायामें कायानुपश्यी[1] हो, संयमी, सावधान, स्मृतिमान्, और संसारके अनुचित लोभ और दौर्मनस्यको जीतकर विहार करता है—वेदनाओंमें वेदनानुपश्यी होकर विहार करता है, चित्तमें चित्तानुपश्यी होकर, धर्मोंमें धर्मानुपश्यी होकर ०।

"भिक्षुओ! भिक्षु इस तरह ० आत्मशरण ० धर्मशरण ०। भिक्षुओ! अपने पैतृक विषयगोचरमें विचरण करो। ० गोचरमें विचरण करनेसे **मार** कोई छिद्र नहीं पा सकेगा, मार कोई अवलम्ब नहीं पा सकेगा। भिक्षुओ! उत्तम धर्मोंके ग्रहण करनेके कारण इस प्रकार पुण्य बढ़ता है।

२—मनुष्य क्रमशः अवनतिकी ओर

दृढनेमि जातक[2]——"भिक्षुओ! पुराने समयमें चारों दिशाओंपर विजय पानेवाला, जनपदोंमें स्थिरता और शान्ति रखनेवाला, सात रत्नोंसे युक्त **दृढनेमि** नामक एक चक्रवर्त्ती धार्मिक, धर्म-राजा था। उसके ये सात रत्न थे, जैसे कि——(१) चक्र-रत्न, (२) हस्ति-रत्न, (३) अश्व-रत्न, (४) मणि-रत्न, (५) स्त्री-रत्न, (६) गृहपति-रत्न, और (७) सातवाँ पुत्र-रत्न। एक सहस्रसे भी अधिक उसके सूर ० पुत्र थे। वह सागरपर्यन्त इस पृथ्वीको दण्ड और शस्त्रके बिना ही धर्म और शान्तिसे जीतकर राज्य करता था।

---

[1] **देखो महासतिपट्ठान-सुत्त २२ (पृष्ठ १९०)।**

[2] **मिलाओ महासुदस्सनसुत्त पृष्ठ १५२।**

"भिक्षुओ ! तब राजा दृढ-नेमि बहुत वर्षों, कई सौ वर्षों, कई सहस्र वर्षोंके बीतनेपर एक पुरुषसे बोला—'हे पुरुष ! जब तुम दिव्य चक्र-रत्नको अपने स्थानसे खिसके और गिरे देखना तो मुझे सूचना देना।' 'देव ! बहुत अच्छा' कह उस पुरुषने राजाको उत्तर दिया।

"भिक्षुओ ! बहुत वर्षों०के बीतनेपर उस पुरुषने दिव्य चक्र-रत्नको अपने स्थानसे खिसककर गिरा देखा। देखकर वह पुरुष जहाँ राजा दृढ-नेमि था वहाँ गया, ० बोला—'सुनिये देव ! जानते हैं आपका दिव्य चक्र-रत्न अपने स्थानसे खिसककर गिर गया है।'

"भिक्षुओ ! तब राजा दृढ़-नेमि अपने ज्येष्ठ पुत्र कुमारको बुलाकर यह बोला—तात कुमार ! मेरा दिव्य चक्र-रत्न ० गिर गया है। मैंने ऐसा सुना है—'जिस चक्रवर्त्ती राजाका चक्र-रत्न० गिर जाता है, वह राजा बहुत दिन नहीं जीता। मनुष्यके सभी भोगोंको मैंने भोग लिया, अब दिव्य भोगोंके संग्रहका समय आया है। तात कुमार ! सुनो, समुद्र-पर्यन्त इस पृथ्वीको ग्रहण करो। मैं शिर और दाढ़ी मुंळवा, काषाय वस्त्र धारणकर, घरसे बेघर हो प्रव्रजित होऊँगा।'

"भिक्षुओ ! तब राजा ० अपने ज्येष्ठ पुत्र कुमारको राज्यका भार दे ० प्रव्रजित हो गया। भिक्षुओ ! उस राजर्षिके प्रव्रजित होनेके एक सप्ताह बाद ही दिव्य चक्र-रत्न अन्तर्धान हो गया।

"भिक्षुओ ! तब एक पुरुष जहाँ मूर्धाभिषिक्त (=Sovereign) क्षत्रिय राजा था, वहाँ गया, ० और बोला—'देव ! जानते हैं, दिव्य चक्र-रत्न अन्तर्धान हो गया।'

"भिक्षुओ ! तब वह मूर्धाभिषिक्त क्षत्रिय राजा दिव्य चक्र-रत्नके अन्तर्धान होनेपर बळा खेद और असंतोष प्रगट करने लगा। वह जहाँ राजर्षि था वहाँ गया; जाकर राजर्षिसे बोला—देव ! जानते हैं, दिव्य चक्र-रत्न अन्तर्धान हो गया।

(१) चक्रवर्ति-व्रत

"भिक्षुओ ! ऐसा कहनेपर राजर्षिने ० राजासे कहा—'तात ! दिव्य चक्र-रत्नके अन्तर्धान हो जानेसे तुम खेद और असंतोष मत प्रकट करो। तात ! दिव्य चक्र-रत्न तुम्हारा पैतृक दायाद नहीं है। तात ! सुनो, तुम चक्रवर्ति-व्रतका पालन करो। ऐसी बात है, कि जब तुम आर्य चक्रवर्ति-व्रतका पालन करोगे, तो उपोसथकी पूर्णिमाके दिन शिरसे स्नानकर, उपोसथ व्रतकर जब तुम प्रासादके सबसे ऊपरवाले तल्लेपर जाओगे; तो तुम्हारे सामने सहस्र अरोंसे युक्त, नेमि-नाभिके साथ, और सभी प्रकारसे परिपूर्ण दिव्य चक्र-रत्न प्रकट होगा।'

'देव ! वह आर्य चक्रवर्ति-व्रत क्या है ?'

'तात ! तो तुम अपने आश्रितोंमें, सेनामें, क्षत्रियोंमें, अनुगामियोंमें, ब्राह्मणोंमें, गृहपतियोंमें, नैगमों और जानपदोंमें, श्रमण और ब्राह्मणोंमें, मृग और पक्षियोंमें धर्महीके लिये, धर्मका सत्कार करते ० गुरुकार करते ० सम्मान करते, ० पूजन करते, श्रद्धाभाव रखते, धर्मध्वज हो, धर्मकेतु हो, धर्माधिपति हो, सभी धार्मिक बातोंकी रक्षाके लिये विधान करो। तात ! तुम्हारे राज्यमें कहीं भी अधर्म न होने पावे। तात ! जो तुम्हारे राज्यमें निर्धन हैं, उन्हें धन दो। ० जो तुम्हारे राज्यमें श्रमण और ब्राह्मण मद-प्रमादसे विरत हो क्षान्तिके अभ्यासमें लगे हैं, केवल आत्म-दमन, केवल आत्म-शमन, केवल आत्म-निर्वापन करते हैं, उनके पास समय समयपर जाकर पूछना चाहिये—भन्ते ! क्या भलाई है, क्या बुराई क्या सदोष (=सावद्य) है, क्या निर्दोष (=अनवद्य), क्या सेवनीय है, क्या असेवनीय क्या करनेसे मेरा भविष्य अहित और दुःखके लिये होगा, क्या करनेसे मेरा भविष्य हित और सुखके लिये होगा ? उनके कहे हुएको सुन, जो बुराई है उसका त्याग करो और जो भलाई है उसका ग्रहण करके पालन करो।—तात ! यही **चक्रवर्ति-व्रत** है।'

"भिक्षुओ ! 'बहुत अच्छा' कहकर ० राजर्षिको उत्तर दे राजा आर्य-चक्रवर्ति-व्रतका पालन करने लगा। उस आर्य चक्रवर्ति-व्रतके पालन करते हुए उपोसथकी पूर्णिमाके दिन ० उसके सामने सहस्र अरोंवाला ० दिव्य चक्र-रत्न प्रकट हुआ। देखकर ० राजाके मनमें यह आया—मैंने ऐसा सुना है—जिस ० प्रासादके ऊपरके तल्लेपर स्थित राजाके सामने ० दिव्य चक्र-रत्न प्रकट होता है, वह चक्रवर्ती राजा होता है। मैं चक्रवर्ती राजा होऊँगा। भिक्षुओ ! तब ० राजाने आसनसे उठ, चादरको एक कन्धेपर कर बायें हाथसे झारीको ले, दाहिने हाथसे चक्र-रत्नका अभिषेक किया ०—'आप चक्र-रत्न प्रवृत्त हों, =आप चक्ररत्न विजय करें)।' भिक्षुओ ! तब चक्र-रत्न समुद्र-पर्यन्त पृथ्वीको जीत ०[1] अन्तःपुरमें न्याय-प्राङ्गणके द्वारपर आ अक्षाहत (=दृढ) हो गया ०।

(२) व्रतके त्यागसे लोगोंमें असन्तोष और निर्धनता

"भिक्षुओ ! दूसरा भी राजा चक्रवर्ती ० तीसरा ० चौथा ० पाँचवाँ ० छठाँ ० सातवाँ भी राजा चक्रवर्ती बहुत वर्षों ०के बीतनेपर एक पुरुषको बुलाकर बोला—० जब चक्र-रत्न अपने स्थानसे खिसक ०। भिक्षुओ ! तब ० राजा दिव्य चक्र-रत्नके अन्तर्धान हो जानेसे खेद, असंतोष प्रकट करने लगा। उसने राजर्षिके पास जाकर आर्य चक्रवर्ति-व्रत नहीं पूछा। वह अपनी ही बुद्धिसे राज करने लगा। उसके अपनी ही बुद्धिसे राज करनेपर उसका राज्य वैसा ही उन्नतिको प्राप्त नहीं हुआ, जैसा कि पहले आर्य चक्रवर्ति-व्रत पालन करनेवाले राजाओंका राज्य।

"भिक्षुओ ! तब, अमात्य (=मन्त्री), सभासद्, कोषाध्यक्ष, महामन्त्री, अनीकस्थ (=सेनापति) द्वार-पाल, और वे जो अपनी विद्याके बलसे जीविका चलाते थे, सभी आकर ० राजासे बोले—'देव ! आपके अपनी ही बुद्धिसे राज करनेके कारण आपका राज्य वैसा उन्नति नहीं कर रहा है, जैसा कि पहले आर्य चक्रवर्ति-व्रत पालन करनेवाले राजाओंका। देव ! आपके राज्यमें अमात्य, सभासद् ०, हम लोग, और जो दूसरे लोग हैं सभी चक्रवर्ति-व्रत धारण करें। देव ! आप हम लोगोंसे आर्य चक्रवर्ति-व्रत पूछें। आपके आर्य चक्रवर्ति-व्रत पूछनेपर हम लोग बतलायेंगे।'

(३) निर्धनता सभी पापोंकी जननी

"भिक्षुओ ! तब ० राजाने अमात्यों० को बुलाकर (इकट्ठाकर) उनसे आर्य चक्रवर्ति-व्रत पूछा ० उन लोगोंने उसे सब कुछ बतलाया। उसे सुनकर उसने धार्मिक बातोंकी रक्षाका प्रबन्ध तो कर दिया, किन्तु निर्धनोंको धन नहीं दिया, ० उससे दरिद्रता बहुत बढ़ गई, ० उससे एक मनुष्य दूसरेकी चीज़ चुराने लगा। उस (चोर)को पकळकर लोग राजाके पास ले गये—'देव ! इस पुरुषने दूसरोंकी चीज़ चोरी की हैं।'

"भिक्षुओ ! ऐसा कहनेपर ० राजा उस पुरुषसे बोला—'क्या सचमुच तुमने दूसरोंकी चीज़ चुराई है ?' 'हाँ देव ! सचमुच।'

'किस कारणसे ?' 'देव ! रोज़ी नहीं चलती थी।'

"भिक्षुओ ! तब राजाने उस पुरुषको धन दिलवाया—'हे पुरुष ! इस धनसे तुम अपनी रोज़ी चलाओ, माता पिताको पालो, पुत्र और दाराको पोसो, अपने कारबारको चलाओ, ऐहिक और पारलौकिक सुख-प्राप्तिके लिये श्रमण तथा ब्राह्मणोंको दान दो।'

"भिक्षुओ ! 'देव ! बहुत अच्छा।' कहकर उस पुरुषने ० राजाको उत्तर दिया।

"भिक्षुओ ! एक दूसरे पुरुषने भी चोरी की। उसे ० राजाके पास ले गये ०।'

---

[1] देखो पृष्ठ १५३-४ (महासुदस्सन सुत्त १७)।

'० राजा ०—क्या सचमुच ० ?'

'देव ! सचमुच।'

'किस कारणसे ?'

'देव ! रोज़ी नहीं चलती थी।'

"भिक्षुओ ! ० राजाने उस पुरुषको धन दिलवाया—'हे पुरुष ! इस धनसे ० दान दो।'

"भिक्षुओ ! 'देव ! बहुत अच्छा।' कहकर उस पुरुषने ० राजाको उत्तर दिया।

"भिक्षुओ ! मनुष्योंने सुना—जो दूसरेकी चीज़को चुराता है, उसे राजा धन दिलवाता है। सुनकर उन लोगोंके मनमें यह आया—'हम लोग भी दूसरोंकी चीज़को चुरावें।'

"भिक्षुओ ! तब किसी पुरुषने चोरी की। उसे लोग पकळकर ० राजाके पास ले गये—'देव ! इस पुरुषने चोरी की है।'

'० राजा०—क्या सचमुच ० ?' 'देव ! सचमुच।'

'किस कारणसे ?'

'देव ! रोज़ी नहीं चलती थी।'

"भिक्षुओ ! तब राजाके मनमें यह आया—यदि जो जो चोरी करता जावे उसे उसे मैं धन दिलवाता रहूँ, तो इस प्रकार चोरी बहुत बढ़ जायगी। अतः मैं इसे कळी चेतावनी दूँ, जळ्हीको काट दूँ, इसका शिर कटवा दूँ। भिक्षुओ ! तब राजाने पुरुषोंको आज्ञा दी—इस पुरुषको एक मज़बूत रस्सीसे ० बाँधकर ० इसका शिर काट दो।'

'देव ! बहुत अच्छा' कह ० उसका शिर काट दिया।

"भिक्षुओ ! तब मनुष्योंने सुना—जो चोरी करते हैं राजा ० उनका शिर कटवा देता है। सुनकर उनके मनमें यह हुआ—हम लोग भी तेज़ तेज़ हथियार बनवावें, ० बनवाकर जिनकी चोरी करेंगे उनका ० शिर काट लेंगे। उन लोगोंने तेज़ तेज़ हथियार बनवाये, ० बनवाकर उन्होंने ग्राम-घात भी करना आरम्भ कर दिया, निगम-घात भी ०, नगर-घात भी ०, मार्गमें यात्रियोंको लूट लेना भी ०। वे जिसकी चोरी करते थे, उसका ० शिर काट लेते थे।

(४) *पापोंसे आयु और वर्णका ह्रास*

"भिक्षुओ ! इस तरह, निर्धनोंको धन न दिये जानेसे दरिद्रता बहुत बढ़ गई, (उससे) ० चोरी बहुत बढ़ गई, ० (उससे) हथियार बहुत बढ़ गये, ० (उससे) खून खराबी बहुत बढ़ गई, ० (उससे) उनकी आयु घटने लगी, वर्ण (=रूप) भी घटने लगा। आयु और वर्णके घटनेपर अस्सी हज़ार वर्षकी आयुवाले पुरुषोंके पुत्र चालीस सहस्र वर्षकी आयुवाले हो गये।

"भिक्षुओ ! चालीस सहस्र वर्षोंकी आयुवाले पुरुषोंमें भी कोई चोरी करने लगा। उसे लोग ० राजाके पास ले गये—'देव ! इस पुरुषने चोरी की है।'

'० राजा०—सचमुच ० ?'

'नहीं, देव।'

यह जानबूझकर झूठ बोलना हुआ।

"भिक्षुओ ! इस तरह, निर्धनोंको धन न दिये जानेसे ० झूठ बोलना बढ़ा, ० उन सत्वोंकी आयु और उनका वर्ण भी घटने लगा। ० उनके पुत्र बीस सहस्र वर्षोंहीकी आयुवाले हो गये।

"० उनमेंसे भी किसीने चोरी की। तब, किसी पुरुषने ० राजाको इसकी सूचना दी—देव ! अमुक पुरुषने ० चोरी की है। ऐसी चुगली हुई।

"भिक्षुओ ! इस तरह, निर्धनोंको, धन न दिये जानेके कारण ० चुगली उत्पन्न हुई। चुगली खाना बढ़नेसे उन सत्वोंकी आयु घट गई, वर्ण भी घट गया। ० उनके पुत्र दस सहस्र वर्षोंकी ही आयुवाले हुए।

"भिक्षुओ ! दस सहस्र वर्षोंकी आयुवाले मनुष्योंमें कोई तो सुन्दर, और कोई कुरूप हुए। वहाँ जो प्राणी (=सत्व) कुरूप थे वे सुन्दर प्राणियोंके प्रेममें पळ दूसरेकी स्त्रियोंसे दुराचार करने लगें।

"भिक्षुओ ! इस तरह, निर्धनोंको धन न दिये जानेसे ० दुराचार बढ़ा।

"० उनके पुत्र पाँच सहस्र वर्षोंहीकी आयुवाले हुए। ० उन लोगोंमें दो बातें बहुत बढ़ीं—कठोर वचन, और निरर्थक प्रलाप करना। ० (उससे) उन प्राणियोंकी आयु घट गई, और वर्ण भी घट गया। ० उनके पुत्र कितने ढाई सहस्र वर्षोंकी आयुवाले, और कितने दो सहस्र वर्षोंकी आयुवाले हुए।

"भिक्षुओ ! ढाई सहस्र वर्षोंकी आयुवाले मनुष्योंमें अनुचित लोभ और बहुत हिंसाभाव बढ़ा। ० आयु भी ० वर्ण भी ०। ० उनके पुत्र एक सहस्र वर्षोंकी आयुवाले हुए।

"भिक्षुओ ! ० उनमें मिथ्या-दृष्टि (बुरे सिद्धान्तोंमें विश्वास करना) बहुत बढ़ गई। ० आयु भी ० वर्ण भी ०। ० उनके पुत्र पाँच सौ वर्षोंकी आयुवाले हुए। ० उन लोगोंमें तीन बातें बहुत बढ़ीं—अधर्ममें राग, अनुचित लोभ और मिथ्या-धर्म। इन तीन बातों (=धर्मों)के बहुत बढ़नेपर उन सत्वोंकी आयु भी ० वर्ण भी ०। ० उनके पुत्र कोई ढाई सौ वर्षोंकी आयुवाले, और कोई दो सौ वर्षोंकी आयुवाले हुए। भिक्षुओ ! ढाई सौ वर्षोंकी आयुवाले मनुष्योंमें ये बातें बढ़ीं, माता पिताके प्रति गौरव का अभाव श्रमणोंके प्रति, ब्राह्मणोंके प्रति, और परिवारके ज्येष्ठ पुरुषोंके प्रति श्रद्धाका अभाव।

"भिक्षुओ ! इस तरह, निर्धनोंको धन न देनेके कारण ० श्रद्धाका अभाव। इन बातोंके बढ़नेसे उन प्राणियोंकी आयु ० वर्ण ०। ० उनके पुत्र सौ वर्षोंकी आयुवाले हुए। भिक्षुओ ! एक समय आवेगा जब इन मनुष्योंके पुत्र दस वर्षोंकी आयुवाले होंगे। भिक्षुओ ! ० उनमें पाँच वर्षकी कुमारी ही पतिगृह जाने योग्य हो जायगी। भिक्षुओ ! दस वर्षोंकी आयुवाले मनुष्योंमें ये रस लुप्त (=अन्तर्धान) हो जायेंगे; जैसे कि, घी, मक्खन, तेल, मधु, गुळ और नमक। ० उस समय मनुष्योंका कोदो (=कुद्रूस) ही श्रेष्ठ (=अग्र) भोजन होगा; जैसा कि इस समय शालिमांसौदन(=पोलाव) प्रधान भोजन है। भिक्षुओ ! दस वर्षोंकी आयु वाले मनुष्योंमें दस सदाचार (=कुशल कर्म-पथ) बिलकुल लुप्त हो जायेंगे, दस अ-सदाचार (=अकुशल कर्म-पथ) अत्यन्त बढ़ जायेंगे। ० कुछ कुशल नहीं रह जायगा, फिर कुशलका करनेवाला कहाँ ?

(५) *पशुवत् व्यवहार और नरसंहार*

भिक्षुओ ! ० उनमेंसे जो माता पिता का गौरव नहीं करनेवाले ० होंगे वे ही अच्छे, प्रशंसनीय समझे जायेंगे, जैसे कि इस समय माता पिता का गौरव करनेवाले ० प्रशंसनीय समझे जाते हैं।

"० उन लोगोंमें भेळ-बकरे, कुक्कुट-सूकर, श्वान-शृगालकी भाँति माँका, या मौसीका, या मामीका, या गुरुपत्नीका, या बळे लोगोंकी स्त्रियोंका कुछ विचार न रहेगा। बिलकुल अनर्थ हो जावेगा।

"० उन लोगोंमें एक दूसरेके प्रति बळा तीव्र क्रोध, तीव्र व्यापाद (=प्रतिहिंसा), तीव्र दुर्भावना, तीव्र वधकचित्त उत्पन्न होंगे। माताको पुत्रके प्रति, पुत्रको माताके प्रति, भाईको भाईके प्रति, भाईको बहनके प्रति, बहनको भाईके प्रति तीव्र क्रोध ०। भिक्षुओ ! जैसे व्याधको मृग देखकर तीव्र क्रोध ० होता है, उसी तरह ० उन सत्वोंमें परस्पर तीव्र क्रोध ० माताको पुत्रके प्रति ०।

"भिक्षुओ ! ० उनमें एक सप्ताह शस्त्रान्तरकल्प होगा—वे एक दूसरेको मृग समझने लग जायेंगे। उनके हाथोंमें तीक्ष्ण शस्त्र प्रकट होंगे। वे तीक्ष्ण शस्त्रोंसे—यह मृग है, यह मृग है—करके एक दूसरेको जानसे मार डालेंगे।

३–मनुष्य क्रमशः उन्नतिकी ओर

"भिक्षुओ ! तब उन सत्वोंमें कुछके मनमें ऐसा होगा—'न मुझे दूसरोंसे काम और न दूसरोंको मुझसे काम ! अतः चलो हम लोग घने तृणोंमें, या घने जंगलोंमें, या घने वृक्षोंमें, या नदीके किसी दुर्गम स्थानम, या कठिन पर्वतोंपर, जाकर वन्य (जंगली) मूल और फल खाकर रहें।' फिर वे घने तृणोंमें ० जाकर एक सप्ताह वन्य फल मूल खाकर रहेंगे। एक सप्ताह वहाँ रहनेके बाद घने तृणोंसे ० निकलकर वे एक दूसरेको आलिङ्गनकर एक दूसरेके प्रति अपनी शुभ कामनायें प्रकट करेंगे।

(१) पुण्यकर्मसे आयु और वर्णकी वृद्धि

"भिक्षुओ ! तब उन सत्वोंके मनमें यह होगा—हम लोग पापों (=अकुशल धर्मों) के करनेके कारण इस प्रकारके घोर जाति-विनाशको प्राप्त हुए हैं, अतः पुण्य का आचरण करना चाहिये। किन पुण्यों (=कुशल धर्मों) का आचरण करना चाहिये? हम लोग जीवहिंसासे विरत रहें, इस कुशल धर्मको ग्रहण करें (इसीके अनुकूल) आचरण करें।' तब वे जीवहिंसासे विरत रह, ० आचरण करने लगेंगे। उस कुशल धर्मको ग्रहण करनेके कारण वे आयसे भी और वर्णसे भी बढ़ेंगे। आयुसे भी, वर्णसे भी बढ़ते हुए उन दस वर्षोंकी आयुवाले मनुष्योंके पुत्र बीस वर्षकी आयुवाले होंगे।

"भिक्षुओ ! तब उन सत्वोंके मनमें यह होगा—'हम लोग कुशल धर्म ग्रहण करनेके कारण आयुसे भी और वर्णसे भी बढ़ रहे हैं। अतः, हम लोग और भी अधिक सुकर्म (=कुशल धर्म) करें। क्या कुशल करें? हम लोग चोरी करनेसे विरत रहें, मिथ्याचारसे विरत रहें, मिथ्याभाषणसे विरत रहें, चुगली खानेसे विरत रहें, कठोर बोलनेसे विरत रहें, व्यर्थके बकवादसे विरत रहें, अनुचित लोभको छोळ दें, हिंसाभावको छोळ दें, मिथ्यादृष्टिको छोळ दें। अधर्ममें राग, दुष्ट लोभ, मिथ्याधर्म इन तीन बातों को छोळ दें; माता पिताके प्रति गौरव करें ०। इन कुशल धर्मोंको धारणकर आचरण करें।'

"वे माता पिताके प्रति गौरव करेंगे ० इन कुशल धर्मोंको धारणकर आचरण करेंगे। आचरण करनेक कारण वे आयुसे भी वर्णसे भी बढ़ेंगे। ० उनके पुत्र चालीस वर्ष ०। ० उनके पुत्र अस्सी वर्ष ०। ० उनके पुत्र सौ वष ०। ० उनके पुत्र बीस सौ वर्ष ०। ० चालीस सौ वर्ष ०। ० दो सहस्र ०। ० चार ०। ० आठ ०। ० बीस ०। ० चालीस ०। ० अस्सी सहस्र वर्ष ०।

(२) मैत्रेय बुद्धका जन्म

"भिक्षुओ ! अस्सी सहस्र वर्षकी आयुवाले मनुष्योंमें पाँच सौ वर्षोंकी आयुवाली कुमारी, पतिके गृह जानेके योग्य होगी। ० उनके तीन ही रोग रहेंगे—इच्छा, उपवास और जरा। ० (उस समय) **जम्बुद्वीप** समृद्ध और सम्पन्न होगा—ग्राम, निगम, जनपद और राजधानी कुक्कुट-सम्पातिक (=मुर्गीकुदान घरोंवाली) रहेंगे। ० नर्कट या सरकंडेके वनकी तरह **जम्बुद्वीप** मानों नरक तक मनुष्योंकी आबादीसे भर जायेगा। ० (उस समय) यह **बाराणसी** समृद्ध, सुन्दर, सम्पन्न और सुभिक्ष **केतुमती** नामकी राजधानी होगी। ० जम्बूद्वीपमें केतुमती राजधानी आदि चौरासी हज़ार नगर होंगे। ० केतुमती राजधानीमें **शंख** नामक **चक्रवर्ती**, धार्मिक, धर्म-राजा ० उत्पन्न होगा। वह सागर-पर्यन्त इस पृथ्वीको दण्ड और शस्त्रके बिना ही धर्मसे जीतकर राज्य करेगा। ० उस समय **मैत्रेय** नामक भगवान् अर्हत्, सम्यक् सम्बुद्ध, संसारमें उत्पन्न होंगे। ० जैसे कि इस समय मैं ०। वे देव, मार, ब्रह्मा, श्रमण-ब्राह्मण सहित, देव-मनुष्य-युक्त इस लोकको, स्वयं (परम ज्ञानको) जान और साक्षात् कर उपदेश देंगे, जैसे कि इस समय मैं ० उपदेश देता हूँ। वे आदि कल्याण, मध्य-कल्याण, अन्त-कल्याण धर्मका उपदेश करेंगे। सार्थक, स्पष्ट, बिल्कुल पूर्ण (और) शुद्ध ब्रह्मचर्यको बतलायेंगे। जैसे कि

इस समय में ०। वे कई लाख भिक्षुओंके संघके साथ रहेंगे; जैसे कि अभी मैं कई सौ भिक्षुओंके साथ ०।

"भिक्षुओ ! तब शंख राजा उस प्रासादको, जिसे कि **इन्द्र** (विश्वकर्मासे) बनंवायेगा, तैयार करा उसमें रहकर, उसे दानकर देगा। श्रमण, ब्राह्मण, कृपण, राही, साधु और याचकोंको दान देकर मैत्रेय भगवान् अर्हत् सम्यक् सम्बुद्धके पास ० प्रव्रजित हो जायेगा। वह इस प्रकार प्रव्रजित हो, अकेला रह, वीतराग हो, अप्रमत्त हो, संयमी और आत्मनिग्रही हो विहार करते शीघ्र ही ० उस अनुपम ब्रह्मचर्यके फलको इसी जन्ममें स्वयं जान और साक्षात् कर विहार करेगा।

४--भिक्षुओंके कर्तव्य

"भिक्षुओ ! आत्म-शरण होकर विहार करो, आत्मद्वीप (=स्वावलम्बी) होकर विहार करो, दूसरेके भरोसेपर मत रहो, धर्म-शरण, धर्मद्वीप ०। भिक्षुओ ! कैसे भिक्षु आत्म-शरण ० धर्म-शरण ० होकर विहार करता है ?

"भिक्षुओ ! भिक्षु कायामें **कायानुपश्यी** होकर विहार करता है ०[1]।

"भिक्षुओ ! इस प्रकार भिक्षु आत्म-शरण ० धर्म-शरण ० होकर विहार करता है ०।

"भिक्षुओ ! ० (ऐसा करनेसे) आयुसे भी बढ़ोगे और वर्णसे भी। सुखसे भी बढ़ोगे, भोगसे भी बढ़ोगे, बलसे भी बढ़ोगे।

"भिक्षुओ ! भिक्षुकी आयु क्या है ? भिक्षुओ ! भिक्षु **छन्द**...स मा धि प्रधान संस्कारसे युक्त **ऋद्धि-पाद**की भावना करता है। वी र्य स मा धि ० चि त्त स मा धि ० वी मं सा - स मा धि प्रधान संस्कार युक्त ऋद्धिपादकी भावना करता है। वह इन चार ऋद्धिपादोंकी भावना करनेसे, बार बार अभ्यास करनेसे, इच्छा रहनेपर अपनी आयु (अभी १०० वर्ष) कल्प भरकी उससे कुछ अधिक तक रख सकता है। यही भिक्षुकी आयु है ?

"भिक्षुओ ! भिक्षुका वर्ण क्या है ? भिक्षुओ ! भिक्षु शीलवान् होता है, प्रातिमोक्षके संयमसे संयत होकर विहार करता है, आचार विचारसे युक्त होता है, थोळे भी बुरे कर्मसे भय खाता है, नियमों (=शिक्षा-पदों)के अनुसार आचरण करता है। भिक्षुओ ! भिक्षुका यही वर्ण है।

"भिक्षुओ ! भिक्षुका सुख क्या है ? भिक्षुओ ! भिक्षु भोग (=काम) और पापों (=अकुशल धर्मों)से अलग रह सवितर्क, सविचार विवेक-ज प्रीतिसुखवाले प्रथम ध्यान[2]को प्राप्त होकर विहार करता है। द्वितीय, ० तृतीय ० चतुर्थ ध्यान ०। भिक्षुओ ! यही भिक्षुका सुख है।

"भिक्षुओ ! भिक्षुका भोग क्या है ? भिक्षुओ ! भिक्षु मैत्री-युक्त चित्तसे एक दिशा ०[3]। करुणा ०। मुदिता ०। उपेक्षा-युक्त चित्तसे ०। भिक्षुओ ! यही भिक्षुका भोग है।

"भिक्षुओ ! भिक्षुका क्या बल है ? भिक्षुओ ! भिक्षु आस्रवों (=चित्तमलों)के क्षय हो जानेसे आस्रव-रहित चित्तकी विमुक्ति, प्रज्ञा द्वारा विमुक्तिको इसी जन्ममें जानकर, साक्षात् कर विहार करता है। भिक्षुओ ! यही भिक्षुका बल है।

"भिक्षुओ ! मैं दूसरा एक भी बल नहीं देखता, जो ऐसे **मार**-बलको जीत सके। भिक्षुओ ! अच्छे (=कुशल) धर्मोंके करनेके कारण इस प्रकार पुण्य बढ़ता है।"

भगवान्ने यह कहा। संतुष्ट हो भिक्षुओंने भगवान्के भाषणका अभिनन्दन किया।

---

[1] देखो महासतिपट्ठानसुत्त २२ पृष्ठ १९०।

[2] देखो पृष्ठ २९-३२। [3] देखो पृष्ठ ९१।

२७—अग्गञ्ञ-सुत्त (३।४)

१—वर्णव्यवस्थाका खंडन। २—मनुष्य जातिकी प्रगति। (१) प्रलयके बाद सृष्टि (२) सत्वोंका आरम्भिक आहार। (३) स्त्री-पुरुषका भेद। (४) वैयक्तिक सम्पत्तिका आरम्भ। ३—चारों वर्णोंका निर्माण। (१) राजा (क्षत्रिय) की उत्पत्ति। (२) ब्राह्मणकी उत्पत्ति। (३) वैश्यकी उत्पत्ति। (४) शूद्रकी उत्पत्ति। (५) श्रमण (=संन्यासी)की उत्पत्ति। ४—जन्म नहीं कर्म प्रधान है।

ऐसा मैंने सुना—एक समय भगवान् **श्रावस्ती**में **मृगारमाता**के प्रासाद **पूर्वाराम**में विहार करते थे।

उस समय **वाशिष्ट** और **भारद्वाज** प्रव्रज्या लेनेकी इच्छासे भिक्षुओंके साथ परिवास कर रहे थे।

१—वर्णव्यवस्थाका खंडन

तब भगवान् सायंकाल समाधिसे उठ प्रासादसे उतर प्रासादके पीछे छायामें, खुले स्थानमें टहल रहे थे। ० वाशिष्टने भगवान्को ० टहलते देखा। देखकर भारद्वाजको संबोधित किया—

"आवुस भारद्वाज! भगवान् ० टहल रहे हैं। आओ, आवुस भारद्वाज! जहाँ भगवान् हैं, वहाँ चलें। भगवान्के पास धर्मोपदेश सुननेको मिलेगा।"

"हाँ आवुस!" कह भारद्वाजने वाशिष्टको उत्तर दिया।

तब वाशिष्ट और भारद्वाज जहाँ भगवान् थे, वहाँ गये। जाकर भगवान्को अभिवादनकर भगवान्के पीछे पीछे चलने लगे।

तब भगवान्ने वाशिष्टको संबोधित किया—"वाशिष्ठ! तुम तो ब्राह्मण-जाति और ब्राह्मण-कुलके हो। ब्राह्मण कुलसे घरसे बेघर हो प्रव्रजित होना चाहते हो। वाशिष्ट! क्या तुम्हें ब्राह्मण लोग नहीं निंदते हैं? क्या तुम्हारी हँसी नहीं उळाते हैं?"

"हाँ, भन्ते! ब्राह्मण लोग अपने अनुरूप पूरे परिहाससे हमें निन्दते, हँसते हैं।"

"वाशिष्ट! किस प्रकार ० ब्राह्मण लोग निंदते हँसी उळाते हैं?"

"भन्ते! ब्राह्मण लोग कहते हैं—ब्राह्मण ही श्रेष्ठ वर्ण है, दूसरे वर्ण हीन हैं; ब्राह्मण ही शुक्ल वर्ण हैं, दूसरे वर्ण कृष्ण हैं; ब्राह्मण ही शुद्ध होते हैं, अब्राह्मण नहीं; ब्राह्मण ही ब्रह्माके मुखसे उत्पन्न हुये पुत्र, ब्रह्मजात, ब्रह्मनिर्मित, और ब्राह्मदायाद हैं। सो तुम लोग श्रेष्ठ वर्णसे गिरकर नीच हो गये। ये मुण्डी, श्रमण, नीच (=इब्भ), कृष्ण, भ्रष्ट और ब्रह्माके पैरसे उत्पन्न हैं। यह आप लोगोंको नहीं चाहिये, यह आप लोगोंके अनुरूप नहीं है, कि आप लोग श्रेष्ठ वर्णको छोळ नीच वर्णके हो जायें, जो ०। भन्ते! ब्राह्मण लोग इसी तरह ० निंदते और हँसी उळाते हैं।"

"वाशिष्ट! वे ब्राह्मण पुरानी बातोंको भूल जानेके कारण ही ऐसा कहते हैं—ब्राह्मण ही श्रेष्ठ वर्ण ०। वाशिष्ट! ब्राह्मणोंकी ब्राह्मणियाँ ऋतुनी होती देखी जाती हैं, गर्भिणी होती, ० प्रसव

करती ० और बच्चोंको दूध पिलाती ०। वे ब्राह्मण योनिसे उत्पन्न होकर भी ऐसा कहते हैं—ब्राह्मण ही श्रेष्ठ वर्ण ०। वे ब्रह्माके विषयमें झूठी बात कहते हैं, मिथ्या भाषणकरके बहुत अ-पुण्य कमाते हैं।

"वाशिष्ट ! क्षत्रिय, ब्राह्मण, वैश्य और शूद्र चार **वर्ण** हैं। क्षत्रियोंमें भी कितने जीवहिंसा करते हैं, चोरी करते हैं, मिथ्याचार करते हैं, झूठ बोलते हैं ० मिथ्या-दृष्टिवाले होते हैं। वाशिष्ठ ! इस तरह जो धर्म बुरा (=अकुशल), सदोष, असेवनीय, अनार्य, कृष्ण, कृष्णंविपाक (=बुरे फल वाला), विद्वान् लोगोंसे निन्दित हैं, उन्हें वे करते देखे जाते हैं।

"वाशिष्ट ! कितने ब्राह्मण भी ० वैश्य भी ० शूद्र भी जीव-हिंसा करनेवाले ० मिथ्या-दृष्टि-वाले होते हैं। इस तरह जो धर्म अकुशल ०, शूद्र भी उनको करते देखे जाते हैं।

"वाशिष्ट ! कितने क्षत्रिय भी जीव-हिंसासे विरत देखे जाते हैं, चोरी करनेसे विरत ० सम्यक् दृष्टिवाले देखे जाते हैं। **वाशिष्ट** ! इस तरह जो धर्म अच्छे निर्दोष ० उन्हें करते कितने क्षत्रिय भी देखे जाते हैं, ब्राह्मण भी ०। वैश्य भी ०। कितने शूद्र भी जीव-हिंसासे विरत ०।

"वाशिष्ट ! इन चारों वर्णोंमें इस प्रकार कृष्ण और शुक्ल धर्मोंको करनेवाले, विद्वान् पुरुषोंसे निन्दित और प्रशंसित कार्योंको करनेवाले, दोनों तरहके मनुष्य पाये जाते हैं; तो ब्राह्मण कैसे कहते हैं—ब्राह्मण ही श्रेष्ठ वर्ण ० ? किंतु विद्वान् लोग इसे वैसा नहीं मानते। सो क्यों ? वाशिष्ट ! इन्हीं चार वर्णोंमें जो भिक्षु अर्हत्, क्षीणास्रव, ब्रह्मचारी, कृतकृत्य, भारमुक्त, परमार्थ-प्राप्त, भव-बंधन-मुक्त, ज्ञानी और विमुक्त होता है, वह सभीसे बढ़ जाता है, धर्मसे ही अधर्मसे नहीं।

"वाशिष्ट ! मनुष्यमें धर्मही श्रेष्ठ है, इस जन्ममें भी परजन्ममें भी। वाशिष्ट ! तब इस तरह भी समझना चाहिये कि मनुष्यमें ०। वाशिष्ट ! कोसलराज **प्रसेनजित्** जानता है, कि अनुपम श्रमण **गौतम शाक्य** कुलसे प्रव्रजित हुआ है। वाशिष्ट ! शाक्य लोग कोसलराज प्रसेनजित्के आधीन (=अनुयुत्त=आनुयुक्त) हैं। **शाक्य** लोग कोसलराज प्रसेनजित्को नमन, अभिवादन, प्रत्युत्थान, हाथ जोळना, तथा सत्कार करते हैं। वाशिष्ट ! जिस तरह शाक्य लोग ० प्रसेनजित्को करते हैं वैसे ही ० प्रसेनजित् तथागतके प्रति करता है।—वह क्या इसलिये कि श्रमण गौतम सुजात हैं, मैं दुर्जात हूँ; श्रमण गौतम बलवान् हैं, मैं दुर्बल हूँ; श्रमण गौतम सुन्दर हैं, मैं कुरूप हूँ; श्रमण गौतम बळे भारी हैं, मैं बहुत छोटा हलका हूँ ? (नहीं) धर्महीका सत्कार करते, गुरुकार करते ० कोसलराज प्रसेनजित् इस प्रकार तथागतको बळा मानता है ० सत्कार करता है।

"वाशिष्ट ! इस प्रकार भी जानना चाहिये कि धर्म ही मनुष्यमें श्रेष्ठ है ०। वाशिष्ट ! नाना जातिके, नाना नामके, नाना गोत्रके, नाना कुलके तुम लोग घरसे बेघर हो प्रव्रजित होते हो। 'तुम लोग कौन हो ?' पूछे जानेपर 'हम लोग **शाक्यपुत्रीय** श्रमण हैं'—ऐसा कहते हो। वाशिष्ट ! तथागतमें जिसकी श्रद्धा गळी है, जमी है, प्रतिष्ठित है, दृढ़ है; वह किसी भी श्रमण, ब्राह्मण, देव, मार, ब्रह्मा या संसारमें और किसी (व्यक्ति)से डिगाया नहीं जा सकता। (और) उसीका कहना ठीक है—मैं भगवान् के मुखसे उत्पन्न, धर्मसे उत्पन्न, धर्म-निर्म्मित और धर्म-दायाद पुत्र हूँ। सो किस हेतु ? वाशिष्ट ! **धर्म-काय** ब्रह्म-काय, धर्म-भूत, ब्रह्म-भूत—यह तथागतका ही नाम (=अधिवचन) है।

२—मनुष्य जातिकी प्रगति

(१) *प्रलयके बाद सृष्टि*

वाशिष्ट ! बहुत दिनोंके बीतनेके बाद एक समय आवेगा जब इस लोकका संवर्त (=प्रलय) होगा। संवर्त हो जानेपर लोकमें रहनेवाले अधिकतर प्राणी (=सत्व) आभास्वर (देवों)में रहते हैं। वे वहाँ मनोमय, प्रीतिभक्ष, स्वयंप्रभ, आकाशचारी, शुभस्थायी होकर बहुत दिन रहते हैं। बहुत दिनोंके बीतनेके बाद कभी एक समय आवेगा जब इस लोकका विवर्त (=सृष्टि) होगा। विवर्त

होनेपर अनेक सत्व **आभास्वर** लोकसे च्युत हो यहाँ आते हैं। वे यहाँ मनोमय ०। उस समय सभी जगह पानी ही पानी होता है। बहुत अन्धकार फैला रहता है। न चाँद और न सूरज दिखाई देते हैं। न नक्षत्र और न तारे दिखाई देते हैं। न रात और न दिन मालूम पळते हैं। न मास और न पक्ष मालूम पळते हैं। न ऋतु और न वर्ष ०। न स्त्री और न पुरुष ०। सत्त्व हैं, सत्त्व हैं—बस यही उनकी संज्ञा होती है।

(२) *सत्वों (मनुष्यों)का आरम्भिक आहार*

"तब वाशिष्ट ! बहुत दिनोंके बीतनेके बाद उन सत्वोंके लिये जलपर, गरम दूधके ठंडा होनेपर ऊपर मलाईके जमनेकी भाँति **रसा** पृथिवी फैली। वह वर्ण सम्पन्न, गन्धसम्पन्न, रससम्पन्न थी, जैसे कि मक्खन घीसे सम्पन्न रहता है, इसी तरहसे०। जैसे कि मधु-मक्खियोंका निर्दोष मधु होता है वैसा उसका स्वाद था।

"वाशिष्ट ! तब कोई सत्व लालची था। 'अरे, यह क्या है', (सोच, वह) रसा पृथिवीको अँगुलीसे चाटने लगा। ० चाटनेसे उसे तृष्णा उत्पन्न हुई। दूसरे भी सत्व उस सत्वकी देखा देखी रसा पृथ्वीके रसको पाकर अँगुलीसे चाटने लगे। ० उन्हें भी तृष्णा उत्पन्न हुई।

"वाशिष्ट ! तब वे सत्व हाथोंसे रसा पृथ्वीको ग्रास-ग्रास करके खाने लगे। ० खानेसे उन सत्वोंकी स्वाभाविक प्रभा अन्तर्धान हो गई। ० अन्तर्धान होनेसे चाँद और सूरज प्रकट हुये। चाँद और सूरजके प्रकट होनेपर नक्षत्र और तारे प्रकट हुये। रात और दिनके मालूम होनेसे मास और पक्ष मालूम पळने लगे। मास और पक्षके मालूम ० ऋतु और वर्ष मालूम पळने लगे। वाशिष्ट ! इस तरहसे फिर भी लोकका विवर्त (=सृष्टि, उदघाटन) होता है।

"तब, वे सत्व रसा पृथ्वीको (जैसे जेसे) बहुत दिनों तक खाते रहे। ० वैसे वैसे उनका शरीर कर्कश होने लगा, उनके वर्णमें विकार मालूम पळने लगा। कोई सत्व सुन्दर थे तो कोई कुरूप। जो सत्व सुन्दर थे, सो अपनेको कुरूप सत्वोंसे ऊँचा समझते थे—हम लोग इन लोगोंसे सुन्दर (वर्णवान्) हैं, हम लोगोंसे ये लोग दुर्वर्ण (=कुरूप) हैं। उनके अपने वर्णके अभिमानसे रसा पृथ्वी अन्तर्धान हो गई। रसा पृथ्वीके अन्तर्धान हो जानेपर वे सत्व इकट्ठे होकर चिल्लाने लगे—'अहो रस, अहो रस ! उसी से आज भी जब मनुष्य कुछ सुरस (चीज) पाते हैं तो कहने लगते हैं—'अहो रस ! अहो रस !' यह उसी अग्र (=प्रथम) पुराने अक्षर (=बात)को स्मरण करते हैं, किंतु उसके अर्थको नहीं जानते।

"तब वाशिष्ट ! उन प्राणियोंके (लिये) रसा पृथ्वीके अन्तर्हित हो जानेपर अहिच्छत्रक (=नागफनी) सी भूमिकी पपळी प्रकट हुई। वह वर्णसम्पन्न, गन्धसम्पन्न और रससम्पन्न थी, **जैसे** कि मक्खन घीसे सम्पन्न०। **जैसे**० मधु०। वाशिष्ट ! तब वे सत्व भूमिकी पपळीको खाने लगे। वे उसीको बहुत दिनों तक खाते रहे।० उन सत्वोंके शरीर अधिकाधिक कर्कश होने लगे, उनके वर्णमें विकार मालूम पळने लगा। ०। उनके वर्णके अभिमानसे भूमिकी पपळी अन्तर्धान हो गई।

"तब वाशिष्ट ! ० उसके अन्तर्धान होनेपर **भद्रलता** (=एक स्वादिष्ट लता) प्रकट हुई। **जैसे** कि कलम्बुक (=सरकण्डा) प्रकट होता है। वह वर्ण-सम्पन्न (थी) ० मधु ०।

"वाशिष्ट ! तब वे सत्व भद्रलताको खाने लगे। ० उसे बहुत दिनों तक खाते रहे। ० उनके शरीर अधिकाधिक कर्कश होने लगे। उनके वर्णमें विकार मालूम पळने लगा। ०। उनके वर्णके अभिमानसे उनकी वह भद्रलता अन्तर्धान हो गई। ० अन्तर्धान होनेपर वे इकट्ठे होकर चिल्लाने लगे—"हाय रे हमें ! हाय हमारी कैसी अच्छी भद्रलता थी।' उसीसे आज भी मनुष्य लोग कुछ दुःखमें पळनेपर ऐसा कहा करते हैं—'हाय रे हमें ! हाय हमारी भद्रलता थी !!' आज भी दुःख पळनेपर मनुष्य उसी पुरानी बातको स्मरण करते हैं; किन्तु उसके अर्थको नहीं जानते।

(३) स्त्री-पुरुषका भेद

"वाशिष्ट ! तब उनकी भद्रलताके अन्तर्धान हो जानेपर, अकृष्ट-पच्य (=बिना बोया जोता) धान प्रादुर्भूत हुआ, वह चावल कण और तुषके बिना (तथा) सुगन्धित था। जिसे वह शामके भोजनके लिये शामको लाते थे। फिर वह प्रातः बढ़कर पककर तैयार हो जाता था। जिसे वह प्रातः प्रातराशके लिये लाते थे, वह शामको बढ़कर पक जाता था। काटा मालूम नहीं होता था। तब ० उस अकृष्ट-पच्य शालीको वह बहुत दिनों तक खाते रहे। ० उन सत्वोंके शरीर अधिकाधिक कर्कश होने लगे। उनके वर्णमें विकार मालूम पळने लगा। स्त्रियोंको स्त्री-लिंग, पुरुषोंको पुरुष-लिंग उत्पन्न हो गये। स्त्री, पुरुषको बार बार आँख लगाकर देखने लगी, पुरुष स्त्रीको ०। परस्पर आँख लगाकर देखनेसे, राग उत्पन्न हो गया, शरीरमें (प्रेमकी) दाह लगने लगी। दाहके कारण उन्होंने मैथुन कर्म किया। वाशिष्ट ! उस समय लोग जिन्हें मैथुन करते देखते उनपर कोई धूली फेंकता, कोई कीचळ फेंकता और कोई गोवर फेंकता था—'हट जा वृषली (=शूद्री) ! हट जा वषली ! कैसे एक सत्व दूसरे सत्वको ऐसा करेगा !' सो आज भी लोग किन्हीं किन्हीं देशोंमें (नवोढ़ा) बधूको ले जाते समय, धूली, फेंकता ०। वह उसी पुरानी बातको स्मरण कर किंतु उसका अर्थ नहीं जानते। वाशिष्ट ! उस समय जो अधर्म समझा जाता था, वही अब धर्म समझा जाता है। वाशिष्ट ! जो सत्व उस समय मैथुन-कर्म करते, वह तीन मास भी, दो मास भी गाँव या निगममें नहीं आने पाते थे, उस समय बार बार गिरने लगे, अधर्ममें पतित हुये थे; तब, उसी अधर्मको छिपाने के लिये घर बनाना आरम्भ किया।

(४) वैयक्तिक सम्पतिका आरम्भ

"वाशिष्ट ! तब किसी आलसीके मनमें यह आया—'शाम सुबह, दोनों समय धान (=शाली) लानेके लिये जानेका कष्ट क्यों उठावें ? क्यों न एक ही बार शाम-सुवह दोनोंके खानेके लिये शालि ले आवें।' तब वह प्राणी एक ही बार ० ले आया। तब, कोई दूसरा प्राणी उस प्राणीके पास गया, जाकर बोला—'आओ, हम लोग शालि लानेके लिये चलें।' 'हे सत्व ! हम ० एक ही बार ० ले आये हैं।'

"तब वाशिष्ट ! वह सत्व भी उस सत्वकी देखादेखी एक ही बार शालि ले आया—'यह तो वहुत अच्छा है' (सोचा)। वाशिष्ट ! तब कोई प्राणी जहाँ वह पुरुष था वहाँ गया, जाकर बोला—'आओ ! शालि लाने चलें।' 'हे सत्व ! हम ० एक ही बार ० दो दिनोंके लिये ले आये हैं।' वाशिष्ट ! तब वह सत्व भी उसकी देखादेखी एक ही बार चार दिनोंके लिये शालि ले आया यह तो बहुत अच्छा है'।० देखादेखी आठ दिनके लिये०।

"तबसे प्राणी शालि एक जगह जमा करके खाने लगे। तब चावलके ऊपर कन भी भूसी भी होने लगी। (तब किसी जगहसे) एक बार उखाळ लेनेपर फिर नहीं जमनेके कारण वह स्थान (खाली) मालूम होने लगा। शालि (का खेत) खंड खंड दिखलाई देने लगी।

"वाशिष्ट ! तब वे सत्व इकट्ठे हो, ० चिल्लाने लगे—'हम प्राणियोंमें पाप धर्म प्रकट हो रहे हैं। हम लोग पहले मनोमय ० थे, बहुत दिन तक जीते थे। बहुत दिनोंके बीतनेके बाद जलमें रसा पृथ्वी हुई, वर्ण-सम्पन्न ०। उस रसा पृथ्वीको हम लोग ग्रास ग्रास करके खाने लगे ० स्वाभाविक प्रभा अन्तर्धान हो गई। उसके अन्तर्धान होनेसे चाँद सूरज ० नक्षत्र और तारे ० रात-दिन ० मास-पक्ष ० ऋतु-वर्ष ०। रसा पृथ्वीको हम लोग बहुत दिनों तक खाते रहे। तब, हम लोगोंके पाप अकुशल धर्मके प्रादुर्भूत होनेके कारण रसा पृथ्वी अन्तर्धान हो गई। ० अन्तर्धान होनेपर भूमिमें पपळी ०। उसे हम लोग ० खाते रहे। ० ।० पाप (=अकुशल धर्म)के प्रादुर्भूत होनेके कारण भूमिकी पपळी अन्तर्धान हो गई। ० भद्रलता अन्तर्धान हो गई। ० उस शालिको हम लोग बहुत दिनों तक खाते रहे। तब, हम

लोगोंके पाप=अकुशल धर्मके प्रकट होनेसे कन भी, भूसी भी चावलके ऊपर आ गई ०। आओ, हम लोग शालि (–खेत) बाँट लें, मेंड (=मर्यादा) बाँध दें। तब उन लोगोंने शालि बाँट ली, और मेंड बाँध दी।

"वाशिष्ट! तब कोई लालची सत्व अपने भागकी रक्षा करता दूसरेके भागको चुरा कर खा गया। उसे लोगोंने पकळ लिया, पकळकर बोले—'हे सत्व! तुम यह पाप-कर्म करते हो, जो कि ० दूसरेके भागको चुराकर खा रहे हो। मत फिर ऐसा करना।' 'बहुत अच्छा' कहकर उसने उन सत्वोंको उत्तर दिया। दूसरी बार भी वह ० दूसरेके भागको चुराकर खा गया। लोगोंने उसे पकळ लिया,० बोले—तुम यह पाप कर्म ०। तीसरी बार भी ०। कोई हाथसे मारने लगा, कोई डलेसे, कोई लाठीसे। वाशिष्ट! उसीके बादसे चोरी, निन्दा, मिथ्या-भाषण और दण्ड-कर्म होने लगे।

"वाशिष्ट! तब वे प्राणी इकट्ठे हो कहने लगे—'प्राणियोंमें पाप-धर्म प्रकट हुये हैं, जो कि चोरी ०। अतः हम लोग ऐसे एक प्राणीको निर्वाचित करें, जो हम लोगोंके निन्दनीय कर्मोंकी निन्दा करे, उचित कर्मोंको बतलावे, निकालने योग्यको निकाल दे। और हम लोग उसे अपने शालिमेंसे भाग दें।'

३—चारों वर्णोंका निर्माण

(१) राजा (क्षत्रिय)की उत्पत्ति

"वाशिष्ट! तब वे प्राणी, जो उनमें वर्णवान् (= सुन्दर), दर्शनीय, प्रासादिक, और महाशक्ति-शाली था उसके पास जाकर बोले—'हे सत्व! उचितानुचितका ठीकसे अनुशासन करो, निन्दनीय कर्मोंकी निन्दा करो, उचित कर्मोंको बतलाओ, निकालने योग्यको निकाल दो, हम लोग तुम्हें शालिका भाग देंगे।' 'बहुत अच्छा' कह ० स्वीकार कर लिया। वह ठीकसे उचितानुचितका अनुशासन करता था ० लोग उसे शालिका भाग देते थे। "वाशिष्ट! महाजनों द्वारा सम्मत होनेसे '**महासम्मत** महासम्मत' करके उसका पहला नाम पळा। क्षेत्रोंका अधिपति होनेसे 'क्षत्रिय क्षत्रिय' करके दूसरा नाम (क्षत्रिय) पळा। धर्मसे दूसरोंका रञ्जन करता था, अतः 'राजा राजा' करके तीसरा नाम (राजा) पळा।

"वाशिष्ट! इस तरह इस क्षत्रिय मंडलका पुराने अग्रण्य अक्षरसे निर्माण हुआ। उन्हीं पुरुषोका, दूसरोंका नहीं, धर्मसे, अधर्मसे नहीं। "वाशिष्ट! मनुष्यमें धर्म ही श्रेष्ठ है, इस जन्ममें भी और परजन्ममें भी।

(२) ब्राह्मणकी उत्पत्ति

तब, उन्हीं प्राणियोंमें किन्हीं किन्हींके मनमें यह हुआ—प्राणियोंमें पापधर्म प्रादुर्भूत हो गये हैं, जो कि चोरी ० होती है। अतः हम लोग पाप=अकुशल धर्मोंको छोळ दें। उन लोगोंने पाप अकुशल धर्मोंको छोळ दिया। वाशिष्ट! पाप अकुशल धर्मोंको छोळ (= बाह) दिया, इसीलिये 'ब्राह्मण ब्राह्मण' करके उनका पहला नाम पळा। वे जंगलमें पर्णकुटी बनाकर वहीं ध्यान करते थे। उनके पास अंगार न था, धुंआ न था, मुसल न था, वह शामको शामके भोजनके लिये सुबहको सुबहके भोजनके लिये ग्राम, निगम और राजधानियोंमें जाते थे। भोजन कर फिर जंगलमें अपनी कुटीमें आकर ध्यान करते थे। उन्हें देखकर मनुष्योंने कहा—ये सत्व जंगलमें पर्णकुटी बना ध्यान करते हैं, इनके पास अंगार नहीं, धुंआ नहीं, मुसल नहीं ० ध्यान करते हैं। 'ध्यान करते हैं' 'ध्यान करते हैं' करके उनका दूसरा नाम ध्यायक पळा। वाशिष्ट! उन्हीं सत्वोंमें कितने जंगलमें पर्णकुटी बना ध्यान न पूरा कर सकनेके कारण ग्राम या निगमके पास आकर ग्रंथ बनाते हुये रहने लगे। उन्हें देखकर मनुष्योंने कहा—० ग्रंथ बनाते हुये रहते हैं, ध्यान नहीं करते। 'ध्यान नहीं करते', 'ध्यान नहीं करते' करके **अध्यायक** यह तीसरा नाम पळा। वाशिष्ठ! उस समय वह नीच समझा जाता था; किंतु आज वह श्रेष्ठ समझा जाता है।

"वाशिष्ट! इस तरह इस ब्राह्मण-मंडलका पुराने अग्रण्य अक्षरसे निर्माण हुआ; उन्हीं प्राणियोंका, दूसरोंका नहीं, धर्मसे अ-धर्मसे नहीं। वाशिष्ट! धर्म ही मनुष्यमें श्रेष्ठ है, इस जन्ममें भी और परजन्ममें भी।

(३) वैश्यकी उत्पत्ति

"वाशिष्ट ! उन्हीं प्राणियोंमें कितने मैथुन कर्म करके नाना कामोंमें लग गये। वाशिष्ट ! मैथुनं कर्म करके नाना कामोंमें लग जानेके कारण 'वैश्य' 'वैश्य' नाम पळा। वाशिष्ट ! इस तरह इस वैश्य-मंडलका पुराने अग्रण्य अक्षरसे नाम पळा। ० वाशिष्ट ! धर्मही मनुष्यमें श्रेष्ठ है ०।

(४) शूद्रकी उत्पत्ति

"वाशिष्ट ! उन्हीं प्राणियोंमें बचे जो क्षुद्र-आचारवाले प्राणी थे। 'क्षुद्र-आचार' 'क्षुद्र-आचार' करके शूद्र अक्षर उत्पन्न हुआ। वाशिष्ट ! इस तरह ०। वाशिष्ट ! धर्म ही मनुष्यमें श्रेष्ठ है ०।

(५) श्रमण (=संन्यासी)की उत्पत्ति

"वाशिष्ट ! एक समय था जब क्षत्रिय भी—'मैं श्रमण होऊँगा' (सोच) अपने धर्मको निंदते घरसे बेघर हो प्रव्रजित हो जाता था। ब्राह्मण भी ०। वैश्य भी ०। शूद्र भी ०।

"वाशिष्ट ! इन्हीं चार मंडलोंसे श्रमण-मंडलकी उत्पत्ति हुई। उन्हीं प्राणियोंका ०। धर्म ही मनुष्योंमें श्रेष्ठ ०।

४—जन्म नहीं कर्म प्रधान है

"वाशिष्ट ! क्षत्रिय भी कायासे दुराचार, वचन और मनसे दुराचारकर, मिथ्या-दृष्टिवाले हो, मिथ्या-दृष्टिके (=झूठी धारणा) अनुकूल आचरण करते हैं। और उसके कारण मरनेके बाद ० दुर्गति ० नरकमें उत्पन्न होते हैं। ब्राह्मण भी०। वैश्य भी०। शूद्र भी०। श्रमण भी०।

"वाशिष्ट ! क्षत्रिय भी कायासे सदाचार करके ० सम्यग्-दृष्टि ०। और उसके कारण मरनेके बाद ० स्वर्गमें उत्पन्न होते हैं। ब्राह्मण भी ०। वैश्य भी ०। शूद्र भी ०। श्रमण भी ०।

"वाशिष्ट ! क्षत्रिय भी काया ० वचन ० मनसे दोनों (तरहके) कर्म करके, (सच झूठ दोनों)-से मिश्रित दृष्टि (=धारणा) रख, मिश्रित दृष्टिवाले कर्मको करके काया छोळ मरनेके बाद सुख दुःख (दोनों) भोगनेवाले । ब्राह्मण भी ०। वैश्य भी ०। शूद्र भी ०। श्रमण भी ०।

"वाशिष्ट ! क्षत्रिय भी काया ० वचन ० मनसे संयत ० हो सैंतीस **बोधि-पाक्षिक**[१] धर्मोंकी भावना करके इसी लोकमें निर्वाणको प्राप्त करता है। ब्राह्मण भी ०। वैश्य भी ०। शूद्र भी ०। श्रमण भी ०।

"वाशिष्ट ! इन्हीं चार वर्णोंमें जो भिक्षु अर्हत्=क्षीणास्रव, समाप्त-ब्रह्मचर्य, कृतकृत्य, भार-मुक्त, परमार्थ-प्राप्त, भवबंधन-मुक्त, ज्ञानी और विमुक्त होता है, वही उनमें श्रेष्ठ कहा जाता है। धर्मसे, अधर्मसे नहीं। वाशिष्ट ! धर्म ही मनुष्यमें श्रेष्ठ है, इस जन्ममें भी और परजन्ममें भी।

"वाशिष्ट ! ब्रह्मा **सनत्कुमार**ने भी गाथा कही है—

'गोत्र लेकर चलनेवाले जनोंमें क्षत्रिय श्रेष्ठ है।
जो विद्या और आचरणसे युक्त है, वह देवमनुष्योंमें श्रेष्ठ है' ॥१॥

"वाशिष्ट ! यह गाथा ब्रह्मा सनत्कुमारने ठीक ही कही है, बेठीक नहीं कही। सार्थक कही, अनर्थक नहीं। इसका मैं भी अनुमोदन करता हूँ—

'गोत्र लेकर ०' ॥१॥

भगवान्ने यह कहा। संतुष्ट हो वाशिष्ट और भारद्वाजने भगवान्के भाषणका अनमोदन किया।

---

[१] देखो पृष्ठ २४७।

२८—सम्पसादनिय-सुत्त (३।५)

१—परमज्ञानमें बुद्ध तीनों कालमें अनुपम। २—बुद्धके उपदेशोंकी विशेषतायें। ३—बुद्धमें अभिमान-शून्यता।

ऐसा मैंने सुना—एक समय भगवान् **नालन्दाके प्रावारिक**-आम्रवनमें विहार करते थे।

तब आयुष्मान् **सारिपुत्र** जहाँ भगवान् थे, वहाँ गये। जाकर भगवान्‌को अभिवादनकर एक ओर बैठ गये। एक ओर बैठे आयुष्मान् सारिपुत्रने भगवान्‌से यह कहा[1]—

१—परमज्ञानमें बुद्ध तीनों कालमें अनुपम

"भन्ते! मैं ऐसा प्रसन्न (=श्रद्धावान्) हूँ—'संबोधि (=परम ज्ञान)में भगवान्‌से बढ़कर =भूयस्तर कोई दूसरा श्रमण ब्राह्मण न हुआ, न होगा, न इस समय है'।"

"सारिपुत्र! तूने यह बहुत उदार (=बळी)=आर्षभी वाणी कही। एकांश सिंहनाद किया—'मैं ऐसा प्रसन्न हूँ ०।' सारिपुत्र! अतीतकालमें जो अर्हत् सम्यक्-संबुद्ध हुए थे, क्या (तूने) उन सब भगवानोंको (अपने) चित्तसे जान लिया; कि वह भगवान् ऐसे शीलवाले, ऐसी प्रज्ञावाले, ऐसे विहारवाले, ऐसी विमुक्तिवाले थे?"

"नहीं, भन्ते!"

"सारिपुत्र! जो वह भविष्यकालमें अर्हत् सम्यक्-संबुद्ध होंगे, क्या उन सब भगवानोंको चित्तसे जान लिया ०?" "नहीं, भन्ते!"

"सारिपुत्र! इस समय मैं अर्हत् सम्यक्-संबुद्ध हूँ, क्या चित्तसे जान लिया, (कि मैं) ऐसी प्रज्ञा-वाला ० हूँ?"' 'नहीं भन्ते!"

"(जब) सारिपुत्र! तेरा अतीत, अनागत (=भविष्य), प्रत्युत्पन्न (=वर्तमान) अर्हत्-सम्यक्-संबुद्धोंके विषयमें चेतः-परिज्ञान (=पर-चित्तज्ञान) नहीं है; तो सारिपुत्र! तूने क्यों यह बहुत उदार=आर्षभी वाणी कही ०?"

"भन्ते! अतीत-अनागत-प्रत्युत्पन्न अर्हत्-सम्यक्-संबुद्धोंमें मुझे चेतः-परिज्ञान नहीं है; किन्तु (सबका) धर्म-अन्वय (=धर्म-समानता) विदित है। जैसे कि भन्ते! राजाका सीमान्त-नगर दृढ़ नींववाला, दृढ़-प्राकारवाला, एक द्वारवाला हो। वहाँ अज्ञातों (=अपरिचितों)को निवारण करने-वाला, ज्ञातों (=परिचितों)को प्रवेश करानेवाला पंडित=व्यक्त, मेधावी द्वारपाल हो। वहाँ नगर-के चारों ओर, अनुपर्याय (=क्रमसे) मार्गपर घूमते हुए (मनुष्य), प्राकारमें अन्ततो बिल्लीके निकलने भरकी भी संधि=विवर न पाये; उसको ऐसा हो—'जो कोई बळे बळे प्राणी इस नगरमें प्रवेश करते हैं; सभी इसी द्वारसे ०। ऐसे ही भन्ते! मैंने धर्म-अन्वय जान लिया—'जो अतीतकालमें

---

[1] मिलाओ महापरिनिब्बाण-सुत्त १६ (पृष्ठ १२२)।

अर्हत्-सम्यक्-संबुद्ध हुए, वह सभी भगवान् चित्तके मल, प्रज्ञाको दुर्बल करनेवाले पाँचों **नीवरणोंको** छोळ, चारों **स्मृति-प्रस्थानोंमें** चित्तको सु-प्रतिष्ठितकर, सात **बोध्यंगोंकी** यथार्थसे भावनाकर, सर्वश्रेष्ठ सम्यक्-संबोधिका अभि-संबोधन किये थे—' । और भन्ते ! अनागतमें भी जो अर्हत्-सम्यक्-संबुद्ध होंगे; वह सभी भगवान् ० । भन्ते ! इस समय भगवान् अर्हत्-सम्यक्-संबुद्धने भी चित्तके उपक्लेश ० ।"

२—बुद्धके उपदेशोंकी विशेषतायें

१—"भन्ते ! एक बार मैं धर्म सुननेके लिये जहाँ भगवान् थे वहाँ गया, तब मुझे भगवान्ने अच्छे बुरेको विभक्त करके उत्तरोत्तर सुन्दर धर्मका उपदेश किया; जैसे जैसे भगवान्ने मुझे अच्छे बुरेको विभक्तकर उत्तरोत्तर सुन्दर धर्मका उपदेश किया, वैसे वैसे उन धर्मोंमेंसे कुछको जानकर उन धर्मोंमें मेरी निष्ठा हुई; मैं शास्ताके प्रति बळा प्रसन्न हुआ—भगवान् सम्यक् सम्बुद्ध हैं, भगवान्का धर्म अच्छी तरह व्याख्यात है, भगवान्का श्रावक-संघ सुमार्गारूढ़ है।

२—"भन्ते ! इससे भी और बढ़कर है; जो कि भगवान् कुशल धर्मों (=अच्छाइयों)का उपदेश करते हैं। (वे कुशल धर्म ये हैं) जैसे कि—चार **स्मृति-प्रस्थान**, चार **सम्यक्-प्रधान**, चार **ऋद्धि-पाद**, पाँच **इन्द्रिय**, पाँच **बल**, सात **बोध्यङ्ग**, आर्य **अष्टांगिक मार्ग**[1] । भन्ते ! भिक्षु आस्रवों (=चित्त-मलों)के क्षयसे आस्रव-रहित चेतोविमुक्ति (=चित्तकी मुक्ति) और प्रज्ञाविमुक्ति (=ज्ञान द्वारा मुक्ति)को इसी जन्ममें स्वयं जान और साक्षात्करके विहार करता है। भन्ते ! कुशल धर्मोंमें यह सबसे बढ़कर है जिन्हें कि भगवान् अशेष जानते हैं। अशेष जाननेवाले भगवान्के लिये कुछ और ज्ञातव्य नहीं छूटा है; जिसे कि जानकर दूसरा श्रमण या ब्राह्मण भगवान्से कुशल धर्मोंमें बढ़ जाये।

३—"भन्ते ! इससे भी और बढ़कर है, जो कि भगवान् आयतन **प्रज्ञप्तियों** (=आयतनोंके व्याख्यान)का उपदेश करते हैं। भन्ते ! बाहर और भीतर मिलाकर छै आयतन हैं—(१) चक्षु और रूप, (२) श्रोत्र और शब्द, (३) घ्राण और गन्ध, (४) जिह्वा और रस, (५) काया और स्पर्श, (६) मन और धर्म। भन्ते ! आयतनप्रज्ञप्तिमें यह सबसे बढ़कर है, जिसे कि भगवान् अशेष जानते हैं। अशेष जाननेवाले ० जिसे कि जानकर दूसरा श्रमण या ब्राह्मण भगवान्से आयतन प्रज्ञप्तिमें बढ़ जाये।

४—"भन्ते ! इससे भी और बढ़कर है जो कि भगवान् प्राणियोंके **गर्भ-प्रवेशके** विषयमें उपदेश करते हैं। भन्ते ! प्राणियोंका गर्भमें प्रवेश चार प्रकारसे होता है। भन्ते ! कोई प्राणी (१) न जानते हुए माताकी कोखमें प्रवेश करता है, न जानते हुए माताकी कोखमें ठहरता है, न जानते हुए माताकी कोखसे निकलता है। यह गर्भमें आनेका पहला प्रकार है। (२) भन्ते ! फिर, कोई प्राणी जानते हुए ० प्रवेश करता है, न जानते हुए ० ठहरता ० निकलता है। यह ० दूसरा प्रकार है। (३) भन्ते ! फिर, कोई प्राणी जानते हुए ० प्रवेश करता है, ठहरता है, न जानते हुए निकलता है। यह ० तीसरा प्रकार है। (४) भन्ते ! फिर, कोई प्राणी जानते हुए ० प्रवेश करता है ० ठहरता ० निकलता है। यह ० चौथा प्रकार है। भन्ते ! यह अनुपम गर्भ-प्रवेश (के व्याख्यानों)में है।

५—"भन्ते ! इससे भी और बढ़कर है जो कि भगवान् **आदेशनाविधिका** धर्मोपदेश करते हैं। भन्ते ! चार प्रकारकी आदेशनाविधि हैं। (१) भन्ते ! कोई निमित्त (=लक्षण) जानकर आदेश करता है—तुम्हारा ऐसा मन है, तुम्हारा वैसा मन है, तुम्हारा ऐसा चित्त है। वह यदि बहुत भी आदेश करता है, तो (भी वह) ठीक वैसा ही होता है, अन्यथा नहीं। यह पहली आदेशनाविधि है।

---

[1] **यही ३७ बोधिपाक्षिक धर्म है, और यही संक्षिप्त बौद्धधर्म है।**

(२) भन्ते ! कोई बिना निमित्तहीके आदेश करता है। मनुष्यके, अमनुष्य (=देवता)के, या देवताओंके शब्दको सुनकर आदेश करता है—तुम्हारा ऐसा मन ०। यह दूसरी आदेशनाविधि है। (३) भन्ते ! फिर कोई न निमित्तसे और न मनुष्य-अमनुष्यके शब्दको सुनकर आदेश करता है, बल्कि वितर्क और विचार समाधिमें आरूढके चित्तको अपने चित्तसे जान कर आदेश करता है—ऐसा भी तुम्हारा मन ०। यह तीसरी आदेशनाविधि है। (४) भन्ते ! फिर कोई ० न वितर्कसे निकले शब्दको सुनकर आदेश करता है, बल्कि वितर्क विचार रहित समाधिमें स्थित हुए चित्तसे चित्तकी बात जान लेता है—आप (लोगों)के मानसिक संस्कार प्रणिहित (=एकाग्र) हैं, जिससे इस चित्तके बाद ही यह वितर्क होता है। यह चौथी आदेशनाविधि है।०।

६—"भन्ते ! इससे भी और बढ़कर है जो कि भगवान् **दर्शनसमापत्ति**के विषयमें धर्मोपदेश करते हैं। भन्ते ! चार प्रकारकी दर्शन-समापत्तियाँ हैं। (१) भन्ते ! कोई श्रमण या ब्राह्मण, उद्योग प्रधान, अनुयोग, अन्-आलस्य (=अ-प्रमाद), ठीक मनोयोगके साथ वैसी चित्त-एकाग्रता (=समाधि)को प्राप्त होता है, जैसी चित्त-एकाग्रतासे कि उस एकाग्र (=समाहित) चित्तमें तलवेसे ऊपर, शिरसे नीचे, और चमळा मँढे इस शरीरको नाना प्रकारकी गन्दगीसे भरा पाता है—इस शरीरमें हैं—केश, रोम, नख, दन्त, चर्म, मांस, स्नायु, हड्डी, मज्जा, वृक्क, हृदय, यकृत, क्लोमक, प्लीहा, फुफ्फुस, आँत, पतली आँत, उदरस्थ (वस्तुयें), पाखाना, पित्त, कफ, पीब, लोहू, पसीना, मेद (=वर), आँसू, वसा (=चर्बी), लार, नासामल, लसिका (=शरीरके जोंळोंमें स्थित तरल द्रव्य) और मूत्र। यह पहली दर्शन-समापत्ति है। (२) भन्ते ! फिर, कोई ० उस एकाग्र चित्तमें० तलवेसे ऊपर ० इस शरीरको गन्दगी ० केश, रोम ०। पुरुषके भीतर केवल चमळा; मांस, खून और हड्डी देखता है। यह दूसरी दर्शसमापत्ति है। (३) भन्ते ! फिर, कोई ० उस एकाग्र चित्तमें ० पुरुषके भीतर ०। इस लोक और परलोकमें अ-खंडित, इस लोकमें प्रतिष्ठित और परलोकमें भी प्रतिष्ठित पुरुषके विज्ञान-स्रोत (=भूत, भविष्य, वर्तमान तीनों कालोंमें बहती जीवनधारा)को जान लेता है। यह तीसरी दर्शनसमापत्ति है। (४) भन्ते ! फिर कोई ० उस एकाग्र चित्तमें ०। ० इस लोकमें अप्रतिष्ठित और परलोकमें अप्रतिष्ठित पुरुषके विज्ञान-स्रोत ० अ-खंडित। यह चौथी ०।

७—"भन्ते ! इससे भी और बढ़कर है कि भगवान् **पुद्गलप्रज्ञप्ति** विषयक धर्मोपदेश करते हैं। भन्ते ! पुद्गल (=पुरुष) सात प्रकारके होते हैं—(१) रूपसमापत्ति और अरूप समापत्ति दोनों भागोंसे विमुक्त (२) प्रज्ञा-विमुक्त (३) कायसाक्षी (४) दृष्टिप्राप्त (५) श्रद्धाविमुक्त (६) धर्मानुसारी, (७) श्रद्धानुसारी। भन्ते ! इसके ०।

८—"भन्ते ! इससे भी और बढ़कर है जो कि भगवान् **प्रधानों**के विषयमें धर्मोपदेश करते हैं। भन्ते ! सम्बोधि (=परमज्ञान)के सात अङ्ग हैं (१) स्मृति-सम्बोध्यङ्ग (२) धर्मविचय-सम्बोध्यङ्ग (३) वीर्य-सम्बोध्यङ्ग (४) प्रीति-सम्बोध्यङ्ग (५) प्रश्रब्धि-सम्बोध्यङ्ग (६) समाधि-सम्बोध्यङ्ग (७) उपेक्षा-सम्बोध्यङ्ग। भन्ते ! इसके ०।

९—"भन्ते ! इससे भी बढ़कर है, जो कि भगवान् **प्रतिपदा** (=मार्ग) के विषयमें धर्मोपदेश करते हैं। भन्ते ! प्रतिपदा चार हैं। (१) दुःखाप्रतिपदा दन्धाभिज्ञा, (२) दुःखाप्रतिपदा क्षिप्राभिज्ञा, (३) सुखाप्रतिपदा-दन्धाभिज्ञा, (४) सुखाप्रतिपदा क्षिप्राभिज्ञा। भन्ते ! जो यह दुःखाप्रतिपदा दन्धाभिज्ञा है वह दोनों प्रकारसे हीन समझी जाती है—दुःख (-मय) होनेके कारण और दन्ध (=धीमी) होनेके कारण। भन्ते ! जो यह दुःखाप्रतिपदा क्षिप्राभिज्ञा है, वह दुःख (-मय) होनेसे हीन समझी जाती है। भन्ते ! जो सुखाप्रतिपदा दन्धाभिज्ञा है, वह दन्धा (=धीमी) होनेके कारण हीन समझी जाती है।

भन्ते ! जो यह सुखाप्रतिपदा क्षिप्राभिज्ञा है वह दोनों प्रकारसे अच्छी समझी जाती है, सुख(मय) होनेके कारण और क्षिप्र (=शीघ्र) होनेके कारण। भन्ते ! इसके ०।

१०—"भन्ते ! इससे भी बढ़कर है, जो कि भगवान् **भस्स-समाचार** (=वाचिक आचरण)के विषयमें धर्मोपदेश करते हैं। भन्ते ! कोई (भिक्षु) जीत जानेकी इच्छासे न झूठ बोलता है, न लळाई लगानेवाली बात कहता है, न चुगली खाता है और न वैरकी बातें करता है। प्रज्ञापूर्वक सोच समझकर हृदयङ्गम करने योग्य समयोचित बात बोलता है। भन्ते ! इसके ०।

११—"भन्ते ! इससे भी बढ़कर है, जो कि भगवान् पुरुषके **शील-समाचार** (=शील संबंधी आचरण)के विषयमें धर्मोपदेश करते हैं। भन्ते ! कोई भिक्षु सच्ची श्रद्धावाला होता है; न पाखंडी, न बकवादी, न नैमित्तिक न निष्प्रेषिक न लाभसे लाभ पानेकी इच्छावाला होता है; इन्द्रियोंमें संयम रखनेवाला, मात्रासे भोजन करनेवाला, समान आचरण करनेवाला, जागरणमें तत्पर, आलस्यसे रहित, वीर्यवान्, ध्यानपरायण, स्मृतिमान्, कल्याणी प्रतिभावाला, अच्छी गतिवाला, धृतिमान्, (और) मतिमान् होता है। सांसारिक भोगोंमें लिप्त न हो, स्मृति और प्रज्ञासे युक्त होता है। भन्ते ! इसके ०।

१२—"भन्ते ! इससे भी बढ़कर है जो कि भगवान् **अनुशासनविधि**-विषयक धर्मोपदेश करते हैं। भन्ते ! अनुशासनविधि चार प्रकारकी होती हैं—(१) भन्ते ! भगवान् अच्छी तरह मन लगाकर दूसरे मनुष्योंके भीतरकी बात जान लेते हैं—यह मनुष्य किसके अनुसार आचरण करता, तीन संयोजनों (=सांसारिक बन्धनों)के क्षयसे मार्गसे च्युत न होनेवाला हो, दृढ़तापूर्वक सम्बोधिपरायण **स्रोत-आपन्न** होगा। (२) भन्ते ! भगवान् ० भीतरकी बात जान लेते हैं—यह मनुष्य ० तीन संयोजनोंके क्षयसे, राग, द्वेष और मोहके दुर्बल हो जानेसे **सकृदागामी** होगा, और एक ही बार इस लोकमें आकर अपने दुःखोंका अन्त करेगा। (३) भन्ते ! भगवान् ० जान लेते हैं—यह मनुष्य ० पाँच इसी संसारमें फँसाकर रखनेवाले बन्धनों (=अवरभागीय संयोजनों)के कट जानेसे **औपपातिक** (=देवता) होगा= उस लोकसे फिर कभी नहीं लौटेगा (=अनागामी)। (४) भन्ते ! भगवान् ० जान लेते हैं—यह मनुष्य ० आस्रवोंके क्षय–हो जानेसे आस्रव-रहित चेतो-विमुक्ति, प्रज्ञाविमुक्तिको यहीं जानकर, साक्षात्कर विहार करेगा (=अर्हत् होगा)। भन्ते ! इसके ०।

१३—"भन्ते ! इससे भी बढ़कर है, जो कि भगवान् **परपुद्गलविमुक्तिज्ञानके** विषयमें धर्मोपदेश करते हैं। भन्ते ! भगवान् ० जान लेते हैं—यह मनुष्य ० स्रोतआपन्न ० सकृदागामी ० अनागामी ० चेतोविमुक्ति और प्रज्ञा-विमुक्तिको यहीं जान और साक्षात्कर विहार करेगा (=अर्हत् होगा)।

१४—"भन्ते ! इससे भी बढ़कर है, जो कि भगवान् **शाश्वत-वादों**के विषयमें धर्मोपदेश करते हैं। भन्ते ! शाश्वतवाद तीन हैं—(१) भन्ते ! कोई श्रमण या ब्राह्मण ०[1] उस समाधिको प्राप्त करता है जिससे एकाग्र चित्त होनेपर अनेक प्रकारके पूर्व-जन्मोंको स्मरण करता है—जैसे, एक जन्म ०[1]। वह ऐसा कहता है—मैं अतीत और अनागत कालकी बातें भी जानता हूँ, लोकका संवर्त (=प्रलय) होगा विवर्त (=प्रादुर्भाव) होगा। आत्मा और लोक शाश्वत, बन्ध्य=कूटस्थ अचल हैं। प्राणी (नाना योनियोंमें) दौळते हैं, फिरते हैं, मरते हैं, उत्पन्न होते हैं। उनका अस्तित्व सदा रहेगा। यह पहला शाश्वतवाद है। (२) भन्ते ! फिर, कोई ० एकाग्र चित्त होनेपर ० स्मरण करता है एक संवर्त ०। वह ऐसा कहता—मैं अतीत और अनागत कालकी बात जानता हूँ ०। आत्मा और लोक शाश्वत हैं। यह

---

[1] देखो पृष्ठ ३१।

दूसरा शाश्वतवाद है। (३) भन्ते! फिर कोई ० स्मरण करता है ० दस संवर्त-विवर्त ०। वह ऐसा कहता है—मैं अतीत और अनागतकी बातें जानता हूँ। आत्मा और लोक शाश्वत है ०। यह तीसरा शाश्वतवाद है। भन्ते! इसके०।

१५—"भन्ते! इससे भी बढ़कर है, जो कि भगवान् **पूर्वजन्मानुस्मृतिज्ञान** (=पूर्व जन्मके स्मरण) के विषयमें धर्मोपदेश करते हैं। भन्ते! कोई श्रमण या ब्राह्मण ० एकाग्र चित्त होनेपर ० स्मरण करता है—एक जन्म ०, अनेक संवर्तकल्प, अनेक विवर्तकल्प, अनेक संवर्त-विवर्त कल्प। भन्ते! ऐसे देव हैं जिनकी आयुको न कोई गिन सकता है और न कह सकता है, किन्तु सरूप योनिमें या अरूप योनिमें; संज्ञावाले होकर या संज्ञाके बिना, या नैवसंज्ञा-नासंज्ञा होकर जिस जिस आत्म-भाव(=शरीर)में वे पहले रह चुके हैं, उन अनेक प्रकारके पूर्व-जन्मोंको आकार और नामके साथ स्मरण करते हैं। भन्ते! इसके ०।

१६—"भन्ते! इससे भी बढ़कर है, जो कि भगवान् सत्वोंके जन्म-मरणके ज्ञानके विषयमें धर्मोपदेश करते हैं। भन्ते! कोई श्रमण या ब्राह्मण ० एकाग्र चित्त होनेपर अलौकिक विशुद्ध दिव्य चक्षुसे मरते, जनमते, अच्छे, बुरे, सुन्दर, कुरूप, अच्छी गतिको प्राप्त, बुरी गतिको प्राप्त सत्वोंको देखता है। तथा ० अपने कर्मानुसार गतिको प्राप्त सत्वोंको जान लेता है—ये सत्व कायिक दुराचारसे युक्त थे। ये मरनेके बाद ० दुर्गतिको प्राप्त होंगे।—ये सत्व कायिक सदाचारसे युक्त हैं। ये मरनेके बाद ० सुगतिको प्राप्त होंगे। इस प्रकार अलौकिक विशुद्ध दिव्य चक्षुसे ० सत्वोंको देखता है। मरते, जनमते ० सत्वोंको जान लेता है। भन्ते! इसके अलावे ०।

१७—"भन्ते! इससे भी बढ़कर है, जो कि भगवान् **ऋद्धिविध** (=दिव्यशक्ति)के विषयमें धर्मोपदेश करते हैं। भन्ते! ऋद्धिविध दो प्रकारकी हैं। भन्ते! जो आस्रव-युक्त और उपाधि-युक्त ऋद्धियाँ हैं, वह अच्छी नहीं कही जातीं। भन्ते! जो आस्रव-रहित और उपाधि-रहित ऋद्धियाँ हैं, वह अच्छी कही जाती हैं। (१) भन्ते! वह कौनसी उपाधि-युक्त और आस्रव-युक्त ऋद्धियाँ हैं, जो अच्छी नहीं कही जातीं?—

ऋद्धियाँ—"वह इस प्रकारके एकाग्र, शुद्ध० चित्तको पाकर अनेक प्रकारकी ऋद्धिकी प्राप्तिके लिये चित्तको लगाता है। वह अनेक प्रकारकी ऋद्धियोंको प्राप्त करता है—एक होकर बहुत होता है, बहुत होकर एक होता है, प्रकट होता है। अन्तर्धान होता है। दीवारके आरपार, प्राकारके आरपार और पर्वतके आरपार बिना टकराये चला जाता है, मानों आकाशमें (जा रहा हो)। पृथिवीमें गोते लगाता है मानो जलमें (लगा रहा हो)। जलके तलपर भी चलता है जैसे कि पृथिवीके तलपर। आकाशमें भी पालथी मारे हुए उळता है, जैसे पक्षी (उळ रहा हो); महातेजस्वी सूरज और चाँदको भी हाथसे छूता है, और मलता है, ब्रह्मलोक तक अपने शरीरसे वशमें किये रहता है।

"भन्ते! यह ऋद्धि आस्रव-युक्त आधि-युक्त है, जो कि अच्छी नहीं कही जाती। (२) भन्ते! वह कौन सी आस्रव-रहित और उपाधि-रहति ऋद्धि है, जो कि अच्छी कही जाती है?—भन्ते! यदि भिक्षु चाहता है—'प्रतिकलमें, अप्रतिकूल ख्याल रख विहार करूँ' तो वह अप्रतिकूल ख्याल रख विहार करता है। यदि वह चाहता है—'अप्रतिकूलमें प्रतिकूल ख्याल रख विहार करूँ' तो वह प्रतिकूल ख्याल रख विहार करता है। यदि वह चाहता है—'प्रतिकूल और अप्रतिकूलमें अप्रतिकूल ख्याल रख विहार करूँ', तो ० (वह वैसा ही करता है)। यदि वह चाहता है—'प्रतिकूल और अप्रतिकूलमें प्रतिकूल ख्याल रख (=संज्ञावाला हो)कर विहार करूँ', तो ० (वह वैसा ही करता है)। यदि वह चाहता है—'प्रतिकूल और अप्रतिकूल दोनोंका ख्याल न कर स्मृतिमान् और सावधान हो उपेक्षा भावसे

विहार करूँ', तो स्मृतिमान् और सावधान हो उपेक्षा भावसे ही विहार करता है। भन्ते ! यह ऋद्धि आस्रवरहित और उपाधि-रहित होनेसे अच्छी समझी जाती है ।

१८—"भन्ते ! इसके ०। उसे भगवान् अशेष जानते हैं। आपको ० जानने के लिये कुछ बचा नहीं है, जिसे जानकर कि दूसरे श्रमण या ब्राह्मण ऋद्धिविध(=दिव्यशक्ति)में आपसे बढ़ जायें।

"भन्ते ! वीर्यवान्, दृढ़, पुरुषोचित स्थिरतासे युक्त, पुरुषोचित वीर्यसे युक्त, पुरुषोचित पराक्रमसे युक्त, श्रद्धायुक्त महापुरुष कुलपुत्रके लिये जो प्राप्तव्य है, उसे आपने प्राप्तकर लिया है। भन्ते ! भगवान् न तो हीन, ग्राम्य, अज्ञ लोगोंके करने लायक, अनार्य और अनर्थक सांसारिक सुखविलासमें पळे हैं, और न आप दुःख, अनार्य और अनर्थक आत्मक्लमथानुयोगमें (=शरीरको नाना प्रकारकी तपस्यासे कष्ट देना) युक्त हैं, इसी लोकमें सुख देनेवाले चार आधिचैतसिक (=चित्तसंबंधी) ध्यानोंको भगवान् इच्छानुसार सुखपूर्वक बहुत प्राप्त करते हैं।

"भन्ते ! यदि मुझे ऐसा पूछें—आवुस सारिपुत्र ! क्या अतीत कालमें कोई श्रमण या ब्राह्मण सम्बोधिमें भगवान्से बढ़कर था ? ० भन्ते ! मैं उत्तर दूँगा—'नहीं'। ० क्या अनागत कालमें ० होगा ? ० मैं उत्तर दूँगा—'नहीं'। क्या अभी कोई ० है ? ० मैं उत्तर दूँगा—'नहीं'।

"भन्ते ! यदि मुझे ऐसा पूछें—आवुस सारिपुत्र ! क्या अतीत कालमें कोई श्रमण या ब्राह्मण सम्बोधिमें भगवान्के सदृश था ? ० मैं उत्तर दूँगा—'नहीं'। ० क्या अनागत कालमें कोई ० होगा ? ० 'नहीं'। ० क्या अभी कोई ० है ? ० 'नहीं'।

"भन्ते ! यदि मुझे कोई ऐसा पूछे—क्या आयुष्मान् सारिपुत्र ! (भगवान्) कुछको जानते हैं और कुछको नहीं जानते ? ऐसा पूछे जानेपर, भन्ते ! मैं यह उत्तर दूँगा—'आवुस ! भगवान्के मुँहसे मैंने ऐसा सुना है, भगवान्के मुँहसे जाना है।—अतीत काल में जो अर्हत् सम्यक् सम्बुद्ध थे, वे सम्बोधिमें मेरे बराबर थे।' आवुस ! भगवान्के मुँहसे मैंने ऐसा सुना है०। अनागतमें ० होंगे। ० ऐसा सुना है०। एक ही **लोकधातु**में एक ही समय एक साथ दो अर्हत् सम्यक् सम्बुद्ध नहीं हो सकते हैं। ऐसा सम्भव नहीं है।'

"भन्ते ! किसीके पूछनेपर यदि मैं ऐसा उत्तर दूँ तो भगवान्के विषयमें मेरा कहना ठीक तो होगा, भगवान्के विषयमें कोई झूठी निन्दा तो नहीं होगी, यह कथन धर्मानुकूल तो होगा ?"

"सारिपुत्र ! ० किसीके पूछनेपर यदि तुम ऐसा उत्तर दो, तो ० यह कथन धर्मानुकूल ही होगा०।"

३—बुद्धमें अभिमान शून्यता

ऐसा कहनेपर आयुष्मान् **उदायी**ने भगवान्से कहा—"भन्ते ! आश्चर्य है ० तथागतकी अल्पेच्छता, संतोष, निर्मलचित्तताको, कि तथागत इस प्रकारकी बळी ऋद्धिवाले होते भी, इस प्रकार महानुभाव होते भी, अपनेको प्रकट नहीं करते। भन्ते ! यदि इनमेंसे एक बातको भी दूसरे मतवाले साधु अपनेमें पावें तो उसीको लेकर वे पताका उळाते फिरें। भन्ते ! आश्चर्य है ०।"

"उदायि ! देखो—तथागतकी अल्पेच्छता ० कि अपनेको प्रकट नहीं करते। यदि इनमेंसे एक भी बात०को लेकर वे पताका उळाते फिरें। उदायि ! देखो।"

तब भगवान्ने आयुष्मान् सारिपुत्रको सम्बोधित किया—"सारिपुत्र ! तो तुम भिक्षु-भिक्षुणियोंको, उपासक-उपासिकाओंको यह धर्मपर्याय (=धर्मोपदेश) कहते रहो। सारिपुत्र ! जिन अज्ञोंको सन्देह होगा—तथागतमें कांक्षा=विमति (=संदेह) होगी, वह दूर हो जायेगी।"

इस प्रकार आयुष्मान् **सारिपुत्र**ने भगवान्के सम्मुख अपने सम्प्रसाद (=श्रद्धा)को प्रकट किया। इसलिये इस उपदेशका नाम **सम्पसादनिय** पळा।

२९—पासादिक-सुत्त (३।६)

१—तीर्थंकर महावीरके मरनेपर अनुयायियोंमें विवाद। २—विवादके कारण—गुरु और धर्मकी अयोग्यता। ३—योग्य गुरु और धर्म। ४—बुद्धके उपदिष्ट धर्म। ५—बुद्ध वचनकी कसौटी। ६—बुद्ध-धर्म चित्तकी शुद्धिके लिये है। ७—अनुचित उचित आरामपसन्दी। ८—भिक्षु बुद्धधर्मपर आरूढ। ९—बुद्ध कालवादी यथार्थवादी। १०—अव्याकृत और व्याकृत बातें। ११—पूर्वान्त और अपरान्त दर्शन। १२—स्मृति प्रस्थान।

ऐसा मैंने सुना—एक समय भगवान् **शाक्य** (देश)में **वेधञ्ञा** नामक शाक्योंके **आम्रवन-प्रासादमें** विहार कर रहे थे।

१—तीर्थंकर महावीरके मरनेपर अनुयायियोंमें विवाद

उस समय **निगण्ठ नाथपुत्त** (=तीर्थंकर महावीर)की **पावामें** हालहीमें मृत्यु हुई थी। उनके मरनेपर निगण्ठोंमें फूट हो गई थी, दो पक्ष हो गये थे, लळाई चल रही थी, कलह हो रहा था। वे लोग एक दूसरेको वचन-रूपी वाणोंसे बेधते हुए विवाद करते थे—'तुम इस धर्मविनय (=धर्म)को नहीं जानते मैं इस धर्मविनयको जानता हूँ। तुम भला इस धर्मविनयको क्या जानोगे? तुम मिथ्या-प्रतिपन्न हो(=तुम्हारा समझना गलत है); मैं सम्यक्-प्रतिपन्न हूँ। मेरा कहना सार्थक है और तुम्हारा कहना निरर्थक। जो (बात) पहले कहनी चाहिये थी वह तुमने पीछे कही, और जो पीछे कहनी चाहिये थी, वह तुमने पहले कही। तुम्हारा वाद बिना विचारका उल्टा है। तुमने वाद रोपा, तुम निग्रह-स्थानमें आ गये। इस आक्षेपसे वचनेके लिये यत्न करो, यदि शक्ति है तो इसे सुलझाओ।' मानों निगण्ठोंमें युद्ध (=वध) हो रहा था।

निगण्ठ नाथपुत्तके जो श्वेत-वस्त्रधारी गृहस्थ शिष्य थे, वे भी निगण्ठके वैसे दुराख्यात (=ठीकसे न कहे गये), दुष्प्रवेदित (=ठीकसे न साक्षात्कार किये गये), अ-नैर्याणिक (=पार न लगाने-वाले), अन्-उपशम-संवर्तनिक (=न-शान्तिगामी), अ-सम्यक्-संबुद्ध-प्रवेदित (=किसी बुद्ध द्वारा न साक्षात् किया गया), प्रतिष्ठा(=नींव)-रहित=भिन्न-स्तूप, आश्रय-रहित धर्ममें अन्यमनस्क हो खिन्न और विरक्त हो रहे थे।

तब, **चुन्द** समणुद्देस पावामें वर्षावास कर जहाँ **सामगाम**[1] था और जहाँ आयुष्मान् **आनन्द** थे वहाँ गये। ० बैठ गये। ० बोले—"भन्ते! निगण्ठ नाथपुत्तकी अभी हालमें पावामें मृत्यु हुई है। उनके मरनेपर निगण्ठोंमें फूट०।"

ऐसा कहनेपर आयुष्मान् आनन्द बोले—"आवुस चुन्द! यह कथा भेंट रूप है। आओ आवुस चुन्द! जहाँ भगवान् हैं वहाँ चलें। चलकर यह बात भगवान्से कहें।"

---

[1] **मिलाओ सामगाम-सुत्त १०४ (मज्झिम-निकाय, पृष्ठ ४४१)।**

"बहुत अच्छा" कह चुन्दने० उत्तर दिया ।

तब आयुष्मान् आनन्द और चुन्द ० श्रमणोद्देश जहाँ भगवान् थे वहाँ गये। ० एक ओर बैठे आयुष्मान् आनन्द बोले—"भन्ते ! चुन्द ० ऐसा कहता है—'निगण्ठ ० पावामें ०' ।"

२—विवाद के लक्षण

१—अयोग्य गुरु—"चुन्द ! जहाँ शास्ता (=गुरु) सम्यक् सम्बुद्ध नहीं होता, धर्म दुराख्यात होता है ० और उस धर्ममें शिष्य (=श्रावक) धर्मानुसार मार्गारूढ़ होकर नहीं विहार करते, न सामीचि (=ठीक मार्ग) पर आरूढ़ होते, और न धर्मानुसार चलनेवाले होते हैं। वहाँ शास्ताकी भी निन्दा होती है, उस धर्मसे ० उस धर्मको छोळकर चलते हो,' धर्मकी भी निन्दा होती है। इस प्रकार शिष्य प्रशंसनीय हैं, जो ऐसे श्रावकको ऐसा कहें—'आओ, आयुष्मान् (अपने) गुरुके उपदेश=प्रज्ञप्तिके अनुसार धर्मपर आरूढ़ हो।' तो जो उसे कहता है, जिसे कहता है और जो कहनेपर वैसा कहता है, वह सभी बहुत पाप करतेहैं। सो किस हेतु ? चुन्द ! दुराख्यात धर्म०में ऐसा ही होता है।

२—अयोग्य धर्म—"चुन्द ! शास्ता असम्यक् सम्बुद्ध धर्म दुराख्यात ०, और यदि श्रावक उस धर्ममें धर्मानुसार मार्गारूढ़० होकर विहार करता हो, तो उसे ऐसा कहना चाहिये—'आवुस ! तुम्हें अलाभ है, दुर्लभ है। शास्ता असम्यक् सम्बुद्ध हैं, धर्म दुराख्यात० है, और तुम वैसे धर्ममें मार्ग रूढ़० हो।'

"चुन्द ! ऐसी हालतमें शास्ता भी निन्द्य, धर्म भी निन्द्य और श्रावक भी वैसा ही निन्द्य है। चुन्द ! जो इस प्रकारके श्रावकको ऐसा कहे—'आप ज्ञानसम्पन्न और ज्ञानानुकूल आचरण करनेवाले हैं'—तो जो प्रशंसा करता है, जिसकी प्रशंसा करता है, और जो प्रशंसित होकर अधिकाधिक उसी ओर उत्साहित होता है; वह सभी बहुत पाप करते हैं। सो किस हेतु ? चुन्द ! दुराख्यात धर्म-विनय०में ऐसा ही होता है।

३—योग्य गुरु और धर्म

१—अधन्य शिष्य—"चुन्द ! जहाँ शास्ता सम्यक् सम्बुद्ध हो, धर्म स्वाख्यात (=अच्छी तरह कहा गया), सुप्रवेदित=नैर्याणिक (=मुक्तिकी ओर ले जानेवाला), शान्ति देनेवाला, तथा सम्यक्-सम्बुद्ध-प्रवेदित हो, और उस धर्ममें श्रावक धर्मानुसार मार्गारूढ़ नहीं हो, तो उसे ऐसा कहना चाहिये—'आवुस ! तुम्हें बळा अलाभ है, बळा दुर्लभ है, तुम्हारे शास्ता सम्यक् सम्बुद्ध हैं, धर्म स्वाख्यात ० है और तुम उस धर्ममें धर्मानुसार मार्गारूढ ० नहीं हो।' चुन्द ! ऐसी अवस्थामें शास्ता भी प्रशंसनीय है, धर्म भी प्रशंसनीय है और श्रावक ही उस प्रकार निन्द्य है। चुन्द ! जो उस प्रकारके श्रावकको ऐसा कहे—आप वैसा ही करें, जैसा आपके शास्ता ०—तो जो कहता है ० सभी बहुत पुण्य करते हैं। सो किस हेतु ? चुन्द ! स्वाख्यात ० धर्ममें ऐसा ही होता है।

२—धन्य शिष्य—"चुन्द ! शास्ता सम्यक् सम्बुद्ध हो, धर्म स्वाख्यात ० हो, और श्रावक उस धर्ममें धर्मानुसार मार्गारूढ ० हो। उसे ऐसा कहना चाहिये—'आवुस ! तुम्हें लाभ है, तुम्हारा लाभ बळा सुन्दर है, (जो) तुम्हारे शास्ता सम्यक् सम्बुद्ध हैं, धर्म स्वाख्यात ० है, और तुम भी उस धर्ममें धर्मानुसार मार्गारूढ ० हो।' चुन्द ! ऐसी अवस्थामें शास्ता भी प्रशंसनीय है, धर्म भी प्रशंसनीय है, और श्रावक भी उसी तरह प्रशंसनीय है। चुन्द ! जो इस प्रकारके श्रावकको ऐसा कहे—'आप ज्ञानप्रतिपन्न हैं=ज्ञानानुकूल आचरण करते हैं'—तो जो प्रशंसा करता है ० वह सभी बहुत पुण्य करते हैं। सो किस हेतु ? चुन्द ! स्वाख्यात धर्मविनय०में ऐसा ही होता है।

३—गुरुकी शोचनीय मृत्यु—"चुन्द ! जहाँ अर्हत् सम्यक् सम्बुद्ध शास्ता लोकमें उत्पन्न हुए हों, धर्म भी स्वाख्यात ०, (किन्तु) श्रावकोंने सद्धर्मको नहीं समझा, उनके लिये शुद्ध, पूर्ण ब्रह्मचर्य ठीकसे आविष्कृत सरल, सुज्ञेय, युक्तिसंगत नहीं किया गया; देव-मनुष्योंमें अच्छी तरह प्रकाशित नहीं हुआ; और

इसी बीच उनके शास्ता अन्तर्धान हो गये। चुन्द ! इस प्रकार शास्ताकी मृत्यु श्रावकोंके लिये शोचनीय होती है। सो क्यों ? हम लोगोंके अर्हत् सम्यक् सम्बुद्ध शास्ता लोकमें उत्पन्न हुए धर्म भी स्वाख्यात ०, किन्तु हम लोगोंने इस सद्धर्मका अर्थ नहीं समझा, और हमारे लिये ब्रह्मचर्य भी आविष्कृत ० नहीं ०। जब ऐसे शास्ताका अन्तर्धान होता है, जब ऐसे शास्ताकी मृत्यु होती है, तो शोच-नीय होती है।

४––गुरुकी अशोचनीय मृत्यु––"चुन्द ! लोकमें अर्हत् ० शास्ता, धर्म स्वाख्यात ० और श्रावकोंको सद्धर्म समझाया गया होता है; उनके लिये ब्रह्मचर्य ० आविष्कृत होता है। उस समय उनका शास्ता अन्तर्धान हो जाता है। चुन्द ! इस प्रकारके शास्ताकी मृत्यु शोचनीय नहीं होती। सो किस हेतु ? 'हम लोगोंके अर्हत् ० शास्ता लोकमें उत्पन्न हुए, धर्म स्वाख्यात ० और हम लोग भी ० अर्थ समझे। ० हम लोगोंके शास्ताका अन्तर्धान हो गया'। चुन्द ! शोचनीय नहीं है।

५––अपूर्णसंन्यास––"चुन्द ! ब्रह्मचर्य इन अंगोंसे युक्त होता है, किन्तु शास्ता स्थविर, वृद्ध, चिरप्रव्रजित, अनुभवी, वयःप्राप्त नहीं होते, तो इस प्रकार वह ब्रह्मचर्य इस अङ्गसे अ-पूर्ण होता है। चुन्द ! जब ब्रह्मचर्य इन अङ्गोंसे युक्त होता है, और शास्ता स्थविर ० होते हैं, तब वह ब्रह्मचर्य उस अङ्गसे भी पूरा होता है।

"चुन्द ! ब्रह्मचर्य उन अङ्गोंसे भी युक्त होता है, शास्ता भी स्थविर ० होते हैं, किन्तु उनके रक्तज्ञ (=धर्मानुरागी) स्थविर भिक्षु-श्रावक (=भिक्षु शिष्य) व्यक्त, विनीत, विशारद, योगक्षेम-प्राप्त (=मुक्त) सद्धर्म कथनमें समर्थ, दूसरे पक्षके किये गये आक्षेप (=वाद)को धर्मानुकूल अच्छी तरह समझाकर युक्तिसहित धर्म-देशना करनेमें समर्थ नहीं होते; तो वह भी ब्रह्मचर्य उस अङ्गसे अपूर्ण होता है। चुन्द ! जब इन अङ्गोंसे ब्रह्मचर्य पूर्ण होता है, शास्ता भी स्थविर ०, और उनके ० स्थविर भिक्षु-श्रावक भी व्यक्त ० इस प्रकारका ब्रह्मचर्य उस अङ्गसे भी पूर्ण होता है।

"चुन्द ! इन अङ्गोंसे युक्त ब्रह्मचर्य हो, शास्ता स्थविर ०, ० भिक्षु-श्रावक व्यक्त ,० किन्तु वहाँ मध्यम (वयस्क) भिक्षु-श्रावक व्यक्त नहीं ० मध्यम भिक्षु श्रावक व्यक्त ० नये भिक्षु-श्रावक व्यक्त नहीं ० नये भिक्षु-श्रावक व्यक्त ०। ० स्थविर ०, ० मध्यम ०, ० नई भिक्षुणी व्यक्त नहीं ०।

"० उनके गृहस्थ श्वेतवस्त्रधारी ब्रह्मचारी उपासक-श्रावक (=गृहस्थ शिष्य) नहीं ०। ० कामभोगी उपासक श्रावक, व्यक्त ० नहीं ०, कामभोगी हैं; ० ब्रह्मचारिणी उपासिका व्यक्त नहीं, ०। ब्रह्मचारिणी हैं; कामभोगिनी उपासिका ० नहीं ०।

"० ब्रह्मचर्य०देव और मनुष्योंमें सुप्रकाशित, समृद्ध, उन्नत, विस्तारित, प्रसिद्ध, और विशाल (=पृथुभूत) नहीं होता ०। ० ब्रह्मचर्य ० विशाल होता है। इस प्रकार वह ब्रह्मचर्य उस अङ्गसे अपूर्ण होता है, लाभ और यश नहीं पाता।

६––पूर्ण संन्यास––"चुन्द ! जब ब्रह्मचर्य इन अङ्गोंसे युक्त होता है––शास्ता स्थविर ० होते हैं। स्थविर भिक्षु-श्रावक व्यक्त ०, मध्यम भिक्षु-श्रावक ०,नये भिक्षु-श्रावक व्यक्त ०, स्थविर ०, मध्यम ० नई भिक्षुणी-श्राविका व्यक्त ०, ब्रह्मचारी उपासक गृहस्थ ०, कामभोगी उपासक ०, ० ब्रह्मचारिणी उपासिका ०––तो ब्रह्मचर्य समृद्ध, उन्नत ० होता है। इस प्रकार उस अङ्गसे परिपूर्ण ब्रह्मचर्य, लाभ और यशको पाता है।

"चुन्द ! इस समयमें लोकमें अर्हत् सम्यक् सम्बुद्ध शास्ता उत्पन्न हुआ हूँ, धर्म स्वाख्यात ०, और मेरे श्रावक सद्धर्मके अर्थको समझे, हैं उनका ब्रह्मचर्य ० बिलकुल पूर्ण है।

"चुन्द ! मैं शास्ता ० स्थविर ०। मेरे स्थविर भिक्षु-श्रावक व्यक्त, विनीत, विशारद ०; मध्यम भिक्षु-श्रावक भी व्यक्त ०; नये भिक्षु-श्रावक भी व्यक्त ० हैं। चुन्द ! स्थविर भिक्षुणी-श्राविका, मध्यम भिक्षुणी-श्राविका और नई भिक्षुणी-श्राविका भी व्यक्त ० चुन्द ! मेरे उपासक-श्रावक ० ब्रह्मचारी, कामभोगी हैं, उपासिका श्राविका ब्रह्मचारिणी कामभोगिनी ०।

"चुन्द ! मेरा यह ब्रह्मचर्य समृद्ध उन्नत, विस्तारित, प्रसिद्ध, विशाल और देव मनुष्योंमें सुप्रकाशित है। चुन्द ! आज जितने शास्ता लोकमें उत्पन्न हुए हैं उनमें मैं किसी एकको भी नहीं देखता हूँ, जो मेरे जैसा लाभ और यश पानेवाले हों। चुन्द ! आज तक लोकमें जितने संघ या गण उत्पन्न हुए हैं, उनमें एक संघको भी नहीं देखता हूँ जिसने मेरे भिक्षुसंघके समान लाभ और यश पाया हो। चुन्द ! जिसके बारेमें अच्छी तरह कहनेवाले कहते हैं कि (इस संघका) ब्रह्मचर्य सब तरहसे सम्पन्न, सब तरहसे परिपूर्ण, अ-न्यून अन्-अधिक, सु-आख्यात=सु-प्रकाशित और परिपूर्ण है। अच्छी तरह कहनेवाले यही कहते हैं।

"चुन्द ! उद्दक रामपुत्र कहता था—'देखते हुए नहीं देखता'। क्या देखते हुए नहीं देखता ? अच्छी तरह तेज किये छुरेके फलको देखता है, धारको नहीं। चुन्द ! इसीको कहते हैं—देखते हुए भी ०। चुन्द ! जो कि उद्दक राम-पुत्र हीन, ग्राम्य, मूर्खोंके योग्य, अनार्य, अनर्थक कहता था वह छुरेका ही ख्याल करके। चुन्द ! जिसे कि अच्छी तरह कहनेवाले कहते हैं—देखते हुए भी नहीं देखता।

"० क्या देखते हुए नहीं देखता ? इस प्रकारके सब तरहसे सम्पन्न ० ब्रह्मचर्यको वैसा नहीं देखता है; इस प्रकार इसे नहीं देखता। 'यहाँसे इसे निकाल दें, तो वह अधिक शुद्ध होगा'—इस प्रकार इसे नहीं देखता, 'यहाँ इसे मिला दें, तो वह अधिक शुद्ध होगा'—इस प्रकार इसे नहीं देखता। इसे कहते हैं—'देखते हुए नहीं देखता'। चुन्द ! जिसके बारेमें अच्छी तरह कहनेवाले ०।

४—बुद्धके उपदिष्ट धर्म

"अतः चुन्द ! जिस धर्मको मैंने बोधकर तुम्हें उपदेश किया है, उसे सभी मिल जुलकर ठीक समझें बूझें, विवाद न करें। जिसमें कि यह ब्रह्मचर्य अच्छा और चिरस्थायी होगा; जो कि लोगोंके हित, सुखके लिये, संसारपर अनुकम्पाके लिये, देव मनुष्योंके अर्थके लिये, हितके लिये, सुखके लिये होगा।

"चुन्द ! मैंने किन धर्मोंको बोधकर तुम्हें उपदेश किया है, जिन्हें कि सभी मिलजुलकर समझें बूझें, विवाद न करें ० ? (वे ये हैं[1]) जैसे कि—चार **स्मृतिप्रस्थान**, चार **सम्यक् प्रधान**, चार **ऋद्धिपाद**, पाँच **इन्द्रिय**, पाँच **बल**, सात **बोध्यङ्ग** और **आर्य अष्टाङ्गिक** मार्ग। चुन्द ! मैंने इन्हीं धर्मोंको बोधकर उपदेश किया है, जिसे कि सभी लोग मिलजुलकर ०। चुन्द ! उन्हींके विषयमें विना विवाद किये, मिलजुलकर समझना बूझना चाहिये, ऐसा समझो।

५—बुद्ध-वचनकी कसौटी

"यदि कोई सब्रह्मचारी संघमें **धर्म** (=बुद्धवचन)-भाषण करता हो और वहाँ तुम्हारे मनमें ऐसा हो—'यह आयुष्मान् इस अर्थको ग़लत लगाते हैं, और वाक्य-योजना (=व्यंजन) ठीक नहीं लगाते'—तो न उसका अभिनन्दन करना चाहिये और न निन्दना चाहिये। बिना अभिनंदन किये विना निन्दे उससे यों कहना चाहिये—'आवुस ! इस अर्थके लिये ऐसा वाक्य या वैसा वाक्य है ? कौन इनमें अधिक ठीक जँचता है, इन वाक्योंका यह अर्थ या वह अर्थ, कौन अधिक ठीक जँचता है ?' यदि तौ भी वह ऐसा कहे—'आवुस ! इस अर्थमें यही वाक्य अधिक ठीक जँचते हैं, इन वाक्योंका यही अर्थ ठीक है (जैसा मैंने कहा)। तो उसे न लेना चाहिये, न हटाना चाहिये। बिना लिये या हटाये उस अर्थ और उन वाक्योंको ठीकसे लगानेके लिये स्वयं अच्छी तरह समझा देना चाहिये।

"चुन्द ! यदि संघमें और भी कोई सब्रह्मचारी (=गुरुभाई) **धर्म** भाषण करता हो, और वहाँ तुम्हारे मनमें हो—'ये आयुष्मान् 'अर्थ' गलत समझते हैं वाक्योंको ठीक जोळते हैं' तो न तो उसका

---

[1] **यही सैंतीस बोधि-पाक्षिक धर्म कहे जाते हैं।**

अभिनन्दन करना चाहिये और न उसे निन्दना चाहिये। ० बल्कि उससे यों कहना चाहिये—'आवुस ! ० कौन ठीक है ?' यदि तो भी वह वैसा कहे ० तो ० उसे अच्छी तरह समझाना चाहिये।

"चुन्द ! यदि ० सब्रह्मचारी **धर्म** भाषण करता हो, और वहाँ तुम्हारे मनमें हो—'० अर्थ ठीक समझते हैं, किन्तु, वाक्योंको ठीक नहीं जोळते'। ० तो उसे अच्छी तरह समझा देना चाहिये।

"यदि संघमें ० धर्म भाषण करता हो। और तुम्हारे मनमें ऐसा हो—'ये आयुष्मान् अर्थको भी ठीक समझते हैं, वाक्योंको भी ठीक जोळते हैं'—तो उसे साधुकार देना चाहिये, अभिनन्दन, अनुमोदन करना चाहिये। ० उसे ऐसा कहना चाहिये—'आवुस ! हम लोगोंको लाभ है, हम लोगोंको सुन्दर लाभ है, कि आप आयुष्मान् जैसे अर्थज्ञ वाक्यज्ञ ब्रह्मचारीके दर्शनका अवसर मिलता है।

६—बुद्ध-धर्म चित्तकी शुद्धिके लिये

"चुन्द ! मैं दृष्टधार्मिक (=इसी जन्ममें) आस्रवों (=चित्तमलों)के संवर (=संयम)के ही लिये धर्मोपदेश नहीं करता, और न चुन्द ! केवल परजन्मके आस्रवोंहीके नाशके लिये। चुन्द ! मैं दृष्टधार्मिक और पारलौकिक दोनों ही आस्रवोंके संवर और नाशके लिये धर्मोपदेश करता हूँ। इसलिये, चुन्द ! मैंने जो तुम्हें चीवर-संबंधी अनुज्ञा दी है, वह सर्दी रोकनेके लिये, गर्मी रोकनेके लिये, मक्खी-मच्छर-हवा-धूप-साँप-बिच्छूके आघात (=स्पर्श)को रोकनेके लिये, तथा लाज शर्म ढाँकनेके लिये पर्याप्त है।

"जो मैंने पिण्डपात (=भिक्षा)-संबंधी अनुज्ञा दी है सो इस शरीरको कायम रखनेके लिये, निर्वाह करनेके लिये, (क्षुधाकी) पीडा शांत करनेके लिये, और ब्रह्मचर्यकी सहायताके लिये पर्याप्त है—'इस तरह पुरानी वेदनाओंका (इस समय) सामना करता हूँ, और नई वेदनाओंको उत्पन्न नहीं करूँगा, मेरी जीवन-यात्रा चलेगी, निर्दोष और सुखमय विहार होगा'।

"जो मैंने शयनासन (=घर बिस्तरा) संबंधी अनुज्ञा दी है, सो सर्दी रोकनेके लिये ० साँप बिच्छूके आघातको रोकनेके लिये और ऋतुओंके प्रकोपसे बचने तथा ध्यानमें रमण करनेके लिये पर्याप्त है।

"जो मैंने रोगीके पथ्य-औषधकी वस्तुओं (=ग्लान-प्रत्यय-भैषज्य-परिष्कारों)के संबंधमें अनुज्ञा दी है, सो होनेवाले रोगोंके रोकने और अच्छी तरह स्वस्थ रहनेके लिये पर्याप्त हैं।

७—अनुचित और उचित आराम पसन्दी

१—अनुचित—"चुन्द ! ऐसा हो सकता है कि दूसरे मतवाले परिव्राजक ऐसा कहें—'**शाक्यपुत्रीय** श्रमण आरामपसंद हो विहार करते हैं। ऐसा कहनेवाले० को यह कहना चाहिये—'आवुस ! वह आरामपसंदी क्या है ? आरामपसन्दी नाना प्रकारकी होती है।' चुन्द ! यह चार प्रकारकी आरामपसंदी निकृष्ट=ग्राम्य, मूढ-सेवित, अनर्थ-युक्त है, जो न निर्वेदके लिये, न विरागके लिये, न निरोधके लिये, न शान्तिके लिये, न **अभिज्ञा**के लिये, न सम्बोधिके लिये, न निर्वाणके लिये है। कौन सी चार ? (१) चुन्द ! कोई कोई मूर्ख जीवोंका बध करके आनन्दित होता है, प्रसन्न होता है। यह पहली आरामपसन्दी है। (२) चुन्द ! कोई चोरी करके ०। यह दूसरी ०। (३) चुन्द ! कोई झूठ बोलकर०। यह तीसरी०। (४) चुन्द ! कोई पाँच भोगोंसे सेवित होकर०। यह चौथी०। यह चार सुखोपभोग आरामपसंदी निकृष्ट० हैं। हो सकता है, चुन्द ! दूसरे मतवाले साधु ऐसा कहें—'इन चार सुखोपभोग, आरामपसन्दीसे युक्त हो शाक्यपुत्रीय श्रमण विहार करते हैं'। उन्हें कहना चाहिये—'ऐसी बात नहीं है। उनके विषयमें ऐसा मत कहो, उनपर झूठा दोषारोपण न करो।'

२—उचित—"चुन्द ! चार आरामपसन्दी पूर्णतया निर्वेद=विरागके लिये, निरोधके लिये, शान्तिके लिये, अभिज्ञाके लिये, सम्बोधिके लिये और निर्वाणके लिये हैं। कौन सी चार ? (१) चुन्द ! भिक्षु कामोंको छोळ, अकुशल धर्मोंको छोळ, वितर्क-विचार-युक्त विवेकसे उत्पन्न प्रीति-सुखवाले प्रथम

ध्यानको प्राप्त कर विहार करता है। यह पहली ० है। (२) चुन्द ! भिक्षु ०[1] समाधिसे उत्पन्न प्रीतिसुख-वाले द्वितीय ध्यानको प्राप्तकर विहार करता है। यह दूसरी ० है। (३) चुन्द ! ० तृतीय ध्यानको प्राप्तकर विहार करता है। यह तीसरी ०। (४) चुन्द ! ० चतुर्थ ध्यानको प्राप्त कर विहार करता है। यह चौथी०। चुन्द ! यही चार आरामपसन्दी एकान्त निर्वेदके लिये० हैं। चुन्द ! हो सकता है, दूसरे मतवाले परिब्राजक कहें—शाक्यपुत्रीय श्रमण ० आरामपसंदी०। उन्हें 'हाँ' कहना चाहिये—वह तुम्हारे लिये ठीक कहते हैं; मिथ्या झूठा दोष नहीं लगाते।

३—उचितका फल—"हो सकता है चुन्द ! दूसरे मंतके परिब्राजक पूछें—'आवुस ! इन चार आरामपसंदियोंसे युक्त हो विहार करनेपर क्या फल=आनृशंस होता है ? तो चुन्द ! ० उन्हें ऐसे उत्तर देना चाहिये—'आवुस ! इन ०के चार फल, चार आनृशंस हो सकते हैं। कौनसे चार ? (१) ० भिक्षु तीन संयोजनों (=बन्धनों) के नाशसे अविनिपातधर्मा, नियत, सम्बोधिपरायण स्रोत-आपन्न होता है। यह पहला फल, पहला आनृशंस है। (२) ० ! फिर भिक्षु तीन ० संयोजनोंके नाश, राग, द्वेष, मोहके दुर्बल हो जानेसे सकृदागामी होता है; वह एक ही बार इस लोकमें आकर दुःखका अन्त करता है। (३) ० फिर, भिक्षु पाँच अवरभागीय संयोजनों (=इसी संसारमें फँसाये रखनेवाले बन्धनों) के नष्ट होनेसे औपपातिक (देवता) हो वहाँ निर्वाणको पाता है, उस लोकसे नहीं लौटता। (४) ० और फिर भिक्षु ० आस्रवोंके क्षय से आस्रव-रहित चेतोविमुक्ति, प्रज्ञाविमुक्तिको यहीं स्वयं जान, साक्षात् कर विहार करता है। यह चौथा फल=आनृशंस है। आवुस ! इन चार आरामपसंदियोंमें युक्त हो विहार करनेवालोंके ये ही चार आनृशंस होने चाहियें।

८—भिक्षु धर्मपर आरूढ़

"हो सकता है, चुन्द ! दूसरे मतके परिब्राजक ऐसा कहें—'**शाक्यपुत्रीय** श्रमण अस्थितधर्मा (=जिन्हें धर्ममें स्थिरता नहीं है) होकर विहार करते हैं।' तो चुन्द ! ऐसे कहनेवाले ० को ऐसा कहना चाहिये—'आवुसो ! उन जाननहार, देखनहार, अर्हत् सम्यक् सम्बुद्ध भगवान्ने शिष्यों (=श्रावकों) को जो धर्मदेशना दी है, वह यावज्जीवन अनुल्लंघनीय है। आवुस ! **जैसे** नीचेतक गळा, अच्छी तरह गळा इन्द्रकील (=किलेके द्वारपर गळा कील) या लोहेका कील, अचल और दृढ़ होता है, उसी तरह उन ० भगवान्ने श्रावकोंको जो धर्मदेशना दी है, वह यावज्जीवन अनुलंघनीय है। आवुसो ! जो भिक्षु समाप्त-ब्रह्मचर्य, कृतकृत्य, भारमुक्त, परमार्थ-प्राप्त (=अनुप्राप्त-सदर्थ) सांसारिक बंधनोंसे मुक्त, सम्यक् ज्ञानसे विमुक्त क्षीणास्रव, अर्हत् हैं, वह नौ बातोंके अयोग्य हैं। आवुसो ! (१) अनास्रव भिक्षु जान बूझकर जीव मारनेके अयोग्य है। (२) ० चोरी ०। (३) मैथुन सेवन ०। (४) जान बूझकर झूठ बोलने ०। (५) पहिले गृहस्थ के वक्त के सांसारिक भोगोंके जोळने बटोरने ०। (६) राग के रास्ते जाने में ०। (७) ० द्वेषके रास्ते जाने में ०। (८) ० मोहके रास्ते जानेमें ०। (९) क्षीणास्रव भिक्षु भयके रास्ते जानेमें अयोग्य है। आवुसो ! जो ० अर्हत् है ० वह इन नौ बातोंके अयोग्य हैं।

९—बुद्ध कालवादी यथार्थवादी

१—कालवादी—"हो सकता है, चुन्द ! दूसरे मतके परिब्राजक कहें—'अतीत कालको लेकर श्रमण **गौतम** अधिक ज्ञान=दर्शन बतलाता है, अनागत कालको लेकर अधिक ज्ञान=दर्शन नहीं बतलाता—सो यह क्या है, सो यह कैसे'? वे दूसरे मतके परिब्राजक बाल=अजानकी भाँति दूसरे प्रकारके ज्ञान=दर्शनसे दूसरे प्रकारके ज्ञानदर्शनका ज्ञापन करना मानते हैं। चुन्द ! अतीत कालके विषयमें तथागतको स्मृतिके अनुसार ज्ञान होता है; वह जितना चाहते हैं, उतना स्मरण करते हैं।

---

[1] **देखो पृष्ठ २९-३२।**

चुन्द ! अनागत कालके विषयमें तथागतको बोधिसे उत्पन्न ज्ञान उत्पन्न होता है—'यह मेरा अन्तिम जन्म है, फिर आवागमन नहीं है।' चुन्द ! यदि अतीत की बात अतथ्य=अभूत और अनर्थक हो; तो तथागत उसे नहीं कहते। चुन्द ! अतीतकी बात तथ्य=भूत किन्तु अनर्थक हो; तो उसे भी तथागत नहीं कहते। वहाँ तथागत उस प्रश्नके उत्तर देनेमें .काल जानते हैं। ० अनागतकी ०। वर्तमानकी ० । चुन्द ! इस प्रकार तथागत अतीत, अनागत और प्रत्युत्पन्न धर्मोंके विषयमें कालवादी (=कालोचित वक्ता), भूतवादी (सत्यवक्ता), अर्थवादी, धर्मवादी विनयवादी हैं। इसीलिये वे तथागत कहलाते हैं।

२—यथार्थवादी—"चुन्द ! देवताओं, मार, ब्रह्मा सहित सारे लोक, देव-मनुष्य-श्रमण-ब्राह्मण-सहित सारी जनताने जो कुछ देखा, सुना, पाया, जाना, खोजा, मनसे विचारा है, सभी तथागतको ज्ञात हैं। इसीलिये वे तथागत कहे जाते हैं। चुन्द ! जिस रातको तथागत अनुपम सम्यक् सम्बोधिको प्राप्त करते हैं, और जिस रातको उपाधिरहित परिनिर्वाण प्राप्त करते हैं, इन दो समयोंके बीचमें जो कहते हैं, और निर्देश करते हैं, वह सब वैसा ही होता है, अन्यथा नहीं। इसी लिये ०। चुन्द ! तथागत यथावादी तथाकारी और यथाकारी, तथावादी होते हैं। इस प्रकार यथावादी तथाकारी यथाकारी तथावादी। इसलिये ०। चुन्द ! इस ० सारे लोक ० में तथागत विजेता (=अभिभू), =अ-पराजित (=अनभिभूत), एक बात कहनेवाले, द्रष्टा और वशवर्ती होते हैं। इसलिये ०।

१०—अव्याकृत और व्याकृत बातें

१—अव्याकृत—"हो सकता है, चुन्द ! दूसरे मतके परिव्राजक ऐसा पूछें—'आवुस ! क्या तथागत मरनेके बाद रहते हैं' यही सच है और बाकी सब झूठ ? ०' (उन्हें) ऐसा कहना चाहिये—'आवुसो ! भगवान्‌ने ऐसा नहीं कहा है—'तथागत मरनेके बाद रहते हैं, यही सच, और बाकी सब झूठ।' यदि दूसरे ० ऐसा पूछें—० 'क्या तथागत मरनेके बाद नहीं रहते, यही सच ० ?' ० उन्हें ऐसा कहना चाहिये—'आवुसो ! भगवान्‌ने ऐसा भी नहीं कहा है—तथागत मरनेके बाद नहीं रहते, यही सच ०'। यदि ० पूछें—० क्या तथागत मरनेके बाद रहते भी हैं और नहीं भी रहते हैं, यही सच०?' ०भगवान्‌ने ऐसा भी नहीं कहा है। ०यदि पूछें—०'क्या०न रहते हैं और न नहीं रहते हैं०?'०भगवान्‌ने ऐसा भी नहीं कहा है। ० यदि पूछें—'आवुस ! श्रमण गौतमने इस विषयमें क्यों कुछ नहीं कहा ?' ०तो उन्हें ऐसा कहना चाहिये—'आवुसो ! न तो यह अर्थोपयोगी है, न धर्मोपयोगी, न ब्रह्मचर्योपयोगी न निर्वेदके लिये है, न विरागके लिये, न निरोधके लिये, न शांति (=उपशम)के लिये है, न ज्ञानके लिये, न सम्बोधिके लिये है, न निर्वाणके लिये। इसी लिये भगवान्‌ने उसे नहीं कहा।'

२—व्याकृत—"०यदि ऐसा पूछें—'श्रमण गौतमने क्या कहा है ?'०ऐसा उत्तर देना चाहिये—भगवान्‌ने कहा है—'यह दुःख है, यह दुःख-समुदय है, यह दुःख-निरोध है, यह दुःखनिरोधगामिनी प्रतिपद् है।'०यदि ऐसा पूछें—'आवुस ! श्रमण गौतमने इसे किस लिये बताया है ?'०ऐसा उत्तर देना चाहिये—'आवुसो ! यही अर्थोपयोगी, धर्मोपयोगी ० है। इसीलिये भगवान्‌ने इसे बताया है।'

११—पूर्वान्त और अपरान्त दर्शन

"चुन्द ! जो पूर्वान्त संबंधी दृष्टियाँ (=मत) हैं, मैंने उन्हें भी ठीकसे कह दिया, बेठीकके विषयमें मैं और क्या कहूँगा ? चुन्द ! जो अपरान्त-संबंधी दृष्टियाँ हैं, मैंने उन्हें भी ० कह दिया ०।

१—पूर्वान्त दर्शन—"चुन्द ! वे पूर्वान्त संबंधी दृष्टियाँ कौन हैं जिन्हें मैंने ० कह दिया ० ? चुन्द ! कितने श्रमण ब्राह्मण ऐसा कहनेवाले और इस सिद्धान्तके माननेवाले हैं—'आत्मा और लोक शाश्वत (=नित्य) हैं', यही सच है और दूसरा झूठ।—'आत्मा और लोक अशाश्वत हैं' ०। 'आत्मा और लोक शाश्वत और अशाश्वत दोनों है' ०। 'आत्मा और लोक न शाश्वत और न अशाश्वत हैं ०'। 'आत्मा और लोक स्वयंकृत ०। 'आत्मा और लोक परकृत ०। 'आत्मा और लोक अधीत्य-(=अभावसे)

समुत्पन्न हैं', यही सच और दूसरा झूठ। सुख-दुःख शाश्वत है ०। ० अशाश्वत है ०। ० शाश्वत-अशाश्वत दोनों है ०। ० न शाश्वत न अशाश्वत ३ ०। ० स्वयंकृत ०। ० परकृत ०। ० स्वयंकृत और परकृत ० सुख-दुःख न स्वयंकृत न परकृत बल्कि अधीत्य-समुत्पन्न हैं, यही सच और दूसरा झूठ।'

"चुन्द! जो श्रमण ब्राह्मण ऐसा कहते और समझते हैं—'आत्मा और लोक शाश्वत हैं'—यही सच और दूसरा झूठ'; उनके पास जाकर मैं ऐसा पूछता हूँ—'आवुस! ऐसा जो कहते हो—'आत्मा और लोक शाश्वत हैं?' सो कहा जाता है; किन्तु जो कि वह ऐसा कहते हैं—'यही सच है और दूसरा झूठ' उससे मैं सहमत नहीं। सो किस हेतु? चुन्द! क्योंकि दूसरा समझनेवाले भी प्राणी हैं।

"चुन्द! इस प्रज्ञप्ति (=व्याख्यान) में मैं किसी को अपने समान भी नहीं देखता, बढ़कर कहाँ-से? बल्कि प्रज्ञप्तिमें मैं ही बढ़-चढ़कर हूँ।

"तो चुन्द! जो श्रमण या ब्राह्मण ऐसा कहते और समझते हैं—'आत्मा और लोक शाश्वत है ०। अशाश्वत ०। ०। सुख-दुःख शाश्वत ०, यही सच और दूसरा झूठ—उनके पास जाकर मैं ऐसा कहता हूँ—आवुस! ऐसा जो कहते हो ० सो० है? किन्तु जो कि वह ऐसा कहते हैं—'यही सच और दूसरा झूठ', उससे मैं सहमत नहीं। सो किस हेतु? चुन्द! क्योंकि दूसरा समझनेवाले प्राणी भी हैं।

"चुन्द! इस प्रज्ञप्तिमें, मैं किसीको अपने समान भी नहीं देखता, बढ़कर कहाँसे! बल्कि प्रज्ञप्तिमें मैं ही बढ़-चढ़कर हूँ।

"चुन्द! जो पूर्वान्त-संबंधी दृष्टियाँ हैं, मैंने उन्हें भी जैसा कहना चाहिये था, कह दिया; और जैसा नहीं कहना चाहिये था, उसके विषय में मैं और क्या कहूँगा?

२—अपरान्त दर्शन—"चुन्द! अपरान्त-संबंधी दृष्टियाँ कौन हैं जिन्हें जैसा कहना चाहिये था मैंने कह दिया०; जैसा नहीं कहना चाहिये था, उसके विषयमें मैं और क्या कहूँगा? चुन्द!-कितने श्रमण ब्राह्मण ऐसे वादके ऐसे मतके माननेवाले हैं—'आत्मा रूपवान् है, मरनेके बाद अरोग (=परम सुखी) रहता है'—०। आत्मा रूप-रहित है ०। आत्मा रूपवान् और रूपरहित है ०। ० न रूपवान् और न रूपरहित ०। ० संज्ञावाला है ०। ० संज्ञा-रहित ०। ० न संज्ञावान् और न संज्ञा-रहित ०। ० उच्छिन्न और नष्ट हो जाता है, मरनेके बाद नहीं रहता ०।

"चुन्द! ० उनके पास जाकर मैं ऐसा कहता हूँ—"आवुस! है ऐसा, जैसा कि कहते हो—आत्मा रूपवान् है ०। किन्तु जो कि वह ऐसा कहते हैं—'यही सच और दूसरा झूठ', उससे मैं सहमत नहीं। सो किस हेतु? चुन्द! क्योंकि दूसरा समझनेवाले प्राणी भी हैं। ० किसीको अपने समान नहीं देखता ०।

चुन्द! अपरान्त-संबंधी दृष्टियाँ ये ही हैं जिन्हें कि ० मैंने कह दिया ०।

१२—स्मृति प्रस्थान

"चुन्द! इन्हीं पूर्वान्त और अपरान्त संबंधी दृष्टियों[1] के दूर करनेके लिये, अतिक्रमण करनेके लिये, इस तरह मैंने चार स्मृतिप्रस्थानोंका उपदेश किया है। कौनसे चार?—(१) ०[1] कायामें कायानुपश्यी हो ०[2] विहरता है। चुन्द! इन पूर्वान्त और अपरान्त संबंधी दृष्टियोंके दूर करनेके लिये ही ० मैंने चार स्मृतिप्रस्थानोंका उपदेश किया है।"

उस समय आयुष्मान् उपवाण भगवान्‌के पीछे हो, भगवान्‌को पंखा झल रहे थे।

तब आयुष्मान् उपवाणने भगवान्‌से कहा—"आश्चर्य भन्ते! अद्भुत भन्ते! भन्ते! यह धर्मोप-देश (=धर्मपर्याय) पासादिक (=बळा सुन्दर) है।"

"तो उपवाण! तुम इस धर्मपर्यायको पासादिक ही करके धारण करो।"

भगवान्‌ने यह कहा। संतुष्ट हो आयुष्मान् उपवाणने भगवान्‌के भाषणका अभिनन्दन किया।

---

[1] **पूर्वान्त अपरान्त दर्शनोंके लिये देखो पृष्ठ ५–१४।**

[2] **देखो महासतिपट्ठान-सुत्त २२ (पृष्ठ १९०)।**

३०—लक्खण-सुत्त (३।७)

१—बत्तीस महापुरुष-लक्षण । २—किस कर्म विपाकसे कौन लक्षण ।

ऐसा मैंने सुना। एक समय भगवान् श्रावस्तीमें अनाथपिण्डिकके आराम जेतवनमें विहार करते थे।

वहाँ भगवान्ने भिक्षुओंको संबोधित किया—"भिक्षुओ!"

"भदन्त!" कह उन भिक्षुओंने भगवान्को उत्तर दिया।

१—बत्तीस महापुरुष-लक्षण

भगवान्ने यह कहा—"भिक्षुओ! महापुरुषोंके बत्तीस **महापुरुष-लक्षण** हैं, जिनसे युक्त महापुरुषोंकी दो ही गतियाँ होती हैं तीसरी नहीं।—(१) यदि वह घरमें रहता है तो धार्मिक, धर्म-राजा, चारों ओर विजय पानेवाला, शान्ति-स्थापक, सात रत्नोंसे युक्त चक्रवर्ती राजा होता है। उसके ये सात रत्न होते हैं—चक्र-रत्न, हस्ति-रत्न, अश्व-रत्न, मणि-रत्न, स्त्री-रत्न गृहपति-रत्न, और सातवाँ पुत्र-रत्न—एक हजारसे भी अधिक सूर-वीर, दूसरेकी सेनाओंका मर्दन करनेवाले उसके पुत्र होते हैं। वह सागरपर्यन्त इस पृथ्वीको दण्ड और शस्त्रके बिना ही धर्मसे जीत कर रहता है। (२) यदि वह घरसे बेघर होकर प्रव्रजित होता है, (तो) संसारके आवरणको हटा देनेवाला अर्हत् सम्यक् सम्बुद्ध होता है।

भिक्षुओ! वह महापुरुषोंके बत्तीस लक्षण[1] कौनसे हैं, जिनसे युक्त होनेसे०? यदि वह घरमें रहता है तो०। यदि वह घरसे बेघर हो प्रव्रजित होता है०। भिक्षुओ! (१) सुप्रतिष्ठित-पाद (=जिसका पैर जमीन पर बराबर बैठता हो) है, यह भी महापुरुष लक्षणोंमें एक है। (२) नीचे पैरके तलवेमें सर्वाकार-परिपूर्ण नाभि-नेमि (=पुट्ठी)-युक्त सहस्र अरोंवाला चक्र होता है। (३) आयत-पार्ष्णि (=चौळी घुट्ठीवाला) है। (४) ०दीर्घ-अंगुल०। (५) ०मृदु-तरुण-हस्त पाद०। (६)० जाल-हस्त-पाद (=अंगुलिया)०। झिल्लीसे जुळी (७) ०उस्संखपाद(=गुल्फ जिस पादमें ऊपर अवस्थित हैं)०। (८) ०एणी-जंघ (=मृग जैसा-पेंडुलीवाला)०। (९) ०(सीधे) खळे, बिना झुके दोनों घुटनोंको अपने हाथके तलवेसे छूता है (आजानुबाहु)०। (१०) कोषाच्छादित वस्ति-गुह्य (=पुरुष-इन्द्रिय)०। (११) सुवर्ण वर्ण० कांचन समान त्वचावाला०। (१२) सूक्ष्म-छवि (छवि=ऊपरी चमळा) है० जिससे काया पर मैल-धूल नहीं चिपटती०। (१३) एकैक लोम, एक एक रोम कूपमें एक एक रोम वाला०। (१४) ०ऊर्ध्वाग्र-लोम० उसके अंजन समान नीले तथा प्रदक्षिणा (=बायेंसे दाहिनी ओर)से कुंडलित लोमोंके सिरे ऊपरको उठे हैं०। (१५) ब्राह्म-ऋजु-गात्र (-लम्बे अकुटिल शरीरवाला)०। (१६) सप्त-उत्सद (=सातों अंगोंमें पूर्ण आकारवाला)०।

---

[1] मिलाओ ब्रह्मायु-सुत्त ९१ (मज्झिमनिकाय पृष्ठ ३७४-७५)।

(१७) सिंह-पूर्वार्द्ध-काय (=जिसका छाती आदि शरीरका ऊपरी भाग सिंहकी भाँति विशाल हो) ०। (१८) चितान्तरांस (=जिसका दोनों कंधोंका विचला भाग चितपूर्ण है) ०। (१९) न्यग्रोध-परिमंडल ० जितनी शरीरकी ऊँचाई, उतना व्यायाम (=चौळाई) (और) जितना व्यायाम उतनी ही शरीरकी ऊँचाई। (२०) समवर्त-स्कन्ध (=समान परिमाणके कंधेवाला) ०। (२१) रसग्ग-सग्गी (=सुन्दर शिराओंवाला)०। (२२) सिंह-हनु (=सिंह-समान पूर्ण ठोळीवाला)०।(२३) चव्वालीस-दन्त०। (२४) सम-दन्त०। (२५) अविवर-दन्त (=दाँतोंके बीच कोई छेद न होना) ०। (२६) सु-शुक्ल-दाढ (=खूब सफेद दाढ़वाला) ०। (२७) प्रभूत-जिह्व (=लम्बी जीभवाला) ०। (२८) ब्रह्मस्वर, करविंक (पक्षीसे) स्वरवाला०। (२९) अभिनील-नेत्र (=अलसीके पुष्प जैसी नीली आँखोंवाला)०। (३०) गो-पक्ष्म (गाय जैसी पलकवाला) ०। (३१) भौहोंके बीचमें श्वेत कोमल कपास सी ऊर्णा (=रोमराजी) है०। (३२) उष्णीषशीर्ष (=पगळी शिरवाला) ०हैं। भिक्षुओ! यह महापुरुष-लक्षणोंमें है।

२—किस कर्म-विपाकमें कौन लक्षण

"भिक्षुओ! इन बत्तीस महापुरुष-लक्षणोंको बाहरके ऋषि भी जानते हैं, किंतु यह नहीं जानते कि किस कर्मके करनेसे किस लक्षणका लाभ होता है।

१—कायिक सदाचार—(१) "भिक्षुओ! तथागत पूर्व-जन्म=पूर्व-भव, पूर्व-निवासमें मनुष्य हो, कायिकसदाचार,—दान, शीलाचरण, उपोसथ-व्रत, माता-पिता, श्रमण-ब्राह्मणकी सेवा, बळे लोगोंके सत्कार और दूसरे सुकर्मोंको स्थिर दृढ़ हो करनेवाले थे। उन पुण्य कर्मोंके संचय, विपुलतासे काया छोळ मरनेके बाद सुगति स्वर्गलोकमें जन्मते हैं। वहाँ अन्य देवोंसे दिव्य आयु, वर्ण, सुख, यश, प्रभुत्व, रूप, शब्द, गन्ध, रस, स्पर्श दस बातोंमें बढ़ जाते हैं। वे वहाँसे च्युत हो यहाँ आ इस महापुरुष-लक्षणको पा सुप्रतिष्ठितपाद होते हैं ०। उस लक्षणसे युक्त हो, यदि घरमें रहते हैं, तो ० चक्रवर्ती राजा होते हैं। राजा हो क्या पाते हैं? किसी भी मनुष्य शत्रुसे अजेय होना—राजा हो यही पाते हैं। यदि ० प्रव्रजित होते हैं, तो ० अर्हत् सम्यक् संबुद्ध होते हैं। बुद्ध हो क्या पाते हैं? आन्तरिक शत्रु=अमित्र—राग, द्वेष, मोह, और श्रमण, ब्राह्मण, देव, मार, ब्रह्मा या संसारमें किसी भी दूसरे विरोधी, वाह्य शत्रुसे अजेय रहते हैं।" बुद्ध हो भगवान्‌ने यह बात कही। वहाँ यह कहा गया है—

सत्य, धर्म, दम, संयम, शौच शील और उपोसथ-कर्म;
दान, अहिंसा, और अच्छे कामोंमें रत रहकर, दृढ़ हो उन्होंने आचरण किया ॥१॥
वह उस कर्मसे स्वर्ग गये, और क्रीड़ा, रति तथा सुखको अनुभव करते रहे।
फिर, वहाँसे च्युत हो यहाँ आ, उन्होंने सम-पादोंसे पृथ्वीको स्पर्श किया ॥२॥
सामुद्रिक वालोंने आकर कहा—सम्प्रतिष्ठित पादवालेकी पराजय कभी नहीं होती।
गृहस्थ हो या प्रव्रजित, यह लक्षण इस बातका द्योतक है ॥३॥
घरपर रहते वह विजयी शत्रुओं द्वारा अजेय रहता है।
उस कर्मके फलसे इस संसारमें वह किसी भी मनुष्यसे जेय नहीं होता ॥४॥
यदि वह विचक्षण निष्कामताकी ओर रुचिवाला हो प्रव्रज्या लेता है;
तो वह श्रेष्ठ नरोत्तम फिर आवागमनमें नहीं पळता, यही उसकी धर्मता है ॥५॥

२—प्रिय कारिता—(२) "भिक्षुओ! तथागत पूर्व-जन्म ० में मनुष्य होकर लोगोंके बळे प्रियकारी थे। उन्होंने उद्वेग, चंचलता और भंयको हटा, धार्मिक बातोंकी रक्षाका विधानकर विधिपूर्वक दान दिया। (अतः) वे ० सुगतिको प्राप्त हुये। (फिर) वहाँसे च्युत हो यहाँ आ पैरके तलवेमें चक्र—इस

महापुरुष-लक्षणको पाते हैं। वे इस लक्षणसे युक्त हो यदि घरमें रहते हैं ०। राजा होकर क्या पाते हैं? ब्राह्मण, गृहपति, नैगम (=नागरिक सभासद्), जानपद (=दीहाती सभासद्), कोषाध्यक्ष, मन्त्री, शरीररक्षक, द्वारपाल, सभासद्, राजा और अधीनस्थ कुमार—यह उनका बहुत बळा परिवार होता है। राजा होकर यह पाते हैं। यदि ० प्रव्रजित होते हैं, ० अर्हत् सम्यक् संबुद्ध होते हैं। बुद्ध होकर क्या पाते हैं? यह भिक्षु-भिक्षुणी, उपासक-उपासिका, देव-मनुष्य, असुर-नाग-गन्धर्व यह उनका बहुत बळा परिवार होता है। बुद्ध होकर यही पाते हैं।" भगवान्‌ने यह बात कही। वहाँ यह कहा गया है—

पहले, पूर्व जन्मोंमें मनुष्य हो बहुतोंके सुखदायक थे।
उद्वेग, त्रास और भयको दूर करनेवाले, रक्षा=आवरण=गुप्तिमें लगे रहे थे ॥६॥
सो उस कर्मसे देवलोकमें जा, उन्होंने सुख, क्रीडा रतिको अनुभव किया।
वहाँसे च्युत हो फिर यहाँ आ, दोनों पैरोंमें सहस्र अरोंवाले फैली पुट्ठीके चक्रको पाये ॥७॥
सौ पुण्य लक्षणोंवाले कुमारको देख, आये हुये ज्योतिषियोंने कहा—
यह शत्रुमर्दन (तथा) बळे परिवारवाले होंगे क्योंकि (इनके पैरमें) समन्तनेमि चक्र है ॥८॥
यदि ऐसा (पुरुष) प्रव्रजित नहीं हो तो चक्र चलाता है, पृथ्वीका शासन करता है।
क्षत्रिय उस महायशके अनुगामी सेवक बनते हैं ॥९॥
यदि वह विचक्षण निष्कामताकी ओर रुचिवाला हो प्रव्रजित हो जाता है।
तो देव, मनुष्य, असुर, प्राणी, राक्षस, गन्धर्व, नाग, पक्षी, चतुष्पाद।
उस देव-मनुष्योंसे पूजित अनुपम महायशस्वीकी सेवा करते हैं ॥१०॥

३—जीवहिंसाका त्याग—(३-५) "भिक्षुओ! तथागत पूर्व जन्म ० में मनुष्य होकर जीव-हिंसाको छोळ, जीव-हिंसासे विरत रहते थे—दण्ड और शस्त्र छोळ, कृपालु, लज्जालु, दयालु सभी जीवोंके हितेच्छु विहार करते थे। सो उस कर्मके करनेके कारण ० तीन लक्षणोंको पाते हैं—(३) घुट्ठी बळी (४) अँगुली लम्बी (५) लम्बा सीधा शरीर होता है। ० राजा हो क्या पाते हैं? दीर्घ आयुवाले हो, बहुत दिन जीते हैं। कोई मनुष्य शत्रु उन्हें मार नहीं सकता। ० बुद्ध होकर क्या पाते हैं? ० कोई श्रमण-ब्राह्मण या देव ० नहीं मार सकता ०।" वहाँ यह कहा गया है—

अपनी मृत्यु, क्षय और भयको देख, वह दूसरेको मारनेसे विरत रहे।
उस सुचरितसे स्वर्ग सुकृतके फल-विपाकको भोगा ॥११॥
वहाँसे च्युत हो यहाँ आ तीन लक्षण पाये—
घुट्ठी बळी होती है, ब्रह्माके ऐसा सीधा, शुभ और सुजात शरीर होता है ॥१२॥
और शिशुकी भुजाके समान मनोहर सुन्दर भुजायें तथा अँगुली मृदु, तरुण और लम्बी होती हैं।
महापुरुषके इन तीन श्रेष्ठ लक्षणोंसे युक्त कुमारको दीर्घजीवी बतलाते हैं ॥१३॥
यदि गृहस्थ होता है तो दीर्घायु होता है, और यदि प्रव्रजित होता है तो उससे भी अधिक दिन जीता है।
(स्व-)वशी हो ऋद्धिभावनाके लिये जीता है इस प्रकार वह लक्षण दीर्घायुता का है ॥१४॥

४—सुन्दर भोजनका दान—(६) "जो कि भिक्षुओ! ० सुन्दर और स्वादिष्ट खाद्य, भोज्य, चोष्य, लेह्य, पेयका दान देते थे। ० इस कर्मके करनेसे ० लक्षण ० —सप्त-उत्सद—दोनों हाथ, दोनों पैर, दोनों कंधे और गर्दन भरे रहते हैं। ० राजा होकर सुन्दर भोजन, और पान पाते हैं ०। ० बुद्ध होकर सुन्दर भोजन और पान पाता है।'

० यह कहा गया है—

सुन्दर और स्वादिष्ट खाद्य भोज्य लेह्य अशनके दाता थे।
इस सुचरित कर्मसे वह **नन्दन-कानन**में बहुत दिनों तक प्रमोद करते रहे ॥१५॥
यहाँ आकर वह सप्त-उत्सद प्राप्त करते हैं उनके हाथ पैरके तलवे मृदु होते हैं।
लक्षणज्ञ उनको खाद्य भोज्यका लाभी होना बतलाते हैं ॥१६॥
यह (लक्षण) गृहस्थ होनेपर भी यही बतलाता है, प्रव्रजित होने पर भी वह उसे पाते हैं।
उन्हें उत्तम खाद्य-भोज्यका लाभी, (तथा) सभी गृहस्थ-बंधनोंका छेदक कहा गया है ॥१७॥

५—मेल कराना—(७-८) "जो कि भिक्षुओ! ० दान, प्रिय वचन, अर्थचर्या (=उपकारका काम) और समानताका व्यवहार—इन चार संग्रह-वस्तुओंसे लोगों का संग्रह करते थे उस कर्मके करनेसे ० लक्षण०—(७) हाथ पैर मृदु तरुण, तथा (८) जालवाले होते हैं। ० राजा होनेपर ब्राह्मण, गृहपति, कोषाध्यक्ष ० सभी परिजन उनके मेलमें रहते हैं। ० बुद्ध होनेपर भिक्षु, भिक्षुणी ० उनके सभी परिजन मेलमें रहते हैं।"०

दान, अर्थ-चर्या, प्रिय वचन और समान भावसे,
करके बहुत लोगोंका संग्रह, उस अप्रमाद गुणसे स्वर्ग जाता है ॥१८॥
वहाँसे च्युत हो यहाँ आ मृदु=तरुण और जालवाले।
अत्यन्त रुचिर, सुन्दर और दर्शनीय शिशु जैसे हाथ पैरको पाता है ॥१९॥
परिजनका प्रिय होता है, संग्रह करके इस पृथ्वीको वश में करता है।
प्रियवक्ता और हित-सुखका अन्वेषक बन प्रिय गुणोंका आचरण करता है ॥२०॥
यदि सभी काम-भोगोंको छोळता है, तो जितेन्द्रिय हो लोगोंको धर्म कहता है;
उसके धर्मोपदेशसे प्रसन्न हो लोग धर्मानुसार आचरण करते हैं ॥२१॥

६—अर्थ-धर्मका उपदेश—(९-१०) "भिक्षुओ। ० लोगोंको अर्थ-संबंधी, और धर्म-संबंधी बातें करते, निर्देश करते थे; प्राणियोंके हित और सुखके लिये धर्म-यज्ञ करते थे ० दो लक्षण—उत्संग-पाद (=ऊपरे उठे गुल्फोंवाला पैर), और ऊर्ध्वाग्रलोम (=शरीरके लोम ऊपरकी ओर गिरे रहते हैं, साधारण लोगोंके लोम नीचेकी ओर)। ० राजा होकर कामभोगियोंमें अग्र, श्रेष्ठ=प्रमुख उत्तम और प्रवर होते हैं ०। बुद्ध होकर सभी सत्वोंमें अग्र, श्रेष्ठ ०।"

० यह कहा गया—

पहले बहुतोंको अर्थधर्म संबंधी-बातें कहीं, उपदेश कीं।
प्राणियोंके हित और सुखका दाता बन, मत्सर रहित हो धर्म-यज्ञ किया ॥२२॥
उस सुचरित कर्मसे वह सुगतिको प्राप्त हो प्रमुदित होता है।
यहाँ आकर उत्तम और प्रमुख होनेके लिये दो लक्षण पाता है ॥२३॥
उसके लोम ऊपरकी ओर गिरे रहते हैं, पैरकी घुट्ठी (=गुल्फ) मिली होती है।
वह मांस, रुधिर तथा चमळेसे अच्छी तरह ढकी, और चरणके ऊपर शोभायमान रहती है ॥२४॥
वैसा व्यक्ति घरमें रहता है तो काम-भोगियोंमें श्रेष्ठ होता है।
उससे बढ़कर कोई नहीं होता। वह सारे **जम्बूद्वीप**को जीतकर रहता है ॥२५॥
अनुपम गृह-त्यागकर प्रव्रजित हो सभी प्राणियोंमें श्रेष्ठ होता है।
उससे बढ़कर कोई नहीं होता; वह सारे लोकको जीतकर विहार करता है ॥२६॥

७—सत्कार पूर्वक शिक्षण—(११) "जो कि भिक्षुओ! पहले जन्ममें ० शिल्प, विद्या,

आचरण और (नाना) कर्मोंको बळे सत्कारपूर्वक सिखाते थे—कि (विद्यार्थी) शीघ्र जान जायें, शीघ्र सीख जायें, देर तक हैरान न हों। ० लक्षण—मृगके समान जंघा होती है। ० चक्रवर्त्ती राजा हो राजाके योग्य, राजाके अनुकूल (वस्तुओं) को शीघ्र पाते हैं ०। ० बुद्ध होकर श्रमणोंके योग्य० वस्तुओं तथा भोगों को शीघ्र पाते हैं ०।"

"०यहाँ कहा गया है—

'शिल्प, विद्या और आचरणके कर्मोंको कैसे शीघ्र जान लें, यह चाहता है।'
जिसमें किसीको कष्ट न हो, इसलिये बहुत शीघ्र पढ़ाता है, क्लेश नहीं देता ॥२७॥
उस सुखदायक पुण्यकर्मको करके परिपूर्ण सुन्दर जंघाको पाता है।
(जो कि) गोल, सुजात, चढ़ाव-उतार, ऊर्ध्वरोमा तथा सूक्ष्म चर्म-वेष्टित होती है ॥२८॥
उस पुरुषको लोग **एणीजंघ** कहते हैं; इस लक्षणको शीघ्र सम्पत्तिदायक बताते हैं;
यदि वह घरहीमें रहना पसंद करता है, और संसारमें आकर प्रव्रजित नहीं होता ॥२९॥
यदि वैसा विचक्षण (पुरुष) निष्कामताकी इच्छासे प्रव्रजित होता है;
तो योग्यताके अनुकूल ही वह अनुपम गृहत्यागी उसे शीघ्र पा लेता है ॥३०॥

८—हितकी जिज्ञासा—(१२) "जो कि भिक्षुओ! वह ० श्रमणों—ब्राह्मणोंके पास जाकर प्रश्न करते थे—"भन्ते! क्या कुशल (=भलाई) है, और क्या अ-कुशल? क्या सदोष है, क्या निर्दोष? क्या सेवनीय है, क्या अ-सेवनीय है? क्या करना मेरे लिये चिरकाल तक अहित, दुःखके लिये होगा? क्या करना मेरे लिये चिरकाल तक हित, सुखके लिये होगा? वह इस कर्मके करनेसे ० ० लक्षण ०—० सूक्ष्म-छवि (=पतलेचिकने चर्मवाला) होते हैं। ० उनके शरीरपर धूली नहीं जमती। ० चक्रवर्त्ती राजा होकर महाप्रज्ञ होते हैं। काम-भोगियोंमें न तो कोई उनके समान और न कोई उनसे बढ़कर प्रज्ञावाले होते हैं। ० बुद्ध होकर महाप्रज्ञ, पृथुप्रज्ञ, तीव्रबुद्धि, क्षिप्रबुद्धि, तीक्ष्णप्रज्ञ, निर्वेधिकप्रज्ञ होते हैं। समस्त प्राणियोंमें उनके समान या बढ़कर कोई नहीं होता। ०

० यहाँ कहा गया है—

पहले पूर्व-जन्मोंमें, जाननेकी इच्छासे प्रव्रजितोंके पास
उनकी सेवा करके प्रश्न किया करता था; और उनके उपदेशोंपर ध्यान देता था ॥३१॥
प्रज्ञा-प्रदाता कर्मोंसे मनुष्य होकर **सूक्ष्म-छवि** होता है।
उत्पत्तिके लक्षणको जाननेवाले कहते हैं—वह सूक्ष्मबातोंको झट समझ जायेगा ॥३२॥
यदि वह प्रव्रजित नहीं होता, तो चक्रवर्त्ती राजा होकर पृथ्वीपर राज करता है।
न्याय करने, अर्थोंके अनुशासन और परिग्रहमें उसके समान या उससे बढ़कर कोई नहीं होता ॥३३॥

यदि वह ० प्रव्रजित हो जाता है;
तो अनुपम विशेष प्रज्ञाका लाभ करता है; वह श्रेष्ठ महामेधासे बोधि प्राप्त करता है ॥३४॥

९—अक्रोध और वस्त्र-दान—(१३) "जो कि भिक्षुओ! ० क्रोधरहित बहुत परेशानकरने वाले नहीं थे, और बहुत कहनेपर भी द्वेष, कोप, द्रोहको नहीं प्राप्त होते थे, बहुत कहनेपर भी उन्हें बातें नहीं लगती थीं, न वह कुपित होते थे, न मारपीट करते थे और न कुछ कहते थे। क्रोध, द्वेष, दौर्मनस्य नहीं प्रकट करते थे। और उन्होंने अलसी, कपास, कौषेय और कम्बलके सूक्ष्मवस्त्रोंके सूक्ष्म और मृदु आस्तरणों (=बिछौनों) और प्रावरणों (=ओढ़नों) का दान दिया था। सो उस कर्मके करनेसे ० स्वर्ग ०। वहाँसे च्युत हो यहाँ आ यह लक्षण पाये—सुवर्ण-वर्ण= कांचनके समान चर्मवाले। ० चक्रवर्त्ती राजा होकर अलसी, कपास, कौषेय और कम्बलके सूक्ष्म

वस्त्रोंके सूक्ष्म और मृदु आस्तरणों और प्रावरणोंके पानेवाले होते हैं। ० बुद्ध होकर ० प्रावरणोंके पानेवाले होते हैं ०। ० यहाँ कहा गया है—

वह पूर्वजन्ममें अ-क्रोधी रहा, और सूक्ष्म तलवाले सूक्ष्म वस्त्रोंको,
जैसे पृथ्वीको सूर्य वैसे दान करता रहा ॥३५॥
उसके कारण यहाँसे मरकर स्वर्गमें उत्पन्न हुआ, और पुण्यफलको भोगकर,
कल्पतरुको जैसे इन्द्र वैसे कनकके शरीर जैसे (शरीर)वाला हो यहाँ उत्पन्न हुआ ॥३६॥
प्रव्रज्याकी चाह छोळ यदि गृहमें रहता है, तो महती पृथ्वीको जीतकर शासन करता है।
वह सात रत्नोंको तथा शुचि, विमल, सूक्ष्म चर्मको भी पाता है ॥३७॥
यदि बेघरवाला होता है, तो सुन्दर आच्छादन और प्रावरणके वस्त्रोंको पाता है।
वह पूर्वके कियेका फल भोगता है, (क्योंकि) कियेका लोप नहीं होता ॥३८॥

१०—**मेल करना**—(१४) "जो कि भिक्षुओ ! ० चिरकालसे लुप्त, अतिचिरकालसे चले गये जातिभाइयों, मित्रों, सुहृदों और सखाओंको मिलानेवाले थे। माताको पुत्रसे मिलानेवाले थे, पुत्रको मातासे मिलानेवाले थे। पिताको पुत्रसे ०। पुत्रको पितासे ०। भाईको भाईसे ०। भाईको भगिनीसे०। भगिनीको भाईसे। मिलाकर मोद करते थे। सो उस कर्मके करनेसे ० स्वर्ग ०। वहाँसे च्युत हो यहाँ आ यह महापुरुष-लक्षण पाते हैं—कोषाच्छादित-वस्तिगुह्य (=पुरुष-इन्द्रिय) इस लक्षणसे युक्त होते हैं।० चक्रवर्त्ती राजा होकर ० बहुत पुत्रोंवाले होते हैं। उनके शूर, वीर, परसेना-प्रमर्दक सहस्रसे अधिक पुत्र होते हैं ०। ० बुद्ध होकर ० बहुत पुत्रों (=शिष्यों)वाले होते हैं। उनके शूर, वीर पर (=मार)-सेना-प्रमर्दक अनेकों हज़ार पुत्र होते हैं ०।" यहाँ यह कहा गया है—

पहले अतीतके पूर्वजन्मोंमें चिर-लुप्त चिर-प्रवासी
जातिवालों, सुहृदों, सखाओंको उसने मिलाया, मिलाकर मोद करता था ॥३९॥
उस कर्मसे स्वर्ग जा, उसने सुख, क्रीडा, रतिको अनुभव किया।
वहाँसे च्युत हो फिर यहाँ आ कोशाच्छादित ढँकी वस्तिको पाता है ॥४०॥
गृहस्थ होनेपर उसके बहुतसे पुत्र, सहस्रसे अधिक आत्मज होते हैं,
जो कि शूर, वीर, शत्रु-सन्तापक, प्रीति-उत्पादक और प्रियंवद होते हैं ॥४१॥
प्रव्रजित रहनेपर उसके बहुतसे वचनानुगामी पुत्र होते हैं।
गृहस्थ हो या प्रव्रजित, वह लक्षण इस बातका द्योतक है ॥४२॥

(इति) प्रथम भाणवार ॥१॥

११—**योग्य-अयोग्य पुरुषका ख्याल**—(१५, १६) "जो कि भिक्षुओ ! ०जनता (=महाजन)के संग्राहक, सम-विषम पुरुषका ज्ञान रखते थे, विशेष पुरुषका ज्ञान रखते थे—'यह इसके योग्य है', 'यह उसके योग्य है'। इस प्रकार पहले उस उस विषयमें पुरुषोंकी विशेषता (का ख्याल) करनेवाले थे। सो उस कर्मके करनेसे ० स्वर्ग०। वहाँसे च्युत हो, यहाँ आ दो महापुरुष-लक्षण पाते हैं—(१५) न्यग्रोध परिमंडल, और (१६) (आजानु-बाहु) सीधे खळे बिना झुके वह दोनों जानुको अपने हाथके तलवोंसे छूते हैं, परिमार्जित करते हैं। ० चक्रवर्त्ती राजा होकर ० आढ्य=महाधनी, महाभोगवान्, बहुत सोने चाँदीवाले, बहुत वित्त-उपकरणवाले, बहु-धनधान्यवाले, भरे कोश-कोठारवाले होते हैं ०। ० बुद्ध होकर ० आढ्य, महाधनी, महाभोगवान् होते हैं। उनके यह धन होते हैं; जैसे कि श्रद्धा-धन, शील-धन, ह्री (=लज्जा)-धन, अपत्रपा (=संकोच)-धन, श्रुत (=विद्या)-धन, त्याग-धन, प्रज्ञा-धन०। ० यहाँ यह कहा गया है—

तुलना, परीक्षा और चिन्तन करके जनताके संग्रहको देख,

यह इसके योग्य है—इस प्रकार पहले वह पुरुषोंमें विशेषताका (ख्याल) करता था ॥४३॥
(इसीसे) पृथिवीपर खळा हो बिना झुके हाथसे दोनों जानुओंको छूता है ।
और बचे हुए पुण्यके विपाकसे (बर्गद) वृक्ष जैसे परिमंडल (भरे शरीरवाला) होता है ॥४४॥
नाना प्रकारके लक्षणोंके जानकार, चतुर पुरुषोंने यह भविष्य कथन किया—
(वह) छोटे बच्चेपनसे अनेक प्रकारके गृहस्थोंके योग्य (भोगों)को पाता है ॥४५॥
यहाँ राजा हो भोगोंका भोगनेवाला होता है, उसके गृहस्थोंके योग्य (भोग) बहुत होते हैं।
यदि सारे भोगोंका त्याग करता है तो अनुपम, उत्तम, श्रेष्ठ धनको पाता है ॥४६॥

१२—परहिताकांक्षा—(१७-१९) "जो कि भिक्षुओ ! ० बहुत जनोंका अर्थाकांक्षी=हिताकांक्षी,=प्राशु-आकांक्षी, मंगलाकांक्षी थे—इनकी श्रद्धा बढ़े, शील बढ़े, पुत्र बढ़े, त्याग बढ़े, धर्म बढ़े, प्रज्ञा बढ़े, धन-धान्य बढ़े, खेत-घर बढ़ें, दोपाये-चौपाये बढ़ें, पुत्र-दारा बढ़ें, दास-कमकर बढ़ें, जातिभाई बढ़ें, मित्र बढ़ें, बंधु बढ़ें। सो उस कर्मके करनेसे ० स्वर्ग ०। वहाँसे च्युत हो, यहाँ आ तीन महापुरुष-लक्षणोंको पाते हैं—(१७) सिंह-पूर्वार्द्ध-काय होते हैं, (१८) चितांतरांस (=दोनों कंधोंके बीचका भाग भरा); (१९) समवर्त्त-स्कंध (=समान परिमाणकी गर्दन) होते हैं। ० चक्रवर्त्ती राजा होकर ० अपरिहाण धर्मा होते हैं—उनका धन-धान्य क्षीण (=परिहाण) नहीं होता, खेत-घर, दोपाये-चौपाये, पुत्र-दारा, दास-कमकर जाति-भाई, बंधु, मित्र—सभी सम्पत्ति क्षीण नहीं होती ०। ० बुद्ध होकर ० अपरिहाणधर्मा होते हैं—उनकी श्रद्धा, शील, श्रुत, त्याग, प्रज्ञा—सभी सम्पत्ति क्षीण नहीं होती ०। ० यहाँ यह कहा गया है—

दूसरोंकी श्रद्धा, शील, श्रुत, बुद्धि, त्याग, धर्म, बहुतसी भलाइयों,
धन, धान्य, घर-खेत, पुत्र, दारा, चौपाये; ॥४७॥
जाति-भाई, बन्धु, मित्र, बल, वर्ण, और सुख दोनों;
न क्षीण हों—यह चाहता था, और उन्हें समुन्नत (देखना) चाहता था ॥४८॥
(इस) पूर्वके किये सुचरित कर्मसे वह सिंहपूर्वार्द्ध-काय,
समवर्त्तस्कंध, और चितान्तरांस होता है, इसका पूर्व कारण क्षय न (चाहना) है ॥४९॥
गृहस्थ रहनेपर धन-धान्य, पुत्र-दारा, चौपायोंसे बढ़ता है।
धनत्यागी प्रब्रजित हो महान् धर्मता सम्बोधि (=बुद्धत्व)को पाता है ॥५०॥

१३—पीळा न देना—(२०) "जो कि भिक्षुओ ! ० हाथ, डला, दण्ड या शस्त्रसे प्राणियोंको पीड़ा न देते थे। सो उस कर्मके करनेसे ० स्वर्ग ०। वहाँसे च्युत हो, यहाँ आ इस महापुरुष-लक्षणको पाते हैं—**रसग्गसग्गी**=उनके कंठमें शिरायें (=रसवाहिनियाँ) समान वाहिनी और ऊपरकी ओर जानेवाली उत्पन्न होती हैं। ० चक्रवर्त्ती राजा होकर ० नीरोग=निरातंक, न-अतिशीत-न-अति उष्ण, समान विपाक-वाली पाचनशक्ति (=गहनी)से युक्त होते हैं ०।० बुद्ध होकर ० नीरोग, निरातंक ० समान विपाक-वाली पाचनशक्तिसे युक्त होते हैं। ० यहाँ यह कहा गया है—

हाथ, दंड, डले, या शस्त्रसे मारने-पीटनेसे
पीड़ा देने या डरानेके लिये नहीं सताया, वह जनताको न सतानेवाला था ॥५१॥
उससे वह मरकर सुगति पा आनन्द करता है, सुखफलवाले कर्मोंसे सुख पाता है;
(उसकी) पाचनशक्ति स्वयं ठीक रहती है। यहाँ आकर वह रसग्गसग्गी होता है ॥५२॥
इसीसे अतिचतुरों और विचक्षणोंने कहा—यह नर बहुत सुखी होगा।
गृहस्थ हो या प्रब्रजित, वह लक्षण इस बातका द्योतक है ॥५३॥

१४—प्रिय दृष्टि—(२१, २२) "जो कि भिक्षुओ ! ० तिर्छी उल्टी नज़र न देखते थे, सरल सीधे मन, और प्रिय चक्षुसे लोगोंको देखते थे। सो उस कर्मके करनेसे ० स्वर्ग ०। वहाँसे च्युत

हो, यहाँ आ इन दो महापुरुष-लक्षणोंको पाते हैं—(२१) **अभिनीलनेत्र**, और (२२) गोपक्ष्म ०। ० चक्रवर्त्ती राजा होकर ० जनता (=बहुजन)के प्रिय-दर्शन होते हैं; ब्राह्मण, वैश्य, नागरिक सभासद् (=नैगम), दीहाती सभासद् (=जानपद), गणक[1] (=एकौंटेन्ट), महामात्त्य, अनीकस्थ (=सेनानायक), द्वारपाल, अमात्त्य, पारिषद्य राजा, भोग्य (=भोगिय) कुमारोंका प्रिय=मनाप होते हैं ०। ० बुद्ध होकर जनताके प्रिय दर्शन होते हैं; भिक्षु, भिक्षुणी, उपासक, उपासिका, देव, मनुष्य, असुर, नाग, गंधर्व—सबके प्रिय=मनाप होते हैं।' ० यहाँ यह कहा गया है—

न तिर्छी न उल्टी नज़रसे . . . देखता था,
सरल तथा सीधे मन, प्रिय चक्षुसे लोगोंको देखता था ॥५४॥
सुगति (=स्वर्ग)में वह फलविपाक भोगता है, मोद करता है।
और यहाँ (आ) अभिनील नेत्र, और गोपक्ष्म सु-दर्शन होता है ॥५५॥
अभियुक्त=चतुर, लक्षणोंमें बहु पंडित,
सूक्ष्म नेत्रों (की परख)में कुशल पुरुष उसे प्रियदर्शन कहते हैं ॥५६॥
प्रिय दर्शन (पुरुष) गृहस्थ रहनेपर लोगोंका प्रिय होता है।
यदि गृहस्थ न हो श्रमण होता है, तो बहुतोंका प्रिय, शोकनाशक होता है ॥५७॥

१५—सुकार्यमें अगुआपन—(२३) "जो कि भिक्षुओ! ० अच्छे कामोंमें बहुत जनोंके अगुआ थे, कायिक सुचरित, मानसिक सुचरित, दान देने, शील ग्रहण करने, उपोसथ (=उपवास) करने, माता-पिता-श्रमण-ब्राह्मणकी सेवा, कुल ज्येष्ठके सम्मान, और (दूसरे) उन उन अच्छे कामोंमें लोगोंके प्रधान थे। सो उस कर्मके करनेसे ० स्वर्ग ०। वहाँसे च्युत हो यहाँ आ इस महापुरुष-लक्षणको पाते हैं, उष्णीष-शीर्षा होते हैं ०। ० चक्रवर्त्ती राजा होकर ०—ब्राह्मण-वैश्य, नैगम-जानपद, गणक, महामात्त्य, अनीकस्थ, द्वारपाल (=दौवारिक), अमात्त्य, पारिषद्य, राजा, भोगीय, कुमार—जनता उनकी अनुयायिनी होती है ०। ० बुद्ध होकर ० भिक्षु-भिक्षुणी, उपासक-उपासिका, देव, मनुष्य, असुर, नाग, गंधर्व—महाजन उनके अनुयायी होते हैं ०। ० यहाँ यह कहा गया है—

धर्मके सु-आचरणमें प्रमुख था, धर्मचर्यामें रत था,
जनताका अगुआ था, अतः (उसने) स्वर्गमें पुण्यका फल भोगा ॥५८॥
सुचरितका फल अनुभवकर यहाँ आ उष्णीष-शीर्षत्त्व फल पाया।
लक्षण-पारखियोंने भविष्यकथन किया—यह बहुत जनोंका प्रधान होगा ॥५९॥
यहाँ मनुष्य (लोक)में पहले उसके पास प्रतिभोग्य (=बलि) ले जाते हैं,
यदि क्षत्रिय भूपति होता है, तो बहुतसे **प्रतिहारक**[2] पाता है ॥६०॥
यदि वह मनुज प्रव्रजित होता है, तो धर्मोंका जानकार=विसवी होता है।
गुणमें अनुरक्त हो, उसके अनुशासन पर बहुतसे चलनेवाले होते हैं ॥६१॥

१६—सत्यवादिता—(२४-२५) "जो कि भिक्षुओ! ० झूठको त्याग सत्यवादी, सत्यसंध, स्थाता=विश्वासपात्र, लोगोंके अविश्वासपात्र नहीं थे सो उस कर्मके करनेसे ० स्वर्ग ०। वहाँसे च्युत हो, यहाँ आ इन दो महापुरुष-लक्षणोंको पाते हैं—(२४) एकैकलोमा और (२५) उनके दोनों भौंहोंके बीच श्वेत कोमल रुईकी जैसी ऊर्णा उत्पन्न होती है ०। ० चक्रवर्त्ती राजा

---

[1] यह सब उस समयके राजकार्यसे संबंध रखनेवाले पदोंके नाम हैं।

[2] ऊपर गिनाये ब्राह्मण, वैश्य आदि प्रतिहारक हैं। इसीसे पीछे प्रतिहार, और प्रतिहारी शब्द बने। पीछे प्रतिहार एक राजपूत राजवंशकी उपाधि हो गया।

होकर ० ब्राह्मण-वैश्य ० कुमार—महाजन उनके समीपवर्त्ती होते हैं ०। ० बुद्ध होकर ० भिक्षु-भिक्षुणी ० नाग- गंधर्व—महाजन उनके सपीमवर्त्ती होते हैं ०। ० यहाँ यह कहा गया है—

पूर्वजन्ममें उसने सत्यप्रतिज्ञ, दोहरी बात न बोलनेवाला हो झूठको त्यागा था,
किसीका वह अ-विश्वासी न था, भूत=तथ्य (=सत्य) ही बोलता था ॥६२॥
(इसीसे) भौंहोंके बीच श्वेत, सुशुक्ल कोमल तूल जैसी ऊर्णा उत्पन्न हुई ।
रोम-कूपोंमें दोहरे (रोम) नहीं जन्मे, वह एकैक लोमचितांग था ॥६३॥
बहुतसे उत्पत्तिके लक्षणोंके जानकार लक्षणज्ञोंने आकर उसका भविष्यकथन किया—
इसकी ऊर्णा और लोम जैसे सुस्थित हैं, उससे इसके बहुत से लोग पार्श्ववर्त्ती होंगे ॥६४॥
गृहस्थ रहनेपर लोग पार्श्ववर्त्ती होंगे (यह) किये कर्मोंसे (उनका) अग्रस्थायी होगा।
त्यागमय अनुपम प्रव्रज्या ले बुद्ध होनेपर लोग उपवर्त्तन पार्श्वचर होंगे ॥६५॥

१७—झगळा मिटाना—(२६, २७) "जो कि भिक्षुओ! ० चुगली त्याग, चुगलकी बातसे विरत थे, इनमें फूट डालनेके लिये यहाँ सुनकर वहाँ कहनेवाले न थे; न उनमें फूट डालनेके लिये वहाँ सुनकर यहाँ कहनेवाले थे। बल्कि फूटे हुओंको मिलानेवाले, मिले हुओंके अनुप्रदाता हो, एकता-प्रेमी, एकता-रस, एकतानन्दी हो एकता करनेवाली वाणीके बोलनेवाले थे। सो उस कर्मके करनेसे ० स्वर्ग०। वहाँसे च्युत हो, यहाँ आ इन दो महापुरुष-लक्षणोंको पाते हैं—(२६) चौवालीस दाँतोंवाले; (२७) अ-विरल दाँतोंवाले ०। ० चक्रवर्त्ती राजा होकर ० अभेद्य-परिषद् होते हैं, उनकी परिषद्—ब्राह्मण-वैश्य नैगम, जानपद, गणक, महामात्य, अनीकस्थ, द्वारपाल, अमात्य, पारिषद्य, राजा, भोग्य कुमार अभेद्य (=न फूटनेवाले) होते हैं ०। ० बुद्ध होकर अभेद्य-परिषद् होते हैं, उनकी परिषद् भिक्षु-भिक्षुणी ० नाग, गंधर्व अभेद्य होते हैं ०। ० यहाँ यह ०—

एकतावालोंको फोळनेवाली, फूट बढ़ानेवाली, विवादकारी,
कलहप्रवर्द्धक, अकृत्यकारी, और मिलोंको फोळनेवाली बातको नहीं बोलते थे ॥६६॥
अविवाद-वर्द्धक, फूटोंको मिलानेवाले सुवचनको ही बोलते थे,
लोगोंके कलहको दूर करते थे, एकता-सहितोंके साथ आनन्द और प्रमोद करते थे ॥६७॥
इससे स्वर्गमें वह फलविपाकको अनुभव करता, वहाँ मोद करता रहा,
यहाँ (जन्मकर) उसके मुखमें चालीस अविरल, जुळे दाँत होते हैं ॥६८॥
यदि क्षत्रिय भूपति होता है, तो उसकी परिषद् न फूटनेवाली होती है ।
यदि विरज विमल श्रमण होता है, तो उसकी परिषद् अनुरक्त अचल होती है ॥६९॥

१८—मधुरभाषिता—(२८, २९) "जो कि भिक्षुओ! ० कठोर वचन त्याग कठोर वचनसे विरत रहते थे। जो वह वाणी नेला सरल कर्णसुखा, प्रेमणीया, हृदयंगमा, पौरी (=सभ्य, नागरिक), बहु-जनकान्ता=बहुजनमनापा है, वैसी वाणीके बोलनेवाले थे। सो उस कर्मके करनेसे ० स्वर्ग ०। वहाँसे च्युत हो यहाँ आ इन दो महापुरुष-लक्षणोंको पाते हैं—(२८) ब्रह्मस्वर, (२९) करविंकभाणी ०। ० चक्रवर्त्ती राजा होकर ० आदेय-वाक् होते हैं, उनकी बातको ब्राह्मण-वैश्य ० कुमार ग्रहण करते हैं ०। ० बुद्ध होकर आदेय-वाक् होते हैं, उनकी बातको भिक्षु-भिक्षुणी ० नाग, गंधर्व ग्रहण करते हैं ०। ० यहाँ यह कहा गया है—

गाली झगळा और पीडादायक, बाधक, बहुजनमर्दक,
कठोर तीखे वचनको वह नहीं बोलता था, सुसंगत सकारण मधुर वचनको ही बोलता था ॥७०॥
मनको प्रिय, हृदयंगम, कर्णसुख वचनको वह बोलता था
(इस) वाचिक सुचरितके फलको (उसने) अनुभव किया, स्वर्गमें पुण्यफलको भोगा ॥७१॥

सुचरितके फलको भोगकर यहाँ आ वह ब्रह्मस्वर होता है,
उसकी जिह्वा विपुल और पृथुल होती है, और वह आदेय-वाक् होता है ॥७२॥
बात करनेपर गृहस्थको संतुष्ट करता है। यदि वह मनुष्य प्रव्रजित होता है;
बहुतोंको बहुतसा सुभाषित सुनानेवाले (उस पुरुष)के वचनको जनता ग्रहण करती है ॥७३॥

१९—**भावपूर्ण वचन**—(३०) "जो कि भिक्षुओ! ० बकवाद छोळ बकवादसे विरत रहते थे, कालवादी (=समय देखकर बोलनेवाले), भूत(=यथार्थ)-वादी, अर्थवादी, धर्मवादी, विनयवादी हो, तात्पर्य-सहित, पर्यन्त-सहित, अर्थ-सहित, भावपूर्ण (=निधानवती) वाणी बोलनेवाले थे। सो उस कर्मके करनेसे ० स्वर्ग ०। वहाँसे च्युत हो यहाँ आ इस महापुरुष-लक्षणको पाते हैं—सिंह-हनु होते हैं। ० चक्रवर्त्ती राजा होकर ० किसी मानव शत्रु=प्रत्यर्थिकसे अजेय होते हैं ०। ० बुद्ध होकर राग, द्वेष, मोह—भीतरी शत्रुओं, तथा किसी भी श्रमण-ब्राह्मण, देव, मार, ब्रह्मा—संसारके बाहरी शत्रुओंसे अजेय होते हैं ०। ० यहाँ यह कहा गया है—

बुद्धके वचनमें बकवाद नहीं थी, अ-संयत बातका वहाँ रास्ता न था,
(वचनसे उसने) अहितको हटा, और बहुजनोंके हित-सुखको कहा था ॥७४॥
इसलिये यहाँसे च्युत हो स्वर्गमें उत्पन्न हो (उसने) सुकृतके फलविपाकको भोगा,
च्युत हो यहाँ आकर सिंह-हनुत्त्वको प्राप्त किया ॥७५॥
(इससे वह) मनुजेन्द्र, मनुजाधिपति, महानुभाव, सुदुर्जेय राजा होता है,
देवपुरमें **कल्पद्रुम**के नीचे इन्द्रसा समान ही होता है ॥७६॥
यदि वैसा पुरुष वैसे शरीरवाला होता है, तो यहाँ दिशाओं, प्रतिदिशाओं और विदिशाओंमें,
गंधर्व, असुर, यक्ष, राक्षस, सुर द्वारा सुजेय नहीं होता ॥७७॥

२०—**सच्ची जीविका**—(३१, ३२) "जो कि भिक्षुओ! ० मिथ्या-आजीव (=बुरी रोज़ी) को छोळ सम्यग्-आजीवसे जीविका चलाते थे—तराज़ूकी ठगी, कंस (=बटखरे)की ठगी, मान (=नाप)की ठगी, रिश्वत (=उत्कोटन), वंचना, कृतघ्नता (=निकति), साचियोग (=कुटिलता), छेदन, बध, बंधन, विपरामोस (=डाका), आलोप (=लूटना), सहसाकार (=खून आदि कार्य)से विरत थे। सो उस कर्मके करनेसे ० स्वर्ग ०। वहाँसे च्युत हो यहाँ आ इन दो महापुरुष-लक्षणोंको पाते हैं—(३१) समदन्त होते हैं, और (३२) सु-शुक्ल-दाढ। ० चक्रवर्त्ती राजा होकर ० शुचि-परिवार होते हैं, उनके परिवार—ब्राह्मण-वैश्य ० कुमार शुचि होते हैं ०। ० बुद्ध होकर ० शुचि-परिवार होते हैं, उनके परिवार—भिक्षु-भिक्षुणी ० नाग, गंधर्व शुचि होते हैं। बुद्ध होकर यह पाते हैं।" भगवान्‌ने यह बात कही। वहाँ यह (गाथायें) कही गई हैं—

मिथ्या-आजीवको छोळ उसने सम्यक्, शुचि, धर्मानुकूलजीविका की।
अ-हितको हटाया, और बहुत जनोंके हित-सुखका आचरण किया ॥७८॥
निपुण, विद्वान्, सत्पुरुषों द्वारा प्रशंसित (कर्मों)को करके वह पुरुष स्वर्गमें सुख-फल
अनुभव करता है, श्रेष्ठ देवलोकके समान रति क्रीडासे युक्त हो रमण करता है ॥७९॥
वहाँसे च्युत हो बँचे सुकृतके फलसे मनुष्य-योनि पा
समान और शुद्ध सुशुक्ल दाँतोंको पाता है ॥८०॥
चतुरों द्वारा सम्मत बहुतसे सामुद्रिक-ज्ञाता मनुष्योंने आकर उसका भविष्य-कथन किया—
समदन्त और शुचि-सुशुक्ल-दन्त, शुचि परिवारगणसे युक्त होता है ॥८१॥
राजाका शुचि परिवार बहुत जनोंवाला होता है, वह महापृथिवीका शासन करता है,
किन्तु ज़बर्दस्तीसे नहीं, न (वहाँ) देशको पीडा होती है, वह जनताके हित-सुखको करता है ॥८२॥

यदि साधु होता है, तो पापरहित, उघळे कपाटवाला, डर-बाधा-रहित,
शमित-मल श्रमण होता है, और इस लोक परलोक दोनोंहीको देखता है ।।८३।।
उसके उपदेशानुगामी बहुतसे गृहस्थ और साधु निन्दित अ-शुचि, पापको हटाते हैं;
वह शुचि परिवारसे युक्त होता है, और मलके काँटे तथा कलि-क्लेश (=पापके मालिन्य)
को हटाता है ।।८४।।

३१–सिगालोवाद-सुत्त (३।८)

गृहस्थके कर्तव्य (इह लोक और परलोककी विजय)। १––चार कर्म-क्लेशोंका नाश। २––चार पापके स्थान। ३––छै सम्पत्तिके नाशके कारण। ४––मित्र और अमित्र। ५––छै दिशाओंकी पूजा।

ऐसा मैंने सुना––एक समय भगवान् **राजगृह**में, **वेणुवन कलन्दकनिवाप**में विहार कर रहे थे।

उस समय **शृगाल** (=सिगाल) गृहपति-पुत्र (=वैश्यका लळका) सवेरे उठकर राजगृहसे निकल भीगे-वस्त्र, भीगे-केश, पूर्व, दक्षिण, पश्चिम, उत्तर, ऊपर और नीचे सभी दिशाओंको हाथ जोळ नमस्कार करता था। तब भगवान् पहिनकर पात्रचीवर ले राजगृहमें भिक्षाके लिये प्रवेश करने चले। भगवान्ने शृगाल गृहपति-पुत्रको सवेरे उठकर ० दिशाओंको हाथ जोळ नमस्कार करते देखा। देखकर शृगाल गृहपति-पुत्रसे यह कहा––

"गृहपतिपुत्र! क्यों तू सवेरे उठकर ० दिशाओंको ० नमस्कार कर रहा है?"

"भन्ते! (=स्वामी) मरते वक्त पिताने मुझसे कहा था––'तात! दिशाओंको नमस्कार करना।' सो भन्ते! पिताके वचनका सत्कार=गुरुकार, मान=पूजा करते, सवेरे उठकर० दिशाओंको० नमस्कार कर रहा हूँ।"

गृहस्थके कर्तव्य

"गृहपति पुत्र! आर्यधर्ममें छै दिशाओंको नमस्कार इस प्रकार नहीं किया जाता।"

"अच्छा हो, भन्ते! भगवान् मुझे वैसे धर्मका उपदेश करें, जैसे कि आर्य-धर्ममें छै दिशाओंको नमस्कार किया जाता है।"

"तो गृहपति-पुत्र! सुन, अच्छी तरह मनमें कर, कहता हूँ।"

"अच्छा, भन्ते!"––(कह) शृगाल गृहपति-पुत्रने भगवान्को उत्तर दिया।

इहलोक और परलोककी विजय––

भगवान्ने यह कहा––"जब गृहपति-पुत्र! आर्य श्रावक (=आर्य धर्मानुयायी शिष्य)के (१-४) चार कर्म-क्लेश (=कर्मके मल) नष्ट हो गये रहते हैं; (५-८) चार स्थानोंसे वह पापकर्म नहीं करता; (९-१४) वह छै अपाय(=हानि)के मुखोंका सेवन नहीं करता––वह इस प्रकार चौदह पापोंसे दूर हो, छै दिशाओंको आच्छादितकर दोनों लोकोंके विजयमें लगता है; तो उसका यह लोक भी सुसेवित होता है और परलोक भी––वह काया छोळ मरनेके बाद सुगति स्वर्ग लोकमें उत्पन्न होता है।

१–चार कर्म-क्लेशोंका नाश

"कौनसे उसके चार कर्म-क्लेश नष्ट हो गये रहते हैं?––(१) गृहपति-पुत्र! प्राणि-मारना कर्म-क्लेश है, (२) चोरी (=अदत्तादान) कर्म-क्लेश है, (३) काम(=स्त्री-संसर्ग)-संबंधी दुराचार कर्म-क्लेश है, (४) झूठ बोलना कर्म-क्लेश है। ये चार कर्म-क्लेश उसके नष्ट हो गये रहते हैं।"

भगवान्‌ने यह कहा। यह कहकर सुगत शास्ताने यह भी कहा—
"प्राणातिपात, अदत्तादान, मृषावाद (जो) कहा जाता है।
और परदार-गमन (इनकी) पंडित जन प्रशंसा नहीं करते ॥१॥

२—चार स्थानोंसे पाप नहीं करना

ख. "किन चार स्थानोंसे पापकर्मको नहीं करता? (१) छन्द (=राग)के रास्तेमें जाकर पापकर्म करता है। (२) द्वेषके रास्तेमें जाकर ०। (३) मोहके ०। (४) भयके ०। चूँकि गृहपति-पुत्र! आर्य श्रावक न छन्दके रास्ते जाता है, न द्वेषके ०, न मोहके ०, न भयके ०। (अतः) इन चार स्थानोंसे पाप-कर्म नहीं करता।—भगवान्‌ने यह कहा। यह कहकर शास्ता सुगतने फिर यह भी कहा—

"छन्द, द्वेष, भय और मोहसे जो धर्मका अतिक्रमण करता है।
कृष्णपक्षके चन्द्रमाकी भाँति, उसका यश क्षीण होता है ॥२॥
छन्द, द्वेष, भय और मोहसे जो धर्मका अतिक्रमण नहीं करता।
शुक्लपक्षके चन्द्रमाकी भाँति, उसका यश बढ़ता है ॥३॥

३—छै सम्पत्तिके नाशके कारण

ग. "कौनसे छै भोगोंके अपायमुख (=विनाशके कारण) हैं—(१) शराब नशा आदिका सेवन...। (२) विकाल (=संध्या)में चौरस्तेकी सैर (=विसिखा-चरिया)में तत्पर होना...। (३) समज्या (=समाज=नाच-तमाशा)का सेवन...। (४) जुआ, (और दूसरी) दिमाग-बिगाळनेकी चीजें...। (५) बुरे मित्र (=पाप-मित्र)की मिताई...। (६) आलस्यमें फँसना...।

१—**नशा**—"गृहपति-पुत्र! शराब-नशा आदिके सेवनमें छै दुष्परिणाम हैं। (१) तत्काल धनकी हानि। (२) कलहका बढ़ना। (३) (यह) रोगोंका घर है। (४) अयश उत्पन्न करनेवाला है। (५) लज्जा का नाश करनेवाला है। और छठें (६) बुद्धि (=प्रज्ञा)को दुर्बल करता है।...

२—**चौरस्ते की सैर**—"गृहपति-पुत्र! विकालमें चौरस्तेकी सैरके छै दुष्परिणाम हैं—(१) स्वयं भी वह अ-गुप्त=अ-रक्षित होता है। (२) उसके स्त्री-पुत्र भी अ-गुप्त=अरक्षित होते हैं। (३) उसकी धन सम्पत्ति भी ० अरक्षित होती है। (४) बुरी बातोंकी शंका होती है। (५) झूठी बात उसपर लागू होती है। (६) (वह) बहुतसे दुःख-कारक कामोंका करनेवाला होता है।

३—**नाच-तमाशा**—"गृहपति-पुत्र! समज्याभिचरणमें छै दोष (=आदिनव) हैं—(१) (आज) कहाँ नाच है (इसकी परेशानी)। (२) कहाँ गीत है? (३) कहाँ वाद्य है? (४) कहाँ आख्यान है? (५) कहाँ पाणिस्वर (=हाथसे ताल देकर नृत्य-गीत) है? (६) कहाँ कुम्भ-थूण (=वादन-विशेष) है?

४—**जुआ**—"गृहपति-पुत्र! द्यूत-प्रमादस्थानके व्यसनमें छै दोष हैं—(१) जय (होनेपर) वैर उत्पन्न करता है। (२) पराजित होनेपर (हारे) धनकी सोच करता है। (३) तत्काल धनका नुकसान। (४) सभामें जानेपर (उसके) वचनका विश्वास नहीं रहता। (५) मित्रों और अमात्यों द्वारा तिरस्कृत होता है। (६) शादी-विवाह करनेवाले—यह जुवारी आदमी है, स्त्रीका भरण-पोषण नहीं कर सकता—सोच, (कन्या देनेमें) आपत्ति करते हैं।...

५—**दुष्टकी मिताई**—"गृहपति-पुत्र! दुष्ट मित्रकी मिताईके छै दोष होते हैं—जो (१) धूर्त, (२) शौण्ड, (३) पियक्कळ (=पिपासु), (४) कृतघ्न, (५) वंचक और (६) गुण्डे (=साहसिक, खूनी) होते हैं, वही इसके मित्र होते हैं।

६--**आलस्य**--"गृहपति-पुत्र ! आलस्यमें पळनेमें यह छै दोष हैं--(१) '(इस समय) बहुत ठंडा है' (सोच) काम नहीं करता। (२) 'बहुत गर्म है'--(सोच) काम नहीं करता। (३) 'बहुत शाम हो गई' (सोच) ०। (४) 'बहुत सबेरा है' ०। (५) 'बहुत भूखा हूँ' ०। (६) 'बहुत खाये हूँ' ० इस प्रकार बहुतसी करणीय बातोंको (न करनेसे) . . . , अनुत्पन्न भोग उत्पन्न नहीं होते, और उत्पन्न भोग नष्ट हो जाते हैं। . . . ।"

भगवान्‌ने यह कहा। यह कहकर शास्ता सुगतने फिर यह भी कहा--

'जो (मद्य)पानमें सखा होता है, (सामनेही); प्रिय बनता है, (वह मित्र नहीं)
जो काम हो जानेपर भी, मित्र रहता है, वही सखा है ॥४॥
अति-निद्रा, पर-स्त्री-गमन, वैर उत्पन्न करना, और अनर्थ करना,
बुरेकी मित्रता, और बहुत कंजूसी, यह छै मनुष्यको बर्बाद कर देते हैं ॥५॥
पाप-मित्र (=बुरे मित्रवाला), पाप-सखा और पापाचारमें अनुरक्त,
मनुष्य इस लोक और पर(लोक) दोनोंहीसे नष्ट-भ्रष्ट होता है ॥६॥
जुआ, स्त्री, वारुणी, नृत्य-गीत, दिनकी निद्रा अ-समयकी सेवा,
बुरे मित्रोंका होना, और बहुत कंजूसी, यह छै मनुष्यको बर्बाद कर देते हैं ॥७॥
(जो) जुआ खेलते हैं, सुरा पीते हैं, पराई प्राण-प्यारी स्त्रियों (का गमन करते हैं);
पंडितका नहीं; नीचका सेवन करते हैं, (वह) कृष्ण-पक्षके चन्द्रमाजैसे क्षीण होते हैं ॥८॥
जो वारुणी(-रत), निर्धन, मुहताज, पियक्कळ, प्रमादी (होता है);
(जो) पानीकी तरह ऋणमें अवगाहन करता है, (वह) शीघ्र ही अपनेको व्याकुल करता है ॥९॥
दिनमें निद्राशील, रातके उठनेको बुरा माननेवाला;
सदा (नशामें) मस्त=शौंड गृहस्थी(=घर-आवास) नहीं चला सकता ॥१०॥
'बहुत शीत है', 'बहुत उष्ण है', 'अब बहुत संध्या हो गई',
इस तरह करते मनुष्य धन-हीन हो जाते हैं ॥११॥
जो पुरुष काम करते शीत-उष्णको तृणसे अधिक नहीं मानता।
वह सुखसे वंचित होनेवाला नहीं होता ॥१२॥

४--मित्र और अमित्र

क--मित्र रूपमें अमित्र--"गृहपति-पुत्र ! इन चारोंको मित्रके रूपमें अमित्र(=शत्रु) जानना चाहिये--(१)पर-धनहारकको मित्र-रूपमें अमित्र जानना चाहिये। (२) केवल बात बनाने वालेको०। (३) (सदा) प्रिय वचन बोलने वालेको०। (४) अपाय (=हानिकर कृत्यों में) सहायकको०। गृहपति-पुत्र !

१--**पर-धनहारक**--"चार बातोंसे पर-धन-हारकको०।--पर-धन-हारक होता है, थोळे (धन) द्वारा बहुत (पाना) चाहता है। (३) भय (=विपत्ति) का काम करता है, (४) और स्वार्थके लिये सेवा करता है ॥१३॥

२--**बातूनी**--"गृहपति-पुत्र ! चार बातोंसे वचीपरम (=केवल बात बनानेवाले)को०।--(१) भूत (कालिक वस्तु)की प्रशंसा करता है। (२) भविष्यकी प्रशंसा करता है। (३) निरर्थक (बात)की प्रशंसा करता है ! (४) वर्तमानके काममें विपत्ति दिखलाता है।

३--**खुशामदी**--"गृहपति-पुत्र ! चार बातोंसे प्रियभाणी (=जी हुजूर)को०।--(१) बुरे काममें भी अनुमति देता है (२) अच्छे काममें भी अनुमति देता है। (३) सामने तारीफ़ करता है। और (४) पीठ-पीछे निन्दा करता है।

४––नाश में सहायक––"गृहपति-पुत्र ! चार बातोंसे अपाय-सहायकको० ––(१) सुरा, मेरय, मद्य-पान (जैसे) प्रमादके काममें फँसनेमें साथी होता है। (२) बेवक्त चौरस्ता घूमनेमें साथी होता है (३) समज्या देखनेमें साथी होता है। (४) जुआ खेलने (जैसे) प्रमादके काममें साथी होता है।

भगवान्ने यह कहकर, फिर यह भी कहा––
'पर-धन-हारी मित्र, और जो वचीपरम मित्र है।
प्रिय-भाणी मित्र और जो अपायोंमें सखा है ॥१४॥
यह चारों अमित्र हैं, ऐसा जानकर पंडित पुरुष,
खतरे-वाले रास्तेकी भाँति (उन्हें) दूरसे ही छोळ दे ॥१५॥

ख–मित्र–"गृहपति-पुत्र ! इन चार मित्रोंको सुहृद् जानना चाहिये––(१) उपकारी मित्रको सुहृद् जानना चाहिये। (२) सुख दुःखको समान भोगनेवाले मित्रको०। (३) अर्थ (की प्राप्तिका उपाय) बतलानेवाले मित्रको०। (४) अनुकंपक मित्रको०।

१––उपकारी––"गृहपति-पुत्र चार बातोंसे उपकारी मित्रको सुहृद् जानना चाहिये–– (१) प्रमत्त (=भूल करनेवाले)की रक्षा करता है। (२) प्रमत्तकी संपत्तिकी रक्षा करता है। (३) भयभीतका रक्षक (=शरण) होता है। (४) काम पळ जानेपर, उसे दुगना लाभ उत्पन्न करवाता है।...

२––समान सुख दुःखी––"गृहपति-पुत्र ! चार बातोंसे समान-सुख-दुःख मित्रको सुहृद् जानना चाहिये––(१) इसे गोप्य (बात) बतलाता है। (२) इसकी गोप्य-बातको गुप्त रखता है। (३) आपद्में इसे नहीं छोळता (४) इसके लिये प्राण भी देनेको तैयार रहता है।...

३––हितवादी––"गृहपति-पुत्र ! चार बातोंसे अर्थ-आख्यायी (=हितवादी) मित्रको सुहृद् जानना चाहिये––(१) पापका निवारण करता है। (२) पुण्यका प्रवेश कराता है। (३) अ-श्रुत (विद्या)को श्रुत करता है। (४) स्वर्गका मार्ग बतलाता है।...

४––अनुकम्पक––"गृहपति-पुत्र ! चार बातोंसे अनुकंपक मित्रको सुहृद् जानना चाहिये–– (१) मित्रके (धनसंपत्ति) होनेपर खुश नहीं होता। (२) न होनेपर भी खुश नहीं होता। (३) (मित्रकी) निन्दा करनेवालेको रोकता है। (४) प्रशंसा करनेपर प्रशंसा करता है।...

यह कहकर... फिर यह भी कहा––
"जो मित्र उपकारक होता है, सुख-दुःखमें जो सखा (बना) रहता है,
जो मित्र हितवादी होता है, और जो मित्र अनुकंपक होता है ॥१६॥
यही चार मित्र हैं, बुद्धिमान् ऐसा जानकर,
सत्कार-पूर्वक माता-पिता और पुत्रकी भाँति उनकी सेवा करे ॥१७॥
सदाचारी पंडित मधुमक्खीकी भाँति भोगोंको संचय कर,
प्रज्वलित अग्निकी भाँति प्रकाशमान होता है।
(उसके) भोग (=संपत्ति) जैसे वल्मीक बढ़ता है, वैसे बढ़ते हैं ॥१८॥
इस प्रकार भोगोंका संचयकर अर्थ-संपन्न कुलवाला (जो) गृहस्थ,
चार भागमें भोगोंको विभाजित करे, वही मित्रोंको पावेगा ॥१९॥
एक भागको स्वयं भोगे, दो भागोंको काममें लगावे।
चौथे भागको आपत्कालमें काम आनेके लिये रख छोळे ॥२०॥

५—छै दिशाओंकी पूजा

"गृहपति-पुत्र ! यह छै—दिशायें जाननी चाहियें। (१) माता-पिताको पूर्व-दिशा जानना चाहिये। (२) आचार्योंको दक्षिण-दिशा जानना चाहिये। (३) पुत्र-स्त्रीको पश्चिम-दिशा०। (४) मित्र-अमात्योंको उत्तर-दिशा०। (५) दास-कमकरको नीचेकी दिशा०। (६) श्रमण-ब्राह्मणोंको ऊपरकी दिशा०।

१—माता पिताकी सेवा—"गृहपति-पुत्र ! पाँच तरहसे माता-पिताका प्रत्युपस्थान (=सेवा) करना चाहिये—(१) (इन्होंने मेरा) भरण-पोषण किया है, अतः मुझे (इनका) भरण-पोषण करना चाहिये। (२) (मेरा काम किया है, अतः) मुझे इनका काम करना चाहिये। (३) (इन्होंने कुल-वंश कायम रक्खा, अतः) मुझे कुल-वंश कायम रखना चाहिये। (४) (इन्होंनें मुझे दायज्ज =वरासत दिया, अतः) मुझे दायज्ज प्रतिपादन करना चाहिये। (५) मृत प्रेतोंके निमित्त श्राद्ध-दान देना चाहिये।...इस प्रकार पाँच तरहसे सेवित (माता-पिता) पुत्रपर पाँच प्रकारसे अनुकंपा करते हैं—(१) पापसे निवारित करते हैं। (२) पुण्यमें लगाते हैं। (३) शिल्प सिखलाते हैं। (४) योग्य स्त्रीसे संबंध कराते हैं। (५) समय पाकर दायज्ज निष्पादन करते हैं। गृहपति-पुत्र ! इन पाँच बातोंसे पुत्रद्वारा माता-पिता-रूपी पूर्वदिशाका प्रत्युपस्थान होता है।...इस प्रकार इस (पुत्र)की पूर्वदिशा प्रतिच्छन्न (=ढँकी, सुरक्षित) क्षेम-युक्त, भय-रहित होती है।

२—आचार्यकी सेवा—"गृहपति-पुत्र ! पाँच बातोंसे शिष्यको आचार्य-रूपी दक्षिण-दिशाका प्रत्युपस्थान करना चाहिये। (१) उत्थान (=तत्परता)से, (२) उपस्थान (=हाजिरी=सेवा)से, (३) सुश्रूषासे, (४) परिचर्या=सत्संगसे, (५) सत्कार-पूर्वक शिल्प सीखनेसे। गृहपति-पुत्र ! इस प्रकार पाँच बातोंसे शिष्यद्वारा आचार्य सेवित हो, पाँच प्रकारसे शिष्यपर अनुकंपा करते हैं—(१) सु-विनयसे युक्त करते हैं। (२) सुन्दर शिक्षाको भली-प्रकार सिखलाते हैं। (३) 'हमारी (विद्यायें) परिपूर्ण रहेंगी' सोच सभी शिल्प सभी श्रुत(=विद्या)को सिखलाते हैं। (४) मित्र-अमात्योंको सुप्रतिपादन करते हैं। (५) दिशाकी सुरक्षा करते हैं।

३—पत्नीकी सेवा—"गृहपति-पुत्र ! पाँच प्रकारसे स्वामीको भार्या-रूपी पश्चिम-दिशाका प्रत्युपस्थान करना चाहिये—(१) सन्मानसे, (२) अपमान न करनेसे, (३) अतिचार (पर-स्त्री-गमन आदि) न करनेसे, (४) ऐश्वर्य-प्रदानसे, (५) अलंकार-प्रदानसे गृहपति-पुत्र ! इन पाँच प्रकारोंसे स्वामिद्वारा भार्यारूपी पश्चिम-दिशाका प्रत्युपस्थान होनेपर, (वह) स्वामिपर पाँच प्रकारसे अनुकंपा करती है—(१) (भार्याद्वारा) कर्मान्त (=काम-काज) भली प्रकार होते हैं। (२) परिजन (=नौकर-चाकर) बशमें रहते हैं। (३) (स्वयं) अतिचारिणी नहीं होती। (४) अर्जितकी रक्षा करती है। (५) सब कामोंमें निरालस और दक्ष होती है।...

४—मित्रोंकी सेवा—"गृहपति-पुत्र ! पाँच प्रकारसे मित्र-अमात्य-रूपी उत्तर-दिशाका प्रत्युपस्थान करना चाहिये—(१) दानसे, (२) प्रिय-वचनसे, (३) अर्थ-चर्या (=कामकर देने)से, (४) समानता (प्रदर्शन)से, (५) विश्वास-प्रदानसे। गृहपति-पुत्र ! इन पाँच प्रकारोंसे प्रत्युपस्थान की गई मित्र-अमात्यरूपी उत्तर-दिशा, पाँच प्रकारसे (उस) कुल-पुत्रपर अनुकंपा करती है—(१) प्रमाद (=भूल, आलस्य)कर देनेपर रक्षा करते हैं। (२) प्रमत्तकी संपत्तिकी रक्षा करते हैं। (३) भयके समय शरण (=रक्षक) होते हैं। (४) आपत्कालमें नहीं छोळते। (५) दूसरी प्रजा (=लोग) भी (ऐसे मित्र-अमात्यवाले) इस पुरुषका सत्कार करती है।...

५—सेवककी सेवा—"गृहपति-पुत्र ! पाँच प्रकारसे आर्यक(=मालिक)को दास-कर्मकर रूपी

निचली-दिशाका प्रत्युपस्थान करना चाहिये––(१) बलके अनुसार कर्मान्त (=काम) देनेसे, (२) भोजन-वेतन (=भत्त-वेतन)-प्रदानसे, (३) रोगि-सुश्रूषासे, (४) उत्तम रसों (वाले पदार्थों)को प्रदान करनेसे, (५) समयपर छुट्टी (=वोसग्ग) देनेसे। गृहपति-पुत्र! इन पाँचों प्रकारोंसे . . .प्रत्युपस्थान किये जानेपर दास-कर्म-कर. . .पाँच प्रकारसे मालिकपर अनुकंपा करते हैं––(१) (मालिकसे) पहिले (विस्तरसे) उठ जानेवाले होते हैं। (२) पीछे सोनेवाले होते हैं। (३) दियेको (ही) लेनेवाले होते हैं। (४) कामोंको अच्छी तरह करनेवाले होते हैं। (५) कीर्ति-प्रशंसा फैलानेवाले होते हैं।. . .

६––साधु-ब्राह्मणकी सेवा––"गृहपति-पुत्र! पाँच प्रकारसे कुल-पुत्रको श्रमण-ब्राह्मण-रूपी ऊपरकी-दिशाका प्रत्युपस्थान करना चाहिये––(१) मैत्री-भाव-युक्त कायिक-कर्मसे, (२) मैत्री-भाव-युक्त वाचिक-कर्मसे, (३) ० मानसिक-कर्मसे, (४) (उनके लिये) खुला द्वार रखनेसे, (५) आमिष (=खान-पानकी वस्तु)के प्रदान करनेसे। गृहपति-पुत्र! इन पाँच प्रकारोंसे प्रत्युपस्थान किये गये श्रमण-ब्राह्मण . . . . . . इन छै प्रकारोंसे कुल-पुत्रपर अनुकंपा करते हैं––(१) पाप (=बुरा) से निवारण करते हैं। (२) कल्याण (=भलाई)में प्रवेश कराते हैं। (३) कल्याण(-प्रदान)-द्वारा इनपर अनुकंपा करते हैं (४) अ-श्रुत (विद्या)को सुनाते हैं। (५) श्रुत (विद्या)को दृढ़ कराते हैं। (६) स्वर्गका रास्ता बतलाते हैं।"

माता-पिता पूर्वदिशा हैं, आचार्य दक्षिण दिशा।
पुत्र-स्त्री पश्चिम दिशा हैं, मित्र-अमात्य उत्तर दिशा ॥२१॥
दास-कर्मकर नीचेकी दिशा हैं, श्रमण-ब्राह्मण ऊपरकी दिशा।
गृहस्थको अपने कुलमें इन दिशाओंको अच्छी तरह नमस्कार करना चाहिये ॥२२॥
पंडित, सदाचारपरायण स्नेही, प्रतिभावान्,
एकान्तसेवी तथा आत्मसंयमी (पुरुष) यशको पाता है ॥२३॥
उद्योगी, निरालस आपत्तिमें न डिगनेवाला,
अटूट नियमवाला, मेधावी (पुरुष) यशको प्राप्त होता है ॥२४॥
(मित्रोंका) संग्राहक, मित्रोंका काम करनेवाला उदार डाह-रहित
नेता, विनेता, तथा अनुनेता (पुरुष) यशको पाता है ॥२५॥
जो कि यहाँ दान प्रिय-वचन, अर्थचर्या करता है,
और उस उस (व्यक्ति)में योग्यतानुसार समानताका (वर्तावकरता है) ॥२६॥
संसारमें यह संग्रह चलते रथकी आणी (=नाभि)की भाँति हैं।
यदि यह संग्रह न हों, तो न माता पुत्रसे
मान-पूजा पावे, और न ही पिता पुत्रसे ॥२७॥
पंडित लोग इन संग्रहोंको चूँकि अच्छी तरह ख्याल रखते हैं,
इसीसे वे बळप्पन पाते हैं, और प्रशंसनीय होते हैं ॥२८॥"

ऐसा कहनेपर श्रृगाल गृहपति-पुत्रने भगवान्से यह कहा––"आश्चर्य! भन्ते!! अद्‌भुत! भन्ते!! ०[1]आजसे मुझे भगवान् अंजलि-बद्ध शरणागत उपासक धारण करें।"

---

[1] देखो पृष्ठ ३२।

३२—आटानाटिय-सुत्त (३।९)

१—आटानाटिय (=भूतों-यक्षोंसे) रक्षा। (१) सातों बुद्धोंको नमस्कार। (२) चारों महाराजोंका वर्णन। (३) रक्षा न माननेवाले यक्षोंको दंड। (४) प्रबल यक्षोंका नामस्मरण।
२—आटानाटिय-रक्षाकी पुनरावृत्ति।

ऐसा मैंने सुना—एक समय भगवान् **राजगृह**के **गृध्रकूट** पर्वतपर विहार करते थे।

तब, चारों **महाराज** (अपने) यक्षों, गन्धर्वों, कूष्मांडों, और नागोंकी बळी भारी सेना लेकर, चारों दिशाओंमें रक्षकोंको बैठा, योद्धाओंकी टोलियोंको नियुक्तकर, रात बीतनेपर, प्रकाशमान हो, सारे गृध्रकूट पर्वतको प्रकाशित करते जहाँ भगवान् थे, वहाँ गये। जाकर भगवान्‌को अभिवादनकर बैठ गये। कितने भगवान्‌का संमोदनकर, कितने भगवान्‌को अञ्जलिबद्ध प्रणामकर, कितने नाम और गोत्र सुनाकर, और कितने चुपचाप एक ओर बैठ गये।

१—आटानाटिय (=भूतों-यक्षोंसे) रक्षा

एक ओर बैठे **वैश्रवण** (=कुवेर) महाराज भगवान्‌से बोले—"भन्ते! कितने ही बळे बळे यक्ष आपपर अश्रद्धावान् (=अप्रसन्न) हैं, और कितने श्रद्धावान्; कितने मध्यम यक्ष ०, कितने नीच यक्ष ०। भन्ते! जो इतने यक्ष आपपर अप्रसन्न हैं, सो क्यों? (क्योंकि) भगवान् जीव-हिंसा न करनेके लिये धर्मोपदेश करते हैं, चोरी न करनेके०। भन्ते! जो यक्ष जीव-हिंसासे विरत नहीं हैं, चोरीसे विरत नहीं हैं, उन्हें यह अप्रिय और मनके प्रतिकूल मालूम होता है। भन्ते! भगवान्‌के श्रावक जंगलमें एकान्तवास करते हैं ०। (किंतु) वहाँ जो बळे बळे यक्ष रहते हैं, वे भगवान्‌के इस प्रवचनसे अप्रसन्न हैं। भन्ते! भिक्षुओंकी ० उपासिकाओंकी रक्षा, अ-पीडा और सुख-पूर्वक विहार करनेके लिये उन लोगोंको प्रसन्न रखनेको भगवान् आटानाटिय रक्षाका उपदेश करें।

भगवान्‌ने मौनसे स्वीकार किया। तब वैश्रवण महाराजने भगवान्‌की स्वीकृति जान उस समय यह **आटानाटिय** रक्षा कही—

(१) सातों बुद्धोंको नमस्कार

"चक्षुमान, श्रीमान् **विपश्यी**को नमस्कार हो।
सर्वभूतानुकम्पी **शिखी**को नमस्कार हो ॥१॥
स्नातक तपस्वी **विश्वभू**को नमस्कार हो।
मार-सेनाको छिन्न-भिन्न कर देनेवाले **ककुच्छन्द**को नमस्कार हो ॥२॥
ब्रह्मचारी **कोणागमन** ब्राह्मणको नमस्कार हो;
सभी प्रकारसे विमुक्त **काश्यप**को नमस्कार हो ॥३॥
आंगिरस श्रीमान् **शाक्यपुत्र**को नमस्कार हो
जिनने सब दुःखोंके नाश करनेवाले धर्मका उपदेश किया ॥४॥
और जो दूसरे भी यथार्थ ज्ञान पा निर्वाणको प्राप्त हुये हैं,

वे सभी महान् निर्भय आस्रव-रहित (अर्हत्) सुनें ॥५॥
वह देव मनुष्योंके हितके लिये हैं।
उन विद्याचरणसम्पन्न, महान् और निर्भय **गौतम**को नमस्कार करते हैं ॥६॥

(२) चारों महाराजोंका वर्णन

१–**धृतराष्ट्र**–जहाँसे महान् मण्डलवाला, आदित्य, सूर्य उगता है,
जिसके कि उगनेसे रात नष्ट हो जाती है ॥७॥
जिस सूर्यके उगनेसे कि दिन कहा जाता है,
(वहाँ एक) गम्भीर जलाशय, नदियोंके जलवाला समुद्र है ॥८॥
उसे वहाँ नदी-जलवाला समुद्र समझते हैं।
यहाँसे वह पूर्व दिशामें है—ऐसा उसके विषयमें लोग कहते हैं।
जिस दिशाको कि वह यशस्वी महाराजा पालन करता है ॥९॥
(वह) **गन्धर्वों**का अधिपति है; उसका नाम **धृतराष्ट्र** है,
गन्धर्वोंके आगे हो नृत्य गीतमें रमण करता है ॥१०॥
उसके बहुतसे पुत्र एक नामवाले सुने जाते हैं,
और एकानवे (पुत्र) महाबली **इन्द्र** नामवाले हैं ॥११॥
वे भी बुद्ध, आदित्य-वंशज निर्भय महान् बुद्धको देख
दूरहीसे नमस्कार करते हैं—हे पुरुष श्रेष्ठ! पुरुषोत्तम! तुम्हें नमस्कार हो ॥१२॥
तुम कुशलसे समीक्षा करते हो, अमनुष्य (=देवता) भी तुम्हें प्रणाम करते हैं—
हम लोग ऐसा सदा सुनते हैं, इसीसे ऐसा कहते हैं ॥१३॥
जिन (=विजयी) गौतमको प्रणाम करो, **जिन** गौतमको हम प्रणाम करते हैं।
विद्या-आचरण-सम्पन्न **गौतम** बुद्धको हम प्रणाम करते हैं ॥१४॥
२–**विरूढक**–जीव-हिंसक, रुद्र, चोर, शठ, और चुगलखोर,
पीछेमें निन्दा करनेवाले प्रेतजन कहे जाते हैं, वे जहाँ (रहते हैं) ॥१५॥
वह (स्थान) यहाँसे दक्षिण दिशामें है—ऐसा लोग कहते हैं।
उस दिशाको ये यशस्वी महाराज पालन करते हैं ॥१६॥
(वह) कूष्मांडोंके अधिपति हैं, उनका नाम **विरूढक** है,
वह कूष्मांडोंको आगे होके नृत्य गीतमें रमण करते हैं ॥१७॥
उनके बहुतसे पुत्र ० इन्द्र नामक ०। ॥१८॥
वे भी बुद्धको० देखकर ० नमस्कार ० ॥१९॥
तुम कुशल-समीक्षा करते हो ० ॥२०॥
विजयी गौतमको प्रणाम ० ॥२१॥
३–**विरूपाक्ष**–जहाँ महान् मंडलवाला आदित्य सूर्य अस्त होता है;
जिसके कि अस्त होनेसे दिन नष्ट हो जाता है ॥२२॥
जिस सूर्यके अस्त हो जानेसे रात कही जाती है।
वहाँ (एक) गम्भीर जलाशय, नदीजलवाला समुद्र है ॥२३॥
उसे वहाँ ० पश्चिम दिशा ० ॥२४॥
(वह) नागोंका अधिपति है; उसका नाम **विरूपाक्ष** है।
वह नागोंके आगे हो, नृत्य गीतमें रमण करता है ॥२५॥
उसके बहुत पुत्र ० इन्द्र नाम ० ॥२६॥
वे भी बुद्धको देखकर ० ॥२७॥

तुम कुशलसे समीक्षा ० ॥२८॥ विजयी गौतमको प्रणाम ० ॥२९॥
४—**वैश्रवण**—जहाँ रमणीय **उत्तर-कुरु** और **सुदर्शन सुमेरु** पर्वत हैं,
जहाँपर मनुष्य परिग्रह-रहित, ममता-रहित उत्पन्न होते हैं ॥३०॥
वे न बीज बोते हैं, और न हल जोतते हैं।
वे मनुष्य अकृष्ट-पच्य (=स्वयं उत्पन्न) शालीको खाते हैं ॥३१॥
कन और भूसीसे रहित, शुद्ध और सुगन्धित,
चावलको दूधमें पकाकर भोजन करते हैं ॥३२॥
बैलकी सवारीपर सभी ओर जाते हैं।
पशुकी सवारीपर सभी ओर जाते हैं ॥३३॥
स्त्रीको वाहन (=सवारी) बना, ०।
पुरुषको वाहन बना सभी ओर जाते हैं ॥३४॥
कुमारी ० कुमारको वाहन बना सभी ओर जाते हैं।
उस राजाकी सेवामें यानोंपर सवार होकर सभी दिशाओंसे आते हैं ॥३५॥
उस यशस्वी महाराजके पास हस्तियान, अश्वयान,
और दिव्ययान, प्रासाद और शिविकायें हैं ॥३६॥
उनके नगर **आटानाटा, कुसिनाटा, परकुसिनाटा,**
नाटसुरिया, परकुसितनाटा—अन्तरिक्षमें बने हैं ॥३७॥
उसके उत्तरमें **कपीवन्त** और दूसरी ओर **जनौघ**, (तथा) निन्नाबे दूसरे नगर हैं।
अम्बर, अम्बरवती नामक नगर हैं, **आलकमन्दा** नामकी (उनकी) राजधानी है ॥३८॥
मार्ष ! **कुवेर** महाराजकी राजधानी **निसाणा** नामकी है।
इसीलिये कुवेर महाराज वेस्सवण (=**वैश्रवण**) कहे जाते हैं ॥३९॥
ततोला, तत्तला, ततोतला, ओजसि, तेजसि, ततोजसि,
अरिष्टनेमि, सूर, राजा अन्वेषण करते प्रकाशते हैं ॥४०॥
वहाँ **धरणी** नामक एक सरोवर है, जहाँसे जल लेकर,
मेघ वृष्टि करते हैं, और जहाँसे वृष्टि प्रसरित होती है।
सागलवती (भागलवती) नामक सभा है, जहाँ यक्ष लोग एकत्रित होते हैं ॥४१॥
वहाँ नाना पक्षि-समूहोंसे युक्त नित्य फलनेवाले वृक्ष हैं;
जो मयूर, क्रौञ्च, कोकिल आदि (पक्षियों)के मधुर कूजनसे व्याप्त रहते हैं ॥४२॥
वहाँ जीवंजीव शब्द करते हैं, और आठवें, चित्रक (शब्द करते हैं)।
वनोंमें कुकुत्थक, कुलीरक, पोक्खरसातक, शुक, सारिका, दयळमान और वक शब्द करते हैं।
वहाँ सदा सर्वकाल **कुवेर**की नलिनी शोभायमान रहती है ॥४३-४४॥
'यहाँसे उत्तर दिशामें है'—ऐसा लोग कहते हैं;
जिस दिशाको कि वह यशस्वी महाराज पालन करते हैं ॥४५॥
यक्षोंके अधिपति ० ॥४६॥
उनके बहुतसे पुत्र० **इन्द्र** नामक० ॥४७॥
वे भी बुद्धको देखकर ० ॥४८॥
तुम कुशलसे समीक्षा ० ॥४९॥ विजयी गौतमको प्रणाम ० ॥५०॥

(३) रक्षा न माननेवाले यक्षोंको दण्ड

"मार्ष ! यह आटानाटिय रक्षा भिक्षु ० रक्षाके लिये ०। जो कोई भिक्षु ० इस ० रक्षाको ठीकसे पढ़ेगा और धारण करेगा; उसके पीछे यदि अमनुष्य—यक्ष, यक्षिणी, यक्षका बच्चा, यक्षकी

बच्ची, यक्ष-महामात्य, यक्ष-पार्षद, यक्ष-सेवक, गन्धर्व ०, कूष्माण्ड ०, नाग ० बुरे चित्तसे चलें, खळें हों, वैठें, सोयें; तो मार्ष ! वह अमनुष्य मेरे ग्राममें या निगममें सत्कार=गुरुकार न पावेंगे। मार्ष ! वह अमनुष्य मेरी **आलकमन्दा** राजधानीमें रहने नहीं पावेंगे, और न वह यक्षोंकी समितिमें जा सकेंगे। मार्ष ! दूसरे अमनुष्य उससे रोटी-बेटीका सम्बन्ध हटा लेंगे, बहुत परिहास करेंगे; खाली बर्तनसे उसका शिर भी ढँक देंगे। उसके शिरके सात टुकळे कर देंगे।

"मार्ष ! कितने अमनुष्य चण्ड, रुद्र और तेज स्वभावके हैं। वे न तो महाराजाओंको मानते हैं, न उनके अधिकारियों (=पुरुषक)को, और न अधिकारियोंके अधिकारियोंको। मार्ष ! वे अमनुष्य महाराजोंके बागी (=अवरुद्ध) कहे जाते हैं। मार्ष ! जैसे **मगधराज**के राज्यमें महाचोर (=डाकू) हैं, वे न तो राजाको मानते हैं, न राजाके अधिकारियोंको ०। वे महाचोर डाकू राजाके बागी कहे जाते हैं। मार्ष ! उसी तरह चण्ड, रुद्र ० अमनुष्य हैं, जो न तो ०।

(४) प्रबल यक्षोंका नाम-स्मरण

"मार्ष ! कोई भी अमनुष्य—यक्ष या यक्षिणी ०, गन्धर्व ०, कुम्भण्ड ० या नाग ०, द्वेषयुक्त चित्तसे भिक्षु ०के पीछे जाय तो इन यक्षों, महायक्षों, सेनापतियों और महासेनापतियोंको पुकारना चाहिये, टेर देनी चाहिये, चिल्लाना चाहिये—यह यक्ष पकळ रहा है, शरीरमें प्रवेश कर रहा है, सताता है, ० बहुत सताता ०। ० डराता ०। ० बहुत डराता ०। यह यक्ष नहीं छोळता। किन यक्षों, महायक्षों, सेनापतियों, महासेनापतियोंको (पुकारना चाहिये)?—

"**इन्द्र, सोम, वरुण, भारद्वाज, प्रजापति, चन्दन, कामश्रेष्ठ, घण्डु** और **निर्घण्डु** ।।५१।।
प्रणाद (=पनाद), **औपमन्यव, देवसूत मातलि, गन्धर्व चित्रसेन** और देवपुत्र राजा **नल** ।।५२।।
सातागिर, हैमवत, पूरणक, करती, गुळ, शिवक[1], **मुचलिन्द, वैश्वामित्र** और **युगन्धर** ।।५३।।
गोपाल, सुप्परोध, हिरि, नेत्ति, मन्दिय, पञ्चाल चण्ड आलवक[2],
पर्जन्य (=पज्जुन्न) **सुमन, सुमुख, दधिमुख, मणि (भद्र) मणिचर, दीर्घ** और **सेरिसिक** ।।५४।।

"इन यक्षों०को पुकारना ० चाहिये—० यह यक्ष पकळ रहा है ०।

"मार्ष ! यह **आटानाटिय-रक्षा** भिक्षु ०।

"मार्ष ! अब हम लोग जायेंगे, हम लोगोंको बहुत काम है, बहुत करणीय है।"

"जैसा महाराजो ! तुम काल समझते हो (वैसा करो)।"

तब चारों महाराज आसनसे उठ ० अन्तर्धान हो गये। वे यक्ष भी ० अन्तर्धान हो गये।

प्रथम भाणवार ।।१।।

२—आटानाटिय-रक्षाकी पुनरावृत्ति

तब भगवान्ने उस रातके बीतनेपर भिक्षुओंको संबोधित किया—

"भिक्षुओ ! रातको चारों महाराज ० जहाँ मैं था वहाँ आये। ० बैठ गये। ० **वैश्रवण** महाराजने कहा—भन्ते ! कितने बळे बळे यक्ष ०[3] आसनसे उठ अन्तर्धान हो गये।

"भिक्षुओ ! **आटानाटिय-रक्षा**को पढ़ो, ग्रहण करो, धारण करो। भिक्षुओ ! आटानाटिय रक्षा भिक्षुओ०की रक्षा, अ-पीडा अविहिंसा और सुखपूर्वक विहारके लिये सार्थक है।"

भगवान्ने यह कहा। संतुष्ट हो भिक्षुओंने भगवान्के भाषणका अभिनन्दन किया।

---

[1] राजगृह नगरके एक द्वारपर रहता था। [2] आलवी (वर्तमान अरव, कानपुर)में रहनेवाला यक्ष। [3] पहलेकी ही गाथायें।

३३—संगीति-परियाय-सुत्त (३।१०)

१—पावाके नवीन संस्थागारमें बुद्ध। २—गुरुके मरनेपर जैनोंमें विवाद। ३—बौद्ध मन्तव्योंकी सूची

ऐसा मैंने सुना—एक समय भगवान् पाँच-सौ भिक्षुओंके महाभिक्षु-संघके साथ **मल्ल** (देश)-में चारिका करते, जहाँ [1]**पावा** नामक मल्लोंका नगर है, वहाँ पहुँचे। वहाँ पावामें भगवान् **चुन्द कर्म्मार-पुत्र**के आम्रवनमें विहार करते थे।

१—पावाके नवीन संस्थागारमें बुद्ध

उस समय पावा-वासी मल्लोंका ऊँचा, नया, संस्थागार (=प्रजातंत्र-भवन) हालही में बना था; (वहाँ अभी) किसी श्रमण या ब्राह्मण या किसी मनुष्यने वास नहीं किया था। पावा-वासी मल्लोंने सुना—'भगवान्० मल्लमें चारिका करते पावामें पहुँचे हैं, और पावामें चुन्द कर्मार (=सोनार)-पुत्रके आम्रवनमें विहार करते हैं।' तब पावा-वासी मल्ल जहाँ भगवान् थे, वहाँ पहुँचे। पहुँचकर भगवान्-को अभिवादनकर एक ओर बैठ गये। एक ओर बैठे पावा-वासी मल्लोंने भगवान्से कहा—

"भन्ते! यहाँ पावा-वासी मल्लोंका ऊँचा (=उब्भतक) नया संस्थागार, किसी भी श्रमण, या ब्राह्मण या किसी भी मनुष्यसे न बसा, अभी ही बना है। भन्ते! भगवान् उसको प्रथम परिभोग करें। भगवान्के पहिले परिभोग कर लेनेपर, पीछे पावा-वासी मल्ल परिभोग करेंगे, वह पावा-वासी मल्लोंके लिये दीर्घरात्र (=चिरकाल) तक हित सुखके लिये होगा।"

भगवान्ने मौन रह स्वीकार किया।

तब पावाके मल्ल भगवान्की स्वीकृति जान, आसनसे उठ भगवान्को अभिवादनकर प्रदक्षिणा-कर, जहाँ संस्थागार था, वहाँ गये। जाकर संस्थागारमें सब ओर फर्श बिछा, आसनोंको स्थापितकर, पानीके मटके रख, तेलके दीपक जलाकर, जहाँ भगवान् थे, वहाँ गये; जाकर भगवान्को अभिवादनकर० एक ओर खळे हो... बोले—

"भन्ते! संस्थागार सब ओर बिछा हुआ है, आसन स्थापित हैं, पानीके मटके रक्खे हैं, तेल-प्रदीप जलाये गये हैं। भन्ते! अब भगवान् जिसका काल समझें (वैसा करें)।"

तब भगवान् पहिनकर पात्र-चीवर ले भिक्षु-संघके साथ जहाँ संस्थागार था, वहाँ गये। जाकर पैर पखार, संस्थागारमें प्रवेशकर, पूर्वकी ओर मुँहकर, बीचके खम्भेके आश्रयसे बैठे। भिक्षु-संघ भी पैर पखार, संस्थागारमें प्रवेशकर पूर्वकी ओर मुँहकर, भगवान्को आगेकर पश्चिमकी भीतके सहारे बैठा। पावा-वासी मल्लभी पैर पखार, संस्थागारमें प्रवेशकर पच्छिमकी ओर मुँहकर, भगवान्को सामने करके पूर्वकी भीतके सहारे बैठे। तब भगवान्ने पावा-वासी मल्लोंको बहुत राततक धार्मिक-कथासे संदर्शित=समादपित, समुत्तेजित, संप्रहर्षितकर विसर्जित किया—

"वाशिष्टो! रात तुम्हारी बीत गई, अब तुम जिसका काल समझो (वैसा करो)।"

---

[1] पडरौनाके समीप पप-उर (=पावा-पुर) जि० गोरखपुर।

"अच्छा भन्ते !"...पावा-वासी मल्ल आसनसे उठकर अभिवादन, कर चले गये।"

तब मल्लोंके जानेके थोळीही देर बाद, भगवान्‌ने शांत (=तूष्णीभूत) भिक्षु-संघको देख, आयुष्मान् **सारिपुत्र**को आमंत्रित किया—"सारिपुत्र ! भिक्षु-संघ स्त्यान-मृद्ध-रहित है, सारिपुत्र ! भिक्षुओंको धर्म-कथा कहो; मेरी पीठ [1]अगिया रही है, मैं लेटूँगा।"

२—गुरुके मरनेपर जैनोंमें विवाद

आयुष्मान् सारिपुत्रने भगवान्‌को "अच्छा भन्ते !" कह उत्तर दिया। तब भगवान्‌ने चौपेती संघाटी बिछवा, दाहिनी करवटके बल, पैरपर पैर रख, स्मृति-संप्रजन्यके साथ, उत्थान-संज्ञा मनमें कर, सिंह-शय्या लगाई। उस समय **निगंठ नात-पुत्त** (=तीर्थंकर महावीर) अभी अभी **पावा**में काल किये थे। उनके काल करनेसे निगंठोंमें फूट पळ दो भाग हो गये थे। वह भंडन=कलह=विवादमें पळ, एक दूसरेको मुख (रूपी) शक्तिसे चीरते हुये विहर रहे थे—'तू इस धर्म-विनय (=मत, धर्म) को नहीं जानता, मैं इस धर्म-विनयको जानता हूँ'। 'तू क्या इस धर्मको जानेगा' ? 'तू मिथ्यारूढ है, मैं सत्यारूढ हूँ' 'मेरा (कथन अर्थ-) सहित है, तेरा अ-सहित है'। 'तूने पूर्व बोलने (की बात) को पीछे कहा, पीछे बोलने (की बात) को पहिले कहा'। 'तेरा (वाद) बिना विचारका उल्टा है। तूने वाद रोपा, (किन्तु) तू निग्रह-स्थानमें आगया (=निगृहीतोसि)'। 'जा वादसे छूटनेकेलिये फिरता फिर'। यदि सकता है तो समेट'।० मानो [2]नाथ-पुत्तिय निगंठोंमें एक युद्ध (=वध) ही चल रहा था। जो भी निगंठ नाथपुत्तके श्वेत वस्त्रधारी गृहस्थ शिष्य थे०।

आयुष्मान् सारिपुत्रने भिक्षुओंको आमंत्रित किया—

"आवुसो ! निगंठ नात-पुत्तने पावामें अभी अभी काल किया है। उनके काल करनेसे० निगंठ० भंडन=कलह=विवाद करते, एक दूसरेको मुख-शक्तिसे छेदते विहर रहे हैं—'तू इस धर्मको नहीं जानता०। निगंठ नात-पुत्तके जो श्वेतवस्त्रधारी गृही शिष्य हैं, वे भी **नातपुत्तिय** निगंठोंमें (वैसेही) निर्विण्ण=विरक्त=प्रति-वाण रूप हैं, जैसे कि वह (नात-पुत्तके) दुराख्यात, दुष्प्र-वेदित, अ-नैर्याणिक, अन्-उपशम-संवर्तनिक, अ-सम्यक्-संबुद्ध-प्रवेदित, प्रतिष्ठा-रहित, आश्रय-रहित धर्ममें। किन्तु आवुसो ! हमारे भगवान्‌का यह धर्म सु-आख्यात (=ठीकसे कहा गया), सु-प्रवेदित (=ठीकसे साक्षात्कार किया गया), नैर्याणिक (=दुःखसे पार करनेवाला), उपशम-संवर्तनिक (=शान्ति-प्रापक), सम्यक्-सम्बुद्ध-प्रवेदित (=बुद्धद्वारा जाना गया) है। यहाँ सबको ही अ-विरुद्ध वचनवाला होना चाहिये; विवाद नहीं करना चाहिये; जिससे कि यह ब्रह्मचर्य अध्वनिक= (चिर-स्थायी) हो, और वह बहुजन हितार्थ बहुजन-सुखार्थ, लोकके अनुकम्पाके लिये, देव-मनुष्योंके अर्थ=हित=सुखके लिये हो। आवुसो ! कैसे हमारे भगवान्‌का धर्म ० देव-मनुष्योंके अर्थ=हित=सुखके लिये होगा ?

३—बौद्ध-मन्तव्योंकी सूची

१—एकक—"आवुसो ! उन भगवान् जाननहार, देखनहार, अर्हत्, सम्यक् सम्बुद्धने **एक** धर्म ठीकसे बतलाया है। उसमें सबको ही अविरोध वचनवाला होना चाहिये, विवाद न करना चाहिये; जिसमें कि यह ब्रह्मचर्य अध्वनिक हो ०। कौनसा एक धर्म ? (१) सब प्राणी आहारपर स्थित (=निर्भर) हैं। आवुसो ! उन भगवान्‌ने ० यह एक धर्म यथार्थ बतलाया। इसमें सबको ही ०।

२—द्विक—"आवुसो ! उन भगवान्०ने **दो** धर्म यथार्थ कहे हैं।०। कौनसे दो? (१) नाम और रूप। अविद्या और भव (=आवागमनकी)-तृष्णा। भव (=नित्यता-) दृष्टि और विभव (=उच्छेद-) दृष्टि।

---

[1] अ. क. "क्यों अगियाती थी ? भगवान्‌के छै वर्षतक महातपस्या करते वक्त शरीरको बळा दुःख हुआ। तब पीछे बुढ़ापेमें उन्हें पीठमें वात (-रोग) उत्पन्न हुआ।"　[2] पृष्ठ २५२।

अह्रीकता (=निर्लज्जता), और अन्-अवत्राप्य (=संकोच-भयरहितता)। ह्री (=लज्जा) और अवत्रपा (=संकोच)। दुर्वचनता और पाप (=दुष्टकी)-मित्रता। सुवचनता और कल्याण (=सु) मित्रता। आपत्ति (=दोष)-कुशलता (=चतुराई), और आपत्ति-व्युत्थान (=०उठाना)-कुशलता। समापत्ति (=ध्यान) कुशलता, और समापत्ति-व्युत्थान-कुशलता। [1] धातु-कुशलता, और [2] मनसिकार-कुशलता। (१०) [3] आयतन-कुशलता, और [4] प्रतीत्य-समुत्पाद-कुशलता। स्थान (=कारण)-कुशलता, और अ-स्थानकुशलता। आर्जव (=सीधापन) और मार्दव (=कोमलता)। क्षांति (=क्षमा) और सौरत्य (=आचारयुक्तता)। साखिल्य (=मधुर वचनता) और प्रति-संस्तार (=वस्तु या धर्मका छिद्र-पिधान)। अविहिंसा (=अहिंसा) और शौचेय (=मैत्रीभावना)। मुषित-स्मृतिता (=स्मृति-लोप) और अ-संप्रजन्य (=ध्यान न देना)। स्मृति और संप्रजन्य (=ज्ञान, ख्याल)। इन्द्रिय-अगुप्त-द्वारता (=अ-जितेन्द्रियता), और भोजनमें अ-मात्रज्ञता (=भोजनमें अपने लिये मात्रा न जानना)। इन्द्रिय-गुप्त-द्वारता और भोजन-मात्रज्ञता। (२०) प्रतिसंख्यान (=अकंपन-ज्ञान)-बल और भावना-बल। स्मृति-बल और समाधि-बल। शमथ (=समाधि) और विपश्यना (=प्रज्ञा)। शमथ-निमित्त और विपश्यना-निमित्त। प्रग्रह (=चित्त-निग्रह) और अ-विक्षेप। शील-विपत्ति (=आचार-दोष), और दृष्टि-विपत्ति (=सिद्धान्त-दोष)। शील-सम्पदा (=आचारकी सम्पूर्णता) और दृष्टि-सम्पदा। शील-विशुद्धि (=कायिक वाचिक अदुराचार), और दृष्टि-विशुद्धि (=सत्यके अनुसार ज्ञान)। दृष्टि-विशुद्धि कहते हैं सम्यक्-दृष्टिके निरंतर अभ्यास (=प्रधान)को। संवेग कहते हैं संवेजनीय (=वैराग्य करनेवाले) स्थानोंमें संविग्न (-चित्तता) का कारण-पूर्वक निरंतर अभ्यास। (३०) कुशल (=उत्तम) धर्मोंमें अ-संतुष्टिता, और प्रधान (=निरंतर अभ्यास) में अ-प्रतिवानता (=निरालसता)। विद्या (=तीन विद्याओं) से विमुक्ति (=आस्रवोंसे चित्तकी विमुक्ति), और निर्वाण। (३२) आवुसो! उन भगवान्‌०ने इन दो (=जोळे) धर्मोंको ठीकसे कहा है ०।

३—**त्रिक**—"आवुसो! उन भगवान्‌०ने यह तीन धर्म यथार्थ ही कहे हैं ०।" कौनसे तीन? तीन अकुशल-मूल (=बुराइयोंकी जळ) हैं। कौनसे तीन०? लोभ अकुशल-मूल, द्वेष अकुशल-मूल, मोह अकुशल-मूल।

२—तीन कुशल-मूल हैं—अलोभ ०, अ-द्वेष ० और अ-मोह अकुशलमूल।

३—तीन दुश्चरित हैं—काय-दुश्चरित, वचन-दुश्चरित और मन-दुश्चरित।

४—तीन सुचरित हैं—काय-सुचरित, वचन-सुचरित, और मन-सुचरित।

५—तीन अकुशल (=बुरे) वितर्क—काम-वितर्क, व्यापाद (=द्रोह) ० विहिंसा ०।

६—तीन कुशल (=अच्छे)-वितर्क—नेक्खम्म (=निष्कामता)-वितर्क, अ-व्यापाद ०, अ-विहिंसा ०।

७—तीन अकुशल-संकल्प (=०वितर्क)—काम-संकल्प, व्यापाद ०, विहिंसा ०।

८—तीन कुशल संकल्प—नेक्खम्म-संकल्प, अव्यापाद ० अविहिंसा ०।

९—तीन अकुशल संज्ञायें—काम-संज्ञा, व्यापाद ०, विहिंसा ०।

१०—तीन कुशल संज्ञायें—नेक्खम्म-संज्ञा, अव्यापाद ० अ-विहिंसा ०।

११—तीन अकुशल धातु (=० तर्क-वितर्क)—काम-धातु, व्यापाद ०, विहिंसा ०।

---

[1] अ. क. 'धातु अठारह हैं—चक्षु, श्रोत्र, घ्राण, जिह्वा, काय, मन, रूप, शब्द, गंध, रस, स्प्रष्टव्य, धर्म, चक्षुर्विज्ञान, श्रोत्र-विज्ञान, घ्राण-विज्ञान, जिह्वाविज्ञान, कायविज्ञान, मनोविज्ञान।' [2] 'उन धातुओंको प्रज्ञासे जाननेकी निपुणता।' [3] आयतन बारह हैं, चक्षु, श्रोत्र, घ्राण, जिह्वा, काय, मन, रूप, शब्द, गंध, रस, स्प्रष्टव्य, धर्म।' [4] देखो महानिदान-सुत्त १५ (पृष्ठ ११०)।

१२—तीन कुशल धातु—निष्कामता धातु, अव्यापाद ०, अ-विहिंसा ०।

१३—दूसरे भी तीन धातु (=लोक)—कामधातु, रूप-धातु अ-रूप-धातु।

१४—दूसरे भी तीन धातु (=चित्त)—हीन-धातु, मध्यम-धातु, प्रणीत (=उत्तम)-धातु।

१५—तीन तृष्णायें—काम—तृष्णा, भव(=आवागमन) ०, विभव ०।

१६—दूसरी भी तीन तृष्णायें—काम—तृष्णा, रूप ०, अ-रूप ०।

१७—दूसरी भी तीन तृष्णायें—रूप—तृष्णा, अरूप ०, निरोध ०।

१८—तीन संयोजन (=बंधन)—सत्काय-दृष्टि, विचिकित्सा (=संदेह), शीलव्रत-परामर्श।

१९—तीन आस्रव (=चित्तमल)—काम—आस्रव, भव ०, अविद्या ०।

२०—तीन भव (=आवागमन)—काम(-धातुमें) ०, रूप ०, अरूप ०।

२१—तीन एषणायें (=राग)—काम—एषण, भव ०, ब्रह्मचर्य ०।

२२—तीन विध (=प्रकार)—मैं सर्वोत्तम हूँ, मैं समान हूँ, मैं हीन हूँ।

२३—तीन अध्व(=काल)—अतीत(=भूत)—अध्व, अनागत(=भविष्य) ०, प्रत्युत्पन्न (=वर्तमान) ०।

२४—तीन अन्त—सत्काय—अन्त, सत्काय-समुदय (=० उत्पत्ति) ०, सत्काय-निरोध ०।

२५—तीन वेदनायें (=अनुभव)—सुखा—वेदना, दुःखा ०, अदुःख-असुखा ०।

२६—तीन दुःखता—दुःख-दुखता, संस्कार ०, विपरिणाम ०।

२७—तीन राशियाँ—मिथ्यात्त्व-नियत—राशि, सम्यक्त्व-नियत, अ-नियत ०।

२८—तीन कांक्षायें(=सन्देह)—अतीतकालको लेकर कांक्षा=विचिकित्सा करता है, नहीं छूटता, नहीं प्रसन्न होता है। अनागत कालको लेकर ०। अब प्रत्युत्पन्न कालको ०।

२९—तीन तथागतके अरक्षणीय—आवुसो! तथागतका कायिक आचार परिशुद्ध है, तथागतको कायदुश्चरित नहीं है; जिसकी कि तथागत आरक्षा (=गोपन) करें—'मत दूसरा कोई इसे जान लें।' आवुसो! तथागतका वाचिक आचार परिशुद्ध है ०। ० तथागतका मानसिक आचार परिशुद्ध है ०।

३०—तीन किंचन (=प्रतिबंध)—राग—किंचन, द्वेष ०, मोह ०।

३१—तीन **अग्नियाँ**—राग—अग्नि, द्वेष ०, मोह ०।

३२—और भी तीन अग्नियाँ—आहवनीय—अग्नि, गार्हपत्य ०, दक्षिण ०।

३३—तीन प्रकारसे रूपोंका संग्रह—सनिदर्शन(=स्व-विज्ञान-सहित दर्शन)अ-प्रतिघ (=अ-पीडाकर)रूप; अ-निदर्शन सप्रतिघ ०; अ-निदर्शन अप्रतिघ ०।

३४—तीन **संस्कार**—पुण्य-अभिसंस्कार, अ-पुण्य-अभिसंस्कार, आनिंज्य(=आनेञ्ज) अभिसंस्कार।

३५—तीन **पुद्गल** (=पुरुष)—शैक्ष्य (=अमुक्त) ०, अ-शैक्ष्य (=मुक्त) ०, न-शैक्ष्य-न-अ-शैक्ष्य ०।

३६—तीन स्थविर (=वृद्ध)—जाति(=जन्मसे)—स्थविर, धर्म ०, सम्मति-स्थविर।

३७—तीन **पुण्य-क्रियावस्तु**—दानमय-पुण्यक्रियावस्तु, शीलमय ०, भावनामय ०।

३८—तीन दोषारोप (=चोदना)-वस्तु—देखे (दोष)से, सुने (दोष)से, शंका किये (दोष)से।

३९—तीन काम(=भोगोंकी)-उपपत्ति (=उत्पत्ति, प्राप्ति)—आवुसो! कुछ प्राणी वर्तमान काम(=भोग)उपपत्तिवाले हैं; वह वर्तमान कामोंके वशवर्ती होते हैं, जैसे कि मनुष्य, कुछ देवता, और कुछ विनिपातिक (=अधमयोनिवाले); यह प्रथम काम-उपपत्ति है। आवुसो! कुछ प्राणी

निर्मितकाम हैं, वह (स्वयं अपने लिये) निर्माणकर कामोंके वशवर्ती होते हैं; जैसे कि निर्माणरति-देव लोग; यह दूसरी काम-उपपत्ति है। आवुसो! कुछ प्राणी पर-निर्मित-काम हैं, वह दूसरोंके निर्मित कामोंके वशवर्ती होते हैं; जैसे कि पर-निर्मित-वशवर्ती देव लोग; यह तीसरी कामउपपत्ति है।

४०—तीन सुख-उपपत्तियाँ—आवुसो! कुछ प्राणी सुख उत्पन्नकर सुख-पूर्वक विहरते हैं; जैसे कि ब्रह्मकायिक देव लोग; यह प्रथम सुख-उपपत्ति है। आवुसो! कुछ प्राणी सुखसे अभिषण्ण=परि-षण्ण=परिपूर्ण=परिस्फुट हैं। वह कभी कभी उदान (=चित्तोल्लाससे निकला वाक्य) कहते हैं—'अहो सुख!' 'अहो सुख!!' जैसे कि आभास्वर देव ०। आवुसो! कुछ प्राणी सुखसे ० परिपूर्ण ०, हैं, वह उत्तम (सुखमें) संतुष्ट हो चित्त-सुखको अनुभव करते हैं, जैसे शुभ-कृत्स्न देव लोग। यह तीसरी सुख-उपपत्ति है।

४१—तीन प्रज्ञायें—शैक्ष्य (=अमुक्त-पुरुषकी)-प्रज्ञा, अ-शैक्ष्य (=मुक्त) ०, न-शैक्ष्य-न-अशैक्ष्य-प्रज्ञा।

४२—और भी तीन प्रज्ञायें—चिन्ता-मयी प्रज्ञा, श्रुतमयी ०, भावनामयी ०।

४३—तीन आयुध—श्रुत (=पढा)-आयुध ०, प्रविवेक (=विवेक) ०; प्रज्ञाविवेक ०।

४४—तीन इन्द्रियाँ—अन्-आज्ञातं-आज्ञास्यामि (=नजानेको जानूँगा)-इन्द्रिय, आज्ञा ०, आज्ञातावी (=अर्हत्-ज्ञान) ०।

४५—तीन चक्षु (=नेत्र)—मांस-चक्षु, दिव्य-चक्षु, प्रज्ञा-चक्षु।

४६—तीन शिक्षायें—अधिशील (=शीलविषयक)-शिक्षा, अधि-चित्त (=चित्तविषयक) ०, अधि-प्रज्ञा (=प्रज्ञाविषयक) ०।

४७—तीन भावनायें—काय-भावना, चित्त-भावना, प्रज्ञा-भावना।

४८—तीन **अनुत्तरीय** (=उत्तम, श्रेष्ठ)—दर्शन (=विपश्यना, साक्षात्कार)-अनुत्तरीय, प्रतिपद् (=मार्ग) ०, विमुक्ति (=अर्हत्व, निर्वाण)-अनुत्तरीय।

४९—तीन समाधि—स-वितर्क-सविचार-समाधि, अवितर्क-विचार-मात्र-समाधि, अवितर्क-अविचार-समाधि।

५०—और भी तीन समाधि—शून्यता-समाधि, आनिमित्त ०, अ-प्रणिहित-समाधि।

५१—तीन **शाचेय** (=पवित्रता)—काय ०, वाक् ०, मन-शौचेय।

५२—तीन **मौनेय** (=मौन)—काय ०, वाक् ०, मन-मौनेय।

५३—तीन **कौशल्य**—आय ०, अपाय (=विनाश) ०, उपाय-कौशल्य।

५४—तीन मद—आरोग्य-मद, यौवन-मद, जाति-मद।

५५—तीन **आधिपत्य** (=स्वामित्त्व)—आत्माधिपत्य, लोक०, धर्म ०।

५६—तीन **कथावस्तु** (=कथा-विषय)—अतीत कालको ले कथा कहे,—'अतीतकाल ऐसा था।' अनागत कालको ले कथा कहे—'अनागतकाल ऐसा होगा'। अबके प्रत्युत्पन्नकालको ले कथा कहे—'इस समय प्रत्युत्पन्न काल ऐसा है'।

५७—तीन **विद्यायें**—पूर्व-निवास-अनुस्मृतिज्ञान-विद्या (=पूर्वजन्म-स्मरण), प्राणियोंके च्युति (=मृत्यु)-उत्पाद (=जन्म)का ज्ञान ०, आस्रवोंके क्षयका ज्ञान ०।

५८—तीन **विहार**—दिव्य-विहार, ब्रह्म-विहार, आर्य-विहार।

५९—तीन **प्रातिहार्य** (=चमत्कार)—ऋद्धि०, आदेशना०, अनुशासनी-प्रातिहार्य। यह आवुसो! उन भगवान् ०।

४—चतुष्क—"आवुसो! उन भगवान् ०ने (यह) चार धर्म यथार्थ कहे हैं ०। कौनसे चार?

१—चार[1] **स्मृति-प्रस्थान**—आवुसो। भिक्षु कायामें ० कायानुपश्यी विहरता है। वेदनाओंमें०। लोकमें०। धर्ममें ० धर्मानुपश्यी ०।

२—चार सम्यक् प्रधान—(१) भिक्षु अनुत्पन्न पापक (=बुरे)=अकुशल धर्मोंकी अनुत्पत्तिके लिये रुचि उत्पन्न करता है, परिश्रम करता है, प्रयत्न करता है, चित्तको निग्रह=प्रधारण करता है। (२) उत्पन्न पापक=अकुशल धर्मोंके विनाशके लिये (३)०। अनुत्पन्न कुशल धर्मोंकी उत्पत्तिके लिये०। (४) उत्पन्न कुशल धर्मोंकी स्थिति, अ-विनाश, वृद्धि=विपुलता, भावनासे पूर्ति करनेके लिये०।

३—चार **ऋद्धिपाद**—आवुसो! भिक्षु (१) छन्द (=रुचिसे उत्पन्न)-समाधि (के)-प्रधान संस्कारसे युक्त ऋद्धिपादको भावना करता है। (२) चित्त-समाधि-प्रधान-संस्कारसे ०। (३) वीर्य (=प्रयत्न)-समाधि-प्रधान-संस्कार ०। (४) विमर्श-समाधि-प्रधान-संस्कार ०।

४—चार **ध्यान**—आवुसो! भिक्षु (१) [1]प्रथम ध्यानको प्राप्त हो विहरता है। (२) ० द्वितीय ध्यान ०। (३) ० तृतीय-ध्यान ०। (४) चतुर्थ-ध्यान ०।

५—चार **समाधि-भावना**—(१) ०आवुसो! (ऐसी) समाधि-भावना है, जो भावित होनेपर वृद्धि-प्राप्त होनेपर, इसी जन्ममें सुख-विहारके लिये होती है। (२) आवुसो! (ऐसी) समाधि-भावना है, जो भावित होनेपर, वृद्धि-प्राप्त होनेपर, ज्ञान-दर्शन (=साक्षात्कार) के लाभके लिये होती है। (३) आवुसो! ० स्मृति, सम्प्रजन्यके लिये होती है। (४) ० आस्रवोंके क्षयके लिये होती हैं। आवुसो! कौनसी समाधि-भावना है, जो भावित होनेपर, वहुली-कृत (=वृद्धि-प्राप्त) होनेपर इसी जन्ममें सुख-विहारके लिये होती है? आवुसो! भिक्षु ० प्रथम-ध्यान[2] ०, ० द्वितीय-ध्यान ०, ० तृतीय-ध्यान ०, ० चतुर्थ ध्यानको-प्राप्त हो विहरता है। आवुसो! यह समाधि-भावना भावित होनेपर ०। (१) आवुसो! कौनसी ० जो भावित होनेपर ० ज्ञान-दर्शनके लाभके लिये होती है? आवुसो! भिक्षु आलोक (=प्रकाश)-संज्ञा (=ज्ञान) मनमें करता है, दिन-संज्ञाका अधिष्ठान (=दृढ़-विचार) करता है—'जैसे दिन वैसी रात, जैसी रात वैसा दिन'। इस प्रकार खुले, बन्धन-रहित, मनसे प्रभा-सहित चित्तकी भावना करता है। आवुसो! यह समाधि-भावना भावित होनेपर ०। (३) आवुसो! कौनसी ० जो ० स्मृति, संप्रजन्यके लिये होती है? आवुसो! भिक्षुको विदित (=ज्ञानमें आई) वेदना (=अनुभव) उत्पन्न होती हैं, विदित (ही) ठहरती हैं, विदित (ही) अस्तको प्राप्त होती हैं। विदित संज्ञा उत्पन्न होती है, ० ठहरती ०, ० अस्त होती है। विदित वितर्क उत्पन्न ०, ठहरते०, अस्त होते हैं। आवुसो! यह समाधि-भावना० स्मृति-संप्रजन्यके लिये होती (४) है। आवुसो! कौनसी है० जो आस्रव-क्षयके लिये होती है? आवुसो! भिक्षु पाँच उपादान-स्कंधोंमें उदय (=उत्पत्ति)-व्यय (=विनाश)-अनुपश्यी (=देखनेवाला) हो विहरता है—'ऐसा रूप है, ऐसा रूपका समुदय (=उत्पत्ति), ऐसा रूपका अस्तंगमन (=अस्त होना); ऐसी वेदना है ०, ऐसी संज्ञा ०, ० संस्कार ०, ० विज्ञान ०। यह आवुसो ०।

६—चार **अप्रामाण्य** (=अ-सीम)—यहाँ आवुसो! भिक्षु (१) मैत्री-युक्त चित्तसे ०[3] विहरता है ०। (२) करुणा-युक्त ०। (३) ० मुदिता-युक्त ०। (४) ० उपेक्षा-यक्त ०।

७—चार **अरूप्य** (=रूप-रहित-ता)—आवुसो! (१) रूप-संज्ञाओंके सर्वथा अतिक्रमणसे, प्रतिघ (=प्रतिहिंसा) संज्ञाके अस्त होनेसे, नानात्व (=नानापन)-संज्ञाके मनमें न करनेसे, 'आकाश अनन्त है' इस आकाश-आनन्त्य (=आकाशकी अनन्तता)-आयतन (=स्थान) को प्राप्त हो विहार करता है। आकाशानन्त्यायतनको सर्वथा अतिक्रमण करनेसे 'विज्ञान अनन्त है' इस, विज्ञान-आनन्त्य-आयतनको प्राप्त हो, विहार करता है। विज्ञानानन्त्यायतनको सर्वथा अतिक्रमण करनेसे,

---

[1] **देखो महासतिपट्ठान-सुत्त २२ पृष्ठ १९०।** [2] पृष्ठ २९-३२। [3] पृष्ठ ९१।

'कुछ नहीं (=नत्थि किंचि)' इस आकिंचन्य-आयतनको प्राप्त हो, विहार करता है। आकिंचन्यायतनके सर्वथा अतिक्रमण करनेसे, नैवसंज्ञा (=न होश ही है)-न-असंज्ञा-आयतनको प्राप्त हो विहार करता है।

८—चार **अपाश्रयण** (=अवलंबन)—आवुसो! भिक्षु (१) संख्यान (=जान) कर किसीको सेवन करता है। (२) संख्यानकर किसी (=एक)को स्वीकार करता है। (३) संख्यानकर किसीको परिवर्जन (=अस्वीकार) करता है। (४) संख्यानकर किसीको हटाता है (=विनोदेति)।

९—चार **आर्य-वंश**—आवुसो! भिक्षु (१) जैसे तैसे चीवरसे सन्तुष्ट होता है। जैसे तैसे चीवरसे सन्तुष्ट होनेका प्रशंसक होता है। चीवरके लिये अनुचित नहीं करता। चीवरको न पाकर दुःखित नहीं होता, चीवरको पाकर अलोभी, अलिप्त, अमूर्च्छित, अनासक्त, दुष्परिणाम-दर्शी=निःसरण प्रज्ञावाला हो, परिभोग (=उपभोग) करता है। (अपने) उस जिस तिस चीवरके सन्तोषसे, अपनेको बळा नहीं मानता, दूसरेको नीच नहीं समझता। जो कि वह दक्ष, निरालस, संप्रज्ञान (=जाननेवाला) प्रतिस्मृत (=याद रखनेवाला), होता है; यह कहा जाता है, आवुसो! भिक्षु पुराने अग्रण्य (=सर्वोत्तम) आर्य-वंशमें स्थित है। (२) और फिर आवुसो! भिक्षु जैसे तैसे पिंडपात (=भिक्षा)से सन्तुष्ट होता है ०। (३) ० जैसे तैसे शयनासन (=निवास)से ०। (४) और फिर आवुसो! प्रहाण (=त्याग)में रमण करनेवाला, प्रहाण-रत होता है। भावनाराम=भावनारत होता है। उस प्रहाणारामतासे प्रहाण-रतिसे, भावनारामतासे भावना-रतिसे न अपनेको बळा मानता है, न दूसरेको नीच मानता है ०।

१०—चार **प्रधान** (=अभ्यास, योग)—संवर (=संयम)-प्रधान, प्रहाण ०, भावना ०, अनुरक्षणा-प्रधान। (१) आवुसो! संवर-प्रधान क्या है? आवुसो! भिक्षु चक्षु (=आँख)से रूप देख निमित्त (=रंग आकार आदि)-ग्राही नहीं होता, अनुव्यंजन-ग्राही नहीं होता। जिसमें कि चक्षु-इन्द्रिय-अधिकरणको अ-संवृत (=अ-रक्षित) रख विहरते समय अभिध्या (=लोभ), दौर्मनस्य पापक=अ-कुशल-धर्म उसे मलिन न करें, इसके लिये संवर (=संयम, रक्षा)के लिये यत्न करता है। चक्षु-इन्द्रियकी रक्षा करता है। चक्षु-इन्द्रियमें संयम-शील होता है। श्रोत्रसे शब्द सुनकर ०। घ्राणसे गंध सूँघकर ०। जिह्वासे रस चखकर ०। काय (=त्वक्)से स्पर्श छूकर ०। मनसे धर्मको जानकर०। यह कहा जाता है, आवुसो! संवर-प्रधान। (२) क्या है, आवुसो! प्रहाणप्रधान? आवुसो! भिक्षु उत्पन्न काम-वितर्कको नहीं पसन्द करता, अस्वीकार (=प्रहाण) करता है, हटाता है, अन्त करता है, नाशको पहुँचाता है। उत्पन्न व्यापाद (=द्रोह)-वितर्कको ०। उत्पन्न विहिंसा-वितर्कको ०। तव तब उत्पन्न हुए, पाप=अकुशल धर्मोंको ०। आवुसो! यह प्रहाण-प्रधान कहा जाता है। (३) क्या है आवुसो! भावना-प्रधान? आवुसो! भिक्षु विवेक-निःश्रित (=०आश्रित), विराग निःश्रित निरोध-निःश्रित व्यवसर्ग (=त्याग)-परिणामवाले [1]स्मृति-संबोध्यंगकी भावना करता है। धर्मविचय-संबोध्यंगकी भावना करता है। ० वीर्य-संबोध्यंग ०। ० प्रीति-सं०। ० प्रश्रब्धि-संबोध्यंग ०। ० समाधि-संवोध्यंग ०। ० उपेक्षा-संबो०। यह कहा जाता है, आवुसो! (४) भावना-प्रधान। क्या है, आवुसो! अनुरक्षणा-प्रधान? आवुसो! भिक्षु उत्पन्न हुए अस्थिक[2]-संज्ञा, पुलवक-संज्ञा, विनीलक-संज्ञा, विच्छिद्रकसंज्ञा, उद्धुमातक संज्ञा (रूपी) उत्तम (=भद्रक) समाधि-निमित्तोंकी रक्षा करता है। यह आवुसो! अनुरक्षणा-प्रधान है।

११—चार **ज्ञान**—धर्म-विषयक-ज्ञान, अन्वय-ज्ञान, परिच्छेद-ज्ञान, संमति-ज्ञान।

१२—और भी चार ज्ञान—दुःख-ज्ञान, दुःख-समुदय-ज्ञान, दुःख-निरोध-ज्ञान, दुःख-निरोध-गामिनी प्रदिपद्का ज्ञान।

---

[1] १९४-५।　　[2] देखो श्मशानयोग पृष्ठ १९२।

१३––चार स्रोतआपत्तिके अंग––सत्पुरुष-सेवन, सद्धर्म-श्रमण, योनिशःमनसिकार (=कारण-पूर्वक विचार), धर्मानुधर्म-प्रतिपत्ति।

१४––चार स्रोत-आपन्नके अंग––आवुसो! आर्य-श्रावक (१) बुद्धमें अत्यन्त प्रसाद (=श्रद्धा) से युक्त होता है—[1]वह भगवान् अर्हत् सम्यक्, संबुद्ध (=परम ज्ञानी), विद्या और आचरणसे संपन्न, सुगत (=सुंदर गतिको प्राप्त), लोकविद्, पुरुषोंको सन्मार्गपर लानेके लिये अनुपम चाबुक सवार, देव-मनुष्योंके उपदेशक बुद्ध भगवान् हैं'। (२) धर्ममें अत्यन्त प्रसादसे युक्त होता है—[2]'भगवान्का धर्म स्वाख्यात (=सुंदर व्याख्यात), है वह इसी शरीरमें फल देनेवाला (सांदृष्टिक), सद्यः फलप्रद (=अकालिक), यहीं दिखाई देनेवाला, (निर्वाणके) पास ले जानेवाला, विज्ञ (पुरुषों)को अपने अपने (ही) भीतर विदित होनेवाला है'। (३) संघमें०[3] भगवान्का शिष्य-संघ सुमार्गारूढ़ है, भगवान्का शिष्य-संघ सीधे मार्गपर आरूढ़ है, ० न्याय मार्गपर आरूढ़ है, ० ठीक मार्गपर आरूढ़ है। यह जो चार पुरुष-युगल और आठ पुरुष-पुद्गल[4] है, यही भगवान्का शिष्य-संघ है; जो कि आह्वान करने योग्य है, पाहुना बनने योग्य है, दान देने योग्य है, हाथ जोळने योग्य है, और लोकके लिये पुण्य (बोने)का क्षेत्र है। (४) अ-खंड=अछिद्र, अ-शबल=अ-कल्मष, योग्य=विज्ञ-प्रशंसित, अपरामृष्ट (=अनिंदित), समाधिगामी, आर्य, कमनीय (=कांत) शीलोंसे युक्त होता है।

१५––चार **श्रामण्य**(=भिक्षुपनके)फल––स्रोतआपत्ति-फल, सकृदागामि-फल, अनागामि-फल, अर्हत्‌फल।

१६––चार **धातु** (=महाभूत)––पृथिवी-धातु, आप-धातु, तेज-धातु, वायु-धातु।

१७––चार **आहार**––(१) औदारिक (=स्थूल) या सूक्ष्म कवलीकार आहार। (२) स्पर्श०। (३) मन-संचेतना ०। (४) विज्ञान ०।

१८––चार **विज्ञान** (=चेतन, जीव)-**स्थितियाँ**––(१) आवुसो! रूप प्राप्तकर ठहरे, रूपमें रमण करते, रूपमें प्रतिष्ठित हो, विज्ञान स्थित होता है, नन्दी (=तृष्णा)के सेवनसे वृद्धि=विरूढ़ताको प्राप्त होता है। (२) वेदना प्राप्तकर ०। (३) संज्ञा प्राप्तकर ०। (४) संस्कार प्राप्तकर ०।

१९––चार अगति-गमन––छन्द (=राग)-गति जाता है, द्वेष-गति ०, मोह-गति ०, भय-गति ०।

२०––चार तृष्णा-उत्पाद (=०उत्पत्ति)––(१) आवुसो! भिक्षुको चीवरके लिये तृष्णा उत्पन्न होती है। (२) ० पिंडपातके लिये ०। (३) ० शयनासन (=निवास)०। (४) अमुक जन्म-अजन्म (=भवाभव)के लिये०।

२१––चार **प्रतिपद्** (=मार्ग)––(१) दुःखवाली प्रतिपद् और देरसे ज्ञान। (२) दुःखवाली प्रतिपद् और क्षिप्र (=जल्दी) ज्ञान। (३) सुखवाली (=सहल) प्रतिपद् और देरसे ज्ञान। (४) सुखवाली प्रतिपद् और जल्दी ज्ञान।

२२––और भी चार प्रतिपद्––अ-क्षमा-प्रतिपद्। क्षमाप्रतिपद्। दमकी प्रतिपद्। शमकी प्रतिपद्।

२३––चार **धर्मपद**––अन्-अभिध्या (=अ-लोभ)-धर्मपद। अ-व्यापाद (=अ-द्रोह-) ०। सम्यक्-स्मृति ०। सम्यक्-समाधि ०।

---

[1] वही बुद्धानुस्मृति है। [2] धर्मानुस्म्। [3] संघानुस्मृति।
[4] देखो आठ दक्षिणेय पृष्ठ २९६।

२४—चार **धर्म-समादान**—(१) आवुसो ! वैसा धर्म-समादान (=०स्वीकार), जो वर्तमानमें भी दुःखमय, भविष्यमें भी दुःख-विपाकी (२) ०वर्तमानमें दुःखमय, भविष्यमें सुख-विपाकी। (३)०वर्तमानमें सुख-मय, भविष्यमें दुःख-विपाकी। (४) ० वर्तमानमें सुख-मय, और भविष्यमें सुख-विपाकी।

२५—चार **धर्म-स्कन्ध**—शील-स्कन्ध (=आचार-समूह)। समाधि-स्कन्ध। प्रज्ञा-स्कन्ध। विमुक्ति-स्कन्ध।

२६—चार **बल**—वीर्य-बल। स्मृतिबल। समाधि-बल। प्रज्ञाबल।

२७—चार **अधिष्ठान** (=संकल्प)—प्रज्ञा-बल। सत्य ०। त्याग ०। उपशम ०।

२८—चार **प्रश्न-व्याकरण** (=सवालका जवाब)—एकांश-(=है या नहीं एकमें)-व्याकरण करने लायक प्रश्न। प्रतिपृच्छा (=सवालके रूपमें) व्याकरणीय प्रश्न। विभज्य (=एक अंश हाँ भी, दूसरा अंश नहीं भी करके) व्याकरणीय प्रश्न। स्थापनीय (=न उत्तर देने लायक़) प्रश्न।

२९—चार कर्म—आवुसो ! (१) कृष्ण (=काला, बुरा) कर्म और कृष्ण-विपाक (=बुरे परिणाम वाला)। (२) ० शुक्लकर्म शुक्ल-विपाक। (३) शुक्ल-कृष्ण-कर्म, शुक्ल-कृष्ण-विपाक। (४)० अकृष्ण-अ-शुक्लकर्म, अकृष्ण-अशुक्ल-विपाक।

३०—चार साक्षात्करणीय धर्म—(१) पूर्व-निवास (=पूर्व-जन्म) स्मृतिसे साक्षात्करणीय। (२) प्राणियोंका जन्म-मरण (=च्युति-उत्पाद), चक्षुसे साक्षात्करणीय। (३) आठ विमोक्ष, कायासे०। (४) आस्रवोंका क्षय, प्रज्ञासे ०।

३१—चार **ओघ** (=बाढ़)—काम-ओघ। भव (=जन्म)०। दृष्टि (=मतवाद)०। अविद्या०।

३२—चार योग (=मिलना)—काम-योग। भव०। दृष्टि०। अविद्या०।

३३—चार विसंयोग(=वियोग)—काम-योग-विसंयोग। भवयोग०। दृष्टियोग०। अविद्यायोग०।

३४—चार गन्ध—अभिध्या (=लोभ)-काय-गन्ध। व्यापाद (=द्रोह) कायगन्ध। शील-व्रत-परामर्श०। 'यही सच है' पक्षपात ०।

३५—चार **उपादान**—काम-उपादान। दृष्टि ०। शील-व्रत-परामर्श ०। आत्म-वाद ०।

३६—चार **योनि**—अंडजयोनि। जरायुज योनि। संस्वेदज०। औपपातिक (=अयोनिज)०।

३७—चार गर्भ-अवक्रान्ति (=गर्भप्रवेश)—(१) आवुसो ! कोई कोई (प्राणी) ज्ञान (=होश) बिना माताकी कोखमें आता है, ज्ञान-बिना मातृ-कुक्षिमें ठहरता है, ज्ञानबिना मातृ-कुक्षिसे निकलता है; यह पहली गर्भावक्रान्ति है। (२) और फिर आवुसो ! कोई कोई ज्ञान-सहित मातृकुक्षिमें आता है, ज्ञान-बिना ० ठहरता है, ज्ञान-बिना ० निकलता है ०। (३) ० ज्ञान-सहित० आता है, ज्ञान-सहित ० ठहरता है, ज्ञान-बिना ० निकलता है ०। (४)० ज्ञान-सहित० आता है, ज्ञान-सहित० ठहरता है, ज्ञान-सहित ० निकलता है ०।

३८—चार **आत्म-भाव-प्रतिलाभ** (=शरीर-धारण)—(१) आवुसो ! (वह) आत्म-भाव-प्रतिलाभ जिस आत्म-भाव-प्रतिलाभमें आत्म-संचेतना (=अपनेको जानना) ही पाता है, पर-संचेतना, नहीं पाता (२) ० पर संचेतनाको ही पाता है, आत्मसंचेतनाको नहीं। (३) ० आत्म-संचेतना भी ०, पर-संचेतना भी ० (४) ०। न आत्म-संचेतना ०, न पर-संचेतना ०।

३९—चार **दक्षिणा-विशुद्धि** (=दान-शुद्धि)—(१) आवुसो ! दक्षिणा (=दान) दायकसे शुद्ध किन्तु प्रतिग्राहकसे नहीं (२) ० प्रतिग्राहकसे शुद्ध०, किन्तु दायकसे नहीं। (३) ० न दायकसे०, न प्रतिग्राहकसे ०। (४) ० दायकसे भी ०, प्रतिग्राहकसे भी ०।

४०—चार **संग्रह-वस्तु**—दान, वैयावर्त्य (=सेवा), अर्थ-चर्या, समानार्थता।

४१—चार **अनार्य-व्यवहार**—मृषावाद (=झूठ), पिशुन-वचन (=चुगली), संप्रलाप (=बकवाद), पुरुष-वचन।

४२—चार **आर्य-व्यवहार**—मृषा-वाद-विरतता, पिशुन-वचन-विरतता, संप्रलाप-विरतता, परुष-वचन-विरतता।

४३—चार अनार्य-व्यवहार—अदृष्टमें दृष्ट-वादी बनना, अ-श्रुतमें श्रुत-वादिता, अ-स्मृतमें स्मृतवादिता, अ-विज्ञातमें विज्ञात-वादिता।

४४—और भी चार **अनार्य-व्यवहार**—दृष्टमें अदृष्ट-वादिता, श्रुतमें अश्रुत-वादिता। स्मृतिमें अस्मृतवादिता, विज्ञातमें अ-विज्ञात-वादिता।

४५—और भी चार **आर्य-व्यवहार**—दृष्टमें दृष्टवादिता, श्रुतमें श्रुत-वादिता, स्मृतमें स्मृत-वादिता, विज्ञातमें विज्ञात-वादिता।

४६—चार **पुद्गल** (=पुरुष)—(१) आवुसो! कोई कोई पुद्गल आत्मं-तप, अपनेको संताप देनेमें लगा रहता है।(२) कोई कोई पुद्गल परन्तप, पर(=दूसरे)को संताप देनेमें लगा रहता है। (३) ० आत्मं-तप ० भी ० रहता है, परन्तप, भी ०। (४) ० न आत्मं-तप ०, न परन्तप ०; वह अनात्मंतप अपरंतप हो इसी जन्ममें शोकरहित, सुखित, शीतल, सुखानुभवी ब्रह्मभूत आत्माके साथ विहार करता है।

४७—और भी चार **पुद्गल**—(१)आवुसो! कोई कोई पुद्गल आत्म-हितमें लगा रहता है, परहितमें नहीं। (२) ० परहितमें लगा रहता है, आत्महितमें नहीं। (३) ० न आत्म-हितमें लगा रहता है, न परहितमें। (४) ० आत्महितमें भी लगा रहता है, पर-हितमें भी०।

४८—और भी चार पुद्गल—(१) तम तम-परायण। (२) तम ज्योति-परायण। (३) ज्योति तमपरायण (४) ज्योति ज्योति-परायण।

४९—और भी चार पुद्गल—(१) श्रमण अचल। (२) श्रमण पद्म (=रक्त कमल)। (३) श्रमण-पुंडरीक (=श्वेतकमल)। (४) श्रमणोंमें श्रमण-सुकुमार।

यह आवुसो! उन भगवान् ०।

(इति) प्रथम भाणवार ॥१॥

५—**पंचक**—"आवुसो! उन भगवान् ० ने पाँच धर्म यथार्थ कहे हैं०। कौनसे पाँच?—

१—पाँच स्कंध—रूप०, वेदना०, संज्ञा०, संस्कार०, विज्ञान-स्कंध।

२—पाँच **उपादान-स्कन्ध**—रूप-उपादान-स्कन्ध, वेदना०, संज्ञा०, संस्कार०, विज्ञान-उपादानस्कन्ध।

३—पाँच **काम-गुण**—(१) चक्षुसे विज्ञेय इष्ट=कान्त=मनाप, प्रिय, काम-सहित=रंजनीय (=चित्तको रंजन करनेवाले) रूप। (२) श्रोत-विज्ञेय ० शब्द। (३) घ्राण-विज्ञेय ० गन्ध। (४) जिह्वा-विज्ञेय ० रस। (५) काम-विज्ञेय ० स्पर्श।

४—पाँच गति—निरय (=नर्क)। तिर्यक् (=पशु पक्षी आदि) योनि। प्रेत्य-विषय (=भूत प्रेत आदि)। मनुष्य। देव।

५—पाँच **मात्सर्य** (=हसद)=आवासमात्सर्य, कुल ०, लाभ ०, वर्ण ०, धर्म ०।

६—पाँच **नीवरण**—कामच्छन्द(=काम-राग) ०, व्यापाद ०, स्त्यान-मृद्ध ०। औद्धत्य-कौकृत्य ०, विचिकित्सा ०।

७—पाँच **अवरभागीय** संयोजन—सत्काय-दृष्टि, विचिकित्सा, शील-व्रत-परामर्श, कामच्छन्द, व्यापाद।

८—पाँच **उर्ध्व-भागीय** संयोजन—रूप-राग, अरूप-राग, मान, औद्धत्य, अविद्या।

९—पाँच **शिक्षापद**—प्राणातिपात(=प्राण-बध)-विरति, अदत्तादान-विरति, काम-मिथ्याचारविरति, मृषावाद-विरति, सुरा-मेरय-मद्य-प्रमादस्थान-विरति।

१०--पाँच **अभव्य** (=अयोग्य) स्थान--(१) आवुसो! क्षीणास्रव (=अर्हत्) भिक्षु जानकर प्राण-हिंसा करनेके अयोग्य हैं। (२) अदत्तादान (=चोरी)=स्तेय करनेके अयोग्य है। (३) ० मैथुन-सेवन करनेके अयोग्य हैं। (४) ० जानकर मृषावाद (=झूठ बोलने)के ०। (५) ० सन्निधि-कारक हो (=जमाकर) कामोंको भोगकरनेके ०; जैसे कि पहिले गृहस्थ होते वक्त था।

११--पाँच **व्यसन**--ज्ञातिव्यसन, भोग०, रोग०, शील०, दृष्टि०। आवुसो! प्राणी ज्ञाति-व्यसनके कारण या भोगव्यसनके कारण, या रोगव्यसनके कारण, काया छोळ मरनेके बाद अपाय... दुर्गति... विनिपात, निरय (=नर्क)को प्राप्त होते हैं। आवुसो! शीलव्यसनके कारण या दृष्टि-व्यसनके कारण प्राणी०।

१२--पाँच सम्पद् (=प्राप्ति)--ज्ञाति-सम्पद्, भोग०, आरोग्य०, शील०, दृष्टि०। आवुसो! प्राणी ज्ञाति-सम्पद्के कारण०, भोग-सम्पद्०, आरोग्य-सम्पद्के कारण काया छोळ मरनेके बाद सुगति ...स्वर्गलोकमें नहीं उत्पन्न होते। आवुसो! शीलसंपद्के कारण या दृष्टिसंपद्के कारण प्राणी०।

१३--पाँच **आदिनव** (=दुष्परिणाम) हैं, शील-विपत्ति (=आचार-दोष)के कारण दुःशील (पुरुष)को--(१) आवुसो! शील-विपन्न=दुःशील(=दुराचारी) प्रमादसे बळी भोग-हानिको प्राप्त होता है, शील-विपन्न दुःशीलके लिये यह प्रथम दुष्परिणाम है। (२) और फिर आवुसो! शील-विपन्न,=दुःशीलके लिये बुरे निन्दा-वाक्य उत्पन्न होते हैं, यह दूसरा दुष्परिणाम है। (३) और फिर आवुसो! शील-विपन्न=दुःशील, चाहे क्षत्रिय-परिषद्, चाहे ब्राह्मण-परिषद, चाहे गृहपति-परिषद्, चाहे श्रमण-परिषद्, चाहे जिस परिषद् (=सभा)में जाता है, अ-विशारद होकर, मूक होकर, जाता है। यह तीसरा०। (४) और फिर आवुसो! शील-विपन्न=दुःशील, संमूढ़ (=मोहप्राप्त) होकर काल करता है, यह चौथा ०। (५) और फिर आवुसो! शील-विपन्न काया छोळ मरनेके बाद, अपाय=दुर्गति=विनिपात, निरय (=नर्क)में उत्पन्न होता है, यह पाँचवाँ ०।

१४--पाँच गुण (=**आनृशंस्य**) हैं, शील-सम्पदासे शीलवान्को--(१) आवुसो! शील-सम्पन्न शीलवान्को अप्रमादके कारण, बळी भोग-राशिकी प्राप्ति होती है; शीलवान्को शील-संपदासे यह प्रथम गुण है। (२) ० सुन्दर कीर्ति शब्द उत्पन्न होते हैं०। (३) ० जिस जिस परिषद्में जाता है, विशारद होकर, अ-मूक होकर, जाता है०। (४) ० अ-संमूढ़ हो काल करता है०। (५) ० काया छोळ मरनेके बाद सुगति=स्वर्गलोकमें उत्पन्न होता है०।

१५--पाँच धर्मोको अपनेमें स्थापितकर आवुसो!... आरोपी (=दूसरेपर दोषारोप करनेवाले) भिक्षुको दूसरेपर आरोप करना चाहिये--(१) कालसे कहूँगा, अकालसे नहीं। (२) भूत (=यथार्थ) कहूँगा, अभूत नहीं। (३) मधुर कहूँगा, कटु नहीं। (४) अर्थ-संहित (=स-प्रयोजन) कहूँगा, अनर्थसंहित नहीं। (५) मैत्री-भावसे कहूँगा, द्रोह-चित्तसे नहीं।...।

१६--पाँच **प्रधानीय** (=प्रधानके) अंग--(१) यहाँ आवुसो! भिक्षु श्रद्धालु होता है, तथागतकी बोधि (=परमज्ञान)पर श्रद्धा रखता है--ऐसे वह भगवान् अर्हत्, सम्यक् संबुद्ध०। (२) आवाधा (=रोग)-रहित आतंक-रहित होता है। न बहुत शीतल, न बहुत उष्णसम-विपाक-वाली, प्रधान(=योगाभ्यास)के योग्य ग्रहणी (=पाचनशक्ति)से युक्त होता है। (३) शास्ताके पास, या विज्ञोंके पास, या स-ब्रह्मचारियोंके पास अपनेको यथाभूत (=जैसा है वैसा) प्रकट करनेवाला, अशठ= अ-मायावी होता है। (४) अकुशल धर्मोंके विनाशके लिये, कुशल धर्मोंकी प्राप्तिके लिये, आरब्ध-वीर्य (=यत्नशील) हो विहरता है; कुशल धर्मोंमें स्थाम-वान्=दृढ़पराक्रम=धुरा (कंधेसे) न फेंकनेवाला (होता है)। (५) निर्बेधिक (=अन्तस्तल तक पहुँचनेवाली), सम्यक् दुःख-क्षयकी ओर ले जाने-वाली, उदय-अस्त-गामिनी, आर्य प्रज्ञासे संयुक्त, प्रज्ञावान् होता है।

१७--पाँच शुद्धावास (=देवलोक विशेष)--अविभ, अतप्पं (=अतप्प), सुदस्स (=सुदर्श), सुदस्सी (=सुदर्शी), अकनिष्ट।

१८--पाँच अनागामी--अन्तरापरिनिर्वायी, उपहत्य-परिनिर्वायी, असंस्कार०, स-संस्कार०, ऊर्ध्वस्रोत-अकनिष्ठ-गामी।

१९--पाँच **चेतोखिल** (=चित्तके कीले)--(१) आवुसो! भिक्षु शास्ता (=धर्माचार्य) में कांक्षा =विचिकित्सा (=संदेह) करता है, (संदेह)-मुक्त नहीं होता, प्रसन्न नहीं होता। उसका चित्त उद्योग-के लिये, अनुयोगके लिये, सातत्य (=निरन्तर लगन) के लिये प्रधानके लिये नहीं झुकता; जो कि यह इसका चित्त० नहीं झुकता; यह प्रथम चेतो-खिल (चित्त-कील) है। (२) और फिर आवुसो! भिक्षु धर्ममें कांक्षा=विचिकित्सा करता है०। (३) ० संघमें कांक्षा=विचिकित्सा करता है०। (४) सब्रह्मचारियोंमें दुष्ट-चित्त, असन्तुष्ट-मन, कील समान, कुपित होता है; जो वह आवुसो! भिक्षु सब्रह्म-चारियोंमें ० कुपित होता है; (इसलिये) उसका चित्त ० प्रधानके लिये नहीं झुकता, यह पाँचवाँ चेतो-खिल है।

२०--पाँच **चित्त-विनिबन्ध**--(१) आवुसो! भिक्षु कामों (=कामवासनाओं) में अवीतराग अ-वीतच्छन्द अविगत-प्रेम अविगत-पिपास, अविगत-परिदाह अविगत-तृष्णा (=तृष्णा-रहित नहीं) होता; उसका चित्त ० प्रधानके लिये नहीं झुकता। जो इसका चित्त० नहीं झुकता, यह प्रथम चित्त-विनिबन्ध है। (२) और आवुसो! कायामें ० अविगत-तृष्णा होता ०। (३) रूपमें अ-वीत-राग० होता है०। (४) और फिर आवुसो! भिक्षु यथेच्छ पेटभर खाकर, शय्या-सुख, स्पर्श-सुख, मृद्ध (= आलस्य) सुख लेते विहरता है०। (५) और फिर आवुसो! भिक्षु किसी एक देव-निकाय (=देव-लोक) की इच्छासे ब्रह्मचर्य-पालन करता है--'इस शील, व्रत, तप, ब्रह्मचर्यसे मैं (अमुक) देव...होऊँगा'। जो आवुसो! वह भिक्षु किसी एक देव-निकायकी इच्छासे ब्रह्मचर्य-पालन करता है०; उसका चित्त० प्रधानके लिये नहीं झुकता; ०; यह पाँचवाँ चित्त-विनिबंध है।

२१--पाँच इन्द्रिय--चक्षु-इन्द्रिय, श्रोत्र०, घ्राण०, जिह्वा, काया (=त्वक्)०।

२२--और भी पाँच इन्द्रिय--सुख-इन्द्रिय, दुःख०, न-सुख-न-दुख०, सौमनस्य०, उपेक्षा०।

२३--और भी पाँच इन्द्रिय--श्रद्धा-इन्द्रिय, वीर्य०, स्मृति०, समाधि, प्रज्ञा०।

२४--पाँच निःसरणीय-धातु--(१) आवुसो! भिक्षुको काम (=भोग) में मन करते, काममें चित्त नहीं दौळता, प्रसन्न नहीं होता, स्थित नहीं होता, विमुक्त नहीं होता; किन्तु, नैष्काम्यको मनमें करते चित्त दौळता, प्रसन्न होता, स्थित होता, विमुक्त होता है। उसका वह चित्त सुगत, सुभावित, सु-उत्थित, सु-विमुक्त, कामोंसे वियुक्त होता है; और कामोंके कारण जो आस्रव, विघात, परिदाह (=जलन) उत्पन्न होते हैं, उनसे वह मुक्त है; उस वेदनाको वह नहीं झेलता--यह कामोंका निःसरण कहा गया है। (२) और फिर आवुसो! भिक्षुको व्यापाद (=द्रोह) मनमें करते व्यापादमें चित्त नहीं दौळता०; किन्तु अव्यापाद (=अद्रोह) को मनमें करते०; यह व्यापादका निस्सरण कहा गया है। (३) ० भिक्षुको विहिंसा (=हिंसा) मनमें करते०; किन्तु, अ-विहिंसाको मनमें करते०; यह विहिंसा-निस्सरण कहा गया है। (४) ० रूपोंको मनमें करते०; किन्तु, अ-रूपको मनमें करते०; यह रूपोंका निस्सरण कहा गया है। (५) और फिर आवुसो! भिक्षुको सत्काय (=आत्मवाद) मनमें करते०; किन्तु, सत्काय-निरोधको मनमें करते०; यह सत्कायका निस्सरण कहा गया है।

२५--पाँच **विमुक्ति-आयतन**--(१) आवुसो! भिक्षुको शास्ता (=गुरु) या दूसरा कोई पूज्य (=गुरु-स्थानीय) स-ब्रह्मचारी धर्म उपदेश करता है; जैसे जैसे आवुसो! भिक्षुको शास्ता या दूसरा कोई गुरु-स्थानीय स-ब्रह्मचारी धर्म उपदेश करता है, वैसे वैसे वह उस धर्ममें, अर्थ समझता है, धर्म समझता है। अर्थ-संवेदी (=अर्थ समझनेवाला), धर्म-प्रतिसंवेदी हो, उसे प्रमोद (=प्रामोद्य) प्राप्त होता है।

प्रमुदित (पुरुष)को प्रीति पैदा होती है। प्रीति-मान्की काया प्रश्रब्ध (=स्थिर) होती है; प्रश्रब्ध-काय (पुरुष) सुखको अनुभव करता है। सुखीका चित्त एकाग्र होता है। यह प्रथम विमुक्त्यायतन है। (२) और फिर आवुसो! भिक्षुको न शास्ता धर्म उपदेश करता है, न दूसरा कोई गुरु-स्थानीय सब्रह्मचारी; बल्कि यथा-श्रुत (=सुनेके अनुसार), यथा-पर्याप्त (=धर्म-शास्त्रके अनुसार) (जैसे जैसे) दूसरोंको धर्म-उपदेश करता है०। (३) ० बल्कि यथाश्रुत, यथा-पर्याप्त धर्मको विस्तारसे स्वाध्याय करता है०। (४) ० बल्कि यथाश्रुत यथा-पर्याप्त धर्मको चित्तसे अनु-वितर्क करता है, अनु-विचार करता है, मनसे सोचता है०। (५) ० बल्कि उसको कोई एक समाधि-निमित्त, (=०आकार) सुगृहीत=सुमनसीकृत=सु-प्रधारित (=अच्छी तरह समझा), (और) प्रज्ञासे सु-प्रतिविद्ध (=तहतक जाना गया) होता है; जैसे जैसे आवुसो! भिक्षुको कोई एक समाधि-निमित्त०।

२६—पाँच विमुक्ति-परिपाचनीय संज्ञा—अनित्य-संज्ञा, अनित्यमें दुःख-संज्ञा, दुःखमें अनात्म-संज्ञा, प्रहाण-संज्ञा, विराग-संज्ञा।

यह आवुसो! उन भगवान्०ने०।

६—**षट्क** "आवुसो! उन भगवान्०ने छै धर्म यथार्थ कहे हैं०। कौनसे छै?

१—छै अध्यात्म (=शरीरमें)-आयतन—चक्षु-आयतन, श्रोत्र०, घ्राण०, जिह्वा०, काय०, मन-आयतन।

२—छै बाह्य-आयतन—रूप-आयतन, शब्द०, गन्ध०, रस०, स्प्रष्टव्य(=स्पर्श)०, धर्म-आयतन।

३—छै विज्ञान-काय (=०समुदाय)—चक्षु-विज्ञान, श्रोत्र०, घ्राण०, जिह्वा०, काय० मनो-विज्ञान।

४—छै स्पर्श-काय—चक्षु-संस्पर्श, श्रोत्र०, घ्राण०, जिह्वा०, काय०, मनःसंस्पर्श।

५—छै वेदना-काय—चक्षु-संस्पर्शज वेदना, श्रोत्र-संस्पर्शज०, घ्राणसंस्पर्शज०, जिह्वा-संस्पर्शज०, काय-संस्पर्शज०, मनःसंस्पर्शज-वेदना।

६—छै संज्ञा-काय—रूप-संज्ञा, शब्द०, गन्ध०, रस०, स्प्रष्टव्य० धर्म०,।

७—छै संचेतना-काय—रूप-संचेतना, शब्द०, गन्ध०, रस०, स्प्रष्टव्य०, धर्म०।

८—छै तृष्णा-काय—रूप-तृष्णा, शब्द०, गन्ध०, रस०, स्प्रष्टव्य०, धर्म-तृष्णा।

९—छै अ-गौरव—(१) यहाँ आवुसो! भिक्षु शास्तामें अ-गौरव (=सत्कार-रहित), अ-प्रतिश्रय (=आश्रय-रहित) हो विहरता है। (२) धर्ममें अगौरव०। (३) संघमें अगौरव०। (४) शिक्षामें अगौरव०। (५) अप्रमादमें अ-गौरव०। (६) स्वागत (=प्रति-संस्तार)में अ-गौरव०।.....

१०—छै गौरव—(१) ० शास्तामें सगौरव, स-प्रतिश्रय, हो विहरता है; (२) धर्ममें०, (३) संघमें०, (४) शिक्षामें०, (५) अप्रमादमें०, (६) प्रतिसंस्तारमें०।

११—छै सौमनस्य-उपविचार—(१) चक्षुसे रूप देखकर सौमनस्य (=प्रसन्नता)-स्थानीय रूपोंका उपविचार (=विचार) करता है। (२) श्रोत्रसे शब्द सुनकर०। (३) घ्राणसे गन्ध सूँघकर०। (४) जिह्वासे रस चखकर०। (५) कायासे स्प्रष्टव्य छूकर०। (६) मनसे धर्म जानकर०।

१२—छै दौर्मनस्य-उपविचार—(१) चक्षुसे रूप देखकर दौर्मनस्य (=अप्रसन्नता)-स्थानीय रूपोंका उपविचार करता है। (२) श्रोत्रसे शब्द०। (३) घ्राणसे गन्ध०। (४) जिह्वासे रस०। (५) कायासे स्प्रष्टव्य छूकर०। (६) मनसे धर्म०।

१३—छै उपेक्षा-उपविचार—(१) चक्षुसे रूपको देखकर उपेक्षा-स्थानीय रूपोंका उपविचार करता है। (२) श्रोत्रसे शब्द०। (३) घ्राणसे गन्ध०। (४) जिह्वासे रस०। (५) कायासे स्प्रष्टव्य०। (६) मनसे धर्म०।

१४—छै सारणीय धर्म—(१) यहाँ आवुसो! भिक्षुको सब्रह्मचारियोंमें गुप्त या प्रकट मैत्री

युक्त कायिक कर्म उपस्थित होता है; यह भी धर्म साराणीय=प्रियकरण=गुरुकरण है; संग्रह, अ-विवाद, एकताके लिये है। (२) और फिर आवुसो! भिक्षुको० मैत्री युक्त वाचिक-कर्म उपस्थित होता है०। (३) ० मैत्री-युक्त मानस-कर्म्म०। (४) भिक्षुके जो धार्मिक धर्म-लब्ध लाभ हैं—अन्ततः पात्रमें चुपळने मात्र भी; उस प्रकारके लाभोंको बाँटकर भोगनेवाला होता है; शीलवान् स-ब्रह्म-चारियों सहित भोगनेवाला होता है; यह भी०। (५) ० जो अखंड=अ-छिद्र, अ-शवल=अ-कल्मष, उचित (=भुजिस्स), विज्ञ-प्रशंसित, अ-परामृष्ट (=अनिंदित), समाधिगामी शील हैं, वैसे शीलोंमें स-ब्रह्मचारियोंके साथ गुप्त और प्रकट शील-श्रामण्यको प्राप्त हो विहरता है, यह भी०। (६) ० जो यह आर्य नैर्याणिक दृष्टि है; (जो कि) वैसा करनेवालेको अच्छी प्रकार दुःख-क्षयकी ओर ले जाती है, वैसी दृष्टिसे स-ब्रह्मचारियोंके साथ गुप्त और प्रकट दृष्टि-श्रामण्यको प्राप्त हो विहरता है; यह भी०।

१५-छै **विवाद-मूल**—(१) यहाँ आवुसो! भिक्षु क्रोधी, उपनाही (=पाखंडी) होता है, जो वह आवुसो! भिक्षु क्रोधी उपनाही होता है, वह शास्तामें भी अगौरव=अप्रतिश्रय हो विहरता है, धर्ममें भी ०, संघमें भी ०, शिक्षा (=भिक्षु-नियम) को भी पूरा करनेवाला नहीं होता है। आवुसो! जो वह भिक्षु शास्तामें भी अगौरव ० होता है, वह संघमें विवाद उत्पन्न करता है; जो विवाद कि बहुत लोगोंके अहितके लिये=बहुजन-असुखके लिये, देव-मनुष्योंके अनर्थ, अहित, दुःखके लिये होता है। आवुसो! यदि तुम इस प्रकारके विवाद-मूलको अपनेमें या बाहर देखना, (तो) वहाँ आवुसो! तुम उस दुष्ट विवाद-मूलक नाशके लिये प्रयत्न करना। यदि आवुसो! तुम इस प्रकारके विवाद-मूलको अपनेमें या बाहर न देखना, तो तुम उस दुष्ट विवाद-मूलके भविष्यमें न उत्पन्न होने देनेके लिये उपाय करना। इस प्रकार इस दुष्ट (=पापक) विवाद-मूलका प्रहाण होता है, इस प्रकार इस दुष्ट विवाद-मूलकी भविष्यमें उत्पत्ति नहीं होती। (२) और फिर आवुसो! भिक्षु मर्षी (=अमरखी) पलासी (=निष्ठुर), होता है। (३) ईर्ष्यालु, मत्सरी होता है ०। (४) ० शठ, मायावी होता है ०। (५) ० पापेच्छु, मिथ्यादृष्टि होता है ० (६) ० संदृष्टि-परामर्शी (=तुरन्त चाहनेवाला), आधान-ग्राही (=हठी), दुःप्रति-निस्सर्गी (=मुश्किल से छोळनेवाला) होता है ०।

१६-छै **धातु**—पृथिवी-धातु, आप०, तेज०, वायु०, आकाश०, विज्ञान०।

१७-छै निस्सरणीय-धातु—(१) आवुसो! भिक्षु ऐसा बोले—'मैंने मैत्री चित्त-विमुक्तिको, भावित, बहुलीकृत (=बढ़ाई), यानीकृत, वस्तु-कृत, अनुष्ठित, परिचित, सु-समारब्ध किया; किन्तु व्यापाद (=द्रोह) मेरे चित्तको पकळकर ठहरा हुआ है' उसको ऐसा कहना चाहिये—आयुष्मान् ऐसा मत कहें, भगवान्‌की निन्दा (=अभ्याख्यान) मत करें, भगवान्‌का अभ्याख्यान करना अच्छा नहीं है। (यदि वैसा होता तो) भगवान् ऐसा नहीं कहते। यह मुमकिन नहीं, इसका अवकाश नहीं; कि मैत्री चित्त-विमुक्ति० सुसमारब्धकी गई हो; और तो भी व्यापाद उसके चित्तको पकळकर ठहरा रहे। यह संभव नहीं। आवुसो! मैत्री चित्त-विमुक्ति व्यापादका निस्सरण है। (२) यदि आवुसो! भिक्षु ऐसा बोले—'मैंने करुणा चित्त-विमुक्तिको भावित० किया, तो भी विहिंसा मेरे चित्तको पकळकर ठहरी हुई है'।०। (३) आवुसो! यदि भिक्षु ऐसा बोले—'मैंने मुदिता चित्त-विमुक्तिको भावित० किया; तो भी अ-रति (=चित्त न लगना) मेरे चित्तको पकळकर ठहरी हुई है'।०। (४) ० उपेक्षा चित्त-विमुक्तिको भावित० किया; तो भी राग मेरे चित्तको पकळे हुये हैं; ०। (५) अनिमितत्ता चित्त-विमुक्तिको भावित० किया; तो भी यह निमित्तानुसारी विज्ञान मुझे होता है'।०। (६) ० 'अस्मि' (=मैं हूँ); मेरा चला गया, 'यह मैं हूँ' नहीं देखता; तो भी विचिकित्सा (=संदेह) वाद-विवाद-रूपी शल्य चित्तको पकळे ही हुये हैं०।'

१८-छै **अनुत्तरीय**—दर्शन०, श्रवण०, लाभ०, शिक्षा०, परिचर्या०, अनुस्मृति०।

१९-छै अनुस्मृति-स्थान—बुद्ध-अनुस्मृति, धर्म०, संघ०, शील०, त्याग०, देवता-अनुस्मृति।

२०—छै शाश्वत-विहार—(१) आवुसो! भिक्षु चक्षुसे रूपको देखकर न सुमन होता है, न दुर्मन होता है। स्मरण करते, जानते उपेक्षक हो विहार करता है। (२) श्रोत्रसे शब्द सुनकर ०। (३) घ्राणसे गंध सूँघकर ० (४) जिह्वासे रस चखकर ०। (५) कायासे स्प्रष्टव्य छूकर ०। (६) मनसे धर्मको जानकर ०।

२१—छै अभिजाति (=जाति, जन्म)—(१) यहाँ आवुसो! कोई कोई कृष्ण-अभिजातिक (=नीच कुलमें पैदा) हो, कृष्ण (=काले=बुरे) धर्म करता है। (२) ० कृष्णाभिजातिक हो शुक्ल-धर्म करता है। (३) ० कृष्णाभिजातिक हो अ-कृष्ण-अशुक्ल निर्वाणको पैदा करता है। (४) ० शुक्लाभिजातिक (=ऊँचे कुलमें उत्पन्न) हो शुक्ल-धर्म (=पुण्य) करता है। (५) शुक्ल-अभिजातिक हो, कृष्ण-धर्म (=पाप) करता है। (६) ० शुक्लाभिजातिक हो अकृष्ण-अशुक्ल निर्वाणको पैदा करता है।

२२—छै **निर्वेध-भागीय** संज्ञा—(१) अनित्य संज्ञा। (२) अनित्यमें दुःखःसंज्ञा। (३) दुःखमें अनात्म-संज्ञा। (४) प्रहाण-संज्ञा। (५) विराग-संज्ञा। (६) निरोध-संज्ञा।

आवुसो! उन भगवान्ने यह ०।

७—सप्तक—"आवुसो! उन भगवान्०ने (यह) सात धर्म यथार्थ कहे हैं ०।

१—सात **आर्य-धन**—श्रद्धा-धन, शील ०, ह्री (=लज्जा) ०, अपत्रपा (=संकोच)०, श्रुत०, त्याग०, प्रज्ञा ०।

२—सात **बोध्यंग**—स्मृति-संबोध्यंग, धर्म-विचय०, वीर्य०, प्रीति०, प्रश्रब्धि०, समाधि०, उपेक्षा०,।

३—सात समाधि-परिष्कार—सम्यक्-दृष्टि, सम्यक्-संकल्प, सम्यक्-वाक्, सम्यक्-कर्मान्त, सम्यक् आजीव, सम्यक्-व्यामाम, सम्यक्-स्मृति।

४—सात **अ-सद्धर्म**—भिक्षु अ-श्रद्ध होता है, अह्रीक (=निर्लज्ज)०, अन्-अपत्रपी (=अपत्रपा-रहित) ०, अल्पश्रुत ०, कुसीत (=आलसी) ०, मूढ-स्मृति ०, दुष्प्रज्ञ ०।

५—सात **सद्धर्म**—श्रद्धालु होता है, ह्रीमान् ०, अपत्रपी ०, बहुश्रुत ०। आरब्ध-वीर्य (=निरालसी), उपस्थित-स्मृति ०, प्रज्ञावान् ०।

६—सात सत्पुरुष-धर्म—...धर्मज्ञ ०, अर्थज्ञ ०, आत्मज्ञ ०, मात्रज्ञ ०; कालज्ञ ०, परिषत्-ज्ञ०, पुद्गलज्ञ ०।

७—सात [1]निर्दश-वस्तु—(१) आवुसो! भिक्षु शिक्षा (=भिक्षु-नियम) ग्रहण करनेमें तीव्र-छन्द (=बहुत अनुरागवाला) होता है, भविष्यमें भी शिक्षा ग्रहण करनेमें प्रेम-रहित नहीं होता। (२) धर्म-निशांति (=विपश्यना)में तीव्र-छन्द होता है, भविष्यमें भी धर्म-निशांतिमें प्रेम-रहित नहीं होता। (३) इच्छा-विनय (=तृष्णा-त्याग)में ०। (४) प्रतिसल्लयन (=एकांतवास)में ०।

---

[1] अ. क. "तीर्थिक लोग दश वर्षके समयमें मरे निगंठ (जैन साधु)को निर्दश कहते हैं, वह (मरा निगंठ) फिर दश वर्ष तक नहीं होता।...। इसी प्रकार बीस वर्ष आदि कालमें मरेको निर्विंश। निस्त्रिंश, निश्चत्वारिंश, निष्पंचाश कहते हैं। आयुष्मान् आनन्दने, ग्राममें विचरण करते इस बातको सुनकर विहारमें जा भगवान्से कहा। भगवान्ने कहा—'आनन्द! यह तीर्थिकोंका ही वचन नहीं है; मेरे शासनमें भी यह क्षीणास्रवको कहा जाता है। क्षीणास्रव (अर्हत्, मुक्त) दश वर्षके समय परि-निर्वाण प्राप्त हो फिर दश वर्षका नहीं होता, सिर्फ़ दश वर्ष ही नहीं नव वर्ष...एक वर्ष...एक मासका भी, एक दिनका भी, एक मुहूर्त्तका भी नहीं होता। किसलिये? (पुनः) जन्मके न होनेसे......।"

(५) वीर्यारम्भ (=उद्योग)में ०। (६) स्मृतिके निष्पाक(=परिपाक)में ०। (७) दृष्टि-प्रतिवेध (=सन्मार्ग-दर्शन)में ०।

८—सात **संज्ञा**—अनित्य-संज्ञा, अनात्म०, अशुभ०, आदिनव०, प्रहाण०, विराग०, निरोध०।

९—सात **बल**—श्रद्धाबल, वीर्य ०, स्मृति ०, समाधिः, प्रज्ञा ०, ह्री०, अपत्राप्य ०।

१०—सात विज्ञान-स्थिति—(१) आवुसो ! (कोई कोई) सत्त्व (=प्राणी) नानाकाय नानासंज्ञा (=नाम)वाले हैं; जैसे कि मनुष्य, कोई कोई देव, कोई कोई विनिपातिक (=पापयोनि) ; यह प्रथम विज्ञान-स्थिति है। (२) ० नाना-काय किन्तु एक-संज्ञावाले; जैसे कि प्रथम उत्पन्न ब्रह्मकायिक देव०। (३) एक-काया नाना-संज्ञावाले, जैसे कि आभास्वर देवता ०। (४)० एक-काया एक-संज्ञावाले, जैसे कि शुभकृत्स्न देवता ०। (५) आवुसो ! कोई कोई सत्त्व रूपसंज्ञाको सर्वथा अतिक्रमणकर, प्रतिघ (=प्रतिहिंसा) संज्ञाके अस्त होनेसे, नाना संज्ञाके मनमें न करनेसे 'आकाश अनन्त है' इस आकाश-आनंत्य-आयतनको प्राप्त हैं, यह पाँचवीं विज्ञानस्थिति है। (६) ० आकाशानन्त्यायतनको सर्वथा अतिक्रमणकर, 'विज्ञान अनन्त है' इस विज्ञान-आनंत्य-आयतनको प्राप्त हैं, यह छठी विज्ञान-स्थिति है, (७) ० विज्ञानानन्त्यायतनको सर्वथा अतिक्रमणकर 'कुछ नहीं,' इस आकिंचन्य-आयतनको प्राप्त हैं। यह सातवीं विज्ञान-स्थिति है।

११—सात **दक्षिणेय** (=दान-पात्र) व्यक्ति हैं—उभयतोभाग-विमुक्त, प्रज्ञा-विमुक्त, काय-साक्षी, दृष्टिप्राप्त, श्रद्धाविमुक्त, धर्मानुसारी, श्रद्धानुसारी।

१२—सात **अनुशय**—काम-राग-अनुशय, प्रतिघ ०, दृष्टि ०, विचिकित्सा ०, मान ०, भवराग ० अविद्या ०।

१३—सात **संयोजन**—अनुनय-संयोजन, प्रतिघ ०, दृष्टि ०, विचिकित्सा ०, मान ०, भवराग ०, अविद्या ०।

१४—सात—**अधिकरण-शमथ** तब तब उत्पन्न हुए अधिकरणों (=झगळों)के शमनके लिये--(१) संमुख-विनय देना चाहिये (२) स्मृतिविनय ०, (३) अमूढ-विनय ०, (४) प्रतिज्ञातकरण। (५) यद्भूयसिक, (६) तत्पापीयसिक, (७) तिणवत्थारक।

(इति) द्वितीय भाणवार ॥२॥

यह आवुसो ! उन भगवान्०ने ०।

८—**अष्टक**—"आवुसो ! उन भगवान्०ने आठ धर्म यथार्थ कहे हैं ०।

१—आठ मिथ्यात्व (=झूठ)—मिथ्यादृष्टि, मिथ्यासंकल्प, मिथ्यावाक्, मिथ्या-कर्मान्ति, मिथ्याव्यायाम, मिथ्यास्मृति, मिथ्यासमाधि।

२—आठ सम्यक्त्व (=सच)—सम्यग्-दृष्टि, सम्यक्-वाक्, सम्यक्-कर्मान्त, सम्यग्-आजीव, सम्यग्-व्यायाम, सम्यक्-स्मृति, सम्यक्-समाधि।

३—आठ **दक्षिणेय पुद्गल**—स्रोत आपन्न, स्रोतआपत्ति-फल साक्षात्कार करनेमें तत्पर, सकृदागामी, सकृदागामी-फल-साक्षात्कार-तत्पर, अनागामी, अनागामि-फल-साक्षात्कार-तत्पर, अर्हत्, अर्हत्फल-साक्षात्कार-तत्पर।

४—आठ **कुसीत**(=आलस्य)वस्तु—(१)यहाँ आवुसो ! भिक्षुको(जब)कर्म करना होता है,उसके (मनमें) ऐसा होता है—'कर्म मुझे करना है, किन्तु कर्म करते हुये मेरा शरीर तकलीफ पायेगा, क्यों न मैं लेट (=चुप) रहूँ।' वह लेटता है, अप्राप्तकी प्राप्तिके लिये=अनधिगतके अधिगमके लिये, अ-साक्षात्कृतके साक्षात्कारके लिये उद्योग नहीं करता। यह प्रथम कुसीत-वस्तु है। (२) और फिर आवुसो ! भिक्षु, कर्म किये होता है, उसको ऐसा होता है, मैंने कामकर लिया, काम करते मेरा शरीर थक गया,

क्यों न मैं पळ रहूँ। वह पळ रहता है, ० उद्योग नहीं करता०। (३) भिक्षुको मार्ग जाना होता है। उसको यह होता है—'मुझे मार्ग जाना होगा, मार्ग जानेमें मेरा शरीर तकलीफ पायेगा; क्यों न मैं पळ रहूँ।' वह पळ रहता है, ० उद्योग नहीं करता०। (४) ० भिक्षु मार्ग चल चुका होता है। उसको यह होता है—'मैं मार्ग चल चुका, मार्ग चलनेमें मेरे शरीरको बहुत तकलीफ हुई०। (५) ० भिक्षुको ग्राम या निगममें पिंडचार करते सूखा-भला भोजन भी पूरा नहीं मिलता। उसको ऐसा होता है—'मैं ग्राम या निगममें पिंडचार करते सूखा-भला भोजन भी पूरा नहीं पाता, सो मेरा शरीर दुर्बल असमर्थ (होगया), क्यों न मैं लेट रहूँ०।(६) ० पिंडचार करते रूखा-सूखा भोजन यथेच्छ पा लेता है। उसको ऐसा होता है—मैं ० पिंडचार करते रूखा-सूखा ० पाता हूँ, सो मेरा शरीर भारी है, अस्वस्थ है, मानो मांसका ढेर है, क्यों न पळ जाऊँ०। (७) ० भिक्षुको थोळी सी (=अल्पमात्र) बीमारी उत्पन्न होती है, उसको यह होता है—यह मुझे अल्पमात्र बीमारी उत्पन्न हुई है; पळ रहना उचित है, क्यों न मैं पळ जाऊँ०। (८) ० भिक्षु बीमारीसे उठा होता है . . ., उसको ऐसा होता है, ० सो मेरा शरीर दुर्बल असमर्थ है, ०।

५—आठ **आरब्ध-वस्तु**—(१)जब आवुसो ! भिक्षुको कर्म करना होता है। उसको यह होता है—'काम मुझे करना है, काम न करते हुये , बुद्धोंके शासन (=धर्म)को मनमें लाना मुझे सुकर नहीं, क्यों न मैं अप्राप्तकी प्राप्तिके लिये=अनधिगतके अधिगमके लिये, अ-साक्षात्कृतके साक्षात्कारके लिये उद्योग करूँ।' सो ० उद्योग करता है; यह प्रथम आरब्ध-वस्तु है। (२) ० भिक्षु काम कर चुका होता है, उसको ऐसा होता है—'मैं काम कर चुका हूँ, कर्म करते हुये मैं बुद्धोंके शासनको मनमें न कर सका'; क्यों न मैं ० उद्योग करूँ ०। (३) ० भिक्षुको मार्ग जाना होता है। उसको ऐसा होता है०। (४) ० भिक्षु मार्ग चल चुका होता है०। (५) ० भिक्षु ग्राम या निगममें पिंडचार करते सूखा-भला भोजन भी पूरा नहीं पाता, ० सो मेरा शरीर हल्का कर्मण्य (=काम लायक) है०। (६) ० सूखा-रूखा भोजन पूरा पाता है, ०सो मेरा शरीर बलवान्, कर्मण्य है०। (७) भिक्षुको अल्पमात्र रोग उत्पन्न होता है,० हो सकता है मेरी बीमारी बढ़ जाय, क्यों न मैं०। (८) ० भिक्षु बीमारीसे उठा होता है. . ., ० हो सकता है, मेरी बीमारी फिर लौट आवे, क्यों न मैं०।

६—आठ **दान-वस्तु**—(१) आसक्त हो दान देता है। (२) भयसे ०। (३) 'मुझको उसने दिया है'—(सोच) दान देता है। (४) 'देगा' (सोच) ०। (५) 'दान करना अच्छा है' (सोच) ०। (६) 'मैं पकाता हूँ, ये नहीं पकाते, पकाते हुए न पकानेवालोंको न देना अच्छा नहीं' (सोच) देता है। (७) 'यह दान देने'से मेरा मंगलकीर्ति शब्द फैलेगा' (सोच) देता है। (८) चित्तके अलंकार, चित्तके परिष्कारके लिये दान देता है।

७—आठ दान-उपपत्ति (=उत्पत्ति)—(१) आवुसो ! कोई कोई पुरुष, श्रमण या ब्राह्मणको अन्न, पान, वस्त्र, यान, माला, गंध, विलेपन, शय्या, आवसथ (=निवास), प्रदीप दान देता है। वह, जो देता है, उसकी भी तारीफ करता है। वह क्षत्रिय महाशाल (=महाधनी) ब्राह्मण-महाशाल, गृहपति-महाशालको पाँच भोगों (=काम-गुणों)से समर्पित=संयुक्त हो विचरते देखता है। उसको ऐसा होता है—अहो ! मैं भी काया छोळ मरनेके बाद क्षत्रिय-महाशालों०की स्थिति (=सहव्यता) में उत्पन्न होऊँ। वह इसको चित्तमें धारण करता है, इसका चित्तमें अधिष्ठान (=दृढ़ संकल्प) करता है, इसकी चित्तमें भावना करता है। उसका वह चित्त, हीन (-उत्पत्ति) छोळ, उत्तमकी भावनाकर, वहीं उत्पन्न होती है। यह मैं शीलवान् (=सदाचारी)का कहता हूँ, दुःशीलका नहीं। आवुसो ! विशुद्ध होनेसे शीलवान्की मानसिक प्रणिधि (=अभिलाषा) पूरी होती है। (२) और फिर आवुसो ! ० दान देता है। वह जो देता है, उसकी प्रशंसा करता है। वह सुने होता है—**चातुर्महाराजिक** देव लोग दीर्घायु सुरूप, बहुत सुखी, (होते हैं)। उसको ऐसा होता है—अहो ! मैं शरीर छोळ मरनेके बाद

चातुर्महाराजिक देवोंमें उत्पन्न होऊँ०। (३) ०वह सुने होता—**त्रायस्त्रिंश** देव लोग०। (४) ०**याम** देव०। (५) ०**तुषित**०। (६) ०**निर्माण-रति**-देव०। (७) ०**परनिर्मित-वशवर्ती** देव०। (८) ब्रह्मकायिक देव०।

८—आठ परिषद्—क्षत्रिय-परिषद्। ब्राह्मण०। गृहपति०। श्रमण०। चातुर्महाराजिक०। त्रायस्त्रिंश०। **मार**०। ब्रह्म०।

९—आठ **अभिभ्वायतन**—एक (पुरुष) अपने भीतर (=अध्यात्मं) रूप-संज्ञी (=रूपकी लौ लगानेवाला) बाहर थोळे सुवर्ण दुर्वर्ण रूपोंको देखता है, 'उनको अभिभवन (=लुप्त)कर जानता हूँ, देखता हूँ'—संज्ञावाला होता है। यह प्रथम अभिभ्वायतन है। (२) एक (पुरुष) अध्यात्ममें **अरूप-संज्ञी**, बाहर अप्रमाण (=अतिमहान्) सुवर्ण दुर्वर्ण रूपोंको देखता है०। (३) ०अध्यात्ममें **अरूपसंज्ञी** बाहर थोळे सुवर्ण दुर्वर्ण रूपोंको देखता है०। (४) ०अध्यात्ममें अरूप-संज्ञी, बाहर अप्र-**माण सुवर्ण दुर्वर्ण** रूपोंको०। (५) ०अध्यात्ममें अरूपसंज्ञी बाहर नील, नीलवर्ण, नील-निदर्शन नील-निर्भास रूपोंको देखता है, **जैसे** कि नील, नीलवर्ण, नील-निदर्शन **अलसी**का फूल, या **जैसे** दोनों ओरसे रगळा (=पालिश किया) नीला० **काशी** वस्त्र। ऐसे ही अध्यात्ममें अरूप-संज्ञी बाहर नील० रूपोंको देखता है। उन्हें अभिभवनकर०। (६) ०अध्यात्ममें अरूप-संज्ञी बाहर पीत (=पीला), **पीतवर्ण**, पीत-निदर्शन, पीत-निभास रूपोंको देखता है, **जैसे** कि ०**कर्णिकार** पुष्प, या जैसे० पीला०बनारसी वस्त्र०। (७) ०बाहर लोहित (=लाल)०रूपोंको देखता है, **जैसे** कि ०**बंधु-जीवक-पुष्प**, या जैसे०लोहित०बनारसी वस्त्र०। (८) ००बाहर अवदात (=सफेद) ०रूपोंको देखता है; **जैसे** कि अवदात०**ओषधी-तारका** (=शुक्र), या जैसे अवदात०बनारसी वस्त्र।०

१०—आठ **विमोक्ष**—(१) (स्वयं) रूपी (=रूपवान्) रूपोंको देखता है, यह प्रथम विमोक्ष है। (२) एक (पुरुष) अध्यात्ममें अरूपी-संज्ञी बाहर रूपोंको देखता है०। (३) सुभ (=शुभ्र) हीसे मुक्त (=अधिमुक्त) हुआ होता है०। (४) सर्वथा रूप-संज्ञाको अतिक्रमण कर, प्रतिघ (=प्रति-हिंसा)-संज्ञाके अस्त होनेसे, नानापनकी संज्ञा (=ख्याल)को मनमें न करनेसे, 'आकाश अनन्त है' इस आकाश-आनन्त्य-आयतनको प्राप्त हो विहरता है०। (५) सर्वथा आकाशानन्त्यायतनको अतिक्रमण कर, 'विज्ञान अनन्त है' इस विज्ञान-आनन्त्य-आयतनको प्राप्त हो विहरता है०। (६) सर्वथा विज्ञाना-नन्त्यायतनको अतिक्रमणकर, 'किंचित् (=कुछ भी) नहीं' इस आकिंचन्य-आयतनको प्राप्त हो विहरता है०। (७) सर्वथा आकिंचन्यायतनको अतिक्रमणकर 'नहीं संज्ञा है, न असंज्ञा' इस नैव-संज्ञा-न-असंज्ञा-आयतनको०। (८) सर्वथा नैवसंज्ञा-नासंज्ञायतनको अतिक्रमणकर, संज्ञा-वेदयितनिरोध (=जहाँ होशका ख्याल ही लुप्त हो जाता है)को प्राप्त हो विहरता है।

आवुसो! उन भगवान्०ने० यह।

९—**नवक**—"आवुसो! उन भगवान्०ने यह नव धर्म यथार्थ कहे हैं०।

१—नव **आघात-वस्तु**—(१) 'मेरा अनर्थ (=बिगाळ) किया', इसलिये आघात (=बदला-लेनेका ख्याल) रखता है। (२) 'मेरा अनर्थ कर रहा है०। (३) 'मेरा अनर्थ करेगा०। (४) 'मेरे प्रिय=मनापका अनर्थ किया०। (५) ००अनर्थ करता है०। (६) ०० अनर्थ करेगा०। (७) 'मेरे अ-प्रिय-अमनापके अर्थ (=प्रयोजन)को किया०। (८) ० करता है०। (९) ०करेगा०।

२—नव **आघात-प्रतिविनय** (=हटाना)—(१) 'मेरा अनर्थ किया तो (बदलेमें अनर्थ करनेसे मुझे) क्या मिलनेवाला है' इससे आघातको हटाता है। (२) 'मेरा अनर्थ करता है, तो क्या मिलनेवाला है' इससे०। (३) ०करेगा०। (४) मेरे प्रिय-मनापका अनर्थ किया, तो क्या मिलनेवाला है'०। (५)०अनर्थ करता है०। (६) ०अनर्थ करेगा०। (७) 'मेरे अप्रिय=अमनापके अर्थको किया है०। (८) ०करता है०। (९) ०करेगा०।

३—नव **सत्त्वावास** (=जीवलोक)—(१) आवुसो ! कोई सत्त्व नानाकाय (=०शरीर) और नाना संज्ञा (=नाम) वाले हैं, जैसे कि मनुष्य, कोई कोई देव, कोई कोई विनिपातिक (=पापयोनि), यह प्रथम सत्त्वावास है। (२) ० नाना-काय एक-संज्ञावाले, जैसे प्रथम उत्पन्न **ब्रह्मकायिक** देव। (३) ० एक-काय नाना-संज्ञावाले, जैसे **आभास्वर** देव लोग। (४) ० एक-काया एक संज्ञावालें, जैसे **शुभकृत्स्न** देव लोग। (५) ० संज्ञा-रहित, प्रतिवेदन (=होश)-रहित जैसे कि **असंज्ञी**-सत्त्व देव लोग। (६) रूप-संज्ञाको सर्वथा अतिक्रमण कर, प्रतिघ-संज्ञा (=प्रतिहिंसाके ख्याल) के अस्त होने, नानापन की संज्ञाको मनमें न करनेसे, 'आकाश अनन्त है' इस आकाश-आनन्त्य-आयतनको प्राप्त हैं ०। (७) ० आकाशानन्त्यायतनको सर्वथा अतिक्रमण कर, 'विज्ञान अनन्त है' इस विज्ञान-आनन्त्य-आयतनको प्राप्त हैं ०। (८) ० विज्ञानानन्त्यायतनको सर्वथा अतिक्रमणकर 'किंचित् नहीं' इस आकिंचन्य-आयतन-को प्राप्त हैं ०। (९) आवुसो ! ऐसे सत्त्व हैं, (जो कि) आकिंचन्यायतनको सर्वथा अतिक्रमणकर, नैव-संज्ञा-नासंज्ञा (=न होश न बेहोश)-आयतनको प्राप्त हैं, यह नवम सत्त्वावास है।

४—नव **अक्षण**=असमय (हैं) ब्रह्मचर्य-वासके लिये—(१) आवुसो ! लोकमें तथागत अर्हत् सम्यक् संबुद्ध उत्पन्न होते हैं, और उपशम=परिनिर्वाणके लिये, **सुगत** (=सुन्दर गतिको प्राप्त=बुद्ध) द्वारा प्रवेदित (=साक्षात्कार किये) संबोधिगामी, धर्मको उपदेश करते हैं। (उस समय) यह पुद्गल (=पुरुष) निरय (=नर्क) में उत्पन्न रहता है, यह प्रथम अक्षण० है। (२) और फिर यह तिर्यक्-योनि (=पशु पक्षी आदि) में उत्पन्न रहता है०। (३) प्रेत्य-विषय (=प्रेत-योनि) में उत्पन्न हुआ होता है०। (४) ० असुर-काय (=असुर-योनि) ०। (५) दीर्घायु देव-निकाय (=देव-योनि) में०। (६) ० प्रत्यन्त (=मध्य देशके बाहरके) देशोंमें अ-पंडित म्लेच्छोंमें उत्पन्न हुआ होता है, जहाँपर कि भिक्षुओंकी गति (=जाना) नहीं, न भिक्षुणियोंकी, न उपासकोंकी, न उपासिकाओंकी०। (७) ० **मध्यदेश** (=मज्झिमजनपद) में उत्पन्न होता है, किन्तु वह मिथ्यादृष्टि (=उल्टीमत)=विपरीत-दर्शनका होता है—'दान दिया (-कुछ) नहीं है, यज्ञ किया०, हवन किया ०, सुकृत दुष्कृत कर्मोंका फल=विपाक कुछ नहीं; यह लोक नहीं, परलोक नहीं, माता नहीं, पिता नहीं, औपपातिक (=अयोनिज) सत्त्व नहीं, लोकमें सम्यग्-गत (=ठीक रास्तेपर)=सम्यक्-प्रतिपन्न श्रमण ब्राह्मण नहीं, जो कि इस लोक और परलोकको स्वयं साक्षात्कर, अनुभवकर, जाने ०। (८) ० मध्य-देशमें होता है, किन्तु वह है, दुष्प्रज्ञ, जळ=एड-मूक (=भेळसा गूँगा), सुभाषित दुर्भाषितके अर्थको जाननेमें असमर्थ, यह आठवाँ अक्षण है। (९) तथागत ० लोकमें उत्पन्न नहीं होते ० ० मध्य-देशमें उत्पन्न होता है, और वह प्रज्ञा-वान्, अजळ=अनेड-मूक होता है, सुभाषित दुर्भाषितके अर्थको जाननेमें समर्थ होता है०।

५—नव **अनुपूर्व** (=क्रमशः)-**विहार**—(१) आवुसो ! भिक्षु काम और अकुशल धर्मोंसे अलग हो, वितर्क-विचार सहित विवेकज प्रीति सुखवाले प्रथम ध्यानको प्राप्त हो विहरता है। (२) ०[1] द्वितीय ध्यान०। (३) ० तृतीय-ध्यान०। (४) ० चतुर्थ ध्यान ०। (५) ० आकाशानन्त्यायतनको प्राप्तहो विहरता है (६) विज्ञानानन्त्यायतन०। (७) ० आकिंचन्यायतन ०। (८) ० नैवसंज्ञाना-संज्ञायतन ०। (९) ० संज्ञा-वेदयित-निरोध ०।

६—नव **अनुपूर्व-निरोध**—(१) प्रथम ध्यान प्राप्तको काम-संज्ञा (=कामोपभोगका ख्याल) निरुद्ध (=लुप्त) होती है। (२) द्वितीय ध्यानवालेका वितर्क-विचार निरुद्ध होता है। (३) तृतीय ध्यानवालेकी प्रीति निरुद्ध होती है (४) चतुर्थ ध्यान-प्राप्तका आश्वास-प्रश्वास (=साँस लेना) निरुद्ध होता है। (५) आकाशानन्त्यायतन प्राप्तकी रूप-संज्ञा निरुद्ध होती है। (६) विज्ञानानन्त्यायतन-

---

[1] **देखो पृष्ठ २९-३२।**

प्राप्तकी आकाशानन्त्यायतन-संज्ञा ०। (७) आकिंचन्यायतन-प्राप्तकी विज्ञानानन्त्यायतन संज्ञा ०। (८) नैव-संज्ञा-नासंज्ञा-यतन-प्राप्तकी आकिंचन्यायतन संज्ञा ०। (९) संज्ञा-वेदयित-निरोध-प्राप्तकी (=होश) और वेदना (=अनुभव) निरुद्ध होती हैं।

(इति) तृतीय भाणवार ॥३॥

आवुसो ! उन भगवान्०ने यह ०।

१०—**दशक**—"आवुसो ! उन भगवान्०ने दश धर्म यथार्थ कहें ०। कौनसे दश ?—

१—दश **नाथ-करण** धर्म—(१) आवुसो ! भिक्षु शीलवान्, प्रातिमोक्ष (=भिक्षुनियम)-संवर (=कवच)से संवृत (=आच्छादित) होता है। थोळीसी बुराइयों (=वद्य)में भी भय-दर्शी, आचार-गोचर-युक्त हो विहरता है, (शिक्षापदोंको) ग्रहणकर शिक्षापदोंको सीखता है। जो यह आवुसो ! भिक्षु शीलवान्०, यह भी धर्म नाथ-करण (=न अनाथ करनेवाला) है। (२) ० भिक्षु बहु-श्रुत, श्रुत-धर, श्रुत-संचय-वान् होता है। जो वह धर्म आदिकल्याण, मध्यकल्याण, पर्यवसान-कल्याण, सार्थक =सव्यंजन हैं, (जिसे) केवल, परिपूर्ण, परिशुद्ध ब्रह्मचर्य कहते हैं; वैसे धर्म, (भिक्षु)के बहुत सुने, ग्रहण किये, वाणीसे परिचित, मनसे अनुपेक्षित, दृष्टिसे सुप्रतिविद्ध (=अन्तस्तल तक देखे) होते हैं; यह भी धर्म नाथ-करण होता है। (३) ० भिक्षु कल्याण-मित्र=कल्याण-सहाय=कल्याण-संप्रवंक होता है। जो यह भिक्षु कल्याण-मित्र० होता है, यह भी०। (४) ० भिक्षु सुवच, सौवचस्य (=मधुर-भाषिता)वाले धर्मोंसे युक्त होता है। अनुशासनी (=धर्म-उपदेश)में प्रदक्षिणग्राही=समर्थ (=क्षम) (होता है) यह भी०। (५) ० भिक्षु सब्रह्मचारियोंके जो नाना प्रकारके कर्तव्य होते हैं, उनमें दक्ष= आलस्यरहित होता है, उनमें उपाय=विमर्शसे युक्त, करनेमें समर्थ=विधानमें समर्थ, होता है। ० यह भी०। (६) ० भिक्षु **अभिधर्म** (=सूत्रमें), **अभि-विनय** (=भिक्षु-नियमोंमें) धर्म-काम (=धर्मेच्छु), प्रिय-समुदाहार (=दूसरेके उपदेशको सत्कारपूर्वक सुननेवाला, स्वयं उपदेश करनेमें उत्साही), बळा प्रमुदित होता है, ० यह भी ०। (७) भिक्षु जैसे तैसे चीवर, पिंडपात, शयनासन, ग्लान-प्रत्यय-भैषज्य-परिष्कारसे सन्तुष्ट होता है ०। (८) ० भिक्षु अकुशल-धर्मोंके विनाशके लिये, कुशल-धर्मोंकी प्राप्तिके लिये उद्योगी (=आरब्ध-वीर्य) स्थामवान्=दृढ़पराक्रम होता है। कुशल-धर्मोंमें अनिक्षिप्त-धुर (=भगोळा नहीं) होता ०। (९) ० भिक्षु स्मृतिमान्, अत्युत्तम स्मृति-परिपाकसे युक्त होता है; बहुत पुराने किये, बहुत पुराने कथितका भी स्मरण करनेवाला, अनुस्मरण करनेवाला होता है ०। (१०) ० भिक्षु प्रज्ञावान् उदय-अस्त-गामिनी, आर्य, निर्बेधिक (=अन्तस्तल तक पहुँचनेवाली), सम्यक्-दुःख-क्षय-गामिनी प्रज्ञासे युक्त होता है ०।

२—दश **कृत्स्नायतन**—(१) एक (पुरुष) ऊपर नीचे टेढ़े अद्वितीय (=एक मात्र) **अप्रमाण** (=अतिमहान्) पृथिवी-कृत्स्न (=सब कुछ पृथिवी है) जानता है। (२) ० आप-कृत्स्न ०। (३) ० तेजःकृत्स्न ०। (४) ० वायु-कृत्स्न ०। (५) ० नील-कृत्स्न ०। (६) ० पीत-कृत्स्न ०। (७) ० लोहित-कृत्स्न ०। (८) ० अवदात-कृत्स्न ०। (९) ० आकाश-कृत्स्न ०। (१०) ० विज्ञान-कृत्स्न ०।

३—दश **अकुशलकर्म-पथ** (=दुष्कर्म)—(१) प्राणातिपात (=हिंसा)। (२) अदत्तादान (=चोरी)। (३) काम-मिथ्याचार (=व्यभिचार)। (४) मृषावाद (=झूठ)। (५) पिशुन-वचन (=चुगली)। (६) परुष-वचन (=कटुवचन)। (७) संप्रलाप (=बकवास)। (८) अभिध्या (=लोभ)। (९) व्यापाद (=द्रोह)। (१०) मिथ्या-दृष्टि (=उल्टीमत)।

४—दश **कुशलकर्म-पथ** (=सुकर्म)—(१) प्राणातिपात-विरति। (२) अदत्तादान-विरति। (३) काम-मिथ्याचार-विरति। (४) मृषावाद-विरति। (५) पिशुनवचन-विरति। (६) परुष-वचन-विरति। (७) संप्रलाप-विरति। (८) अन्-अभिध्या। (९) अ-व्यापाद। (१०) सम्यग्दृष्टि।

५—दश आर्य-वास—(१) आवुसो ! भिक्षु पाँच अंगों (=बातों)से हीन (=पञ्चाङ्ग-विप्रहीण) होता है। (२) छै अंगोंसे युक्त (=षडंग-युक्त) होता है। (३) एक रक्षा वाला होता है। (४) अपश्रयण (=आश्रय)वाला होता है। (५) पनुन्न-पच्चेकसच्च (=मतोंके आग्रहका पूर्णतया त्यागी) होता है। (६) समवय-सट्ठेसन। (७) अन्-आविल (=अमलिन)-संकल्प ० (८) प्रश्रब्ध-काय-संस्कार०। (९) सुविमुक्त-चित्त०। (१०) सुविमुक्त-प्रज्ञ ०।

(१) आवुसो ! भिक्षु पाँच अंगोंसे हीन कैसे होता है? यहाँ आवुसो ! भिक्षुका कामच्छन्द (=काम-राग) प्रहीण (=नष्ट) होता है, व्यापाद प्रहीण ०, स्त्यान-मृद्ध ०, औद्धत्य-कौकृत्य ०, विचिकित्सा ०। इस प्रकार आवुसो ! भिक्षु पञ्चाङ्ग-विप्रहीण होता है। (२) कैसे आवुसो ! भिक्षु षडंग-युक्त होता है? आवुसो ! भिक्षु चक्षुसे रूपको देख न सु-मन होता है, न दुर्मन; स्मृति-संप्रजन्य-युक्त उपेक्षक हो विहरता है। श्रोत्रसे शब्द सुनकर ०। घ्राणसे गंध सूँघकर ०। जिह्वासे रस चखकर ०, कायसे स्प्रष्टव्य छूकर ०, मनसे धर्म जानकर ० ०। (३) आवुसो ! एकारक्ष कैसे होता है? आवुसो ! भिक्षु स्मृतिकी रक्षासे युक्त होता है। (४) आवुसो ! भिक्षु कैसे चतुरापश्रयण होता है? आवुसो ! भिक्षु संख्यान (=समझ) कर एकको सेवन करता है, संख्यानकर एकको स्वीकार करता है, संख्यानकर एकको हटाता है, संख्यानकर एकको वर्जित करता है, ०। (५) आवुसो ! भिक्षु कैसे पनुन्न-पच्चेक-सच्च होता है? आवुसो ! जो वह पृथक् (=उलटे) श्रमण-ब्राह्मणोंके पृथक् (=उलटे) प्रत्येक (=एक एक) सत्य (=सिद्धांत) होते हैं, वह सभी (उसके) पणुन्न=त्यक्त=वान्त=मुक्त=प्रहीण, प्रतिप्रश्रब्ध (=शमित) होते हैं ०। (६) आवुसो ! कैसे 'समवसट्ठेसन, (=सम्यग्-विसृष्टैषण) होता है? आवुसो ! भिक्षुकी काम-एषणा प्रहीण (=त्यक्त) होती है, भव-एषणा ०, ब्रह्मचर्य-एषणा प्रशमित होती है, ०। (७) आवुसो ! भिक्षु कैसे अनाविल-संकल्प होता है? आवुसो ! भिक्षुका काम-संकल्प प्रहीण होता है, व्यापाद-संकल्प ०, हिंसा-संकल्प ०। इस प्रकार आवुसो ! भिक्षु अनाविल (=निर्मल)-संकल्प होता है। (८) आवुसो ! भिक्षु कैसे प्रश्रब्ध-काय होता है? ० भिक्षु ०[1] चतुर्थ ध्यानको प्राप्त हो विहरता है, ०। (९) आवुसो ! भिक्षु कैसे विमुक्त-चित्त होता है? आवुसो ! भिक्षुका चित्त रागसे मुक्त होता है, ० द्वेषसे विमुक्त होता है, ० मोहसे विमुक्त होता है, इस प्रकार ०। (१०) कैसे ० सुविमुक्त-प्रज्ञ होता है? आवुसो ! भिक्षु जानता है—'मेरा राग प्रहीण हो गया, उच्छिन्न-मूल=मस्तकच्छिन्न-तालकी तरह, अभाव-प्राप्त, भविष्यमें उत्पन्न होनेके अयोग्य, हो गया है।' ० मेरा द्वेष ०। ० मेरा मोह ०। ०।

६—दश **अशैक्ष्य** (=अर्हत्) **-धर्म**—(१) अशैक्ष्य सम्यग्-दृष्टि। (२) ० सम्यक्-संकल्प। (३) ० सम्यक्-वाक्। (४) ० सम्यक्-कर्मान्त। (५) ० सम्यक्-आजीव। (६) ० सम्यक्-व्यायाम। (७) ० सम्यक्-स्मृति। (८) ० सम्यक्-समाधि। (९) ० सम्यक्-ज्ञान। (१०) अशैक्ष्य सम्यक्-विमुक्ति।

"आवुसो ! उन भगवान्०ने ०।"

तब भगवान्ने उठकर आयुष्मान् सारिपुत्रको आमंत्रित किया—

"साधु, साधु, सारिपुत्र! सारिपुत्र तूने भिक्षुओंको अच्छा **सङ्गीति-पर्याय** (=एकताका ढंग) उपदेशा।"

आयुष्मान् सारिपुत्र ने यह कहा; शास्ता (=बुद्ध) इससे सहमत हुए। सन्तुष्ट हो उन भिक्षुओंने (भी) आयुष्मान् **सारिपुत्र**के भाषणका अभिनन्दन किया।

---

[1] **देखो पृष्ठ ३२ ।**

३४—दसुत्तर-सुत्त (३।११)

१—बौद्ध-मन्तव्यों की सूची उपकारक, भावनीय, परिज्ञेय, प्रहातव्य, हानभागीय विशेषभागीय, दुष्प्रतिवेध्य, उत्पादनीय, अभिज्ञेय. साक्षात्करणीय धर्म,

ऐसा मैंने सुना। एक समय भगवान् पाँचसौ भिक्षुओंके बळे संघके साथ **चम्पामें गग्गरा पुष्करणी** के तीरपर विहार कर रहे थे।

वहाँ आयुष्मान् **सारिपुत्रने** भिक्षुओंको आमन्त्रित किया—"आवुसो भिक्षुओ!"

"आवुस!" कहकर उन भिक्षुओंने ० उत्तर दिया।

आयुष्मान् सारिपुत्र बोले—

"निर्वाणकी प्राप्ति और दुःखके अन्त करनेके लिये,
सारी गाँठोंके खोलनेवाले **दशोत्तर** धर्मको कहता हूँ ॥१॥

१—बौद्ध मन्तव्यों की सूची[1]

१—एकक—आवुसो! (१) एक धर्म बहुत उपकारक है। (२) एक धर्म भावना करने योग्य है। (३) एक धर्म परिज्ञेय (=त्याज्य) है। (४) एक धर्म प्रहातव्य (=छोळ देने योग्य) है। (५) एक धर्म=हानभागीय है। (६) एक धर्म विशेष भागीय है। (७) एक धर्म दुष्प्रतिवेध्य (=समझनेमें अति कठिन) है। (८) एक धर्म उत्पादनीय है। (९) एक धर्म अभिज्ञेय (=विचारपूर्वक ज्ञातव्य) है। (१०) एक धर्म साक्षात्करणीय है।

१—कौन एक धर्म बहुत उपकारक है? कुशल धर्मोंमें **अप्रमाद**। यही एक धर्म बहुत उपकारक है।

२—कौन एक धर्मकी भावना करने योग्य है? अनुकूल **कायगत-स्मृति**[2] (प्राणायाम आदि चार ध्यान)। इसी एक धर्मकी भावना करनी चाहिये।

३—कौन एक धर्म परिज्ञेय (=त्याज्य) है? **आस्रव** (=चित्त-मल)-सहित उपादान किया जाननेवाला स्पर्श; यही एक धर्म परिज्ञेय है।

४—कौन एक धर्म प्रहातव्य है? अहंभाव (=अहंकार) यही एक धर्म प्रहातव्य है।

५—कौन एक धर्म हानभागीय (=अवनतिकी ओर ले जानेवाला) है? अ-योनिशः मनस्कार। ०

६—कौन एक धर्म विशेषभागीय है? योनिशः मनस्कार (=मूलके साथ विचारना)। ०

७—कौन एक धर्म दुष्प्रतिवेध्य है? आनन्तरिक चित्त-समाधि। ०

८—कौन एक धर्म उत्पादनीय है? **अ-कोप्य (=अटल) ज्ञान**। ०

---

[1] मिलाओ पृष्ठ २८२–३०१।

[2] देखो कायगतासति-सुत्तन्त (मज्झिमनिकाय ११९, पृष्ठ ४९४)।

९—कौन एक धर्म अभिज्ञेय है? **सभी प्राणी आहारपर स्थित हैं।** ०

१०—कौन एक धर्म साक्षात्करणीय है? अ-कोप्य (=अटल) चित्तविमुक्ति।

यही दस धर्म भूत (=वास्तविक) तथ्य=तथा=अवितथ, अन्-अन्यथा, (यथार्थ) और तथागत द्वारा ठीकसे अभिसम्बुद्ध (=बोध किये गये) हैं।

२–**द्विक**—आवुसो! दो धर्म वहुत उपकारक हैं, दो धर्मोंकी भावना करने योग्य है! दो धर्म परिज्ञेय हैं ० दो धर्म साक्षात्करणीय हैं।

१—कौन दो धर्म बहुत उपकारक हैं?—स्मृति और सम्प्रजन्य। ०

२—कौन दो धर्म भावना करने योग्य हैं? शमथ और विपश्यना। ०

३—कौन दो धर्म परिज्ञेय हैं? नाम और रूप। ०

४—कौन दो धर्म प्रहातव्य हैं? अविद्या और भवतृष्णा (=आवागमनका लोभ)। ०

५—कौन दो धर्म हानभागीय हैं? दुर्वचन और पापीकी मित्रता। ०

६—कौन दो धर्म विशेषभागीय हैं? सुवचन और कल्याणमित्रता। ०

७—कौन दो धर्म दुष्प्रतिवेध्य हैं? सत्वोंके संक्लेश (=मालिन्य)के जो हेतु=प्रत्यय, और विशुद्धिके हेतु-प्रत्यय।

८—कौन दो धर्म उत्पादनीय हैं? दो ज्ञान—क्षयका ज्ञान और उत्पादका ज्ञान।

९—कौन दो धर्म अभिज्ञेय हैं? दो धातु—संस्कृत (स्कंध आदि) और अ-संस्कृत (=अ-कृत निर्वाण)। ०।

१०—कौन दो धर्म साक्षात्-करणीय हैं? विद्या और विमुक्ति।०

ये बीस धर्म भूत ०।

३—**त्रिक**—० तीन धर्म ०।

१—कौन तीन धर्म बहुत उपकारक हैं? **सत्पुरुषसहवास,** सद्धर्मश्रवण, धर्मानुसार-आचरण।

२—कौन भावना करने योग्य हैं? तीन **समाधि**—वितर्क विचार सहित समाधि, अवितर्क-रहित विचारमात्र समाधि, वितर्क-विचार-रहित समाधि। ०।

३—कौन ० **परिज्ञेय** (=त्याज्य) हैं? तीन वेदनायें—सुखा, दुःखा, न सुखा न दुःखा। ०।

४—तीन धर्म प्रहातव्य हैं? तीन तृष्णायें—कामतृष्णा, भव-तृष्णा और विभव-तृष्णा।

५—कौन ० हान-भागीय ०? तीन अकुशल-मूल (=पापोंकी जळ)—लोभ, द्वेष और मोह। ०।

६—कौन ० विशेषभागीय? तीन **कुशल-मूल**—अ-लोभ, अ-द्वेष और अ-मोह। ०

७—कौन ० दुष्प्रतिवेध्य हैं? तीन **निस्सरणीय** धातु—कामों(=भोगों)से निस्सरण निष्का-मता है। रूपोंसे निस्सरण अ-रूपता है। जो कुछ उत्पन्न=संस्कृत=प्रतीत्य-समुत्पन्न है उसका निस्सरण निरोध है। ०

८—कौन० उत्पादनीय हैं? तीन **ज्ञान**—अतीत अंशमें, भविष्य अंशमें, और वर्तमान अंशमें।

९—कौन ० अभिज्ञेय हैं? तीन धातु—काम-धातु, रूप-धातु, और अरूप-धातु। ०।

१०—कौन ० साक्षात्करणीय हैं? तीन **विद्यायें**—पूर्वजन्मानुस्मृतिज्ञान, सत्वोंके जन्म मरण का ज्ञान, आस्रवोंके क्षय होनेका ज्ञान। ०

ये तीस धर्म भूत ०।

४–**चतुष्क**—० चार धर्म ०—

१—कौन चार धर्म बहुत उपकारक हैं? चार **चक्र**—अनुकूल देशमें वास, सत्पुरुषका आश्रय, अपनी सम्यक् प्रणिधि (=ठीक अभिलाषा), पूर्वजन्मके उपार्जित पुण्य।

२—कौन ० भावना करने योग्य हैं ? चार **स्मृतिप्रस्थान**—भिक्षु कायामें कायानुपश्यी होकर विहार करता है ०[1], वेदनामें वेदनानुपश्यी ०, चित्तमें ०, धर्ममें ०।

३—कौन ० परिज्ञेय हैं ? चार **आहार**—स्थूल या सूक्ष्म कौर करके खाया जानेवाला आहार; स्पर्श ०; मनः संचेतना ०; और विज्ञान ०।

४—कौन ० प्रहातव्य हैं ?

चार **ओघ** (=बाढ़)—काम-ओघ, भव-ओघ, दृष्टि-ओघ, और अविद्या-ओघ।

५—कौन ० हानभागीय ० ? चार **योग** (=मिलन)—काम-योग, भव-योग, दृष्टि-योग और अविद्या-योग।

६—कौन ० विशेषभागीय० ? चार **विसंयोग** (=वियोग)—कामयोग-विसंयोग, भवयोग०, दृष्टियोग ० और अविद्यायोग ०।

७—कौन ० दुष्प्रतिवेध्य ० ? चार **समाधि**—हानभागीय समाधि, स्थितिभागीय विशेष-भागीय समाधि, निर्वेधभागीय समाधि।०

८—कौन उत्पादनीय हैं ? चार **ज्ञान**—धर्म-ज्ञान, अन्वय-ज्ञान, परिच्छेद-ज्ञान, सम्मति-ज्ञान। ०।

९—कौन अभिज्ञेय हैं ? चार **आर्यसत्य**—दुःख, समुदय, निरोध, मार्ग।०

१०—कौन साक्षात्करणीय हैं ? चार **श्रामण्यफल**—स्रोतआपत्ति, सकृदागामी, अनागामी और अर्हत्-फल। ०

ये चालीस धर्मभूत ०।

५—**पंचक**—० पाँच धर्म ०।

१—कौन ० पाँच धर्म बहुत उपकारक हैं ? पाँच **प्रधान-अङ्ग**—(१) भिक्षु श्रद्धालु होता है, तथागतकी बोधिमें श्रद्धा रखता है—वे भगवान् अर्हत् सम्यक् सम्बुद्ध ०। (२) नीरोग=आतंक रहित होता है, न अधिक शीतल न अधिक उष्ण समविपाकवाली योगाभ्यासके योग्य पाचनशक्तिसे युक्त होता है। (३) शठ नहीं होता, मायावी नहीं होता, शास्ताके पास, विद्वानोंके पास, या सब्रह्मचारियों-के पास अपनेको यथार्थ यथाभूत प्रकट करता है। (४) अकुशल धर्मोंको दूर करनेके लिये, कुशल धर्मोंके उत्पादके लिये, साहसी दृढ़पराक्रम हो वीर्यवान् होकर विहार करता है। कुशल धर्मों स्थामवान्=दृढ़-पराक्रमहो, भगोळा नहीं होता। (५) निर्वेधिक, उदयास्तगामिनी और सम्यक् दुःखक्षयगामिनी आर्य प्रज्ञासे युक्त होता है।

२—कौन भावना करने योग्य हैं ? पाँच अङ्गोंवाली **सम्यक्-समाधि**—प्रीति स्फुरण (=प्रीतिसे व्याप्त होना), सुख ०, चित ०, आलोक ०, प्रत्यवेक्षण-निमित्त।

३—कौन ० परिज्ञेय हैं ? पञ्च **उपादान-स्कन्ध**—रूप, वेदना, संज्ञा, संस्कार, विज्ञान ०।

४—कौन ० प्रहातव्य हैं ? पाँच **नीवरण**—कामच्छन्द ० (=भोगोंका लोभ), व्यापाद (=द्रोह) ०, स्त्यान-मृद्ध (=काय-मनके आलस्य), औद्धत्य—कौकृत्य (=हिचकिचाहट), विचिकित्सा (=संदेह)।०

५—कौन ० हानभागीय ० ? पाँच **चित्तके कील** (=काँटे)—भिक्षु शास्ताके प्रति संदेह =विचिकित्सा करता है, उनके प्रति श्रद्धा नहीं रखता, प्रसन्न नहीं होता। उसका चित्त संयम, अनुयोग और प्रधान (=अनवरत अध्यवसाय)की ओर नहीं झुकता। यह पहला चित्तका कील है। फिर भिक्षु

---

[1] **देखो महासतिपट्ठान-सुत्त २२ (पृष्ठ १९०)।**

धर्मके प्रति संदेह ०। ० प्रधानकी ओर नहीं झुकता। यह दूसरा ०। संघके प्रति ०। शिक्षाके प्रति ०। सब्रह्मचारियोंसे कुपित, असंतुष्ट, खिन्न, रहता है तथा उनके प्रति मनमें बुरे भाव रखता है। उसका चित्त ० प्रधानकी ओर नहीं झुकता।

६—कौन ० विशेषभागीय हैं? पाँच **इन्द्रियाँ**—श्रद्धा, वीर्य, स्मृति, समाधि, प्रज्ञा।

७—कौन ० अप्रतिवेध्य हैं? पाँच **निस्सरणीय धातु**—(१) भिक्षु, कामों (=भोगों)में मन करते वक्त नहीं दौळता, न प्रसन्न होता है, न स्थित होता है, न विमुक्त होता है। नैष्काम्य (=अनासक्ति, निष्कामता)में मन करते वक्त दौळता है, प्रसन्न होता है, स्थित होता है, और विमुक्त होता है। उसका वह चित्त सु-गत, सु-भावित, सुव्यवस्थित, सुविमुक्त, कामोंसे विमुक्त होता है और कामोंके कारण जो आस्रव, विघात, परिदाह (=जलन) उत्पन्न होते हैं, वह उनसे मुक्त हो जाता है। वह उस वेदनाको नहीं झेलता। यही कामोंका निस्सरण कहा गया है। (२) विपक्षके व्यापाद (=द्रोह)में मन करते ०......यही व्यापादका निस्सरण कहा गया है। (३) ० विहिंसा ०। (४) ० रूप ०। (५) ० सत्काय मनमें करते ०।

८—कौन उत्पादनीय हैं? पाँच **ज्ञान-संबंधी सम्यक्-समाधि**—(१) यह समाधि वर्तमानमें सुखमय और भविष्यमें भी सुख देनेवाली है।—ऐसा भीतर ज्ञान उत्पन्न होता है। यह समाधि आर्य और निरामिष (=निर्विषय) ०। यह समाधि कापुरुष (=अनुत्साही पुरुषों) द्वारा सेवित है ०। यह समाधि शान्त, प्रणीत, एकाग्रता प्राप्त और संस्कारोंसे अबाधित है। सो, मैं स्मृति-सहित इस समाधिको प्राप्त होता हूँ, और स्मृति-सहित इससे उठता हूँ ०। ०

९—"कौन पाँच धर्म अभिज्ञेय हैं? पाँच **विमुक्ति-आयतन**—आवुसो! भिक्षुको शास्ता (=गुरु) या दूसरा कोई पूज्य (=गुरुस्थानीय) सब्रह्मचारी धर्म उपदेश करता है; जैसे जैसे भिक्षुको शास्ता या दूसरा कोई गुरुस्थानीय स-ब्रह्मचारी धर्म उपदेश करता है, वैसे वैसे वह उस धर्ममें अर्थ समझता है, धर्म समझता है; अर्थ-संवेदी (=अर्थ समझनेवाला), धर्म-प्रतिसंवेदी हो, उसे प्रमोद प्राप्त होता है। प्रमुदित (पुरुष)को प्रीति पैदा होती है। प्रीतिमान्की काया प्रश्रब्ध (=स्थिर) होती है; प्रश्रब्धकाय (पुरुष) सुखको अनुभव करता है। सुखीका चित्त एकाग्र होता है।—यह प्रथम विमुक्ति-आयतन है। (२) और फिर आवुसो! भिक्षुको न शास्ता धर्म उपदेश करता है, न कोई दूसरा गुरु-स्थानीय सब्रह्मचारी; बल्कि यथाश्रुत (=सुने पढ़ेके अनुसार), यथापर्याप्त (=धर्मग्रंथके अनुसार) (जैसे जैसे) दूसरोंको धर्म उपदेश करता है ०। (३) ० बल्कि यथाश्रुत, यथापर्याप्त धर्मको विस्तारसे स्वाध्याय करता है ०। (४) ० बल्कि यथाश्रुत, यथापर्याप्त धर्मको चित्तसे अनुवितर्क करता है, अनुविचार करता है, मनसे सोचता है ०। (५) ० बल्कि उसको कोई एक समाधि-निमित्त सुगृहीत=सुमनसीकृत =सुप्रधारित (=अच्छी तरह समझा), और प्रज्ञासे सुप्रतिबिद्ध (=तह तक जाना गया) होता है; जैसे जैसे आवुसो! भिक्षुको कई एक समाधि-निमित्त ०। ०

(१०) "कौन पाँच धर्म साक्षात्कर्त्तव्य हैं? पाँच **धर्मस्कन्ध**—शीलस्कन्ध, समाधिस्कन्ध, प्रज्ञा०, विमुक्ति ०, विमुक्ति ज्ञानदर्शन स्कन्ध। यह पाँच धर्म साक्षात्कर्त्तव्य हैं ०।

यही पचास **धर्म भूत** ०।

६—**षट्क**—० छै धर्म।

१—कौन छै धर्म बहुत उपकारक हैं?

छै सारणीय धर्म—(१) जब आवुसो! भिक्षुको सब्रह्मचारियोंमें गुप्त या प्रकट मैत्री युक्त कायिक कर्म उपस्थित होता है; यह भी धर्म सारणीय=प्रियकरण=गुरुकरण है; संग्रह, अ-विवाद, एकताके लिये है। (२) और फिर आवुसो! भिक्षुको० मैत्री-युक्त वाचिक-कर्म उपस्थित होता है०। (३) ० मैत्री-युक्त मानस-कर्म्म ०। (४) भिक्षुके जो धार्मिक धर्म-लब्ध लाभ हैं—अन्ततः पात्रमें

चुपळने मात्र भी; उस प्रकारके लाभोंको बाँटकर भोगनेवाला होता है; शीलवान् स-ब्रह्म-चारियों सहित भोगनेवाला होता है; यह भी ०। (५) ० जो अखंड=अ-छिद्र, अ-शबल=अ-कल्मष, उचित (=भुजिस्स), विज्ञ-प्रशंसित, अ-परामृष्ट (=अनिंदित), समाधिगामी शील हैं, वैसे शीलोंमें स-ब्रह्म-चारियोंके साथ गुप्त और प्रकट शील-श्रामण्यको प्राप्त हो विहरता है, यह भी०। (६) ० जो यह आर्य नैर्याणिक दृष्टि है; (जोकि) वैसा करनेवालेको अच्छी प्रकार दुःख-क्षयकी ओर ले जाती है, वैसी दृष्टिसे स-ब्रह्मचारियोंके साथ गुप्त और प्रकट दृष्टि-श्रामण्यको प्राप्त हो विहरता है; यह भी०।

२—कौन ० धर्म भावना करने योग्य हैं? छै **अनुस्मृतिस्थान**—बुद्ध-अनुस्मृति, धर्म-अनुस्मृति, संघ-अनुस्मृति, शील-अनुस्मृति, त्याग-अनुस्मृति, देव-अनुस्मृति।०

३—कौन ० धर्म परिज्ञेय हैं? छै **आध्यात्मिक आयतन**—चक्षु-आयतन, श्रोत्र-आयतन, घ्राण-आयतन, जिह्वा-आयतन, काय-आयतन और मन-आयतन।०

४—कौन ० प्रहातव्य हैं? छै **तृष्णा-काय** (=० समूह)—रूप-तृष्णा, शब्द ०, गन्ध ०, रस ०, स्पर्श ०, धर्म-तृष्णा। ०

५—कौन ० हानभागीय हैं? छै **अगौरव**—भिक्षु शास्ता (=गुरु) में गौरव सम्मान नहीं रखता। धर्म ०। संघ ०। शिक्षा ०। अप्रमाद ०। प्रतिसंस्तार (=स्वागत) में गौरव ० नहीं रखता।०

६—कौन ० विशेषभागीय हैं? छै गौरव।—भिक्षु शास्तामें **गौरव** ० रखता है। धर्म ०। संघ ०। शिक्षा ०। अप्रमाद ०। प्रतिसंस्तारमें गौरव रखता है। ०

७—कौन ० दुष्प्रतिवेध्य हैं? छ **निस्सरणीय धातु**—(१) आवुसो! भिक्षु ऐसा बोले—'मैंने मैत्री चित्त-विमुक्तिको, भावित, बहुलीकृत (=बढ़ाई), यानीकृत, वस्तु-कृत, अनुष्ठित, परिचित, सु-समारब्ध किया; किन्तु व्यापाद (=द्रोह) मेरे चित्तको पकळकर ठहरा हुआ है' उसको ऐसा कहना चाहिये—आयुष्मान् ऐसा मत कहें, भगवान्‌की निन्दा (=अभ्याख्यान) मत करें, भगवान्‌का अभ्याख्यान करना अच्छा नहीं है। (यदि वैसा होता तो) भगवान् ऐसा नहीं कहते। यह मुमकिन नहीं, इसका अवकाश नहीं; कि मैत्री चित्त-विमुक्ति० सुसमारब्धकी गई हो; और तो भी व्यापाद उसके चित्तको पकळकर ठहरा रहे। यह संभव नहीं। आवुसो! मैत्री चित्त-विमुक्ति व्यापादका निस्सरण है। (२) यदि आवुसो! भिक्षु ऐसा बोले—'मैंने करुणा चित्त-विमुक्तिको भावित० किया, तो भी विहिंसा मेरे चित्तको पकळकर ठहरी हुई है'।०। (३) आवुसो! यदि भिक्षु ऐसा बोले—'मैंने मुदिता चित्त-विमुक्तिको भावित० किया; तो भी अ-रति (=चित्त न लगना) मेरे चित्तको पकळकर ठहरी हुई है'।०। (४) ० उपेक्षा चित्तविमुक्तिको भावित० किया; तो भी राग मेरे चित्तको पकळे हुये हैं; ०। (५) अनिमित्तता चित्तविमुक्तिको भावित० किया; तो भी यह निमित्तानुसारी विज्ञान मुझे होता है'।०। (६) ० 'अस्मि' (=मैं हूँ); मेरा चला गया, 'यह मैं हूँ' नहीं देखता; तो भी विचिकित्सा (=संदेह) वाद-विवाद-रूपी शल्य चित्तको पकळे ही हुये हैं०।'

८—कौन ० उत्पादनीय हैं? अनित्य संज्ञा, अनित्यमें दुःख-संज्ञा, दुःखमें अनात्म-संज्ञा, प्रदाण ०, विराग ०, निरोध-संज्ञा ०।

९—कौन ० अभिज्ञेय हैं? छै **अनुत्तर** (=अनुपम)—दर्शन-अनुत्तर, श्रवण-अनुत्तर, लाभ-अनुत्तर, शिक्षा-अनुत्तर, परिचर्यानुत्तर, अनुश्रुतानुत्तर। ०

१०—कौन साक्षात्करणीय हैं? छै **अभिज्ञेय**—भिक्षु अनेक प्रकारकी सिद्धियों (=ऋद्धि-बलों) को प्राप्त करता है ०[1] ब्रह्मलोक तक को शरीरसे वशमें कर लेता है। अलौकिक दिव्य श्रोत-धातुसे

[1] देखो पृष्ठ ३०।

दिव्य और मानुष, दूर और निकटके दोनों शब्दोंको सुनता है, दूरके दूसरे जीवों, और दूसरे मनुष्योंके चित्तको अपने चित्तसे जान लेता है—सराग या विराग०। अनेक प्रकारके पूर्व जन्मोंको स्मरण करता है। आस्रवोंके क्षयसे अनास्रव चित्तविमुक्ति, प्रज्ञा-विमुक्तिको यहीं जान, और साक्षात्कर विहार करता है।

ये साठ धर्म भूत ०।

७—**सप्तक**—० सात धर्म ०।

१—कौन सात धर्म बहुत उपकारक हैं? सात **आर्यधन**—श्रद्धा, शील, ह्री (=पापकर्मोंसे लज्जा), आत्म-संयम, ज्ञान, पुण्य और प्रज्ञा।

२—कौन भावना करने योग्य हैं? सात **सम्बोध्यङ्ग**—स्मृति सम्बोध्यङ्ग, धर्मविचय सम्बोध्यङ्ग, वीर्य सम्बोध्यङ्ग, प्रीति ०, प्रश्रब्धि ०, समाधि ०, उपेक्षा ०।

३—कौन ० परिज्ञेय हैं? सात विज्ञानस्थितियाँ—

सात **विज्ञान-स्थिति**—(१) आवुसो! (कोई कोई) सत्त्व (=प्राणी) नानाकाय नानासंज्ञा (=नाम) वाले हैं; जैसेकि मनुष्य, कोई कोई देव, कोई कोई विनिपातिक (=पापयोनि); यह प्रथम विज्ञान-स्थिति है। (२) ० नाना-काय किन्तु एक-संज्ञावाले; जैसे कि प्रथम उत्पन्न **ब्रह्मकायिक** देव०। (३) एक-काया नाना-संज्ञावाले, जैसे कि **आभास्वर** देवता ०। (४) ० एक-काया एक-संज्ञावाले, जैसे कि **शुभकृत्स्न** देवता ०। (५) आवुसो! कोई कोई सत्त्व रूपसंज्ञाको सर्वथा अतिक्रमणकर, प्रतिघ (=प्रतिहिंसा) संज्ञाके अस्त होनेसे, नाना संज्ञाके मनमें न करनेसे 'आकाश अनन्त है' इस आकाश-आनंत्य-आयतनको प्राप्त हैं, यह पाँचवीं विज्ञानस्थिति है। (६) ० आकाशानन्त्यायतनको सर्वथा अतिक्रमणकर, 'विज्ञान अनन्त है' इस विज्ञान-आनंत्य-आयतनको प्राप्त हैं, यह छठीं विज्ञान-स्थिति है, (७) ० विज्ञानानन्त्यायतनको सर्वथा अतिक्रमणकर 'कुछ नहीं,' इस आकिंचन्य-आयतनको प्राप्त हैं। यह सातवीं विज्ञान-स्थिति है।

४—कौन ० प्रहातव्य हैं? सात **अनुशय**—कामराग-अनुशय, प्रतिघ ०, दृष्टि ०, विचिकित्सा०, मान ०, भव-राग ०, और अविद्या-अनुशय।

५—कौन ० दानभागीय हैं? सात **असद्धर्म**—भिक्षु अश्रद्ध होता है; अह्रीक ०, अन्-अपत्रपी ०, अल्प-श्रुत ०, कुसीत ०, मूढ-स्मृति ०, दुष्प्रज्ञ ०।

६—कौन ० विशेषभागीय हैं? सात **सद्धर्म**—भिक्षु श्रद्धालु होता है, ह्रीमान्०, अपत्रपी ०, बहुश्रुत ०, आरब्धवीर्य ०, उपस्थित-स्मृति ०, प्रज्ञावान् ०।०

७—कौन ० दुष्प्रतिवेध्य हैं? सात **सत्पुरुष-धर्म**—भिक्षु धर्मज्ञ होता है, अर्थज्ञ, आत्मज्ञ, मात्रज्ञ, कालज्ञ, पुरुषज्ञ, पुद्गल (=व्यक्तिज्ञ)।

८—कौन ० उत्पादनीय हैं? सात **संज्ञायें**—अनित्य-संज्ञा, अनात्म ०, अशुभ ०, आदिनव (दोष), प्रहाण०, विराग ०, और निरोध-संज्ञा।०

९—कौन ० अभिज्ञेय हैं?

सात [1]**निर्दश-वस्तु**—(१) आवुसो! भिक्षु शिक्षा (=भिक्षु-नियम) ग्रहण करने में तीव्र-

---

[1] अ. क. "तीर्थिक लोग दश वर्षके समयमें मरे निगंठ (=जैन साधु)को निर्दश कहते हैं। वह (मरा निगंठ) फिर दश वर्ष तक नहीं होता।...। इसी प्रकार बीस वर्ष आदि कालमें मरेको निर्विंश, निस्त्रिंश, निश्चत्त्वारिंश, निष्पंचाश कहते हैं। आयुष्मान् आनन्दने, ग्राम में विचरण करते इस बातको सुनकर विहारमें जा भगवान्को कहा। भगवान्ने कहा—'आनन्द!

छन्द (=बहुत अनुरागवाला) होता है, भविष्यमें भी शिक्षा ग्रहण करनेमें प्रेम-रहित नहीं होता। (२) धर्म-निशांति (=विपश्यना) में तीव्र-छन्द होता है, भविष्य में भी धर्म-निशांति प्रेम-रहित नहीं होता। (३) इच्छा-विनय (=तृष्णा-त्याग) में ०। (४) प्रतिसल्लयन (=एकांतवास) में ०। (५) वीर्यारम्भ (=उद्योग) में ०। (६) स्मृतिके निष्पाक (=परिपाक) में ०। (७) दृष्टि-प्रतिवेध (=सन्मार्ग-दर्शन) में ०।

१०—(१) फिर क्षीणास्रव भिक्षुका चित्त विवेककी ओर झुका=प्रवण=प्राग्भार होता है। (२) और विवेकमें स्थित होता है। (३) निष्कामतामें रत होता है। (४) आस्रवोंके उत्पन्न करनेवाले सभी धर्मोंसे रहित होता है। (५) ० चारों स्मृति प्रस्थान भावित होते हैं, सुभावित। ० (६) ० पाँच इन्द्रियाँ भावित और सुभावित होती हैं ०। (७) ० आर्य अष्टाङ्गिक मार्ग भावित और सुभावित होते हैं ०। यह भी उसका बल होता है, जिसके सहारे वह जानता है कि मेरे सभी आस्रव क्षीण हो गये।

ये सत्तर धर्म भूत ०।

(इति) प्रथम भाणवार ॥१॥

८—**अष्टक**—० आठ धर्म ०।

१—"कौन ० बहुत उपकारक हैं? आठ **हेतु-प्रत्यय,** जो कि अ-प्राप्त आदि-ब्रह्मचर्य (=शुद्ध संन्यास) संबंधिनी प्रज्ञाकी प्राप्ति और प्राप्तकी वृद्धि, विपुलता और भावनाके पूरा करनेके लिये हैं। कौन आठ?—(१) भिक्षु शास्ता या दूसरे गुरु-स्थानीय सब्रह्मचारीके आश्रयसे विहार करता है, जिससे उसमें तीव्र ह्री (=लज्जा)=अपत्रपा, प्रेम और गौरव वर्तमान रहता है। यह प्रथम हेतु और प्रथम प्रत्यय ० भावना पूरा करनेके लिये है। (२) ० आश्रयसे विहार करता है ०; और समय समयपर उनके पास जाकर प्रश्नोंको पूछता है—'भन्ते! यह कैसे? इसका क्या अर्थ है?' उसे वे आयुष्मान् अ-स्पष्टको स्पष्ट, अ-सरलको सरल करते हैं, अनेक प्रकारसे शंका-स्थानीय बातोंसे शंका दूर करते हैं। यह दूसरा हेतु ०। (३) उस धर्मको सुनकर शरीर और मन दोनोंसे पालन करता है—यह तीसरा हेतु ०। (४) ० भिक्षु शीलवान् होता है, प्रातिमोक्ष संवर (=भिक्षुसंयमों) से संयत होकर विहार करता है, आचारविचार-सम्पन्न होता है, थोळेसे भी दोषोंमें भय देखता है, शिक्षापदोंको मन लगाकर सीखता है। यह चौथा हेतु ०। (५) ० भिक्षु बहुश्रुत और श्रुतसंचयी (=पढ़ेको याद रखनेवाला) होता है। जो धर्म आदि-कल्याण, मध्य-कल्याण, अन्त-कल्याण—सार्थक=सव्यञ्जन हैं जो केवल=शुद्ध, परिपूर्ण ब्रह्मचर्यको प्रकाशित करते हैं, उस प्रकारके धर्म उसने बहुत सुने धारण किये होते हैं; वचनसे परिचित, मनसे आलोचित, दर्शनसे खूब अच्छी तरह जाने होते हैं। यह पाँचवाँ हेतु ०। (६) ०बुराइयों (=अकुशल धर्मों) के नाश (=प्रहाण) के और कुशल धर्मोंको पैदा करनेके लिये, भिक्षु आरब्धवीर्य (=यत्नशील) होकर विहार करता है।०। यह छठा हेतु०। (७) ०भिक्षु स्मृतिमान् होता है, परम स्मृति और प्रज्ञासे युक्त होता है। बहुत दिन पहले किये या कहेको स्मरण करता है। यह सातवाँ हेतु०। (८) ०भिक्षु पाँच उपादान-स्कन्धोंके उदय (=उत्पत्ति) और व्यय (=विनाश) को देखते हुए विहार करता है—यह रूप है, यह रूपका समुदय, यह रूपका अस्त हो जाना; यह वेदना०, संज्ञा ०, संस्कार ० और विज्ञान ०। यह आठवाँ हेतु ०।

यह तीर्थिकोंका ही वचन नहीं है; मेरे शासनमें भी यह क्षीणास्रवको कहा जाता है। क्षीणास्रव (=अर्हत्, मुक्त) दश वर्षके समय परिनिर्वाण प्राप्त हो फिर दश-वर्ष नहीं होता, सिर्फ दश वर्ष ही नहीं नव वर्ष…एक वर्ष…एक मासका भी, एक दिनका भी, एक मुहूर्तका भी नहीं होता। किसलिए? (पुनः) जन्मके न होने से……।"

२—कौन ० भावना करने योग्य हैं ? आर्य **अष्टाङगिक मार्ग**—सम्यक् दृष्टि, सम्यक्-संकल्प, सम्यग्-वाक्, सम्यक्-कर्मान्त, सम्यग्-आजीव, सम्यग्-व्यायाम्, सम्यक्-स्मृति, सम्यक्-समाधि ।

३—कौन ० परिज्ञेय हैं ? आठ लोकधर्म—लाभ, अलाभ, यश, अयश, निन्दा, प्रशंसा, सुख, दुःख ।०

४—कौन ० प्रहातव्य हैं ? आठ झूठी बातें—मिथ्या-दृष्टि, मिथ्या-संकल्प, मिथ्या-वाग्, मिथ्या-कर्मान्त, मिथ्या-अजीव, मिथ्या-व्यायाम, मिथ्या-स्मृति, मिथ्या-समाधि । ०

५—कौन ० हानभागीय हैं ?

आठ **कुसीत** (=आलस्य) वस्तु—यहाँ आवुसो ! भिक्षुको (जब) कर्म करना होता है, उसके (मनमें) ऐसा होता है—'कर्म मुझे करना है, किन्तु कर्म करते हुये मेरा शरीर तकलीफ पायेगा, क्यों न मैं लेट (=चुप) रहूँ।' वह लेटता है, अप्राप्तकी प्राप्तिके लिये=अनधिगतके अधिगमके लिये, अ-साक्षात्कृतके साक्षात्कारके लिये उद्योग नहीं करता। यह प्रथम कुसीत-वस्तु है। (२) और फिर आवुसो ! भिक्षु, कर्म क्रिये होता है, उसको ऐसा होता है, मैंने कामकर लिया, काम करते मेरा शरीर थक गया, क्यों न मैं पळ रहूँ। वह पळ रहता है, ० उद्योग नहीं करता०। (३) भिक्षुको मार्ग जाना होता है। उसको यह होता है—'मुझे मार्ग जाना होगा, मार्ग जानेमें मेरा शरीर तकलीफ पायेगा; क्यों न मैं पळ रहूँ।' वह पळ रहता है, ० उद्योग नहीं करता०। (४) ० भिक्षु मार्ग चल चुका होता है। उसको यह होता है—'मैं मार्ग चल चुका, मार्ग चलनेमें मेरे शरीरको बहुत तकलीफ हुई०। (५) ० भिक्षुको ग्राम या निगममें पिंडचार करते सूखा-भला भोजन भी पूरा नहीं मिलता। उसको ऐसा होता है—'मैं ग्राम या निगममें पिंडचार करते सूखा-भला भोजन भी पूरा नहीं पाता, सो मेरा शरीर दुर्बल असमर्थ (होगया), क्यों न मैं लेट रहूँ०। (६) ० पिंडचार करते रूखा-सूखा भोजन यथेच्छ पा लेता है। उसको ऐसा होता है—मैं ० पिंडचार करते रूखा-सूखा ० पाता हूँ, सो मेरा शरीर भारी है, अस्वस्थ है, मानो मांसका ढेर है, क्यों न पळ जाऊँ०। (७) ० भिक्षुको थोळी सी (=अल्पमात्र) बीमारी उत्पन्न होती है, उसको यह होता है—यह मुझे अल्पमात्र बीमारी उत्पन्न हुई है; पळ रहना उचित है, क्यों न मैं पळ जाऊँ०। (८) ० भिक्षु बीमारीसे उठा होता है..., उसको ऐसा होता है, ० सो मेरा शरीर दुर्बल असमर्थ है, ०।

६—कौन ० विशेषभागीय ?

आठ **आरब्ध वस्तु**—यहाँ आवुसो ! भिक्षुको कर्म करना होता है। उसको यह होता है—'काम मुझे करना है, काम न करते हुये, बुद्धोंके शासन (=धर्म)को मनमें लाना मुझे सुकर नहीं, क्यों न मैं अप्राप्तकी प्राप्तिके लिये=अनधिगतके अधिगमके लिये, अ-साक्षात्कृतके साक्षात्कारके लिये उद्योग करूँ।' सो ० उद्योग करता है; यह प्रथम आरब्ध-वस्तु है। (२) ० भिक्षु काम कर चुका होता है, उसको ऐसा होता है—'मैं कामकर चुका हूँ, कर्म करते हुये मैं बुद्धोंके शासनको मनमें न कर सका'; क्यों न मैं ० उद्योग करूँ ०। (३) ० भिक्षुको मार्ग जाना होता है। उसको ऐसा होता है०। (४) ० भिक्षु मार्ग चल चुका होता है०। (५) ० भिक्षु ग्राम या निगममें पिंडचार करते सूखा-भला भोजन भी पूरा नहीं पाता, ० सो मेरा शरीर हल्का कर्मण्य (=काम लायक) है०। (६) ० सूखा-रूखा भोजन पूरा पाता है, ० सो मेरा शरीर बलवान्, कर्मण्य है०। (७) भिक्षुको अल्पमात्र रोग उत्पन्न होता है,० हो सकता है मेरी बीमारी बढ़ जाय, क्यों न मैं०। (८) ० भिक्षु बीमारीसे उठा होता है..., ० हो सकता है, मेरी बीमारी फिर लौट आवे, क्यों न मैं०[1]।

---

[1]हानभागीयकी भाँति ही।

७—कौन ० दुष्प्रतिवेध्य हैं ? ब्रह्मचर्य-वासके आठ **अक्षण**=असमय (हैं) ब्रह्मचर्य-वासके लिये—(१) आवुसो ! लोकमें तथागत अर्हत् सम्यक् संबुद्ध उत्पन्न होते हैं, और उपशम=परिनिर्वाणके लिये, संबोधिगामी, सुगत (=सुन्दर गतिको प्राप्त=बुद्ध) द्वारा प्रवेदित (=साक्षात्कार किये) धर्मको उपदेश करते हैं, (उस समय) यह पुद्गल (=पुरुष) निरय (=नरक)में उत्पन्न रहता है, यह प्रथम अक्षण० है। (२) और फिर यह तिर्यक्-योनि (=पशु पक्षी आदि)में उत्पन्न रहता है०। (३) प्रेत्य-विषय (=प्रेत-योनि)में उत्पन्न हुआ होता है०। (४) ० असुर-काय (=असुर-योनि) ०। (५) दीर्घायु देव-निकाय (=देव-योनि)में ०। (६) ० प्रत्यन्त (=मध्य देशके बाहरके) देशोंमें अ-पंडित म्लेच्छोंमें उत्पन्न हुआ होता है, जहाँपर कि भिक्षुओंकी गति (=जाना) नहीं, न भिक्षुणियोंकी, न उपासकोंकी, न उपासिकाओंकी०। (७) ० **मध्यदेश** (=मज्झिमजनपद)में उत्पन्न होता है, किन्तु वह मिथ्यादृष्टि (=उल्टा मत)=विपरीत-दर्शनका होता है—दान दिया (-कुछ) नहीं है, यज्ञ किया ०, हवन किया ०, सुकृत दुष्कृत कर्मोंका फल=विपाक नहीं; यह लोक नहीं, परलोक नहीं, माता नहीं, पिता नहीं, औपपातिक (=अयोनिज) सत्त्व नहीं, लोकमें सम्यग्-गत (=ठीक रास्तेपर)=सम्यक्-प्रतिपन्न श्रमण ब्राह्मण नहीं, जो कि इस लोक और परलोकको स्वयं साक्षात्कर, अनुभवकर, जाने ०। (८) ० मध्य-देशमें होता है, किन्तु वह है, दुष्प्रज्ञ, जळ=एड-मूक (=भेळसा गूँगा), सुभाषित दुर्भाषितके अर्थको जाननेमें असमर्थ, यह आठवाँ अक्षण है। (९) तथागत ० लोकमें उत्पन्न नहीं होते ० ० मध्य-देशमें उत्पन्न होता है, और वह प्रज्ञा-वान्, अजळ=अनेड-मूक होता है, सुभाषित दुर्भाषितके अर्थको जाननेमें समर्थ होता है०।

८—कौन० उत्पाद्य हैं ? आठ **महापुरुषवितर्क**—यह धर्म अल्पेच्छों (त्यागियों)का है, महेच्छोंका नहीं; संतुष्टका, असंतुष्टका नहीं; एकान्तवासप्रियका, जनसमारोहप्रियका नहीं; उत्साहीका, आलसीका नहीं; उपस्थितस्मृतिका, मूढ़स्मृतिका नहीं; समाहित (=एकाग्रचित्त)का, असमाहितका नहीं; प्रज्ञावान्का, मूर्खका नहीं; प्रपञ्च-रहित पुरुषका, प्रपञ्चीका नहीं। ०

९—कौन ० अभिज्ञेय हैं ?

आठ **अभिभ्वायतन**—एक (पुरुष) अपने भीतर (=अध्यात्म) रूप-संज्ञी (=रूपकी लौ लगानेवाला) बाहर थोळे सुवर्ण दुर्वर्ण रूपोंको देखता है—'उनको अभिभवन (=लुप्त)कर जानता हूँ, देखता हूँ' इस संज्ञावाला होता है। यह प्रथम अभिभ्वायतन है। (२) एक (पुरुष) अध्यात्ममें अरूप-संज्ञी, बाहर अप्रमाण (=अतिमहान्) सुवर्ण दुर्वर्ण रूपोंको देखता है०। (३) ० अध्यात्ममें अरूपसंज्ञी, बाहर स्वल्प सुवर्ण दुर्वर्ण रूपोंको देखता है०। (४) ० अध्यात्ममें अरूप-संज्ञी, बाहर अप्रमाण सुवर्ण दुर्वर्ण रूपोंको ०। (५) ० अध्यात्ममें अरूपसंज्ञी बाहर नील, नीलवर्ण, नील-निदर्शन, नील-निर्भास रूपोंको देखता है, **जैसे** कि नील, नीलवर्ण, नील-निदर्शन अलसीका फूल, या जैसे दोनों ओरसे रगळा (=पालिश किया) नीला० **काशी**का वस्त्र; ऐसे ही अध्यात्ममें अरूप-संज्ञी बाहर नील० रूपोंको देखता है। उन्हें अभिभवनकर०। (६) ० अध्यात्ममें अरूप-संज्ञी बाहर पीत (=पीला), पीत वर्ण, पीत-निदर्शन, पीत-निर्भास रूपोंको देखता है, **जैसे** कि ० **कर्णिकार** पुष्प, या जैसे ० पीला ० काशीका वस्त्र ०। (७) ० ० बाहर लोहित (=लाल) ० रूपोंको देखता है, **जैसे** कि ० **बन्धु-जीवक** पुष्प, या जैसे ० लोहित ० काशीका वस्त्र ०। (८) ० ० बाहर अवदात (=सफेद) ० रूपोंको देखता है; **जैसे** कि अवदात ० **ओषधी-तारक** (=शुक्र), या जैसे अवदात ० बनारसी वस्त्र। ०

१०—किनको साक्षात् करना चाहिये ? आठ **विमोक्ष**—(१) (स्वयं) रूपी (=रूपवान्) रूपोंको देखता है, यह प्रथम विमोक्ष है। (२) एक (पुरुष) अध्यात्ममें अरूपी-संज्ञी बाहर रूपोंको देखता है०। (३) सुभ (=शुभ्र)हीसे मुक्त (=अधिमुक्त) हुआ होता है ०। (४) सर्वथा रूप-संज्ञाको अतिक्रमण कर, प्रतिघ (=प्रतिहिंसा)-संज्ञाके अस्त होनेसे, नानापनकी संज्ञा (=ख्याल)के मनमें

न करनेसे, 'आकाश अनन्त है' इस आकाश-आनन्त्य-आयतनको प्राप्त हो विहरता है ०। (५) सर्वथा आकाशानन्त्यायनको अतिक्रमण कर, 'विज्ञान अनन्त है' इस विज्ञान-आनन्त्य-आयतनको प्राप्त हो विहरता है०। (६) सर्वथा विज्ञाना नन्त्यायतनको अतिक्रमणकर, 'किंचित् (=कुछ भी) नहीं' इस आकिंचन्य-आयतनको प्राप्त हो विहरता है०। (७) सर्वथा आकिंचन्यायतनको अतिक्रमणकर 'नहीं संज्ञा है, न असंज्ञा' इस नैव-संज्ञा-न-असंज्ञा-आयतनको०। (८) सर्वथा नैवसंज्ञा-नासंज्ञायतनको अतिक्रमणकर, संज्ञा-वेदयितनिरोध (=जहाँ होशका ख्याल ही लुप्त हो जाता है)को प्राप्त हो विहरता है।

ये अस्सी धर्म भूत ०।

९—**नवक**—० नव धर्म ०।

१—कौन बहुत उपकारक—ठीकसे मनमें लानेवाले नव धर्म हैं?—ठीकसे मनमें लानेसे प्रमोद उत्पन्न होता है, प्रमुदितको प्रीति होती है, प्रीतियुक्त मनवालेका शरीर शान्त ०। शान्त शरीर वाला सुख अनुभव करता है, सुखीका चित्त एकाग्र होता है। एकाग्र चित्त ठीकसे जानता देखता है। ठीकसे जानते देखते निर्वेद (=उदासीनता) को प्राप्त होता हे। उदास हो विरक्त होता है। विरागसे मुक्त होता है। यह नव ०।

२—कौन ० भावना करने योग्य हैं? नव **पारिशुद्धिप्रधानीय** अङ्ग—शील-विशुद्धि पारिशुद्धि प्राधानीय अङ्ग, चित्त-विशुद्धि ०, दृष्टि ०, कांक्षावितरण०, मार्गामार्गज्ञान-दर्शन०, प्रतिपद्ज्ञानदर्शन ०, ज्ञानदर्शन ०, प्रज्ञा ०, विमुक्ति। ०

३—कौन ० परिज्ञेय हैं? नव **सत्वावास**—नानाकाया और नानासंज्ञावाले सत्व हैं, जैसे—मनुष्य—कितने देव, और कितने औपपातिक। यह प्रथम सत्वावास है।

० एकात्मसंज्ञा ० जैसे—प्रथम उत्पन्न **ब्रह्मकायिक** देव। यह दूसरा०।

एककाया और नानासंज्ञा ० जैसे—**आभास्वर** देव। तीसरा ०।

एककाया और एकसंज्ञा ०, जैसे—**शुभकिकुत्स्न** देव। यह चौथा।

असंज्ञी और अप्रतिसंवेदी सत्व हैं जैसे—**असंज्ञीसत्व** देव। यह पाँचवाँ।

सर्वशः रूपसंज्ञाओंके हट जानेसे, प्रतिघ संज्ञाके अस्त हो जानेसे, नानात्मसंज्ञाओंको ठीकसे मनमें न लानेसे, अनन्त आकाश करके आकाशानन्त्यायतनको प्राप्त करता है। यह छठा।

सर्वशः आकाश०को छोळ अनन्त विज्ञान ०। यह सातवाँ।

० नैवसंज्ञानासंज्ञाको प्राप्त करता है। यह नवाँ।

४—कौन ० प्रहातव्य हैं? नव **तृष्णामूलक धर्म**—तृष्णाके होनेसे खोजना, खोजनेसे पाना, ० विनिश्चय, ० छन्दराग, ० अध्यवसान, ० परिग्रह, ० मात्सर्य, ० आरक्षा, आरक्षाधिकरणके होनेसे दण्डादान, शस्त्रादान, कलह, विग्रह, विवाद, 'तू तू, मैं मैं' चुगली और झूठ बोलना होते हैं; अनेक पाप, अकुशल धर्म होने लगते हैं। ०

५—कौन ० हानभागीय हैं? नव **आघात** (=द्वेष) **वस्तु**—'मेरा अनर्थ किया है,' (सोच) द्वेष करता है।' अनर्थ करता है,' ०, ०करेगा०। मेरे प्रिय मनापका अनर्थ किया है ०, ०करता०, करेगा०।

मेरे अ-प्रिय=अ-मनापका अर्थ किया ० करता० करेगा।

६—कौन ० विशेष-भागीय हैं? नव **आघात-प्रतिविनय** (=द्रोहका हटाना) मेरा अनर्थ किया, तो उससे क्या हुआ?' अपने द्वेषको दबाता है। ० करता है ० अनर्थ करेगा ०।

० प्रिय=मनापका अनर्थ किया। ० करता ० करेगा ० ० अपने द्वेषको दबाता है।

अप्रिय और अमनापका अर्थ किया। ० करता ० करेगा द्वेषको दबाता है।

७—कौन०दुष्प्रतिवेध्य हैं? नव **नानात्त्व**—धातुओंके नानात्त्वसे स्पर्श नानात्त्व उत्पन्न होता है, स्पर्श-नानात्त्वसे ० वेदना-नानात्त्व उत्पन्न होता है, वेदना-नानात्त्वसे संज्ञा-नानात्त्व०, संज्ञा-नानात्त्वसे

संकल्प-नानात्त्व ०, संकल्प-नानात्त्वसे छन्द-नानात्त्व ०, छन्द-नानात्त्वसे परिदाह-नानात्त्व०, ० पर्येषण-नानात्त्व ०, ० लाभ-नानात्त्व ०, ०

८—कौन ० उत्पाद्य हैं? **नव संज्ञा**—अशुभ, मरण, आहारमें प्रतिकूल, सारे संसारमें अ-रति, अनित्यमें दुःख, दुःखमें अनात्म, प्रहाण और विरागसंज्ञा।

९—कौन अभिज्ञेय हैं? नव अनपूर्व (=क्रमशः)-विहार—(१) आवुसो! भिक्षु काम और अकुशल धर्मोंसे अलग हो, वितर्क-विचार सहित विवेकज प्रीति सुखवाले प्रथम ध्यानको प्राप्त हो विहरता है। (२) ०[1] द्वितीय ध्यान०। (३) ० तृतीय-ध्यान०। (४) ० चतुर्थ ध्यान ०। (५) ० आकाशानन्त्यायतनको प्राप्त हो विहरता है (६) विज्ञानानन्त्यायतन०। (७) ० आकिंचन्यायतन ०। (८) ० नैवसंज्ञाना-संज्ञायतन ०। (९) ० संज्ञा-वेदयित-निरोध ०।

१०—कौन ० साक्षात्करणीय हैं? नव **अनुपूर्व-निरोध**—(१) प्रथम ध्यान प्राप्तकी काम-संज्ञा (=कामोपभोगका ख्याल) निरुद्ध (=लुप्त) होती है। (२) द्वितीय ध्यानवालेका वितर्क-विचार निरुद्ध होता है। (३) तृतीय ध्यानवालेकी प्रीति निरुद्ध होती है (४) चतुर्थ ध्यान-प्राप्तका आश्वास-प्रश्वास (=साँस लेना) निरुद्ध होता है। (५) आकाशानन्त्यायतन प्राप्तकी रूप-संज्ञा निरुद्ध होती है। (६) विज्ञानानन्त्यायतन-प्राप्तकी आकाशानन्त्यायतन-संज्ञा ०। (७) आकिंचन्यायतन-प्राप्तकी विज्ञानानन्त्यायतन संज्ञा ०। (८) नैव-संज्ञा-नासंज्ञायतन-प्राप्तकी आकिंचन्यायतन संज्ञा ०। (९) संज्ञा-वेदयित-निरोध-प्राप्तकी संज्ञा (=होश) और वेदना (=अनुभव) निरुद्ध होती हैं।

ये नब्बे धर्म भूत०।

(इति) तृतीय भाणवार ॥३॥

१०—**दशक**—० दश धर्म ०।

(१) "कौन दश धर्म बहुत उपकारक हैं? दश **नाथ-करण** धर्म—(१) आवुसो! भिक्षु शीलवान्, प्रातिमोक्ष (=भिक्षुनियम)-संवर (=कवच)से संवृत (=आच्छादित) होता है। थोळीसी बुराइयों (=वद्य)में भी भय-दर्शी, आचार-गोचर-युक्त हो विहरता है, (शिक्षापदोंको) ग्रहणकर शिक्षापदोंको सीखता है। जो यह आवुसो! भिक्षु शीलवान्०, यह भी धर्म नाथ-करण (=न अनाथ करनेवाला) है। (२) ० भिक्षु बहु-श्रुत, श्रुत-धर, श्रुत-संचय-वान् होता है। जो वह धर्म आदि-कल्याण, मध्य-कल्याण, पर्यवसान-कल्याण, सार्थक=सव्यंजन हैं, (जिसे) केवल, परिपूर्ण, परिशुद्ध ब्रह्मचर्य कहते हैं; वैसे धर्म, (भिक्षु)के बहुत सुने, ग्रहण किये, वाणीसे परिचित, मनसे अनुपेक्षित, दृष्टिसे सुप्रतिविद्ध (=अन्तस्तल तक देखे) होते हैं; यह भी धर्म नाथ-करण होता है। (३) ० भिक्षु कल्याण-मित्र=कल्याण-सहाय=कल्याण-संप्रवंक होता है। जो यह भिक्षु कल्याण-मित्र० होता है, यह भी०। (४) ० भिक्षु सुवच, सौवचस्य (=मधुरभाषिता) वाले धर्मोंसे युक्त होता है। अनुशासनी (=धर्म-उपदेश)में प्रदक्षिणग्राही=समर्थ (=क्षम) (होता है), यह भी०। (५) ० भिक्षु सब्रह्मचारियोंके जो नाना प्रकारके कर्तव्य होते हैं, उनमें दक्ष=आलस्य-रहित होता है, उनमें उपाय=विमर्शसे युक्त, करनेमें समर्थ=विधानमें समर्थ, होता है। ० यह भी०। (६) ० भिक्षु **अभिधर्म** (=सूत्रमें), **अभि-विनय** (=भिक्षु-नियमोंमें) धर्म-काम (=धर्मेच्छु), प्रिय-समुदाहार (=दूसरेके उपदेशको सत्कारपूर्वक सुननेवाला, स्वयं उपदेश करनेमें उत्साही), बळा प्रमुदित होता है, ० यह भी ०। (७) भिक्षु जैसे तैसे चीवर, पिंडपात, शयनासन, ग्लान-प्रत्यय-

---

[1] देखो पृष्ठ २९-३२।

भैषज्य-परिष्कारसे सन्तुष्ट होता है ०। (८) ० भिक्षु अकुशल-धर्मोंके विनाशके लिये, कुशल-धर्मोंकी प्राप्तिके लिये उद्योगी (=आरब्ध-वीर्य) स्थामवान्=दृढ़पराक्रम होता है। कुशल-धर्मोंमें अनिक्षिप्त-धुर (=भगोळा नहीं) होता ०। (९) ० भिक्षु स्मृतिमान्, अत्युत्तम स्मृति-परिपाकसे युक्त होता है, बहुत पुराने किये, बहुत पुराने भाषण कियेका भी स्मरण करनेवाला, अनुस्मरण करनेवाला होता है ०। (१०) ० भिक्षु प्रज्ञावान् उदय-अस्त-गामिनी, आर्य निर्बेधिक (=अन्तस्तल तक पहुँचनेवाली), सम्यक्-दुःख-क्षय-गामिनी प्रज्ञासे युक्त होता है ०।

२—कौन दश धर्म भावना करने योग्य हैं?—दश **कृत्स्नायतन**—(१) एक (पुरुष) ऊपर नीचे आळे-बेळे अद्वितीय (=एक मात्र) अप्रमाण (=अतिमहान्) पृथिवी-कृत्स्न (=सब पृथिवी) जानता है। (२) ० आपः-कृत्स्न ०। (३) ० तेजः-कृत्स्न ०। (४) ० वायु-कृत्स्न ०। (५) ० नील-कृत्स्न ०। (६) ० पीत-कृत्स्न ०। (७) ० लोहित-कृत्स्न ०। (८) ० अवदात-कृत्स्न ०। (९) ० आकाश-कृत्स्न ०। (१०) ० विज्ञान-कृत्स्न ०।

३—"कौन दश धर्म परिज्ञेय हैं?—दश **आयतन** (=इन्द्रिय और विषय)। (१) चक्षु-आयतन, (२) रूप-आयतन, (३) श्रोत्र ०, (४) शब्द ०, (५) घ्राण ०, (६) गंध ०, (७) जिह्वा ०, (८) रस ०, (९) काय-आयतन, (१०) स्प्रष्टव्य-आयतन।

४—"कौन दश धर्म प्रहातव्य हैं?—दश **मिथ्यात्त्व** (=झूठा)। (१) मिथ्या-दृष्टि (=झूठी धारणा), (२) मिथ्या-संकल्प, (३) मिथ्या-वचन, (४) मिथ्या-कर्मान्त (=झूठा कारबार), (५) मिथ्या-आजीव (=झूठी रोज़ी), (६) मिथ्या-व्यायाम (=० उद्योग), (७) मिथ्या-स्मृति, (८) मिथ्या-समाधि, (९) मिथ्या-ज्ञान, (१०) मिथ्या-विमुक्ति। ०

५—"कौन दश धर्म हानभागीय ह?—दश **अकुशल कर्मपथ** (=दुष्कर्म)। (१) हिंसा, (२) चोरी, (३) व्यभिचार, (४) झूठ, (५) चुगली, (६) कटुभाषण, (७) बकवास, (८) लोभ, (९) द्रोह, (१०) मिथ्या-दृष्टि (=उल्टा मत)। ०

६—"कौन दश धर्म विशेषभागीय हैं?—दश **कुशल कर्मपथ** (=पुण्यके कर्म)। (१) हिंसा-त्याग, (२) चोरीत्याग, (३) व्यभिचारत्याग, (४) झूठत्याग, (५) चुगलीत्याग, (६) कटुभाषण-त्याग, (७) बकवासत्याग, (८) लोभ-त्याग, (९) द्रोह-त्याग, (१०) उल्टी मतका त्याग। ०

७—"कौन दस धर्म (=बातें) दुष्प्रतिवेध्य हैं?—दश **आर्यवास**[२] (१) आवुसो! भिक्षु पाँच अंगों (=बातों)से हीन (=पञ्चाङ्ग-विप्रहीण) होता है। (२) छै अंगोंसे युक्त (=षडंग-युक्त) होता है। (३) एक आरक्षा वाला होता है। (४) अपश्रयण (=आश्रय) वाला होता है। (५) पनुन्न-पच्चेक-सच्च (होता है)। (६) समवयसट्ठेसन। (७) अन्-आविल (=अमलिन)-संकल्प०। (८) प्रश्रब्ध-काय-संस्कार०। (९) सुविमुक्त-चित्त०। (१०) सुविमुक्त-प्रज्ञ ०। (१) आवुसो! भिक्षु कैसे पाँच अंगोंसे हीन होता है? यहाँ आवुसो! भिक्षुका कामच्छन्द (=काम-राग) प्रहीण (=नष्ट) होता है, व्यापाद प्रहीण ०, स्त्यान-मृद्ध ०, औद्धत्य-कौकृत्य ०, विचिकित्सा ०। इस प्रकार आवुसो! भिक्षु पञ्चाङ्ग-विप्रहीण होता है। (२) कैसे आवुसो भिक्षु षडंग-युक्त होता है? आवुसो! भिक्षु चक्षुसे रूपको देख न सु-मन होता है, न दुर्मन; स्मृति-संप्रजन्य-युक्त उपेक्षक हो विहरता है। श्रोत्रसे शब्द सुनकर ०। घ्राणसे गंध सूँघकर ०। जिह्वासे रस चखकर ०, कायसे स्प्रष्टव्य छूकर ०, मनसे धर्म जानकर ० ०। (३) आवुसो! एकारक्ष कैसे होता है? आवुसो! भिक्षु स्मृतिकी रक्षासे युक्त होता है। (४) आवुसो! भिक्षु कैसे चतुरापश्रयण होता है? आवुसो! भिक्षु संख्यानकर (=समझकर) एकको करता

---

[१] देखो पृष्ठ २९-३२। [२] देखो संगीतिपरियाय सुत्त ३३, पृष्ठ ३०१।

है, संख्यानकर एकको स्वीकार करता है, संख्यानकर एकको हटाता है, संख्यानकर एकको वर्जित करता है, ०। (५) आवुसो ! भिक्षु कैसे पनुन्न-पच्चेक-सच्च होता है ? आवुसो ! जो वह (=उलटे) श्रमण-ब्राह्मणोंके पृथक् (=उलटे) प्रत्येक (=एक एक) सत्य (=सिद्धांत) होते हैं, वह सभी (उसके) पणुन्न=त्यक्त=वान्त=मुक्त=प्रहीण, प्रतिप्रश्रब्ध (=शमित) होते हैं ०। (६) आवुसो ! कैसे समवयसट्ठेसन, (=सम्यक्-विसृष्टैषण) होता है ? आवुसो ! भिक्षुकी काम-एषणा प्रहीण (=त्यक्त) होती है, भव-एषणा ०, ब्रह्मचर्य-एषणा प्रशमित होती है, ०। (७) आवुसो ! भिक्षु कैसे अनाविल-संकल्प होता है ? आवुसो ! भिक्षुका काम-संकल्प प्रहीण होता है, व्यापाद-संकल्प ०, हिंसा-संकल्प ०। इस प्रकार आवुसो ! भिक्षु अनाविल(=निर्मल)-संकल्प होता है। (८) आवुसो ! भिक्षु कैसे प्रश्रब्ध-काय होता है ? ० भिक्षु ० चतुर्थ ध्यानको प्राप्त हो विहरता है, ०। (९) आवुसो ! भिक्षु कैसे विमुक्त-चित्त होता है ? आवुसो ! भिक्षुका चित्त रागसे विमुक्त होता है, ०द्वेषसे विमुक्त होता है, ०मोहसे विमुक्त होता है, इस प्रकार ०। (१०) कैसे ० सुविमुक्ति-प्रज्ञ होता है ? आवुसो ! भिक्षु जानता है—'मेरा राग प्रहीण हो गया, उच्छिन्न-मूल=मस्तकच्छिन्न-तालकी तरह, अभाव-प्राप्त, भविष्यमें उत्पन्न होनेके अयोग्य, हो गया है।' ० मेरा द्वेष ०। ० मेरा मोह ०। ०।

८—"कौन दश धर्म उत्पादनीय हैं ?—दश **संज्ञा** (=ख्याल)। (१) अ-शुभसंज्ञा (=वस्तुओंकी बनावटमें गंदगी देखना), (२) मरण-संज्ञा, (३) आहारमें प्रतिकूलताका ख्याल, (४) सब संसारमें अनभिरति (=अनासक्ति)-संज्ञा, (५) अनित्य-संज्ञा, (६) अनित्यमें दुःख-संज्ञा, (७) दुःखमें अनात्म-संज्ञा, (८) प्रहाण(=त्याग)-संज्ञा, (९) विराग-संज्ञा, (१०) निरोध (=नाश)-संज्ञा०।

९—"कौन दश धर्म अभिज्ञेय हैं ?—दश **निर्जर** (=जीर्ण करनेवाले, नाशक) **वस्तु**। (१) सम्यग्-दृष्टि (=ठीक मत)से इस (पुरुष)की मिथ्या-दृष्टि जीर्ण होती है, और जो मिथ्या-दृष्टिके कारण अनेक बुराइयाँ उत्पन्न होती हैं, वह भी उसकी जीर्ण होती हैं। सम्यग्-दृष्टिके कारण अनेक अच्छा-इयां (=कुशल धर्म=पुण्य) भावनाकी पूर्णताको प्राप्त होती हैं, (२) सम्यक्-संकल्पसे उसका मिथ्या-संकल्प जीर्ण होता है ०। (३) सम्यक्-वचनसे इसका मिथ्या-वचन जीर्ण होता है ०। (४) सम्यक्-कर्मान्त (=ठीक कारबार)से उसका मिथ्या-कर्मान्त जीर्ण होता है ०। (५) सम्यग्-आजीव (=ठीक रोज़ी)से उसका मिथ्या-आजीव जीर्ण होता है ०। (६) सम्यग्-व्यायाम (=ठीक उद्योग)से उसका मिथ्या-व्यायाम जीर्ण होता है ०। (७) सम्यक्-स्मृतिसे उसकी मिथ्या-स्मृति जीर्ण होती है ०। (८) सम्यक्-समाधिसे उसकी मिथ्या-समाधि जीर्ण होती है ०। (९) सम्यग्-ज्ञानसे उसका मिथ्या-ज्ञान जीर्ण होता है ०। (१०) सम्यग्-विमुक्ति (=ठीक मुक्ति)से उसकी मिथ्या-विमुक्ति जीर्ण होती है। और जो मिथ्या-विमुक्तिके कारण अनेक बुराइयाँ उत्पन्न होती हैं, वह भी उसकी जीर्ण होती हैं। सम्यग्-विमुक्तिके कारण अनेक अच्छाइयाँ भावनाकी पूर्णताको प्राप्त होती हैं। यह दश धर्म **अभिज्ञेय** हैं।

१०—"कौन दश धर्म **साक्षात्कर्तव्य** हैं ?—दश **अशैक्ष्यधर्म**—(१) अशैक्ष्य (=अर्हत्, =मुक्त पुरुष)-सम्यग्-दृष्टि, (२) ० सम्यक्-संकल्प, (३) ० सम्यग्-वाक्—(४) ० सम्यक्-कर्मान्त, (५) ० सम्यग्-आजीव, (६) ० सम्यग्-व्यायाम, (७) ० सम्यक्-स्मृति, (८) ० सम्यक्-समाधि, (९) ० सम्यग्-ज्ञान, (१०) अ-शैक्ष्य सम्यग्-विमुक्ति। यह दश धर्म साक्षात्-कर्त्तव्य हैं।

"इस प्रकार ये सौ धर्म (=वस्तुयें) भूत, तथ्य=तथा=अ-वितथ=अन्-अन्यथा, सम्यक् (=यथार्थ) और तथागत द्वारा ठीकसे अभिसंबुद्ध (=बोध किये गये) हैं।"

आयुष्मान् **सारिपुत्र**ने यह कहा। सन्तुष्ट हो उन भिक्षुओंने आयुष्मान् सारिपुत्रके भाषणका अभिनन्दन किया।

(इति पाथिकवग्ग ॥३॥)

दीघनिकाय समाप्त ॥

परिशिष्ट

१—उपमा-सूची

अचिरवती पार जानेवाला आलसी ८९
अचिरवती पार जानेवाला उद्योगी ८९
अनाज (नाना प्रकारके) १९२
अन्धोंकी पाँती ८८
अरणीको काटकर आग निकालना २०६
अलसीका नीला फूल १३२, २९८, ३१०
आकाशमें चलना २५०
आमके पूछनेपर कटहल जवाब २०, २१, २२
इन्द्रकील २५७
ऋण २८
ओषधी-तारका २९८, ३१०
कपासका फाहा ३५४
कमलवन २९, २०९
कर्णिकारका पीला फूल १३२, २९८, ३१०
काशीका वस्त्र, नीला, पीला, लाल १३२, २९८, ३१०
काशीके वस्त्रमें लिपटी मणि ९९
कुम्हार ३०
क्षत्रियमूर्धाभिषिक्त १६३
खरादकार, चतुर १९१
खेत—अपना छोळ परायेका जोतना ८५
खेत खराब बीज खराब २०९
गंगा यमुनाका संगम १६८
गर्भ चीरकर पुत्र-प्रसव २०३
गायसे दूध, दूधसें दही . . . ७५
गोघातक १९२
चोरवध २००
चौरस्तेपर प्रासाद ३२
चौरस्तेपर सीढ़ी ७३, ८८
जनपदकल्याणीको चाहनेवाला ७३, ८८
जन्मान्धके लिये रंग २०२
जलाशय गम्भीर २९
जलाशय निर्मल ३२
जेल २८
तलवारको म्यानसे निकालना ३०
त्रायस्त्रिंश देवोंका दिन २०२
दन्तकार ३०
दर्पणमें मुख देखना ३१
दास २८
नरककी खड्ड ८५
पहाळकी चोटीसे देखना १०९
पानीमें तैरना २५०
पासेका निगलना २०८
प्रासादके नीचे सीढ़ी ७४
बन्धुजीवकका लाल फूल १३२, २९८, ३१०
बलवान् पुरुष ८०, १०५, १२५, १६३, १७२
भेरी आदिका शब्द ३१
भोजनके बादका आलस्य १५८
मक्खन २४२
मगधराजका बागी (मरा चोर) २८०
मधु २८२
मार्ग अनेक एक ही ग्रामको ८७
मार्गके गाँवोंका स्मरण ३१
मूँजसे सरकंडा निकालना ३०
रोग २८
लटुकिका (गौरय्या) ३६
लोहगोला दहकता १०४
वस्त्रशुद्ध रंग पकळता है १०७

वाद्य १५३, १५६
वृष्टिको सुनकर पानी लुढ़काना २०६
वैदूर्यमणि ३०, ९८
व्याधका मृग देखना २३७
शंखध्मा (=शंख बजानेवाला) ९१, २०५
शरद्का आकास १५६
शिर श्वेत वस्त्रसे ढँका २९
शुक्र तारा १३२
संडाससे निकला फिर क्या वहाँ २०१
सरकण्डा २४२
साँपको पिटारीसे निकालना ३०
सिंह--स्यार २२१
सीमान्त दुर्गका अेकही द्वार १२३, २४६
सुवर्णकार ३०
सूखेमें तैरना ९०
सूतकी गोली फेंकना २०
सोना छोळ सनको ढोना २०८
स्नानचूर्ण २९
हाथसे हाथ धोना ४६
हीरा (देखो वैदूर्यमणि) ३०

२—नाम-अनुक्रमणी

अकनिष्ट—१०९, १८९ (देवता)।
अग्निदत्त—९६ (ब्राह्मण, ककुसन्ध बुद्धका पिता)।
अंग—४४ (देशमें चम्पा), १६०, १७१ (में चम्पा महागोविन्दनिर्मित नगर, वर्तमान भागलपुर मूँगेर ज़िले)।
अंगक—४६ (चम्पाके सोणदण्ड ब्राह्मणका विद्वान् भागिनेय)।
अंगिरा—४१, ८७ (मंत्रकर्ता ऋषि)।
अट्ठक—४१, ८७ (मंत्रकर्ता ऋषि)।
अचिरवती—८९ (=राप्ती नदी) ८६ (नदीके तटपर मनसाकट,) ८९।
अचेल—६१ (काश्यप उजुञ्ञामें),
२१६ (कोरखत्तिय उत्तरकामें),
२१८ (कोरमट्टक वैशालीमें),
२१९ (पाथिकपुत्र, वैशालीमें)।
अचेल काश्यप—(देखो काश्यप अचेल—)।
अच्युत—(अच्युत) १७९ (देवता)।
अजपाल—१३३ (उरुवेलामें बर्गद), १८२ (नेरंजराके तीर)।
अजातशत्रु—१२ (कावज्जीपर प्रकोप), १६ राजा मागध वैदेही पुत्रको देवदत्तने भळकाया), १७ टि. (ने पिताको मरवाया), १८, १९ (का पुत्र उदयभद्र), २२, ३२ (बौद्धका पश्चात्ताप), ३३, ११७ (मागध वैदेही पुत्रका वज्जीपर चढ़ाईका इरादा, गंगा और पर्वत के पाससे आनेवाले रत्नके लिये), १५० (का बुद्धकी अस्थियोंपर चैत्य बनाना)।
अजित—२१९ (लिच्छवियोंका मृत सेनापति)।
अजित केशकम्बल—१८ (तीर्थंकर), २० (जडवादी), १४५ (यशस्वी)।
अतप्य—१०९ (देवता)।
अनाथपिण्डिक का आराम—(देखो जेतवन)।
अनुरुद्ध—१४७ (निर्वाणके समय), १४८।
अनूपिया—(मल्ल) २१५ (मल्लमें कस्बा, जहाँ भार्गवगोत्र परिव्राजकका आराम, में उपदिष्ट सूत्र २४)।
अनेजक—१७९ (देवता)।
अनोमा—९६ (वेस्सभू बुद्धकी राजधानी)।
अभिभू—९६ (सिखी बुद्धके शिष्य)।
अभिविनय—३०० (विनयमें), ३१२।
अम्बगाम—१३५ (वैशालीसे कुसिनाराके रास्ते पर)।
अम्बपाली—१२८ (वैशालीकी गणिकाका बुद्धको निमंत्रण), १२९ (बागका दान)।
अम्बपालीवन—१२७ (वैशालीमें), १२९ (बुद्धको दान।
अम्बर—२७९ (वैश्रवणका नगर)।
अम्बरवती—२७९ (वैश्रवणका नगर)।
अम्बलट्ठिका—१ (राजगृह और नालन्दाके बीचमें), १८ (मगधमें; में उपदिष्ट सूत्र १), १२२ (में राजागारक, वर्तमान सिलाव), १२४।
अम्बिका—१२८ (अम्बपाली)।
अम्बष्ट (अम्बट्ठ)—३४ (पौष्करसाति ब्राह्मणका शिष्य) ३५-४३, ४२ (पर पौष्करसाति नाराज़)।
अम्बसण्ड—१८१ (मगधमें ब्राह्मणग्राम प्राचीन राजगृहके पूर्व)।
अरिट्ठक (अरिष्टक)—१७९ (देवता)।
अरिष्टनेमि—२७९ (वैश्रवणके आधीन राजा)।
अरुण—९६ (राजा सिखी बुद्धके पिता)।

अरुण–१८० (देवता)।
अरुणवती–९६ (सिखी बुद्धके पिता अरुणकी राजधानी)।
अवदातगृह–१८० (देवता)।
अवन्ती (मालवा)–१७१ (में माहिष्मती महा-गोविन्द द्वारा निर्मित नगर)।
अवृह (अविह)–१०९ (देवता)।
अलसी–२५८ (-फूल), ३१०।
अल्लकल्प–१५०-५१ (के बुलियों द्वारा बुद्धकी अस्थियोंका चैत्य)।
अशोक–९६,९८ (विपस्सी बुद्धका उपस्थाक)।
अश्वक–१७१ पैठन हैद्राबादके आस पासका प्रदेश, में पोतन नगर महागोविन्द द्वारा निर्मित)।
अश्वतर–१७९ (यक्ष)।
असंज्ञी–२९९ (देवयोनि), ३११।
असम–१७९ (चंद्रमाका देवता)।
असुर–१७९ (वेम चित्ति सुचित, पहराद, नमुचि, राहु, वलि), १८३ (का बुद्धोंके समय ह्रास) १८८ (पराजय), २६२।
आंगिरस–२७७ (गौतम बुद्ध, अंगिरा गोत्रीय)।
आंगिरसा–१८२ (=भद्रा सूर्यवर्चसा)।
आकाश-आयतन–११५ (देवता)। आकिंचन्य-आयतन ११६ (देवता)।
आजीवक–१४९ (एक सम्प्रदायके साधु)।
आटानाटा–२७९ (वैश्रवणका नगर)।
आटानाटिय–२७७ (रक्षा-सूत्र)।
आतुमा–१३८ (नगरमें भुसागार)।
आनंद–१५ (भिक्षु), ७६ (बुद्ध निर्वाणके बाद जेतवनमें), ७७,९६,१०९ (गौतमबुद्धके उपस्थाक), ११०-१६, ११८, १२०, १२२-२६, १२९-४९, १५२-५९, १६१, १६६, २५२ (वेधञ्ञामें, सामगाममें)।
आनन्दचैत्य–१३५ (भोगनगरमें)।
आभास्वर–७ (ब्रह्मलोक), ११५ (देव), २२३ (देवयोनि), २८५, २९६, २९९, ३११।
आम्रवन-जीवक–१६ (राजगृहमें)।
आम्रवन प्रासाद–२५२ (शाक्योंकी वेधञ्ञामें)।
आर्यधर्म–३०० (सूत्रमें), ३१२।
आलकमन्दा–१४४ (देवताओंकी राजधानी), १५२, २७९ (वैश्रवणकी राजधानी), २८०।
आलवक–२८० (पंचाल चंड, अरवल—कानपुर-का यक्ष)।
आलारकालाम–१३७, १३८ (का शिष्य पुक्कुस मल्लपुत्र)।
आसव–१८० (देवता)।
इक्ष्वाकु–(आक्काक) ३६ (के वंशज शाक्यकी दासी दिशाके पुत्र कृष्ण ऋषि), ३८।
इच्छानंगल–३४ (कोसल देशमें, उक्कट्ठाके पास, में उपदिष्ट सूत्र), ४२ (का वनसंड)।
इन्द्र–६७, ८९ (वैदिक देवता), १६२ (देखो शक्रभी), १६४, १७८, २७८-२७९ (वैश्र-वण, विरूढ़क, विरूपाक्ष, धृतराष्ट्र देवताओं-के पुत्रोंका नाम); १७९ (असुरजेता, वसु) १८०, १८५ (बासव), १८५, २३८, २६५, २६९ (का कल्पतरु), २८० (यक्ष-सेनापति)।
इन्द्रशालगुहा–१८१ (मगधमें राजगृहके पूर्व अम्बसण्ड ग्रामके उत्तर वैदिक पर्वतमें), १८३ (में शक्र), १९१ (में उपदिष्ट सूत्र)।
ईशान–८९ (वैदिक देवता)।
उकट्ठा–३४ (कोसल देशमें, पोष्कर साति ब्राह्मणकी राजधानी), ४२, ४३, १०९ (के पास सुभगवन)।
उजुञ्ञा–६१ (के पास कण्णत्थलक), में उपदिष्ट सूत्र)।
उत्तर–९६ (कोणागमन बुद्धके शिष्य)।
उत्तर–२१० (पायासी राजन्यका दानाधिकारी)
उत्तर–९६ (केसभू बुद्धका प्रधान शिष्य)।
उत्तरका–२१६ (थुलूदेशमें कस्बा, में अचेल कोरखत्तिय कुक्कुरवतिक)।
उत्तरकुस–१७९ (में स्वयंजात शाली, ममता-रहित मनुष्य, बैलकी सवारी)।

उत्तरा–९७ (कोणागमन बुद्धकी माता)।
उदयन चैत्य–१३४, २१८ (वैशालीके पूर्वमें)।
उदयभद्र–१९ (अजातशत्रुका पुत्र)।
उदुम्बरिका–२२६ (राजगृह और गृध्रकूटके बीच में न्यग्रोध परिब्राजक, के समीप मोर-निवाप), २३२।
उद्दक रामपुत्र–२५५ (का कथन)।
उपवत्तन–(देखो उपवर्तन)।
उपवर्तन–(उपवत्तन) १३९ (कुसिनारामें), १४८ (वर्तमान माथा कुँवर, कसया, जिला गोरखपुर), १५२ (मल्लोंका शालवन)।
उपवाण–२५९ (भिक्षु), आयुष्मान (देखो उपवान भी)।
उपवान–१४१ (भिक्षु पूर्व बुद्ध-उपस्थाक)।
उपसन्त–९६ (वेस्सभू बुद्धका उपस्थाक)।
उपोसथ–१५४ (महासुदर्शनका हाथी)।
उल्कामुख–(ओक्कामुख) ३६ (इक्ष्वाकुका पुत्र)।
उरुवेला–१३३, १८२ (नेरंजराके तीर)।
ऋद्धिमान्–१८० (देवताके पुत्र सनत्कुमार)।
ऋषिगिरि–१३४ (राजगृहमें)।
एक शालक–(देखो सभय प्रवादक)।
ऐतरेय–८७ (ब्राह्मण)।
ऐरावण–१७९ (महानाग)।
ओजसि–२७९ (वैश्रवणकी सेनामें)।
ओट्ठद्ध–५६ (=महालि, वैशालीकीलिच्छवि) ५८।
ओपमञ्ञ–(औपमन्यव) १७९ (यक्ष)।
ओषधीतारका–२९८ (शुक्रग्रह), ३१०।
औपमन्यव–१७९,२८० (यक्ष सेनापति)।
ककुत्थक–२७९ (पक्षी)।
ककुत्था–१३७ (नदी पावा और कुसिनाराके बीचमें), १३९।
ककुध–१२६ (उपासक नादिकामें)।
ककुसन्ध–९५, (पूर्व बुद्ध, ब्राह्मण, गोत्र काश्यप) ९६, (४० हज़ार आयु, सिरीसबोधिवृक्ष विधुर-संजीव दो शिष्य, एक शिष्य-सम्मेलन, बुद्धिज उपस्थाक, अग्निदत्त ब्राह्मण पिता विशाखा माता, तत्कालीन राजा खेम, राजधानी खेमवती), १०९।
कट्ठक–१८० (देवता)।
कण्ठात्थलक मिगदाय–६१ (उजुञ्ञाके पास)।
कपिलवस्तु–(शाक्यदेशमें) ३५, ३६ (में संस्थागार) ९७, १०९ (शुद्धोदनकी राजधानी) १५० (के शाक्योंका बुद्धिकी अस्थिपर चैत्य बनाना)। १७७ (के पास महावन, में उपदिष्ट सूत्र २०), १७८, १८४।
कपीवन्त–२७९ (वैश्रवणका नगर)।
कम्बल–१७९ (नाग)।
कम्मासदम्म–(देखो कल्माष दम्म भी)।
करण्डु–३६ (इक्ष्वाकुका पुत्र)।
करती–२८० (महायक्ष)।
करम्भ–१८० (देवता)।
करविक–१०१ (पक्षी हिमालयमें)।
कर्णिकार–२९८ (पीला फूल), ३१०।
कलन्दक निवाप–२७१ (वेणुवन, राजगृहमें, देखो वेणुवन भी)।
कलिंग–(उड़ीसा) १५१ (में बुद्ध दांत), १७१ (में दन्तपुर महा गोविन्द निर्मित नगर)।
कल्पतरु–२६५, २६९ (इन्द्रका)।
कल्माषदम्य–(कुरु) ११०, १९० (में उपदिष्ट सूत्र १५)।
कश्यप–४१, ८७ (मंत्रकर्त्ता ऋषि)।
कस्सप–(काश्यप) ९५ (पूर्व बुद्ध, ब्राह्मण) ९६, ९७ (काश्यपगोत्र, आयु बीस हज़ार वर्ष, बर्गद बोधिवृक्ष, तिस्स भारद्वाज दो शिष्य, एक शिष्य सम्मेलन, सर्व मित्र उपस्थाक), ९७ (ब्रह्म दत्त पिता, धनवती माता, राजा किकी वाराणसी राजधानी), १०९।
कात्यायन प्रक्रुध–(देखो प्रक्रुध कात्यायन)।
कामश्रेष्ठ–१९७, २८० (यक्ष सेनापति)।
कामसेट्ठ–(देखो कामश्रेष्ठ)।
कामावचर–१२ (देवता)।
कारेरिकुटी–९५ (जेतवनमें)।
कारेरिपर्णशाला–९५ (जेतवनमें)।
काष्र्णायन–३६ (ब्राह्मणोंका पूर्व पुरुष कृष्ण इक्ष्वाकु की दासी दिशाका पुत्र), ३७।

कालक–१७९ (असुर)।

कालाम । आलार–(देखो आलार कालाम)।

कालिंग–१२६ (उपासक नादिकामें)।

काशी–२९८ (का वस्त्र), १३२, २९८ (का वस्त्र), १६० (देश) १७१ (बनारस कमिश्नरी, में वाराणसी नगर महागोविन्द निर्मित), ३१०।

काश्यप–९५ (बुद्ध), ककुसन्ध और कोनागमन ९५, २७७ (बुद्ध), ९५ (ककुसन्ध और कोनागमन बुद्धोंका गोत्र)।

काश्यप–(बुद्ध) (देखो कस्सप भी)।

काश्यप । अचेल–६१ (उजुञ्ञामें) ६२, ६३, ६४, ६५; ६६ (बौद्ध भिक्षु)।

काश्यप । कुमार–१९९ (अर्हत्) २००-२०६, २०८-२११।

काश्यप । पूर्ण–(देखो पूर्ण काश्यप)।

काश्यप । महा–१४८ (निर्वाणके समय पावामें), १४९ (कुसि नारामें बुद्धके शरीर को अन्तिम प्रणाम)।

किकी–९७ (काश्यप बुद्धका समकालीन राजा)।

किनुघण्ड–१७९ (यक्षोंका दास)।

कुटदन्त–४८ (ब्राह्मण, मगधमें खाणु मतका स्वामी) ४८-५० (पौष्करसाति ब्राह्मण और बिम्बिसार द्वारा सत्कृत), ५०, ५३, ५५ (बौद्ध)।

कुमार कस्सप–(देखो काश्यप । कुमार)।

कुम्भ-स्तूप–१५१ (द्रोण ब्राह्मण द्वारा बनवाया)।

कुम्भीर–१७८ (यक्ष-राजगृहके वेपुल्ल पतिपर)।

कुरु–११०, १६०, १९० (देशमें कम्मासदम्म, कस्वा)।

कुरु । उत्तर–(देखो उत्तर कुरु)।

कुलीरक–२७९ (पक्षी)।

कुवेर–२७९ (देखो वैश्रवण)।

कुशावती–१५२ (कुसिनाराका पुराना नाम), १५३, १५७, १५९।

कुसिनाटा–२७९ (नगर वैश्रवणका)।

कुसिनारा–(मल्ल) १३६ (पावासे), १४०, १५२ (में उपदिष्ट सूत्र), १४१ (में निर्वाण), १४३ (क्षुद्रनगला, पूर्व नाम कुशावती), १४७ (के मल्ल वशिष्टगोत्र), (में उपवर्तन शालवन), १४८-५०, १५२।

कुसीनारा–(देखो कुसिनारा)।

कूटागार शाला–५६ (वैशालीमें), २१८, २२२।

कूटेण्डु–१७८ (यक्षोंका दास)।

कूष्माण्ड–(देवयोनि) १७८ (का अधिपति विरूढक) २७७, २७८, २८०।

कूष्माण्ड-राज–(देखो विरूढक)।

कृष्ण–३६ (ऋषि, इक्ष्वाकुकी दासी दिशाके पुत्र, काष्ण्यायन ब्राह्मणोंके पूर्व पुरुष), ३७ (महान् ऋषि), ३८।

केतुमती–२३८ (वाराणसीका भविष्य नाम, यहाँ शंख चक्रवर्ती और मैत्रेय बुद्ध होंगे)।

केवट्ट–७८ (गृहपतिपुत्र नालन्दामें) ७९-८१ (को उपदेश)।

केशकम्बल । अजित–(देखो अजितकेश कम्बल)।

कोकिल–२७९ (पक्षी)।

कोटिग्राम–१२६ (पाटलिपुत्रमें वैशालीके रास्तेपर, में उपदिष्ट सूत्र १६)।

कोणागमन–९५ (पूर्व बुद्ध, ब्राह्मण) ९६ (काश्यप, तीन हज़ार वर्ष आयु, गूलर बोधिवृक्ष; भी योसु, उत्तर दो शिष्य, एक शिष्य सम्मेलन, सोत्थिज उपस्थाक, यज्ञदत्त पिता, उत्तरा माता), ९७ (तत्कालीन राजा सोम, सोभवती राजधानी), १०९, २२७।

कोरखत्तिय–२१६ (अचेल कुक्कुरव्रतिक, उत्तरकामें), २१७ (मरकर कालकञ्जिका असुर)।

कोरमट्टक–२१८ (अचेल, वैशालीमें तपस्वी, उसका पतन)।

कोलिकय–१५०, १५१ (रामगामवालोंका बुद्धकी अस्थिके ऊपर चैत्य बनाना)।

कोसल–(देश) ३४ (में इच्छानंगलके पास पौष्करसातिकी उत्त्कट्ठ, ५६ (के ब्राह्मण दूत वैशालीमें), ८२ (में सालवतिका), ८६ (में अचिरवतीके तीर मनसाकट), १६०, १९९ (में सेतव्या नगरी)।

कोशल-(देखो प्रसेनजित्)।
कोसलराज-(देखो प्रसेनजित्)।
कौण्डिन्य-९६ (विपस्सी बुद्ध, वेस्सभू बुद्ध, शिखी बुद्धका गोत्र)।
कौशाम्बी-५८ (में घोषिताराम), ५९ (में उपदिष्ट सूत्र ७), १४३, १५८ (बळा नगर)।
कौशिक-८३ (शक्र)।
ककुच्छन्द-२७७ (पूर्व बुद्ध), (देखो ककुसन्ध भी)।
क्रीडाप्रदूषिक-८ (देवता), १७९, २२३।
क्रौञ्च-२७९ (पक्षी)।
क्षुद्ररूपी-३७ (इक्ष्वाकुकी कन्या कृष्ण ऋषिकी स्त्री), ३८।
खण्ड-९६, ९८ (विपस्सी बुद्धका प्रधान शिष्य), १०६-७।
खाणुमत-४८ (अम्बलट्ठिकके पास मगधमें, उपदिष्ट सूत्र ५), का कुटदन्त ब्राह्मण), ४९, ५०।
खेम-९७ (ककुसन्ध बुद्धका समकालीन राजा)।
खेमंकर-९६ (सिखी बुद्धके उपस्थाक)।
खेमवती-९७ (ककुसन्ध कालमें नगरी)।
खेमा मृगदाव-१०६-७ (बन्धुमती नगर, के पास)।
खेमिय-१८० (देवता)।
गग्गरा-३०२ (चम्पामें पुष्करिणी)।
गंगा-१९, ११७ टि० (पर्वतके पास); १२० टि० (वज्जी और मगधकी सीमा); १२५ (पाटलिपुत्रमें), १६८ (यमुनासे मेल)।
गन्धर्व-१६३ (हीन देवता), २६२ (देवयोनि) २६९, २७७, २७८, २८०।
गन्धर्वराज-(देखो धृतराष्ट्र)।
गन्धारपुर-१५१ (में बुद्धका दाँत)।
गन्धारीविद्या-७९।
गरुड-१७९ (देवयोनि)।
गर्गरा-(गग्गरा) ४४ (चम्पामें पुष्करिणी)।
गवाम्पति-२१०-११ (अर्हत्, देवलोक तक गाते)।
गिंजकाराम-१६१ (नादिकामें)।
गिंजकावसथ-१२६ (नादिकामें), १६०।
गळ-२८० (महायक्ष)।
गृध्रकूट-६५, ११७, १३४ (राजगृहमें पर्वत); १६७; २२६ (और राजगृहके बीच उदुम्बरिकाराम, से नीचे सुमग्गधाके तीर मोर निवाप), २३२, २७७।
गोतमक चैत्य-१३४, २१८ (वैशालीके दक्षिण)।
गोपक-१८४ (देवपुत्र) पूर्वमें गोपिका शाक्यपुत्री)।
गोपाल-२८० (महायक्ष)।
गोपिका-१८४ (शाक्यपुत्री मरकर गोपक देवपुत्र)।
गोविन्द-१६९ (ब्राह्मण, दिशांपित राजाका पुरोहित)।
गोविन्द। महा-१७२, १७३ (देखो महागोविन्द)।
गोसाल। मक्खलि-(देखो मक्खलिगोसाल)।
गौतम-१८, ३४ (बुद्ध), ३५-४३, ४४-४७, ४८-५०, ५३-५५, ५८, ५९, ६२, ६३, ६५, ७२, ८२, ८३, ८५, ८६, ९५, ९६, १०९ (बुद्धके पीपल बोधिवृक्ष, सारिपुत्र मोग्गलान दो शिष्य, एक शिष्य सम्मेलन, आनंद उपस्थाक, शुद्धोदन राजा पिता माया देवी माता, कपिलवस्तु नगर); १४९, १८५, १९९, २२१, २२३, २२६, २२७, २४१, २५७, २७७, २७८, २७९।
गौतमतीर्थ-१२५ (पाटलिपुत्रमें)।
गौतमद्वार-१२५ (पाटलिपुत्रमें)।
गौतमन्यग्रोध-१३४ (राजगृहमें)।
घण्डु-२८० (यक्ष सेनापति)।
घोषिताराम-५८, ५९ (कौशाम्बीमें)।
चंकि-८६ (महाशाल ब्राह्मण मनसाकटमें)।
चन्दन-१७९, २८० (यक्ष सेनापति)।
चन्द्रमा-१७९ (देवता)।
चम्पा-४४ (अंगदेशमें, में गर्गरा पुष्करिणी), ४४ (में उपदिष्ट सूत्र ४), १४३, १५२ (बळा नगर), १७१ (वर्तमान भागलपुर), ३०२ उपदिष्ट सूत्र ४३)।
चातुर्महाराजिक-(देव) ७९, १६४, २११, २९७।
चापाल चैत्य-१३० (वैशालीमें), १३३।

चित्त–७२, ७४ (हत्थिसारि-पुत्र), ७५ (बौद्ध भिक्षु)।
चित्र–१७९ (नाग)।
चित्रक–२७९ (पक्षी)।
चित्रसेन–१७९ (देवपुत्र), २८० (गन्धर्व)।
चिन्तामणिविद्या–७९।
चुन्द–१३६ (कर्मारपुत्र पावाका) भगवानको शूकरमार्दव प्रदान करना), १३९ (को महा पुण्य), २८१।
चुन्द–२५२-५९ (समणुद्देस)।
चुन्दक–१३९ (भिक्षु, निर्वाणके समय)।
चेतक–७६ (भिक्षु)।
चेति–१६० (देश)।
चोरप्रपात–१३४ (राजगृहमें)।
छन्दावा–८७ (ब्राह्मण)।
छन्दोग–८७ (ब्राह्मण)।
छन्न–१४६ (भिक्षुको ब्रह्मदंड)।
जनवसभ–१६१ (बिम्बिसारका देव होनेपर नाम), १६१, १६६।
जनौघ–२७९ (वैश्रवणका नगर)।
जम्बुगाम–१३५ (वैशालीसे कुसीनाराके रास्ते-पर)।
जम्बुद्वीप–१०८, १५१ (में बुद्ध-अस्थियोंकी पूजा), २६३।
जानुस्सोणि–८६ (महाशाल ब्राह्मण मनसा-कटमें)।
जालिय–५८ (परिव्राजक दारुपाजिकका शिष्य कौशाम्बीमें), २२१-२२ (वैशालीमें)।
जिन–२७८ (बुद्ध)।
जीवक–१६ (-कौमार भृत्यका आम्रवन राजगृह में), १८, १६ टि० (का घर जीवकाम्रवन-के पास)।
जीवक-आम्रवन–१६ (राजगृहमें); १८ (में अजातशत्रु), १३४।
जीवंजीव–२७९ (पक्षी)।
जेतवन–६७ (श्रावस्ती भी देखो), ७६ (में आनन्द निर्वाणके बाद), ९५ (में कारेरि-कुटी)।
जेतवनपुष्करिणी–१७ टि० (जेतवनमें)।
जोति–१८० (देवता)।
जोतिपाल–१६९ (गोविन्दका पुत्र, महागोविन्द) १७०।
ततोजसि–२७९ (वैश्रवणकी नगरी)।
ततोतला–२७९ (वैश्रवणकी नगरी)।
ततोला–२७९ (वैश्रवणकी नगरी)।
तत्तला–२७९ (वैश्रवणकी नगरी)।
तथागत–३७, १६२ (बुद्ध)।
तपोदाराम–१३४ (राजगृहमें)।
तारुक्ख–(तारुक्ष) ८६ (महाशाल ब्राह्मण मनसा-कटमें)।
तिन्दुक खाणु–२८० (वैशालीमें परिव्राजकाराम)।
तिम्बरु–१७९ (गन्धर्वराज), १८१ (की कन्या भद्रासूर्य वर्चसा), १८२ (गन्धर्वराज)।
तिष्य–९६, ९८ (विपस्सी बुद्धका शिष्य)।
तिस्स–९६ (कस्सप बुद्धका शिष्य), १०५-७ (विपस्सी बुद्धके पास शिष्य)।
तिस्स–१८० (देवता)।
तुट्ठ–१२६ (उपासक नादिकामें)।
तुषित–८० (देवता), १३२ (देवलोक), १८० (देवता)।
तेजसि–२७९ (वैश्रवणकी नगरी)।
तैत्तिरीय–८७ (ब्राह्मण)।
तोदेय्य–८६ (महाशाल ब्राह्मण मनसाकटमें)।
तोदेय्यपुत्त–(देखो शुभ माणवक)।
त्रायस्त्रिंश–८० (देवता), १६२, १६३, १६४, १६५, १६७ (देवताओंकी सभा), १८१-८४, २०२ (का एक दिन मनुष्यके सौ वर्ष के बराबर।
थुलू–२१६ (देशमें उत्तरका नामक थुलुओंका कस्बा, वहाँ अचेलकोरखत्तिय ककुखतिक)।
दधिमुख–२८० (महायक्ष)।
दन्तपुर–१७१ (की कलिंगमें, गोविन्द द्वारा निर्मित नगर)।
दयळमान–२७९ (पक्षी)।
दारुपात्रिक–५८, ५९ (का शिष्य जालिय परिव्राजक कौशाम्बीमें), २२१ (वैशालीमें)।

दिशा–३६ (इक्ष्वाकुकी दासीके पुत्र कृष्ण ऋषि)।
दिशांपति–१६९ (राजा)।
दीर्घ–२८० (महायक्ष)।
दृढनेमि-जातक–२३३।
देव–२६२, २६९, २९६ (-योनि)।
देवदत्त–१६ टि० (अजातशत्रुको भळकाना), १७ टि० (की मृत्यु)।
देवेन्द्र–(देखो शक्र)।
द्रोण–१५० (ब्राह्मणका बुद्धकी अस्थियोंको विभाजन)।
धनवती–९७ (कस्सप बुद्धकी माता)।
धरणी–२७९ (सरोवर, वैश्रवणका)।
धर्म–१५६ (पुष्करिणी महासुदर्शन चक्रवर्तीकी)।
धर्मकाय–२४१ (=बुद्ध)।
धर्मप्रासाद–१५५ (महासुदर्शन चक्रवर्तीका), १५६।
धर्मसेनापति–१२४ टि० (सारिपुत्र)।
धृतराष्ट्र–१७१ (सात भारतोंमें दोके नाम)।
धृतराष्ट्र–१७८ (गंधर्वोंका अधिपति) (के पुत्र इन्द्र लोग), २७८ (गन्धर्वराज पूर्व-दिक्‌पाल)।
धृतराष्ट्र–१७९ (नाग)।
नन्दनकानन–२६३ (देवलोकमें)।
नन्दा–१२६ (भिक्षुणी नादिकामें)।
नल–१७९ (गंधर्वराज)।
नल–२८० (देवपुत्र राजा)।
नाग–१७८ (का राजा विरुपाक्ष); २६२ (देवयोनि), २६९, २७७, २७८, २८०।
नागराज–(देखो विरुपाक्ष)।
नागित–५६ (बुद्धके उपस्थाक)।
नाटपुत्त–१८ (देखो निगंठनाथपुत्त)।
नाटसुरिया–२७९ (वैश्रवणका नगर)।
नातपुत्त। निगण्ठ–२८२ (ज्ञातपुत्र, देखो निगण्ठनाथपुत्त)।
नाथपुत्त। निगंठ–तीर्थंकर, (देखो निगंठनाथ-पुत्त)।
नादिका–(वज्जी) १२६ (में उपदिष्ट सूत्र १६, (में गिंजकाराम), १६० (में उपदिष्ट सूत्र १८, (में गिंजकावसथ), १२७ (में साळ्ह भिक्षु नन्दा भिक्षुणी, सुदत्त, सुजातो) १२७-२८ (ककुध, कालिंग, निकट, काहिस्सका, तुट्ठ सन्तुट्ठ, भद्द, सुभद्द उपासक गण मृत)।
नालन्दा–१ (अम्बलट्ठिकाके पास), ७८ (प्रावारिक अम्प्रवत्त,) नालन्दा समृद्धमें उपदिष्ट सूत्र ११), १२२ (के प्रावारिक आम्रवनमें उपदिष्ट सूत्र १६), २४६ (में उपदिष्ट सूत्र २८)।
निकट–१२६ (उपासक नादिकामें)।
निगंण्ठ–२९५ टि० (जैनसाधु)।
निगण्ठ नातपुत्त–(देखो निगण्ठनाथपुत्त)।
निगंठनातपुत्त–१८ (तीर्थंकर), २१ (चातुर्याम-संवरवादी), १४५ (यशस्वी तीर्थंकर), २५२, २८२ (की पावामें मृत्यु, जैन तीर्थंकर)।
निघण्टु–१७९ (यक्षोंका दास)।
निघण्ड–२८० (यक्षसेनापति)।
निर्माणरति–८०, १६३ (देवता), १८०।
नेरंजरा–(नदी) १३३, १८२ (उरुवेलाके पास)।
नेत्ति–२८० (महायक्ष)।
न्यग्रोध–(निग्रोध) ६५ (तप ब्रह्मचारी गृध्र-कूटपर)।
न्यग्रोध–२२६-३२ (राजगृहमें परिब्राजक मंडलेश)।
पकुधकच्चायन–१४५ (यशस्वी तीर्थंकर)।
पज्जुन्न–(पर्जन्य) १८० (देवताका)।
पञ्चशिख–१६७ (गंधर्वपुत्र), १७५, १७६, १७९ (गंधर्वराज), १८१ (गंधर्वपुत्रकी वेलुवपण्डु वीणा), १८२ (भद्रा सूर्यवर्चसाका प्रेमिक), १८३ (देवता), १८९।
पञ्चाल–१६० (देश)।
पञ्चाल चण्ड–(देखो आलवक)।
पनाद–१७९ (यक्षोंका दास)।
परकुसित नारा–२७९ (नगर)।
परकुसिनारा–२७९ (वैश्रवणका नगर)।

परनिर्मित वशवर्त्ती—८० (देवता), १६४,१८०।
परमत्थ—(परमार्थ), १८० (देवता)।
पर्जन्य—२८० (महायक्ष)।
पहराद—(=प्रह्लाद) १७९ (असुर)।
पाटलिग्राम—(मगधमें) १२३ (में उपदिष्टसूत्र १६), १२३, टि०, वर्तमान पटना) १२४ (वज्जियोंको रोकनेके लिये नगर) १२४। टि०। (में बुद्धके जानेका समय), (देखो पाटलिपुत्र भी)।
पाटलिपुत्र—१२५ (के शत्रु)।
पाथिक पुत्र—२१९ (अचेल, वैशालीमें) २२० (चमत्कार दिखानेसे भागा)।
पायासी राजन्य—१९९ (राजन्य, कोसलमें सेतव्या का स्वामी, तथा प्रसेनजित्का माण्डलिक, नास्तिक २००-२११ (राजन्य), २०६, २१० (पायासी), २०९ (बौद्ध) २१० (देवपुत्र) २११। २१० (-देवपुत्रका सौरस्सक विमान)।
पारग—१८० (यशस्वी देवता)।
पारग। महा—१८० (यशस्वी देवता)।
पावा—१३६ (कुसीनाराके पास), २५२ (में निगण्ठ नाथपुत्तकी मृत्यु), २८१ (में मल्लों-का संस्थागार, में चुन्द कर्मारपुत्र, में उपदिष्ट सूत्र ३३)।
पिप्पलीवन—१५०-१५१ (के मौर्योंका अंगार-स्तूप)।
पुक्कुस—१३७, १३८ (मल्लपुत्र, आतारथला-मका शिष्य) १३९ (बौद्ध)।
पुराणक—२८० (महायक्ष)।
पूर्णकाश्यप—१८ (तीर्थंकर), १९ (अक्रिया-वादी), १४५ (यशस्वी तीर्थंकर)।
पूर्वाराम—२४० (मृगारमाताका प्रासाद, श्रा-वस्तीमें)।
पोक्खरसाति—(देखो पौष्करसाति)।
पोट्ठपाद—(प्रोष्ठपाद) ६७ (परिव्राजक श्रा-वस्तीमें), ६८-७५।
पोतन—१७१ (पैठन, हैदराबाद, अश्वक देशमें गोविन्द द्वारा निर्मित नगर)।
पौष्करसाति—३४ (ब्राह्मणराजा प्रसेनजित्का मान्य, कोशलदेशमें उक्कट्ठाका स्वामी), ३५, ४०, ४१, ४२ (का शिष्य अम्बष्ट बौद्ध), ४९ (का मान्य मगधका कुटदन्त, बौद्ध), ८६ (का शिष्य वाशिष्ट)।
प्रक्रुध कात्यायन—१८ (तीर्थंकर), २१ (अकृतता-वादी), १४५ (यशस्वी तीर्थंकर)।
प्रजापति—८९ (वैदिक देवता), १८५ (देव), २८० (यक्ष सेनानायक)।
प्रणाद—२८० (यक्षसेनापति) (देखो पनाद भी)।
प्रभावती—९६ (सिखी बुद्धकी माता)।
प्रयाग—१७९ (वाले नाग)।
प्रसेनजित्—४१ (ब्राह्मण पौष्करसातिका मुँह नहीं देखता), ४९ (कोसल, बुद्धका उपा-सक), ८२ (के आधीन लोहिच्च ब्राह्मण), १९९ (के आधीन पायासी राजन्य), २०७, २४१ (के आधीन शाक्य)।
प्रह्लाद—(असुर) (देखो पहराद)।
प्रावारिक आम्रवन—७८, १२२ (नालन्दामें), २४६।
प्रोष्ठपाद—(देखो पोट्ठपाद)।
बन्धुजीवक—२९८ (पुष्प), ३१०।
बन्धुमती—९६, ९८ (विपस्सी बुद्धकी माता), १०३।
बन्धुमती—९६, ९८ (विपस्सी बुद्धके पिता बन्धुमान् राजाकी राजधानी), १०६ (में खेमामृगदाव), १०७ (खण्ड तिस्सकी जन्म-भूमि), १०९ (में विपस्सी बुद्धका शिष्य-सम्मेलन)।
बन्धुमान्—९६, ९८, ९९ (राजा विपस्सी बुद्धका पिता), १००, १०१, १०२।
बलि—बलि १७९ (असुरके राहु नामधारीपुत्र)।
बहुपुत्रकचैत्य—१३४, २१८ (वैशाली के उत्तर)।
बिंबिसार—१७ टि० (क़ैदमें) ४८, ४९ (श्रेणिकका मान्य पौष्करसातिब्राह्मण), (बौद्ध) १६०, १६१ (मरकर जनवसभ देवपुत्र)।
बुद्ध—२३ (की उत्पत्तिका प्रयोजन), ४२

(बत्तीस लक्षण), ४९ (के शिष्य प्रसेनजित् बिंबिसार पौष्करसाति), १४६ (का अन्तिम वचन), ७६ (के निर्वाणके बाद), ११७ (का अन्तिम जीवन), १३३ (उरुवेलामें, १३६ (पावामें बीमारी,) १४६ (का अन्तिम वचन), १७९ (की सेवामें देवगण) २५१ (एक लोकधातुमें एक ही), २८२ (बुढ़ापे में कमरदर्द) (देखो गौतम भी)।

बुद्धिज—९६ (ककुसन्ध बुद्धका उपस्थाक)।

बुली—१५० (अल्लकप्पवालों का बुद्धकी अस्थिमें भाग) १५१ (और चैत्य बनाना)।

(बोधगया)—१४१ (में बुद्धत्व प्राप्ति)।

ब्रह्मकायिक—(देवता) ८०, ११५, २८५, २९६, २९९, २९९, ३११।

ब्रह्मचर्य—८७ (ब्राह्मण)।

ब्रह्मदत्त—१ (सुप्रिय परिव्राजकका शिष्य), ९७ (ब्राह्मण कस्सप बुद्धका पिता), १७१ (सात भारतोंमें एक)।

ब्रह्मपुरोहित—१८४, १८५ (देवता)।

ब्रह्मलोक—७ (आभास्वर)।

ब्रह्मा—७, ८० (ईश्वर); ८९ (वैदिक देवता), ९० (के गुण), १६३ (सनत्कुमार), १६४, १६५, १७२, १७५, १८०, २२२ (सृष्टि-कर्ता नहीं)।

ब्रह्मा। महा—७ (ईश्वर), १०५, १०६ (विपस्सी बुद्धके पास), १०८।

ब्रह्मा सनत्कुमार—(देखो सनत्कुमार)।

ब्रह्मा। सहापति—(देखो सहापति)।

भण्डग्राम—१३५ (वैशालीसे कुसीनाराके रास्ते-पर)।

भद्द—१२६ (उपासक नादिकामें)।

भद्रकल्प—९५ (वर्तमान कल्प), १०९।

भद्रलता—२४२ (सृष्टिके आरम्भकालमें)।

भद्रासूर्यवर्चसा—१८२, १८३ (तिम्बरू गन्धर्व कन्या, पंचशिखकी प्रेमिका), १८९ (पंच-शिखकी प्रेमिका)।

भरत—१७१ (सातभरतोंमें एक)।

भरद्वाज—४१, ८७ (मंत्रकर्ता ऋषि)।

भागलवती—२७९ (यक्षसभा, सागलवती भी)।

भारत—१७० (उत्तरमें चौळी दक्षिणमें शकट समान)।

भारत—१७१ (के सात खंडकलिंग, अश्वक, अवन्ती, सौवीर, विदेह, अंग और काशी; के सात राजा सत्तभू, ब्रह्मदत्त, वेस्सभू, भरत, रेणु, धृतराष्ट्र, धृतराष्ठ, राज-धानियाँ—दन्तपुर, पोतन, माहिष्मती, रोरुक, मिथिला, चंपा, वाराणसी।

भारद्वाज—८६ (माणवक तारुक्ख ब्राह्मणका शिष्य मनसाकटमें) ८७, ९२।

भारद्वाज—९६ (कस्सप बुद्धके शिष्य)।

भारद्वाज—२४० (श्रावस्तीमें ब्राह्मण तरुण प्रव्रज्याकांक्षी)।

भारद्वाज—२८० (यक्षसेनापति)।

भार्गव गोत्र—२१५ (परिव्राजक अनूपियामें) २१५-२२५।

भीयोसु—९६ (कोणागमन बुद्धके शिष्य)।

भुञ्जती—१८३ (वैश्रवण देवताकी परिचारिका)।

भुसागार—१३८ (आतुमा नगरमें)।

भृगु—४१, ८७ (मंत्रकर्त्ता ऋषि)।

भोगनगर—(वज्जी ?) १३५ (वैशालीसे कुसि-नाराके रास्तेपर, में आनन्द चैत्य, में उपदिष्ट सूत्र १६)।

मक्खलिगोसाल—१८ (तीर्थंकर), २० (दैव-वादी), १४५ (यशस्वी तीर्थंकर)।

मगध—४८ (देशमें खाणुमत का स्वामी कुटदन्त ब्राह्मण), ५६ (के ब्राह्मण वैशालीमें), ११७ (का महामात्य वर्षकार), १६० (देश), १६१, १६५ (के परिचारक), १८१ (में अम्बसण्ड, राजगृहके पूर्व), २३३ (में मातुला)।

मगधराज—२३ (अजातशत्रु), ४८ (बिंबिसार), २८०।

मणिचर—२८० (महायक्ष)।

मणि (भद्र)—२८० (महायक्ष)।

मण्डिस्स—५८-५९ (परिव्राजक कौशाम्बीमें)।

मत्स्य—१६० (देश)।

मद्रकुक्षिमृगदाव–१३४ (राजगृहमें)।
मध्यदेश–२९९, ३१०।
मनः प्रदूषिक–८,१७९, २२४ (देव)।
मनसाकट–(कोसल) ८६ (में उपदिष्टसूत्र ८६), ८६ (कोसलमें अचिरवती नदीके तटपर, तारुक्ख, पौष्करसाति, ज़ानुस्सोणि, तोदेय्य महाशाल ब्राह्मण), में वाशिष्ट भारद्वाज माणवक), ९०, ९१।
मनोपदूसिक–(देखो मनः प्रदूषिक)।
मन्दबलाहक—१७९ (नक्षत्रोंके देवता)।
मन्दिय–२८० (महायक्ष)।
मयूर–२७९ (पक्षी)।
मल्ल–(कुसिनारा) १४३ (गोत्र वाशिष्ट), १४७, १४८-५० (कुसिनाराके, द्वारा बुद्धका दार संस्कार आदि), १६० (देश)।
मल्ला–२१५ (अनूपियाके), २८१ (पावाके)।
मल्ल–(देश) २१५ (में अनूपिया कस्बेमें भार्गवगोत्र परिब्राजकका आराम), २८१ (में पावा)।
मल्लपुत्र–(देखो पुक्कुस)।
मल्लिका-आराम–६७ (श्रावस्तीमें, परिब्राजकोंका मठ, नगर द्वारके पास)।
मल्लोंका शालवन–१३९, १४०, १५२ (कुसिनारामें)।
मर्हाद्ध–८९ (वैदिक देवता)।
महाकाश्यप–(देखो काश्यप। महा—)
महागोविन्द–१६९-७५ (जातक) १७० (भारत को सात भागोंमें बाँटनेवाला)।
महाब्रह्मा–(देखो ब्रह्मा)।
महाराज–८०, २७७-७९ (चार—धृतराष्ट्र, विरूढ़क, विरूपाक्ष, वैश्रवण)।
महालि–५६ (=ओट्ठद्ध वैशालीका लिच्छवि), ५८।
महावन–५६ (वैशालीमें), १७७ (कपिलवस्तु), २१८ (वैशालीमें कूटागारशाला)।
महावनकूटागारशाला–१३४ (वैशालीमें)।
महाविजित–५०-५३ (जातक), ५० (राजा), ५१-५३ (का यज्ञ)।
महाविहार–१५१ टि० (लंकामें)।
महावीर–२८२ (जैन तीर्थंकर, देखो निगण्ठ नाथपुत्त, नातपुत्त)।
महाव्यूह–१५८ (चक्रवर्ती महासुदर्शनका कोष्टागार)।
महासुदर्शन–(जातक) १४३, १५२ (कुशावतीका चक्रवर्ती), १५३-५४ (के सातरत्न), १५९ (की आयु)।
महासुदस्सन–(देखो महासुदर्शन)।
महिष्मती–१७१ (महेश्वर, इन्दौर,) (गोविन्द द्वारा निर्मित नगर, अवन्तीमें)।
मागध–१६, १८, ११७ (अजात शत्रु); ४९ (=बिंबिसार)।
मातलि–१७९ (देवपुत्र), १८२ (का पुत्र शिखंडी), २८० (देवसूत)।
मातुला–(मगध) २३३ (में उपदिष्ट सूत्र २६)।
मानुष–१७९ (=मानुस देवता)।
मानुषोत्तम–१७९ (देवता)।
मानुस–(मानुष) १७९ (देवता)।
माया–१७९ (यक्षोंका दास)।
मायादेवी–९७, १०९ (गौतमबुद्धकी माता)।
मार–१३० (का बुद्धसे संलाप), २३३।
मारसेना–१८० (देवता)।
मिथिला–१७१ (जनकपुर? विदेहमें गोविन्द द्वारा निर्मित नगर)।
मिस्सक–१८० (देवता)।
मुकुटबन्धन–१४८ (कुसिनारामें, वर्तमानरामाभार, कसया, ज़ि० गोरखपुर), १४९ (में बुद्धका दाह)।
मुचलिन्द–२८० (महायक्ष उरुवेलामें)।
मृगारमाता-प्रासाद–(देखो पूर्वाराम)।
मैत्रेय–२३८ (बुद्ध होंगे वाराणसी=केतुमतीमें)।
मोग्गलान–९६, १०९ (गौतमबुद्धके प्रधान शिष्य)।
मोरनिवाप–२२७ (राजगृहमें सुमागंधाके तीर गृध्रकूटके नीचे, उदुम्बरिकाके समीप)।
मौद्गल्यायन। महा–१७ टि० (देवदत्तकी

मंडलीमें फूट डालना) (देखो मोग्गलान भी)।

मौर्य—१५० (पिप्पलीवनवालोंका बुद्धकी चिता-का कोयला लेना), १५१ (चैत्य बनाना)।

म्लेच्छदेश—३१०।

यक्ष—१७८ (का अधिपति), २६९ (देवयोनि), २७७, २७८, २८०।

यक्ष। महा—१८० (इन्द्र, सोम, वरुण, भरद्वाज, प्रजापति, चन्दन, कामश्रेष्ठ, घण्ड, निघण्डु, प्रणाद, औपमन्यव, मातलि, चित्रसेन, बल)।

यक्षराज—(देखो वैश्रवण)।

यज्ञदत्त—९७ (ब्राह्मण कोणागमनबुद्धके पिता)।

यम—८९ (वैदिक देवता)।

यमदग्नि—४१, ८७ (मंत्रकर्ता ऋषि)।

यमुना—१६८ (नदीमें गंगाकी धार गिरती है), १७९ (का नाग यामुन)।

यशोवती—९६ (रानी वेस्सभू बुद्धकी माता)।

याम—(देवता) ८०, १६४, १८०।

यामुन—१७९ (यमुनावासी नाग)।

युगन्धर—२८० (महायक्ष)।

रसा—२४२ (आरण्यक ग्राममें पृथिवीका रूप)।

राक्षस—२६९ (देवयोनि)।

राजगृह—१ (और नालन्दाके बीचमें अम्बलट्ठिका), १६ (जीवक आम्रवन), १८; ६५, ११७, १२०, १५३, १३४, १६७, २२६, २७७ (में गृध्रकूट); १२४ टि० (में मोग्गलान का चैत्य); १३४ (में गौतम न्यग्रोध, चोरप्रपात, वैभार पर्वत, सप्तपर्णिगुहा, ऋषिगिरि, कालशिला, सीतवन, सर्पशौंडिक पहाळ, तपोदाराम, वेणुवन, कलन्दक निवाप, जीवकाम्रवन, मद्रकुक्षिमृगदाव); १४, १५२ (में अजातशत्रुका बनवाया धातुचैत्ये), (मृगदाव); १४४, १५२ (बळा नगर), १५७ (में अजातशत्रुका बनवाया धातुचैत्य), १७८ (के वैपुल्य पर्वतपर कुम्भीर यक्ष), २२६ (में उदुम्बरिका, परिव्राजकाराम), २२७ (में सुमागधाके तीर मोरनिवाप), २२६, २३२ (में सन्धान गृहपति); (२२६ (में उपदिष्ट सूत्र २५), १६ (२), ११७ (में उ० सूत्र) १६, १६७ (में उ० सूत्र १९), २७१ (में उ० सूत्र ३१), २७७ (में उ० सूत्र ३२) (उ० सूत्र) २७१ (में वेणुवन कलन्दक निवाप)।

राजगृह। प्राचीन—१८१ (से पूर्व अम्बसण्ड ब्राह्मणग्राम)।

राजन्य—(देखो पायासी)।

राजागारक—१२२ (अम्बलट्ठिकामें)।

रामपुत्र—(देखो उद्दक)।

रामगाम—१५० (के कोलियोंका बुद्धकी अस्थिमें भाग माँगना), १५१ (में चैत्य बनाना, उसकी नागों द्वारा पूजा)।

राहु—१७९ (नामधारी बलिके पुत्र)।

रुचिर—१७९ (देवता)।

रेणु—१६९ (राजपुत्र), १७० (द्वारा सात भाग भारत), १७१ (सात भारतोंमें)।

रोरुक—१७१ (रोरी, सिन्ध; सौ वीरमें गोविन्द द्वारा निर्मित नगर)।

रोसिक—८२ (सालवतिकाके स्वामी, लोहिच्च ब्राह्मणका नाई), ८३।

लंका—१५१ टि० (में बुद्धकी अस्थियोंका जाना)।

लम्बितक—१८० (देवता)।

लिच्छवि—५६ (महालि=ओट्ठद्ध), ५७ (सुनक्खत), ५८, ११७ टि० (और मगधकी सीमा गंगा और पर्वत), १२४ टि० (का जोर पाटग्राममें), १२८ (त्रायस्त्रिंश जैसे); १५० (वैशालीवालोंका बुद्धकी अस्थिमें भाग माँगना और चैत्य बनाना); २१९ (वैशालीके), (देखो वज्जीभी)।

लुम्बिनी—१४१ (बुद्धका जन्मस्थान)।

लोमसेट्ठ—१८० (देवता)।

लोकधातु—२५१ (एकम एक समय एक ही बुद्ध)।

लोहिच्च—(=लौहित्य), ८२ (कोसलम साल-वतिकाका स्वामी, की बुरी धारणा), ८३, ८४ (को उपदेश), ८५ (बौद्ध उपासक)।

लोहित–१७९ (नगरका रहनेवाला हरि देवता)।
लोहित्य–(देखो लोहिच्च)।
वक–२७९ (पक्षी)।
वज्जी–११७, (देश, वर्तमान उत्तरविहार), ११८ (गणके नियम शासन और न्याय), ११९-२० (का संगठन), ११९-२० टि० (के नियम, मगधके हाथ जाना आदि), १६०।
वज्जीग्राम–२१८ (वैशाली)।
वज्रपाणि–३७ (यक्ष, अय=कूटधारी)।
वत्स–१६० (देश)।
वरुण–१७९, २८० (यक्ष सेनापति)।
वर्षकार–११७ (अजातशत्रुका मंत्री), ११९-२० टि० (फूट डाल लिच्छवियोंको जीतना), १२४ (मगध महामात्य द्वारा निर्मित पटना), १२५ (बुद्धको भोजनदान)।
वशवर्ती–८०, १८० (देव)।
वशिष्ट–४१, ८७ (मंत्रकर्ता)।
वसु–१७९ (देवताओंमें श्रेष्ठ वासव, शक्र, इन्द्र)।
वामक–४१, ८७ (मंत्रकर्ता ऋषि)।
वामदेव–४१, ८७ (मंत्रकर्ता ऋषि)।
वाराणसी–९७ (कस्सप बुद्धके समकालीन राजा किकीकी राजधानी), १४३, १५२, बळा नगर), १७१ (काशीमें गोविन्द द्वारा निर्मित नगर), २३८ (केतुमतीमें मैत्रेय)।
वाशिष्ट–८६ (माणवक पौष्कर सातिका शिष्य मनसाकटमें) ८७-९२।
वाशिष्ट–१४४, १४८ (गोत्र कुसिनाराके मल्लोंका)।
वाशिष्ट–२४०-४५ (श्रावस्तीमें प्रव्रज्याकांक्षी ब्राह्मण तरुण)।
वासव–१७९ (वसुदेवता), १८५ (इन्द्र)।
वासवननिवासी–१७९ (देवता)।
विज्ञान-आयतन–११५ (देवता)।
विटुच्च–१७९ (यक्षोंका दास)।
विटुर–१७९––(यक्षोंका दास)।
विदेह–(तिर्हुत) १७१ (में मिथिला गोविन्द निर्मित नगर)।
विदेहराज–१७ टि०।
विधुर–९६ (ककुसन्ध बुद्धका शिष्य)।
विपश्यी–(देखो विपस्सी)।
विपस्सी–(बुद्ध) ९५, ९७ ,१०९ (क्षत्रिय, कौण्डिन्य), (९६, ९७, ९८, सहस्र वर्ष आयु, पांडर बोधिवृक्ष, खण्डतिष्य दो शिष्य, ३ शिष्यसम्मेलन, अशोक, उपस्थाक, बन्धुमान पिता, बन्धुमती राजधारी), ९८ (की तुषितलोकसे च्युति, गर्भप्रवेशके शकुन), १०० (बत्तीस महापुरुष लक्षण), १०१-२ (वृद्ध रुग्ण मृतकको देखकर) १०३ (प्रव्रजितको देख गृहत्याग १०४ (बुद्धत्वप्राप्ति), (धर्मप्रचारसे अनुत्साह), १०६-८ (धर्मप्रचार), १०९, २७७।
विरूढक–(विरूळ्हक) १६२ (देवता), १७८ (कूष्मांडराज), २७८ (दक्षिण दिक्पाल)।
विरूपाक्ष–१६२, १७८ (नागोंका अधिपति), २७८ (पश्चिम दिक्पाल)।
विशाखा–९६ (ककुसन्ध बुद्धकी माता)।
विश्वकर्मा–१५५ (इन्द्रका इंजीनियर), २३९ (देवशिल्पी)।
विश्वभू–(देखो वेस्सभू)।
विश्वामित्र–४१, ८७ (मंत्रकर्ता ऋषि)।
विसाणा–२७९ (वैश्रवणकी राजधानी)।
वीरणत्थम्भक–२१७ (श्मशान उत्तरकामें)।
वेटेण्डु–१७८ (यक्षाधिपति)।
वेठदीप–१५० (के ब्राह्मणोंका बुद्धकी अस्थियोंमें भाग माँगना),७७९ (चैत्य बनाना)।
वेणुग्राम–१२९ (वैशालीके पास)।
वेणुवन–१६ टि० (राजगृहमें जीवकके घरसे अति दूर), १३४ (राजगृहमें), २७१ (राजगृहमें कलन्दकनिवाप)।
वेण्डुदेव–१७९ (चन्द्रमाके देवता)।
वेदिकपर्वत–१८१ (मगध भी अम्बसण्ड ग्रामके उत्तर, के पूर्व इन्द्रशाल गुहा)।
वेधञ्ञा–(शाक्य) २१२ (शाक्य देशमें, में आम्रवन प्रासाद, में उपदिष्ट सूत्र २९)।
वेपुल्ल–(=वैपुल्य) १७८ (राजगृहमें पर्वत

जिसपर कुम्भीर यक्ष)।
वेमचित्र–१७९ (असुर)।
वेलट्ठिपुत्त। संजय–(देखो संजय वेलट्ठिपुत्त)।
वेलुवपण्डु–१८१, १८३ (पञ्चशिखकी वीणा)।
वेलुवग्राम–(वज्जी)— १२९ (में उपदिष्ट सूत्र १६), (देखो वेणुग्राम)।
वेलुवगामक–१२९ (देखो वेणुग्राम)।
वेसनस–१८० (देवता)।
वेस्सभू–९५, ९७ (क्षत्रिय, कौण्डिन्य) ९६, (साठ हज़ार वर्ष आयु) साल वेदिवृक्ष; सोण उत्तर दो प्रधान शिष्य, ३ शिल्पसम्मेलन, उपसन्त उपस्थापक) (सुप्रतीत पिता, यशीवती माता, अनोमा राजधानी), १०९।
वेस्सभू–(सात भारतोंमें)। २७७।
वेस्सामित्त–(वैश्वामित्र)—१७८ (यक्ष)।
वैदेहीपुत्र–१६ (देखो अजातशत्रु)।
वैपुल्यपर्वत–(देखो वैपुल्य)।
वैभार–१३४ (पर्वतकी बगलमें सप्तपर्णि गुहा, राजगृह)।
वैशाली–५६, २१८ (में महावनकी कूटागारशाला), १२७ (में अम्बपाली वन), ११९ (में सारन्दद चैत्य), १२८ (जनपद), १२९ (के पास वेणुग्राम), १३० (में चापाल चैत्य), ५६ (में उपदिष्ट सूत्र ६), १२७ (में उपदिष्ट सूत्र १६), १३४ (में उदयन, गौतमक, सप्ताम्र, बहुपुत्रक और सारन्दद चैत्य); १५० (के लिच्छवियोंका बुद्ध-अस्थिमें भाग माँगना और चैत्य बनाना), ३७९ (का नाग), २१८ (के पूर्वमें उदयन, दक्षिणमें जोतमद, पश्चिममें सप्ताम्रक और उत्तरमें बहुपुत्रक चैत्य), २२० (में तिन्दुक खाण्डक)।
वैश्रवण–१६१, १६२ (कुवेर), १६६, १७८ (यक्षाधिपति), १८३ (की परिचारिका भुञ्जती), २७७, २७९ (यक्षराज उत्तर दिक्पाल), २८०, २७९ (के नगर— आटानाटा, कुसिनारा, परकुसिनाटा,=टि० सुरिया, परकुसितनाटा, कपीवन्त, जनौघ, अम्वर, अम्बरवती; आलकमन्दा राजधानी, विसाणा राजधानी); ।
वैश्वामित्र–२८० (महायक्ष)।
शक्र–८०, १६२, १६३, १६४, १६९, १६७-१६९, १७९ (वसुदेवता), १८१ (देवेन्द्र), १८३, १८४, १८६-१८९, १८९ (शत्रु-प्रश्न)।
शंख–२३८ (चक्रवर्ती, केतुमती=वाराणसीका राजा मैत्रेय बुद्धका समकालीन)।
शाक्य–३४, ५६, ८२, ३५, ३६ (की इक्ष्वाकुसे उत्पत्ति), ४८, ८६, २४१ (प्रसेनजित्के अधीन), १५१ (कपिलवस्तुवालोंको बुद्धास्थिमें भाग), १७७ (देशमें कपिलवस्तुका महावन), २५२ (देशमें वेधञ्ञा)।
शाक्यपुत्र–३४, ४८, ५६, ८२, ८६, १८२, २७७ (बुद्ध)।
शाक्यपुत्रीय श्रमण–२१७, २१८, २४१, २५६ (बौद्ध भिक्षु)।
शाक्यमुनि–१८५ (बुद्ध)।
शिखंडी–१८३ (मातलिका पुत्र)।
शिखी–२७७ (देखो सिखी)।
शिवक–२८० (महायक्ष राजगृहके एक द्वारपर)।
शिवि–१६ टि० (देशका दुशाला)।
शुक–२७९ (पक्षी)।
शुक्रतारा–१३२।
शुद्धावास–१०९ (देवता), १७७।
शुद्धोदन–९७, १०९ (राजा गौतमबुद्धके पिता)।
शुभ–(सुभ) १६८ तोदेय्यपुत्त श्रावस्तीमें)।
शुभकृत्स्न–११५, २८५ (देवता), ३११, २९६, २९९, ३०७।
शृगाल–२७१, २७६ (राजगृहका गृहपति पुत्र)।
श्रावस्ती––(जेतवन)—६७, ७६, ९५, २६०, में उपदिष्ट सूत्र ९ (६७), १० (७६), १४ (९५), २७ (२४०), १० (२६०)।
श्रावस्ती–१२४ (में सारिपुत्रका चैत्य), १४३,

१५२ (बळा नगर), १८३ (में सललागार विहार)।
श्रावस्ती–(पूर्वाराम) २४० (में उ० सूत्र २)।
श्रेणिक–४८ (देखो बिम्बिसार)।
श्वेताम्बी–(देखो सेतव्या)।
संगीतिपर्याय–३०१ (सुत्त)।
संजय बेलट्ठिपुत्त–१८ (तीर्थंकर), २२ (अनिश्चिततावादी), १४५ (यशस्वी तीर्थं)।
संजीव–९६ (ककुसन्ध बुद्धका शिष्य)।
सत्तभू–१७१ (सात भारतोंमें एक)।
सन्तुट्ठ–१२६ (उपासक वादिकामें)।
सन्तुषित–८० (देवता)।
सदामत्त–१८० (देवता)।
सनत्कुमार–(ब्रह्मा) २४ (की गाथा), १६३, १६८ (ब्रह्माका स्वर), १७२।
सनत्कुमार–(देवता) १८० (ऋद्धिमान्‌का पुत्र)।
सन्धान–२२६ (गृहपति राजगृहमें बुद्धोपासक), २२७, २३१, २३२।
सप्ताम्रचैत्य–१३४ (वैशालीमें), २१८ (सप्ताम्रक०)।
सम–१७९ (चंद्रमाके देवता)।
समान–१७९ (देवता)।
समान । महा–१७९ (देवता)।
समयप्रवाहक–६७ (श्रावस्तीमें, देखो मल्लिका-आराम)।
सम्भव–९६ (सिखीबुद्धके शिष्य)। सर्पशौंडिक (पहाळ), १३४ (राजगृहमें सीतवनके पास) (=सर्पके फण जैसा)।
सर्वमित्र–९६ (कस्सप बुद्धके उपस्थाक)।
सललाग्राह–१८३ (श्रावस्तीमें विहार)।
सहधम्म–१७९ (देवता)।
सहभू–१७९ (अग्निशिखासे दहकते देवता)।
सहली–१७९ (चंद्रमाके देवता)।
सहापति–१४७ (ब्रह्मा)।
साकेत–१४३, १५२ (बळा नगर)।
सागलवती–२७९ (यक्षंसभा)।
सातागिरि–१७८ (के यक्ष), २८० (महायक्ष)।
सामगाम–२५२ (वेधञ्ञाके पास)।
सारनाथ–१४१ (में धर्मचक्रप्रवर्तक)।
सारन्दद चैत्य–११९, १३४ (वैशालीमें)।
सारिका–२७९ (पक्षी)।
सारिपुत्र–१७ टि० (का देवदत्तकी मंडलीमें फूट डालना); ७६, १०९ (गौतमबुद्धके प्रधान शिष्य); १२२-२३, २४६ का बुद्धके प्रति उद्‌गार, १२४ (धर्म सेनापति), २५१, २८२-३१४ (का उपदेश), २०२।
सालवतिका–(कोसल) ८२, ८३ (में उपदिष्ट सूत्र १२)।
साळ्ह–१२६ (नादिकामें भिक्षु)।
सप्तपर्णीगुहा–१३४ (राजगृहमें वैभार पर्वपत की बगलमें)।
सिखी–(बुद्ध) ९५, ९७ (क्षत्रिय, कौण्डिन्य); ९६, (७० हज़ार वर्ष आयु, पुण्डरीक बोधिवृक्ष, अभिभू सम्भव दो शिष्य, ३ शिष्यसम्मेलन, विमंकर उपस्थाक, अरुणपिता प्रभावती माता अरुणवती राजधानी), १०९।
सिनीसूर–३६ (इक्ष्वाकुका पुत्र)।
सिंसपावन–१९९ (सेतव्यामें)।
सिंह–५६ (श्रमणोद्देश), ५७।
सीतवन–१३४ (राजगृहमें सर्पशौंडिक पहाळके पास)।
सुक्क–(शक्ल) १८० (देवता)।
सक्क–१६२, २९९ (देखो सुगत भी)।
सुगत–१७९ (असुर)।
सुदत्त–१२६ (नादिकामें उपासिका)।
सुदर्श–१०९ (देवता)।
सुर्शन–२७९ (पर्वत, उत्तर दिशामें)।
सुदर्शन । महा–(देखो महासुदर्शन)।
सुधर्मा–१६२ (देवसभा), १६७ (त्रायस्त्रिंश देवोंकी सभा), १६८।
सुनक्खत्त–५७ (लिच्छविपुत्र, पहिले भिक्षु), (बौद्धधर्मत्यागी); २१५-२२०, २२२ (की मानसिक दुर्बलतामें), २१६ (वज्जीग्राममें)।
सुनिर्मित–८० (देवता)।
सुनीथ–(देखो सुनीध)।

सुनीध–(सुनीथ) १२४ (मगध-महामात्यका पाटलिग्राममें नगर बनवाना), १२५ (बुद्धको भोजनदान)।
सुपर्ण–१७९ (नाग)।
सुप्रिय–१ (परिव्राजक)।
सुप्परोध–२८० (महायक्ष)।
सुप्रतीत–९६ (राजा, वेस्सभू बुद्धका पिता)।
सुब्रह्मा–१८० (देवता)।
सुभगवन–१०९ (उक्कट्ठाके पास)।
सुभद्द–१२६ (उपासक नादिकामें)।
सुभद्र–१४४ (परिव्राजक), १४५ (कुसीनारा में बुद्धका अन्तिम शिष्य)।
सुभद्र–१४९ (बुद्ध प्रव्रजित बुद्धके मरनेपर खुश)।
सुभद्रादेवी–१५७ (महासुदर्शन चक्रवर्तीकी रानी)। १५८
सुमन–२८० (महायक्ष)।
सुमागधा–(सरोवर) २२७ (राजगृहमें गृध्र-कूटके नीचे, के तीरपर मोरनिवाप, उदुम्ब-रिकाके समीप)।
सुमख–२८० (महायक्ष)।
सुमेरु–२७९ (पर्वत उत्तर दिशामें)।
सुयाम–८० (देवता)।
सुर–२६९ (देखो देव भी)।
सूर्य–१७९ (देवता)।
सुर्यवर्चस–१७९ (गन्धर्व राज)।
सूर्यवर्चा। भद्रा–(देखो भद्रा)।
सूर–२७९ (राजा वैश्रवणके आधीन)।
सूरसेन—१६० (देश)।
सूलेय्य—१७९ (देवता)।
सोण–९६ (वेस्सभू बुद्धका प्रधान शिष्य)।
सोणदंड–(स्वर्णदंड) ४४ ब्राह्मण चम्पाका स्वामी ४५-४६, ४७ (बौद्ध उपासक)।
सोत्थिज–९६ (कोणागमन बुद्धका उपस्थाक)।
सोभ–९७ (कोणागमबुद्धका समकालीन राजा)।
सोभवती–९७ (कोणागमनबुद्धके समकालीन राजा सोभकी राजधानी)।
सोम–२०८ (यक्ष सेनापति)।
सौवीर–(सिन्ध) १७१ (में रोरुक गोविन्द द्वारा निर्मित नगर)।
सेतव्या–१९९ (कोसलदेशमें नगर पायासी राजन्यकी राजधानी, के उत्तरसिंसपावन, में उपदिष्ट सूत्र २२)।
सेनिय–(देखो बिम्बिसार)।
सेरिसिक–२८० (महायक्ष)।
सेरिस्सक–२१९ (पायासीका देवविमान)।
हत्थिनिक–३६ (इक्ष्वाकुका पुत्र)।
हत्थिसारिपुत्त–(देखो चित्त)।
हरि–१६९ (लोहित नगरका रहनेवाला देवता), हिरि २८० (महायक्ष)।
हरिगज–१८० (देवता)।
हारित–१८० (वशवर्ती लोकका देवता)।
हिमालय–३६ (के पास शाक्यदेश), १०१ (में करविंक पक्षी), १७८ (के यक्ष)।
हिरण्यवती–१४० (कुसिनाराके पास, जिसके दूसरे तटपर मल्लोंका उपवनमें, वर्तमान सोना नाला)।
हैमवत–२८० (महायक्षके हिमालयके।)

३—शब्द-अनुक्रमणी

अ—कल्मष—१२१ (=निर्मल)।
अकारणवाद—१०, ११।
अकालिक—१२७ (=सद्यः फलप्रद), १६५।
अकिंचन—१३ (=शून्य)।
अकुशल कर्मपथ—२३७ (=दुराचार), ३००, ३१३।
अकुशलधर्म—१११ (=बुराई), १६४ =पाप), १८६, २३२, २४३।
अकुशल मूल—२८३ (=बुराइयोंकी जळ), ३०३ (तीन)।
अकुशलवितर्क—२८३।
अकृततावाद—२१ (प्रकुधकात्यायनका)।
अकृष्टपच्य—२४२ (=विना बोया जोता अनाज)
अकोप्यज्ञान—३०२।
अक्ष—३ (एक जुआ), २५।
अक्षण—(आठ) ३१०।
अक्षर—२४२ (=बात)।
अक्षर प्रभेद—३४, ४६।
अक्षाहत—२३५ (=चूरमें ढोंका)।
अक्रियवाद—१९ (पूर्णकाश्यपका)।
अक्रिया—२०।
अगतिगमन—(चार) २८८।
अगौरव—(छै) २९३, ३०६।
अग्नि—(दोत्रिक) २८४।
अग्नि परिचरण—४० (=होम)।
अग्निहोम—५।
अग्र—४६ (=अगुआ), २३७ (=श्रेष्ठ), २४२ (=प्रथम)।
अग्रबीज—३ (ऊपरसे उगता पौधा), २४।
अंग—४५ (=गुण), ४९ (=बात)।
अंगविद्या—४, २६।
अंगार—१५० (=कोयला)।
अचेल—६१ (=नंगा)।
अजलक्षणा—४ (शुभाशुभ फल)।
अंजन—२७।
अणु—८१, ११३ (आत्मा)।
अतथ—११३ (वैसा नहीं)।
अतिचार—२७५ (=व्यभिचार)।
अतिथि—५०।
अदत्तादान—(=चोरी)।
अधिकरण—१०१ (=कचहरी), २९६ (=झगळा)।
अधिकरणशमथ—(सात) २९६ (=झगळेका शमन) (से विस्तारके लिये देखो विनय-पिटक हिन्दी)।
अधिमुक्त—११६ (=मुक्त)।
अधिष्ठान—२८६ (=दृढ़ विचार), २८९ (चार)।
अधिवचन—११२ (=नाम), ११३ (=संज्ञा), ११५।
अधीत्य समुत्पन्न—२२४ (=अभावसे उत्पन्न)।
अध्यवसान—१११ (=प्रयत्न), ११२।
अध्यात्म—१३ (=भीतर), ११६ (=अपने) १९४ (शरीरके भीतर)।
अध्यात्म आयतन—(छै) २९३, ३०६।
अध्यायक—३४, ४६ (=वेदपाठी), ४५, ५१, २४४ (की व्युत्पत्ति)।
अध्याशा—१०६ (=भाव), १८७।
अध्व—(तीन) २८४ (=काल)।
अध्वगत—४९, १२९ (=वृद्ध)।
अनभिभूत—८० (=अपराजित)।
अनय व्यसन—१२० टि० (=तबाही)।

अनवभाप्य–१८३ (=निस्संकोच)।
अनवद्य–२३४ (=निर्दोष)।
अनागामी–१२६, १२७, १४५, २४९, २५७, २९२ (पाँच)।
अनागामी-फल–८४।
अनात्मवाद–११३, ११४, ११५।
अनार्य व्यवहार–(तीन चतुष्क) २८९, २९०।
अनास्रव–१४२ (=मुक्त)।
अनिदर्शन–८१ (=उत्पत्ति, स्थिति और नाशकी जहाँ बात नहीं)।
अनिश्चिततावाद–२२ (संजयवेलट्ठिपुत्तका)।
अनीकस्थ–२३५, २६७ (=सेनानायक)।
अनुत्तर–२३ (=अलौकिक), १२३ (=सर्व-श्रेष्ठ), १९३ (=अनुपम)।
अनुत्तरीय–(तीन) २८५ (तीन); २९४, ३०६ (छै)।
अनुपर्याय–१२३ (=क्रमशः)।
अनुपूर्वनिरोध–(नव) २९९, ३१२।
अनुपूर्व विहार–(नव) २९९, ३१२।
अनुप्राप्तसदर्थ–२५७ (=परमार्थप्राप्त)।
अनुभव–१३७।
अनुभावे–६८ (=ऋद्धि)।
अनुयुक्त–२४१ (=अधीन)।
अनुयुक्तक–५१, १५३ (मांडलिक)।
अनुयुक्तक–क्षत्रिय ५२ (=माण्डलिक राजा, या जागीरदार)।
अनुलोम–११६।
अनुशय (सात) २९६, ३०७।
अनुशासन–५१४ (=उपदेश), १६९ (=सलाह)।
अनुशासन विधि–२४९।
अनुशासनी–३१२ (=धर्मोपदेश)।
अनुस्मृतिस्थान–(छै) २९४, ३०६।
अन्त–(तीन) २८४।
अन्तगुण–१९१ (=आँत)।
अन्तःपुर–१०१, २३५ (=राजनिवास)।
अन्तराय–९ (=मुक्तिमार्गमें बाधक), १५० (=बाधक)।
अन्तेवासी–२९ (=शागिर्द), १४५ (=शिष्य)।
अन्त्यकल्याण–२३।
अन्धवेणी–८८।
अन्यथाभाव–१५८ (=वियोग)।
अपचित–४९ (=पूजित)।
अपत्रपा–२६५, २८३ (=संकोच)।
अपत्रपी–१२१ (=भय खानेवाला)।
अपरान्तकल्पिक–१३, १४।
अपरिहाणीय–११९ (=हानिसे बचानेवाले)।
अपवाद–४५ (=प्रत्याख्यान)।
अपश्रयण–३०१ (=आश्रय)।
अपाय–४२, ११० (=दुर्गति), २७३ (हानि-कर कृत्य), २८५ (=विनाश)।
अपायमुख–४० (=विघ्न), २७१ (छै हानि-के द्वार), २७२।
१।९७ तद्वद्दोषस्या साम्याच्चे
अपाश्रयण–(चार) २८७ (=अवलम्बन)।
अप्रज्ञप्त–११८ (=ग़ैरक़ानूनी), १२० (=अविहित)।
अप्रमाण–३१३ (=अतिमहान्)।
अप्रमाद–१४६ (=निरालस), ३०२।
अप्रामाण्य–(चार) २८६।
अब्भाकुटिक–४९ (=अकुटिल भ्रू, खुश-मिज़ाज)।
अभव्यस्थान–(पाँच) २९१।
अभिजाति–(छै) २९५।
अभिज्ञात–३५ (=प्रख्यात), ८६ (=प्रसिद्ध)।
अभिज्ञेयधर्म–(५५) ३०२, ३०३, ३०४, ३०५, ३०६, ३०७, ३१०, ३१२, ३१४।
अभिधर्म–३००, ३१२ (=सूत्रमें)।
अभिध्या–१९०, २८९ (=लोभ)।
अभिनिर्वृत्ति–१९५।
अभिनीलनेत्र–१००, २६१, २६६।
अभिप्राय–१८७।
अभिभव–२९८ (=लोप)।
अभिभू–७ (ब्रह्मा); ८०, २२३, २५८ (=विजयी)।

अभिभू-आयतन–१३२ (आठ)।
अभिभ्वायतन–(आठ) २९८, ३१०।
अभियान–११७ (=चढ़ाई)।
अभिरूप–४५, ४६, ५२ (=सुंदर)।
अभिविनय–३००, ३१२ (=विनयमें)।
अभिसंज्ञा–६९ (=संज्ञाकी चेतना)।
अभिसंज्ञा निरोध–६८ (समाधि)।
अभिसम्पराय–१२६ (=परलोक)।
अभिषेक–३८।
अभीक्ष्णं–१२० (=बार बार)।
अभूत–६१ (=असत्य)।
अभेद्य–२६८ (=न फूटनेवाला)।
अभ्याख्यान–२९४ (=निन्दा)।
अमनुष्य–४९ (देव, भूत आदि), १७३ (=देवता), २४७, २८०।
अमराविक्षेपवाद–९, १०।
अमात्य–१९, ५१, ५२ (अधिकारी), ५३, १८३ (=मंत्री), २३५ (=मंत्री)।
अमूढ विनय–२९६।
अयःकूट–३७ (=लोहखंड)।
अय्यक–२७५ (=मालिक)।
अरक्षणीय–(तीन) २८४ (तथागतके)।
अरणी–२०६।
अरूप–७३ (=अभौतिक)।
अरूपभव–१११ (=निराकार लोक)।
अरोग–२५९ (=परमसुखी)।
अर्घ्य–१७२।
अर्थाचर्या–२६३ (=उपकार), २७५ (=काम कर देना)।
अर्थदर्शी–१६९।
अर्थाख्यायी–२७४ (=हितवादी)।
अर्थिक–५१ (=मँगता)।
अर्थी–३५ (=याचक)।
अर्धकर्म–(केवल मानसिक कर्म)।
अर्हत्–३४, ५४ (=मुक्त), ९६, १००, १४५, १८१, २१७, २४९, २५७, २७७।
अर्हत्-धर्म–(दश) ३०१।
अर्हत्व–८४।
अल्पआतंक–११७ (=नीरोग)।
अल्पारम्भ–५४ (=अल्प क्रियावाला)।
अवदात–१२८ (=सफ़ेद)।
अवद्य–२३४।
अवनद्ध–८९ (=बँधा)।
अवरभागीय–१६० (संयोजन)।
अवरभागीय संयोजन–५८ (=यहीं आवागमनमें फँसा रखनेवाले बन्धन)।
अवरभागीय संयोजन–१२६।
अवरभागीय संयोजन–२५७ (=इसी संसारमें फँसा रखनेवाले बन्धन)।
अवरभागीय संयोजन–(पाँच) २९०।
अवरुद्ध–२८० (=बागी)।
अविद्या–३२ (अज्ञान)।
अविद्या–३०३।
अविद्या–३०३।
१।७७ अविशेषार्थसामान्य।
अव्यक्त–४४ (=अज्ञ)।
अव्याकृत–७१ (=कथनका अविषय)।
अव्याकृत–७२।
अशनि–१३७ (=बिजली)।
अशैक्ष्य-धर्म–(दश) ३०१।
अशैक्ष्य-धर्म–(दश) ३१४।
अश्वयुद्ध–३।
अश्वयुद्ध–२५।
अश्वलक्षण–२६।
अश्वारोहण–१९ (शिल्प)।
अष्टकुलिक–११८ टि० (राजकीय अधिकारी)।
अष्टपाद–३ (एक जुआ)।
अष्टपाद–२५ (जुआ)।
अष्टांगिकमार्ग–१३४।
अष्टांगिकमार्ग–१४५।
अष्टांगिकमार्ग–१७५।
अष्टांगिकमार्ग–१९७।
अष्टांगिकमार्ग–२४७, २५५।
अष्टांगिकमार्ग–(८) ३०९।
असंज्ञी–६८ (=संज्ञारहित)।
असंज्ञी–११६ (-सत्व)।

असंज्ञी सत्व–१० (=संज्ञासे रहित)।
असंज्ञी सत्व–२२४।
असद्धर्म–(सात) २९५, ३०७।
असिलक्षण–४ **(शुभाशुभ फल)**।
असिलक्षण–२६।
अस्तगमन–११६ **(=विनाश)**।
अहिच्छक–२४२ (=नागफनी)।
अहिंसा–२८३।
आकाश–३ (एक जुआ)।
आकाश–२५ (जुआ)।
आकाश-आनन्त्य-आयतन–६९।
आकाश-आयतन–११५ (=योनि)।
आकिंचन्य–६९ (=न कुछ पना)।
आकिंचन्य आयतन–१३।
आकिंचन्य-आयतन–६९।
आकिंचन्य-आयतन–११६ (योनि)।
आक्षेपकर्ता–२९१ (के पाँच धर्म)।
आख्यायिका–६७।
आख्यायिका–२२६ (-भेद)।
आगमज्ञ–१३५ (=आगमोंको जाननेवाला)।
आघातप्रतिविनय–(नव) २९८।
आघातप्रतिविनय–३११ (=द्रोह हटाना)।
आघातप्रतिविनय–(नव) ३११।
आघातवस्तु–(नव) २९८।
आघातवस्तु–(नव) ३११।
आचार्यक–१३० (=सिद्धान्त)।
आचार्यक–२२२ (=मत), २२३।
आचार्यक–२२५ (=मत)।
आचार्यक–२२७ (=मत)।
आचार्यमुष्टि–१२९।
आजानुबाहु–२६५।
आज्ञा–१४४ (=परमज्ञान), १९८ (अर्हत्व)।
आढ्य–४९।
आणि–२७६ (=नाभी)।
आत्मद्वीप–२३१ (=स्वावलंबी), २३८।
आत्मभाव–२५० (=योनि)।
आत्मभावप्रतिलाभ–(चार) २८९ (=शरीर प्राप्ति)।
आत्मवाद–११३, ११४, ११५, २५९।
आत्मवाद-उपादान–१११ (आत्माकी नित्यतामें आसक्ति)।
आत्मा–६ (नित्य) ११, १२ (का उच्छेद), ७०, ११३ (का आकार)।
आदिकल्याण–२३, ३४।
आदिनव–११६ (=दुष्परिणाम), १२१, २९१ (पाँच)।
आदिब्रह्मचर्य–७२।
आदीप्त–३७ (=प्रज्वलित)।
आदेयवाक्–२६८।
आदेशना प्रातिहार्य–७९।
आदेशनाविधि–(चार) २४७-४८।
आधानग्राही–१९४ (=हठी)।
आधिचैतसिक–२५१।
आधिपत्य–(तीन) २८५ (=स्वामित्व)।
आनन्तरिक चित्त-समाधि–३०२।
आनापान–१९०।
आनुपूर्वी–१०७ (=क्रमानुकूल)।
आनुपूर्वीकथा–५५।
आनृशंस्य–(=गुण)। १२२ (=फल), २९१ (पाँच)।
आभास्वर–३११।
आमगन्ध–१७३।
आमिष–१९२ (=भोगपदार्थ), २७५ (खान-पानकी वस्तु)।
आयतन–१९४ (सविस्तर-), १९४ टि० (आध्यात्मिक बाह्य बारह), १९५ (=इन्द्रिय और विषय), २८३ टि० (बारह), २९३ (अध्यात्म बाह्य), ३१३ (दश)।
आयतपार्ष्णि–२६०।
आयुध–(तीन) २८५।
आयुध लक्षण–४ (शुभाशुभ फल)।
आयुप्रमाण–९६।
आयुसंस्कार–१२९, १३१ (=प्राणशक्ति)।
आरक्षा–१११ (=हिफ़ाज़त)।
आरब्धवस्तु–(आठ) २९७, ३०९।

आरब्धवीर्य–१२१ (=उद्योगी), २९१ (= यत्नशील), ३१३।
आराम–४२ (=बग़ीचा)।
आरूप्य–(चार) २८६।
आर्जव–२८३ (=सीधापन)।
आर्य–२७ (=उत्तम), २९ (=पंडित), १२१, १२७।
आर्य अष्टांगिकमार्ग–५८।
आर्य-आयतन–१२५ (=आर्योंका निवास)।
आर्यक–२७५ (=मालिक)।
आर्यधन–(सात) २९५, ३०७।
आर्यधर्म–३३ (=बौद्धधर्म), १६४।
आर्यपुत्र–३६ (=स्वामियुक्त), ३७।
आर्यवंश–२८७ (चार)।
आर्यवास–(दश) ३०१, ३१३।
आर्यविनय–८९ (=बुद्धधर्म)।
आर्यव्यवहार–(दो चतुष्क) २८९, २९०।
आर्यसत्य–१९५, ९८, ३०४ (चार)।
आर्षभी–१२२ (=बळी), २४६।
आलय–१०५ (=भोग)।
आलारिक–१९ (=बावर्ची)।
आलोप–२६९ (=लूटना)।
आवरण–११९ (=रक्षा), २६२।
आवसथ–१२५ (=डेरा), २९७ (=निवास)।
आवसथागार–१२३ (=अतिथिशाला)।
आवास–१३५, २०६ (=टिकनेका स्थान)।
आवाह–३९।
आविल–३१३ (=मलिन)।
आवुस–६०, ६२ (=बाबू)।
आवृत–८९ (=ढँका)।
आस्तरण–२६४ (=बिछौना)।
आस्तिकवाद–२१ (=आत्मा है)।
आस्रव–३२ (=चित्तमल तीन), १०५, १२२ (काम, दृष्टि, भव), १२६, २३९, २४७, २८४ (तीन)।
आस्रवक्षय–८५।
आस्रवरहित–२७७ (=अर्हत्)।
आस्वाद–७ (=रस)।
आहवनीय–२८४ (अग्नि)।
आहार–७०, २८२, ३०२, २८८ (चरा), ३०४ (चार)।
आह्वान–८९ (देवताओंका)।
इति भवाभव–६७ (ऐसा हुआ ऐसा नहीं हुआ)।
इन्द्रजाल–५, २७।
इन्द्रिय–१०६ (=प्रज्ञा), १३४, १५८ (= शरीर), २४७ (पाँच), २५५, २८५ (तीन), २९२ (तीन पंचक), ३०५ (पाँच)।
इन्द्रिय संवर–२७।
इब्भ–(=इभ्य) २४०।
इभ्य–३५, ३६, ४० (=नीच)।
ईर्यापथ–१९१ (का रूप)।
ईश्वर–७, ८ (सृष्टिकर्ता ब्रह्मा), १२० टि० (=मालिक), १८० (=स्वामी), २२२ (सृष्टिकर्ता)।
ईहन–१७ टि० (=प्रयत्न)।
उग्र–१९।
उच्चार–१९१ (=पाख़ाना)।
उच्छेद–१२।
उच्छेदवाद–२०३ (=जडवाद, अजित केश कम्बलका)।
उत्कोटन–२६९ (=रिश्वत)।
उत्तरितर–२५ (=उत्तम)।
उत्थान–२७५ (=तत्परता)।
उत्पल–२९, १०६।
उत्पादविद्या–४।
उत्पादनीय धर्म–(५५) ३०२, ३०३, ३०४, ३०५, ३०६, ३०७, ३१०, ३१२, ३१४।
उत्पीड़ा–५०।
उत्संग–१७ टि० (=ओंइछा)।
उत्संगपाद–२६३।
उदककृत्य–९९ (=प्रक्षालन)।
उदय–१०५ (=उत्पत्ति)।
उदान–१९ (=प्रीतिवाक्य), २८९ (चित्तोल्लाससे निकला वाक्य)।
उदार–१३ (=स्थूल), ६९ (=विशाल), १२२ (=बळा), २४६।

उद्यानपाल–१०६।
उद्यानभूमि–१०१, १०२, १०३, १५५।
उन्नाद–३७ (=कोलाहल)।
उपकरण–५० (=साधन)।
उपकारकधर्म–(५५) ३०२, ३०३, ३०४, ३०५, ३०७, ३०८, ३११, ३१२।
उपक्लेश–१२३ (=चित्तमल), २२८ (=मल)।
उपनाही–२९४ (=पाखंडी)।
उपमा–२०१ (=उदाहरण)।
उपराज–११८ टि०
उपलाप–११९ (=रिश्वत)।
उपविचार–२९३ (सौमनस्य, दौर्मनस्य, उपेक्षा)।
उपशम–७१ (=शान्ति), १७५ (=परम-शान्ति), २५८।
उपशमसंवर्तानिक–२५२ (=शान्तिगामी), २५८, २८२ (=शान्तिप्राथक)।
उपसंहार–१२८ (=समझना)।
उपसेचन–४१ (=तेवन)।
उपस्थाक–५६ (=हजूरी), ९६ (=सहचर), १४२ (=चिरसेवक)।
उपस्थान–२७५ (=हाज़िरी, सेवा)।
उपादान–१० (=संसारकी ओर आसक्ति), १४, १०४ (=भोग-ग्रहण), ११० (=आसक्ति) ,१११ (काम, दृष्टि, शीलव्रत, और आत्मवादके), २८९ (चार)।
उपादानस्कंध–१०५, १९३, १९५, २९०, ३०४ (पाँच)।
उपादि–१३९ (=आवागमनका कारण)।
उपाधि–२५० (=आस्रव, चित्तमल)।
उपायास–११० (=परेशानी), १९६ (का रूप)।
उपासक–४७, ५५, ९२, १३८।
उपासक श्रावक–२५४ (=गृहस्थ शिष्य)।
उपेक्षा–२९ (=अन्य मनस्कता), १५७, २३०।
उपेक्षा-उपविचार–२९३।
उपोसथ–१७ (=पूर्णिमा), २३४।
उब्भतक–२८१ (=ऊँचा)।
उभयतो भाग विमुक्त–११६ (=नामरूपसे मुक्त)।
उभयतो भाग विमुक्त–२४८।
उभयांश–५७ (=दो तर्फ़ी)।
उलुम्प–१२५ (=बेळा)।
उल्का–४२ (=मशाल)।
उल्कापात–५।
उल्लूका पंख–६३।
उष्णीष शीर्ष–१००, २६१।
उस्संखपाद–१०० (ऊँची गुल्फवाला), २६०, २६३ (=सत्संगपाद)।
ऊर्ध्वभागीय संयोजन–२९० (पाँच)।
ऊर्ध्वविरोचन–२७।
ऋजु गात्र–१०० (=अकुटिल शरीर)।
ऋण–२८।
ऋतुनी–२४० (=ऋतुमती)।
ऋद्ध–१३१ (=उन्नत)।
ऋद्धि–३०, १३७, १५५ (चक्रवर्तीका चार), १६६, २५०।
ऋद्धिपाद–१३० (=योगसिद्धि), १३४, १६४ (चार), २३९ (चार), २४७, २५५ (चार), २८४ (चार)।
ऋद्धि प्रातिहार्य–७८ (=ऋद्धियोंका प्रदर्शन)।
ऋद्धिबल–७८ (=दिव्यशक्ति), २१५-२०, २२२।
ऋद्धिभावना–२६२।
ऋद्धिविध–२५० (=दिव्यशक्ति), २५१।
ऋषि–८७।
एकांशिक–७२।
एकैकलोम–२६७।
एणीजंघ–२६०, २६४।
एषणा–(तीन) २८४ (=राग)।
एहिपश्यिक–१६५।
एहिपस्सिक–१२७ (=यहीं दिखाई देनेवाला)।
ओघ–(चार) २८९ (=बाढ), ३०४।
ओज–१८८।
ओवाद परिकार–५१।
औदारिक–७०, ७३ (=स्थूल)।

औद्धत्य–२८।
औद्धत्य-कौकृत्य–८९ (=उद्धतपना और खेद), १९३ (उद्वेग और खेद)।
औपनयिक–१२७ (=निर्वाणके पास ले जाने-वाला), १६५।
औपपातिक–१०, २१, २२ (=अयोनिज), ५८ (=देवता), १६०, १६५, १७५, २४९, २८९ (=अयोजिन)।
कच्छप–४ (लक्षण)।
कण–६३।
कथा–२५, ६७ (के भेद) १०७ (दान-शील-स्वर्गकी), २२६ (के भेद)।
कथावस्तु–(तीन) २८५ (=कथाविषय)।
कथा। व्यर्थ–४।
कदलिमृगकी खाल–३ (बिछौना), २५।
करणीय–११८ (=कर्तव्य)।
करविंक–२६१।
करविंकभाषणी–२६८।
करुणा–(भावना) ९१, १५७।
कर्णिका लक्षण–४ (शुभाशुभ फल), २६।
कर्म–(चार) २८९।
कर्मकर–५२ (=कमकर, नौकर)।
कर्मक्लेश–(चार) २७१।
कर्मपथ–३०० (कुशल, अकुशल)।
कर्मान्त–२७५ (काम)।
कर्मार–२८१ (=सोनार)।
कलम्बुक–२४२ (=सरकण्डा)।
कल्पक–१९ (=हजाम)।
कल्याण–४३ (=सुन्दर), १०८ (आदि-मध्य-पर्यवसन-), २७५ (-भलाई)।
कल्याणधर्म–२०३ (=पुण्यात्मा)।
कल्याण वाक्करण–४९ (=सुवक्ता)।
कबलिंकार–७०, ७३ (=ग्रास ग्रास करके खाना)।
कवि–३४, ४६।
कवितापाठ–५, २६।
कंस–२६९ (बटखरा)।
काकपेया–८९ (=करारपर बैठकर कौआ भी जिसका पानी पी ले)।
कांक्षा–१४४ (=संशय), १४६ (=सन्देह), २५१, २८४ (तीन)।
कांजी–६३।
कान्तार–२८ (मरुभूमि), ९० (=वीरान), २०७।
काम–२८, १११ (=भोग), १५३, २३९, २७१ (=स्त्रीसंसर्ग)।
काम-आस्रव–३२ (भोगोंकी इच्छा)।
काम-उपपत्ति–(तीन) २८४।
काम-उपादान–१११ (=भोगोंमें आसक्ति)।
कामगुण–१३, २२, ८९, ९८ (=भोग), १०१, १०२, १६९, २२९, २९० (पाँच)।
कामच्छन्द–८९ (=भोगकी इच्छा) १०९, १९३ (=कामुकता)।
कामभव–१११ (पार्थिव लोक)।
काय–८९ (=त्वक् इन्द्रिय)।
काय–२९३ (=समुदाय)।
कायगत स्मृति–३०२।
काय समाचार–१८६ (=कायिक आचरण)।
कायसाक्षी–२४८।
कायस्पर्श–१११।
कायानुपश्यना–१९०।
कायानुपश्यी–२३३, २३९।
कालवादी–२६९।
किंचन–(तीन) २८४ (=प्रतिबन्ध)।
कुक्कुट सम्पातिक–२३८ (=ऐसे एकसे एक मिले घर कि मुर्गा छतसे छतपर होता चला जाये)।
कुटी–१६ टि०
कुद्रूस–२३७ (=कोदों)।
कुबळा–२०४।
कुमार लक्षण–४, २६।
कुमारी लक्षण–४ (=शुभाशुभ फल)।
कुम्भकार–१९।
कुम्भ थूण–२७२ (बाजा)।
कुम्भस्थान–६७ (=पनिघट), २२६।
कुल्ल–१२५ (=कूला)।

कुशल–४९ (=अच्छा)।
कुशल कर्मपथ–२३७ (=सदाचार); ३००, ३१३ (दश)।
कुशलता–२८३ (=चतुराई)।
कुशलधर्म–१८३ (=अच्छाई), १९७ (=सुकर्म), २३०, २३८ (=सुकर्म)।
कुशल मूल–२८३ (=भलाइयोंकी जळ), ३०३ (तीन)।
कुशल वितर्क–२८३।
कुशल-समीक्षा–२७८ (=भलाई चाहनेवाला), ३०३।
कुसीत (आठ) २९६, ३०९।
कूट–२६९ (=ठगी)।
कूटस्थ–६ (आत्मा), २४९।
कूटागार–१५७।
कृत्स्नायतन–(दश) ३००, ३१३।
कृपण–२१० (=ग़रीब)।
कृपणता–१७३।
कृष्णधर्म–२९५ (=पाप)।
केटुभ–३४ (=कल्प), ४६।
केदार–१२० टि० (=क्यारी)।
केवल–११० (सम्पूर्ण)।
कोळा–४१।
कोश–५१, ५२।
कोषाच्छादित–१०० (चमळेसे ढका), २६०।
कोषाच्छादित वस्तिगुह्य–२६५।
कोषाध्यक्ष–२६२।
कोष्ठागार–५१, ५२।
कौकृत्य–१९३ (=खेद), ३०४ (=हिचकिचाहट)।
कौमुदी–१६ (आश्विन पूर्णिमा)।
कौशल्य–(तीन) २८५।
क्रीडाप्रदूषिक–८ (देवता)।
क्लेश–१०६ (=चित्तमल), १७५, २२८ (=मैल), २७० (पापका मालिन्य)।
क्षत्ता–४४ (=प्राइवेट सेक्रेटरी), ४८, १९९।
क्षमा–१०८।
क्षत्रिय–१७९, २४० (वर्ण)।
क्षान्ति–७० (=चाह), १५० (=क्षमा)।
क्षीण–१०८ (=नष्ट)।
क्षीणास्रव–१६८ (=अर्हत्), २४५।
क्षुरप्र–८ (=वाण)।
क्षेत्रविद्या–४, २६।
क्षौम–१५७ (=) अलसीका कपड़ा), २०९ (=अलसीका सन)।
खलिक–३, २५ (जुआ)।
खली–६३।
खांडित्य–१९५ (=दाँत टूटना)।
खुन्सेन्तो–३५ (खुन्साते)।
गण–११७ टि० (=प्रजातंत्र)।
गणक–१९, २६७ (=एकौन्टेंट)।
गणना–५।
गणाचार्य–४९।
गणिका–१२८।
गणी–४९।
गतात्मा–२१ (=अतिच्छुक)।
गति–१६० (=परलोक), २९० (पाँच)।
गन्ध–(चार)—२८९।
गन्धतृष्णा–१११।
गरुड़–१७९
गर्भ-अवक्रान्ति–२८९ (=गर्भप्रवेश)।
गर्भपुष्टि–५,२६।
गर्भप्रवेश–२४७, २८९ (चार)।
गहनी–२६६ (=पाचनशक्ति)।
गान्धारी विद्या–७८।
गार्हपत्य–२८४ (अग्नि)।
गिंजका–१६१ (=ईंट)।
गीतमण्डल–२५।
गुप्ति–११९ (=रक्षा), २६२।
गुरुकरणीय–५० (=सत्करणीय)।
गुरुकार–११८ (=सत्कार), २७१।
गुरुकुल–३५।
गुल्फ–२६३ (=घुट्ठी)।
गूथकूप–२०१ (=संडास)।
गृहपति–४५ (=गृहस्थ), ५१, १४३, १५४, १७५ (वैश्य)।

गोघातक– १९२।
गोचर–२२१ (=शिकार)।
गोत्र–३६।
गोत्रवाद–३९।
गोपक्ष्म–२६१, २६६।
गोलक्षण–४ (शुभाशुभ फल)।
गोहलक्षण–४।
गौरव (छै) २९३, ३०६।
ग्रहण–५, २६ (चंद्र सूर्य नक्षत्रके)।
ग्रहणी–२९१ (=पाचनशक्ति)।
ग्राम–७३।
ग्रामघात–५० (=गाँवोंकी लूट)।
ग्रीष्म–१०१ (ऋतु)।
ग्लान प्रत्यय भैषज्य–२५६ (=पथ्य औषध, का प्रयोजन)।
घटिक–३, २५ (जुआ)।
घातयिता–२१।
घ्राण स्पर्श–१११।
चक्र–(४) ३०३।
चक्ररत्न–१५२, २३४-३५।
चक्रवर्तीव्रत–२३५।
चक्रवर्ती–९९, १४१।
चक्षु–२७ (=आँख), १०६ (बुद्ध), १०७ (धर्म), २८५ (तीन)।
चक्षुमान–१४१ (=बुद्ध)।
चक्षुःस्पर्श–१११।
चंक्रम–४१ (=टहलना)।
चर्म–१९ (=ढाल)।
चलक–१९ (व्यूहरचना)।
चतुरंगिनी–५१ (सेना), ५२, १५४।
चतुष्पद–११० (=चौपाया)।
चंद्रग्रहण–५।
चातुर्महापथ–७३ (=चौरस्ता)।
चातुर्यामसंवर–२१ (निगण्ठनाथपुत्तका), २२९ (=चार संयम), २३०।
२२१ (=चार संयम), २३०।
चारिका–१०८।
चिकित्सा–२७।
चितान्तरांस–२६६।
चित्त–३१ (के भेद)।
चित्तविनिबन्ध–२९२।
चित्तसमाधि–६, २३९, ३०२ (आनन्तरिक)।
चित्तसम्पत्ति–६४।
चित्तानुपश्यना–१९३ (का रूप)।
चिन्तामणि विद्या–७९।
चिंलिगुलिक–३, २५ (जुआ)।
चीवर–३९, ४३, ९१, १९१ (भिक्षुवस्त्र), २५६ (का प्रयोजन)।
चेतः परिज्ञान–१२३ (=परचित्तज्ञान), २४६।
चेतोखिल–(पाँच) २९२, ३०४।
चेतोविमुक्ति–१७५, २४७।
चेलक–१९ (=युद्धध्वज)।
चैत्य–११९ (=चौरा), १४८ (देवस्थान)।
चोदनावस्तु (तीन) १८४ (=दोषारोप)।
चोर–११८ टि० (=अपराधी), २०३।
चोर। महा–२८० (=डाक)।
चोरी–२३५ (की वृद्धि), २३६।
च्युत–११३ (=मृत)।
च्युति–६१ (=मृत्यु)।
छन्द–१८६ (=चाह), १९७ (=इच्छा), २९५ (अनुराग)।
छन्दराग–१११ (=प्रयत्नेच्छा), ११२।
छन्दसमाधि–२३९।
छवि–१४९ (=झिल्ली), १५८ (=चर्म)।
छारिका–१४९ (=राख)।
जटिल–२०६ (=जटाधारी), २०७।
जड़वाद–२० (=उच्छेदवाद, अजितकेश कम्बलका)।
जनपद–४ (=दीहात), २५, ३८ (=देश), ५०, १०३, २०६ (=दीहात)।
जनपद कल्याणी–७३ (=देशकी सुन्दरतम स्त्री) ८८।
जनश्रुति–२५।
जन्मान्ध–२०२।
जरा–१०४, ११०, १९५ (का रूप)।
जाति–४५ (=जन्म), ४६, १०४, ११०, १९५।

जातिवाद–३९।
जादू–(देखो विद्या)।
जानपद–५, ५१ (=ग्रामीण), ५२, २६२ (=दीहाती सभासद्), २६७।
जालहस्तपाद–१००।
जिह्वा–१११ (-स्पर्श)।
जीर्ण–४९ (=वृद्ध)।
जीव–५८, ५९।
जुआ–३, २५ (के भेद)।
जुआरी–२०८।
जेल–२८।
ज्ञाति–६७ (=कुल), २२६।
ज्ञान–(दो चतुष्क) २८७, ३०४, ३०३ (दो) ३०३ (तीन), ३०४ (चार)।
ज्ञान दर्शन–६४, २८६ (=साक्षात्कार)।
ज्योतिषफल–५।
ज्योतिषी–१०२।
तत्पापीयसिक–२९६।
तथाकारी–२५८।
तथागत–(=बुद्ध) ५, १४, १५, ७१ (मरनेके बाद), ७७ (जब संसारमें)।
तथ्य–७२ (=यथार्थ)।
तनु–५७ (=निर्बल), १६० (-कमजोर)।
तप–२२८-३० (का बल)।
तप-ब्रह्मचारी–६५।
तपश्चरण–६१।
तपस्या–४० (के भेद), ६२-६३ (नाना भेद)।
तपो जुगुप्सा–२२७ (=तपोंकी निन्दा)।
तर्क–८ (=न्याय)।
तर्कावचर। अ–५ (तर्कसे न जाना जानेवाला)।
तापनगेह–१६ टि० (=लोहारखाना)।
तार्किक–११।
तिणवत्थारक–२९६।
तितिक्षा–१०८।
तिरश्चीन कथा–४ (व्यर्थकी कथा)।
तिर्यग् योनि–३१० (=पशु पक्षी आदि)।
तीर चलानेकी बाजी–३ (एक जुआ)।
तीर्णविचिकित्स–१६८ (=सन्देहरहित)।
तीर्थ–६८ (=पन्थ), १२५ (=घाट)।
तीर्थंकर–१७, ४९ (=संप्रदाय-स्थापक)।
तीर्थिक–२२६ (=मतवाला)।
तुच्छ–८८ (=रिक्त, व्यर्थ)।
तुषोदक–६२ (=चावलकी शराब)।
तृष्णा–१४ (से उपादान), १०४, १११ (छ), १८७, १९६ (के भेद), १९७, २८४ (दो त्रिक), ३०३ (तीन)।
तृष्णा-उत्पाद–(चार) २८८।
तृष्णाकाय–(छै) २९३, ३०६।
तृष्णामूलक धर्म–(९) ३११।
तेजो धातु–२२२ (=अग्नितत्व)।
त्रैविद्य–४१ (=त्रिवेदी), ८७, ८८, ९०।
त्वक्–१९१ (=चमळा)।
दक्षिण–२८४ (अग्नि)।
दक्षिणा–१२५ (=दान)।
दक्षिणाविशुद्धि–(चार) २८९।
दक्षिणेय–(सात) २९६।
दक्षिणेय पुद्गल–(आठ) २९६।
दण्ड लक्षण–४ (शुभाशुभ फल)।
दत्तादायी–२ (दी गई चीजको लेनेवाला)।
दन्तकार–३० (हाथीके दाँतका काम करनेवाला)।
दन्धा–२४८ (=धीमी)।
दम्य सारथी–३४ (=चाबुक सवार)।
दर्पण–५ (पर देवता बुलाना), ३१।
दर्भ–५२ (=कुश)।
दर्शन–५८ (=ज्ञान), २५७।
दर्शनसमापत्ति–(चार) २४८।
दशपद–३, २५३ (जुआ)।
दस्यु–५० (=डाकू)।
दस्युकील–५० (=लूट-मार)।
दहर–१२८ (=तरुण)।
दान-उपपत्ति–(आठ) २९७ (उपपत्ति=उत्पत्ति)।
दानपति–५१ (=दायक)।
दानवस्तु–(आठ) २९७।
दाय–१०३ (=तर्का)।

दायज्ज–३४, २७४ (=वरासत)।
दास–२४, २८, ४१, १८४।
दासपुत्र–१५।
दासलक्षण–४ (शुभाशुभ फल), २६।
दासी लक्षण–४ (शुभाशुभ फल)।
दिव्य ओज–१८८।
दिव्यचक्षु–३१, ३२, ४०, ६१।
दिव्य रूप–५७।
दिव्य शब्द–५७।
दिव्यश्रोत्र–९५।
दिशादाह–५, २६।
दीर्घरात्र–१४२ (=चिरकाल), २८१।
दुःखक्षय–३२।
दुःखता–(तीन) २८४।
दुःखनिरोध–३२।
दुःख-समुदय–३२ (=दुःख का कारण)।
दुराख्यात–२५२ (=ठीकसे न कहागया)।
दुर्वचन–३०३।
दुर्वर्ण–२४२ (=कुरूप)।
दुष्प्रतिवेध्य धर्म–(५५) ३०२, ३०३, ३०४, ३०५, ३०६, ३०७, ३१०, ३११, ३१३।
दुष्प्रवेदित–२५२ (=ठीकसे न साक्षात्कार किया गया)।
दुष्कृत–१३३।
दुष्प्रज्ञ–३६ (=अपंडित)।
दुःशील–१२४ (=दुराचारी)।
दुश्चरित–(तीन) २८३।
दुस्स–१४७ (=थान)।
दूतकर्म–४, २६ (के भेद)।
दृष्टजन्म–१७२ (=इसी जन्ममें)।
दृष्टधर्मनिर्वाण–१३, १४ (इसी जन्ममें निर्वाण)।
दृष्टधार्मिक–२५६ (=इसी जन्ममें)।
दृष्टि–३१ (=सिद्धान्त), ३२ (सम्यग्), ७० (=धारण), ७३ (=वाद, मत), ११३, २४५।
दृष्टि-उपादान–१११ (=धारणामें आसक्ति)।
दृष्टिप्रतिवेध–२९६ (=सन्मार्ग दर्शन)।
दृष्टिप्राप्त–२४८।
दृष्टिविपत्ति–२८३ (=सिद्धान्तदोष)।
दृष्टि विशुद्धि–२८३ (=सिद्धान्तकी शुद्धता), सम्यग् दृष्टिका निरन्तर अभ्यास)।
दृष्टि स्थान–११ (=सिद्धान्त)।
देव–१०२ (=राजा)।
देवता–५ (बुलाना)।
देवपुत्र–९९।
देववाहिनी–५ (जिस स्त्रीके ऊपर भूत आता हो), २७।
दैववाद–२० (मक्खलिगोसालका)।
दोहद–१६ (=सधौर)।
दौर्मनस्य–१४, ११० (=मनःसन्ताप), १६५ (=मनकी अशान्ति), १८६ (=चित्त-का खेद), १९० (=दुःख), १९६ (=मानसिक दुःख)।
दौर्मनस्य-उपविचार–२९३।
दौवारिक–२६७ (=द्वारपाल)।
द्यूतप्रमाद स्थान २७२।
द्रोण–२० (एक नाप)।
द्रोणी–१४८ (=कळाही)।
द्वारपाल–२३५, २६२।
द्वीप–१५७ (=चीता)।
धनुष–१५५ (=चार हाथ)।
धनुर्ग्राह– १९।
धनुष लक्षण ४ (धनुष का शुभाशुभ फल)।
धर्म–५४ (=परमतत्त्व), १०४ (=विषय), १११ (=मनका विषय), १२७ (की अनुस्मृति), १३५ (=सुत्त), १४२ (=बात), १६५ (-अनुस्मृति), १९२ (=स्वभाव), १९३ (नीवरण, स्कन्ध, आयतन, बोध्यंग, आर्यसत्य), १९४ (=वस्तु), स्वभाव, पदार्थ, मनका विषय), २३७ (=बात), २५५ (=बुद्धवचन), २८८ (-अनुस्मृति)।
धर्म-अन्वय–१२३ (=धर्म-समानता), २४६।
धर्मकाय–२४१ (=बुद्ध)।
धर्मचक्र–१३१ (=धर्मोपदेश)।

धर्मचक्षु–३३ (=धर्मज्ञान), १०७।
धर्मतृष्णा–१११ (=मनके विषयकी तृष्णा)।
धर्मदायाद–२४१।
धर्मदीप–१३०।
धर्मधर–१३३ (=सूत्रपाठी), १३५।
धर्मनिर्मित–२४१।
धर्मपद–(चार) २८८।
धर्मपर्याय–१२७ (=उपदेश), २५९।
धर्मविचय–१९५ (=धर्म-अन्वेषण), २४८ (=सम्बोध्यंग)।
धर्मविनय–४ (=मत), २५, २१६, २५२, २८८ (=मत, धर्म)।
धर्मसमादान–(चार) २८२।
धर्मस्कन्ध–२८९ (चार), ३०५ (पाँच)।
धर्मानुधर्मप्रतिपन्न–१६८ (=धर्मके अनुसार मार्गपर आरूढ़)।
धर्मानुपश्यना–१९३ (का रूप)।
धर्मानुसारी–२४८।
धातु–७९ (पृथिवी, जल, तेज, वायु), १९२, २८३ (चार त्रिक), २८३ टि० (अठारह), २८३, २८४ (तीन त्रिक), २८८ (चार), २९४ (छै), ३०३ (दो), (तीन)।
धातुमनसिकार–१९२।
धारणा–५ (मत)।
धुतपाप–२१ (=पापरहित)।
धोपन–३, २५ (खेल)।
ध्यान–(चार) २३, २८, २९, ४०, ४७, ५४, ५५, ५८, ५९, ६४, ६८-६९, ७९, १४६, १४७, २३९, २८६।
ध्यायक–२४४ (की व्युत्पत्ति)।
ध्रुव–८।
नक्षत्र–५ (विवाह आदिमें), २६ (बतलाना)।
नक्षत्रग्रहण–५।
नगर–७३।
नगरक–१४३ (= नगला)।
नग रूपकारिका–४१ (=नगररक्षाके स्थान)।
नदिका–१३७ (=छोटी नदी)।
नन्दी–१९६ (=राग)।
नरक–१२४।
नरक प्रपात–८५ (=नरकका खड्ड)।
नलकार–१९।
नवकतर–१४६ (=छोटा)।
नवनीत–७५।
नहापक–१९ (=नहलानेवाला)।
नागआवास–२०।
नागावलोकन–१३५।
नाटक–२५।
नाथकरण धर्म–(दश) ३००, ३१२।
नानात्म–१२ (=नाना शरीर)।
नानात्व–३११।
नानात्वसंज्ञा–६९।
नानाभाव–१५८ (=वियोग)।
नाम–३०३।
नामकाय–११२ (=नाम-समुदाय)।
नामरूप–१०४, ११०, ११२, ११३।
निकति–३ (सोना चाँदी बनाना), २६९ (=कृतघ्नता)।
निगण्ठ–२१ (=निर्ग्रन्थ)।
निगम–७३, १०३ (=क़स्बा), ११०।
निग्रहस्थान–२८२।
निघण्टु–३४, ४६।
नित्य–६ (आत्मा और लोक), ७, ८।
नित्यताऽनित्यता वाद–७।
निदान–१११ (हेतु), ११२, १८५ (=कारण)।
निधानवती–२६९ (=भावपूर्ण)।
निधि–१५४।
निपुण–६१ (=पंडित)।
निमित्त–११२ (=लिंग)।
नियत–५७।
निरय–४२ (=नरक)।
निरुक्ति–७५ (=वचन-व्यवहार), ११३ (=भाषा), ११५ (=भाषा)।
निरुद्ध–६८, ११४ (=विनष्ट, विगत, विलीन)।
निरोध–७१, १०४ (=विनाश), १०५, १८६।

निरोध धर्म–४३, १०७ (=नाश होनेवाला)।
निर्जरवस्तु–(दश) ३१४।
निर्दशवस्तु–(सात) २९५, ३०७।
निर्वाण–५८, ७१, ८१ (में चारों भूतोंका निरोध), ९७, १०५, १०७, १०८, १६७।
निर्विण्ण–२८२ (=विरक्त)।
निर्वृति–११।
निर्वेद–७१ (=उदासीनता), १८८, २५६ (=विराग)।
निर्वेधभागीय संज्ञा–(छै) २९५।
निर्वेधिक–२९१ (=अन्तस्तल तक पहुँचनेवाला), ३१३।
निवृत–८९ (=ढँका)।
निष्कामता–४३ (=भोगत्याग), २८३।
निष्क्रमण–११९ (=निकालना)।
निष्पाक–२९६ (=परिपाक)।
निष्पुरुष–१०१ (=केवल स्त्री)।
निस्सरण–११६ (=छूटनेका मार्ग)।
निःसरणीय धातु–(पाँच) २९२ (पाँच), २९४, ३०३ (तीन), ३०६ (छै), ३०५ (पाँच)।
निहीन–३९ (=नीच)।
नीवरण–२८, ८९ (पाँच कामच्छन्द, व्यापाद, स्त्यानमृद्ध, औद्धत्यकौकृत्य, विचिकित्सा), ६८ (पाँच), ८९ (=आवरण), ९०, १०७, १९३ (का रूप), २३० (पाँच), २४७ (पाँच), २९० (पाँच), ३०४ (पाँच)।
नीवार–६३ (=तिली)।
नृत्य–२५।
नेचयिक–५१ (=धनी), ५२, ५३।
नेमि–१५३ (=पुट्ठी)।
नैगम–५१ (=नागरिक), ५२, २६२ (=नागरिक सभासद्), २६७।
नैमित्तिक–९९ (=ज्योतिषी)।
नैरयिक–२१६ (=नारकीय)।
नैर्याणिक–१२१ (=पार करानेवाला), २५२ (=पार लगानेवाला), २५३ (=मुक्तिकी ओर ले जानेवाला)।
न्याय–८ (=तर्क) १९० (=सत्य), १९८।
पंगचिर–३, २५ (जुआ)।
पतोद लट्ठी–४७ (=कोळेका डंडा)।
पत्ताल्हक–३, २५ (जुआ)।
पदक–४६ (=कवि)।
पदज्ञ–३४ (=कवि), ४६।
पद्म–२९।
पनुन्नपच्चेक सच्च–३१३ (=प्रत्येक सत्य त्यागे)।
परचित्त ज्ञान–३१, (देखो चेतःपरिज्ञान भी)।
परपुद्गलविमुक्तिज्ञान–२४९।
परलोक–२०१-५।
परामृष्ट–२९४ (=निन्दित)।
परिग्रह–१११ (=जमा करना), ११२।
परिग्रह। स–९० (=बटोरनेवाला), ९१।
परिघ–४१ (=काष्ठप्राकार), १७७ (=अर्गल)।
परिचर्या–२७५ (=सत्संग)।
परिचारक–१६० (=सेवक)।
परिजन–१८३, २७५ (=नौकर चाकर)।
परिज्ञेय–३०२ (=त्याज्य)।
परिज्ञेय धर्म–(५५) ३०२, ३०३, ३०४, ३०६, ३०७, ३०९, ३११, ३१३।
परिणायक–१५४ (=कारबारी)।
परिणायक रत्न–१५७।
परित्त–११३ (=अणु)।
परिदेव–१०४ (=रोना पीटना), ११०, १९५ (का रूप)।
परिनिर्वाण–१३३।
परिव्राजक–२०, ७१, २२६।
परिमंडल–१५० (=घेरा)।
परिवास–६५ (=परीक्षार्थ वास), १४५।
परिषद्–१७ टि०, १३२ (आठ), २९८ (आठ)।
परिष्कार–४८।
परिहाण–२६६ (=क्षीण)।
परिहारपथ–३, २५ (जुआ)।
पर्णाकार–११९ (=भेंट)।

पर्यंक–१६३ (=आसन), १६४।
पर्यवनद्ध–८९ (=बँधा)।
पर्यवसान–१८७ (=लक्ष्य)।
पर्यवसानकल्याण–३४।
पर्येषणा–१११ (=खोजना)।
पलासी–२९४ (=निष्ठुर)।
पल्वल–१२५ (=जलाशय)।
पस्साव–१९१ (=पेशाब)।
पात्र–१९१।
पाप–२७५ (=बुराई)।
पापकर्म–(चार) २७१, २७२।
पाप दृष्टि–८३ (बुरी धारणा)।
पापिक–३५ (=दुष्ट)।
पापीयस्–६९ (=बुरा)।
पापेक्ष–१२१ (=बदनीयत)।
पाप्मा–१३२ (=दुष्ट)।
पारिशुद्धि शुद्धि प्रधानीय–३११ (नव)।
पारिषद्य–५१ (=सभासद्)।
पार्षद–३७ (दर्बारी), ५२ (=सभासद्), ५३।
पार्ष्णि–१०० (= घुट्ठी)।
पालित्य–१९५ (=बाल पकना)।
पासादिक–२५९ (= बळा सुन्दर)।
पिंडदायिक–१९ (पिंड बाँटनेवाला)।
पिंडपात–१३९ (=भिक्षा), २५६ (का प्रयोजन)।
पितामह–३६ (पूर्वज)।
पिपास–२७२ (=पियक्कळ)।
पिशुन वचन–२८९ (=चुग़ली)।
पिशुनवाची–५२ (=चुगुलख़ोर)।
पुटभेदन–१२५ (=मालकी गाँठ जहाँ तोळी जाय)।
पुण्डरीक–२९।
पुण्यक्रियावस्तु–२८४।
पुद्‌गल–(आठ) १२७ (=पुरुष, अठ), २८४ (तीन), २९० (तीन चतुष्क)।
पुद्‌गल प्रज्ञप्ति–(सात) २४८।
पुरुषक–२८० (=अफ़सर)।
पुरुष लक्षण–४ (शुभाशुभ फल), २६।
पुरोहित-पुत्र–१०६।
पूर्वजन्म–३१, ४०, ९५।
पूर्वजन्मस्मृति–६ (समाधिसे)।
पूर्वजन्मानुस्मृति–२५०।
पूर्व निमित्त–१०१, १०२ (गृहत्यागके)।
पूर्वनिवास–२६१।
पूर्वान्त कल्पिक–५, १४।
पूजा–२७ (के भेद)।
पृथक्–३०१ (=उल्टा)।
पृथग्‌जन–२ (अनाळी)।
पृथुभूत–२५४ (=विशाल)।
पेशकार–(=रंगरेज़)।
पोरसा–१५२ (=५ हाथ)।
पौरी–३६८ (=सभ्य, नागरिक)।
प्रग्रह–२८३ (=चित्तनिग्रह)।
प्रजा–१०५ (=सांसारिक लोग), ११० (=जनता)।
प्रज्ञप्त–११८ (=विहित, क़ानूनी)।
प्रज्ञप्ति–७५ (=वचन-व्यवहार), ११५ (=रूढ़ि), २४७ (छै), २५३ (=उपदेश), २५९ (व्याख्यान)।
प्रज्ञा–३०-३२, ४६ (=ज्ञान, शीलप्रक्षालित), ११५, २७२ (=बुद्धि), २८५ (दोत्रिक)।
प्रज्ञापन–११२ (=बोलना), ११३ (जतलाना)
प्रज्ञापित–७२।
प्रज्ञावादी–६५ (=केवल ज्ञानसे मुक्ति माननेवाले)।
प्रज्ञाविमुक्ति–११६ (=जानकर मुक्त), १२६, २४७, २४८।
प्रज्ञा सम्पत्ति–६४।
प्रज्ञास्कन्ध–७१, ७७।
प्रणव–३१ (बाजा)।
प्रणिधि–२९७ (=अभिलाषा)।
प्रणिधिकर्म–६४ (=मिन्नत पूरा करना)।
प्रणिहित–२४८ (=एकाग्र)।
प्रणीत–१०६।
प्रणीततर–५५ (=उत्तम)।

प्रतिकूल मनसिकार–१९२।
प्रतिग्राहक–५२ (=दान लेनेवाला)।
प्रतिघ–११२ (=रोक), ११६ (=प्रतिहिंसा), २८६, ३११।
प्रतिघसंज्ञा–२९९ (=प्रतिहिंसाका ख्याल)।
प्रतिज्ञा–१४४ (=दावा)।
प्रतिज्ञातकरण–२९६।
प्रतिपदा–२० (=मार्ग), १६७, २४८ (चार)।
प्रतिपद्–५८ (=मार्ग), ६२, ७१, ९०, १८९, २८८ (चार)।
प्रतिलोम–११६।
प्रतिवानता–२८३ (=आलस्य)।
प्रतिष्ठा–२५२ (=नींव)।
प्रतिसंख्यान–२८३ (=अकंपज्ञान)।
प्रतिसल्लयन–२९५ (=एकान्तवास)।
प्रतिसंस्तार–२८३ (=छिद्रपिधान)।
प्रतिहरण–७२ (प्रमाण)।
प्रतिहारक–२६२, २६७ (राजके अफ़सर) २६८ २६९।
प्रतीत्यसमुत्पन्न–११४ (कारण से उत्पन्न)।
प्रत्यय–६८ (हेतु), ७०, ११० (कारण), १११ (निदान), ११२, १०३, १०४।
प्रत्युत्पन्न–१२३ (वर्तमान)।
प्रत्युपस्थान– (खळा होना), २७४ (सेवा)।
प्रत्यूष–१२ (=भिनसार)।
प्रथम ध्यान–(देखो ध्यान)।
प्रदक्षिणा–३४।
प्रधान–१४२ (=निर्वाणके साधन), २४८ (सात), २८३ (=अभ्यास), २८७ (चार, देखो सम्यक्प्रधान भी)।
प्रधानीय अङ्ग–२९१, ३०४ (पाँच)।
प्रपंचसंज्ञा संख्या–१८६।
प्रव्रजित–५८ (=साधु), ७५, ८४, १०३; १४९।
प्रभव–१८५ (=जन्म)।
प्रभूतजिह्व–२६१।
प्रमत्त–२७४ (=भूला)।
प्रमाण।अ–९१ (=महान्)।
प्रमाद–२४८ (=आलस्य), २७५ (=भूल)।
प्रमादस्थान–५४।
प्रमुख–२६३ (=श्रेष्ठ)।
प्रवचन–३४, १४५ (=उपदेश)।
प्रवारणा–१६७ (=आश्विनपूर्णिमा)।
प्रवेणी पुस्तक–११८ टि० (क़ानूनकी पुस्तक)।
प्रवेदित–३१० (=साक्षात्कार किया)।
प्रश्न व्याकरण–(चार) २८९ (=सवालका जवाब)।
प्रश्रब्ध–६८ (=अचंचल), ९१ (=शान्त)।
प्रश्रब्धि–७३ (=निश्चलता), २४८ (संबोध्यंग)।
प्रसन्न–५२ (=स्वच्छ), ५४, ७८ (=श्रद्धालु), १६०, १८४, २४६।
प्रसाद–१३८ (=श्रद्धा)।
प्रहाण–१९३ (=विनाश)।
प्रहातव्य–३०२।
प्रहातव्य धर्म–(५५) ३०२, ३०३, ३०४, ३०६, ३०७, ३०९, ३११, ३१३।
प्रहीण–२३२ (=नष्ट)।
प्राणातिपात–२ (=जीवहिंसा)।
प्राणातिपाती–५२ (=हिंसारत)।
प्राणायाम–१९०।
प्रातिमोक्ष–१०८ (=भिक्षुनियम), ३१२।
प्रातिमोक्षसंवर–१८६ (=भिक्षु-संयम)।
प्रातिहार्य–१३० (=युक्ति), २८५ (तीन)।
प्राभृत–५० (=पूँजी)।
प्रामाणिक–।अ–८८ (=अप्पाटिहीरक)।
प्रामोद्य–७३ (=प्रमोद)।
प्रावरण–२६४ (=ओढ़ना)।
प्रासाद–७३, ७४।
प्रासादिक–१७।
प्रियभाषणी–२७३ (=जीहुजूर, खुशामदी)।
प्रेत–१०२ (=मृत), २२६।
प्रेतयोनि–१२७।
प्रेष्य–५२ (=नौकर)।
प्लीहा–१९१ (=तिल्ली)।
फलबीज–२४ (जिसके फलसे प्ररोह होता है)।

फल्गु–२३० (=हीर और छालके बीचवाला भाग)।
फाणित–५३ (=खाँड)।
बंजारा–२०७।
बध–२५२ (=युद्ध), २८२।
बन्ध–३५ (=ब्रह्मा)।
बंधुजीवक–१३२ (=अळहुल)।
बन्ध्य–२४९ (=कूटस्थ)।
बल–१३४, २४७ (पाँच), २५५, २८९ (चार), २९६ (सात)।
बलभेरी–१२० टि०, (=सैनिक नगारा)।
बलि–५० (=कर), ११९ (=वृत्ति)।
बलिकर्म–५।
बहिर्धा–१९४ (=शरीरके बाहरी)।
बहुश्रुत–५१।
बादल गर्जना। सूखा–५।
बाल–१७ टि० (=अज्ञ), ४४ (=अज्ञ), १९९ (=मूर्ख), २५७ (=अजान)।
बालका कम्बल–६३।
बाह्य-आयत्तन–(छै) २९३।
बीजभत्ता–५१।
बुद्ध–२३ (=ज्ञानी), ४८ (के गुण), ५४ (=परम ज्ञानी), १०९ (=उपदेश), १२७ (=उपदेश), १२७ (ज्ञानी), १२९ (=उपदेश), १२७ (ज्ञानी), १२९ (की अनुस्मृति), २८८।
बुद्धचक्षु–१०६।
बोधिपाक्षिक–२४५ (धर्म)।
बोधिवृक्ष–१०६।
बोधिसत्व–९८, १०३।
बोध्यंग–१३४, १९४ (सविस्तर-), १९४ (सात), २४७, २५५, २९५ (सात) ३०७।
ब्रह्मकायिक–३११।
ब्रह्मचर्य–१०८ (परिशुद्ध-)।
ब्रह्मचर्य–१३१ (=बुद्धधर्म)।
ब्रह्मचर्यवास–७५।
ब्रह्मदंड–३८, १४६, ब्रह्मदेय ३४।
ब्रह्मदेय–४८।
ब्रह्मपूजा। महा–५, २७।
ब्रह्मविमान–७ (शून्य), २२३ (ब्रह्मलोक)।
ब्रह्मस्वर–१६३ (में आठ बातें), १६१, १६८, २६८।
ब्रह्मा–७, ८ (सृष्टिकर्ता ईश्वर)।
ब्रह्माण्ड–१५।
ब्राह्मण–२४० (-वर्ण), २४४ (=पुराने), २४४ (की उत्पत्ति)।
ब्राह्मणदूत–५६।
ब्राह्मणमंडल–२४४ (का निर्माण)।
ब्राह्मण्य–६३।
भंडन–२८२ (=कलह)।
भत्तवेतन–५० (=भत्ता और तन्ख़ाह), २७५।
भत्तसम्मद–१५८ (=भोजनोपरान्त आलस)।
भद्रकल्प–९५।
भद्रलता–२४२।
भन्ते–१ (=स्वामी), २७१।
भव–१४ (उपादानसे), १०३ (=आवागमन) ११०, १११ (तीन), १८० (=ओघ), १९६ (=जन्म), २८२, २८४ (तीन), २८९।
भवतृष्णा–१५, ३०३।
भवदृष्टि–२८२ (=नित्यताकी धारणा)।
भवनेत्री–१२६ (=तृष्णा)।
भवसंस्कार–१३१ (=जीवनशक्ति)।
भवास्रव–३२ (=जन्मनेकी इच्छा)।
भविष्यद्वाणी–२६।
भस्ससमाचार–२४९ (=वाचिक आचरण)।
भावना–(तीन) २८५।
भावनायोग्यधर्म–(५५) ३०२, ३०३, ३०४, ३०६, ३०७, ३०९, ३११, ३१३।
भिक्षु-संघ–७५।
भिन्नस्तूप–२५२ (=नींव विना)।
भुजिस्स–१२१ (=सेवनीय)।
भूकम्प–५।
भूचाल–१३१।
भूतप्रेतकी कथा–४ (निषिद्ध)।
भूत–७२ (=यथार्थ), १३४ (उत्पन्न)।
भूत। महा–३० (पृथिवी, जल, तेज, वायु)।

भूतवादी–२६९।
भूतविद्या–४ (=यथार्थ)।
भूरिप्रज्ञ–१६२ (=बुद्ध)।
भेद–११९ (=फूट)।
भेरी–३१, १५२।
भैंसलक्षण–४ (शुभाशुभ फल)।
भोग–२७४ (=संपत्ति)।
मंचक–१४० (=चारपाई)।
मज्जा–१९१।
मंजु–१०१ (कोमल), १६८।
मणिकुण्डल–४१।
मणिलक्षण–४ (शुभाशुभ फल)।
मंडप–१६ टि०।
मंडलमाल–९५ (=पर्णशाला)।
मद–(तीन) २८५।
मदनीय–१५३ (=मोह लेनवाले)।
मद्गुर–७३ (=मांगुर मछली)।
माद्य–५४।
मध्यकल्याण–२३।
मध्यकल्याण–३४।
मनःप्रदूषिक–८ (देवता)।
मनसिकार। प्रतिकूल–१९१।
मनसिकार। धातु–१९२।
मनस्कार। योनिशः–३०२।
मनःस्पर्श–१११।
मनाप–८९ (=प्रिय)।
मनाप–१०१ (=प्रिय), १७० **अ**–(=अप्रिय)।
मनोमय शरीर (अनोमा)–७४, ७५।
मंत्र–२६ (से जीभ बाँधना)।
मंत्र–३८ (=वेद), ३९।
मंत्र–४५ (=वेद), ४६,
मन्त्र–१७१ (=वेद)।
मंत्रधर–३४, ४६, मंत्रधर ४५-४६, ५१।
मंत्रपद–८७।
मन्त्रबल–५, २७।
मन्त्री–२६२ (खत्री)।
मरण–१९५ (का रूप)।
मर्यादा–२४३ (=मेंड)।
मर्षी–२९४ (=अमरखी)।
मल्लाह–(१५)।
मसारगल्ल–१५२ (रत्न)।
मह–१५० (=पूजा)।
महद्गत–१९३ (=महापरिमाग, महर्द्धिक वैशाली)।
महर्द्धिक–११७ (=वैभवशाली)।
महल्लक–३७ (=वृद्ध), ४९, ९०, ११८।
महाचोर–२८० (=डाकू)।
महाजन–२६५ (=जनता), महानस १९।
महापुरुषलक्षण–३४ (=सामुद्रिक), ४६, ४९ (बत्तीस), २६०-७०।
महापुरुषवितर्क–(आठ) ३१०।
महाभूत–७९ (पृथिवी, जल, तेज, वायु), ८० (महाभूत)।
महामन्त्री–२३५।
महामात्य–६७, ११७ (महामंत्री)।
महावात–१३१ (=तूफ़ान)।
महाशाल–५१ (=धनी)।
महाशाल–५२, ५३ (=धनी), महाशाल (धार्मिक)। ८६ (महाधनिक)।
महाशाल–१४३, १७५, २१९,
महिषयुद्ध–२५ (तीन)।
महेशाख्य–१४०, १४१ (पृथीनाख) १२४, १२५।
माणवक–१ (ब्राह्मण तरुण, शिष्य)।
माणवक–३५, ३६, ३७, ४३, (तरुण ब्राह्मण), ४९ (विद्यार्थी) ७६, ८६, ७७, १६९, २१०।
मात्रिकाधर–१३५।
मात्सर्य–१११ (=कंजूसी), ११२, १८५, २९० (पाँच) १७९ कथा।
मार–३४, २३३, ६२ (मर्ग उपाय)।
मार्ग–६२ (=उपाय)।
मार्दव–२८३ (=कोमलता)।
मार्ष–१०८ (=समान व्यक्तिके लिये देवताओंका सम्बोधन), १६३।
मिथ्यात्व–२९६ (=झूठ), ३०९ (आठ), ३१३ (दश)।

मिथ्यादृष्टि–५२ (=झूठे मत वाले), ८३ (=झूठी धारणा), २३८, २४१, ३१३ (=उल्टी मत)।
मिथ्याप्रतिपन्न–२५२ (=गलत रास्तेपर)।
मुखचूर्ण–४, २५ (पाउडर)।
मुखलेपन–२५।
मुढोली–१९१ (=डेहरी)।
मुंडक–३५, ४१।
मुदिता–(भावना) ९१, १५७।
मुद्रिक–१९ (=हाथसे गिननेवाला)।
मुर्गालक्षण–४ (शुभाशुभ फल)।
मुष्टियुद्ध–२५।
मुँहसे आग नकालना–५।
मूंज–३०।
मूर्छा–२०५ (=मोहित करना)।
मूर्छित–८९ (=बेख़बर)।
मूर्धाभिषिक्त–२७, ६४, १६३, २३४ (Sovereign)
मूषिकविषविद्या–४, २६।
मूलबीज–३ (जिसकी उत्पत्ति बीजसे होती है), २४।
मृगचक्र–४ (एक प्रकारका जादू), २६।
मृगलक्षण–३१, २६।
मृदंग–३१, १५२।
मृद्ध–१९३ (=चित्तका आलस्य)।
मृषावाद–२८९ (=झूठ)।
मृषावादी–५२ (=झूठा)।
मेद–१९१ (=वर)।
मेरय–५४, ६२ (=कच्ची शराब)।
मेषलक्षण–४ (शुभाशुभ फल)।
मैत्री–(भावना) ९१, १५७, २३८, २७५, २८३ (शौचेय)।
मोक्खचिक–३, २५ (जुआ)।
मोघ–७० (=निरर्थक), ७४ (=मिथ्या)।
मौनेय–(तीन) २८५ (=वाक्-संयम)।
यक्ष–१६१ (=देवता), १६५, २८०।
यज्ञ–५१ (के आठ परिष्कार), ५२ (की सोलह सम्पदा)।
यज्ञवाट–५३ (=यज्ञस्थान), ५५ (० मंडप)।
यज्ञसम्पदा–४८ (=यज्ञविधि), ५० (० परिष्कार), ५३ (त्रिविध)।
यतात्मा–२१ (=संयमी)।
यथाकारी–२५८।
यथावादी–तथाकारी १६८।
यद्भूयसिक–२९६।
यम–२०१ (नरकपाल)।
यमक–१४० (=जुळवाँ)।
यान–४२ (=रथ), ६७, २२६ (=युद्ध-यात्रा)।
याम–१४४ (=४ घंटा)।
युद्ध–३ (पशुओंके)।
यूप–५२ (=यज्ञस्तम्भ)।
योग–(चार) २८९ (=मिलना), ३०४।
योगक्षेमप्राप्त–२५४ (=मुक्त)।
योजन–५०, १५४।
योनि–(चार) २८९।
योनिसो–४४ (=ठीकसे)।
रक्तज्ञ–१२१ (=धर्मानुरागी), २५४।
रजोधातु–२०।
रत्न–(सात) ९९ (चक्र, हस्ती, अश्व, मणि, स्त्री, गृहपति, पुत्र), १५३-५४, २३३, २६०।
रथकी दौड–३, २५।
रथिक–१९ (सारथी)।
रभस–३५ (बकवादी)।
रसग्गसग्गी–२६६।
रसतृष्णा–१११।
राजदाय–४८।
राजदेय–३४।
राजन्य–२०१-११ (=क्षत्रिय)।
राजपुरुष–५० (=राजाका नौकर)।
राजर्षि–२३४।
राजा–११८ (गण-पति)।
११९ (प्रजातंत्रके सभासद्)।
राजाधिकारी–२६२, २६७ नैगम, जानपद,

गणक, महामात्य, अनीकस्थ, द्वारपाल, अमात्य, पारिषद्य, भोग्यकुमार)।
राजा संबंधी शुभाशुभ–४, ५।
राजकर्ता–१७०।
राज्याभिषेक–१७०।
राशि–(तीन) २८४।
रिक्त–८८ (=व्यर्थ)।
रूप–(तीन) २८४, ३०३।
रूपकाय–११२ (=रूपसमुदाय)।
रूपतृष्णा–१११।
रूपभव–१११ (=अपार्थिव लोक)।
रूप-संज्ञा–१९९ (=रूप-संबंधी ज्ञानका अनुभव)।
रूपी–३० (=भौतिक), ७३ (चार महाभूतोंके), ३१० (=रूपज्ञान)।
रोगी–२८।
लक्षण–४ (विद्यायें), २६ (विद्याके भेद-) ९८ (युद्धके गर्भप्रवेशका), ९९ (बुद्धके प्रसवका)।
लघु-उत्थान–११७ (=फुर्ती)।
लघुक–३५ (=क्षुद्र)।
लट्टुकिका–३६ (=गौरय्या)।
लयन–१६ (=गुफा)।
लसिका–१९१ (=शरीरके जोळोंकी चर्बी), २४८।
लिंग–११२ (=आकार)।
लेख–१७ टि० (=पत्र)।
लोक–७०, ७१ (शाश्वत), १९० (=संसार या शरीर)।
लोकधातु–९८ (=ब्रह्माण्ड), ९९, २५१।
लोकविद्–२३, ३४, ४८।
लोकायतशास्त्र–३७, ४६।
लोह–१४८ (=ताँबा)।
लोहद्रोणी–१४१ (=ताँबेकी दोन)।
लोहित–१२८ (=लाल)।
लोहितांङ्कक–१५३ (मणि)।
वंकक–३, २५ (जुआ)।
वचीपरम–२७३ (=बात बनानेवाला)।
वणिक्पथ–१२५ (=व्यापार-मार्ग)।
वणिब्बक–५१ (=वन्दीजन)।
वत्तक–४ (के लक्षण)।
वद्य–३१२ (=दोष)।
वमन–५।
वर्ण–३१, ४५ (=रंग); २६६ (=रूप), २४० (चार)।
वर्णवान्–२४४ (=सुन्दर)।
वल्वज–११० (=भाभळ)।
वशवर्ती–७, ९० (=अपरतन्त्र, जितेन्द्रिय), ९२।
वशी–२२३ (=स्वामी)।
वसा–१९१ (=चर्बी)।
वस्तिगुह्य–१०० (=पुरुष इन्द्रिय), २६०।
वस्त्रलक्षण–४ (शुभाशुभ फल)।
वाणलक्षण–४ (शुभाशुभ फल)।
वाणिज्य–५०।
वाद–७२ (=मत), ७३ (-दृष्टि, मत), २५४ (=आक्षेप)।
वास्तु–१२५ (=घर, वास)।
वास्तुविद्या–२६।
वाहन–२७९ (=सवारी)।
विकाल–२४ (=मध्याह्नके बाद)।
विचार–१९७ (-भेद)।
विचिकित्सा–२८, ८९ (=दुविधा), १७३, १९३ (=संशय), २३० (=सन्देह)।
विज्ञान–३० (=मन), १०४, ११०, ११२ (=चित्तधारा, जीव), १३२ (=चेतना), १९६ (छै)।
विज्ञान-आयतन–१३, ११५ (योनि)।
विज्ञानकाय–(छै) २९३।
विज्ञानशरीर–१२।
विज्ञानस्रोत–२४८ (=भूत, भविष्य, वर्तमान, तीनों कालोंमें बहती जीवनधारा)।
विज्ञानस्थिति–११५ (=योनियाँ ७—नाना काया नाना संज्ञा आदि), २८८ (चार); २९९, ३०७ (सात)।
वितथ–११७ (=अयथार्थ)।

वितर्क–१०३ (=ख्याल), १५७, १९७ (के भेद)।
वितान–१४७ (=चँदवा)।
विद्या–४ (जादूमन्तर), २६ (मंत्रपूजाके भेद); २८५, ३०३ (तीन)।
विद्या। हीन–४।
विद्याचरण–३९।
विनय–१३५, २९५ (=त्याग)।
विध–(तीन) २८४।
विनयधर–१३५।
विनाभाव–१५८ (=वियोग)।
विनिपात–४२ (=दुर्गति), ११० (=पतन)।
विनिपातिक–११५ (=नीच योनिवाले, पिशाच २८४ (अधमयोनि), २९६ (=पापयोनि)।
विनिश्चय–१११ (=दृढ़ विचार), १२० टि० (=इन्साफ़)।
विनिश्चयमहामात्य–११८ (=न्यायाधीश, जज)।
विनिश्चयशाला–१७ टि० (=अदालत)।
विन्दु–१६८ (=ठोस)।
विपरामोस–२६९ (=डाका)।
विपरिणत–१५९ (=बदल गया)।
विपश्यना–२८३ (=प्रज्ञा), ३०३।
विपिन–९० (=जंगल)।
विपाक–१० (=फल)।
विप्रतिसार–५२ (=चित्तको बुरा करना), १२९ (=अफ़सोस)।
विप्रसन्न–१५४ (=स्वच्छ)।
विभवदृष्टि–२८२ (=उच्छेदकी धारणा)।
विमान–२२३ (=लोक)।
विमति–२५१ (=सन्देह)।
विमुक्ति–२४७।
विमुक्ति-आयतन–(पाँच) २९२,३०५।
विमुक्तिपरिपाचनीयसंज्ञा–२९३।
विमुक्तिवादी–६५।
विमोक्ष–(आठ) ११६, १३२, २२४, २९८, ३१०।
विरज–३३ (मलरहित)।
विराग–१९३।
विरूढि–११३ (=वृद्धि)।
विरेचन–५, २७ (जुलाब)।
विरेचन। ऊर्ध्व–५।
विरेचन। शिरो–५।
विवर–२१ (=खाली जगह), १२३ (=सन्धि)।
विवर्त–६, ३१ (=सृष्टि), २२३ (=लोक-की उत्पत्ति), २४१ (=सृष्टि), २४२ (=उद्घाटन, २४९ (=प्रादुर्भाव)।
विवादमूल–(छै) २९४।
विवाह–५ (में सायत बतलाना), ३९।
विविक्त–१७२ (=एकान्त, निर्जन)।
विशारदता–८५।
विशिखा–४, २५, ६७, २२६ (=चौरस्ता)।
विशेष–१६२ (=मार्गफल)।
विशेषभागीयधर्म–(५५) ३०२, ३०३, ३०४, ३०५, ३०६, ३०७, ३०९, ३११, ३१३।
विषविद्या–४।
विसंयोग–(चार) २८९ (=वियोग), ३०४।
विहार–३५, १४२ (=कोठरी); २८५ (तीन)।
वीतराग। अ–१४७।
वीमंसासमाधि–२३९।
वीर्य–१२९ (=मनोबल), २४८ (संबो-ध्यंग)।
वीर्यसमाधि–२३९।
वृक्क–१९१।
वृषभयुद्ध–२५।
वृषभलक्षण–४ (शुभाशुभफल)।
वृषली–२४३ (=शूद्री)।
वृष्टि–५ (फलाफल)।
वेद–३४ (तीन), ४६।
वेदन–११४ (=अनुभव)।
वेदना–१४, १०४ (=अनुभव), १९० (सुख आदि), १९२ (का रूप), १९६ (-विशेष); २८४, ३०३ (तीन); २८६ (=अनुभव)।
वेदनाकाय–(छै) २९३।
वेदनानुपश्यना–१९२।

वेदित–११५ (=अनुभव किया गया)।
वेष्ठन–४७ (=साफा)।
वैदूर्यमणि–९८ (=हीरा), १५२, १५६ (देखो हीरा भी)।
वैद्यकर्म–५, २७।
वैयाकरण–३४, ४६।
वैयावर्त्य–२८९ (=सेवा)।
वैश्य–२४० (वर्ण), २४४ (की व्युत्पत्ति)।
वोसग्ग–२७५ (=छुट्टी)।
व्यक्त–५१ (=पंडित), १२३, १३०, १९९।
व्यंजन–४१ (=तर्कारी), २५५ (वाक्य-योजना)।
व्यंजनसहित–३४।
व्यय–१०५ (=विनाश), ११४ (=क्षय), १९१।
व्ययशील–११४ (=विनाशशील)।
व्यवकीर्ण–११४ (=मिश्रित)।
व्यवदानीय–७३ (=शोधक)।
व्यसन–९० (=आफ़त), २९१ (पाँच)।
व्यवसर्ग–२८७ (=त्याग)।
व्यवहारिक–११८ टि० (=न्यायविभागका अधिकारी)।
व्याकरण–१६० (=अदृष्ट कथन)।
व्यापन्नचित्त–५२ (=द्रोही)।
व्यापाद–२८, ८९ (=द्रोह), ९०, ९१, १५७, १९७, २३० (=हिंसाभाव), २३७ (प्रति-हिंसा), २८३ (=द्रोह)।
व्यापारी–८० (सामुद्रिक-)।
व्यायाम–६२ (=उद्योग) १०० (=चौळाई)।
शकट–१२९ (=गाळी)।
शंख–२३, ३१, २०५।
शंखध्मा–९१।
शठ–११९ (=मायावी)।
शब्द–४२ (=यश), १४३ (दस), १५२ (दस)।
शब्दतृष्णा–१११।
शमथ–२८३ (=समाधि), ३०३।
शयनासन–१२१ (=कुटी), २८८ (=निवास)।
शय्या–३, २५ (के भेद)।
शरण–२७४ (=रक्षक)।
शरपरित्राण–४, २६ (=मंत्रसे वाण रोकना)।
शरीर–१४९ (=अस्थि), १५०।
शरीरपरिग्रह–७४ (मनोमय-, अरूप-, स्थूल-शरीर), ७५।
शरीररक्षक–२६२।
शलाकहस्त–३ (जुआ)।
शस्त्र–२१।
शस्त्रान्तरकल्प–२३७।
शाक–३६ (=सागौन)।
शाक्य–३६ (=समर्थ)।
शान्तिकर्म–६४।
शालिमांसौदन–२३७ (=पोलाव)। २४३ (=धान)।
शाश्वत–६, ७, ८, ७० (=नित्य), २५८।
शाश्वतवाद–६ (चार), २४९।
शाश्वतवादी ७।
शाश्वतविहार–(छै) २९५।
शासन–१६ (=धर्म), ८४ (=उपदेश), ८५ (=धर्म), १०७, १२० टि० (=खबर), १७८ (=धर्म), १८८ (=धर्म)।
शास्ता–१८ (=उपदेशक), २३, ३४, ८४ (=गुरु), १३९, २९२ (=धर्माचार्य)।
शिक्षा–३४ (=निरुक्त), २८५ (तीन), २९५ (=भिक्षुनियम)।
शिक्षापद–५४ (=यम-नियम), ६४ (=आचार नियम), १४६ (=भिक्षुनियम), २३९ (=नियम), २९० (पाँच)।
शिरोविरेचन–२७।
शिल्प–१९ (विस्तारसे), १२० टि० (=विद्या)।
शिल्पस्थान–१९ (=विद्या, कला)।
शिवविद्या–४, २६ (मंत्र)।
शिविका–१०२ (=अरथी)।
शील–२४-२८ (सविस्तर), ४६ (=आचार), ४६ (प्रज्ञाप्रक्षालित), ६४ (=सदा-चार)।

शीलवान्–४५, ५३ (=सदाचारी)।
शीलविपत्ति–२८३ (=आचार-दोष), २९१।
शीलविशुद्धि–२८३ (=आचारशुद्धता)।
शीलव्रत-उपादान–१११ (=व्रत-आचारमें आसक्ति)।
शीलव्रतपरामर्श–१९४ टि० (=शील और व्रतका ख्याल)।
शीलसमाचार–२४९ (=शीलसम्बन्धी आचरण)।
शीलसम्पत्ति–६४।
शीलसम्पदा–२८३ (=आचारकी पूर्णता)।
शीलसम्पन्न–२४, ४०, ७७ (=सदाचारयुक्त)।
शीलसंवर–२७।
शीलस्कन्ध–२७, ६४, ७७ (=उत्तम सदाचार-समूह)।
शुक्लधर्म–२९५ (=पुण्य)।
शुद्धावास–(पाँच) २९२ (-देवलोक)।
शुभ–८१।
शुभ। अ–८१।
शुभाशुभफलशास्त्र–४।
शूकरमार्दव–१३६ (सुअरका मांस)।
शूद्र–४१, २४० (वर्ण), २४४ (=क्षुद्र)।
शैक्ष–१६८ (=निर्वाणके मार्गपर आरूढ़)।
शैवाल–६३ (=सेवार)।
शोक–१९२ (का रूप)।
शौचेय–२८३ (=मैत्रीभावना), २८५ (=पवित्रता, तीन)।
शौंड–२७३ (=मस्त)।
श्रद्धानुसारी–२४८।
श्रद्धाविमुक्त–२४८।
श्रमण–३५, ४१, ४४, १०८, २४५ (की उत्पत्ति)।
श्रमण ब्राह्मण–६, ८, ९, १४, १९, ३४, ७७, ८२, ८४, ९८, १८७, २१०, २५८।
श्रमणभाव–२३ (=साधु होना), ८४।
श्राद्ध–३८, ३९, २७४।
श्रामण्य–१९ (=भिक्षुपन), ६३, १२२, २८८ (चार)।
श्रामण्यफल–(४) ३०४।
श्रामण्यफल प्रत्यक्ष–२१, २२, २९, ३२।

श्रावक–(=शिष्य) ९६, १२७, १८५, १८८ २५४, २५५।
श्राविका–१३३ (=शिष्या)।
श्रुत–२६५ (=विद्या), २७५।
श्रेयस्–६९ (=अच्छा)।
श्रोत्र–३१ (=कान)।
श्रोत्रस्पर्श–१११।
श्मशान–२२२।
श्मशानयोग–१९२।
षडायतन–१०४ (छै—चक्षु, श्रोत्र, घ्राण, जिह्वा, काय, मन), १०५।
सकृदागामी–५७, ८४, १२६, १२७, १४५, १६०, १६२, १७५, २४९, २५७।
संकल्प–(दो त्रिक) २८३।
संक्लेश–९० (=चित्तमल), ३०३।
संक्लिष्ट–९२ (=मलिन)।
संक्लेशिक–७३ (=चित्तमल उत्पन्न करनेवाले)।
संख्या–१८७ (=ख्याल), २५०।
संख्यान–३१४ (=समझना)।
संगणिकाराम–१२१ (=भीळको पसन्द करने-वाला)।
संग्रहवस्तु–(चार) २८९।
संग्राहक–२७६।
संघ–१८, ५४ (परमतत्वका रक्षक समुदाय), १२१, १२७ (-अनुस्मृति), २८८ (-अनु-स्मृति)।
संघाटी–१३९, १९१ (भिक्षुकी दोहरी चादर)।
संघी–४९ (=संघाधिपति)।
संज्ञा–२८६ (=ज्ञान)।
संचेतना–१९६ (=ख्याल)।
संचेतनाकाय–(छै) २९३।
सजधज–४, २५ (के भेद)।
संज्ञा–११ (=ख्याल), ६८, ७०, ७५ (=वचन व्यवहार), ७५, ११५ (=नाम), १९६ (=अनुभव), २२४ (=होश), २८३ (दोत्रिक), २९८ (=ख्याल), २९६, ३०७ (सात), ३११ (=ख्याल), ३१२ (नव), ३१४ (दश)।

संज्ञाकाय–(छै) २९३।
संचेतनाकाय–७० (संज्ञाओंमें श्रेष्ठ)।
सजधज–(छै) २९३।
संज्ञावेदयितनिरोध–१४६, ३११ (=जहाँ होशका ख्याल ही लुप्त हो जाता है)।
संज्ञी–२० (होशवाला)।
संडास–२०१ (=गूथकूप)।
सत्काय–२८४।
सत्पुरुष-धर्म–(सात) २९५, ३०७।
सत्पुरुषसहवास–३०३।
सत्यसन्ध–२४।
सत्व–७ (=प्राणी), १२ (=जीव), १११, २३१, २३६।
सत्वनिकाय–१९५ (=योनि)।
सत्वावास–(नव) १०९ (=योनि), २९९ (=जीवलोक), ३११।
सद्धर्म–(सात) २९५, ३०७।
सनका कपड़ा–६३।
सन्थागार–१७२ (=देखो संस्थागार)।
सन्धि–१२३ (=विवर), २४६।
सन्निक–३, २५ (जुआ)।
सन्निपात–९५ (=सम्मेलन), ११८(=बैठक)।
सप्त-उत्सद–२६१, २६२।
सब्रह्मचारी–१२१ (=गुरुभाई), २५५।
सभासद–२३५ (देखो पार्षद भी)।
समज्या–२७२ (नाच-तमाशा)।
समतित्तिक–८९ (=पूर्ण)।
समवर्त–१०० (समान)।
समवर्त्तस्कन्ध–२६६।
समादपन–५२ (=समुत्तेजन)।
समादान–२८८ (=स्वीकार)।
समाधि–६ (चित्त-), २८, २९, १०९, १३० (=एकाग्रता), १७२, २३९, २४८ (=सम्बोध्यंग); २८५, ३०३ (दोत्रिक), ३०४ (चार)।
समाधि । सम्यक्–(पाँच) ३०४।
समाधि-परिष्कार–(सात) २९५।
समाधिभावना–(चार) २८६।
समाधिस्कन्ध–७७।
सामड़पत्त–६९ (=समाधि), १४६, १४७ (चार), २८३ (=ध्यान)।
समापत्ति । दर्शन–२४८।
समारम्भ–५३ (=क्रिया)।
समाहित–२८ (=एकाग्र)।
समीहित–४१ (=चिन्तित)।
समुदय–७ (=उत्पत्ति), ११ (उत्पत्ति स्थान); १४, १०४, ११० (=उत्पत्ति); १११ (=हेतु), ११२, ११६, १९१, १९३ (=उत्पत्ति); १८५ (=जन्म)।
समुदयधर्म–४३ (=उत्पन्न होनेवाला), १८९।
समुद्र–८१।
समृद्ध–८१।
सम्पद्–७८, १४३, १५६ (महानुभाव), २०८। सम्पद् (पाँच) २९१।
संप्रजन्य–२७ (सावधानी); १२७, १९० (=अनुभव); १९१ (का रूप), ३०३।
संप्रज्ञ–१२७।
संप्रज्ञात समापत्ति–६९ (समाधि)।
संप्रलाप–२८९ (=बकवाद)।
संप्रवारित–४३ (=सन्तर्पित)।
सम्प्रसाद–१३, ६८ (प्रसन्नता), २५१ (=श्रद्धा)।
संबुद्ध–१८ (=परमज्ञानी), १२२, १२७।
सम्बोधि–५७, १२२, १२३ (=परमज्ञान), १६१ (=बुद्धत्व), १७५, २४६, २६६।
संबोध्यंग–(सात) १२१ (=परमज्ञान प्राप्तिके साधन), (देखो बोध्यंग भी)।
सम्मत–२४४ (=निर्वाचित)।
संमुखविनय–२९६।
संमोदक–४९।
संमोदन–३५, ४२ (=कुशलप्रश्न), ८६।
सम्यक्–३१४(=यथार्थ) सम्यक् कर्मान्त ५८।
सम्यक्त्व–(आठ) २९६।
सम्यक् प्रधान–१३४, २४७, २५५, २८६ (चार); देखो प्रधान भी)।
सम्यक् संकल्प–५८

सम्यक् समाधि-५८, ३०४, ३०५ (पाँच)।
सम्यक्स्मृति-५८।
सम्यग्-६२ (=ठीक)।
सम्यग् आजीव-५८।
सम्यग्दृष्टि-५२ (सत्यमत), ५८, ६२ (=ठीक धारणा), ८३ (=अच्छी धारणा), १९७।
सम्यग्वचन-५८।
सम्यग्विसृष्टैषण-३०१।
सम्यग्व्यायाम-५८।
संयोजन-(दश) ५७ बंधन, १६०, १९४ टि० (दश), २५७ (तीन), २८४ (तीन), २९० (अवरभागीय, ऊर्ध्वभागीय), २९६ (सात)।
सरक-१७ टि० (=कटोरा)।
सरीसृप-११० (=रेंगनेवाला)।
सर्पविद्या-४।
सर्पिष-७५ (=घी)।
सर्पिष्मण्ड-७५ (=घीका सार)।
सर्वद्रष्टा-७।
संवर-२७ (=रक्षा), १८७ (=संयम)।
संवर्त-३१, २४१ (=प्रलय), २४९।
संवर्तकल्प-६ (प्रलय)।
संवास-३६ (=मैथुन)।
संविग्न-१७२ (=भयभीत)।
संवृत-२१ (=आच्छादित)।
संवेजनीय-२८३ (=वैराग्य करनेवाला)।
सलाकहस्त-२५ (जुआ)।
सलोकता-८७, ८८ (=एक स्थान निवास), ९१।
संसरण-१२६ (=आवागमन)।
संस्कार-१५९, १३४ (=कृतवस्तु), १४६ (=उत्पन्न वस्तुयें), १९० (गति, क्रिया), २८४ (तीन)।
संस्कृत-११४ (कृत, कारणसे उत्पन्न), १४१ (=कृत वस्तुयें), १४२।
संस्थागार-३५, १४७, २८१ (=प्रजातन्त्र-भवन)।
सहव्यता-८८ (=सहभोजन)।
सहसाकार-२६९ (खून आदि कार्य)।
साक्षात्करणीयधर्म-(५५) २८९, ३०२, ३०३, ३०४, ३०५, ३०६, ३०८, ३१०, ३१२, ३१४।
साक्षात्कार-५७ (=अनुभव)।
साखिल्य-२८३ (=मधुर वचन)।
साचियोग-२६९ (=कुटिलता)।
सात-१९६ (=अनुकूल)।
सान्तअनन्तवाद-८।
सांदृष्टिक-२० (=प्रत्यक्ष), १२७ (इसी शरीरमें), १६५।
सापतेय्य-५३ (=धन-धान्य)।
सामीचि-२५३ (=ठीक मार्ग)।
सामुद्रिक-२५ (कथा)।
सामुद्रिक व्यापारी-८०।
सारथी-१०१।
साराणीयधर्म-(छै) २९३, ३०५।
सार्थ-१३७ (=कारवाँ), २०७।
सिंहनाद-६५, १२२, २३२।
सिंहपूर्वार्द्धकाय-२६६।
सुख-उपपत्ति-(तीन) २८५।
सुखलोक-७२।
सुखल्लिका-२५६ (=आरामपसन्दी)।
सुगत-(=बुद्ध) १८ (=सुन्दर गतिको प्राप्त), ३४, ७१।
सुगति-१२४ (=स्वर्गलोक)।
सुगीता-३९।
सुचरित-(तीन) २८३।
सुजा-४५ (=यज्ञ-दक्षिणा), ४६, ५१।
सुप्रतिवेध-१०९ (=अवगाहन)।
सुप्रतिष्ठितपाद-१००, २६०, २६१।
सुप्रवेदित-२८२ (=ठीकसे साक्षात्कार किया गया)।
सुभाषित-३९।
सुरा-५४।
सुवर्णकार-३०।
सूकरमद्दव-१३६।
सूक्ष्म-११३ (=क्षुद्र, अणु)।

सूक्ष्म-छवि–२६०, २६४।
सूत्रधार–११८ टि० (सर्कारी अफ़सर)।
सूद–१९ (=पाचक)।
सूर्यग्रहण–५।
सेना–५१, १५४ (चतुरंगिनी)।
सेनापति–११८ टि०।
सौमनस्य–१६२ (=प्रमोद), १८६, १८९ (=सन्तोष)।
सौमनस्य-उपविचार–२९३।
सौरत्य–२८३ (=आचारयुक्तता)।
स्कन्ध–(=समूह) ७७ (तीन—शील-, समाधि-, प्रज्ञास्कन्ध), १५३ (=तना, धळ) १९३ (का रूप), १९४ टि० (पाँच), २९० (पाँच)।
स्कन्धबीज–३, २४ (जिसकी गाँठसे प्ररोह निकलता है)।
स्तूपार्ह–१४२ (=स्तूप बनाने योग्य)।
स्त्यान-मृद्ध–२८, ८९ (=आलस्य), १९३ (=शरीर और मनका आलस्य)!
स्त्रीलक्षण–४ (शुभाशुभफल)।
स्थविर–(=वृद्ध) १२१, २८४ (तीन)।
स्थविरतर–१४६ (=अधिक वृद्ध)।
स्थाता–२६७ (=विश्वासपात्र)।
स्थानान्तर–१२० टि० (=पद)।
स्थालिपाक–३८, ३९।
स्थितधर्मा–२५७ (=धर्ममें स्थिर)।
स्थूण–४८ (=खम्भा)।
स्थूल–८१।
स्नातक–१७१, १७५।
स्नानचूर्ण–२९।
स्नायु–२०४ (=नस), २०५।
स्पर्श–६९ (=प्राप्ति), १०४ (=इन्द्रिय और विषयका मेल), ११०, १११ (चक्षु, श्रोत्र, घ्राण, जिह्वा, काय, मनके), ११२ (=योग), २५६ (=आघात)। ३०२।
स्पर्शकाय–(छै) २९३।
स्पर्शायतन–१४ (=विषय)।
स्प्रष्टव्य–१११ (तृष्णा)।
स्फीत–२४३।
स्मृति–१४१ (=होश)।
स्मृतिप्रस्थान–(चार) १३४, १९०, २४७, २५५, २५९, २८५, ३०४।
स्मृतिमान्–२४।
स्मृतिविनय–२९६।
स्मृति-संप्रजन्य–२७, २९, ७३, २८३ (=ज्ञान, ख्याल), ३०३।
स्रोतआपत्ति–१७ टि० (मार्गफल)।
स्रोत आपत्ति-अंग–२८८ (दो चतुष्क)।
स्रोत आपत्तिफल–८४।
स्रोत आपन्न–५७, १२७, १४४, १४५, २४९, २५७।
स्वकसंज्ञी–६९ (अपनी ही संज्ञा ग्रहण करने-वाला)।
स्वप्नविद्या–४, २६।
स्वस्ति–३७ (=मंगल)।
स्वाख्यात–१२७ (=सुन्दर रीतिसे कहा गया) २५३ अच्छी तरह कहा गया)।
हनु–१०० (ठोळी)।
हन्ता–२१।
हवन–(देखो होम)।
हस्तरेखा विद्या–५, २६।
हस्ति-आरोहण–१९ (हाथीकी सवारी, महा-वतगरी)।
हस्तियुद्ध–३, २५।
हस्तिलक्षण–४ (शुभाशुभफल)।
हानभागीयधर्म–(५५) ३०२, ३०३, ३०४, ३०६, ३०७, ३०९, ३११, ३१३। (=अव-नतिकी ओर ले जानेवाली बातें)।
हीन–४ (=नीच)।
हीन। अ–९८ (=अपूर्ण)।
हीरा–३०।
हेतु-प्रत्यय–(आठ) ३०८ (आदि ब्रह्मचर्य-के भी)।
हेमन्त–१०१ (ऋतु)।
होम–४ (के भेद) २६ (के भेद)।
हिरी–(=लज्जा) २६५, २८३।